

प्रकाशक—

शा. केशवलाल गाणेकचंद
भारत जैन विद्यालय.
पुना सिटी

मुद्रक—

लक्ष्मण भाऊ कोरडे
हनुमान प्रेस, सदाशिव पेठ
पुणे—सिटी.

प्रथमखण्ड-विषयसूचि.

(हिन्दी लेखविभाग)

१ मंगल	१
२ निर्ग्रन्थ प्रवचन	२
३ उद्बोधन	२
४ सिद्धसेन दिवाकर और स्वामी समन्तभद्र	६
५ हरिमद्रसूरिका समयनिर्णय ...	२१
६ हरिविषणुकृत कथाकोष (ले. पं. नाथूरामजी प्रेमी) ...	५९
७ जैनन्द्र व्याकरण और आचार्य देवनन्दी (ले. पं. नाथूरामजी प्रेमी) ...	६३
८ गन्वहस्तो महाभाष्यकी खोज (ले. बाबू जुगल किशोरजी मुल्लार)	८८
९ तीर्थयात्राके लिये निकलनेवाले संघोका वर्णन	९६
१० जेसलमेरके पटवोके संघका वर्णन ...	१०७
११ शोकसमाचार	११३
१२ चित्र परिचय	११८
१३ बालन्याय (ले० श्रीयुत चंपतरायजी जैन कौरिष्टर-एट-लॉ) ...	१२४
१४ दक्षिण भारतमें ९ वीं १० वीं शताब्दिका जैनधर्म (ले० स्व० कुमार देवेन्द्र प्रसादजी जैन)	१२९
१५ जंबुद्वीपपण्णति (ले० पं. नाथूरामजी प्रेमी)	१४४

(गुजराती लेख विभाग)

१ डॉ० हर्मन जेकोवीनी कल्पसूत्रनी प्रस्तावना	१
२ जैन धर्ममें अध्ययन (ले० प्रो० सी. वी. राजवाडे एम्. ए. बीएस्. सी ...	२९

३ जैन आगम साहित्यनी मूल भाषा कई (ले० पं. बेचरदास जीवराज, न्याय- व्याकरणतीर्थ)	३१
४ 'हरिमद्रसूरिनो समयनिर्णय' (ले० श्रीयुत हीरालाल अमृतलाल शाह, बी. ए.)	३८
५ संपादकीय विचार	४३
६ सोमप्रभाचार्य विराचित कुमारपाल प्रतिबोध	५५
७ डॉ० हर्मन जेकोवीनी जैन सूत्रोनी प्रस्तावना (प्रथम भाग)	६९, १४०
८ " (द्वितीय भाग)	१६७
९ साहित्यसमालोचन	९७
१० क्षेत्रादेश पट्टक	१०५
११ सद्यवत्स सावलिंगानी जैन कथा (ले० स्व० सी. वी. दलाल एम्. ए.) ...	१३५
१२ सतभंगी (ले० अध्यापक एसिकलाल छोटालाल परील बी. ए.)	१४५
१३ वे नया क्षेत्रादेश पट्टक	१५३
१४ बृहद्विष्णुनिका नामक प्राचीन जैन ग्रंथ सूचि	१५७
१५ एक ऐतिहासिक पत्र	१५८
१६ एक श्रीमात्री जैन कुटुंबनी जुनी वंशावली	१५९
१७ जहिस्ता अने वनस्पति आहार—खाद्य करीने बोद धर्ममा	१८६
१८ डॉ० होर्नलना जैनधर्म विषेना विचारो (ले० श्रीयुत नानालाल नाथामाई शाह, बी. ए.)	१९४
१९ महावीर निर्वाणनो समय विचार ...	२०४

२० आगराना सचनो सावसरिक पत्र ...	२१२
२१ महावीर तीर्थकरनी जन्मभूमि ...	२१८

[इंग्रजी लेख.]

1 The Undercurrents of Jainism, By Dr S K. Belvalkar, M. A. Ph. D	1
2 The Immediate task before us, By Prof Benarasi Dass Jain, M. A	3
3 A Comparative Study of उत्तरा. द्वयनसूत्र with Pali Canonical Books By Prof P. V Bapat M.A	7
4 Ratnakar Panchavimshatika By K. P. Modi, B A. LL B-	15
5 Logic for the Masses. By C. R Jain, Bar-at-Law (हिन्दीभाषाभाषा)	११९

[परिशिष्ट]

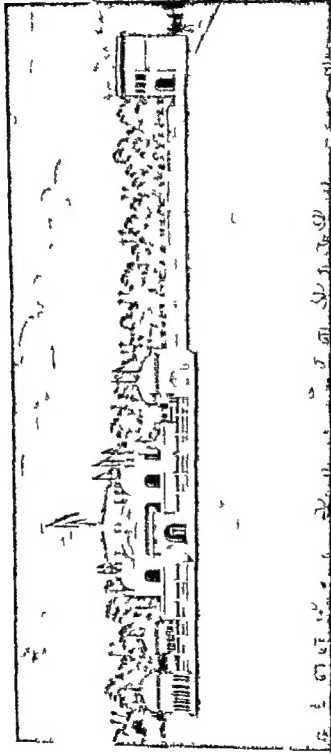
१ बृहद्विष्णुनिका नाम प्राचीन जैनग्रन्थ सूचि (द्वितीय अंक) पृष्ठ	१-१६
२ वीर वंशावली अथवा तपागच्छवृद्ध पट्टावलि (तृतीय अंक) पृष्ठ	१-१४

चित्रसूचि.

१ श्रीमहावीर निर्वाणभूमि, पावापुरी (रंगीन).
२-३ अति प्राचीन जैन कीर्तिस्तम्भ, चित्तौड़ गढ़.
४ पार्श्वनाथ जैन मन्दिर, करहोडा.
५ डॉ० संतोषचन्द्र विद्याभूषण, महोपाध्याय.
६ स्वर्गीय लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक.
७ चतुर्मुख जैनमन्दिर, कापरवा.
८ जैन मन्दिर मानसम, देवगढ़, (सांसी).
९ गिरनार पर्वत-पांचमी टुक.
१० गिरनार पर्वत-नेमिनाथनी टुक.
११ विजयसेन सूरिने आगराना सचें मोकलेलो सचित्र सावसरिक पत्र.



जैन मन्दिर संशोधक



PAYAPURI—THE PLACE OF NIRVANA OF THE 24TH TIRTHANKARA MAHAVIRA

श्री महावीर निर्वाणश्रुति पावापुरी, विहार ।

॥ अहम् ॥

णमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स ।

जैन साहित्य संशोधक

‘पुरिस्ता । सधंमव समभिजाणाहि । सच्चस्साणाए उवट्ठिए महावी मारं तरइ ।’
‘जे एगं जाणइ से सधं जाणइ, जे सधं जाणइ से एगं जाणट ।’
विट्ठं, सुयं, मयं, विण्णायं जं एत्थ परिकहिज्जइ ।’

—निर्घन्ध प्रवचन (आचाराङ्ग सूत्र)।

भाग १

महावीरजयन्ती; महावीर-निर्वाण संवत् २४४६

अंक १

मङ्गल ।

नमो अरिहंताणं ।
नमो सिद्धाणं ।
नमो आयरियाणं ।
नमो उवज्झायाणं ।
नमो लोए सच्चसाहूणं ।

जयइ जगजीवजोणी-विआणओ जगगुरु जगणंदो ।
जगनाहो जगबंधू जयइ जगपिआमहो भयवं ॥
जयइ सुआणप्पभवो तित्थयराणं अपच्छिमो जयइ ।
जयइ गुरु लोयाणं जयइ महप्पा महावीरो ॥

नन्दी सूत्र, देववाचक क्षमाभ्रमण ।

निर्मग्न्य प्रवचन ।

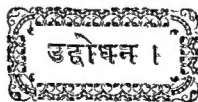
सुयं मे आउसं तेणं भगवया एवमवखायं—' इहमेगेसिं णो सण्णा भवइ, तं जहा—पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि । दाहिणाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, पच्छत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, उत्तराओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, उड्ढाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, अहोदिसाओ वा आगओ अहमंसि, अण्णयरीओ वा दिसाओ अण्णदिसाओ वा आगओ अहमंसि । एवमेगेसिं णो पायं भवइ । 'अथि मे आया उववाइए, पत्थि मे आया उववाइए, के अहं आसी, के वा इओ लुओ इह पेद्या भविरस्सामि ।'

से जं पुण जाणेज्जा सह सम्मदयाए, परदागरणेणं, अण्णेसिं अंतिण वा सोद्या; तं जहा—पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, जाय अण्णयरीओ दिसाओ अण्णदिसाओ वा आगओ अहमंसि । एवमेगेसिं पायं भवइ, अथि मे आया उववाइए । जो इमाओ दिसाओ अण्णदिसाओ वा अण्णसंचरइ, सव्वाओ दिसाओ सव्वाओ अण्णदिसाओ जो अण्णसंचरइ सोहं । से आयावादी, लोगावादी, कम्मावादी, किरियावादी ।

[अमण भगवान् श्रीमहावीर देवके शासनके मुख्य प्रवर्तक पंचम गणधर आर्य सुधर्मत्वाग्निने अपने प्रधान शिष्य आर्य जम्हू अनगारसे कहा कि—]

'हे आलम्ब्य मैने [ज्ञातपुत्र निर्मग्न्य भगवान् महावीर देवके पुरसे] सुना है, भगवान्ने इन प्रश्नर कहा है कि 'इस जगहमें किसी एक जीवात्माको यह ज्ञान नहीं होता है कि [मे कौन भी दिशामेंसे यहाँ पर आया है; अर्थात्—] नैस कि, पूर्व दिशामेंसे आया है, या दक्षिण दिशामेंसे आया है; पश्चिम दिशामेंसे आया है, या उत्तर दिशामेंसे आया है, ऊर्ध्व दिशामेंसे आया है, या अधो दिशामेंसे आया है, [वैसे ही] अन्य किसी दिशा या विदिशामेंसे आया है । [इसी तरह] किसी एकको यह भी नहीं ज्ञात होता कि मेरा आत्मा पुनर्जन्मवाला है अथवा नहीं है ?] मैं कौन हूँ ? यहाँसे मरकर मैं परजन्ममें कौन होऊँगा ? ।'

"जो पुन, [कोई एक जीवात्मा] अपनी सम्मतिते या वृत्तके कथनमें, अथवा किसी अन्य-तानमेंके पासमें यह ज्ञान होता है कि, मे जलुक दिशामेंसे आया है; अर्थात् [वैसे कि मैं पूर्व दिशामेंसे आया है, यात्रन अन्य दिशा-विदिशामेंसे आया है । [वैसे ही यह भी जान ले कि—] मेरा आत्मा पुनर्जन्मवाला है । जो इन दिशा विदिशाओंमें से आता जाता है [अर्थात् ऊपर बतलाई हुई] सर्व दिशा-विदिशाओंमेंसे आता जाता है वही मैं हूँ । [भगवान् कहते हैं—] वैसे जो ज्ञाता है वह आत्मवादी (आत्माको समझने वाला), लोकवादी (जगत्को जानने वाला), कर्मवादी (कर्मके रहस्यको माननेवाला), और क्रियावादी (कर्तव्यको करनेवाला) कहलाता है । "



श्रमण भगवान् श्री महावीर तीर्थंकर प्ररूपित 'निर्मग्न्य प्रवचन' का जो आदिम उद्धार, इस 'उद्बोधन' के अग्रभागमें हमने उद्धृत किया है वह जैसे वाद्य दृष्टिसे इस प्रस्तुत प्रयत्नमें—पत्रके प्रकाशनमें—प्रारंभिक मंगलाचरण स्वरूप है; वैसेही आंतर दृष्टिसे, प्रयत्नगत मुख्य ध्येयकामी पूर्ण उद्बोधक

है । ज्ञातपुत्र निर्मग्न्य प्रभु महावीर देवका प्रत्येक विचार 'द्रव्य' और 'भाव' दोनों नयाकी अपेक्षासे युक्त हो कर प्रवर्तित है । उस अनैकान्त्यादी अहंनका प्रत्येक उद्धार व्यावहारिक और पागमार्थिक दोनों दृष्टियोंको साथ लेकर व्यवहृत हुआ है । इसलिये उपर्युक्त उद्धार भी व्यवहार और

परमार्थ-द्रव्य और भाव-द्वानों भावोंसे उपलक्षित है। व्यवहारसे, जैसे कोई 'संज्ञा' याने चैतन्य हीन-मूढात्मा यह नहीं जान सकता कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाऊँगा, ये सब दिखाइ देनेवाले लोग कौन हैं; मेरा क्या कर्तव्य-कर्म है और मैं क्या कर रहा हूँ; इत्यादि। इस प्रकारके विचार-विहीन आत्माका कोई अभ्युदय नहीं हो सकता; वह अपने जीवनको प्रगतिमान् नहीं बना सकता। ऐसा मनुष्य, मनुष्य स्वरूप हो कर भी पशु ही की कोटिमें गिना जाता है। पशुके जीवनमें और ऐसे 'संज्ञा' हीन मनुष्यके जीवनमें कोई अंतर नहीं होता। ऐसा प्राणी अज्ञानमग्न, लोकप्रह्वानमग्न, कर्तव्य विचार विहीन और प्रवृत्ति-शून्य कहा जाता है। वैसे ही परमार्थ भावसे, जो आत्मा अध्यात्मभाव पराङ्मुख और ऐहिक विषय-आसक्त है वह भी चार्ताविकर्म 'संज्ञा' याने 'सम्यग्ज्ञान' हीन ही है। ऐसा परमार्थ-ज्ञानशून्य आत्मा भी (वह फिर चाहे व्यवहार से कितना ही बुद्धिमान्, प्रयत्नशील, प्रपञ्चपटु और सतत उद्योगी हो) यह नहीं विचार सकता कि, यथार्थमें मैं कौन हूँ, मेरे आत्माका क्या स्वरूप है, मैं किस लोकमेंसे यहाँ पर आया हूँ, मेरा पुनर्जन्म होता है या नहीं, मैं इस जन्मसे मर कर कहाँ जाऊँगा, इत्यादि। इस प्रकारके विचार-शून्य आत्मा का भी उद्धार नहीं हो सकता। उसको मोक्षमार्गकी प्राप्ति नहीं हो सकती। वह अंध पुरुषकी तरह अज्ञात मार्गमें इधर उधर भटकता फिरता है—संसार परिभ्रमण करता रहता है। उसको इच्छित स्थानकी प्राप्ति नहीं हो सकती; और सिद्ध-स्वरूप नहीं बन सकता।

जो आत्मा अध्यात्मस्वरूपका जिज्ञासु है, अपने आंतरिक गमनागमनका विचार करता रहता है, आत्माके यथार्थ स्वरूपको समझनेके लिये प्रयत्न करता रहता है, वही अपना उद्धार कर सकता है। वैसे जिज्ञासु अतएव विचारवान् मनुष्यको सम्यग्मार्ग मिल सकता है और उसके द्वारा वह इच्छित स्थानको प्राप्त कर सकता है। वह जन्म-मरण के बन्धनमें मुक्त हो कर सिद्ध-पुद्ध बन सकता है। निर्ग्रय तीर्थंकर ऐसे आत्मिक विचार करनेवाले पुरुष ही को 'आत्मवादी'—आत्मज्ञ कहते हैं। उनके

मतसे, जो आत्मा 'आत्मवादी' याने अपने स्वरूपको जान सकता है वही 'लोकवादी' अर्थात् जगत्के सत्य स्वरूपको जाननेवाला होता है। क्यों कि जो अपने आंतर स्वरूपको नहीं जान सकता वह बाह्य स्वरूपको भी नहीं जान सकता। यह आंतर-बाह्य ज्ञान परस्पर सापेक्ष है। इसीलिये भगवान्ने आगे चलकर यह कहा है कि—

जे अज्ज्ञत्थं जाणइ, से वहिया जाणइ,

जे वहिया जाणइ, से अज्ज्ञत्थं जाणइ ।

आचा द्विषू १-७।

जो इसप्रकार लोकवादी होता है वही 'कर्मवादी' अर्थात् कर्मकी विचित्र शक्तियोंका—जगत्के कार्य कारण-भावका—ज्ञाता हो सकता है; और इसी तरह कर्मवादी बनने पर फिर वह 'क्रियावादी' अर्थात् सम्यक् और असम्यक् प्रवृत्ति (कर्तव्याकर्तव्य) का स्वरूप और रहस्य समझनेवाला बन सकता है। क्रियावादी आत्मा आत्म-हितकर प्रवृत्तिका आचरण कर अंतमें कर्मसे मुक्त हो कर अमरत्व प्राप्त कर सकता है। प्रभु महावीर उपदिष्ट मोक्षमार्गका यही यथार्थ क्रम है। मोक्षशास्त्रके प्रणेता महर्षिने जो

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ।

इस प्रकार मोक्षमार्ग बतलाया है वह भी इसी क्रमको लक्ष्य कर है।

आत्मतत्त्वका साक्षात्कार होना—अपने स्वरूप की प्रतीति होना—सम्यग्दर्शन है। इसीका नाम आत्म-श्रद्धा भी है। जिसको ऐसा साक्षात्कार—ऐसी प्रतीति—आत्मश्रद्धा होती है वही आत्मवादी कहलाता है। सम्यग्दर्शन प्राप्त आत्माहीको सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति हो सकती है। जिसको यह दिव्य दर्शन हो जाता है, जो अपनी आत्मश्रद्धामें लीन हो जाता है, उसको फिर सर्व चराचर जगत्का ज्ञान हो जाता है। इसीलिये यह कहा जाता है कि—

श्रद्धावान् लभते ज्ञानम् ।

दूसरे शब्दोंमें कहें तो जिसने एक (आत्मा) को जान लिया उसने सब (जगत्) को जान लिया—

जे एगं जाणइ, से सबं जाणइ ।

इस प्रकारका सम्यग्ज्ञानवान् ही 'लोकवादी'

और 'कर्मवादी' कहा जाता है। ऐसा ही ज्ञानी सदाचारी-अर्थात् सम्यक् चारित्रिका पालन करने वाला-होता है। सम्यग्दर्शनी और सम्यग्ज्ञानीका जो आचरण वही सम्यक् चारित्र है। ऐसे ही सम्यक् चारित्रिकी को क्रियावादी कहते हैं।

एवं सम्यग् दर्शन, ज्ञान और चारित्रवान् अथवा आत्मवादी, लोकवादी, कर्मवादी, और क्रियावादी आत्मा ही इस 'जन्ममरणरूप तांतासे बनी हुई जगज्जाल स्वरूप जालसे छुटकारा पाकर मुक्त बन सकता है। वही आत्मा अजर, अमर, और अचल स्वरूपको प्राप्त कर सकता है—सच्चिदानन्द-पूर्ण बन सकता है।

* * *

जिस तरह निर्ग्रन्थ मुनीश्वरका यह प्रवचन परमार्थ-पारलौकिक रहस्यका उद्घोषक है, वैसे व्यावहारिक-इहलोक रहस्यका भी उद्घोषक है। इस प्रवचनमें कहीं गई बात जैसे आत्माके आंतर स्वरूपका विकास-क्रम प्रकट करती है, वैसे इस जगत्क मनुष्य, समाज और देशकी व्यावहारिक दशाका भी विकास-क्रम बतलाती है।

जो कोई मनुष्य, समाज और राष्ट्र 'सज्जा' (चेतन्य) हीन हो कर अपने गतागत यामे भूत-भविष्यका विचार नहीं करता, वह यह नहीं जान सकता कि मेरा भूतकाल कैसा था, वर्तमानमें क्या हालत है और भविष्यमें कैसी दशा होगी। उसे यह नहीं मातृम हो सकता कि, वह किस दशामेंसे समुत्थित हुआ है, किस दशामें विद्यमान है और किस दशामें जा कर लीन होगा। इस प्रकारका 'सज्जा'—शून्य मनुष्य, समाज और राष्ट्र भगवान्के मतसे अनात्मवादी है—अपनी हालतको न जानने वाला अज्ञान है। ऐसे अज्ञान मनुष्य, समाज या राष्ट्रको जगत् (लोक) की स्थितिका कुछ भी ज्ञान नहीं हो सकता और उसे कर्तव्याकर्तव्य (कर्म) का भी कुछ भान नहीं होता। इस तरह वह मनुष्य आदि फिर अन्तमें क्रियाशून्य-उद्यमहीन हो जाता है। वह अक्रियावादी बन जाता है। कर्तव्यशून्य मनुष्य कभी उन्नति नहीं प्राप्त कर सकता। उसकी क्रमशः अवन्ति ही होती जाती है, और अन्तमें नष्ट दशाको प्राप्त होता है।

इसके विपरीत जो मनुष्य, समाज और राष्ट्र 'सज्जा' यानि चेतन्यवाला है और जो अपनी पूर्वापर दशाका विचार करता रहता है—भूत, भविष्य और वर्तमान अवस्थाको सोच करता है—वह आत्मदर्शी (आत्मवादी) कहलाता है। ऐसे आत्मदर्शी मनुष्य आदिको जगत्की परिस्थितिका ठीक ठीक ज्ञान मिलता रहता है और कर्तव्यकर्मका भी उसे पूरा हाल मातृम होता रहता है। निर्ग्रन्थ प्रभु उसको लोकवादी और कर्मवादी कहते हैं। इस प्रकारके विचारवान् और ज्ञानवान् मनुष्य आदि अपनी उन्नतिके लिये क्रियाशील बनता है। क्रियाशील मनुष्य ही इच्छित सुख प्राप्त कर सकता है और दुःखोंसे मुक्त हो सकता है इसीलिये जैनधर्मका यह मुद्रालेख है कि—

ज्ञान-क्रियाभ्यां मोक्षः।

ज्ञान और क्रिया (चारित्र-आचरण) अर्थात् ज्ञानयोग और कर्मयोग इन दोनोंके संयुक्त सामर्थ्यसे मोक्ष मिलता है।

* * *

भगवान् महावीर देवके प्रवचनका यह व्यावहारिक रहस्य जगत्के प्रत्येक व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और धर्मके लिये विचारणीय है। जैनधर्मका तो यह स्वकीय आविष्कृत सिद्धान्त है, इसलिये उस के अनुयायी व्यक्ति और समाजको तो आवश्यक ही इसकी विचारणा करनी चाहिए। जैन तत्त्वज्ञानके कथनानुसार कालका स्वरूप पदार्थमात्रके स्वरूप में परिवर्तन करनेका है। प्रत्येक वस्तुमें, कालके प्रभावसे प्रतिक्षण रूपान्तर होता रहता है। इस नियमानुसार, व्यावहारिक दृष्टिसे विचार किया जाय तो व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और धर्मके स्वरूपमें भी सदैव परिवर्तन-रूपान्तर हुआ ही करता है। जैनधर्म और जैन समाज भी इसी सनातन नियमके स्वाधीन है। रूपान्तर या परिवर्तन जो होता रहता है वह अच्छा ही होता रहता है या बुरा ही होता रहता है, ऐसा कोई विशिष्ट नियम इस जगत्में नहीं देखा जाता। कभी अच्छेका रूपान्तर बुरेके रूपमें होता है, कभी बुरे का भले के रूपमें। कभी तदवस्थ यामे जैसा का वैसा ही होता है। परिवर्तनके अच्छे-बुरेका आधार देश, काल, मनुष्योंका आचार,

व्यवहार, इत्यादि अनेक कारणोंके ऊपर निर्भर है। जो व्याक्ति आदि 'सही' याने विचारवान है वह तो इस देश-काल-कृत परिवर्तनकी दशाओंका निरंतर विचार किया करता है और समयानुसार उचित प्रवृत्ति कर उन्नत होनेकी-प्रगति करनेकी-चेष्टा करता रहता है। इतिहास-शास्त्रका आविष्कार और अध्ययन-अध्यापन इसी लक्ष्यको लेकर प्रवर्तित हुआ है। इस शास्त्रके द्वारा जगत्के धर्म, समाज और राष्ट्रोंका भूतकालीन स्वरूप ज्ञात हो सकता है और उससे वर्तमानिक दशाकी तुलना कर मविष्यद् दशाका अनुमान किया जा सकता है। इतिहासके अध्ययनसे प्रत्येक समाज, धर्म और राष्ट्र अपनी उन्नति-अवनतकी विचार कर सकता है और उसके कार्य-कारण-भावको जान सकता है। इसीलिये जगत्का प्रत्येक सभ्य और शिक्षित जन-समूह अपने अपने इतिहासके अन्वेषण और अध्ययनमें विशेष रूप से प्रवर्तित है। भारतवर्षमें भी अब इस विषयकी ओर शिक्षित मनुष्योंका लक्ष्य खिंचा जा रहा है और दिन-प्रतिदिन इस विषयकी गवेषणा करनेवाले विद्वान् संख्यामें बढ़ते जाते हैं। आज तक जो कुछ भारतवर्षके भूतकालके विषयमें लिखा हुआ है वह पश्चिमीय विद्वानोंहीके पश्चिमका फल है। इन विदेशी लेखकाका एक तो ध्येय ही जुदा था और दूसरी बात यह है कि उन्हाने प्राचीन भारतका अवलोकन, वर्तमान भारतकी अवनत-दशाको आदर्श मानकर किया। इसलिये उनके लेखोंमें और विचारोंमें सत्यकी अपेक्षा संकुचितता अधिक है। सिवाय, उन्होंने भारतके इतिहासका आरंभ वहींसे माना है जहांसे उस के पतनकी शुरुआत हुई है। वास्तविकमें आर्यों-वर्तकी उन्नत अवस्था का इतिहास अभी तक अंधकार ही में विलुप्त है। इसके उद्धारके प्रयत्न अब कहीं कहीं होने लगे हैं।

जैन धर्म भारतवर्षका एक प्रधान धर्म है। इस लिये समुच्चय भारतके इतिहासमें इसका भी बहुत बड़ा हिस्सा है। अतः इसके स्वतंत्र इतिहास के अन्वेषणकी भी उतनी ही आवश्यकता है, जितनी वैदिक और बौद्ध धर्मके इतिहासकी है। जैन धर्मके इतिहासान्वेषणके विना भारतका इतिहास बहुत अंशमें अपूर्ण ही रहेगा।

जैन इतिहासके अन्वेषणके लिये मुख्य क्षेत्र दो हैं—एक साहित्य और दूसरा स्थापत्य। जैन साहित्य प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, कानडी, तामिल, तेलुगु, गुजराती, हिन्दी आदि जैसी भारतकी प्राचीन-अर्वाचीन सबही प्रधान प्रधान भाषाओंमें व्याप्त है। इसी तरह जैन स्थापत्य भी पंजाब, बंगाल, उड़ीसा, मद्रास, हैदराबाद, वन्हाड, कर्नाटक, मध्यभारत, युक्त प्रांत, मेवाड, मारवाड, मालवा, गुजरात, सिंध, कच्छ इत्यादि भारतके सब देशों और प्रदेशोंमें उपलब्ध है। इस प्रकार भारतवर्षीय बहु-भाषा-व्यापी जैन साहित्य और बहु-प्रदेश-व्यापी जैन स्थापत्यको देखते हुए, इस बातका सहज अनुमान हो सकता है कि भूतकालमें जैन धर्मका भारत वर्ष में कितना प्रभाव रहा होगा और उसका इतिहास कितना उज्ज्वल होगा। यह हर्षकी बात है कि, भारत सरकारके पुरातत्त्व-विभागके द्वारा ब्राह्मण और बौद्ध स्थापत्यके साथ साथ जैन स्थापत्यका भी अन्वेषण-संरक्षणादि होता रहता है, और उक्त विभागके विवरणात्मक-पुस्तकों (रिपोर्टों) में तत्संबंधी ऐतिहासिक पर्यलोचन भी यथा समय प्रकट होता रहता है। इस प्रकार कितने एक अंशमें जैन स्थापत्यके उद्धारका तो उद्घाटन हो रहा है; परन्तु, जैन साहित्यके बारेमें अभीतक कोई ऐसी महत्त्ववाली प्रवृत्तिका प्रारंभ कहीं नहीं हुआ है।

उन्नीसवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें कितने एक विद्या-विलासी और निष्पक्ष-अभ्यासी जर्मन विद्वानोंने जैन साहित्यका कितनाक संशोधन-पर्यलोचन किया था, और उसके कारण जैन धर्मके विषयमें जो कितनीक भ्रान्तियां, कुछ पाश्चात्य और उनके अन्ध भक्त पतदेशीय विद्वानोंके बीचमें फैली हुई थीं, वे कई अंशोंमें निकल गईं। परन्तु, जैन समाजकी अज्ञानता और अकर्मण्यताके कारण न तो उन विद्वानोंको कुछ अपने कार्यमें उत्तेजक आश्वासन ही मिला और न प्राचीन और प्रतिष्ठित पुस्तकादि साधन ही मिले। इस लिये जैन साहित्यके विषयमें अभीतक विद्वानोंक न कोई भी महत्त्व-दर्शक विचार ही प्रकट हुए हैं और न कोई जैन साहित्यके जिज्ञासु ही दिखाई देते हैं। संकटों ही विद्वानोंकी तो अभीतक जैन साहित्य कि-तना और कैसा है इसकी कल्पना मात्र भी नहीं है।

भारतके भाग्याकाशमें अब सौभाग्यके सूर्यका उदय होने लगा है और हजारों वर्षोंसे छाई हुई जड़ता (अंधकार) का नाश होने जा रहा है । भारतके संकड़ों ही संप्रत आलस्यका त्याग कर कार्यक्षेत्रमें ऊठ खड़े हुए हैं और भावी अभ्युदयके साथ सत-कालीन गौरवके उद्घाटनमें भी कई दत्तचित्त हो रहे हैं । अनेक सज्जन भारतीय इतिहास और साहित्यके क्षेत्रमें उत्साहपूर्वक कार्य करने लगे हैं और इनमेंसे कोई कोई विद्वान् जैन साहित्यका परिचय प्राप्त करने के लिये भी उत्सुकता दिखाने लगे हैं ।

इधर, जैन समाज भी कुछ कुछ जागृत हो रहा है और अपने साहित्यके संरक्षण और प्रकाशनकी तरफ लक्ष्य लगा रहा है । यद्यपि यह हर्षकी बात है; परंतु, जिनके नेतृत्वमें यह कार्य हो रहा है, उनमें एक तो विचार-संयुचितताकी मात्रा अधिक है और दूसरी बात यह है कि जैन के सिवाय बाहरके जगत्-का उन्हें किंचित् भी परिचय नहीं है—अथवा बहुत ही कम है । इसलिये वर्तमान में जो कुछ साहित्य जैसे जैसे छपकर प्रकट भी हो रहा है—और परिमाणमें यह है भी बहुत कुछ—तो भी अन्य विद्वानोंको उसका दर्शनमात्र भी नहीं होने पाता है । और इस प्रकार विद्वानोंके लिये जैन साहित्यके परिचय करनेका द्वार अभी तक बिलकुल बन्ध ही सा है । ऐसी स्थिति होनेसे, अब ऐसे एक साधनकी बहुत आवश्यकता है कि, जिसके द्वारा जैन साहित्यका, जिज्ञासु विद्वानोंको यथेष्ट परिचय मिलने के साथ विस्तृत स्वरूपभी मालूम होता रहे; और जैन विद्वानोंको जगत् के अन्यान्य विद्वानोंके विचार, परिश्रम, अभ्यासादिकके साथ कतव्य की दिशाका उपयुक्त ज्ञान भी मिलता रहे । इसी आवश्यकताकी किञ्चित् पूर्तिक लिये इस 'जैन साहित्य संशोधक' को जन्म दिया गया है ।

आशा है, कि विश्व लेखक और पाठकगण इस साहित्य, समाज और अंशतः देश-सेवाके पवित्र कार्यमें सहभागी बन कर सबही यथाशक्ति अपने अपने योग्य कर्तव्यका पालन करेंग । तथास्तु ।

सिद्धसेन दिवाकर

और

स्वामी समन्तभद्र ।

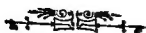
जैनधर्मके प्रमाणशास्त्रके मूल प्रतिष्ठापक आचार्य सिद्धसेन दिवाकर, और आतकी मीमांसा-द्वारा स्याद्वाद (अनेकान्तवाद) का समर्थन करनेवाले स्वामी समन्तभद्र, दोनों जैनधर्मके महान् प्रभावक और समर्थ संरक्षक महात्मा हैं । इन दोनों महापुरुषोंकी कृतियोंके देखनेसे, इनके स्वभाव और प्रभावमें एक सविशेष समानता प्रतीत होती है । दोनोंही निरमात्मा महावीरके सूक्ष्म सिद्धान्तोंका उत्तम स्थिरीकरण किया और भविष्यमें होनेवाले प्रतिद्विष्टोंके कर्कश तर्कप्रहारसे जैनदर्शनकी अक्षुण्ण रखनेके लिये अमोघ-शास्त्रिकाली प्रमाण-शास्त्रका सुदृढ़ संकलन किया ।

इन्हीं दोनों महावाकियों द्वारा सुप्रतिष्ठित जैनतर्ककी मूल भित्तियों पर महावादी, अजितयशा, हरिभद्र, अकलंक, विद्यानन्, माणिक्यनन्दि, प्रभाचन्द्र, असु-तचन्द्र, अनन्तवीर्य, अमरवैद्य, शान्तिसूरि, जिनेश्वर, वादी वैश्वसूरि, हेमचन्द्रसूरि, मद्भिषेण, गुणरत्न, धर्मभूषण और यशोविजय आदि समर्थ जैन नैयायिकोंने बड़े बड़े तर्कग्रन्थोंके विशाल और दुर्गम दुर्गोंका निर्माण कर जैनधर्मके तात्त्विक साम्राज्यको इतर वादीरूप परचक्रके लिये अजेय बनाया है ।

हमें अभी तक यह पूर्णतया निश्चित ज्ञात नहीं हुआ है कि ये दोनों महापुरुष कब और किस संप्रदाय में हुए हैं, परंतु पूर्वपरंपरासे जो मान्यता चली आ रही है उसके आशयानुसार यह कह सकते हैं कि सिद्धसेन दिवाकर तो श्वेताम्बर-संप्रदायमें, विक्रमराजाके समयमें, और स्वामी समन्तभद्र दिगम्बर-संप्रदायमें, विक्रमकी दूसरी शताब्दीमें हुए हैं ।

→→ सिद्धसेन दिवाकर । ←←

दन्तकथाके कथनानुसार सिद्धसेन विक्रमराजाके—जिसके नामसे भारतवर्षका सुप्रसिद्ध सवंत् चलता है—गुरु थे । ऐतिहासिकोंने भी इस कथनमें कुछ तथ्य स्वीकार किया है और 'ज्योतिर्विदाभरण' के



‘धन्वन्तरिक्षपणकामरसिद्धशङ्कु-
वतालभट्टघटखर्परवालिदासा’ ।

रुपातो वराहमिहिरौ नृपतेः सभायां
रत्नाग्निं वे वरुचिर्नयं विक्रमस्य ॥’

इस श्लोकमें क्षपणक नामसे जिस व्यक्तिको विक्रमराजाकी सभाके नौ रत्नोंमेंसे एक रत्न बतलाया है वह सिद्धसेन दिवाकर ही होना चाहिए, ऐसा अनुमान किया गया है । यहाँ पर हमें इस कथनकी ऐतिहासिक सत्यासत्यताका विचार नहीं करना है, इसलिये इस विषयमें हम अपना कुछ भी अभिप्राय प्रकट करना नहीं चाहते । हमारे इस लेखका उद्देश्य केवल सिद्धसेन और समन्तभद्रकी परस्पर कुछ तुलना और उनके सामर्थ्यके बारेमें किञ्चित् वक्तव्य प्रकट करना है ।

उपलब्ध जैनयाद्वयका सूक्ष्मता के साथ निरीक्षण करनेसे पता लगता है कि सिद्धसेनसे पहले जैनदर्शनमें तर्कशास्त्रविषयक कोई स्वतंत्र सिद्धान्त प्रचलित नहीं था । उनके पूर्वमें प्रमाण-शास्त्रविषयक बातें केवल आगम-ग्रन्थोंहीमें, अस्पष्ट रूपसे संकलित थीं, और उस समयतक उन बातोंका कुछ अधिक प्रयोजन भी नहीं था । सिद्धसेनसूरिके पहलेका जमाना तर्क-प्रधान नहीं था किन्तु आगम-प्रधान था । आत्म-पुरुषका कथन मात्र ही तबतक सर्वथा शिरोधार्य समझा जाता था । जैनधर्मके सहचर ब्राह्मण और बौद्धधर्मकी भी यही अवस्था थी । परंतु महर्षि गौतमके ‘न्यायसूत्र’ के संकलनके बाद धीरे धीरे तर्कका जोर बढ़ने लगा और जुदा जुदा दर्शनोंके विचारोंका समर्थन करनेके लिये स्वतंत्र सिद्धान्तोंकी रचना होने लगी । लगभग उसी समयमें भगवान् गौतमशुद्धका साम्यवाद और मध्यममार्ग ब्राह्मणोंके कर्मजालसे संत्रस्त हुए साधारण लोगोंमें अधिक आदर पाने लगा था और योंदेही समयमें उसने सम्राट्के सिंहासन तकको भी अपना अनुयायी बना लेनेकी महत्ता प्राप्त कर ली थी ।

इस प्रकार बौद्धधर्मके बढ़ते जाते प्रभावकी देखकर कुछ मनस्वी ब्राह्मणोंने शुद्धदेवके सरल और

सीधे साधे वचनोंको युक्तिशून्य और प्राकृतजनप्रिय मात्र बतलानेके उद्योगका आरंभ किया । महर्षि गौतम उन्हीं मनस्वी ब्राह्मणोंके नेता थे । शुद्धिमान भिक्षुओं (बौद्धश्रमणों) को जब इस उद्योगके रहस्यका पता लग गया तब उन्होंने भी अपने आतके नामधारी गौतममुनिके तर्कजालके फंदेमें न फँसनेकी सावधानीका रास्ता ढूँढना शुरू किया । केवल लोकहितकी दृष्टिसे, प्रचलित लोकभाषामें, आवाल-गोपालको बोध करनेके लिये रचे गये पाली पिटकोंके पारायणसे भिक्षुकगणकी जब, ताकिक ब्राह्मणोंके तर्कप्रपञ्चका समाधान करनेमें समर्थ होते न देखा तब, आर्य नागार्जुन नामक प्रतिभाशाली महाश्रमणने शून्यवादी रथापनाके लिये गूढ़ विचार-गर्भित मध्यमावतारका प्रणयन किया । जिस तर्क-पद्धतिसे ब्राह्मण विद्वान् श्रमणोंके सरल विचारोंपर कठिन कटाक्ष किया करते थे, श्रमण विद्वान भी अब उसी पद्धतिसे अपने ‘मायावाद’ के अदृश्य बाण ब्राह्मणोंके ऊपर चलाने लगे । इस प्रकार ब्राह्मण और बौद्ध विद्वानोंमें तर्कशास्त्रीय युद्ध बढ़ता गया, और शनैः शनैः श्रमणसमूह इस विषय में अधिकाधिक उन्नति प्राप्त करता गया । उसमें आचार्य विमला आदि बड़े बड़े न्यायविद् श्रमण उत्पन्न हुए और उन्होंने शाक्यसूनु भगवान् शुद्धके प्राकृतजनप्रिय सरल सिद्धान्तोंको विद्वानोंके लिये भी साधारणतः दुर्गम तथा गूढ़ बना दिये और उनकी गुत्थी सुलझानेके लिये अपने प्रतिपक्षियोंको चिरकाल तक विवश किया ।

ब्राह्मणों और श्रमणोंके बीचमें होनेवाले इस वा-ग्युद्धकी शब्दध्वनि निर्जनवनोंमें घूमनेवाले जैन निर्गन्धोंके कानोंतक भी जा पहुँची । ध्यानमग्न निर्गन्ध इस ध्वनिके मतलबको समझनेका प्रयत्न कर ही रहे थे कि इतनेमें स्वयं ज्ञातपुत्र भगवान् महावीरके ‘मोक्षमार्ग’ का उपहास सूचित करनेवाले शब्द भी उन्हें अस्फुट रीतिसे सुनाई देने लगे । इस स्थितिका विचार कर, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावके ज्ञाता ‘क्षपणक’ (जैन श्रमण या निर्गन्ध) भी अपनी ‘शासनरक्षा’ का उपाय सोचने लगे । बौद्ध श्रमण ‘शून्यवाद’ के सिद्धान्तकी जिस तर्कपद्धति द्वारा प्रबल और व्यवस्थित बनाते हुए शुद्धदेवके शासनको स्थिर

— देखो, डॉ० सतीशचन्द्र विद्याभूषणलिखित ‘न्यायावतार’की भूमिका तथा ‘मध्यकालीन भारतीय न्यायशास्त्र’ इतिहास ।’

वनति जा रहे थे, उसी पद्धतिका आश्रय ले कर निर्ग्रन्थ क्षणकोंने भी 'स्याद्वाद' के सिद्धान्तको समर्थ और सुस्थित बनाकर महावीरदेवके शासनकी अचल वनानेका निश्चय किया। उन्होंने सोचा कि पाली पिटकोंके पारायण मात्रसे जिस प्रकार बौद्ध भ्रमण अपने शासनका संरक्षण करनेमें समर्थ नहीं हुए, उसी प्रकार प्राकृत आगमोंके प्रवचन मात्रसे जैन निर्ग्रन्थोंका 'मोक्षमार्ग' भी अब निर्भय नहीं रह सकता। इस लिये तर्कप्रधान प्रकरणग्रंथोंका प्रणयन करना अत्यावश्यक है।

इन्हीं निर्ग्रन्थोंमेंसे, सबसे प्रथम आचार्य उमास्वयति (भी) ने तत्त्वार्थाधिगम सूत्रकी रचना कर समग्र जैनतत्त्वोंको एकत्र संगृहीत किया। अपने जीवनमें ये इस कार्यको पूर्ण करके पिछले प्रतिभाशाली क्षणकोंके लिये ऐसी सूचना कर गये कि इन संगृहीत जैनतत्त्वोंके अर्थ प्रमाण और नयके द्वारा निश्चित करने चाहिये—(प्रमाण नयैरधिगमः)। 'मोक्षशास्त्र' के रचयिता महापैकी इस अर्थपूर्ण सूचनाके महत्त्वको समझ कर जिन पिछले महामति क्षणकोंने इस दिशामें प्रयत्न करना शुरू किया और प्रमाण और नयकी व्यवस्था करनेके लिये नवीन शास्त्ररचना करनी शुरू की, सिद्धसेन दिवाकर उन्हीं सबके प्रधान अग्रणी हैं। उन्होंने ही सबसे पहले 'न्यायायतार' नामक तर्कप्रकरणकी रचना कर 'जैन प्रमाण' का पाया स्थिर किया और 'सम्प्रति प्रकरण' नामक महातर्कग्रन्थका प्रणयन कर 'नयवाद' का मूल ढ़ड किया।

सिद्धसेन दिवाकरकी कृतियोंके अवलोकनसे मालूम पड़ता है कि ये बड़े स्पष्टभाषी और स्वतंत्र विचारके उपासक थे। प्रकृतिसे वे बड़े तेजस्वी थे और प्रतिभासे 'श्रुत्येकवली' थे। उनकी कृतियोंमें जो स्वतंत्र विचारकी झलक दिखाई दे रही है वह अन्य किसीकी भी कृतियोंमें नहीं। साक्षात् उनके ग्रन्थोंके देखनेसे, तथा पिछले ग्रंथकारोंने उनके विषयमें जो उल्लेख किये हैं उनके पढ़नेसे, ज्ञात होता है, कि जैनधर्मके कितने एक परंपरागत विचारोंसे सिद्धसेनके विचार भिन्नत्व रखते थे। पूर्वकालीन तथा समकालीन अन्यान्य जैन विद्वानोंके विचारोंमें और सिद्धसेनसूरिके विचारोंमें परस्पर बहुत कुछ उल्लेख-योग्य मतभेद था। विवा-

करजी साक्षात् जैनसूत्रोंके-जैनागमोंके-कथनको भी अपनी तर्कबुद्धिकी कसौटीपर कसकर तदनुकूल उसका अर्थ किया करते थे। केवल पूर्वपरंपरासे चले आने अथवा पूर्वाचार्योंकी स्वीकृत होनेहीके कारण वे किसी सिद्धान्तको शिरोधार्य नहीं कर लेते थे। शुक्तियुक्त घातहीका वे स्वीकार किया करते थे, चाहे वह पूर्वाचार्योंको सम्मत हो या न हो।

जिस तरह वर्तमानमें बहुधा देखा जाता है कि कोई भी स्वतंत्र विचारक किसी भी पूर्वपरंपरासे चली आती हुई बातमें कुछ 'ननु नच' करता है, या उसके प्रतिकूल कुछ अर्थ या अभिप्राय प्रदर्शित करता है, तो इत बहुतसे गतानुगतिक और लकीरके फकीर बने हुए पण्डितमन्य महाशय एकदम चिन्हा उठते हैं कि, 'यह बात तो शास्त्रविरुद्ध है, यह अभिप्राय तो परंपरा-प्रचलित अभिप्रायसे प्रतिकूल है।' उसीतरह शायद दिवाकरजीके जमानेमें भी चलता रहा होगा। उनके कितने ही उद्गारोंसे मालूम पड़ता है कि जब कभी वे कोई पूर्वपरंपरासे अथवा पूर्वाचार्योंके मतसे भिन्नार्थक विचार प्रदर्शित करते होंगे तब बहुतसे पुराणप्रिय पण्डित उनके नवीन विचारका प्रतिरोध करते हुए यही दलील देते होंगे कि—“महाराज, आपके विचारतो पूर्वाचार्योंके विचारसे विरुद्ध जाते हैं, क्या आप पूर्वपुरुषोंसे अधिक ज्ञानवान हैं, जो उनके कथनमें शंका उपस्थित करते हैं? क्या आपके जैसी शंका उनको नहीं करनी आती थी? ” इत्यादि। ऐसे ही 'श्रुतवृद्धगौरव', प्रिय पण्डितोंका मुख सुन्नित करने के लिये दिवाकरजीने एक द्वात्रिंश का—में बड़ी ही मार्मिकताके साथ अपने हृदयका जोश प्रकट करते हुए निम्न श्लोक कहा है—

— बनीस पयोका जो एक प्रकरण होता है उसे द्वात्रिंशिका कहते हैं। कहा जाता है कि सिद्धसेन दिवाकरने ३२-३२ पयोवाली ऐसी ३२ द्वात्रिंशिकायें बनाई थीं। प्रसिद्ध ग्रंथ 'न्यायायतार' भी इन्हीं द्वात्रिंशत्-द्वात्रिंशिकाओंमेंसे एक द्वात्रिंशिकारूप है। वर्तमानमें ये सब ३२ ही द्वात्रिंशिकाएँ उपलब्ध नहीं होतीं। भावनागरकी 'जैनधर्मप्रसारक सभा' ने 'सिद्धसेन ग्रंथमाला' सहित कुल २१ द्वात्रिंशिकायें ही मिलती हैं। भावनागरकी 'जैनधर्मप्रसारक सभा' ने 'सिद्धसेन ग्रंथमाला' के नामसे इन द्वात्रिंशिकाओं और 'सम्प्रतिप्रकरण'को मूल रूपमें उधवा कर प्रगट कर दिया है। सिद्धसेनसूरिकी ये द्वात्रिंशिकायें बहुत ही शुद्ध और गभीरार्थक हैं। इनको ऊपर ऊपरसे हमने पढ़े

व्यवहार, इत्यादि अनेक कारणोंके ऊपर निर्भर है। जो व्यापकी आदि 'सह्य' याने विचारवान् है वह तो इस देश-काल-कृत परिवर्तनकी दशाओंका निरंतर विचार किया करता है और समयानुसार उचित प्रवृत्ति कर उन्नत होनेकी-प्रगति करनेकी-चेष्टा करता रहता है। इतिहास-शास्त्रका आविष्कार और अध्ययन-अध्यापन इसी लक्ष्यको लेकर प्रवर्तित हुआ है। इस शास्त्रके द्वारा जगत्के धर्म, समाज और राष्ट्रांका भूतकालीन स्वरूप ज्ञात हो सकता है और उससे वर्तमानिक दशाकी तुलना कर भविष्यद् दशाका अनुमान किया जा सकता है। इतिहासके अध्ययनसे प्रत्येक समाज, धर्म और राष्ट्र अपनी उन्नति-अनुनातिका विचार कर सकता है और उसके कार्य-कारण-भावको जान सकता है। इसीलिये जगत्का प्रत्येक सम्य और शिक्षित जन-समूह अपने अपने इतिहासके अन्वेषण और अध्ययनमें विदोष रूप से प्रवर्तित है। भारतवर्षमें भी अब इस विषयकी ओर शिक्षित मनुष्योंका लक्ष्य खींचा जा रहा है और दिन-प्रतिदिन इस विषयकी गवेषणा करनेवाले विद्वान् संख्यामें बढ़ते जाते हैं।

आज तक जो कुछ भारतवर्षके भूतकालके विषयमें लिखा हुआ है वह पश्चिमीय विद्वानोंहीके परिश्रमका फल है। इन विदेशी लेखकाका एक तो ध्येय ही जुदा था और दूसरी बात यह है कि उन्होंने प्राचीन भारतका अवलोकन, वर्तमान भारतकी अवगत-दशाको आदर्श मानकर किया। इसीलिये उनके लेखोंमें और विचारोंमें सत्यकी अपेक्षा संकुचितता अधिक है। सिवाय, उन्होंने भारतके इतिहासका आरंभ वहींसे माना है जहांसे उस के पतनकी शुरुआत हुई है। वास्तविकमें आर्या-वर्तकी उन्नत अवस्था का इतिहास अभी तक अंधकार ही में विलुप्त है। इसके उद्धारके प्रयत्न अब कहीं कहीं होने लगे हैं।

जैन धर्म भारतवर्षका एक प्रधान धर्म है। इस लिये समुच्चय भारतके इतिहासमें इसका भी बहुत बड़ा हिस्सा है। अतः इसके स्वतंत्र इतिहासके अन्वेषणकी भी उतनी ही आवश्यकता है, जितनी वैदिक और बौद्ध धर्मके इतिहासकी है। जैन धर्मके इतिहासान्वेषणके विना भारतका इतिहास बहुत अंशमें अपूर्ण ही रहेगा।

जैन इतिहासके अन्वेषणके लिये मुख्य क्षेत्र दो हैं—एक साहित्य और दूसरा स्थापत्य। जैन साहित्य प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, कानडी, तामिल, तेलगु, गुजराती, हिन्दी आदि जैसी भारतकी प्राचीन-अर्वाचीन सबही प्रधान प्रधान भाषाओंमें व्याप्त है। इसी तरह जैन स्थापत्य भी पंजाब, बंगाल, उड़ीसा, मद्रास, हैदराबाद, वन्हाड, कर्नाटक, मध्यभारत, युक्त प्रांत, मेवाड, मारवाड, मालवा, गुजरात, सिंध, कच्छ इत्यादि भारतके सब देशों और प्रदेशोंमें उपलब्ध है। इस प्रकार भारतवर्षीय बहु-भाषा-व्यापी जैन साहित्य और बहु-प्रदेश-व्यापी जैन स्थापत्यकी देखते हुए, इस बातका सहज अनुमान हो सकता है कि भूतकालमें जैन धर्मका भारत वर्ष में कितना प्रभाव रहा होगा और उसका इतिहास कितना उज्ज्वल होगा। यह हर्षकी बात है कि, भारत सरकारके पुरातत्त्व-विभागके द्वारा ब्राह्मण और बौद्ध स्थापत्यके साथ साथ जैन स्थापत्यका भी अन्वेषण-संरक्षणादि होता रहता है, और उक्त विभागके विवरणात्मक-पुस्तकों (रिपोर्टों) में तत्संबंधी पेशिहासिक पयोलोचन भी यथा समय प्रकट होता रहता है। इस प्रकार कितने एक अंशमें जैन स्थापत्यके उद्धारका तो उद्घाटन हो रहा है। परन्तु, जैन साहित्यके बारेमें अभीतक कोई ऐसी महत्त्ववाली प्रवृत्तिका प्रारंभ कहीं नहीं हुआ है।

उन्नीसवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें कितने एक विद्या-विलासी और निष्पक्ष-अप्यासी जर्मन विद्वानोंने जैन साहित्यका कितनाक संशोधन-पर्यालोचन किया था, और उसके कारण जैन धर्मके विषयमें जो कितनीक भ्रान्तियां, कुछ पाश्चात्य और उनके अन्ध भक्तपुष्टदेशीय विद्वानोंके बीचमें फैली हुई थीं, वे कई अंशोंमें निकल गईं। परन्तु, जैन समाजकी अज्ञानता और अकर्मण्यताके कारण न तो उन विद्वानोंको कुछ अपने कार्यमें उत्तेजक आश्वासन ही मिला और न प्राचीन और प्रतिष्ठित पुस्तकादि साधन ही मिले। इस लिये जैन साहित्यके विषयमें अभीतक विद्वानोंके न कोई भी महत्त्व-दर्शक विचार ही प्रकट हुए हैं और न कोई जैन साहित्यके ज्ञानार्थ ही दिखाने देते हैं। संकटों ही विद्वानोंकी तो अभीतक जैन साहित्य कितना और कैसा है इसकी कल्पना मात्र भी नहीं है।

भारतके भाग्याकाशमें अब सौभाग्यके सूर्यका उदय होने लगा है और हजारों वर्षोंसे छाई हुई जडता (अंधकार) का नाश होने जा रहा है । भारतके सैकड़ों ही संप्रत आलस्यका त्याग कर कार्यक्षेत्रमें ऊठ खड़े हुए हैं और भावी अभ्युदयके साथ भूत-कालीन गौरवके उद्घाटनमें भी कई दृष्टांत हो रहे हैं । अनेक सज्जन भारतीय इतिहास और साहित्यके क्षेत्रमें उत्साहपूर्वक कार्य करने लगे हैं और इनमेंसे कोई कोई विद्वान् जैन साहित्यका परिचय प्राप्त करने के लिये भी उत्सुकता दिखाने लगे हैं ।

इधर, जैन समाज भी कुछ कुछ जागृत हो रहा है और अपने साहित्यके संरक्षण और प्रकाशनकी तरफ लक्ष्य लगा रहा है । यद्यपि यह हर्षकी बात है; परंतु, जिनके नेतृत्वमें यह कार्य हो रहा है, उनमें एक तो विचार-संयुक्तताकी मात्रा अधिक है और दूसरी बात यह है कि जैन के सिवाय बाहरके जगत् का उन्हें किंचित् भी परिचय नहीं है—अथवा बहुत ही कम है । इसलिये वर्तमान में जो कुछ साहित्य जैसे जैसे छपकर प्रकट भी हो रहा है—और परिमाणमें यह है भी बहुत कुछ—तो भी अन्य विद्वानोंको उसका दर्शनमात्र भी नहीं होने पाता है । और इस प्रकार विद्वानोंके लिये जैन साहित्यके परिचय करनेका द्वार अभी तक बिलकुल बन्ध ही सा है । ऐसी स्थिति होनेसे, अब ऐसे एक साधनकी बहुत आवश्यकता है कि, जिसके द्वारा जैन साहित्यका, जिज्ञासु विद्वानोंको यथेष्ट परिचय मिलने के साथ विलुप्त स्वरूपभी मालूम होता रहे; और जैन विद्वानोंको जगत् के अन्यान्य विद्वानोंके विचार, परिश्रम, अभ्यासादिकके साथ कतव्य की दिशाका उपयुक्त ज्ञान भी मिलता रहे । इसी आवश्यकताकी किञ्चित् पूर्तिक लिये इस 'जैन साहित्य संशोधक' की जन्म दिया गया है ।

आशा है, कि विज्ञ-लेखक और पाठकगण इस साहित्य, समाज और अंशतः देश-सेवाके पवित्र कार्यमें सहभागी बन कर सबही यथाशक्ति अपने अपने योग्य कर्तव्यका पालन करेंगे । तथास्तु ।

सिद्धसेन दिवाकर

और

स्वामी समन्तभद्र ।

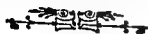
जैनधर्मके प्रमाणशास्त्रके मूल प्रतिष्ठापक आचार्य सिद्धसेन दिवाकर, और आतकी मीमांसा-द्वारा स्याद्वाद (अनेकान्तवाद) का समर्थन करनेवाले स्वामी समन्तभद्र, दोनों जैनधर्मके महान् प्रभावक और समर्थ संरक्षक महात्मा हैं । इन दोनों महापुरुषोंकी कृतियोंके देखनेसे, इनके स्वभाव और प्रभावमें एक सविशेष समानता प्रतीत होती है । दोनोंहिनि परमात्मा महावीरके सूक्ष्म सिद्धान्तोंका उत्तम स्थिरीकरण किया और भविष्यमें होनेवाले प्रतिपक्षियोंके कर्कश तर्कप्रहारसे जैनदर्शनकी अक्षुण्ण रखनेके लिये अमोघ-शक्तिशाली प्रमाण-शास्त्रका सुदृढ़ संकलन किया ।

इन्हीं दोनों महाकावियों द्वारा सुप्रतिष्ठित जैनतर्ककी मूल भित्तियों पर मल्लवादी, अजितयशा, हरिभद्र, अकलंक, विद्यानन्द, माणिक्यनन्दि, प्रभाचन्द्र, अमृतचन्द्र, अनन्तवीर्य, अभयदेव, ज्ञान्तिसूरि, जिनेश्वर, वादी देवसूरि, हेमचन्द्रसूरि, मल्लिषेण, गुणरत्न, धर्मभूषण और यशोविजय आदि समर्थ जैन नैयायिकोंने बड़े बड़े तर्कग्रन्थोंके विशाल और दुर्गम दुर्गोंका निर्माण कर जैनधर्मके तात्त्विक साम्राज्यको शतर वारिद्वार परचक्रके लिये अजेय बनाया है ।

हमें अभी तक यह पूर्णतया निश्चित ज्ञात नहीं हुआ है कि ये दोनों महापुरुष कब और किस संप्रदाय में हुए हैं, परंतु पूर्वपरंपरासे जो मान्यता चली आ रही है उसके आशयानुसार यह कह सकते हैं कि सिद्धसेन दिवाकर तो श्वेताम्बर-संप्रदायमें, विक्रमराजाके समयमें, और स्वामी समन्तभद्र दिगम्बर-संप्रदायमें, विक्रमकी दूसरी शताब्दीमें हुए हैं ।

→ सिद्धसेन दिवाकर । ←

वन्तकथाके कथनानुसार सिद्धसेन विक्रमराजाके-जिसके नामसे भारतवर्षका सुप्रसिद्ध सवंत् चलता है—गुरु थे । ऐतिहासिकोंने भी इस कथनमें कुछ तथ्य स्वीकार किया है और 'ज्योतिविदाभरण' के



‘धन्यतरिक्षपणकामरसिंहशङ्कु-
वेतालभट्टघटसर्परकालिदासाः ।

ख्याता बराहमहिरो नृपतेः सभायां
रत्नानि धे वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥’

इस श्लोकमें क्षपणक नामसे जिस व्यक्तिको विक्रमराजाकी सभाके नौ रत्नोंमेंसे एक रत्न बतलाया है वह सिद्धसेन दिवाकर ही होना चाहिए, ऐसा अनुमान किया गया है । यहाँ पर हमें इस कथनकी ऐतिहासिक सत्यासत्यताका विचार नहीं करना है, इसलिये इस विषयमें हम अपना कुछ भी अभिप्राय प्रकट करना नहीं चाहते । हमारे इस लेखका उद्देश्य केवल सिद्धसेन और समन्तभद्रकी परस्पर कुछ तुलना और उनके सामर्थ्यके बारेमें किञ्चित् यत्नय प्रकट करना है ।

उपलब्ध जैनवाङ्मयका सूक्ष्मता के साथ निरीक्षण करनेसे पता लगता है कि सिद्धसेनसे पहले जैनदर्शनमें तर्कशास्त्रविषयक कोई स्वतंत्र सिद्धान्त प्रचलित नहीं था । उनके पूर्वमें प्रमाण-शास्त्रविषयक बातें केवल आगम-ग्रन्थोंहीमें, अस्पष्ट रूपसे संकलित थीं, और उस समयतक उन बातोंका कुछ अधिक प्रयोजन भी नहीं था । सिद्धसेनसूरिके पहलेका जमाना तर्क-प्रधान नहीं था किन्तु आगम-प्रधान था । आत्म-पुरुषका कथन मात्र ही तत्काल सर्वथा शिरोधार्य समझा जाता था । जैनधर्मके सहचर ब्राह्मण और बौद्धधर्मकी भी यही अवस्था थी । परंतु महर्षि गौतमके ‘न्यायसूत्र’ के संकलनके बाद धीरे धीरे तर्कका जोर बढ़ने लगा और जुड़ा जुड़ा दर्शनोंके विचारोंका समर्थन करनेके लिये स्वतंत्र सिद्धान्तोंकी रचना होने लगी । लगभग उसी समयमें भगवान् गौतमबुद्धका साम्यवाद और मध्यममार्ग ब्राह्मणोंके कर्मजालसे संज्ञस्त हुए साधारण लोगोंमें अधिक आदर पाने लगा था और थोड़ीही समयमें उसने सम्राट्के सिंहासन तककी भी अपना अनुयायी बना लेनेकी महत्ता प्राप्त कर ली थी ।

इस प्रकार बौद्धधर्मके बढ़ते जाते प्रभावको देखकर कुछ मनस्वी ब्राह्मणोंने बुद्धदेवके सरल और

सीधे साधे वचनोंको युक्तिशून्य और प्राकृतजनप्रिय मात्र बतलानेके उद्योगका आरंभ किया । महर्षि गौतम उन्हीं मनस्वी ब्राह्मणोंके नेता थे । युद्धिमान भिक्षुओं (बौद्धश्रमणों) को जब इस उद्योगके रहस्यका पता लग गया तब उन्होंने भी अपने आत्मे नामधारी गौतममुनिके तर्कजालके फंदेमें न फँसनेकी सावधानीका रास्ता ढूँढना शुरू किया । केवल लोकहितकी दृष्टिसे, प्रचलित लोकभाषामें, आबाल-गोपालको बोध करनेके लिये रचे गये पाली पिटकोंके पारायणसे भिक्षुकगणको जब, तार्किक ब्राह्मणोंके तर्कप्रपञ्चका समाधान करनेमें समर्थ होते न देखा तब, आर्य नागार्जुन नामक प्रतिभाशाली महाश्रमणने शून्यवादकी स्थापनाके लिये गूढ़ विचार-गर्भित मध्यमावतारका प्रणयन किया । जिस तर्क-पद्धतिसे ब्राह्मण विद्वान् श्रमणोंके सरल विचारोंपर कठिन कटाक्ष किया करते थे, श्रमण विद्वान् भी अब उसी पद्धतिसे अपने ‘मायावाद’ के अदृश्य बाण ब्राह्मणोंके ऊपर चलाने लगे । इस प्रकार ब्राह्मण और बौद्ध विद्वानोंमें तर्कशास्त्रीय युद्ध बढ़ता गया, और शनैः शनैः श्रमणसमूह इस विषय में अधिकाधिक उन्नति प्राप्त करता गया । उसमें आचार्य विभाग आविर्भूत बड़े बड़े न्यायवित् श्रमण उत्पन्न हुए और उन्होंने शाक्यसूनु भगवान् बुद्धके प्राकृतजनप्रिय सरल सिद्धान्तोंको विद्वानोंके लिये भी साधारणतः दुर्गम तथा गूढ़ बना दिये और उनकी गुत्थी सुलझानेके लिये अपने प्रतिपक्षियोंको चिरकाल तक विवश किया ।

ब्राह्मणों और श्रमणोंके बीचमें होनेवाले इस वाग्युद्धकी शब्दध्वनि निर्जनवनोमें घूमनेवाले जैन निर्ग्रन्थोंके कानोंतक भी जा पहुँची । ध्यानमग्न निर्ग्रन्थ इस ध्वनिके मतलबको समझनेका प्रयत्न कर ही रहे थे कि इतनेमें स्वर्ग ज्ञातपुत्र भगवान् महावीरके ‘मोक्षमार्ग’ का उपहास सूचित करनेवाले शब्द भी उन्हें अस्फुट रीतिसे सुनाई देने लगे । इस स्थितिका विचार कर, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावके ज्ञाता ‘क्षपणक’ (जैन श्रमण या निर्ग्रन्थ) भी अपनी ‘शासनरक्षा’ का उपाय सोचने लगे । बौद्ध श्रमण ‘शून्यवाद’ के सिद्धान्तको जिस तर्कपद्धति द्वारा प्रबल और व्यवस्थित बनाते हुए बुद्धदेवके शासनकी स्थिर

— देवा, डॉ० सतीशचन्द्र विद्याभूषणलिखित ‘न्याय-वतार’की भूमिका तथा ‘मध्यकालीन भारतीय न्यायशास्त्रका इतिहास ।’

बनाते जा रहे थे, उसी पद्धतिका आश्रय ले कर निर्ग्रन्थ क्षणकोने भी 'स्याद्वाद' के सिद्धान्तको समर्थ और सुस्थित बनाकर महावीरदेवके शासनको अचल बनानेका निश्चय किया। उन्होंने सोचा कि पाली पिटकोंके पारायण मात्रसे जिस प्रकार बौद्ध भ्रमण अपने शासनका संरक्षण करनेमें समर्थ नहीं हुए, उसी प्रकार प्राकृत आगमोंके प्रवचन मात्रसे जैन निर्ग्रन्थोंका 'मोक्षमार्ग' भी अब निर्भय नहीं रह सकता। इस लिये तर्कप्रधान प्रकरणग्रंथोंका प्रणयन करना अत्यावश्यक है।

इन्हीं निर्ग्रन्थोंमेंसे, सबसे प्रथम आचार्य उमास्वामि (भी) ने तत्त्वार्थाधिगम सूत्रकी रचना कर समग्र जैनतत्त्वोंको एकत्र संगृहीत किया। अपने जीवनमें वे इस कार्यको पूर्ण करके पिछले प्रतिभाशाली क्षणकोंके लिये ऐसी सूचना कर गये कि इन संगृहीत जैनतत्त्वोंके अर्थ प्रमाण और नयके द्वारा निश्चित करने चाहिये (—प्रमाण नयैराधिगमः)। 'मोक्षशास्त्र' के रचयिता महापंडित इस अर्थपूर्ण सूचनाके महत्त्वको समझ कर जिन पिछले महाप्रति क्षणकोंने इस दिशामें प्रयत्न करना शुरू किया और प्रमाण और नयकी व्यवस्था करनेके लिये नवीन शास्त्ररचना करनी शुरू की, सिद्धसेन दिवाकर उन्हीं सबके प्रधान अग्रणी हैं। उन्होंने ही सबसे पहले 'न्यायावतार' नामक तर्कप्रकरणकी रचना कर 'जैन प्रमाण' का पाया स्थिर किया और 'सम्प्रति प्रकरण' नामक महातर्कग्रन्थका प्रणयन कर 'नयवाद' का मूल दृढ़ किया।

सिद्धसेन दिवाकरकी कृतियोंके अवलोकनसे मालूम पड़ता है कि ये बड़े स्पष्टभाषी और स्वतंत्र विचारके उपासक थे। प्रकृतिसंवेदके तेजस्वी थे और प्रतिभासे 'धृतकेयली' थे। उनकी कृतियोंमें जो स्वतंत्र विचारकी झलक दिखाई दे रही है वह अन्य किसीकी भी कृतिमें नहीं। साक्षात् उनके ग्रन्थोंके देखनेसे, तथा पिछले ग्रंथकारोंने उनके विषयमें जो उल्लेख किये हैं उनके पढ़नेसे, ज्ञात होता है, कि जैनधर्मके कितने एक परंपरागत विचारोंसे सिद्धसेनके विचार भिन्नत्व रखते थे। पूर्वकालीन तथा समकालीन अन्यान्य जैन विद्वानोंके विचारोंमें और सिद्धसेनसूत्रिके विचारोंमें परस्पर बहुत कुछ उल्लेख-योग्य मतभेद था। विवा-

करजी साक्षात् जैनसूत्रांके-जैनागमोंके-कथनका भी अपनी तर्कसुद्धिकी कसौटीपर कसकर तदनुकूल उसका अर्थ किया करते थे। केवल पूर्वपरंपरासे चले आने अथवा पूर्वाचार्योंको स्वीकृत होनेहीके कारण वे किसी सिद्धान्तको शिरोधार्य नहीं कर लेते थे। युक्तियुक्त बातहीका वे स्वीकार किया करते थे, चाहे वह पूर्वाचार्योंको सम्मत हो या न हो।

जिस तरह वर्तमानमें बहुधा देखा जाता है कि कोई भी स्वतंत्र विचारक किसी भी पूर्वपरंपरासे चली आती हुई बातमें कुछ 'ननु नच' करता है, या उसके प्रतिकूल कुछ अर्थ या अभिप्राय प्रदर्शित करता है, तो श्रद्धा बहुतसे गतानुगतिक और लकीरके फकीर बने हुए पण्डितमन्य महाशय एकदम चिल्ला उठते हैं कि, 'यह बात तो शास्त्रविरुद्ध है, यह अभिप्राय तो परंपरा-प्रचलित अभिप्रायसे प्रतिकूल है।' उसीतरह शायद दिवाकरजीके जमानेमें भी चलता रहा होगा। उनके कितने ही उद्गारांसे मालूम पड़ता है कि जब कभी वे कोई पूर्वपरंपरासे अथवा पूर्वाचार्योंके मतसे भिन्नार्थक विचार प्रदर्शित करते होंगे तब बहुतसे पुराणप्रिय पण्डित उनके नवीन विचारका प्रतिपेक्ष करते हुए यही दलील देते होंगे कि—“महाराज, आपके विचारतो पूर्वाचार्योंके विचारसे विरुद्ध जाते हैं, क्या आप पूर्वपुरुषोंसे अधिक ज्ञानवान् हैं, जो उनके कथनमें शंका उपस्थित करते हैं? क्या आपके जैसी शंका उनको नहीं करनी आती थी? ” इत्यादि। ऐसे ही 'मृतरुद्धगौरव', प्रिय पण्डितोंका मुख सुद्वित करने के लिये दिवाकरजीने एक द्वात्रिंशिका का=में बड़ी ही मार्मिकताके साथ अपने हृदयका जोश प्रकट करते हुए निम्न श्लोक कहा है—

— बत्तीस पयोंका जो एक प्रकरण होता है उसे द्वात्रिंशिका कहते हैं। कहा जाता है कि सिद्धसेन दिवाकरने ३२-३२ पयोंवाली ऐसी ३२ द्वात्रिंशिकाएँ बनाई थीं। प्रसिद्ध ग्रंथ 'न्यायावतार' भी इन्हीं द्वात्रिंशिक-द्वात्रिंशिकाओंमेंसे एक द्वात्रिंशिकारूप है। वर्तमानमें ये सब ३२ ही द्वात्रिंशिकाएँ उपलब्ध नहीं होतीं। 'न्यायावतार' सहित कुल २१ द्वात्रिंशिकाएँ ही मिलती हैं। भायनगरकी 'जैनधर्मप्रसारक सभा' ने 'सिद्धसेन ग्रंथमाला' के नामसे इन द्वात्रिंशिकाओं और 'सम्प्रतिप्रकरण'को मूल रूपमें उपवा कर प्रगट कर दिया है। सिद्धसेनसूत्रिकी ये द्वात्रिंशिकाएँ बहुत ही शुद्ध और गभीरार्थक हैं। इनको ऊपर ऊपरसे हमने कई

जनाऽप्यमन्यस्य ह्यतः पुरातन

पुरातनैरेव ममो भविष्यति ।

पुरातनव्ययनवस्थितसु

च पुरातनोक्तान्यपरीक्ष्य रोचयेत् ॥

इमका भावार्थ यह है । विद्वाकरजी पुरातन-प्रियों को उद्दिष्ट करके कहते हैं कि, पुरातन पुरातन क्या पुकारा करते हो, यह (मैं) जन भी मने वाद, कुछ काल अनन्तर पुरातन ही जायगा और फिर अन्य पुरातनोहिकी समान इसकी भी गणना होने लगेगी ।

नार पढ़कर दूरा परनु सनरा आशय स्पष्ट रीतिसे बहुत कम समझमें आता है । अफसोस तो इस बातका है कि जैनधर्मसे हमारे ही घट घटे ग्रंथकार और टीकाकार हो गये हैं, परन्तु विस्मिति भी इन द्वात्रिंशिकाआका अर्थ स्फुट करनेके लिये 'शब्दार्थमात्र प्रकाशिका' 'चारपा भी लिखी हो ऐसा ज्ञात नहा जाता । इसका कारण हमारी समझम नहीं आता । इन द्वात्रिंशिकाओंकी अर्थार्थता और रत्नांकी महत्ताका खयाल करते हैं, तब तो यह विचार आता है कि इनके ऊपर अन्य धार्मिक और बड़े बड़े व्याख्यान लिखे जाने चाहिये । और, 'न्यायांतरार' के ऊपर ऐसे अनेक व्याख्यान और व्याख्यान लिख भी गये हैं । फिर नहीं माहूम, क्यों इन सबके लिये ऐसे नहीं किया गया । शायद अतिपूर्वार्थक होनेकी कारण इनका रहस्य प्रकट करनेके लिये किसीकी हिम्मत न चली हो । योग्य और बहुश्रुत विद्वानों पर प्रति हमारा निबंदन है कि वे इनका अर्थ स्फुट करनेके लिये आशय परिश्रम करें । इन प्रतिपादक बहू ही अपने विचार भरे हुए हैं । हमारे पिछा रगे जैनसाहित्य भरने ऐसी अन्य अर्पण कृतिया नहीं हैं ।

सुप्रसिद्ध आचार्य हेमचंद्रने 'अन्यायान्यवच्छेद' और 'शब्दान्यवच्छेद' नामकी दो द्वात्रिंशिकाएँ बनाई हैं (जिनमन एवरे ऊपर मल्लिचार्जुनने 'स्याद्वादमजरी' नामक निबन्धित उत्तम 'चारपा लिखी है), वे इन्हींकी अपूर्णण हैं । स्वयं हेमचंद्रजने अपनी प्रथम द्वात्रिंशिकाएँ प्रारम्भहीन सिद्धसेनचरित्र की कृतियाका मन्त्र जतना न हुए लिखा है कि—

‘हं सिद्धसेनस्तुतयो महाथां

अगिनिशालापलाका क चेषा ।’

अर्थात्—सिद्धसेनचरित्रकी वनाई हुई महान् अर्थवाली स्तुतियां वहाँ शीरे अदिशित मनुष्यके आलाप केने भरी यह रचना वहाँ । इसी कथनस ज्ञान हो जायगा कि सिद्धसेनचरित्रकी ये स्तुतियाँ कैसी महत्त्ववाली हैं । इन उन्मुखी द्वात्रिंशिकाओंमें मुख्य अर्थ अर्थात् महा चरित्र की अनेक प्रशंसा स्तवन वषि गई है, इस लिये इनका 'स्तुति' कहते हैं, और अतएव बहुतसी जगह 'आह च स्तुतिवार' ऐसा उद्देश सिद्धसेनचरित्रने लिये किया गया है ।

अर्थात् मरे वाद सब ही पुरातन माने जाते हैं । भला ऐसी अवस्थित पुरातनताके कारण कौन बुद्धिमान् मनुष्य किसी प्रकारकी परीक्षा किए दिना. आर मुंद कर, केवल पुरातनोके नामहीसे चाहे जिस सिद्धान्तका स्वीकार कर लेंगे ।

इसी तरह एक जगह और भी दिवाकरजीने पुराणप्रियोंके प्रति इस प्रकार स्पष्ट कहा है—

‘यदेव किञ्चिद्विषमप्रकल्पित

पुरातनैरुत्तमिति प्रशस्यते ।

विनिश्चिताऽप्ययमनुष्यवाञ्छति

न पश्यते स्मृतिमोह एव स ॥

अर्थात् पुरातनोंने चाहे अतुक भी कहा हो तो भी उनके कथनकी तो प्रशंसा ही करते रहना और आज कलके वर्तमानकालीन-मनुष्योंकी शुक्तिद्वारा सुनिश्चित विचारवाली भी वाणी (कृति) को पढ़ना तक नहीं । यह केवल मुग्ध मनुष्योंका स्मृतिमोह है, अन्य कुछ भी नहीं ।

उनके ऐसे ही और भी अनेक सुभनेवाले उद्गार यह तन दृष्टिगोचर होते हैं । मालूम पड़ता है कि विवाक रजीके ऐसे कोरे परन्तु शुक्तियुक्त जवाबोंको सुनकर उनके विरोधी निरुत्तरित हो कर मन ही मनमें मूख चिड़ते रहते होंगे, और जिस तरह आजकलके पुराणप्रिय मनुष्य, जो स्वतन्त्र विचारवाले किसी बुद्धिमान् विचारकके विचारोंका समाधान नहीं कर सकते तब, अपने भक्ताके नामने अपनी प्रतिष्ठा कायम रख नेके लिये, नवीन विचारोंपर नास्तिकताका आरोप करके उनकी उपेक्षा करने-करानेका नाटक करते

१ सिद्धसेनचरित्रका यह उद्गार उनके समकालीन और सहबासी महाकवि कालिदासके मालविकाग्निमित्रमें—

‘पुराणमित्येव न साधु सर्वं

न चापि काव्य नबमित्यवयम् ।

सन्त परीक्ष्यान्यतरद्भजनैः

मूढ परप्रत्ययनयदुद्धि ॥’

इस उद्गारके साथ कितनी अर्थसमता रखता है । महाकवि कालिदास और सिद्धसेन दिवाकर दोनों महाराज वीरविभू मादित्यकी राजसभाके उज्ज्वल रत्न थे । माहूम पड़ता है दोनोंकी औलविक प्रतिभा और लोकोत्तर कृतियोंसे उस समयके पुराणप्रिय पण्डितोंको ईर्ष्यालुहृदया बना दिये होंगे और अतएव वे सर्व साधारणम पुरातनताके बहाने इनके गौरवम न्यूनता लानकी व्यर्थ चेष्टाएँ किया करते होंगे । शायद ऐसे ही ईर्ष्यालु विद्वानोंको मौनगत दिलानेके लिये इन समयके पुरुषोंकी ये उद्गार निकालने पड़े होंगे ।

अपने अंदर सामिलकर पूर्ववत् उनका सत्कार किया । इस किम्वदन्तीमें कितना तथ्यांश है उसका विचार हम यहां पर नहीं करना चाहते, केवल इतना कह देना चाहते हैं कि इस रूपकमें कुछ न कुछ ऐतिहासिक सत्य गर्भित अवश्य है । ऊपर जो हमने थोड़ासा इनके विचार-स्वातंत्र्य और स्पष्ट-भाषित्वका परिचय दिया है, उससे यह जाना जा सकता है कि, यदि जैनागमोंके सम्बन्धमें इन्होंने ऐसी कोई बात श्रमणसंघके सामने प्रदर्शित की हो अथवा कृतिरूपसे उपस्थित कर दी हो कि जिससे पुराणभिय और आगमप्रयण श्रमण-वर्गकी बड़ा असंतोष हुआ हो, तो, उसमें कोई असंभवता नहीं है ।

तत्कालीन श्रमणसंघमें अथवा कुछकाल तक पछि भी आगमाभ्यासी सिद्धान्तिकोंमें सिद्धसेनसूरिके प्रति आदरभाव अल्परूपमें भले ही जाग्रत रहा हो; परंतु पर्यायियोंके किये जानेवाले प्रचण्ड आक्रमणसे जैनशासनकी रक्षा करनेके लिये प्रमाण और नय-वादके प्रबलयुक्तिपूर्ण सिद्धान्तोंकी स्थापनारूप जिस दुर्गम-दुर्गके मूलकी ये हृद बना गये, इस लिये उनके अनुगामी और पराजयार्थी सब ही समर्थ जैन विद्वानोंने उनका घटे गौरवके साथ स्मरण किया है । महातार्किक आचार्य महवादीने सम्मति-प्रकरण उपर टीकां लिख कर उनके प्रति अपनी उत्तम भक्ति प्रकट की । जैनधर्मके अनन्यसाधारण और अत्यंत तत्त्वज्ञ आचार्य हरिमद्रने तो उन्हें साक्षात् 'श्रुतकेवली' लिख कर उनका अनुपम आदर किया है^१ । तत्पश्चात् महात्मा सिद्धधने न्यायावतार ऊपर व्याख्यां लिख कर, तर्कपञ्चानन अमर्यदेवसू-

रिने 'सम्मतिप्रकरण' पर २५ हजार श्लोक, प्रमाण विस्तृत और मीठ टीकां बना कर, ज्ञान्याचार्य और जिनेश्वरसूरिने 'न्यायावतार' के मटीकें वार्तिक रच कर, सिद्धसेनसूरिके, जनतर्कदास्य विषयक सूत्रधारत्वका सगीरव समर्थन किया है । प्रचण्ड तार्किक वादी वेवसूरिने उन्हें अपना मार्गदर्शक बतलाया है^२, और सर्वतंत्रस्यतंत्र आचार्य हेमचंद्रने उनकी कृतियोंके सामने अपनी विद्वन्मनोरंजक कृतियोंकी भी 'अशिक्षितालापकला' याही बतलाई है ।

जिस तरह श्वेताम्बर संप्रदायके प्रसिद्ध आचार्योंने सिद्धसेन विवाककी प्रशंसा की है धंसे दिगम्बर संप्रदायके सात्विरोंने भी उनके विषयमें श्रुतिपरक उद्गार प्रकट कर, समुचित गौरव किया है ।

हरिवंश पुराणके कर्ता महाकवि जिनसेन सूरि (प्रथम) ने, अपने पुराणरूप महाकाव्य की प्रस्तानामें समन्तमद्रावि घटे घटे प्रभावक आचार्यों का स्मरणीय उल्लेख करते हुए सिद्धसेनसूरिका भी—उनकी सूक्तियों की प्रशंसा द्वारा—सावर स्मरण किया है । यथा—

रानशेरार गूरिका बनाया हुआ भंलित 'दिप्यनक' भी है^३

१ इस टीकाका थोड़ासा प्रारंभिक भाग काशीकी 'यक्षोदिरजयजैनग्रन्थमाला' में प्रकाशित हुआ है । संपूर्ण ग्रंथ अभी तक नहीं छपा ।

२ जिनेश्वरसूरिके वार्तिकका नाम 'प्रमालक्षण' है और वह केवल न्यायावतार सूत्रके आदिम श्लोकों की विस्तार रच्य है । इस ग्रन्थके विषयमें विशेष जाननेके लिये, वेदोंके जैनहितैषी मासिकपत्र के भाग १२, संख्या १, में श्रुति हमारा 'प्रमालक्षण' शीर्षक लेख । पृष्ठ १५ अमदावा-दके सेठ मनसुखभाई भयुभाईने छपवा कर प्रकट किया है ।

३ ज्ञान्याचार्यका वार्तिक भी जिनेश्वरसूरिके वार्तिक की तरह न्यायावतारके प्रथम श्लोककी व्याख्यारूप है । इसका नाम 'प्रमाण कलिका' है । यह काशीके पंडित पत्रमें धं. विद्वलशास्त्री द्वारा संशोधित हो कर प्रकाशित हुआ है, परंतु इतना अशुद्ध छपा है कि निगम एक पृष्ठ भी शब्द पढ़ना-समझना कठिन है ।

४ वेदों, 'स्याद्वादालंकार' के प्रारंभमें निम्न गत श्लोक श्रीसिद्धसेन-हरिमद्रद्वारा प्रसिद्धा-स्ते शूरयो मयि भवन्तु हस्तप्रसादाः । येषां विनश्य सततं चित्रिषात् निचयषात् शान्तं चिकीर्षति तनुमतिभोजि मादृक् ॥

१ यह टीका अभी तक कहीं उपलब्ध नहीं हुई है । ४-५ सौ वर्ष पहले की बनी हुई एक ग्रन्थसूचि हमारे पास है उसमें इस टीकाका नाम लिखा हुआ मौजूद है ।

२ वेदों, 'पथवस्तु' ग्रन्थका निम्न लिखित माथा-शृंगल

भण्णह एगिणं अम्हण कम्मवापो णो इहो ।
णो सहायवाओ सुजकेवल्लिणा जओ भजिअं ॥
आपरिप-सिद्धसेणेणं सम्मईए पवडिअ-जसेणे ।
सुसमणिसादिवापर-कप्पतणओ तदक्खेणे ॥

डेफनकालेन संघहीत इतलिलिखित पु. पु. १२१.

३ यह व्याख्या पाटणकी 'हेमचन्द्राचार्य जैनसभा' की ओरसे छपकर प्रकाशित हुई है । इस व्याख्याके ऊपर

जगत्साक्षिबोधस्य वृषभस्येव निस्तुषाः ।

बोधयान्ति सतां बुद्धिं सिद्धसेनस्य सूक्तयः ॥

इसी तरह आदिपुराणके कर्ता महाकवि जिन-सेनाचार्य (द्वितीय) ने भी अपने महापुराणके प्रारंभमें निम्न लिखित श्लोक द्वारा सिद्धसेन सूरिके पाण्डित्यकी प्रभुताका उल्लेख कर उनके प्रति अपना आदर-भाव प्रकाशित किया है।—

प्रवादिकरियूथानां केशरी नयकेशरः ।

सिद्धसेनकविर्जीयाद् विकल्पनखराडुकुरः ॥

भट्ट-अकलंक देवके प्रन्थोंमें भी सिद्धसेन सूरिके यत्न प्रमाणतया उद्धृत किये हुए दिखाई देते हैं^१। इससे उनकी प्रामाणिकताका पूरा परिचय मिल जाता है और जैन धर्मके दोनों संप्रदायोंमें उनकी प्रतिष्ठा एकरूपसे स्वीकृत की गई है यह स्पष्ट जाना जा सकता है ।

लक्ष्मीभद्र नामक दिगम्बर विद्वानके बनाये हुए एकान्त खण्डन नामक ग्रन्थमें

अनेकान्तलक्ष्मीविलासाऽऽवासाः सिद्धसेनार्या अ-
सिद्धिं प्रत्यपादयन्

‘असिद्धं सिद्धसेनस्य.....’

‘नित्याधेकान्तहेतोरुपपत्तिमहितः

सिद्धसेनो ह्यसिद्धः ।

इत्यादि प्रकारके उल्लेखों द्वारा, सिद्धसेनसूरिका समन्तभद्रादिक आचार्योंके साथ हेतुके स्वरूप-विषयक विचार-विरोधका आदर युक्त वर्णन किया हुआ है, और इस प्रकार समन्तभद्रादिकके

१ तत्त्वार्थ राजवार्तिकके ८ वें अध्यायके १ म सूत्रके १७ वें वार्तिकमें, सिद्धसेन सूरिका, प्रथम द्वानिश्चिकान्तर्गत निम्न लिखित मुप्रसिद्ध पद्य उद्धृत किया हुआ है ।

सुनिश्चिनं नः परतन्त्रयुक्तिषु

स्फुरन्ति याः काथन सूक्ततर्धपदः॥

तवैव ताः पूर्वमद्वर्णनोपिपत्ता

जगत्प्रमाणं जिनकाव्यविमुषः ॥

यह पद्य और भी अनेकानेक ग्रंथकारों द्वारा यत्र तत्र उद्धृत किया हुआ दृष्टिगोचर होता है । इस पद्यगत विचार सिद्धसेनसूरिके मौलिक विचार हैं ।

समान ही उनकी प्रामाणिकता स्वीकृत की गई है^१ ।

सिद्धसेनसूरिके बारेमें लिखे गये इन ऊपर्युक्त विचारोंके अवलोकनसे विश्व पाठक जान सकेंगे कि जैन धर्मके समर्थक आचार्योंमें उनका कितना ऊंचा आसन है और पिछले लेखकों द्वारा वे कितने सत्कृत हुए हैं ।

स्वामी समन्तभद्र ।

अब हम कुछ हाल सिद्धसेनसूरि ही के समा-नासनासीन स्वामी समन्तभद्रके बारेमें निवेदन करना चाहते हैं ।

श्वेताम्बर साहित्यमें जो स्थान सिद्धसेन दिया-फरकी मिला है वही स्थान दिगम्बर साहित्यमें स्वामी समन्तभद्रको प्राप्त है । श्वेताम्बर संप्रदायके तर्कशास्त्र-विषयक साहित्य ऊपर जितना प्रभाव सिद्धसेनसूरिकी कृतियोंका पड़ा है, उतना ही प्रभाव दिगम्बर संप्रदायके तद्विषयक बाङ्गमय ऊपर स्वामी समन्तभद्रकी कृतियोंका पड़ा है । जिस तरह श्वेताम्बर साहित्यमें सिद्धसेनके पूर्ण कालीन कोई स्वतंत्र तर्क-विषयक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, वैसे ही दिगम्बर साहित्यमें समन्तभद्रके पूर्वका ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं है । श्वेताम्बर संप्रदायमें संस्कृत भाषाके पयारमक मौढ ग्रंथोंके प्रथम प्रणेता जैसे सिद्धसेन हैं, वैसे ही दिगम्बर संप्रदायमें समन्तभद्र हैं । इन दोनों विद्वानोंके पहले, दोनों संप्रदायोंमें संस्कृत भाषाका विशेष अभ्यास और आदर नहीं था । तब तक जैन श्रमणोंमें प्राकृत भाषा ही का प्रभुत्व था । श्रमणोंके अभ्यासके विषय भी बहुत नहीं थे । जिस तरह, वर्तमानमें श्वेताम्बर संप्रदायकी स्थानफवासी (द्विधिया) नामक शाखाके साधुओंमें बहुधा देखा जाता है कि उनमें केवल मल-सूत्रोंका पाठ कंठस्थ कर लेनेके तथा सारा दिन बैठे बैठे वह पाठ मात्र पढ़ते-चाँबते रहनेके सिवा, न कोई सूत्रोंके अर्थका विशेष

१ इस विचार-विरोधके स्पष्टीकरणके लिये किसी आगे अंकमें हम एक आधा छोटासा लेख लिखना चाहते हैं । पाठक तब ही ध्यान पूर्वक इस विषयको पढ़ें । यहाँ पर तो सिर्फ सूचन मात्र कर दिया गया है ।

विचार किया जाता है और न कोई व्याकरण, काव्य कोपादिका अभ्यास किया जाता है; उसी तरह शायद उस पुराणे जमानेके बहुतसे श्रमणोंका हाल रहा होगा सम्प्रतिर्तर्कके अन्तमें, सिद्धसेनसूरिने 'तन्हा अहिण्यमुत्तेण अथसंपायाणमि जइअवं ।'

इत्यादि प्रकारका जो उल्लेख किया है और सूत्र (मूलपाठ) के साथ अर्थसंपादन करनेमें भी यतियोंको यत्न करना चाहिए, ऐसा जो उपदेश दिया है, उससे हमारे इस विचारकी पुष्टि होती है । अर्थ-परिज्ञानके सिवाय, और व्याकरण, काव्य, कौष, आदिक सत्य-साधारण ज्ञानके सिवाय मनुष्यको न तत्त्वबोध हो सकता है और न वह दूसरोंको करा सकता है । सत्य-साधारण परिज्ञानके उन्त सय साधन भारतवर्षमें प्राचीन कालसे एक मात्र संस्कृत भाषा ही में उपलब्ध होते हैं । वर्तमानमें अंग्रेजीकी तरह प्राचीनकालमें संस्कृत ही विद्वानोंके व्यवहारकी मुख्य भाषा थी । इस लिये जैनश्रमणोंको बहुत और विशिष्ट विद्वान् बनानेके लिये संस्कृत भाषाके अध्ययन-अध्यापनकी, आवश्यकता थी । यह आवश्यकता तब ही पूरी हो सकती है जब उत्तम और प्रौढ विचार के ग्रंथ इस भाषामें बनाये गये हों और जिनके सीखनेकी श्रमणोंको खास जरूरत मालूम होती हो । इस लिये सिद्धसेन दिवाकरने संस्कृत ही में अपने प्रौढ और गंभीर विचार लिपिबद्ध करने शुरू किये । परंतु, जैन श्रमणोंमें संस्कृतका नया ही प्रवेश था, इस लिये, जैसे वर्तमानमें इंग्रेजी भाषाके देशी विद्वानोंको अपने विशिष्ट विचार इंग्रेजी ही में व्यक्त करना अधिक पसंद होने पर भी, स्वदेशनिवासी सर्वसाधारण जनसमूहको, अपने विचारोंका परिचय करानेके लिये मातृभाषामें भी कुछ थोड़ा-बहुत लिखना पड़ता है; वैसे ही शायद सिद्धसेनसूरिको, (यहां पर सिद्धसेनको लक्ष्य कर यह कथन लिख रहे हैं, इसलिये प्रधानतः उनका ही जिक्र करना पड़ता है, परंतु यह बात इस प्रकारके अन्य विद्वानोंके लिये भी समझ लेनी चाहिए) संस्कृत भाषा ही में लिखना विशेष प्रिय होने पर भी, सभी श्रमणोंको अपने

मौलिक अतएव नवीन विचारोंका परिचय करने के लिये, श्रमण-समूहकी साधारण और प्रिय भाषा जो उस समय प्राकृत थी, उसमें भी कुछ लिखने की आवश्यकता प्रतीत हुई होगी । 'सम्प्रतिप्रकरण' का प्राकृत भाषा में होना हमारे इस अनुमान का विशिष्ट कारण है । ऐसा न होता तो फिर, वैसा प्रौढ और तर्क-प्रवण ग्रंथ संस्कृत भाषाके अत्यंत अनुरागी और महाकवि हो कर भी वे प्राकृत जैसी सरल और साधारण भाषामें क्यों लिखते !

समन्तभद्र स्वामीने प्राकृत भाषामें कोई ग्रंथ रचना की है या नहीं, इस का कुछ पता नहीं लग सकता । परन्तु उनके नामसे जितने ग्रंथ वर्तमानमें प्रचलित और प्रसिद्ध हैं—और उन को उन्हीं की कृति माननेमें कोई विशेष सन्देह जनक कारण भी नहीं है—उनके विषयका विचार करने से प्रतीत होता है कि उन्होंने प्राकृतमें कोई रचना नहीं की होगी । 'रत्नकरण्डक धावकाचार' का विषय प्राकृतमें गुंये जानेके योग्य था । ऐसे धर्म-तत्त्व-प्रतिपादक ग्रंथ, जैन साहित्यमें संस्कृतकी अपेक्षा प्राकृत ही में अधिक उपलब्ध हैं, और समाजको प्रिय भी इसी भाषाके ग्रंथ अधिक हो सकते हैं । क्यों कि अज्ञान बालक-बालिकायें और मन्दमति लियें भी उन्हें सरलतापूर्वक पढ़ सकती हैं । भवताम्यर संप्रदायमें तो बहुत अर्वाचीन काल तक भी ऐसे ग्रंथ प्राकृत ही में लिखे गये हैं । रत्नकरण्डकका दिगम्बर संप्रदायमें सभी स्त्री-पुरुष पाठ पढ़ते-सुनते रहते हैं, इस लिये संस्कृतकी अपेक्षा यह ग्रंथ प्राकृत में होता तो लोगोंकी और भी अधिक सुगम और सरल पड़ता । परंतु हमारे विचारसे, दिगम्बरचार्योंमें, स्वामी कुन्दकुन्दके बाद, प्राकृत भाषा ऊपरसे बिल्कुल प्रेम ऊठ गया था । और उसके ऊठ जानेमें मुख्य कारण स्वामी समन्तभद्रका संस्कृत-प्रेम और उनकी उसीमें रची गई सब कृतियाँ हैं । समन्तभद्रकी देखादेखी पिछले प्रायः सब ही दिगम्बर विद्वान्, विशेष कर संस्कृत ही में ग्रंथ-रचना करते रहे हैं । अस्तु ।

हमारे इस लिखनेका मतलब यही है कि, सिद्ध-

सेन और समन्तभद्र दोनों जैन समाजमें सख्त-
त भाषा के विशिष्ट लेखक और प्रचारक थे ।

हम ऊपर सूचित कर आये हैं कि सिद्धसेनके
पूर्व ही में बौद्ध और ब्राह्मणों के बीचमें तर्क युद्ध
का शुरुआत हो चुकी थी, और इसलिये बौद्ध श्रमणों
को पाली भाषाके प्रयाहमेंसे निकलकर संस्कृतके
म्रोतमें दाखल होना पड़ा था और ब्राह्मणोंके सम न
ही तर्क-विषयक साहित्यका संगठन कर भगवान्
गातम बुद्धके शासनका सरक्षण करनेमेंये कदि-
युद्ध हो रहे थे । उन बौद्ध श्रमणोंका प्रभाव जैन
निर्ग्रन्थों पर बहुत असर कारक पड़ा और उनको
अपने कार्य में सफल होते देख जैन निर्ग्रन्थोंने
भी उसी मार्गका अनुसरण करना शुरू किया ।

बौद्धोंके साथ वाद-विवाद करते हुए ब्राह्मणों
की दृष्टि, दर्शन शने बौद्धों ही के समान बहुतसे
आचार विचार रखनेवाले और अतएव ब्राह्मण
धर्मस्व का विनिपात करनेवाले जैन निर्ग्रन्थोंके,
शान्त परतु स्थिर भावसे बढ़तेजाते सामर्थ्य और
लोकोपेयत्वर ऊपर भी पड़ने लगीं । यद्यपि जैन
निर्ग्रन्थ उस समय अपना प्रशमरसपरिपूर्ण जीवन
केवल निर्जन वनोंमें घूमते और धर्मध्यानमें मग्न
रहते ही बिताते थे । उन्हें अपना अनुरक्त वर्ग बढ़ा
नेका या सत्राटोंके गुरु बननेका कोई लोभ नहीं
था । जनसमूहके विदेश ससर्गने वे दूर दूर रहते
थे । इसलिये ब्राह्मणोंको अपनी आजीविका और
लोकप्रतिष्ठामें उनकी तरफसे किसी विदेश आघात
के आनेकी आशंका करनेका अधिक कारण नहीं
था । तथापि, बौद्ध श्रमणोंकी जनहितकर प्रवृत्ति
और सेवाभावनासे आकर्षित हो कर लोकमत दिन
प्रतिदिन जो उनका अनुरस्त होता जाता था और
ब्राह्मणोंके प्रति जो शिथिलादर होता जाता था,
इसके कारण मनस्वी ब्राह्मणोंको सात्त्विक वृत्ति
तमः प्रधान बन गई थी । इस कारणसे, उन्होंने
अनात्मवादी बुद्धानुपगियोंके साथ साथ परम
आत्मवादी निर्ग्रन्थानुयायियोंको भी ' नास्तिक '
' नास्तिक ' कह कह कर परमाप्त भगवान् महावीर
के मोक्षमार्गका तिरस्कार करना शुरू कर दिया
था । और इस प्रकार मुमुक्षु आत्माओंके कल्याणके

मार्गमें बांटे बिछा कर उन्हें मार्ग भ्रष्ट करनेके प्रय-
त्नका प्रारम्भ किया गया था । समाधिशील निर्ग्र-
न्थोंको, अपने मौनधर्मका इस प्रकार विपर्यास
और दुष्प्रयोग होते देख जगतके कल्याणार्थ और
परमपुरुष महावीरके मोक्षमार्गका सत्यत्व स्था-
पनार्थ, मौनधर्मका त्याग करना पड़ा, और फिर
बौद्ध मिश्रजनोंकी तरह वे भी जन सहवासमें आ
कर, वाद विवादके युद्ध क्षेत्रमें उपस्थित हो कर,
अपने प्रतिपक्षियोंका मुखावला करने लगे । ऐसे
ही एक विवाद-क्षेत्रमें, बृद्धवादी नामक निर्ग्रन्थो-
च्चार्यके साथ वाद करते हुए चतुर्दशविद्यापारंगत
ब्राह्मणकुल-भूषण सिद्धसेन पराजित हुए थे, और
' जो मुझे शास्त्रवादमें पराजित करे उसका मैं
शिष्य बनूंगा, ' ऐसी गर्विष्ठ प्रतिज्ञा करनेवाले नि-
ग्रन्थमत् परतु इन प्रतिज्ञाका पूर्ण निर्वोह करने
जितना दृढ मनोबल रखनेके कारण सत्य-प्रतिज्ञ
सिद्धसेनको अपने विजेता आचार्यके पास निर्ग्र-
न्थ-दीक्षा ले कर ' ब्राह्मणवर ' से ' श्रमणवर ' होना
पड़ा था ।

सिद्धसेनके उद्गाराँसे पता लगता है कि उस
समय निर्ग्रन्थोंकी सरल वाद-पद्धति और आक-
र्षक शांतवृत्तिका लोगों पर बहुत अच्छा प्रभाव
पड़ता था । निर्ग्रन्थ अकेले-वकले ही ऐसे स्थलों-
पर जा पहुँचते थे, और ब्राह्मणादि परवादी विस्तृत-
शिष्य समूह और जनसमुदायके सहित राजसी
डाढ़-माढ़ के साथ पेश आते थे, तो भा जो यश
निर्ग्रन्थोंको मिलता था वह उन प्रविज्ञादियोंको
अप्राप्य था । यह बात स्वयं सिद्धसेनसूत्रने,
महानोर स्तुतिरूप प्रथम द्वानिश्चिकामें इस प्रकार
प्रकट की है —

अलब्धानिष्ठा प्रसमिद्धचेतस—

स्तत्र प्रशिष्या प्रथयन्ति ययश ।

न तावदप्येकसमूहमेहताः

प्रकाशयेयुः परवादिपार्थिवाः ॥

इस कथनसे उस समयकी लोकरचिका भी
पता लगता है कि लोक ब्राह्मणोंके जल्पावितण्डा
परिपूर्ण शुक्लवाद और कर्मकाण्डके प्रपचसे कितने

उय गये थे और शांतिपूर्ण सात्विक मार्गके कितने उत्सुक बन गये थे । अस्तु ।

सिद्धसेन निग्रन्थ-दीक्षा लेनेके पहले सर्व-शास्त्र-पारंगत विद्वान् ब्राह्मण थे यह बात ऊपर सूचित की जा चुकी है । इस लिये निग्रन्थ बनते ही उन्होंने अपनी सर्वशकल्प शास्त्र-ज्ञताका, जैन तत्त्वोंको न्यायसंगत बनानेमें और श्यावादीके सिद्धान्तको नय और प्रमाण द्वारा सुव्यवस्थित बनाने में, पूरा उपयोग किया । ब्राह्मणधर्म अपने प्रतिपक्षियों पर जो 'नास्तिकता' का कुत्सित आरोप कर सर्वे साधारण-में मिथ्याभ्रान्ति फैलानेका उद्योग किये करता था उसका प्रतिवाद और निराकरण करनेके लिये, तथा यथार्थमें आत्म-पुरुष कौन है, और किसका सिद्धान्त स्वीकरणीय होना चाहिए, इस विषयका उद्घाटन करनेके लिये, सिद्धसेनने बड़े गभीर और उच्च विचारवाले भिन्न भिन्न दृष्टिसे अनेक प्रकरण लिखे । ये वेही प्रकरण हैं जिनका जिक्र हम ऊपर द्वात्रिंशद्-द्वात्रिंशिकाओंके नामसे कर आये हैं । इन प्रकरणोंमें उन्होंने अपने पक्षका समर्थन और परपक्षका निरसन इतनी उत्तमता, इतनी मार्मिकता और इतनी गभीरता के साथ किया है कि जिनको पढ़ कर सहृदय विद्वानोंको काव्यका, तर्कशास्त्रका और सत्यके साक्षात्कारका एक साथ ही आनन्द आ सकता है । यह एक विचारणीय और ऐतिहासिक सत्य है कि, ब्राह्मणों के बचस्वका और कर्ममार्गका विरोध करनेवाले क्षुण्ण, महावीर, गौतमबुद्ध आदि क्षत्रिय-वीर ही हैं और अध्यात्म मार्गकी गवेषणा कर जगत्को उसका उपदेश देनेवाले भी एक मात्र वे ही हैं; परंतु इन क्षत्रिय धर्म-प्रवर्तकोंके सिद्धान्तोंको संगत, सुस्थित और सुप्रचलित करनेवाले फिर वेही ब्राह्मण ही हैं । भागवत, जैन और बौद्ध धर्मके समर्थ लेखक और आचार्योंकी जातिकी तरफ दृष्टि करते हैं तो अधिकांश ब्राह्मण जाति ही के ऐसे सरस्वती-वर-लब्ध पुत्र उत्पन्न किये हुए दिखाने देते हैं । निःसंशय ब्राह्मण जातिने जगत्के अज्ञानका नाश करनेमें सर्वाधिक श्रेष्ठ कार्य किया है । और इसी

कार्यके लिये यदि वह जगत्के ऊपर अपने पूज्यत्वका अधिकार सर्वदृष्टके लिये रखे तो उसमें उसकी कोई अनुचितता नहीं है ।

सिद्धसेन सूरिके बाद, दिगम्बर संप्रदायमें, उनके ही जैसे प्रतिभाशाली और प्रतापवान् आचार्य स्वामी समन्तभद्र हुए । समन्तभद्रके समयका अनुमान किया जाय ऐसा कोई भी विशद प्रमाण अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है, और न कोई ऐसा विश्वसनीय जीवनकथा ही उनके बारेमें दृष्टगोचर होती है । इस लिये वे कब हुए इस बारे में कुछ भी नहीं कह सकते । दिगम्बर पट्टावलियोंकी गणनानुसार विक्रमकी दूसरी शताब्दीमें उनका अस्तित्व बताया जाता है । हमने इस विषयमें अभी तक कुछ भी विशेष विचार नहीं किया है । हम जो कुछ ऊपर ऊपरसे अनुमान कर सके हैं उसका सार इतना ही है कि सिद्धसेनके बाद थोड़े ही समयमें समन्तभद्र हुए होंगे । इन दोनों की लेखशैली, विचारशैली और भाषाशैली बहुत कुछ मिलती जुलती है । भेद है तो केवल इतना ही है कि सिद्धसेनकी कृतियोंमें गूढ़ार्थता अधिक है और समन्तभद्रकी कृतियों में स्पष्टार्थता ।

इन दोनों आचार्योंके जीवनवृत्तांत-संबंधमें जो वृत्तकथायें पिछले जैनग्रंथोंमें देखी जाती हैं उनमें भी लगभग एक ही बात, कुछ थोड़ेसे फेरफारके साथ, कही हुई है । सिद्धसेनके बारेमें लिखा हुआ है कि, उन्होंने अचन्ती (उज्जैनी) के राजा विक्रमादित्यके अत्याग्रह करनेसे, वहाँके जगत्प्रसिद्ध महाकालेश्वरकी स्तुति करनी शुरू की जिसके प्रभावको महाकालेश्वरका महालिंग सहन न कर सकनेके कारण उसके टुकड़े टुकड़े हो गये और फिर उसमेंसे जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथकी मूर्ति प्रकट हुई । इससे राजा बड़ा आश्चर्यचकित हुआ और सिद्धसेनके पादतलमें मस्तक रख कर उनको अपना गुरु बनाया ।

इधर, समन्तभद्रकी कथामें भी इसके जैसी ही बात लिखी मिलती है । उन्होंने वाराणसी (काशी) के राजा शिवकोटिके आग्रह करने पर वहाँ के विश्वविद्यालय विधेयकर महादेवकी जय स्तवना करनी

प्रारंभ की तो उसके सामर्थ्यसे विश्वेश्वरका महा-
लिंग फट कर उसमेंसे चतुर्मुख जैनमूर्ति प्रकट
हुई । समन्तभद्रके इस प्रभावसे मुग्ध हो कर वह
राजा उनका शिष्य बन गया ! ।

मालूम नहीं इन दंतकथाओंमें कितना तथ्य है ।
इनके आकार-प्रकारसे तो विद्वानोंको ऐसाही भास
हो सकता है कि फेवल इन आचार्योंकी महिमा
बढ़ाने के लिये ये कथाएँ मनगढन्त बना ली गई हैं,
और सिद्धसेनकी कथा ही में कुछ नाम परिचयन
कर समन्तभद्रको भी लागू कर दी गई है । परन्तु
संभव है कि इनमें कुछ ऐतिहासिक सत्यांश भी
हो । सिद्धसेनने अवन्तीकी और समन्तभद्रने
काशीकी ब्राह्मण-परिपट्टमें—जिस तरह न्यायाचार्य
यशोधिव्रजजीने काशीकी विद्वत्सभामें विजय प्राप्त
किया था वैसे—दार्शनिक धाद-विवाद कर विजय
प्राप्त किया हो, और उसके स्मरणार्थ
उन उन स्थानोंमें जैन मंदिरोंको प्रतिष्ठा
करवा कर जैन धर्मका गृह जयजयकार
करवाया हो । ऐसी बातें समय समय पर अनेक
जगह होती रही हैं, इस लिये सिद्धसेन और
समन्तभद्रके समयमें भी ऐसी ही कोई बात बनी
हो और उसीको लेकर ऊपर्युक्त दंतकथा—अर्द्धसत्य-
मिश्रित होकर—प्रचलित हो गई हो, तो उसमें कोई
असंभवनियता नहीं है । अवन्ती और वाराणसी
ये दोनों नगरियां प्राचीन कालसे ब्राह्मणोंकी राज-
धानियां बनी हुई हैं । उस समयमें जितने बड़े बड़े
द्विगज विद्वान् हुआ करते थे वे अवश्य इन क्षेत्रोंकी
यात्रा किया करते थे और वहांके विद्वत्सभाओंमें
मिश्र मिश्र विषयोंपर शालाख्य कर अपने पाण्डि-
त्यका प्रमाणित तथा विजयपताका प्राप्त कर लत-
कृत्य होते थे । सिद्धसेन और समन्तभद्र दोनों बड़े
प्रखर वाग्मी और प्रचण्ड धादी थे इसमें तो कोई
सन्देह ही नहीं है । उनकी ऐसी प्रसिद्धि तब ही
हो सकी होगी जब उन्होंने अवन्ती और वारा-
णसी जैसी सरस्वतीके घरपुओंकी वासभूमिमें
जा कर वहांके द्विगज विद्वानोंके साथ शा-
खाख्य कर महती प्रतिष्ठा प्राप्त की होगी ।

इसलिये इन दंतकथाओंमें कुछ सत्यांश अवश्य
होना चाहिये, ऐसा अनुमान करनेकी तरफ हमारी
चित्तवृत्ति सहज झुकी जाती है ।

सिद्धसेन और समन्तभद्र दोनों महाकावि और
महावादी थे । उनका महाकाव्य तो उनकी चिरं-
जीव कृतियोंमें स्पष्ट प्रतिभासित हो रहा है और
महावादित्वका अनुमान उनकी कृतियोंमें फूट फूट
कर भरे हुए पाण्डित्यको देख कर सहज किया जा
सकता है । इन प्रवादि-करि-केशरियोंने अपने
जांघनमें कहाँ कहाँ पर किन किन विद्वानोंके साथ
धाद-विवाद कर दिग्विजयपना प्राप्त किया
था इसके जाननेका कोई साधन नहीं है । सिद्ध-
सेनकी कथाओंमें, उनके मालव देशमें विचरण
के साथ दक्षिण देशमें विचरण करनेका भी उल्लेख
किया हुआ है, इस लिये इन देशोंमें तो उनके
पाण्डित्यके प्रकाश-किरण सर्वत्र अवश्य फैले ही
होंगे । अन्य देशोंके विषयमें कुछ नहीं कह सकते ।
समन्तभद्रके दिग्विजयका क्षेत्र बहुत विस्तृत है ।
दक्षिणके प्रसिद्ध दिगम्बर जैन तीर्थस्थल अचणबेल
गोलाके चिन्ध्यगिरि पर्वत ऊपर एक मन्दिरमें
'मल्लिप्रेण प्रशस्ति' नामका एक बहुत बड़ा शिला-
लेख है । इस लेखमें समन्तभद्रके पारिचायक कुछ
प्राचीन पद्य उद्धीर्तित हैं जिनमेंसे निम्न लिखित
पद्यमें उनके दिग्विजय-क्षेत्रका अच्छा उल्लेख
किया हुआ है ।—

इदं पाटिपुत्रमध्यनगरं भेरी मया ताडिता
वधामालवसिन्धुदक्षविषये काञ्चबापुरं वैशिली ।
प्रातोऽहं कराहाटकं बहुभट्टं विधोक्तं सङ्गमं
बादार्थी विचाराय्यं नरपते शास्त्रलविकीर्तितम् ॥

इस पद्यमें समन्तभद्र की स्वयं अपने मुखसे
किसी एक राजाकी सभामें यह बात कहते हुए ब-
ताये गये हैं कि, उन्होंने कौनसे कौनसे दे-
शोंमें धाद-विवाद कर विजयपताका प्राप्त की है ।
पद्यका अर्थ इस प्रकार है—

और 'व्याख्यानवाचस्पति' अपने आपको बड़े धाढ्य
के साथ कहलौत फिरते हैं, वैसे पृष्ठ उस जगानेमें नहीं बैठते
थे । और यदि कोई मुख बेसा करनेका चाहय कर भी लेता
तो तीसरे ही दिन लोग उसके दंड-कर्मंडल छेन कर, लंगोड़ी-
पर बद्धिष्ठक कर देते थे ।

ऊय गये थे और शांतिपूर्ण सात्त्विक मार्गके कितने उत्सुक बन गये थे । अस्तु ।

सिद्धसेन निर्ग्रन्थ-दीक्षा लेनेके पहले सर्व-शास्त्र पारंगत विद्वान् ब्राह्मण थे यह बात ऊपर सूचित की जा चुकी है । इस लिये निर्ग्रन्थ बनते ही उन्होंने अपनी सर्वशकल्प शास्त्र-ज्ञाता, जैन तत्त्वोंको न्यायसंगत बनानेमें और श्यादादके सिद्धान्तको नय और प्रमाण द्वारा सुव्यवस्थित बनाने में, पूरा उपयोग किया । ब्राह्मणवर्ग अपने प्रतिपक्षियों पर जो ' नास्तिकता ' का कुत्सित आरोप कर सर्व साधारणमें मिथ्याप्रान्ति फैलानेका उद्योग किये करता था उसका प्रतिपाद और निराकरण करनेके लिये, तथा यथार्थमें आप्त पद्यों कोन है, और किसका सिद्धान्त स्वीकरणीय होना चाहिए, इस विषयका उद्घाटन करनेके लिये, सिद्धसेनने बड़े गभीर और उत्तम विचारबाले भिन्न भिन्न दृष्टिसे अनेक प्रकरण लिखे । ये वेही प्रकरण हैं जिनका जिकर हम ऊपर द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिकाओंके नामसे कर आये हैं । इन प्रकरणोंमें उन्होंने अपने पक्षका समर्थन और परपक्षका निरसन इतनी उत्तमता, इतनी मार्मिकता और इतनी गभीरता के साथ किया है कि जिनकी पढ़ कर सहृदय विद्वानोंको फान्यका, तर्कशास्त्रका और सत्यके साक्षात्कारका एक साथ ही आनन्द आ सकता है । यह एक विचारणीय और ऐतिहासिक सत्य है कि, ब्राह्मणों के वर्चस्वका और कर्ममार्गका विरोध करनेवाले रुष्ण, महावीर, गौतमबुद्ध आदि क्षत्रिय-वीर ही हैं और अध्यात्म मार्गकी गवेषणा कर जगत्को उसका उपदेश देनेवाले भी एक मात्र वे ही हैं परंतु इन क्षत्रिय धर्म-प्रवर्तकोंके सिद्धान्तोंकी सगत, सुस्थित और सुप्रचलित करनेवाले फिर वेही ब्राह्मण ही हैं । भागवत, जैन और बौद्ध धर्मके समर्थ लेखक और आचार्योंकी जातिकी तरफ दृष्टि करते हैं तो अधिकांश ब्राह्मण जाति ही के ऐसे सरस्वती-वर-लब्ध पुत्र उत्पन्न किये हुए दिखाने देते हैं । निःसंशय ब्राह्मण जातिने जगत्के अज्ञानका नाश करनेमें सर्वाधिक श्रेष्ठ कार्य किया है । और इसी

कार्यके लिये यदि यह जगत्के ऊपर अपने पूज्यत्वका अधिकार सर्वद्वयके लिये रंगे तो उसमें उसकी कोई अनुचितता नहीं है ।

सिद्धसेन मूर्तिके बाद, दिग्भ्यर मंत्रप्रदायमें, उनके ही जैसे प्रतिभाशाली और प्रतापवान् आचार्य समाी समन्तभद्र हुए । समन्तभद्रके समयका अनुमान बिधा जाय ऐसा कोई भी विशिष्ट प्रमाण अभीतक उपलब्ध नहीं हुआ है, और न कोई ऐसी विभ्यसनीय जीवनकथा ही उनके बारेमें दृष्टिगोचर होती है । इस लिये वे कथ हुए इस बारे में कुछ भी नहीं कह सकते । दिग्भ्यर पट्टावलियोंकी गणनानुसार विक्रमकी दूसरी शताब्दीमें उनका अस्तित्व बताया जाता है । हमने इस विषयमें अभीतक कुछ भी विशेष विचार नहीं किया है । हम जो कुछ ऊपर ऊपरसे अनुमान कर सके हैं उसका सार इतना ही है कि सिद्धसेनके बाद थोड़े ही समयमें समन्तभद्र हुए होंगे । इन दोनों की लेखशैली, विचारशैली और भाषाशैली बहुत कुछ मिलती जुलती है । भेद है तो केवल इतना ही है कि सिद्धसेनकी कृतियोंमें गूढ़ार्थता अधिक है और समन्तभद्रकी कृतियों में स्पष्टार्थता । इन दोनों आचार्योंके जीवनवृत्तांत संबंधमें जो दंतकथायें पिछले जैनग्रंथोंमें देखी जाती हैं उनमें भी लगभग एक ही बात, कुछ थोड़ेसे फेरफारके साथ, कही हुई है । सिद्धसेनके बारेमें लिखा गया है कि, उन्होंने अयन्ती (उज्जैनी) के राजा विक्रमादित्यके अत्याग्रह करनेसे, वहाँके जगत्प्रसिद्ध महाकालेश्वरकी स्तुति करनी शुरू की जिसके प्रभावको महाकालेश्वरका महालिंग सहन न कर सकनेके कारण उसके टुकड़े टुकड़े हो गये और फिर उसमेंसे जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथकी मूर्ति प्रकट हुई । इससे राजा बड़ा आश्चर्यचकित हुआ और सिद्धसेनके पादतलमें मस्तक रख कर उनको अपना गुरु बनाया ।

इधर, समन्तभद्रकी कथामें भी इसके जैसी ही बात लिखी मिलती है । उन्होंने वाराणसी (काशी) के राजा शिवकोटिके आग्रह करने पर वहाँ के विश्वविष्णुात विश्वेश्वर महादेवकी जय स्तघना करनी

प्रारम्भ की तो उसके सामर्थ्यसे विध्वेश्वरका महा-
लिंग फट कर उसमेंसे चतुर्मुख जैनमूर्ति प्रकट
हुई । समन्तभद्रके इस प्रभावसे मुग्ध हो कर वह
राजा उनका शिष्य बन गया ।।

मालूम नहीं इन दत्तकथाओंमें कितना तथ्य है ।
इनके आकार-प्रकारसे तो विद्वानोंको ऐसीही भास
हो सकता है कि केवल इन आचार्योंकी महिमा
बढ़ाने के लिये ये कथायें मनगढ़न्त बना ली गई हैं,
और सिद्धसेनकी कथा ही में कुछ नाम परिवर्तन
कर समन्तभद्रको भी लागू कर दी गई है । परन्तु
संभव है कि इनमें कुछ ऐतिहासिक सत्यांश भी
हो । सिद्धसेनने अयन्तीकी और समन्तभद्रने
काशीकी ब्राह्मण-परिपदमें—जिस तरह न्यायाचार्य
यशोधियज्वर्जने काशीकी विद्वत्सभामें विजय प्राप्त
किया था वैसे—दार्शनिक वाद-विवाद कर विजय
प्राप्त किया हो, और उसके स्मरणार्थ
उन उन स्थानोंमें जैन मंदिरोंकी प्रतिष्ठा
करवा कर जैन धर्मका गूथ जयजयकार
करवाया हो । ऐसी बातें समय समय पर अनेक
जगह होती रही हैं, इस लिये सिद्धसेन और
समन्तभद्रके समयमें भी ऐसी ही कोई बात घनी
हो और उसीको लेकर ऊपर्युक्त दत्तकथा—भर्द्दसत्य-
मिश्रित होकर—प्रचलित हो गई हो, तो उसमें कोई
असंभयनीयता नहीं है । अयन्ती और वाराणसी
ये दोनों नगरियां प्राचीन कालसे ब्राह्मणोंकी राज-
धानियां घनी हुई हैं । उस समयमें जितने बड़े बड़े
दिग्गज विद्वान् हुआ करते थे वे अवश्य इन क्षेत्रोंकी
यात्रा किया करते थे और वहांके विद्वत्सभाओंमें
भिन्न भिन्न विषयोंपर शाल्कार्य कर अपने पाण्डि-
त्यका प्रमाण देन तथा विजयपताका प्राप्त कर छत-
कृत्य होते थे । सिद्धसेन और समन्तभद्र दोनों बड़े
प्रखर वाग्मी और प्रचण्ड वादी थे इसमें तो कोई
सन्देह ही नहीं है । उनकी ऐसी प्रसिद्धि तब ही
हो सकी होगी जब उन्होंने अयन्ती और वारा-
णसी जैसी सरस्वतीके घरपुआंकी वासभूमिमें
जा कर वहांके दिग्गज विद्वानोंके साथ शा-
स्त्रार्थ कर महती प्रतिष्ठा प्राप्त की होगी ।

इसलिये इन दत्तकथाओंमें कुछ सत्यांश अवश्य
होना चाहिए, ऐसा अनुमान करनेकी तरफ हमारी
चिन्तवृत्ति सहज झुकी जाती है ।

सिद्धसेन और समन्तभद्र दोनों महाकावे और
महावादी थे । उनका महाकावित्व तो उनकी चिर-
जीव कृतियोंमें स्पष्ट प्रतिभासित हो रहा है और
महावादित्वका अनुमान उनकी कृतियोंमें कूट कूट
कर भरे हुए पाण्डित्यको देख कर सहज किया जा
सकता है । इन प्रवादि-करि-केशरियोंने अपने
ज्ञानमें कहां कहां पर किन किन विद्वानोंके साथ
वाद-विवाद कर दिग्विजयपना प्राप्त किया
था इसके जाननेका कोई साधन नहीं है । सिद्ध
सेनका कथाओंमें, उनके मालव देशमें विचरण
के साथ दक्षिण देशमें विचरण करनेका भी उल्लेख
किया हुआ है, इस लिये इन देशोंमें तो उनके
पाण्डित्यके प्रकाश-किरण सर्वत्र अवश्य फैले ही
होंगे । अन्य देशोंके विषयमें कुछ नहीं कह सकते ।
समन्तभद्रके दिग्विजयका क्षेत्र बहुत विस्तृत है ।
दक्षिणके प्रसिद्ध दिग्गम्यर जैन तीर्थस्थल श्रवणबेल
गोलाके विन्ध्यगिरि पर्यंत ऊपर एक मन्दिरमें
'महिषेय प्रशास्ति' नामका एक बहुत बड़ा शिला-
लेख है । इस लेखमें समन्तभद्रके पारिचायक कुछ
प्राचीन पद्य उत्कीर्तित हैं जिनमेंसे निम्न लिखित
पद्यमें उनके दिग्विजय-क्षेत्रका अच्छा उल्लेख
किया हुआ है ।—

श्र्वं पाटलिपुत्रमप्यनगरे भेरी मया दाहिता
पश्चान्मालवतिष्ठुत्कविपुत्रं काञ्चोपुरे वैरिनि ।

प्राप्ताऽहं करदाटक बहुमद विभोक्त सट्टयम्
वादाय्यं विचराम्यहं गरपते शार्ङ्गविकीरितम् ॥

इस पद्यमें समन्तभद्र को स्वयं अपने मुखसे
किसी एक राजाकी सभामें यह बात कहते हुए ब-
ताये गये हैं कि, उन्होंने कौनसे कौनसे दे-
शोंमें वाद-विवाद कर विजयपताका प्राप्त की है ।
पद्यका अर्थ इस प्रकार है:—

और 'व्याख्यानवाचस्पति' अपने आपको बड़े धाट्टपं
के साथ कहलते फिरते हैं, वैसे धूट उस जमानेमें नहीं होते
थे । और यदि कोई मूर्ख ऐसा करनेका साहस कर भी लेता
तो तीसरे ही दिन लोग उसके दंड-कर्मइल छेन कर, हंगोडी-
मर बढ़िज्जत कर देते थे ।

"पहले मैंने पाटलीपुत्र नगर (पटना) में यादकी भेरी यजार्ह, फिर मालवा, सिन्धु देश, दक्ष (दाका—बंगाल), काञ्चीपुर और विदिशा (मिलसेके आसपासका देश) में भेरी यजार्ह। और अब बड़े विद्वान् योरासे भरे हुए इस करहाटक (कराड, जिला सतारा) नगरको प्राप्त हुआ हूँ। इस प्रकार हे राजन्, मैं याद करनेके लिये सिंहके समान इतस्ततः क्रीडा करता फिरता हूँ।"

इस उल्लेखसे जाना जाता है कि समन्तभद्र स्वामी भारतके पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, सबही खण्डोंमें घूमे थे और सब देशोंके विद्वानोंके साथ शास्त्रार्थ कर जैनधर्मकी विजय-दुन्दुभि यजवाई थी।

समन्तभद्र स्वामीकी कृतियोंके देखनेसे पता लगता है कि सिद्धसेनसूरिने अपनी कृतियोंमें जो बात संक्षेपसे सूचित की है, समन्तभद्रने उसीको व्यवस्थितरूपमें विस्तारके साथ वर्णन की है। सिद्धसेन अपने ग्रंथमें प्रमाण और नयके लक्षण स्थिर मान कर गये थे; समन्तभद्रने अपने ग्रंथमें उनके अनुसार मीमांसा कर उन्हें सफल, संगत और सिद्ध कर दिखाये। सिद्धसेनने आत्म-पुरुषके बारेमें संक्षिप्त और प्रकीर्ण विचार प्रदर्शित किये थे। समन्तभद्रने उन्हीं विचारोंको विस्तृत और क्रमबद्ध रूपमें प्रयत्न कर संपूर्णरूपसे आत्मकी मीमांसा की। इस प्रकार, सिद्धसेनने जैन धर्मके तत्त्वज्ञानको अंकुरित होनेमें जलासि-चनका काम किया; तो समन्तभद्रने उसको स्वच्छन्द और निर्भय रीतिसे ऊंचे यदनमें काँटोंकी बाड़का काम किया। इन्हीं दो महापुरुषोंके सुप्र-यत्न और स्तुत्य जीवनसे जैनदर्शन सजीवन रहा और इन्हीं के बताये हुए मार्गका अवलंबन कर, पिछले समर्थ आचार्यानि (जिनमेंसे कितने एकके नाम हम इस लेखके प्रारम्भहीमें लिख आये हैं) उसे गूँथ पल्लवित किया।

सिद्धसेनसूरिनी कृतियोंके समान समन्तभद्राचार्यकी कृतियाँका भी, पिछले आचार्योंने बड़ा गौरव किया। उनपर संक्षिप्त और विस्तृत दोनों अनेक भाष्य-टीका आदि लिख कर उनकी खूब

प्रतिष्ठा बढ़ाई। समन्तभद्रकी कृतियोंमें सबसे अधिक मान 'याममीमांसाको' मिला है। यह दिख-नेमें ११४ श्लोकोंका एक छोटासा ग्रंथ मालूम होता है, पर इसका गांभीर्य इतना है कि, इसपर सैकड़ों-हजारों श्लोकवाले बड़े बड़े गहन भाष्य-विवरण आदि लिखे जाने पर भी विद्वानोंको यह दुर्गम्यसा दिखाने देता है।

सबसे पहले इसपर महान् तार्किक भट्ट अक-लंक देवने अष्टशती (आठ सौ श्लोक परिमाणवा-ला) नामका अल्पाक्षर और बहुवर्धवाला गंभीर भाष्य लिखा। इस भाष्यके ऊपर प्रचण्ड विद्वान् आचार्य विद्यानन्दीने अष्टसहस्री (आठ हजार श्लोक प्रमाण) नामक विशद व्याख्या बनाई। समुच्चय सस्कृत साहित्यमें, भिन्न भिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों-विचारोंकी आलोचना-प्रत्यालोचना करनेवाला यह एक महान् और प्रौढ़ ग्रंथरत्न है। इसमें ब्राह्मण और बौद्ध धर्मके सब ही तात्त्विक संप्रदायोंके तत्त्व-विचारोंका बड़ी मार्मिक और युक्तिपूर्ण पद्धतिसे खण्डन-मण्डन किया गया है। और अन्तमें जैन धर्मका स्याद्वाद-सिद्धान्त कित-ना प्रमाणयुक्त और बलवन्वीर्य है, यह विचार बड़े गौरवके साथ सिद्ध किया गया है।

इस ग्रंथकी महत्ताका पता इतने ही से लग जायगा कि, श्वेताम्बर संप्रदायके महान् नैयायिक और समर्थ ग्रंथकार उपाध्याय यशोविजय जैसे पूर्ण सांप्रदायिक विद्वानने भी, इस कृतिके गांभी-र्यसे मुग्ध हो कर, इस पर, मूल ग्रंथके जितनी ही श्लोक प्रमाण (अर्थात् आठ हजार श्लोकवाली) और उतनी ही प्रौढ़ टिप्पणी लिखी है। और इस

१ आकलज निवासी सेठ नारायणजी गान्धीने पं. बंधी-ध जो नारायणजी सेठोपिथ करवा कर जो अष्टप्रहरी छप-वाई है उसके साथ यदि यशोविजयजीकी यह टिप्पणी भी (टिप्पणी क्या टीकाकी भी टीका) छपा दी जाती तो 'सोनेमें गुग्गुलु' आ जाती। हमें इस बातका पता नहीं लगा कि शाली बंशीधरजीने अपनी अष्टप्रहरीकी भूमिकामें इस महती टिप्पणीका नामलेखन तक क्यों नहीं किया। क्या उन्हें इसका अहिंसक मार्ग नहीं था अथवा अन्य किसी कारणसे वेना नहीं कर सके ?।

प्रकार 'अष्टसहस्री' को 'षोडशसहस्री' बना कर उसको महत्त्वको द्विगुणित कर दिया है। संपूर्ण जैन साहित्यमें यही एक ऐसा ग्रंथ है, जिस पर, दूसरे संप्रदायके एक ऐसे विद्वान्ने व्याख्या लिखी है, जो योग्यतामें मूल कर्तासे रत्नामर भी न्यून नहीं हो कर, सर्वथा सांप्रदायिक-भावका पूर्ण समर्थक था।

समन्तभद्र स्वामीके इन महान् टीकाकारोंके सिया जिनसेन, वादीभासिंह, वीरनन्दी, शुभचन्द्राचार्य इत्यादि अन्यान्य सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध दिगम्बर ग्रंथकारोंने भी उनके कवित्व, वाग्मिन्त्व और पाण्डित्यकी भूरि भूरि प्रशंसा और स्तुति की है। और सभीने उनको जैन धर्मका एक महान् संरक्षक और समर्थक रूपमें स्वीकृत किया है।

राष्ट्रकूट वंशीय प्रतापी नृपति महाराजा अमोघ-वर्षके पद्मगुरु और सुप्रसिद्ध महापुराण आदिपुराणके कर्ता महाकवि जिनसेनने अपने पुराणकी प्रस्तावनामें स्वामी समन्तभद्रकी प्रशंसा करते हुए निम्नगत उद्गार प्रकट किये हैं—

तमः समन्तभद्राय महते कविवेषसे ।

यद्वचोवज्रपातिन निर्मिताः कुमताद्रयः ॥

कवीना गमकानां च वादीना वाग्मिनामपि ।

यशः सामन्तभद्रार्थं मूर्ध्नि चूडामणीयते ॥

हरिवंश महापुराणके प्रणेता जिनसेन (प्रथम) ने भी स्वकीय पुराणके प्रारम्भमें समन्तभद्रके वचनको भगवान् महावीरके वचनतुल्य लिया है। यथा—
जीवसिद्धिं विप्रविह कृतयुक्त्यनुशासनम् ।

वचः समन्तभद्रस्य वीरस्यै विनृम्भते ॥

गयाचिन्तामणि नामक सुप्रसिद्ध गद्यकाव्यकी रचयिता महाकवि वादीभासिंहने समन्तभद्रके वचनस्वरूप वज्रपातके कारण परवादीरूप करोड़ों पर्वत चूरचूर हो गये बतलाये हैं। यथा—

सारस्वतीस्वरविहारभूमयः

समन्तभद्रप्रभुसा मुनीश्वराः ।

जयन्तु वाग्यज्जनिपातपाटित-

प्रतीपरादान्तमहीधकोटयः ॥

अध्यात्मज्ञानके समुद्रस्वरूप ज्ञानार्णव ग्रन्थके

निर्माता आत्मज्ञानी शुभचन्द्रने समन्तभद्रके कवि-स्वरूप सूर्यके सम्मुख अपनी कृतिको ग्योतनृत्य उपहासपात्र लिख कर समन्तभद्रके वचनोंकी महत्ता प्रकट की है—

समन्तभद्रादिकधीन्द्रभास्वतां

स्फुरन्ति यत्रामलसूतारश्मयः ।

व्रजन्ति स्वयोऽवदेव हासतां

न तत्र किं ज्ञानलवोद्धता जनाः ॥

चन्द्रप्रभचरितके कर्ता महाकवि वीरनन्दीने, मोतियोंके बने हुए हारमें कंठको विभूषित करना दुर्लभ नहीं है, परन्तु समन्तभद्रके वचनरूप मुक्ताफलसे सुंधि हुए काव्यस्वरूप हारसे कंठको अलंकृत करना परम दुर्लभ बतलाया है—

गुणान्विता निर्मलवृत्तमौक्तिका

नरोत्तमैः कण्ठविभूषणीकृता ।

न हारयष्टिः परमेव दुर्लभा

समन्तभद्रादिभवा च भारती ॥

इसी प्रकार और भी अनेकानेक ग्रन्थकारोंने विविध प्रकारसे समन्तभद्र स्वामीकी स्तुति और प्रशंसा की है। इतना गौरव शायद ही अन्य किसी आचार्यका किया गया हो।

* * *

दिगम्बर विद्वानोंने तो समन्तभद्र स्वामीकी इस प्रकार आपना प्रमाणभूत पुण्य माना ही है परन्तु श्वेतांबर विद्वानोंने भी उनकी प्रामाणिकता प्रगण्यताका गुले दिलसे स्वीकार किया है। हरिभद्र, वादी देव, हेमचन्द्र और मलयगिरि जैसे श्वेताम्बरशिरोमणि सूरियोंने भी प्रसंगोपात् उनकी कृतिका उहेम या अग्ररत्न कर उन्हें एक प्रमाणभूत पुण्यकी कोटिमें स्थान दिया है। हरिभद्रमूर्तिने उनको 'यादिमुण्य' के महत्त्व-सूचक विक्षेपणमें सम्बोधित किया है और अनेकान्त-जयपाननामें निम्न लिखित दो श्लोक इनके नामसे उद्धृत किये हैं। यथा—

आह च वादिमुख्यः समन्तभद्रः—

‘ बोधाभा चेच्छब्दस्य न स्यादन्यत्र तच्छ्रुतिः ।

यद्वोद्धारं परित्यज्य न बोधोऽन्यत्र गच्छति ॥

न च स्यात्प्रत्ययो लोके यः श्रोत्रा न प्रतीयते ।

शब्दाभेदेन सत्येवं सर्वः स्यात्परचितवत्* ’ ॥

अनेकान्तजयपताका पृ ४३ (अमदाबाद) ।

आचार्यवर्य हेमचंद्रने अपने सिद्धहमशाब्दानु-
शासन नामक व्याकरणके प्रारम्भमें, दूसरे सूत्रकी
व्याख्यामें ‘ स्तुतिकारोऽप्याह ’ ऐसा उल्लेख कर
निम्न गत स्तुतिपत्र उद्धृत किया है जो इन्हीं सम्-
न्तभद्र स्वामीका बनाया हुआ है और गृह्यस्वयम्भू-
स्तोत्रमें उपलब्ध होता है । पद्य यह है—

नयास्तव स्यात्पदलान्छना इमे

रसोपविद्धा इव लोहपातव ।

१ ‘ समन्तभद्र ’ यह नाम टीकामें लिखा है, जो स्वयं
प्रपकार ही की बनाई हुई है । मूलमें केवल ‘ वादिमुख्य ’
विशेषण ही का उल्लेख है ।

* शान्तपाचार्य विरचित प्रमाणकलिका और वादी देवसुरि
रचित स्याद्वादसनाम्नमें भी ये दोनों श्लोक समन्तभद्रके
नामसे अवतारित हैं । जहाँ तक हम जान सके, समन्त
भद्रकी वपलब्ध कृतियोंमें किसीमें भी ये श्लोक नहीं
पाये जाते । इस लिये, यह स्पष्ट माद्यम पड़ता है कि स्वा-
मीकी केवल इतनी ही कृतियें नहीं हैं जो अभी तक जानी
गई हैं । इनके सिवा, और भी कृतियें होनी चाहिए जो
अद्यापि अज्ञात या अप्राप्य हैं ।

भग्न्यभिप्रेतफला यतस्ततो

भग्न्यतमार्थाः प्रणता हितं पिणः ॥

यही पद्य मलयगिरिमूर्तिने आद्यदयकसूत्रकी
अपनी अपूर्ण टीकामें, ‘ आद्यस्तुतिकारोऽप्याह ’—
आद्य—प्रथम स्तुतिकार भी कहते हैं—ऐसा उल्लेख
कर, उद्धृत किया है । इस उल्लेखसे स्पष्ट जाना
जाता है कि ये प्रसिद्ध स्तुतिकार माने जाते थे इत-
ना ही नहीं परन्तु आद्य—सबसे पहले होने वाले—
स्तुतिकारका मान प्राप्त थे । हरिभट्टादि भेताम्यरायणी
आचार्योंने सिद्धसेन दियाकरको भी वादिमुख्य
और स्तुतिकारके विशेषणोंसे उल्लिखित किया है,
और उपर्युक्त प्रमाणानुसार समन्तभद्र स्वामीकी
भी इन्हीं विशेषणोंसे अलंकृत किया है । इससे
यही अनुमान हो सकता है कि भेताम्यरायणी दृष्टि-
में सिद्धसेन और समन्तभद्र दोनों समान पूज्य
और समान सत्कारास्पद हैं । इधर, सिद्धसेन
सूरिकी भी जिस प्रकार भेताम्यराचार्योंने अपना
श्रद्धास्पद और प्रमाणभूत पुराय माना है, वैसे,
जैसा कि हम ऊपर समप्रमाण लिख आये हैं, दिग-
म्यराचार्योंने भी उन्हें अपना स्तुतिपात्र और शिर-
सावय माना है, अतः दिगम्यरायणी दृष्टिमें भी
सिद्धसेन और समन्तभद्र दोनों समान गुणगणा-
लरुत हैं । इससे यह स्वतः सिद्ध हो गया कि,
समग्र जैनसमाज और जैन साहित्यमें इन दोनों
महापुरुषोंका शानप्रमान्वित, सत्प्रतिष्ठापूर्ण और
निर्भयगणवन्धु सिंहासन, समान स्थान और समा-
न रूपमें स्थापित है ।



हरिभद्रसूरिका समय-निर्णय ।

जैन धर्मके भेताम्बर संप्रदायमें हरिभद्र नामके एक बहुत प्रसिद्ध और महान् विद्वान् आचार्य हो गये हैं । उन्होंने संस्कृत और प्राकृत भाषामें धर्म-विचार और दर्शनिक विषयके अनेक उत्तमोत्तम और गम्भीरतत्त्व-प्रतिपादक ग्रंथ लिखे हैं । इन ग्रंथोंमें सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, अद्वैत, चार्वाक, बौद्ध, जैन आदि सब ही दर्शनों और मतोंकी उन्होंने अनेक तरहसे आलोचना—प्रत्यालोचना की है । इस प्रकारके भिन्न भिन्न मतोंके सिद्धान्तोंकी विवेचना करते समय, अपने विरोधिमतवाले विचारोंका भी गौरव-पूर्वक नामोल्लेख करनेवाले और समभावपूर्वक मुद्दु और मधुर शब्दों द्वारा विचार-मीमांसा करनेवाले ऐसे जो कोई विद्वान् भारतीय साहित्यके इतिहासमें उल्लेख किये जाने योग्य हों तो उनमें हरिभद्रका नाम सबसे पहले लिखने योग्य है ।

योंही जैन इतिहासके पुरातन साधनोंकी देखनेसे, उनमें हरिभद्र नामके अनेक आचार्योंके हो जानेका पता मिलता है; परंतु जिनको उद्देश्य करके हमने इस निबन्धके लिखनेका प्रारंभ किया है, उन्हें सबसे पहले होनेवाले—अर्थात् प्रथम हरिभद्र समझना चाहिए । हमारे आशय इस लेखका उद्देश्य इतना प्रथम हरिभद्र सूरिके अस्तित्व-समयका विचार और निर्णय करना है ।

हरिभद्र-सूरिका प्रादुर्भाव जैन इतिहासमें बड़े महत्त्वका स्थान रखता है । जैन धर्मके—जिसमें मुख्य कर भेताम्बर संप्रदायके—उत्तरकालीन (आधुनिक) स्वरूपके संगठन-कार्यमें उनके जीवनमें बहुत बड़ा भाग लिया है । उत्तरकालीन जैन

साहित्यके इतिहासमें वे प्रथम लेखक माने जाने योग्य हैं, और जैन समाजके इतिहासमें, नवीन संगठनके एक प्रधान व्यवस्थापक कहलाने योग्य हैं । इस प्रकार, वे जैनधर्मके पूर्वकालीन और उत्तरकालीन इतिहासके मध्यवर्ती सीमाक्षेत्र समान हैं । उनके समयका यथार्थ निर्णय हो जाने पर, समुच्चय जैन इतिहासके सूत्र-पुंजकी एक बहुत बड़ी गांठ सुलझ सकेगी । केवल जैन साहित्य और समाजके इतिहास ही की दृष्टिसे हरिभद्रके जीवन-समयके निर्णयकी उपयोगिता है, यह बात नहीं है; परंतु भारतवर्षके कई जैन-तर धर्मधुरंधर आचार्यों तथा गीर्वाणनिदाके कई प्रतिष्ठित लेखकोंके समय-विचारकी दृष्टिसे भी उसकी बहुत उपयोगिता है ।

ऐसा कि हमने प्रारंभ ही में सूचित किया है, हरिभद्र एक बहुत बड़े दार्शनिक विद्वान् थे और इस विषयके उन्होंने अनेक उत्तमोत्तम ग्रंथ लिखे हैं । इन ग्रंथोंमें उन्होंने भारतके वैदिक, बौद्ध और चार्वाक आदि सभी मतोंके पुरातन और प्रसिद्ध प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ताओंके तार्किक विचारोंकी जगह जगह आलोचना प्रत्यालोचना की है । इस कारण, हरिभद्रके समय-निर्णयसे उनके पूर्ववर्ती उन अन्य दार्शनिकोंके समयके बारेमें भी बहुतसी शतष्य और निष्पत्तियाँ मिल सकती हैं; और आज तक जो कितनीपक परस्पर विद्वद् ऐसी आधुनिक याते पुरातत्त्वज्ञोंके मनको शंकाशील और चिन्तापूर्ण बनाए रखी हैं, उनके लिये, एक और नई दिशामें प्रयत्न कर सन्दिग्ध सिद्धान्तोंके पुनर्विचारका नया मार्ग मिल सकता है ।

युरोपियन स्कॉलरोंमेंसे शायद सबसे पहले प्रो. विटर्सने अपनी ४ या 'रिपोर्टमें' उपमितिम्ब-

१ देवो, क्रोकेसर पिटर्सन साहबकी, बंबई इलाखेमें हस्तलिखित पुस्तकोंके शोधके बारेमें लिखी हुई, ४ थी रीपोर्ट, पृष्ठ (परिशिष्ट), १३७; तथा प्रो. हणोबिन्ददास लिखित, संस्कृत 'हरिभद्रसूरिचरित्रम्' पृष्ठ ११।

२ देवो, रिपोर्ट, पृष्ठ ५; तथा परिशिष्ट (Index of Authors) पृष्ठ ७९।

प्रपञ्चा कथा' नामक धार्मिक नीतिके स्वरूपको अनुपम रीतिसे प्रदर्शित करनेवाले संस्कृत साहित्यके एक सर्वोत्तम ग्रंथके रचयिता जैन साधु सिद्धार्थिका परिचय लिखते हुए, सायबेम्-इन हरिमद्र सूरिके समयका भी उल्लेख किया था। इसके बाद डॉ. क्लॉट्ट (Klatt), प्रो० ल्युमन (Leumann) जेकोबी (Jacobi), बेल्लिनी (Ballini) और मिरोनोव (Mironov) आदि अन्य विद्वानोंने भी प्रसंगवशात् अपने अपने लेखोंमें इस विषयका यथासमय थोड़ा बहुत विचार किया हुआ दिखाई देता है। परन्तु इन समयमें जैनधर्मके विशिष्ट अभ्यासी डॉ. जेकोबीका परिश्रमविशेष उल्लेखके योग्य है। उन्होंने ही ने सबसे पहले हरिमद्रके समयका निर्देश करनेवाले पुरातन कथनके साथ होनेमें सन्देह प्रकट किया था। सन् १९०५ में भाघनजी (हाल बाम्बई) निवासी जैन गृहस्थ मि. एम् जी कापडिया, सोलीसिटर, के कुछ प्रश्न करने पर उक्त डॉ. साहयने, इस विषयमें फिर विशेष ऊहापोह करना शुरु किया, और अन्तमें अपने शोधके परिणाममें जो कुछ निष्कर्ष मालूम हुआ, उसको, उन्होंने 'बिप्लीजोथिका इंडिका' में प्रकाशित उपमितिभवप्रपञ्चा कथाकी प्रस्तापनामें लिपिबद्ध कर प्रकट किया। इसी बीचमें डॉ. सतीशचन्द्र विद्याभूषण महाशयकी 'मध्यकालीन भारतीय न्याय शास्त्रका इतिहास' (History of the Medieval school of Indian Logic.

नामक उपयुक्त पुस्तक प्रकट हुई। इस पुस्तकमें अन्यान्य प्रसिद्ध जैन नैयायिकोंके समान हरिमद्रके समयके विषयमें भी विद्याभूषण जीने अपना विचार प्रदर्शित किया है। परन्तु १२ वीं शताब्दीमें होने वाले इसी नामके एक दूसरे आचार्यके साथ इनकी कुछ कृतियोंका सम्बन्ध लगा कर इस विषयमें कुछ और उलटी गड़बड़ फैलानेकी चेष्टाके सिवा अन्य अधिक वे कुछ नहीं कर सके। प्रस्तुत हरिमद्र के उन प्रसिद्ध दार्शनिक ग्रंथोंका, जिनका निर्देश आगे पर किया जायगा, नामोल्लेख तक भी विद्याभूषणजी अपनी इस पुस्तकमें नहीं कर सके। इससे यह ज्ञात होता है कि उनको हरिमद्रके विशाल साहित्यका कुछ भी हाल मालूम नहीं हो सका। तदनन्तर रसियन विद्वान् डॉ. मीरोनोव ने भी अपने 'दिग्मागका न्यायमवेद और उसपर हरिमद्र की टीका' इस शीर्षक लेख में, (जो बनारसके जैनशासन नामक एक सामयिक पत्रके विशेषांकमें छपा है) प्रस्तुत प्रश्न के सम्बन्धमें कुछ भीमात्सा की है।

यद्यपि डॉ. जेकोबीने, जैसाकि ऊपर लिखा गया है, इस विषयमें कुछ विशेष ऊहापोह कर महत्त्वके मुद्दोंका विचार किया है, तथापि हरिमद्रके सब ही ग्रंथोंका सूक्ष्मदृष्टिसे अवलोकन कर उनमें मिलते हुए आंतर प्रमाणोंके भोजनेकी उन्होंने विद्वकुल चेष्टा नहीं की, और इस लिये वे अपने भ्रंतव्यक्त समर्थनार्थ तन्मयतात्मक ऐसे कुछ भी प्रमाण नहीं दे सके। इस प्रकार यह प्रश्न अभी तक बिना हल हुए ही जैसा का वैसा संशयात्मक दशा में विद्यमान है। आजके इस लेखका उद्देश, हरिमद्रके ग्रंथसमूहका ध्यानपूर्वक निरीक्षण कर उनमेंसे मिलते हुए आंतर प्रमाणोंके आधार पर तथा और भी बाह्य प्रमाण जितने मिल सके हैं उन सबका ठीक ठीक विचार कर, इस प्रश्न का निराकरण करना है।

हरिमद्रसूरिके समयका निर्णय, मुख्य कर उनके बनाये हुए ग्रंथोंमेंसे मिलते हुए साधक-बाधक ऐसे आंतर प्रमाणोंके ऊपर आधार रखता है। इस

१ Klatt, Onomasticon

२ Zeitschrift der Deutschen Morgenland, Gesellschaft, XLIII, A. p. 318.

३ Ballini, Contributo allo studio della upo Katha etc. (R Acad des Lincol, Renduconti XV ser. 5, II sec. 5, 6, 12, p. 5.

४ 'जैन शासन' 'दीर्वालो' 'खास अंक'

५ डॉ. जेकोबी और मि. कापडियाके बीचमें जो पत्र-व्यवहार इस विषयमें हुआ था, यह पत्रव्यवहार प्रसिद्ध होने-वाले 'जैन येताम्बर काफरन्स हेरल्ड' नामक पत्रके ई. स. १९१५के जुलाई-अक्टोबर मासके सयुक्त अंकोंमें प्रकट हुआ है।

लिये प्रथम हम यहां पर, उनके कुछ प्रसिद्ध प्रसिद्ध ग्रंथोंकी नामावली दे देते हैं। हरिभद्रसूरिने अपने जीवनमें जैन साहित्यको जितना पुष्ट किया है उतना अन्य किसीने नहीं किया। उनके बनाये हुए ग्रंथोंकी संख्या बहुत ही बड़ी है। पूर्वपरंपराके कथनानुसार, ये १४०० या १४४० अथवा १४४४ ग्रंथोंके प्रणेता बतलाये जाते हैं। यह संख्या हमारे जैसे आजकलके मनुष्योंको बहुत ही अधिक और अतएव अतिशयोक्ति पूर्ण मालूम होती है; परंतु साथमें यह बात भी अवश्य स्यालमें रखने लायक है, कि इस संख्याके सूचक उल्लेख ८ सौ ९ सौ जितने ग्रंथोंमें भी अधिक पुराण मिलते हैं। इस संख्याका अर्थ चाहे जैसा हो; परंतु इतनी बात तो पूर्ण सत्य है कि, वर्तमानमें जितने ग्रंथ जैन साहित्यमें हरिभद्रके नामसे प्रचलित और प्रसिद्ध हैं, उतने अन्य किसीके नामसे नहीं। और यही एक बात उनके अपारमित ग्रंथकर्तृत्वकी पुष्टिमें स्पष्ट प्रमाण-स्वरूप है। वर्तमानमें उपलब्ध होनेवाले उनके ग्रंथोंमेंसे विशेष प्रसिद्ध, प्रतिष्ठित और मौढ्य ग्रंथोंके नाम इस प्रकार हैं:—

- १ अनेकान्तवाद प्रवेश ।
- २ अनेकान्तजयपताका स्योपपन्नवृत्ति सहित ।
- ३ अनुयोगद्वारा सूत्रवृत्ति ।
- ४ अष्टकप्रकरण ।
- ५ आवश्यकसूत्रवृद्धवृत्ति ।
- ६ उपवेशापदप्रकरण ।
- ७ दशवैकालिकसूत्रवृत्ति ।
- ८ दिग्नागरुत न्यायप्रवेशसूत्रवृत्ति ।
- ९ धर्मबिन्दुप्रकरण ।
- १० धर्मसंग्रहणीप्रकरण ।
- ११ नन्दसूत्रलघुवृत्ति ।
- १२ पचाशकप्रकरण ।

८ इस विषयके उल्लेखोंके लिये देखो पं. श्रीहरिविन्ददास लिखित संस्कृत 'हरिभद्रसूरिचरित्रम्' पृष्ठ १६-२० ।

९ हरिभद्रसूरिके उपलब्ध सब ही ग्रंथोंके नामसंग्रहके लिये, देखो, जैन स्यावली, पृ. ९८-१०३; तथा उक्त पंक्ति लिखित हरिभद्रसूरिचरित्र, पृ. २०-२० ।

- १३ पंचवस्तुप्रकरणटीका ।
- १४ पंचसूत्रप्रकरणटीका ।
- १५ प्रज्ञापनासूत्रप्रदेशन्याय्या ।
- १६ योगदृष्टिसमुच्चय ।
- १७ योगविन्दु ।
- १८ ललितविस्तरा नामक चैत्यवन्दनसूत्रवृत्ति ।
- १९ लोकनृत्तनिर्णय ।
- २० विंशतिकाप्रकरण ।
- २१ पञ्चदर्शनसमुच्चय ।
- २२ शास्त्रवार्तासमुच्चय, स्वकृतन्यायासहित ।
- २३ श्रावकप्रज्ञप्ति ।
- २४ समराष्ट्रचक्रहा ।
- २५ सम्बोधप्रकरण ।
- २६ सम्योधसप्ततिकाप्रकरण ।

हरिभद्रसूरिके बनाये हुए ग्रंथोंकी संख्या इतनी विशाल होने पर भी, उसमें कहीं पर, उनके जीवनके सम्बन्धमें कुछ भी विशेष बात लिखी हुई नहीं मिलती। भारतके अन्यान्य प्रसिद्ध विद्वानोंकी तरह उन्होंने भी अपने ग्रंथोंमें, अपने जीवनसंघर्षोंकी किसी प्रकारका उल्लेख नहीं किया। लिखनेमें मात्र अपने संप्रदायका, गच्छका, गुरुका और एक विदुषी धर्मजननी आर्योका नाम करे जगह लिखा है। यह भी एक सौभाग्यकी बात है। क्यों कि दूसरे ऐसे अनेक विद्वानोंके बारेमें तो इतना भी उल्लेख नहीं मिलता। हरिभद्रके किये हुए इन गुर्वादिके नामोंके उल्लेखानुसार, उनका संप्रदाय श्वेताम्बर था। गच्छका नाम विद्याधर, गच्छपति आचार्यकानाम जिनभट्ट दशप्रदायक गुरुका नाम जिनदत्त, और धर्मजननी साध्वीका नाम याकिनी महत्तरा था। इन सब याताँका उल्लेख, उन्होंने एक ही जगह, आवश्यकसूत्रकी टीकाके अन्तमें इस प्रकार किया है:—

“समाप्ता चैव शिष्यहिता नामावश्यकटीका ।
कृतिः सिताम्बराचार्यजिनभट्टनिगदानुसारिणो विद्याधरकुलतिलकाचार्यजिनदत्तशिष्यस्य धर्मतो याकिनीमहत्तरासूत्रोत्पत्तेश्चैव हरिभद्रस्य १० ।”

१०. देखो, पिटर्सन साहबकी ३ री रिवीट, पृष्ठ २०२; तथा ४ थी रिवीट, परिशिष्ट, पृष्ठ ६७ । वेबर साहबकी बालनकी रिवीट, पुस्तक २, पृष्ठ ७८६ ।

[टिप्पणी—हरिभद्रसूरिके शुरूके नामके सम्बन्धमें डा. जेकोबा और अन्य कई तद्वानोंका एक खास ग्रन्थ हो रहा है । वे हरिभद्रके शुरूका नाम जिनभद्र या जिनभट समझते हैं । डॉ. जेकोबाने, जर्मन और एन्टल सोचाइटीके, ४० वें जर्नल (पुस्तक) में, पृ. ९४ पर, यह दिसलानका प्रयत्न किया है कि, आचार्यसूत्रकी टीका बनानेवाले आचार्य शीलाहू और हरिभद्र दोनों शुरुबन्ध थे—एक ही शुरुके विषय थे । क्यों कि दोनोंके शुरूका नाम जिनभद्र या जिनभट है । और इसी लिये वे दोनों समकालीन भी थे । परन्तु उनका यह कथन ठीक नहीं है । क्यों कि इस आवश्यक सूत्रकी टीकाके अन्तिम वाक्यसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि हरिभद्रके दशरामदायक गुरु तो विद्याधर गच्छादय आचार्य जिनदत्त थे । जिनभट सूरि या तो हरिभद्रके विद्यागुरु होंगे या अन्य किसी कारणसे उन्हें वे अपने विशेष पूज्य समझते होंगे । इसी लिये, इस उपर्युक्त वाक्यमें उन्होंने प्रथम जिनभटका नामोल्लेख किया है और अपनेको उनका आनाधारक (—निग-दानुसारिणी) बतलाया है । इस प्रकार जिनभट और जिनदत्त दोनों हरिभद्रके समान पूज्य होनेके कारण कहीं तो उन्होंने जिनदत्त सूरिका (जैसा कि सम्राट्चक्रवर्तीके अंतमें) उल्लेख किया है और कहाँ जिनभट सूरिका । (देखो, प्रमाणसूत्रवृत्तिका अन्तिम पद्य, किन्हेन साहचर्य रिशेर्, पृ. ११) । प्रभावक चरित्र आदि ग्रंथोंमें यद्यपि हरिभद्रके शुरूका नाम मात्र जिनभट ही लिखा हुआ मिलता है, परन्तु उसके कथनकी अपेक्षा साक्षात् प्रेयकारका यह उपर्युक्त कथन विशेष प्रामाणिक होना चाहिए । डॉ. जेकोबाने जो उनके शुरूका नाम जिनभद्र बतलाया है वह इस उल्लेखित भ्रान्तिमूलक सिद्धि ही जाता है । जिनभट और जिनभद्र शब्दके बोलने और लिखनेमें प्रायः समानता ही होनेके कारण, इस भ्रान्तिका होना बहुत स्वाभाविक है । रही बात, शीलाहू और हरिभद्रके समकालीन होनेकी, तो उसका निर्णय तो इस निबन्धका अगला भाग पूर्ण पद लेने पर अपने आप हो जायगा ।]

आवश्यकसूत्रकी टीकाके उपर्युक्त अन्तिम उल्लेखसे अधिक कोई बात हरिभद्रने अपने किसी प्रथम नहीं लिखी । इस लिये उनके जीवनके बारेमें इससे अधिक कोई बात, उन्हींके ग्रन्थोंमें मिल सके, वैसी आशा रखनी तो सर्वथा निरर्थक है । परन्तु पिछले कई ग्रंथोंमें—चाहे किम्बदन्ती ही के रूपमें

क्यों न हो—उनके विषयमें कई प्रकारकी मिश्र मिश्र बातें लिखी हुई अवश्य मिलती हैं । हमारे इस लेखका उद्देश्य हरिभद्रके चरित्रवर्णन करनेका नहीं है, इस लिये, इस बारेमें हम कोई विशेष बात नहीं लिखना चाहते । परन्तु, पाठकोंके सूचनाार्थ, मुख्य कर जिन जिन ग्रंथोंमें हमने हरिभद्रके जीवनसम्बन्धी छोटे घड़े उल्लेख दिये हैं उनके नाम यहाँ पर निर्दिष्ट किये देते हैं ।

इन ग्रंथोंमें सबसे विशेष उल्लेख योग्य प्रमाणें रचित प्रभावक चरित्र है । यह ग्रंथ विक्रमसंवत् १३३५ में बना है । इस ग्रंथके ९ वें प्रबन्धमें, उत्तम प्रकारकी काव्यशैलीमें, विस्तारपूर्वक हरिभद्रका चरित्र वर्णित किया हुआ है (—इस चरित्रमें कहीं गई बातें कहाँ तक सत्य हैं उसके बारेमें हम अपना कुछ भी अभिप्राय यहाँ पर नहीं दे सकते) । इस ग्रंथके बाद राजशेखरसूरिके (वि. सं. १४०५ में) बनाये हुए प्रबन्धकोप नामक ऐतिहासिक और किम्बदन्ती स्वरूप कितनेएक प्रबन्धोंके समूहात्मक ग्रंथमें भी इनके विषयमें कितनाएक वर्णन किया हुआ मिलता है । हरिभद्रसूरिके जीवनसम्बन्धमें कुछ विस्तारके साथ बातें उन्हीं दो पुस्तकोंमें लिखी हुई मिलती हैं । सक्षेपमें तो कुछ उल्लेख, इन ग्रंथोंके पूर्व बने हुए ग्रंथोंमें भी कहीं कहीं मिल आते हैं । ऐसे ग्रंथोंमें, काल-क्रमकी दृष्टिसे, प्रथम ग्रन्थ मुनिचन्द्रसूरिरचित उपदेशपद (जो हरिभद्र ही का बनाया हुआ एक प्रकरण लघु है) की टीका है । इस टीकाके अंतमें, बहुत ही सक्षेपमें,—परन्तु प्रभावक चरित्रकारने अपने प्रबन्धमें जितना चरित्र वर्णित किया है उसका बहुत कुछ सार बतलाने वाला—हरिभद्रके जीवनका सूचन किया है । दूसरा ग्रंथ, भद्रेश्वरसूरिका बनाया हुआ प्रारुतभाषा मय कथापली नामक है । इसमें चौबीस ही ती-

११ यह टीका वि. सं. ११०८ में समाप्त हुई थी ।

१२ यह ग्रंथ क्या बना इसका कोई उल्लेख नहीं मिला । रचनाशैली और कर्ताके नामसे अनुमान होता है कि १२ वीं शताब्दीमें इसका प्रणयन हुआ होगा । इस दाताब्दीमें भद्रेश्वर नामके दो तान विद्वानोंके हो जानेके उल्लेख मिलते हैं ।

यैकरोके चरित्रोंके साथ अंतमें भद्रबाहु, ध्वजस्वामी सिद्धसेन आदि आचार्योंकी कथायें भी लिखी हुई हैं, जिनमें अंतमें हरिभद्रकी जीवनकथा भी सम्मिलित है । इसी तरह थोडासा हाल गणधरसार्द्ध-शतककी सुमतिगणीकी बनाई हुई वृहत् टीकामें भी उल्लिखित है ।

इस सब ग्रंथोंमें लिखे हुए वर्णनोंपरसे जो निष्कर्ष निकलता है वह यह है कि हरिभद्र पूर्वावस्थामें एक बड़े विद्वान् और वैदिक ब्राह्मण थे । चित्रकूट (मेवाड़की इतिहास प्रसिद्ध घोरभूमि चित्ताड़े गढ़) इनका निवास-स्थान था । याकिनी महत्तरा नामकी एक विदुषी जैन आर्या (धम्मणी = साध्वी) के समागमसे उनकी जैनधर्मपर भ्रष्टा हो गई थी और उसी साध्वीके उपदेशानुसार उन्होंने जैनशास्त्र-प्रतिपादित-संन्यासधर्म-श्रमणव्रतका स्वीकार कर लिया था । इस संन्यासावस्थामें जनसमाजकी निरंतर सद्बोध देनेके सिवा उन्होंने अपना समग्र जीवन सनत साहित्यसेवामें व्यतीत किया था । धार्मिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक विषयके अनेकानेक उच्चमोक्षमौलिक ग्रंथ और ग्रंथविवरण लिखकर उन्होंने जैनसाहित्यका—और उसके द्वारा समुच्चय भारतीय साहित्यका भी—बड़ा भारी उपकार किया है । जैनधर्मके पवित्र पुस्तक जो आगम कहे जाते हैं, वे प्राकृत भाषामें बने हुए होनेके कारण विद्वानोंकी और साथमें अल्पबुद्धिवाले मनुष्योंकी भी अल्प उपकारी हो रहे थे इस लिये उन पर संस्कृत संस्कृत टीकायें लिख कर उन्हें सबके लिये सुबोध बना देनेके पुण्यकार्यका प्रारम्भ इन्हीं महात्माने किया था । इनके पहले आगम ग्रंथों पर शायद संस्कृत टीकायें नहीं लिखी गई थीं । उस समय तक प्राकृतभाषामय चूर्णयें ही लिखी जाती थीं । निदान वर्तमानमें तो इनके पूर्वकी किसी सूत्रकी कोई संस्कृत टीका उपलब्ध नहीं है । अस्तु ।

इनके बनाये हुए आध्यात्मिक और तात्त्विक ग्रंथोंका स्वाध्याय करनेसे मालूम पड़ता है कि, ये प्रकृतिते बड़े सरल, आकृतिते बड़े सौम्य, और वृत्तिते

बड़े उदार थे । इनका स्वभाव सर्वथा गुणानुरागी था । जैनधर्म ऊपर अनन्य भ्रष्टा रखने पर, और इस धर्मके एक महान् समर्थक होने पर भी, इनका हृदय निष्पक्षपातपूर्ण था । सत्यका आदर करनेमें ये सदैव तत्पर रहते थे । धर्म और तत्त्वके विचारोंका ऊहापोह करते समय ये अपनी मध्यस्थता और गुणानुरागिताकी किञ्चित् भी उपेक्षा नहीं करते थे । जिस किसी भी धर्म या सम्प्रदायका जो कोई भी विचार इनकी बुद्धिमें सत्य प्रतीत होता था उसे ये तुरन्त स्वीकार कर लेते थे । केवल धर्म-भेद या सम्प्रदाय-भेद ही के कारण ये किसी पर कटाक्ष नहीं करते थे—जैसे कि भारतके अन्यान्य बहुतसे प्रसिद्ध आचार्यों और दार्शनिकोंने किये हैं । बुद्धदेव, कपिल, व्यास, पतञ्जलि, आदि विभिन्न धर्मप्रवर्तकों और मतयोगियोंका उल्लेख करते समय इन्होंने उनके लिये, भगवान्, महामुनि, महर्षि, इत्यादि प्रकारके बड़े गौरवसूचक विशेषणोंका प्रयोग किया है— जो बात हमें इस प्रकारके दूसरे ग्रन्थकारोंकी लेखनशैलीमें बहुत कमदेखि-गोचर होती है । कहनेका तात्पर्य यही है कि ये एक बड़े उदारचेता साधु पुरुष थे । सत्यके उपासक थे । भारतवर्षके समुचित धर्माचार्योंके पुण्य-श्लोक इतिहासमें ये एक उच्च श्रेणिमें विराजमान होने योग्य संविहृद्देवर्षी जैनाचार्य थे ।

हरिभद्रके जीवनके विषयमें उपर्युक्त थोड़ीसी प्रासंगिक बातें लिख कर, अब हम, प्रस्तुत निबन्धके मुख्य विषयकी विवेचना करना चाहते हैं ।

हरिभद्रसूरिके जीवन-वृत्तान्तके विषयमें अल्प-स्वल्प उल्लेख करनेवाले जिन ग्रंथोंके नाम हमने ऊपर सूचित किये हैं, उनमें इस बातका कोई उल्लेख या सूचन नहीं है कि ये सूरि किस समयमें हुए हैं । इस लिये, प्रस्तुत विचारविवेचनमें उन ग्रंथोंसे हमें किसी प्रकार की साक्षात् सहायता के मिलनेकी तो बिल्कुल आशा नहीं है । यदि, उन ग्रंथोंमें जीवनवृत्तान्तके साथ हरिभद्रके समयका सूचक भी कोई उल्लेख किया हुआ होता, तो उनके विषे हुए वर्णनोंमें कुछ और विशेष महत्ता और विश्वसनीयता आ जाती । परन्तु, वास्तवमें, उन

ग्रंथकारोंका उद्देश्य कोई सन्-संघट्टार अन्येषणात्मक इतिहास लिखनेका नहीं था । उनका उद्देश्य तो मात्र अपने धर्मके समर्थक और प्रभावक आचार्यों तथा विद्वानों, धर्मकी प्रभावनाके लिये, किस प्रकारके लोगोंको चमत्कार बतलाये अथवा किस प्रकार पर्यायियोंके पाण्डित्यका पराभव किया, इत्यादि प्रकारकी जो जनमनरंजन बाते पूर्वपरंपरासे कंठस्थ चली आती थीं, उनको पुस्तकारुढ कर शाश्वत बनानेका; और इस प्रकारसे सर्वसाधारणमें धर्मप्रभावकी महत्ता प्रदर्शित करनेका था । हां, इस उद्देश्यकी दृष्टिसे प्रबन्धादि लिखते समय प्रबन्धलेखकको यदि प्रबन्धनायकके विषयमें किसी विशेष घटनासूचक संवत्तादिका कहींसे उल्लेख जो प्राप्त हो जाता था, तो उसे वह अपने निबन्धमें कभी कभी प्रथित भी कर देता था । परंतु, जिस अतुरताके साथ आज कल हम सन् संवत्तादिकी प्राप्तिके लिये उत्सुक रहते हैं और उसके अन्वेषणके लिये दीर्घ परिश्रम करते रहते हैं, वैसी प्रकृति भारतवर्षके पुराणे प्रबन्धलेखकोंकी नहीं दिखाई देती ।

यद्यपि हमारा यह उपर्युक्त कथन भारतवासी विद्वानोंके लिये सर्वसाधारण है; तथापि, हमें लिखते हुए एक प्रकारसे हर्ष होता है कि, जैन धर्मके जूने विद्वानोंमें कुछ ऐसी प्रकृतिवाले विद्वान् भी हो गये हैं, जो इस कथनके अपवाद-स्वरूप हैं । इन विद्वानोंके बनाए हुए निबन्धोंमेंसे दो बार ऐसे निबन्ध भी जैनसाहित्यकी द्रोभा बढा रहे हैं, जिन्हें हम निःसन्देह रीतिसे—उनके कर्ताके समयमें उपलब्ध हो सकने वाली तद्विषयक साधन-सामग्रीकी अपेक्षासे—आधुनिक अन्वेषणात्मक पद्धतिसे लिखे जानेका सम्मान दे सकते हैं^१ । यह बात अलग है कि, कदाचित् इन प्रबन्धोंमेंका ऐतिहासिक निष्कर्ष, हमारी आधुनिक अन्वेषणाके नि-

^१ मेस्तुझाचार्य विरचित-विचारभेणि; किसी अज्ञात-नामा विद्वान्की बनाई हुई—शुर्वाबलीविशुद्धि; धर्मसागरोपाध्यायकृत—प्रवचनपरिचयान्तर्गत कुछ भाग; समयगुन्दरचित—समाचारोपकरणगत कुछ बिभाग; इत्यादि प्रकारके पण्य हमारे इस कथनके उदाहरण स्वरूप हैं ।

ष्कर्षके मुकाबले, किसी अंशमें, सत्य नहीं प्रतीत हो (और ऐसा निर्विवाद सत्य तो आज कल भी सभी ऐतिहासिक सिद्धान्तोंमें कदां स्वीकृत है) । क्यों कि हमारी आधुनिक साधन-सामग्री और उस पुराणे जमानेकी साधन-सामग्रीमें आकाशपाताल जितना अन्तर है । अस्तु ।

यद्यपि, उक्त कथनानुसार, हरिभद्रके जीवन-वृत्तान्तका सूचन करनेवाले ग्रंथोंमें, उनके समयका कोई निर्देश किया हुआ नहीं मिलता; तथापि जैन गुरुपरंपरा-सम्बन्धी जो कितनेएक कालगणनात्मक प्रबन्धादि उपलब्ध हैं, उनमेंसे किसी किसीमें, इनके समयका उल्लेख किया हुआ अवश्य विद्यमान है । इस प्रकारके कालगणनात्मक प्रबन्धोंमें, प्रथम और प्रधानतया जो प्रबन्ध उल्लेखयोग्य है, वह अञ्चलगच्छीय आचार्य मेरुतुङ्गाका बनाया हुआ विचारभेणि नामक^२ है । मेरुतुङ्गाचार्यने अपना प्रबन्धचिन्तामणि^३ नामक प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रंथ वि. सं. १३६० में समाप्त किया था । प्रस्तुत विचारभेणि-

^१ यह प्रबन्ध पुरातत्त्वज्ञोंको सुपरिचित है । महावीर निर्वाण और विजय संघत् के विषयकी आलोचनामें इतिहासज्ञोंको मुख्य कर यही प्रबन्ध विषयभूत हो रहा है (देखो, डॉ. जेवोबोकी कल्पसूत्रकी प्रस्तावना; और, जालंधा पंडित-वरका महाश्वर समयनिर्णय नामक निबन्ध; इण्डियन एंटीक्वेरी, पृ. ४१) । सायद, सबसे पहले, प्रसिद्ध शोधक डॉ. भाऊ दानीने, सन् १८७२ में, बम्बईकी रायल एशियाटिक सोसाइटीकी शाखाके सन्ध्योंके सम्मुख इस प्रबन्ध पर एक निबन्ध पढ़ा था । (वह निबन्ध, इसी सोसायटिके वृत्तपत्र (जर्नल) के ९ वें भागमें, पृ. १४७-१५७ पर प्रकट हुआ है) डॉ. बुन्दरने इसको इंग्रेजी नाम “Catena of Enquiries” दिया है (—दे. ए. पृ. २; दृ. ३६२) । आश्चर्य है कि यह ऐसा विवेचनीय प्रबन्ध अभी तक मूल-रूपमें कहीं प्रकट नहीं हुआ । पाठकोंको जान कर खुशी होगी कि थोड़े ही समयमें हम इसे छपा कर प्रकट करना चाहते हैं ।

^२ यह ग्रंथ गुजराती भाषांतर सहित, अमदावादके रामचंद्र दीनानाथ काकोने, सन् १८८८ में छपा कर प्रकट किया है । इसका इंग्रेजी अनुवाद भी बंगालकी रायल एशियाटिक सोसाइटीने प्रकट किया है ।

में वि. सं. १३७१ में, समरासाहने' शत्रुंजयका जो उद्धार किया था, उसका उल्लेख किया हुआ है। इस लिये विक्रमकी १४ वीं शताब्दीके पिछले पादमें इस प्रबन्धकी रचना हुई, ऐसा माननेमें कोई आपत्ति नहीं है। इस प्रबन्धमें एक पुराणी प्राकृत गाथा उद्धृत की हुई है, जिसमें लिखा है कि, विक्रम सं-वत् ५८१ में हरिमन्नसूरिका स्वर्गवास हुआ था। गाथा इस प्रकार है—

पंचसप पणसीए' विक्रम कालाउ ज्ञाति अत्यमियो ।

हरिमन्नसूरि-सूरो भवियाणं दिसउ कल्लाणं ॥

अर्थात्—'विक्रम संवत् ५८१ में अस्त (स्वर्गस्थ) होने वाले हरिमन्नसूरिरूप सूर्य भग्नजनोंको कल्याण प्रदान करें।'।

१७ इस उद्धारका विशेष उल्लेख, हमारी शत्रुंजयतीर्थों द्वार प्रबन्ध नामक पुस्तकके उपोद्घात, पृ. ११-१३ में किया हुआ है।

१८ प्रो. विट्ठलने आपनी १री रिपोर्टें पृ २७२ पर, प्रथमसूरिविरचित 'विचारसारप्रकरण' के, और पृ. १८४ पर, समयसंदर्भ गणिके 'गाथासहस्री' नामक ग्रंथके, जो अवतरण किये हैं उनमें यह प्रकृत गाथा भी सम्मिलित है। वहा पर, 'पणसीए' के स्थान पर 'पणतीए' ऐसा पाठ मुद्रित है। इस पाठ-भेदके कारण, कई विद्वान् ५८५ के बदले ५३५ के वर्षमें हरिमन्नकी मृत्यु हुई मानते हैं, परंतु, वास्तविकमें वह पाठ अशुद्ध है। क्योंकि प्राकृत भाषाके नियमानुसार ३५ के अंकके लिये 'पणती'से 'शब्द होता है, 'पणतीए' नहीं। यद्यपि, लेखक—पुस्तककी नकल उतारने-वाले—के प्रमादसे 'पणतीसे' की जगह 'पणतीए' पाठका लिखा जाना बहुत घट्ट है, और इस लिये 'पणतीए' के बदले 'पणतीसे' के शुद्ध पाठकी कल्पना कर ८५ के स्थान पर ३५ की संख्या गिन लेनेमें, भाषा-विज्ञानकी दृष्टिसे कोई अनुचितता नहीं कही जा सकती, परंतु, प्रकृत विषयके कालसूचक अन्यान्य उल्लेखोंके ध्वनिानुसार यहाँ पर 'पणतीए' पाठका होना ही युक्तिसंगत और प्रमाणवित है। यहुतसी हस्तलिखित प्रतियोंमें भी यही पाठ उपस्थित होता है। जो. वेवरने, बर्लिनके राजकीय पुस्तकालयमें संरक्षित संस्कृत-प्राकृत पुस्तकोंकी रिपोर्टें, भाग २, पृ ९२३ पर भी, 'पणतीए' पाठ ही को शुद्ध लिखा है और 'पणतीए' को अशुद्ध ।

यहाँ पर यह बात सास ध्यानमें रख लेनेकी है कि यह गाथा मेरुतुगने 'उक्तं च—' कह कर अपने प्रबन्धमें उद्धृत की है—नई नहीं बनाई है। मेरुतुङ्गा-चार्यके, निश्चितरूपसे पहलेके बने हुए किसी ग्रंथमें यह गाथा अभी तक हमारे देखनेमें नहीं आई। इस लिये यह कुछ भी नहीं कह सकते कि यह गाथा कितनी प्राचीन है। परन्तु मेरुतुङ्गसे तो निश्चित ही १०० २०० वर्ष पुराणी अवश्य होनी चाहिए। विचारभे-णिमें 'जं रूयणि कालगमो' इत्यादि वाक्यसे प्रा-रभ होने वाली, और महावीर निर्वाण और विक्रम संवत्के बीचके राजवंशोंका समयनिरूपण करने वाली जो तीन प्राकृत गाथाएँ हैं, प्रायः धैसी ही गाथाएँ तो 'तिथोग्गालियपइण्णा' नामक प्राकृत ग्रंथमें भी मिलती है, परंतु हरिमन्नके मृत्यु-सम-यका विधान करनेवाली प्रस्तुत गाथा वहाँ पर नहीं दिखाई देती। इस लिये यह भी नहीं कह सकते कि मेरुतुगने कौनसे ग्रन्थमेंसे इसे उद्धृत की है। और, कुछ भी हो, परंतु इतनी बात तो सत्य है कि १४ वीं शताब्दीसे तो यह गाथा अवश्य पूर्वकी बनी हुई है।

इसी गाथाको प्रयुग्मसूरिने' अपने 'विचारसार

१९ ये सूरि धर्मसोपसूरिके शिष्य, देवप्रभके शिष्य थे। इनका निधित समय शात नहीं हुआ। समय है कि कदाचित् ये मेरुतुगके पूर्ववर्ती हों, और 'विचारभेणि' में की बहुतसी प्राकृत गाथायें ईन्हींके 'विचारधार' प्रकरण' में भी ली गई हों—यद्यपि इसमें भी वे सब गाथायें संगृहीत मात्र ही हैं, नवीन रचित नहीं। यदि विशेष खोज करने पर, इन संग्रह-कारके समयका पता लग गया और ये मेरुतुगके पूर्ववर्ती निश्चित हुए, तो फिर हरिमन्नकी मृत्यु ५८५ तक प्रकृत गाथाके प्रथम अवतरणका मान, इन्हींके इस 'विचारसार प्रकरण'को देना होगा। इस प्रकरणमें, एक दूसरी बात यह भी है कि, प्रकृत गाथाके साथ, प्रकरणकारने 'अह वा' (अ. अह वा) श्लोक एक दूसरी भी प्राकृत गाथा लिखी—उद्धृत की है—है, जिसमें, वीर-निर्वाणसे १०५५ वर्षपाद हरिमन्न हुए, ऐसा कथन है। इस गाथाके उद्धृत करनेका मतलब, लेखकको इतना ही मात्थम देता है कि हरिमन्नसूरिका स्वर्ग समय प्रधान गाथामें जो वि. सं. ५८५ बन-लाया है वह इस दूसरी गाथाके कथनसे भी समर्थित होता

प्रकरण ' में, और समयसुंदर गणितें' स्व-सृष्टीत
'गाथासहस्री' नामक प्रबन्धमें भी उद्धृत की है ।
पुनः इसी गाथाके आशयको ले कर कुलमंडनसूरिने
'विचारामृतसंग्रह' में, और धर्मसागर उपाध्यायने
तपागच्छगुर्वाली में, लिखा है कि, महावीर निर्वा-
णके पश्चात् १०५५ वें (वीर नि ४७० अनन्तर
विक्रम संवत्की शुरुआत, तदनन्तर ५८५ ४७० +
५८५ = १०५५) वर्षमें हरिभद्रसूरिका स्वर्गवास
हुआ था । इन पिछले दोनों ग्रंथकारोंका कथन
क्रमशः इस प्रकार है—

(१) ' श्रीवीरनिर्वाणात् सहस्रवर्षं पूर्वश्रुतव्यव-
च्छिन्नम् । श्रीहरिभद्रसूर्यस्तदनु पञ्चपञ्चाशता वर्ष-
दिव प्राप्ताः । ' —विचारामृतसंग्रह ।

(२) श्रीवीरात् पञ्चपञ्चाशदाधिकसहस्रवर्षं विक्र-
मात् पञ्चाशतिवधिकपञ्चशतवर्षं याकिनीसुनुः श्रीहरिभ-
द्रसूरिः स्वर्गमाप् । —तपागच्छगुर्वाली ।

मुनिसुन्दरसूरिने जो तपागच्छकी पद्ययुक्त गुर्वा-
वली (संघट १४६६) बनाई है उसमें हरिभद्रसूरि-
को मानदेवसूरि (द्वितीय) के मित्र बताया है ।
इन मानदेवका समय पट्टावलियोंकी गणना और
मान्यता अनुसार विक्रमकी ६ टी शताब्दी, समझा
है । क्योंकि ५०५५ विक्रम-वत्सर महानोर संवत् १०५५ के
बराबर (४७० + ५८५ = १०५५) ही होता है । प्रथमसूरि
समुदाय दूसरी प्रकृत गाथा इस प्रकार है—

पण पत्र-दस-सण्दि हरिसुरी आसि तथ पुण्णहुई ।
तेरसकूरिसण्दि अईण्दि बि बण्णमहिपड्ड ॥
विज्जन, रिपोर् ३ पृ २७३।

१० समयसुन्दरगणिते गाथासहस्री स. १९८९ में बनाई
है । देखो, -पि. रि. ३, पृ २९० ।

—विचारसार प्रकरण और गाथासहस्रीमें प्रस्तुत गाथा-
के चतुर्थ पादमें कुछ पाठ-भेद है, परन्तु अर्थ-तात्पर्य एक
ही होनेसे उसके उल्लेखकी कोई आवश्यकता नहीं
प्रतीत होती ।

११ ये आचार्य विक्रमकी १५ वी शताब्दीके पूर्वार्द्धमें
हुए हैं ।

१२ धर्मसागरजी १७ वी शताब्दीके पूर्वार्द्धमें विघ-
मान थे ।

जाता है । अतः यह उल्लेख भी हरिभद्रसूरिके
गाथोक्त समयका सचादी गिना जाता है ।

मुनिसुन्दरसूरिका उल्लेख इस प्रकार है—

अमूद् गुरुः श्रीहरिभद्रमित्र
श्रीमानदेवः पुनरेव सूरिः ।
यो मान्यतो विस्मृतमुरिमन्त्रं
लेभेऽभिकाऽऽम्यात्पसोजयन्ते ॥

—गुर्वावली (यतीवि. मं. काथी) पृ ४।

इस प्रकार इन सय ग्रंथकारोंके मतसे हरिभद्र-
सूरिका सत्ता-समय विक्रमकी ६ टी शताब्दी है
और उनका स्वर्गवास स. ५८५ (ई. स. ५२९)
में हुआ था ।

परन्तु, इसी प्रकारके याज्ञ-प्रमाणोंमें, कुछ ऐसे
भी प्रमाण उपलब्ध होते हैं जिनके कारण इस
गाथोक्त समयकी सत्यताके बारेमें विद्वानोंको
बहुत समयसे संदेह उत्पन्न हो रहा है । इन
प्रमाणोंमें, जो मुख्य उल्लेख योग्य हैं, वह बहुत मह-
त्वका और उपर्युक्त समयसाधक प्रमाणोंसे भी
बहुत प्राचीन है । यह प्रमाण महात्मा सिद्धार्थके
महान ग्रन्थ उपमितिभयप्रपञ्चा कथामें उल्लिखित
है । यह कथा संवत् ९६२ के ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी,
गुरुवारके दिन, जब चंद्रमा पुनर्वसु नक्षत्रमें स्थित
था, तब समाप्त हुई थी । ऐसा स्पष्ट उल्लेख, इस
कथाकी महास्तिमें सिद्धार्थने स्थप किया है । यथा-
संवत्तरशतनवके द्विष्टिषड्विंशतेऽतिलङ्घिते चास्याः ।

ज्येष्ठे सितपञ्चम्या पुनर्वसौ गुरुदिने समाप्तिरमृत ॥

यद्यपि ग्रन्थकर्ताने यहां पर मात्र फेवल 'संवत्'
शब्द ही का प्रयोग किया है जिससे स्पष्टतया यह

२३ धर्मसागरगणिते अपनी पद्यावलिमें इसी पद्यका समा-
नार्थक एक दूसरा पद्य उद्धृत किया है । यथा—

विचारसुन्दरहरिभद्रमुनी-शमित्र
सुखिर्भूव पुनरेव हि मानदेवः ।
मान्यात् प्रयातमांषो योऽनपसुरिमन्त्रं
लेभेऽभिकाऽमुषागिरा तपसोजयन्ते ॥

वही पद्य पुनः पूर्णिमापच्छकी पद्यावलीमें भी मिलता
है ।—देखो, पं. हरगोविन्ददासका हरिभद्रचरित्र पृ. १८।

नहीं ज्ञात हो सकता कि, वीर, विक्रम, शक, गुप्त आदि संवत्तमेंसे प्रस्तुतमें कौनसा संवत् कथा-कारको विवक्षित है; तथापि, संवत् के साथ मास, तिथि, वार और नक्षत्रका भी स्पष्ट उल्लेख किया हुआ होनेसे, ज्योतिर्गणितके नियमानुसार गिनती करने पर, प्रकृतमें विक्रम संवत् ही का विधान किया गया है, यह बात स्पष्ट मालूम पड़ आती है। सिद्धार्थके लिखे हुए इस संवत्, मास और तिथि आदिकी तुलना ई. स. के साथ की जाय तो, गणित करनेसे, ९०६ ई. के मई महीनेकी १ तारीख के बराबर इसकी एकता होती है। इस तारीखको भी वारगुरु ही आता है और चन्द्रमा भी सूर्योदयसे लेकर मध्याह्न कालके बाद तक पुनर्वसु नक्षत्र ही में रहता है।^{१५}

२४ किसी किसीकी कल्पना इस संवत्को वीर-निर्वाण संवत् माननेकी होती है। अगर इस कल्पनाके मुताबिक गणित करके देखा जाय तो वीर सं. ९६२ के ज्येष्ठ शुक्ल ५ मीके दिन ई. स. ४१६ के मई मासकी ७ वी तारीख आती है। वीर उक्त दिन भी गुरु ही मिलता है, परंतु चन्द्रमा उक्त दिन प्रातः कालमें २ घंटे तक पुष्य नक्षत्रमें रह कर फिर अश्लेषा नक्षत्रमें चला जाता है; इस लिये नक्षत्र उक्त दिन मध्यमें लिखे मुताबिक नहीं मिलता। इसके सिवा इस कल्पनामें एक बड़ा और प्रत्यक्ष विरोध भी है। उक्त प्राकृत गाथामें जो हरिमन्नका युवुत्तमय बतलाया गया है उससे, यह समय लगभग १०० वर्ष जितना उलटा पाछे चला जाता है—अर्थात् सिद्धार्थ हरिमन्नके भी शतवर्ष पूर्व-वर्ती हो जाते हैं। सिद्धार्थका, ऐसा कि आगे चल कर बतलाया जायगा, हरिमन्नके पहले होगा सर्वथा अविद्य है। इस लिये सिद्धार्थका लिखा हुआ यह संवत् विक्रम संवत् ही है।

प्रो. पिटरसनने अपनी ४ थी रिपोर्टके ५ वें पृष्ठ ऊपर सिद्धार्थके इस संवत्का वीरनिर्वाण संवत् मान कर, और उसके मुकाबलेमें विक्रम संवत् ४९२ के बदले ५९२ लिख कर गायोस्त हरिमन्नके समयके साथ मेल मिलाना चाहा है। परंतु इस गिनतीमें तो प्रत्यक्ष रूप से ही १०० वर्ष की गड़ी भूल की गई है। क्योंकि ९६२ में से ४०० वर्ष निकाल देनेसे, शेष ५६२ रहते हैं, ५९२ नहीं। इस लिये पिटरसन साहयकी कल्पनामें कुछ भी तथ्य नहीं है। डॉ. जेकोबीने भी इस कल्पनाको त्याग बतलाया है। देखो, उपनिषत्सम्बन्धी प्रस्तावना—पृष्ठ ८ की पाद टीका।

इस कथाकी प्रशस्तिमें सिद्धार्थने प्रारंभमें ९ श्लोकों द्वारा अपनी मूल गुरुपरंपराका उल्लेख कर, फिर हरिमन्नसूरिकी विशिष्ट प्रशंसा की है और उन्हें अपना धर्मबोधकर गुरु बतलाये हैं। प्रशस्तिमें हरिमन्नकी प्रशंसावाले निम्नलिखित तीन पद्य मिलते हैं।—

- (१५) आचार्यहरिमन्नो मे धर्मबोधकरो गुरुः ।
प्रस्तावे भावतो हन्त स एवाद्ये निवेदितः ॥
(१६) विषं विनिर्धूय कुवासनामयं
व्यचीचरद् यः कृपया मदाशये ।
अचिन्त्यवीर्येण सुवासनासुधां
नमोऽस्तु तस्मै हरिमन्नस्य ॥
(१७) अनागतं परिज्ञाय चैत्यवन्दनसंश्रया ।
मदर्थेन कृता येन वृत्तिलसितविस्तरा ॥^{१६}

इन पद्योंका भावार्थ इस प्रकार है—

(१५) आचार्य हरिमन्न मेरे धर्मबोधकर—धर्मका बोध (उपदेश) करनेवाले—गुरु हैं। इस कथाके प्रथम प्रस्तावमें मैंने इन्हीं धर्मबोधकर गुरुका निवेदन किया है।

(१६) जिसने कृपा करके अपनी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे मेरे हृदयमेंसे कुवासना-सुर्वि-

२५ डॉ. जेकोबी, इन पद्योंके पहलेके और ३ (नं. १२-१३-१४ वाले) श्लोकोंकी भी हरिमन्न ही की प्रशंसा में लिखे हुए समझते हैं और उनका भावान्तर भी उन्होंने अपनी प्रस्तावना (पृ. ५) में दिया है। परंतु यह डॉ. साहबका भ्रम है। उन तीन पद्योंमें हरिमन्नकी प्रशंसा नहीं है परंतु सिद्धार्थकी प्रशंसा है। इनके पूर्वके दूसरे दो (नं. १०-११) श्लोकोंमें भी सिद्धार्थ ही का जिक्र है। वास्तवमें हमारे बिचारसे नं. १० से १३ तकके ४ पद्य स्वयं सिद्धार्थके बनाए हुए नहीं हैं, परन्तु उनके शिष्य या अन्य किसी दूसरे विद्वान्के बनाये हुए हैं। अतएव वे बड़ा पर प्रक्षिप्त हैं। सिद्धार्थ, स्वयं अपने मुखसे अपनी प्रशंसा करनेवाले पाहि-सुख आत्मा नहीं थे। वे बड़े नम्र, लघुताप्रिय और अम्यात्मस्वरूपमें लीन रहनेवाले सन्त पुरुष थे। वे अपने लिये 'सिद्धान्तनिधि' महाभाग और 'गणधरतुल्य' जैसे मानसरे हुए विशेषणोंका प्रयोग कभी नहीं कर सकते।

२६ उपनिषत्सम्बन्धी कथा, (किन्तिशोधिका इन्डिका) पृ. १९४-५।

चाररूप विपक्षों निकाल कर सुवासना-सद्विचार स्वरूप सुधा (अमृत) का सिंचन किया है, उस आचार्य हरिभद्रको नमस्कार है।

(१७) उन्होंने (हरिभद्रसरिने) अनागत याने भविष्यमें होनेवाले मुझको जानकर मानों मेरे ही लिये चैत्यवन्दनसत्रका आश्रय लेकर ललित-विस्तरा नामक वृत्ति बनाई है।

इस अवतरणसे ज्ञात होता है कि सिद्धार्थ हरिभद्रको एक प्रकारसे अपने गुरु मानते हैं। वे उन्हीं से अपनेको धर्मप्राप्ति हुई कहते हैं, और ललित-विस्तरावृत्ति नामक ग्रन्थ, जो हरिभद्रके ग्रन्थोंमेंसे एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है उसे, अपने ही लिये बनाया गया बतलाते हैं। इस प्रकार, इस प्रशस्तिगत कथनके प्रथम दर्शनसे तो हरिभद्र और सिद्धार्थके बीचमें गुरु-शिष्यभावका होना स्थापित होता है। और जब ऐसा गुरुशिष्यभावका सम्बन्ध उनमें रहा तो फिर वे प्रत्यक्ष ही दोनों समकालीन सिद्ध हुए, और ऐसा होने पर हरिभद्रका उक्त गाथा-विहित सत्ता-समय असत्य साबित होगा।

इस प्रकार हरिभद्रसरिनेके समय-विचारमें सिद्धार्थका सम्बन्ध एक प्रधान स्थान रखता है। इस लिये प्रथम यहाँ पर इस बातका ऊहापोह करना आवश्यक है कि सिद्धार्थके इस कथनके बारेमें उनके चरित्रलेखक जैन ग्रन्थकारोंका क्या अभिप्राय है।

सिद्धार्थके जीवनवृत्तान्तकी तरफ दृष्टिपात करते हैं तो, उनके निजके ग्रन्थमें तो, इस उपर्युक्त प्रशस्तिके कथनके सिवा, और कोई विशेष उल्लेख नहीं मिलता। इस लिये उनके निजके ही शब्दोंमें तो अपनेको यह बात नहीं मालूम हो सकती, कि, हरिभद्रको वे अपने धर्मगोपक गुरु किस कारण से कहते हैं और ललितविस्तरावृत्तिकी अपने ही लिये बनाई गई क्यों बतलाते हैं ?।

पिछले जैन लेखकोंके लेखों-ग्रन्थोंमें सिद्धार्थके जीवन-वृत्तान्तके विषयमें जो कथा-प्रबन्धादि उपलब्ध होते हैं, उनमें कालक्रमको दृष्टिसे सबसे प्राचीन, तथा वर्णनकी दृष्टिसे भी प्रधान, ऐसा प्रभावकचरित्रग्रान्तर्गत सिद्धार्थ-प्रबन्ध है। इस

प्रबन्धमें सिद्धार्थका जो जीवन वर्णित है उसमें इस बातका किञ्चित् भी जिक्र नहीं किया गया है कि, हरिभद्र, सिद्धार्थके एक गुरु थे और उनसे उनको धर्मगोप मिलता था। हरिभद्र और सिद्धार्थके बीचमें एक प्रकारसे गुरुशिष्यका सम्बन्ध था, इस बातका सूचन प्रभावकचरित्रकारने न हरिभद्र ही के प्रबन्धमें किया है और न सिद्धार्थ ही के प्रबन्ध में। केवल इतना ही नहीं, परन्तु इन दोनोंके चरित्र-प्रबन्ध पास पासमें भी वे नहीं रखते। उन्होंने हरिभद्रका चरित्र ९ वें प्रबन्धमें गुंथा है और सिद्धार्थका १४ वें प्रबन्धमें। इस लिये प्रभावकचरित्रकारके मतसे तो हरिभद्र और सिद्धार्थके बीचमें न किसी प्रकारका साक्षात् गुरुशिष्य जैसा सम्बन्ध था और न वे दोनों समकालीन थे।

परन्तु, सिद्धार्थने अपनी कथाकी प्रशस्तिमें जो उक्त प्रकारसे हरिभद्रका उल्लेख किया है, उसे प्रभावकचरित्रकर्ता जानते ही नहीं हैं यह बात नहीं है। उन्होंने सिद्धार्थका वह कथन केवल देखा ही नहीं है किन्तु उसे अपने प्रबन्धमें यथावत् उद्धृत कर लिया है। परन्तु, उस कथनका सम्बन्ध वे और ही तरहसे लगाते हैं। उनका कहना है कि, सिद्धार्थने जैन शास्त्रोंका पूर्ण अभ्यास करके, फिर न्यायशास्त्रका विशिष्ट अभ्यास करनेके लिये किसी ग्रान्तस्थ बौद्ध विद्यापीठमें जा कर रहनेका विचार किया। जानेके पहले उन्होंने जब अपने गुरु गार्ग्यजीके पास अनुमति मागी तो गुरुजीने अपनी असम्मति प्रकट की और कहा कि वहाँ पर जानेसे तेरा धर्मविचार भ्रष्ट हो जायगा। सिद्धार्थने गुरुजीके इस कथन पर दुर्लक्ष्य कर चल ही दिया और अपने इच्छित स्थान पर जा कर बौद्ध प्रमाण शास्त्रका अध्ययन करना शुरू किया। अध्ययन करते करते उनका विश्वास जैनधर्म ऊपरसे ऊठता गया और बौद्ध धर्म पर भ्रष्टा बढ़ती गई। अध्ययनकी समाप्ति हो जाने पर, उन्होंने बौद्धधर्मकी दीक्षा लेनेका विचार किया, परन्तु, पहले ही से वचनबद्ध हो जानेके कारण, जैनधर्मका त्याग करनेके पहले वे एक बार अपने पूर्वगुरुके पास मिलनेके लिये आये। शान्तमूर्ति गगैमुनिने सिद्धार्थ-

की स्थधर्म ऊपरसे चलित-चित्तताको, देख कर अपने मुखसे किसी प्रकारका उन्ह उपदेश देना सुनासब नहीं समझा । उन्होंने ऊठ कर पहले सिद्धार्थिका स्वागत किया और फिर उन्हें एक आसन पर बिठा कर, हरिभद्रसूरिकी बनाई हुई ललितविस्तारावृत्ति, जिसमें बौद्ध वगैरह सभी दर्शनोंके सिद्धान्तोंकी बहुत ही संक्षेपमें परंतु यही मार्मिकताके साथ मोमांसा कर जैनतार्थिकरकी परमांतता स्थापित की गई है, उसको पढ़नेके लिये दी । पुस्तक दे कर गर्गमुनि जिनचैत्यको वन्दन करनेके लिये चले गये और सिद्धार्थिका कह गये कि, जब तक मैं चैत्यवन्दन करके वापस आऊँ तब तक तुम इस ग्रन्थको वाचने रहो । सिद्धार्थि गुरुजीके चले जाने पर ललितविस्ताराको ध्यानपूर्वक पढ़ने लगे । ज्यों ज्यों वे हरिभद्रके निष्पक्ष, सुक्तिपूर्ण, प्रौढ और प्राञ्जल विचार पढ़ते जाते थे, त्यों त्यों उनके विचारोंमें यही तीव्रताके साथ क्रांति होती जाती थी । सारा ग्रंथ पढ़ लेने पर उनका विश्वास जो बौद्ध संसर्गके कारण जैनधर्म ऊपरसे ऊठ गया था वह फिर पूर्ववत् दृढ़ हो गया, और बौद्ध धर्मपरसे उनकी रुचि सर्वथा हट गई । इतनेमें गर्गमुनिजी चैत्यवन्दन करके उपाश्रयमें वापस आ पहुँचे । सिद्धार्थि गुरुजीका आते देख एक दम आसन ऊपरसे ऊठ खड़े हुए और उनके पैरोंमें अपना मस्तक रख कर, स्थधर्म परसे जो इस प्रकार अपना निःसंशय हुआ उसके लिये पश्चात्ताप करने लगे । गुरुजीने मिष्टवचनोंसे उन्हें शान्त कर उनके मनको संतुष्ट किया । अन्तमें वे फिर जैनधर्मके महान् प्रभावक हुए । इत्यादि । इस प्रकार हरिभद्रके बनाये हुए ग्रन्थके अथलोकनसे सिद्धार्थिकी मिथ्याप्राप्ति नष्ट हुई और सद्धर्मकी प्राप्ति हुई इस लिये उन्होंने हरिभद्रसूरिकी अपना धर्मबोधकर गुरु माना और ललितविस्ताराको मानों अपने ही लिये बनाई गई समझा । इसके सिवा प्रभावकचरित्रके कर्ता इन दोनोंमें परस्पर और किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं मानते ।

परन्तु दूसरे कितने एक ग्रन्थकार प्रभावकचरित्रके इस कथनके साथ पूर्ण मेलन्य नहीं रखते ।

उनके कथनानुसार तो सिद्धार्थि और हरिभद्र दोनों समकालीन थे और सिद्धार्थिको बौद्ध संसर्गके कारण स्थधर्मसे भ्रष्ट होते देख कर उनको प्रतियोध करनेके लिये ही हरिभद्र सूरिने ललितविस्तारावृत्ति बनाई थी । इन ग्रन्थकारोंमें मुख्यकर राज-शेखरसूरिका (सं. १४०५ में बना हुआ) प्रबन्धकोंप अथवा चतुर्विंशतिप्रबन्ध है । इस ग्रन्थमें हरिभद्रसूरिका जो चरित-प्रबन्ध है उसमें साथमें सिद्धार्थिका भी वर्णन किया हुआ है । इस प्रबन्धमें तो सिद्धार्थिको साक्षात् हरिभद्र ही के दीक्षित शिष्य बतलाये हैं । गर्गमुनि वगैरहका नामनिर्देश तक नहीं है । प्रकृत वातके विषयका बायीं सख हाल प्रायः ऊपर (प्रभावकचरित्र) के जैसा ही है । मात्र इतनी विशेषता है कि, बौद्ध गुरुके पाससे जब सिद्धार्थि अपनी प्रतिज्ञानुसार, हरिभद्रसूरिको मिलनेके लिये आये तब बौद्ध गुरुने भी उन्हें पुनर्मीलनके लिये प्रतिज्ञायक कर लिये थे । हरिभद्रसूरिने उनको सद्बोध दिया जिससे उनका मन फिर जैन धर्म ऊपर धृष्टायान् हो गया । परंतु प्रतिज्ञानिवंदके कारण वे पुनः एक बार बौद्ध गुरुके पास गये । यहाँ उसने फिर उनको ग्रहकाया और वे फिर हरिभद्रसे मिलने आये । हरिभद्रने पुनः समझाये और पुनः बौद्धाचार्यके पास गये । इस प्रकार २१ दफह उन्होंने गमनागमन किया । आखिरमें हरिभद्रने उन पर दया लाकर प्रयत्नकपूर्ण ललितविस्तारावृत्ति बनाई, जिसे पढ़ कर उनका मन सर्वथा निर्वाणित हुआ और वे जैनधर्म ऊपर स्थिरचित्त हुए । इसके बाद उन्होंने १६ हजार श्लोक प्रमाण उपमितिभयप्रपञ्चा कथा बनाई और उसके अन्तमें उक्त प्रकारसे हरिभद्रसूरिकी प्रशंसा की ।^{२०}

इसी वृत्तान्तका यथावत् सूचक संक्षिप्त उल्लेख मुनिमुद्रसूरिने उपदेशरत्नाकरमें, और रत्नशेखरसूरिने धादप्रतिक्रमणार्थदीपिका टीका (सं. १४९६) में किया है । दोनों उल्लेख क्रमशः इस प्रकार हैं:—

२० देखो, प्रोफेसर मणिलाल नमुमाई द्विवेदीका किया हुआ और वहीदा राज्यकी ओरसे छापा हुआ 'चतुर्विंशति प्रबन्ध' का गुजराती भाषान्तर, पृ. ४७-४८ ।

(१) ' ये पुनः कुंगुर्वादिसङ्गत्या सम्यग्दर्शन-
चारित्राणि वमन्ति ते शुभधर्मवासं प्रतीत्य वाम्याः ।
बौद्धसङ्गस्यैकविंशतिकृत्योऽईदृग्धर्मत्यागिश्रीहरिभद्रसू-
रिशिष्यपश्चात्तदुपज्ञललितविस्ताराप्रतिबुद्धश्रीसिद्धवत् । '

—उपदेशरत्नाकर, पृ० १८

(२) ' मिथ्यादृष्टिस्तवे हरिभद्रसूरिशिष्यसि-
द्धसाधुर्ज्ञातम्, स सौगतमतरहस्यमर्मग्रहणार्थं गतः ।
ततस्तैर्भावितो गुरुदत्तवचनत्वान्मुक्तलापनायागतो गुरु-
भिर्वाधितो बौद्धानामपि दत्तवचनत्वान्मुक्तलापनार्थं
गतः । एवमेकविंशतिवारान् गतागतमकारीति । त-
स्मतिबोधनार्थं गुरुकृतललितविस्ताराख्यशकस्तववृत्त्या
दृढं प्रतिबुद्धः श्रीगुरुपार्थं तस्यौ । '

—श्राद्धप्रतिक्रमणार्थं दोषिका ।

इस प्रकार इन ग्रन्थकारोंके मतसे तो सिद्धार्थि
साक्षात् हरिभद्रसूरि ही के हस्त-दीक्षित शिष्य थे।
इनके मतको कहां तक प्रामाणिक समझना चाहिए,
यह एक विचारणीय प्रश्न है। क्यों कि ये तो
सिद्धार्थिके दीक्षागुरु, जो गर्गमुनि हैं और जिनकी
पूर्व-गुरुपरंपरा तकका उल्लेख सिद्धार्थिने स्वयं
अपनी कथाकी प्रशस्तिमें किया है, उनका सूचन
तक बिल्कुल नहीं करते और खुद हरिभद्र ही के
पास इनका दीक्षा लेना बतलाते हैं। सो यह कथन
स्पष्टतया प्रमाण विरुद्ध दिखाई दे रहा है। सिद्धा
सिद्धार्थि जैसे अपूर्व प्रतिभाशाली गुरुपक्षोंइस तरह
२१ बार १४ बार ३४ बार धकेलकर एक बिल्कुल
मोड़के जैसा चित्रित किया है इस लिये इनके
कथनकी किंमत बहुत कम आंकी जा सकती है।

सिद्धार्थिके जीवन सम्यग्दर्शन, प्रभावक चरित्र और
प्रबन्धकोषके लेखकोंके उक्त मतोंसे कुछ भिन्न
एक तीसरा मत भी है जो पड़ियाल गच्छकी एक
प्राकृत पट्टावलीमें मिलता है। यह पट्टावली कबकी
बनी हुई है और कैसी विश्वसनीय है, सो तो उसे
पूरी देनेविना नहीं कह सकते। मुनि धनविज-
यजीने चतुर्थस्तुतिनिर्णयशंकोद्वार नामक पुस्तकमें,
इस पट्टावलीमेंसे प्रस्तुत विषयका जो पाठ उद्धृत

किया है उसी परसे हम यहां पर यह तीसरा मत
उल्लिखित कर रहे हैं। इस पट्टावलीके लेखकके
मतसे सिद्धार्थिके मूल दीक्षागुरु तो गर्गाचार्य या
गर्गमुनि ही थे—हरिभद्र नहीं। हरिभद्र और सिद्ध-
ार्थिके गुरुशिष्यभावके सम्यग्धर्म पट्टावलीकारका
कथन इस प्रकार है:—पूर्वोक्त कथानुसार, बौद्ध-
संलग्नके कारण जब सिद्धार्थिके विचारोंमें बारंबार
परिवर्तन होने लगा तब उनको गुरु गर्गार्थिने हरि-
भद्रसूरीको, जो बौद्धमतके घड़े भारी ज्ञाता थे, वि-
ज्ञप्ति की कि कोई ऐसा उपाय कीजिए कि जिससे
सिद्धार्थिका मन स्वधर्ममें स्थिर हो जाय। फिर
सिद्धार्थिजब अपने गुरुके पास पुनर्मौलनके लिये आये
तब हरिभद्रने उनको बहुत कुछ समझाया परन्तु
वे संतुष्ट न हुए और वापस बौद्धमठमें चले गये।
इससे फिर हरिभद्रने तर्कपूर्ण ऐसी ललितविस्तार
वृत्ति बनाई। इसके बाद हरिभद्रका मृत्यु हो गया।
मरते समय वे गर्गाचार्यको यह वृत्ति सौंपते गये
और कहते गये कि अब जो सिद्धार्थि आएं तो उन्हें
यह वृत्ति पढ़नेको देना। गर्गाचार्यने बादमें ऐसा ही
किया और अन्तमें उस वृत्तिके अवलोकनसे सिद्ध-
ार्थिका मन स्थिर हुआ। इसी लिये उन्होंने हरि-
भद्रको अपना गुरु माना और उस वृत्तिको 'मदर्थ
निर्मिता' बतलाई।

२० इस पट्टावलीमें, सिद्धार्थिके गुरु गर्गाचार्य और उनके गुरु
दुर्गेश्वरीके स्वर्गमनकी खाल भी रिखी हुई है। तथा
'आह दुर्गेश्वरी विक्रमजो ९०२ धरिसे देवलोय
गतो। तस्सीसी सिरिसेणो आयरियपप ठिओ।
गम्पायरियाधि विक्रमजो ९१२ धरिसे कालं गया
तप्पप सिद्धायरिओ। एवं दो आयरिया विह-
रई।' अर्थात्-दुर्गेश्वरी विक्रमसंवत् ९०२ में स्वर्ग
गये। उनके शिष्य धीपेय आचार्य ९०२ में स्वर्ग
गये। गर्गाचार्य भी विक्रम संवत् ९१२ में मरणभरण हुए। उनके पद
पर सिद्धार्थि बैठे। इस प्रकार धीपेय और सिद्धार्थि
दोनों आचार्य एक साथ रहते थे। यदि यह क-
थन सच है तो इसके ऊपरसे सिद्धार्थिके दीर्घायु होनेका
अनुमान किया जा सकता है। क्योंकि उनके गुरु गर्गेश्वरी
जय ९१२ में मृत्यु प्राप्त हुए थे, तो कमसे कम १०-१२
वर्ष पहले तो सिद्धार्थि उनके पास दीक्षा अवश्य ही ली

सिवा और किसी सत्यत्वा साधित नहीं किया जाता, तब तक प्रभावचरित्रको ये दोनों बातें कपोलकल्पित ही माननी पड़ेंगी।

डॉ मिरोनो (Dr. N. Mironow) ने Bulletin de l'Academy Imperiale des Sciences de St-Petersburg, 19 " में सिद्धार्थ ऊपर एक लेख प्रकाशित किया है जिसमें श्रीचन्द्रकेवली चरित्र नामक ग्रन्थ से निम्न लिखित दो श्लोक उद्धृत किये हैं^३।

वस्यङ्केपु (५९८) मिते वपे श्रीसिद्धार्थिदि महत् ।
प्राक् प्राकृतचरित्राङ्गि चरित्रं संस्कृतं व्यधात् ॥

त।मानानार्थसन्तोहादुद्धृतये पथात्र च ।

न्यूनाधिकान्यथायुक्तेर्मित्यादुष्कृतमस्तु मे ॥

इन श्लोकोंका सौर भाष्य इतना ही है कि—
सिद्धार्थिने संवत् ५९८ में, प्राकृत भाषामें बने हुए पूर्वके श्रीचन्द्रकेवलीचरित्र ऊपरसे संस्कृतमें नया चरित्र बनाया था। सिद्धार्थ अपनी उपमि० कथाके बनेका सवत्सर ९६२ लिखते हैं और इस चरित्रमें ५९८ वर्षका उल्लेख किया हुआ है। इस प्रकार इन दोनों वर्षोंके बीचमें ३६४ वर्षका अन्तर रहता है। इस लिये डॉ मिरोनौका कथन है कि यदि इस ५९८ वें वर्षको गुप्त संवत् मान लिया जाय तो इस विरोधका सर्वथा परिहार हो जाता है। क्योंकि कि ५९८ गुप्त संवत्में ३७६ वर्ष सामिल कर देने पर विक्रम संवत् ९७४ हो जाता है और यह समय सिद्धार्थके उपमि० कथावाले संवत्सर ९६२ के समीपमें आ पहुंचता है।

इस प्रकार सिद्धार्थके समयादिके बारेमें जितने उल्लेख हमारे देखनेमें आये हैं उन सबका सार हमने यहां पर दे दिया है। हरिमद्रसूरिके समय-विचारके साथ सिद्धार्थके समय-विचारका घनिष्ठ सम्बन्ध होनेसे हमें यहां पर इस विषयका इतना विस्तार करनेकी आवश्यकता पड़ी है।

सिद्धार्थ विषयक इन उपर्युक्त उल्लेखोंसे पाठक यह जान सकेंगे कि हरिमद्रसूरि और सिद्धार्थके

३२ डॉ. जेकोथीने भी अपनी उक्तोकी प्रस्तावनाके अंतमें, साक्ष्य दिण्णके साथ इन श्लोकोंको छपवा दिये हैं।

गुरुशिष्यभावके सम्बन्धमें, और इसी कारणसे इन दोनोंके सत्ता-समयके विषयमें जैन ग्रन्थकारोंके परस्पर कितने विरुद्ध विचार उपलब्ध होते हैं। परंतु आश्चर्य यह है कि इन इतने विचारोंमेंभी कोई ऐसा निश्चित और विश्वसनीय विचार हमें नहीं मालूम देता, जिसके द्वारा इस प्रश्नका निराकरण किया जा सके कि हरिमद्र और सिद्धार्थके बीचके गुरुशिष्यभावका क्या अर्थ है?—ये दोनों समकालीन थे या नहीं?। इस लिये थोड़े हमको, इन सब उल्लेखोंको यहीं छोड़ कर, गुप्त सिद्धार्थ और हरिमद्र ही के ग्रन्थोंके आन्तर प्रमाणोंका ऊहापोह करके, तथा अन्य ग्रन्थोंमें मिलते हुए इसी विषयके संवादी उल्लेखोंके पूर्वापरभावका यथासाधन विचार करके, उनके द्वारा इन दोनों महात्माओंके सम्बन्ध और समयकी सीमांसा करनेकी आवश्यकता है। उसके सिवा, इस विषयका निराकरण होनी अशक्य है।

इस विषयके विचारके लिये हमने जितने प्रमाण संगृहीत किये हैं उनकी विस्तृत विवेचना करनेके पहले, हम यहां पर जैनदर्शनदिवाकर डॉ हमैन जेकोथीने बड़े परिश्रमके साथ, प्रकृत विषयमें कितने एक साधकसाधक प्रमाणोंका सूक्ष्मगुडिपूर्वक ऊहापोह करके, स्वसंपादित उपमितिभयप्रपञ्चापी प्रस्तावनामें जो विचार प्रकाशित किये हैं उनका उल्लेख करना मुनासब समझते हैं।

डॉ. साहय अपनी प्रस्तावनामें सिद्धार्थके जीवनचरित्रके बारेमें उल्लेख करते हुए, प्रारंभमें उपमिति की प्रशस्तिमें जो गुरुपरंपरा लिखी हुई है उसका सार दे कर हरिमद्रकी प्रशंसावाले पद्योंका अनुवाद देते हैं। और फिर लिखते हैं कि—

“मेरा विश्वास है कि हरिमद्र और सिद्धार्थ विषयक इन उपर्युक्त श्लोकोंके पढ़नेसे सभी निष्पक्षपात पाठकोंको निश्चय हो जायगा कि इनमें शिष्यने अपने साक्षान् गुरुका वर्णन किया है परंतु ‘परंपरागत’ का नहीं। जिन प्रथम युरोपीय विद्वान् प्रो. ल्युमनन (जर्मन ओरिएण्टल सोसायटी) का जर्नल, पृ ४३ पृ ३४८ पर) इन श्लोकोंका अर्थ किया है उनका भी यही मतव्य था, और हमारे

इस अनुमानकी, उपमितिभयप्रपञ्चके प्रथम प्रस्तावमें सिद्धार्थिन जो हकीकत लिखी है उससे, पुष्टि भी होती है। यहां पर, भिक्षुक निष्पुण्यक आत्मसुधारके प्रारम्भसे ले कर अन्तमें जब वह अपना कुत्सित भोजन फेंक देता है और पात्रकी धोकर स्वच्छ कर डालता है; अर्थात् आलंकारिक भाषाको छोड़ कर सीधे शब्दोंमें कहें तो, जब वह दीक्षा ले लेता है तब तक उस भिक्षुको—इस सारे समय में—धर्मबोधकर गुरु उपदेश देने वाले और रास्ता बतानेवाले वर्णित किये गये हैं। सिद्धार्थि स्वयं कहते हैं कि इस रूपककथामें वर्णित धर्मबोधकर गुरु आचार्य हरिभद्र ही है, और भिक्षुक निष्पुण्यक स्वयं मैं ही हूँ। इससे स्पष्टतया जाना जाता है कि सिद्धार्थिकी दीक्षा लेने तक सद्बोध्य देनेवाले और सन्मार्ग पर लानेवाले साक्षात् हरिभद्र ही थे।

“यद्यपि सिद्धार्थिके स्वकीय कथनानुसार वे हरिभद्रके समकालीन ही थे, परंतु जैनग्रन्थोंक दन्तकथा, इन दोनों प्रसिद्ध ग्रन्थकारोंके बीचमें ४ शताब्दी जितना अन्तर बतलाती है। जैन-परंपरा मुताबिक हरिभद्रका मृत्यु संवत् ५८५ में हुआ था और उपमितिभयप्रपञ्चकी रचना, रचयिताके उल्लेखानुसार ९६२ में हुई थी। हरिभद्र और सिद्धार्थिके बीचमें समय-व्यवधान बतलानेवाली दन्तकथा १३ वें शतकमें भी प्रचलित थी, ऐसा मालूम होता है। क्योंकि कि प्रभावकचरित्रकार हरिभद्र और सिद्धार्थिके चरित्रोंमें, इन दोनोंके साक्षात्कारके विषयमें कुछ भी नहीं लिखते। यद्यपि, वे इनके समयके सूचक धर्मोंका उल्लेख नहीं करते हैं, तथापि, इन दोनोंको वे समकालीन मानते हैं। ऐसा बिल्कुल मालूम नहीं होता। क्योंकि कि वैसा मानते तो इनके चरित्रोंमें इस बातका अवश्य उल्लेख करते। तथा इन दोनोंके चरित्र जो दूर दूर पर दिये हैं, हरिभद्रका चरित्र ९ वें सर्गमें और सिद्धार्थिका १४ वें सर्ग दिया है—वैसा न करके पासपासमें देते। प्रस्तुत विषयमें इस दन्तकथाके वास्तविक मूल्यका निर्णय करनेके लिये हरिभद्र और सिद्धार्थिके समय विचारकी, और उसके साथ सम्यन्ध रखनेवाले दूसरे विषयोंकी पर्यालोचना करनी आवश्यक है।

“कथाकी प्रशस्तिके अन्तमें सिद्धार्थि लिखते हैं कि, यह ग्रन्थ, संवत् ९६२ के ज्येष्ठ शुक्ल ५मी गुरुवारके दिन जब चन्द्र पुनर्वसु नक्षत्रमें विद्यमान था, तब समाप्त हुआ। इसमें यह नहीं लिखा हुआ है कि, यह ९६२ का वर्ष वीर, विक्रम, गुप्त, शक आदिमेंसे कौनसे संवत्सरका है। यदि यह वर्ष विक्रम संवत्का मान लिया जाय तो उस दिनके विषयमें लिखे गये वार आदि सब ठीक ठीक मिल जाते हैं। विक्रम संवत् ९६२ के ज्येष्ठ शुक्ल ५मी के दिन ईस्वी सन् ९०६ के मई मासकी ११ तारीख आती है। उस दिन चन्द्रमा सूर्योदयले लेकर मध्याह्नकालके बाद तक पुनर्वसु नक्षत्र में था। वार भी गुरु ही था। परंतु इस वर्षको वीर संवत् मानें तो उस दिन ई. स. ८३६ के मई मासकी ७ थी तारीख आती है। वार उस दिन भी गुरु ही आता है, परंतु चंद्रमा सूर्योदयके समय पुण्य नक्षत्रमें रह कर फिर दो घंटे बाद अश्लेषा नक्षत्रमें चला जाता है। इस लिये नक्षत्र बराबर नहीं मिलता। अतः प्रस्तुत संवत् वीरसंवत् नहीं होना चाहिए। दूसरी बात यह है कि, यदि इसे वीरसंवत् माना जाय तो वह विक्रम संवत् ८९२ होता है और इससे तो सिद्धार्थि अपने गुरु हरिभद्र, जो दंतकथाके कथनानुसार विक्रम संवत् ५८५ में स्वर्गस्थ हुए, उनसे भी पूर्वमें हो जानेवाले सिद्ध होते हैं। इस लिये सिद्धार्थिका संवत् निस्सन्देह विक्रम संवत् ही है और वह ई. स. ९०६ बराबर है।

“जैन परंपरा प्रचलित दन्तकथा मुजय. हरिभद्रका मृत्यु समय विक्रम संवत् ५८५ (ई. स. ५२९) अर्थात् वीर संवत् १०५५ है। यह समय हरिभद्रकी ग्रन्थोंमें लिखी हुई कितनीएक बातोंके साथ सम्यक् नहीं होता। पद्धदर्शनसमुच्चय नामक ग्रन्थमें हरिभद्र दिग्नाग शाखाके धोद्धन्यायका संक्षिप्त सार देते हैं, उसमें प्रत्यक्षकी व्याख्या ‘प्रत्यक्षं कल्पनापोढमग्रान्तं’ ऐसी दी हुई है। यह व्याख्या न्याय-विन्दुके प्रथम परिच्छेदमें धर्मकीर्तिका दी हुई व्याख्याके साथ शब्दशः मिलती है। दिग्नागकी व्याख्यामें ‘अग्रान्तं’ शब्द नहीं मिलता उनकी

व्याख्या इस प्रकार है—‘प्रत्यक्षं कल्पनापोदं नाम-
जात्याद्यसंयुतम् ।’ (देखो, न्यायवार्तिक, पृ. ४४;
तात्पर्य टीका, पृ. १०२; तथा सतीशचन्द्र विद्याभू-
षण लिखित—मध्यकालीन भारतीय न्यायशास्त्रका
इतिहास, पृ. ८५, नोट २.) हरिभद्रसूरिकी दी
हुई व्याख्यामें आवश्यकीय ‘अभ्रान्त’ शब्दकी
वृद्धि हुई है, इस लिये जाना जाता है कि उन्होंने
धर्मकीर्तिका अनुकरण किया है। धर्मकीर्तिका समय
जैन दन्तकथामें यतलाये गये हरिभद्रके मृत्युसम-
यसे १०० वर्ष पीछे माना जाता है। इस लिये हरि-
भद्रका यह संवत् सत्य नहीं होना चाहिए। पुनः
पद्मदर्शनसमुच्चयके ११ वें श्लोकमें हरिभद्रसूरि
यौद्धन्याय सम्मत लिंग (हेतु) के तीन रूप इस
प्रकार लिखते हैं—

रूपणि पक्षधर्मस्त्वं सपक्षे विद्यमानता ।

विपक्षे नास्तित्वा हेतोरेवं त्रीणि विभाव्यताम् ॥

यह यौद्ध न्यायका सुज्ञात सिद्धान्त है, परन्तु
हरिभद्र प्रयुक्त पक्षधर्मत्व पद खास ध्यान कीजिये
लायक है। क्योंकि न्यायशास्त्रके पुराणे ग्रन्थोंमें
यह पद दृष्टिगोचर नहीं होता। प्राचीन न्यायग्रन्थोंमें
इस पदवाच्य भावको दूसरे शब्दों द्वारा प्रकट
किया गया है। यह पद न्यायग्रन्थोंमें पीछेसे प्र-
युक्त होने लगा है। इससे जाना जाता है कि
हरिभद्रसूरि, कहे जानेवाले समयसे बादमें हुए
होने चाहिए। अष्टक प्रकरण नामक अपने ग्रन्थके
४ वें अष्टकमें हरिभद्र सूरिने शिवधर्मोत्तरका
उल्लेख किया है। इससे भी यही बात जानी जाती
है; क्योंकि अज्ञात समयका यह ग्रन्थ बहुत पुरातन
हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। शंकरकी श्वेताश्वतर
उपनिषद्की टीकामें इस ग्रन्थका नाम मिलता है।
यदि, हरिभद्रसूरिके ग्रन्थोंका ठीक ठीक अभ्यास
किया जाय; और उनका बराबर शोध लगाया
जाय तो, दन्तकथामें यतलाये हुए समयसे वे अर्वा-
चीन समयमें हुए थे, इसका प्रायः निर्णय हो
जायगा।

“हरिभद्रसूरिके स्वर्गमनकी साल (जो विक्रम
संवत् ५८५ और धीर संवत् १०५५ है) १६ वीं सात

शताब्दीसे प्राचीन नहीं ऐसे ग्रन्थोंमेंसे मिल जाती
है। पिछले ग्रन्थकारोंने यह साल मनगढ़न्त खड़ी
कर दी है, ऐसा कहनेका मेरा आशय नहीं है, परन्तु
वास्तविक बातका भ्रान्त अर्थ करनेके कारण यह
भूल उत्पन्न हुई है, ऐसा मैं समजता हूँ। अन्तिम
नोटमें (—देखो नीचे दी हुई टिप्पणी) दिखलाये
हुए मेरे अनुमानका स्वीकार करके प्री० न्युमन
लिखते हैं (जर्मन ओरिएण्टल सोसाइटीका जर्नल
पृ. ४३ पृ. ३४८.) कि ‘अन्यान्य सालोंके (यही
जर्नल पृ. ३७, पृ. ५३० नोट.) समान हरिभद्रके
स्वर्गमनकी सालके, यारमें भी संवत् लिखनेमें ग्रंथ-
कारोंका भ्रान्ति हुई है। ५८५ की जो साल है वह
धीर या विक्रम संवत् की नहीं है परन्तु गुप्त संवत्
की है। गुप्त संवत् ईस्वी सन् ३१९ में शुरू हुआ
था। इस हिसाबसे हरिभद्रके स्वर्गमनकी साल
ई. स. ९०४ आती है; अर्थात् उपमितिमयप्रपञ्चा-
की रचनासमाप्तिके २ वर्ष पहले आती है। यह
कथन सच हो सकता है; परन्तु, दन्तकथामें प्रच-
लित धीर संवत् की १०५५ वाली साल ली जाय
और भ्रान्ति (भूल) उसमेंसे उत्पन्न हुई है ऐसा
माना जाय तो इस दन्तकथावाली सालमें होने-
वाली भ्रान्तिका सुलासा एक दूसरी तरह से भी
किया जा सकता है। इस कल्पनाके करनेमें मुझे
निम्न लिखित कारण मिलता है। ‘पद्मचरियं
नामक ग्रन्थके अन्तमें, उसके कर्ता धिमलसूरि
कहते हैं कि, यह ग्रन्थ उन्होंने धीर निर्वाण बाद
५३० (दूसरी पुस्तकमें ५२०) वे वर्षमें बनाया है।
ग्रन्थकर्ताके इस कथनको नहीं माननेमें कोई का-
रण नहीं है। परन्तु वह ग्रंथ ईस्वीसन्के ४ वे वर्षमें
बना था, यह मानना कठिन लगता है। मेरे अभि-
प्रायके मुताबिक ‘पद्मचरियं’ ईस्वीसन्की ३ री
या ४ वीं शताब्दीमें बना हुआ होना चाहिए। चाहे
जैसा हो; परन्तु पूर्वकालमें महावीर निर्वाण काल-

जर्मन ओरिएण्टल सोसाइटीका जर्नलकी ४० वीं जि-
स्वमें, पृ. ९४ पर, मैंने लिखा है कि—हरिभद्रसूरि और शी-
लाङ्काचार्य दोनोंके गुप्त जिनभद्र या जिनभट्ट थे, इस लिये
वे दोनों समकालीन थे। शीलाङ्कने आधारार्थसूत्र ऊपर
७९६, ई. स. ४७६ में टीकी लिखी है।

की गणना वर्तमान गणनाकी तरह एक ही प्रकार-से नहीं होती थी। ऐसा सन्देह लानेमें कारण मिलते हैं; और अगर ऐसा न हो तो भी प्राचीन कालमें निर्वाण समयकी गणनामें भूल अवश्य चली आती थी, जो पीछेसे सुधार ली गई है ।”

— डॉ. जेकोबीकी उपमि० प्रस्तावना, पृ. ६-१० ।

डॉ. साहयके इस सब कथनका एकदूर सार इतना ही है कि वे हरिभद्र और सिद्धर्षि—दोनोंको समकालीन मानते हैं और उनका समय सिद्धर्षि-के लेखानुसार विक्रमकी १० वीं शताब्दी स्वीक-णीय बतलाते हैं। हरिभद्रकी मृत्यु-संवत् सूचक गाथामें जो ५८५ वर्षका जिक्र है वह वर्ष विक्रम संवत्सरका नहीं परंतु गुप्त संवत्सरका समझना चाहिए। गुप्त संवत् और विक्रम संवत्के बीचमें ३७६ वर्ष का अन्तर रहता है। इस लिये ५८५ में ३७६ मिलानेसे ९६१ होते हैं। इधर सिद्धर्षिकी कथाके ९६२ में समाप्त होनेका स्पष्ट उल्लेख है ही। अतः वे दोनों बराबर समकालीन सिद्ध हो जाते हैं। हरिभद्रके मृत्यु संवत् ५८५ को विक्रमीय न माननेमें मुख्य कारण, एक तो सिद्धर्षि जो उनको अपना गुरु बतलाते हैं यह है, और दूसरा यह है कि हरिभद्रके निजके ग्रन्थोंमें ऐसे ग्रन्थकारोंका उल्लेख अथवा सूचन है, जो विक्रमीय ६ वीं शताब्दीके बाद हुए हैं। इस लिये उनका उतने पुराणे समयमें होना दोनों तरहसे असंगत है ।

[टिप्पणी— सुनि धनविजयजीने बहुधैर्यसुतिनिर्णयशंकोद्वार नामक पुस्तकमें हरिभद्र और सिद्धर्षिके समकालीन होनेमें कुछ दो-एक और दूसरे प्रमाण दिये हैं जिन्हें भी संग्रहकी दृष्टिसे यहाँ पर लिख देते हैं। उन्होंने एक प्रमाण यस्तर गच्छीय रंगविजय लिखित पद्यालोका दिया है। इस पद्यावलीमें वि. सं. १०८० में होनेवाले जिनैवरसूरिसे पूर्वके ४ वें पद्य ऊपर हरिभद्रसूरि हुए, ऐसा उल्लेख है। अर्थात् जिनैवरसूरि ३३ वें पद्यपर थे और हरिभद्रसूरि २५ वें पद्यपर। इस उल्लेखानुसार, सुनि धनविजयजीका कहना है कि, १०८० मेंसे ४ पद्यके २५० वर्ष निकाल देनेसे सन् ८३० वर्ष रहते हैं, सो इस समयमें हरिभद्रसूरि हुए होंगे। (जब इस उल्लेख के आधार पर हरिभद्रको सिद्धर्षिके समकालीन सिद्ध करना है तो फिर ४ पद्यके २५० वर्ष जितने अवयवद्वय संख्यावाले वर्षोंके निकालनेकी क्या जरूरत है। ऐतिहासिक विद्वान्

सामान्य रीतिसे एक मनुष्यके व्यावहारिक जीवनके २० वर्ष गिनते हैं और इस प्रकार एक शताब्दीमें पाँच पुरय-परंपराके हो जानेका साधारण सिद्धान्त स्वीकार करते हैं। इस लिये ४ पद्यके ज्यादाहने ज्यादा ही सवासी वर्ष बाद वर, हरिभद्रको सीधे सिद्धर्षिके समकालीन मान लेनेमें अधिक युक्ति संभवता है।)

दूसरा प्रमाण धनविजयजीने यह दिया है कि—रत्नसंचय प्रकरणमें, निम्न लिखित गाथाधर्म हरिभद्रका समय वीर संवत् १२५५ लिखा है। यथा—

‘पणपणवारससण हरिभद्रो सूरि आसि पुण्यकण’

इस गाथाके ‘ट्यार्थ’ में लिखा है कि—‘वीरवी वारसों पंचावन वर्ष श्रीहरिभद्रसूरि धया। पूर्वसंध (१) ना करनार।’ इस पर धनविजयजी अपनी टिप्पणी करते हैं कि, वीर संवत् १२५५ मेंसे ४७० वर्ष निकाल देनेपर विक्रम संवत् ७८५ आते हैं। संभव है कि, हरिभद्र सूरिका आयुष्य सी वर्ष जितना दीर्घ हो और इस कारणसे वे सिद्धर्षिके, निदान बाध्या-वत्यामें तो, समकालीन हो सकते हैं (१)।

तीसरा प्रमाण उन्होंने यह लिखा है—‘दशाशुतस्कन्ध सूत्रकी टीकाके कर्ता ब्रह्मर्षिने ‘सुमतिनागिलचतुष्पदी’ में लिखा है कि, महाविष्णुसूत्रके उद्धारकर्ता हरिभद्रसूरि वीरनिर्वाणवाद १४०० वर्षमें हुए। यथा—

‘वरस चउदसे वीरह पछे,

ए ग्रंथ लखिओ तेणे अछे ।

वसपूर्वलग सूत्र कहाय,

पछे न एकागते कहाय ॥’

इस कथनानुसार विक्रम संवत् ९३० में हरिभद्र हुए सिद्ध होते हैं। उनके बाद ३२ वें वर्षमें सिद्धर्षिने उपनिषत्-भवप्रपञ्चा कथा बनाई। इस प्रमाणानुसार भी वे दोनों समकालीन ही सिद्ध होते हैं।]

जेकोबी साहयने हरिभद्रसूरिके समग्र ग्रन्थ देखे बिना ही—केवल पञ्चवर्षानसमुच्चयमेंके बौद्धन्या-यसम्मत प्रत्यक्ष प्रमाणके लक्षणको देख कर ही—उन्होंने जो धर्मकीर्तिके बाद हरिभद्रके होनेका अनुमान किया है, वह नि सन्देह उनकी शो-घक बुद्धि और सूक्ष्म प्रतिभाका उत्तम परिचय देता है। क्योंकि, जैसा हम आगे चाल कर सन्निस्तर लिखेंगे, हरिभद्रने केवल धर्मकीर्तिकाथित लक्षणका अनुकरण मात्र ही नहीं किया है, परंतु उन्होंने अ-

पने अनेकान्तजयपताकादि दूसरे ग्रन्थोंमें उन महान् बौद्ध ताकिकके हेतुबिन्दु आदि ग्रन्थोंमेंसे अनेक अवतरण भी दिये हैं और पचासों बार साक्षात् उनका स्पष्ट नामोल्लेख तक भी किया है । इस लिये डॉ. साहयका यह अनुमान निःसन्देह-रूपसे सत्य है कि धर्मकीर्ति हरिभद्रके पुरोयायी थे । परन्तु इस प्रमाण और कथनसे हरिभद्रका सिद्धार्थिक साथ एक कालमें होना हम नहीं स्वीकार सकते । यदि डॉ. जेकोबीके कथनके विरुद्ध जानेवाला कोई निश्चित प्रमाण हमें नहीं मिलता, तब तो उनके उक्त निर्णयमें भी आश्रय लेने की हमें कोई जरूरत नहीं होती और नाही इस विषयके गुनर्विचारकी आवश्यकता होती । परन्तु हमारे सम्मुख एक ऐसा अस्तित्व प्रमाण उपस्थित है जो स्पष्टरूपसे डॉ. साहयके निर्णयके विरुद्ध जाता है । इसी विरुद्ध प्रमाणकी उपलब्धि-के कारण इस विषयकी हमें फिरसे जांच करने की जरूरत मालूम पड़ी और तदनुसार प्रकृत उपक्रम किया गया है ।

अपनी इस जांचके परिणाममें हमें ओ जो नये प्रमाण मिले हैं उनको क्रमशः उल्लिखित करनेके पहले और उन प्रमाणोंके आधार पर जो सिद्धान्त हमने स्थापित किया है उसका विस्तृत स्वरूप बतलानेके पहले, पाठकोंके ज्ञानसौकर्यार्थ, अपने निर्णयका सारांश हम प्रथम यहाँ पर कह देते हैं कि, हमारे शोधके मुताबिक हरिभद्रसूरि न तो उक्त प्राकृत गाथा आदि लेखोंमें बतलाये मुजिब ६ टी शताब्दी में विद्यमान थे, और न डॉ. जेकोबी साहय आदि लेखकोंके कथनानुसार, सिद्धार्थके समान १० वीं शताब्दीमें मौजूद थे । परन्तु भ्रमण भगवान् श्रीमहावीरदेव प्रकृषित आर्हत दर्शनके अजरामर सिद्धान्तस्वरूप 'अनेकान्तवाद' की 'जय-पताका' को भारतवर्षके आध्यात्मिक आकाशमें उन्नत उन्नततर रूपसे उड़ाने वाले थे 'श्वेताम्बिश्व' महात्मा अपने उज्ज्वल और आदर्श जीवनसे, आठवीं शताब्दीके सौभाग्यको अलंकृत करते थे ।

अपने इस निर्णयको प्रमाणित करनेके लिये हमें केवल दो ही बातोंका समाधान करना होगा । एक तो सिद्धार्थिने जो हरिभद्र सूरिओ अपने धर्म-

बोधकर गुरु यतलाये हैं, उसका क्या तात्पर्य है, इस बातका और दूसरा, प्राकृत गाथामें और उसके अनुसार अन्यान्य पूर्विक ग्रन्थोंमें हरिभद्रका स्वर्गमन जो विक्रम संवत्के ५८५ में वर्षमें लिखा है उसका स्वीकार क्यों नहीं किया जाता, इस बातका । इसमें पहली बातका-सिद्धार्थिके लिखे हुए हरिभद्रपरक गुरुयका-समाधान इस प्रकार है—

उपमिनिमवप्रपञ्चा कथामें लिखे हुए सिद्धार्थिके एनद्विषयक वाक्योंका सूत्रशुद्धिपूर्वक विचार किया जाय और उनका पूर्वापर सम्बन्ध लगाया जाय तो प्रतीत होगा कि, सिद्धार्थ हरिभद्रको अपने साक्षात् (प्रत्यक्ष) गुरु नहीं मानते परन्तु परोक्षगुरु-अर्थात् आरोपितरूपसे गुरु-मानते हैं । उपमि० की प्रशस्तिमें जो उन्होंने अपनी गुरुपरंपरा दी है, उसका विचार यहाँ अवश्य फर्तव्य है । इस प्रशस्तिके पाठसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि सिद्धार्थिके दीक्षाप्रदायक गुरु गर्गर्षि थे-अर्थात् उन्होंने गर्गर्षिके हाथसे दीक्षा ली थी । प्रशस्तिके सातवें पद्यमें यह बात स्पष्ट लिखी हुई है । यथा—

सद्दीक्षादायकं तस्य स्वस्य चाहं गुरुवचम् ।

नमस्यामि महाभागं गर्गर्षिमुनिपुङ्गवम् ॥

प्रशस्तिके पाठसे यह भी ज्ञात होता है कि, गर्गर्षि मात्र सिद्धार्थिके 'दीक्षा गुरु' थे, बाकी और सब प्रकारका गुरुभाव उन्होंने दुर्गस्वामीमें स्थापित किया है । क्यों कि दुर्गस्वामीकी प्रशस्तिमें जब उन्होंने ५-६ श्लोक लिखे हैं और अपनेको उनका 'वरणरेणुरूप' लिखा है, तब गर्गर्षिको केवल एक श्लोकमें नमस्कार मात्र किया है । साथमें इस उपर्युक्त श्लोकमें दुर्गस्वामीको भी दीक्षा देने वाले गर्गर्षि ही बतलाये हैं । इससे यह भी अनुमान होता है कि, शायद, गर्गर्षि मूल सूर्याचार्यके शिष्य और देहमहत्तरके गुरुवन्द्य होंगे । उन्होंने

३३ ऊपरका कथन लिखे बाद पाठसे जब प्रभावकचरित्र में देखा तो उसमें वही बात लिखी मिली जो हमने अनुमानित की है । अर्थात् प्रभा० कारणे गर्गर्षिको सूर्याचार्य ही के 'निनेय' (शिष्य) लिखे हैं । यथा—

'आसीद्विर्लसिगच्छे च सूर्याचार्यो धियां निधिः ।

ताद्विनेयश्च गर्गर्षिरहं दीक्षागुरुस्तव ॥'

प्रभावकचरित्र, पृ० २०१, श्लो. ८५ ।

दुर्गस्वामीको दीक्षा अपने हाथसे दी होगी, परंतु गुरुतया देहमहत्तरका नाम प्रकट किया होगा (—ऐसा प्रकार आज भी देखा जाता है और दूसरे जुने ग्रन्थोंमें इस प्रकारके उदाहरणोंके अनेक उल्लेख भी मिल आते हैं) । सिद्धार्थिकों भी उन्होंने या तो दुर्गस्वामीके ही नामसे दीक्षा दी होगी, अथवा अपने नामसे दीक्षा देकर भी उनको दुर्गस्वामीके स्वार्यार्थन कर दिये होंगे, जिससे शास्त्राभ्यास आदि सब कार्य उन्होंने उन्हींके पास किया होगा । और इस कारणसे सिद्धार्थिने मुख्य कर उन्हींको गुरुतया स्वीकृत किये होंगे । यह साहजिक जैसा ही परंतु कहनेका तात्पर्य यह है कि सिद्धार्थिकों प्रशस्तिके पाठसे तो उनके गुरु दुर्गस्वामी और साधर्म गर्गर्पि ज्ञात होते हैं । ऐसी दृष्टामें यहां पर, यह प्रश्न उपस्थित होता है कि डॉ जेकोयीने कथमानुसार सिद्धार्थिकों धर्मशोध करनेवाले सूरि यदि साक्षात् रूपसे आचार्य हरिभद्र ही होते तो फिर वे उन्हींके पास दीक्षा ले कर उनके हस्तदीक्षित शिष्य क्यों नहीं होते ? गर्गर्पि और दुर्गस्वामीके शिष्य बननेका क्या कारण ? इसके समाधानके लिये डॉ जेकोयीने कोई विचार नहीं किया ।

पाठक यहां पर हमसे भी इसी तरहका उलट्टा प्रश्न यह कर सकते हैं कि जब हमारे विचारसे हरिभद्र सिद्धार्थिकों साक्षात् या वास्तविक गुरु नहीं थे तो फिर स्वयं उन्होंने

‘आचार्य हरिभद्रों मे धर्मशोधकरो गुरु ।’

ऐसा उल्लेख क्यों किया ? इस उल्लेखका क्या मतलब है ?

इस प्रश्नका यद्यपि हमको भी अभी तक यथार्थ समाधान नहीं हुआ है, तथापि इतनी बात तो हमें निश्चितरूपसे प्रतीत होती है कि हरिभद्रका सिद्धार्थिकों कर्मा साक्षात्कार नहीं हुआ था । प्रमाणमें, प्रथम तो सिद्धार्थिका ही उल्लेख ले लिया जाय । उपनिषद् की प्रशस्तिमेंके हरिभद्रकी प्रशंसावाले जो तीन श्लोक हम पहले लिख आये हैं उनमेंका तीसरा श्लोक विचारने लायक है । इस

३५ असलमें यह श्लोक दूसरा होना चाहिए और जो दूसरा है वह तीसरा होना चाहिए । क्या कि इस श्लोकका

श्लोकमें सिद्धार्थि ‘अनागत परिज्ञाय’ ऐसा वाक्य-प्रयोग करते हैं । ‘अनागत’ शब्दका यहां पर दो तरहसे अर्थ लिया जा सकता है—एक तो, यह शब्द सिद्धार्थिका विशेषण हो सकता है, और इसका विशेष्य मां (मुझको) यह अध्याहृत रहता है इस विचारसे, इसका अर्थ ‘अनागत याने भविष्यत् होनेवाले ऐसे मनुष्यको जानकर’ ऐसा होता है । दूसरा यह शब्द क्रियाविशेषण भी बन सकता है, और उसका व्याकरणशास्त्रकी पद्धति अनुसार ‘अनागत यथा म्यात् तथा परिज्ञाय’ ऐसा शब्द बोध होता है । इसका अर्थ ‘अनागत याने भविष्यत्में जैसा होगा वैसा जान कर’ ऐसा होता है । दोनों तरहके अर्थका तात्पर्य एक ही है और यह यह है कि सिद्धार्थिक विचारसे हरिभद्रका ललित-विस्तरारूप बनानेवाला कार्य भविष्यत्कालीन उपकारकी दृष्टिसे है । इससे यह स्वतः स्पष्ट है कि हरिभद्रने ललितविस्तरा किसी अपने समानकालीन शिष्यके विज्ञाष्ट बोधके लिये नहीं बनाई थी । और जब ऐसा है तो, तर्कसरणिके अनुसार यह

अन्वयार्थ पहले श्लोकके साथ सम्बन्ध रखता है । प्रभावक चरित्रमें इसी क्रमसे ने श्लोक लिखे हुए भा उपलब्ध है । (देखो, पृ० २०४)

३५ मुनि धनविजयजीने चतुर्थस्तुतिनिर्णयश्लोकद्वारम ‘अनागत’ शब्दका प्रसिद्ध अर्थ जो ‘भविष्यत्’ वाचक है उस छोड़ कर और कई प्रकारके विलक्षण अर्थ दिये हैं और उनका द्वारा सिद्धार्थिका हरिभद्रसूरिके समान कालमें होना साबित किया है । धनविजयजीके ये विलक्षण अर्थ इन प्रकार हैं— ‘अनागत’ याने बौद्धमेंसे मुझको (शिद्धार्थिकों) नहीं आया हुआ ज्ञान कर, अथवा, ‘अनागत’ याने जन्मसे अज्ञात ज्ञान कर, तथा, ‘अनागत’ याने भविष्यत्में मैं बोधपरिभाषितमार्ग हो जाऊंगा, ऐसा ज्ञान कर पुनः ‘अनागत’ याने आगमनकर्ताका भिन्नत्व (१) जान कर—अर्थात् २० बौं वार बौद्धधर्ममेंसे मुझे नहीं आता ज्ञान कर, फिर, ‘अनागत’ याने पूर्णशोधको प्राप्त हुआ न ज्ञान कर जैलबन्धनका आश्रय ले कर, अ हरिभद्रसूरिने मेरे प्रतिबोधके लिये ललितविस्तरा कृति बनाई । इस तरह का ‘अनागत’ परिज्ञाय इस श्लोकका अर्थ समझित लगता है (१)।’

स्वयंसिद्ध हो गया कि, उस वृत्तिको अपने ही वि-
शिष्ट बोधके लिये रची गई माननेवाला शिष्य,
उन आचार्यसे अवश्य पीछे ही के कालमें हुआ
था। हमारे विचारसे, प्रस्तुत श्लोकके उत्तरार्धमें
ललितविस्तराके विशेषणरूपमें 'मदर्थं कृता-
(मेरे ही लिये की गई)' ऐसा जो पाठ है उसकी
जगह 'मदर्थं कृता- (मानों मेरे लिये की गई),
ऐसा होना चाहिए। क्योंकि उपरि रीतिसं जय
सिद्धिपि अपना अरिताय हरिभद्रके बाद-किंसी
समयमें-होना सूचित करते हैं तो फिर उनकी
कृतिको निश्चयरूपसे (एवकार शब्दका प्रयोग
कर) अपने ही लिये बनाई गई कैसे कह सकते
हैं? इस लिये यहां पर 'इय' जैसे उपमायाचक
(आरोपित अर्थसूचक) शब्दका प्रयोग ही अर्थ
संगत है। बहुत संभव है कि उपमि० की दूसरी
हस्तालिखित पुस्तकोंमें इस प्रकारका पाठभेद मिल
भी जायें।

ललितविस्तरा वृत्ति सिद्धिपिको किस रूपमें उप-
कारक हो पड़ी थी, अथवा किस कारणसे उन्होंने
उसका स्मरण किया है, इस बातका पता उनके
लेखसे थिल्लुल नहीं लगता। उनके चरित्रलेखक,
जो, बौद्धधर्मके संसर्गके कारण जैनधर्मपरसे उ-
नका चित्तभ्रंश होना और फिर इस वृत्तिके अघ-
लोकनसे पुनः स्थिर होना, इत्यादि प्रकारकी बातें
लिखते हैं, वे कहाँ तक सत्य हैं इसका कोई निर्णय
नहीं हो सकता। ललितविस्तराकी पञ्जिका लि-
खनेवाले मुनिचंद्रसूरि, जो सिद्धिपिसे मात्र २०० वर्ष
बाद हुए हैं वे भी, इस प्रवादकी पुष्टि प्रमाणरूप
गिना जाय, ऐसा ही अपना अभिप्राय लिखते हैं^{१६}।

१६ प्रभावक चरित्रमें 'मदर्थं निमिता येन' ऐसा
पाठ सूचित है। इसी तरह दूसरी पुस्तकोंमें उक्त प्रकारका
दूसरा पाठ भी मिलना बहुत संभवित है।

१७ मुनिचंद्रसूरिने पञ्जिकामें ललितविस्तरा वृत्तिकी वि-
श्रुति करनेके लिये अपनी असमर्थता बताते हुए निम्न
लिखित पद्य लिखा है।—

'यो सुदृष्टा किल सिद्धाधुरापिल्लुल्लभायानुचूचाभिः
समुद्रः सुगतप्रतीतसमयाभ्यासाच्चलच्चेतनः।
पत्कतैः स्वकृतौ पुनर्गुदतया चक्रे नमन्यामघौ
को द्वौनो विप्रोतु नाम विप्रुति शृण्वे तथाप्यात्मनः॥'

परंतु, इधर जव हम एक तरफ ललितविस्तरामें
सूचित विषयका विचार करते हैं और दूसरी तर-
फ उपमिनिर्मित वर्णित सिद्धिपिके आन्तर उद्देशका
अभ्यास करते हैं तब, इन दोनों ग्रन्थोंमें, इस
प्रचलित प्रवादकी रुढ़ताका निश्चायक ऐसा कोई
भी प्रमाण हमारी दृष्टिमें नहीं आता। ललितवि-
स्तरामें यद्यपि अहंहेतुकी आपत्ता और वृद्धता
बड़ा गंभीर और हृदयङ्गमरीतिसे स्थापित की गई
है, तथापि उसमें ऐसा कोई विशेष विचार नहीं है
जिसके अवलोकनसे, बौद्धधर्मशास्त्रके विविध
अभ्यासके कारण सिद्धिपि जैसे प्रतिभाशाली और
जैनशास्त्रके पारदर्शी विद्वान्का स्वधर्मसे चलाय-
मान हो जानेवाला मन सहजमें पुनः स्थिर हो जाय।
हां, यदि हरिभद्र ही के घनाये हुए अनेकांतजयप-
ताकावि प्रयोगके लिये ऐसा विधान किया हुआ
होता तो उसमें अवश्य सत्य माननेकी श्रद्धा उत्प-
न्न हो सकती है। क्योंकि उन ग्रन्थोंमें बौद्ध शा-
स्त्रके समग्र कुतर्कोंका बड़ा अकाट्य युक्तियों
द्वारा संपूर्ण निराकरण किया गया है। दूसरी बात
यह है कि, यदि सिद्धिपिका उपरि प्रवादानुसार
ऐसा जोविश्वविभूत धर्मभ्रंश हुआ होता तो उसका
जिकर वे उपमिति०के प्रथम प्रस्तावमें अपने 'स्वसवे-
दन' में अवश्य करते। क्योंकि कि सांसारिक कुवास-
नाजन्य धर्मभ्रंशका वर्णन विस्तराके साथ उन्होंने
दो तीन जगह किया है (देखो, उप० पृ. ९३, ९४)
परंतु दार्शनिक कुसंस्कारजन्य धर्मभ्रंशका उल्लेख
कहीं भी नहीं किया है। यद्यपि एक जगह, कुतर्क-
वाले ग्रन्थ और उनके प्रणेता कुतर्धिक, मुग्ध जन-
को किस प्रकार भ्रान्त करते हैं और तत्त्वामिमुख-
तासे किस प्रकार पराङ्मुख बनाते हैं, उसका
उल्लेख आया है (देखो, उप० पृ. ४६) ; तथापि वह
सर्वसाधारण और निष्पुण्यकी भगवद्धर्मप्राप्तिके
पूर्वका वर्णन होनेसे उस परसे सिद्धिपिके प्रावा-
दिक धर्मभ्रंशका कुछ भी सूचन नहीं होता। अतः
इस बातका हम कुछ निर्णय नहीं कर सके कि ल-
लितविस्तरा वृत्तिका स्मरण सिद्धिपिने क्यों किया
है। हां, इतनी बात तो जानी जाती है कि यह वृत्ति
उन्हें अभ्यस्त अवश्य थी और इस पर उनकी

भक्ति थी । क्योंकि इस वृत्तिकी वाक्यशैलीका उन्होंने अपने महान् ग्रन्थमें उत्तम अनुकरण किया है, इतना मात्र ही नहीं है परन्तु इसमें जितने उच्चम उत्तम धार्मिक भावनावाले वाक्य हैं वे सब एक दूसरी जगह ज्यों के त्यों अन्तर्हित भी कर लिये हैं । उदाहरणके लिये, चतुर्थ प्रस्तावमें जहाँ पर, नरवाहन राजा विचक्षण नामके सूरिके पास जा कर बैठता है, तब सूरिके जो उपदेशात्मक वाक्य उसे कहे हैं वे सब सिद्धार्थिने ललितविस्तरा हों मैसे ज्यों के त्यों उद्धृत किये हैं (देखो, उपमि पृ. ४७७, और ललित-० पृ ४६-७)। इसी तरह, सातवें प्रस्तावमें भी एक जगह बहुतसा उपदेशात्मक अथतरण यथायत् उद्धृत (अन्तर्हित) किया हुआ है (उपमि. पृ १०९२ और ललित पृ १६६) । इससे यह निश्चित ज्ञात होता है कि सिद्धार्थिको यह ग्रन्थ बहुत प्रिय था और इस प्रियतामें कारणभूत, किसी प्रकारका इस ग्रन्थका, उनके ऊपर विशिष्ट उपकारकाय ही होगा । बिना ऐसे विशिष्ट उपकारकायके, उक्त रीतिसे, इस ग्रन्थका सिद्धार्थिद्वारा बहुमान किया जाना संभवित और संगत नहीं लगता । जिस ग्रन्थके अध्ययन वा मननसे अपना आत्मा उपकृत होता है, उस ग्रन्थके प्रणेता महाभूमायको भी अपना उपकारी मानना-समजना और तदर्थ उसको नमस्कारादि करना, यह एक कृतज्ञ और सज्जनका प्रसिद्ध लक्षण है, और वह सर्वानुभव सिद्ध ही है । अतः हरिभद्रके समकालीन न होने पर भी सिद्धार्थिका, उनको गुरु तथा पूज्य मान कर नमस्कारादि करना और उन्हें अपना परमोपकारी बतलाना तथा उनकी बनाई हुई ललितविस्तरा वृत्तिके लिये 'भद्रार्थेय कृता—मानो मेरे लिये की गई' की भावनात्मक कल्पना करना सर्वथा युक्तिसंगत है ।

उपयुक्त कथानुसार सिद्धार्थि हरिभद्रसूरिकी अपेक्षासे अनागत याने भविष्यकालवर्ती थे, यह बात निश्चित सिद्ध होती है । इसी बातका विशिष्ट उल्लेख उन्होंने, उपमिति० के प्रथम प्रस्तावमें और भी स्पष्ट रूपसे कर दिया है । इस प्रस्तावमें, सिद्धार्थिने, निष्पुण्यक भिखारीके राजमन्दिरके चोकमें

प्रविष्ट होने पर उस पर महाराजकी दयाद्वं दृष्टिके पड़नेका, और उस दृष्टिपातको देख कर, महाराजकी पाकशालाके धर्मबोधकर नामक अधिकारीके मनमें, उसके कारणका विचार करनेका, जो रूप कात्मक वर्णन दिया है, उस वर्णनको फिर अपने अन्तरङ्ग जीवन ऊपर घटाते हुए तथा रूपकका अर्थ स्फुट करते हुए उन्होंने लिखा है कि—

‘यथा च तां महाराजदृष्टिं तत्र रोरं निपतन्तीं धर्मबोधकराभिधानो महानसनियुक्ता निरीक्षितया-नियुक्तम्, तथा परमेश्वरावलोकना मज्जीवे मवतीं धर्मबोधकाणशालां ‘धर्मबोधकरः’ इति यथार्थाभिधानो मन्मार्गोपदेशकः ‘सूरिः’ स निरीक्षते स्म,

(उपमिति, पृ. ८०)

अर्थात्—‘पहले जो भोजनशालाके अधिकारी धर्मबोधकरने उस भिखारीपर पड़ती हुई महाराजकी दृष्टि देखी।’ ऐसा कहा गया है, उसका भावार्थ ‘धर्मका बोध (उपदेश) करनेमें तत्पर होनेके कारण ‘धर्मबोधकर’ के यथार्थ नामको धारण करने-वाले ऐसे जो मेरे मार्गोपदेशक सूरि हैं, उन्होंने मेरे जीवन ऊपर पड़ती हुई परमेश्वरकी अवलोकना (ज्ञानदृष्टि) को देखी ऐसा समझना चाहिए ।’

इस रूपकका अपने जीवनपर इस प्रकार उपमित करते हुए सिद्धार्थिके मनमें यह स्वाभाविक शंका उत्पन्न हुई होगी कि, ‘रूपकमें जो धर्मबोधकरका, भिखारीपर पड़ती हुई दृष्टिके देखनेका वर्णन दिया गया है वह तो साक्षात् रूपमें है । अर्थात्, जब भिखारी ऊपर महाराजकी दृष्टि पड़ती थी तब धर्मबोधकर (पाकशालाधिपति) वहाँ पर प्रत्यक्ष रूपसे हाजर था । परन्तु इस उपमितार्थमें तो यह बात पूर्णरूपसे घट नहीं सकती । क्योंकि, परमेश्वर तो सर्वेश होनेसे उनकी दृष्टिका पड़ना मेरे ऊपर वर्तमानमें भी सुघटित है परन्तु जिनकी मने आपना धर्मबोधकर गुरु माना है वे (हरिभद्र) सूरि, तो मेरे इस वर्तमान जीवनमें विद्यमान हैं ही नहीं और न वे परमेश्वरकी तरह सर्वेश ही माने जा सकते हैं, इस लिये इस उपमानकी अर्थ-

संगति कैसे लगाई जाय ! [पाठक यहां पर यह बात ध्यानमें रखें कि सिद्धार्थने इस सारे प्रसङ्गमें जिस धर्मबोधकर गुरु का वर्णन दिया है वह हरिभद्रसूरिको ही लक्ष्य कर है । क्यों कि, प्रशस्तिमें यह बात खास तौरसे, उन्हींने लिख दी है । देखो ऊपर पृष्ठ २९ पर, हरिभद्रकी प्रशंसामें लिखे गये तीन श्लोकों का पहला श्लोक ।]

इस शब्दाका उन्मूलन करनेके लिये और प्रकृत उपमानकी अर्थ सङ्गति लगानेके लिये उस क्रान्तदर्शी महर्षिने अपने अनुपम प्रातिम कौशलसे निम्न लिखित कल्पनाका निर्माण कर अपूर्व बुद्धि-चातुर्य बतलाया है । ये लिखते हैं कि—

‘सद्धान्तरलेन विमलीभूतात्मानः परहितकनिरतचित्ता भगवन्तो ये योगिनः पद्मस्थेव देवकालव्यवहितानामपि जन्तूना छद्मस्थावस्थायामपि वर्तमाना दत्तापयोगा भगवद्वलोकनाया योग्यताम् । पुरोवर्तिना पुनः प्राणिना भगवदागमपरिकर्मितमतयाऽपि योग्यतां लक्षयन्ति, तिष्ठन्तु विशिष्टजाना इति । ये च मम सदुपदेशदायिनो भगवन्तः सूर्यस्ते विशिष्टजाना एव, यतः कालव्यवहितैरनागतमेव उर्जातः समस्तोऽपि मदीयो वृत्तान्त । स्वसंवेदनसिद्धमेतदस्माकमिति ।’

उप० पृ० ८० ।

अर्थात्—‘सद्धान्तरके यत्नसे जिनका आत्मा निर्मल हो गया है और जो परहितमें सदा तत्पर रहते हैं ऐसे योगी महात्मा, छद्मस्थावस्था याने असुर्यशब्दशामें भी विद्यमान हो कर, अपने उपयोग (ज्ञान) द्वारा, देवान्तर और कालांतरमें होनेवाले प्राणियोंकी, भगवान्के दृष्टिपातक योग्य होसों, योग्यताको जान लेते हैं । तथा इसी तरह जिनकी माते भगवान्के आगमोंके अध्ययनसे विशुद्ध होगई है वैसे आगमाभ्यासी पुरुष भी इस प्रकारकी योग्यताको जान सकते हैं तो फिर विशिष्टज्ञानियों (श्रुतज्ञानियों) की तो बात ही क्या है ? और जो मेरेको सदुपदेश देनेवाले आचार्य महाराज हैं वे तो विशिष्टज्ञानी ही हैं । इस लिये ‘कालसे व्यवहित’ याने कालांतरमें (पूर्वकालमें) होने पर भी, उन्होंने ‘अना-

गत, याने भविष्यकालमें होनेवाला मेरा समप्रवृत्तान जान लिया था । यह बात हमारी स्वसंवेदन (स्वाभुमय) सिद्ध है ।’

इस उल्लेख पर किसा प्रकारकी टीकाकी जरूरत नहीं है । स्पष्टरूपसे सिद्धार्थ कहते हैं कि, मेरेने कालव्यवहित अर्थात् पूर्वकालमें हो जानेवाले धर्मबोधकर सूरि (जो मय्य हरिभद्र हो है) ने जो अनारात याने भविष्यकालमें होनेवाला मेरा समप्रवृत्तान्त जान लिया था उसका कारण यह है कि ये विशिष्टज्ञानी थे । हरिभद्र सूरि सचमुच ही सिद्धार्थके जीवनके बारेमें कोई भविष्यलेख लिख गये थे या कथागत उपमितार्थकी सगतिके लिये सिद्धार्थको यह म्योन्नायित कल्पना मात्र है, इस बातके विचारनेकी यहां पर कोई आवश्यकता नहीं है । यहां पर इन उल्लेखकी उपयोगिता इसी दृष्टिसे है कि, इसके द्वारा हम यह स्पष्ट जान सकें हैं कि हरिभद्रसूरि सिद्धार्थके समकालीन नहीं हैं किन्तु पूर्वकालीन हैं ।

इस प्रकार सिद्धार्थके निजके उल्लेखसे तो हरिभद्रसूरिकी पूर्वकालीनता सिद्ध होती ही है, परंतु इस पूर्वकालीनताका विशेष साधक और अधिक स्पष्ट प्रमाण प्राप्त साहित्यके एक मुकुटमणिसमान ‘कुवलयमाला’ नामक कथाग्रन्थमेंसे भी मिलता है । यह कथा दक्षिण्यचिन्हके उपनामवाले उद्योतवर्मन्ने बनाई है । इसकी रचना-समाप्ति शकसंवत् सात वी के समान होनेमें जब एक दिन न्यून था तब,—अर्थात् शकसंवत् ६९९ के वैश्वक्रष्ण १४ के दिन—हुई थी । यह उल्लेख कर्ताने, स्वयं प्रशस्तिमें निम्न प्रकारसे किया है—

‘.... अहं बोद्धसीं चित्तम् किण्ठपंखलम् ।
निम्भविद्या बोद्धरुी भन्वाण होउ सन्वाण ॥’

× × × ×

३८ राजपूताना और उत्तर भारतमें पूर्णिमान्त मास माना जाता है । इस लिये यहां पर इसी पूर्णिमान्त मासकी अपेक्षासे वैश्वक्रष्णका उल्लेख किया हुआ है । दक्षिण भारतकी अपेक्षासे फाल्गुनरज्य समझना चाहिए । क्यों कि वहां पर अमान्त मास प्रचलित है । शुक्ररातमें भी यही अमान्त मास प्रचलित है ।

सगकाले बोलीने वरिसाण सण्हिं अचहिं गएहिं ।

एगदिणे णुणोहिं एस समत्ता वरुण्हमि ॥ '

[टिप्पणी—यह कथा प्राकृत साहित्यमें एक अमूल्य रत्न-

मान है। खेदकी बात है कि ऐसे सेंटम और महत्त्वके ग्रन्थ

र आज तक किसी दोग्यक विद्वानकी दृष्टिक नही पड़ी ।

सकी एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति, डेकनकलेजमें धरक्षित,

यन्त्रैसदृशके सुप्रसिद्ध पुस्तकालयमें धरुणित है । यह कथा

चम्पू के ढंग पर बनी हुई है । इसकी रचनाशैली बाणकी

हर्षोल्यायिकों या त्रिविक्रमकी नलचम्पू के जैसी है । काव्य-

चमत्कृति उत्तम प्रकारकी और भाषा बहुत मनोरम है ।

प्राकृतभाषाके अन्यासियोंके लिये यह एक अनुपम ग्रन्थ है ।

इस कथामें कविने कौतुक और बिनादके वशाभूत हो कर मुख्य

प्राकृत भाषाके सिवा अपभ्रंश और पेशाची भाषामें भी कि-

तनेएक वर्णन लिखे हैं, जिनकी उपयोगिता भाषाशास्त्रियोंकी

राशिसे और भी अत्यधिक है । अपभ्रंश भाषामें लिखे गए

दूतने प्राचीन वर्णन अभी तक अन्यत्र कहीं नहीं प्राप्त हुए

हैं । इस लिये, इस दृष्टिसे विद्वानोंके लिये यह एक बहुत

महत्वकी चीज है । इस कथाका विस्तृत परिचय हम एक

स्वतंत्र लेख द्वारा देना चाहते हैं । सुप्रसिद्ध आचार्य हेमचन्द्र

सूरिके शुद्धर श्रद्धेयचन्द्रसूरिने 'संतिनाह चरित्र' के उपो-

द्घात में, पूर्व कवियों और उनके उत्तम प्रयोगोंकी प्रशंसा करते

हुए इस कथाके कर्ताकी भी इस प्रकार प्रशंसा की है—

वक्खिन्नइदसुरिं नमामि धरवण्णमासिया ससुणा ।

कुवलयमाला व्य मेहा सुवलयमाला कथा जस्स ॥

इस कथाका धक्षित संस्कृत रूपान्तर १४ वीं शताब्दीमें

होनेवाले रत्नप्रसूरी नामके एक विद्वानने किया है जिसे

भावनगरकी जैन आत्मानन्द समाने छपेवा कर प्रकट

किया है ।

इस कथा और इसके कर्ताका उल्लेख प्रभावक चरि-

त्रके सिद्धिं प्रबन्धमें आया हुआ है । वहा पर ऐसा वर्णन

लिखा है कि—'दाक्षिण्यचन्द्र नामके सिद्धार्थके एक गुरु

प्राता थे । उन्होंने भृगुगाररससे भरी हुई ऐसी कुवलयमाला

कथा बनाई थी । सिद्धार्थने जब 'उपदेशमाला' नामक ग्रन्थ ऊपर

वालाबोधधेनी टीका लिखी तब दाक्षिण्यचन्द्रने उनका उप-

हास करते हुए कहा कि पुराणे ग्रन्थोंके अक्षरों को कुछ उल्टा

पुलटा कर नया प्रेम बगानमें क्या भरव है ? शास्त्र की

'धमरादिलचरित' जैसा कहा जा सकता है जिसके पदने

चे मनुष्य भूय-न्यासके' भी भूल जाते हैं । अथवा भरी

बनाई हुई कुवलयमाला कथा भी कुछ बेसी ही कही जा

सकती है, जिसके वाचनेसे मनुष्यको उत्तरोत्तर रसालाहद

आता रहता है । तुमारी रचना तो लेखक (लिपिकर=लिखे

हुए पुस्तककी नकल करनेवाला)की तरह मात्र नकल

बनाने जैसी है । अपने गुरुप्राता के ऐसे उपहासात्मक वचन

सिद्धार्थके दिलमें चुभ गये और फिर उन्होंने अष्ट प्रस्तावि-

वाला सुप्रसिद्ध उपमितिभवनप्रपंच कथाकी अपूर्व रचना

की । इस सुबोध कथाके आरम्भमें व्याख्यानकी सुन

कर जैन समाज (सघ) ने सिद्धार्थको मानप्रद ऐसी 'व्या-

ख्याता' की पदवी समर्पित की । इत्यादि । (देखो, प्रभाव-

कचरित्र, निर्णयसागर, पृष्ठ २०१-२०२ श्लोक ८८-१७)

(हो जैकोवी, प्रभावकचरित्रके इस वर्णनको बराबर

समझ नहीं सके इस लिये उन्होंने 'कुवलयमाला कथा' की

सिद्धार्थ की रूनि समझ कर असम्बद्ध अर्थ लिख दिया है ।

(देखो, जैकोवी साहबकी उपमितिभवन की प्रस्तावना,

पृष्ठ-१२, तथा परिशिष्ट, पृष्ठ-१०५)

कुवलयमाला कथाकी प्रशस्तिके देखनेसे माझम

पड़ता है कि प्रभावक चरित्रके कर्ताका उपर्युक्त कथन शि-

कुल असत्य है । क्योंकि कुवलयमालाकी रचना उपमितिभ-

वनप्रपंचकी रचनासे १२७ वर्ष पूर्व हुई है, इस लिये दाक्षि-

ण्यचन्द्र (चिन्)का सिद्धार्थके गुरुप्राता होनेका और

उक्त रीतिसे उपहासात्मक वाक्योंके कहनेका कोई भी

सम्बन्ध सत्य नहीं हो सकता ।]

इस कथाके प्रारम्भमें बाणमहर्षी 'हर्षोल्यायिका'

और धनपाल कविकी 'तिलकमञ्जरी' आदि क-

थाओंकी तरह, कितनेएक प्राचीन कवि और

उनके ग्रन्थोंकी प्रशंसा की हुई है । इस कविप्रशं-

सामें, अन्तमें, हरिभद्रसूरिकी भी—उनकी बनाई

हुई प्रशमरस परिपूर्ण प्राकृत भाषात्मक 'समराट्-

चक्रकथा' के उल्लेख पूर्वक—इस प्रकार प्रशंसा की

गई है—

जो इच्छद् भवविरह भवविरहं को न वंशे सुयणो ।

समयसयसत्थगुरुणो समरामयिका ' कहा जम्स ॥

—डेकनका संघर्षात पुस्तक, पृ २ ।

३९ हरिभद्रसूरिने तो स्वयं अपने इस ग्रन्थका नाम

'समराट्चक्रकथा' अथवा 'समराट्चक्रचरित्र'

(चरित्रं समराट्चक्रकथा, पृ-५, पृ. १२) लिखा है, परन्तु यहां

पर 'समययिका' (सं-धमरमृगाट्का) ऐसा नाम छलि-

खित है, सो इस पाठभेदका कारण समझमें नहीं आता ।

हरिमद्रसूरिने प्रायः अपने सभी ग्रन्थोंके अंतमें, किसी न किसी तरह अर्थ-सम्यग्ध घटा करके 'भवविरह' अथवा 'विरह' इस शब्दका प्रयोग अवश्य किया है। इस लिये वे 'विरहाद्' कवि या ग्रन्थकार कहे जाते हैं। इनके ग्रन्थोंके सबसे पहले टीकाकार जिनेश्वरसूरिने (वि. सं. १०८०) अष्टक प्रकरणकी टीकामें, अन्तमें जहां पर 'विरह' शब्द आया है वहां पर, इस चारमें स्पष्ट लिया भी है कि—

'विरह' शब्देन हरिमद्राचार्यकृतत्वं प्रकरण-स्योद्घोषितम् । विराड्कत्वाद् हरिमद्रसूरिरेति ।'

पेसा ही उल्लेख अभयदेवसूरि (पंचाक्षकप्रकरण-की टीकामें) और सुनिचन्द्रसूरि (ललितविस्तरा-पं-जिकामें) आदिने भी किया है। इसी आशयसे, कुशलमालाके कर्तारोंने भी यहां पर श्लेषके रूपमें 'भव-विरह' शब्दका युगल प्रयोग कर हरिमद्रसूरिका स्मरण किया है। साथमें उनकी 'समराड्चक्रका' का भी उल्लेख है, इससे, इस कुशङ्का के लिये तो यहां पर, किञ्चित् भी अवकाश नहीं है कि, इन हरिमद्रके सिवा और किसी ग्रन्थकारका इस उल्लेखमें स्मरण हो। अस्तु।

इसी तरह, इस कथाकी प्रशस्तिमें भी हरिमद्र-सूरिका उल्लेख मिलता है, जिसका विचार आगे चल कर किया जायगा। इससे स्पष्ट है कि, हरि-भद्रको, शक संवत् ७००, अर्थात् विक्रम संवत् ८३५-ई. सं. ७७८ से तो अर्वाचीन किसी तरह नहीं मान सकते।

इस प्रकार, हरिमद्रसूरि सिद्धार्थिके समकालीन नहीं थे, इस बातका समाधान तो हो चुका है।

—महाकवि धनपालने भी मिलकमञ्जरी कथाकी पाठिका-में इस ग्रन्थकी निम्न प्रकारसे प्रशंसा की है—

निरोद्धं पार्यते केन समरादित्यजन्मनः ।
प्रशमस्य वशीभूतं समरादि त्यजन्मनः ॥

इसी तरह देवचन्द्रसूरिने 'सन्तिनाहचरितं' की प्रस्ता-वनामें भी इस कथा-ग्रन्थका स्मरण किया है। यथा—

ध्वे सिरिहरिमद्रं सूरिं विउसयणणिगयपयायं ।
जेण य कहापवन्धो समराद्वो विणिग्गमविओ ॥

(—विट्ठन रिपोर्ट, ५, पृ. ७२)

अथ यहां पर, यह दूसरा प्रश्न उपस्थित होता है कि, जब हरिमद्र इस प्रकार सिद्धार्थिके समकालीन नहीं माने जा सकते, तब फिर पूर्वोक्त गाथाके कथनानुसार उन्हें विक्रम की ६ ठी शताब्दीमें मान लेनेमें क्या आपत्ति है? क्यों कि उस समयका बाधक मुख्य कर जो सिद्धार्थिका उल्लेख समझा जाता है वह तो उपर्युक्त रीतिसे निर्मूल सिद्ध होता है।

इस प्रश्नके समाधानके लिये विशेष गवेषणाकी जरूरत होनेसे, जब हमने हरिमद्रके प्रसिद्ध प्रसिद्ध सय ही उपलब्ध ग्रंथोंका, इस दृष्टि से, ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया, तो उनमें अनेक ऐसे स्पष्ट प्रमाण मिल आये कि जिनकी ऐतिहासिक पूर्वापर-ताका विचार करने पर यह सिद्ध होता है कि 'गाथा' में यतलाये मुख्य हरिमद्रका स्वर्गमन वि. सं. ५८५ में—एवं ६ ठी शताब्दीमें उनका होना सत्य नहीं माना जा सकता।

जैसा कि हम प्रारंभ ही में सूचित कर आये हैं, हरिमद्रसूरिने अपने दार्शनिक और तार्थिक ग्रंथोंमें कितनेएक ब्राह्मण, बौद्ध आदि दार्शनिक विद्वानोंके—नामोल्लेख पूर्वक—विचारों और सिद्धान्तों की आलोचना-प्रत्यालोचना की है। इस कारणसे उन उन विद्वानोंके सत्ता-समयका विचार करनेसे हरि-भद्रके समयका भी ठीक ठीक विचार और निर्णय किया जा सकता है। अतः अब हम इसी बातका विचार करना शुरू करते हैं।

हरिमद्रसूरिके ग्रंथोंमें मुख्य कर निम्न लिखित दार्शनिकों और शास्त्रकारोंके नाम मिल आते हैं:—

ब्राह्मण—

अवधूताचार्य	आसुरि
ईश्वर कृष्ण	कुमारिल-मीमांसक
पतञ्जलि-भाष्यकार	पतञ्जलि-योगाचार्य
पाणिनि-वैयाकरण	भगवद् गोपेन्द्र
भर्तृहरि-वैयाकरण	ज्यास महर्षि
विन्ध्यवासी	शिवधर्मोत्तर

४० इन ग्रंथकारोंके नामोंके सिवा, कितने ही संप्रदायों, संप्रदायिकों और तैर्थिकोंके संस्मरण भी इनके ग्रंथोंमें यत्र तत्र मिलते हैं परंतु उनके उल्लेखोंसे प्रकृत विचारमें कोई विशेष सहायता न मिलनेके कारण यहां पर वे नहीं दिये जाते।

बौद्ध—

कुकाचार्य
दिवाकर (?)
दिग्नागाचार्य
धर्मपाल
धर्मकीर्ति
धर्मोत्तर
भद्रन्तादिस
बसुबन्धु
शान्तरक्षित
शुभगुप्त

जैन—

आजितयश
उमास्वाति
जिनदास महत्तर*
जिनभद्र गणि क्ष०
देववाचक
भद्रगड
महवादी
समन्तभद्र
सिद्धसेन-दिवाकर
सद्यदास-गणि*

[टिप्पणी:—इन ग्रन्थकारोंके अतिरिक्त, हरिभद्रके

ग्रन्थों—ग्रन्थोंमें कितने ही जैन-अजैन ग्रन्थोंके भी नाम मिलते हैं। इनमेंका एक नाम सात उनके समयके विचारमें भी विचारणीय है। आवश्यकसूत्रकी शिष्यहिता नामक बुद्धबुद्धिमें, एक जगह, निर्देश-निर्देशक विनयक नाम निर्देशके विचारमें, हरिभद्रसूरिने, ५-६ ग्रन्थोंके नाम लिखे हैं, जिनमें 'वासवदत्ता' और 'प्रियदर्शना'का भी नामनिर्देश है। 'वासवदत्ता' सुबन्धु कविकी प्रसिद्ध आलम्पिका का कथा है। यद्यपि इसके समयके बारेमें विद्वानोंमें कुछ मतभेद है, परन्तु सामान्यरूपसे ६ठी शताब्दीमें इस कविका अस्तित्व मतलाला जाता है। 'प्रियदर्शना' १२। एक सुप्रसिद्ध नाटिक

* ये नाम, उनके ग्रन्थोंके दिये हुए अवतरणोंसे सूचित हैं।

४१ देखो, आवश्यकसूत्रकी हरिभद्रा वृत्ति, पृ १०६, यथा—
'निर्देशयशशब्द यथा-वासवदत्ता, प्रियदर्शनेति ।'
—जिनभद्रगणिने विशेषावश्यक आध्यात्म, इसी प्रसंग पर,
'अहवा निदिद्वयसा वासवदत्ता-तरंगययाई ।'
ऐसा लिपि कर वासवदत्ता और तरंगयती (जो, गाथा सचसर्देके संग्राहक प्रसिद्ध महाराष्ट्रीय कवि नृगति सातवाहन या हालके समकालीन जेनाचार्य पादलिप्त या पाल्तिव कविकी बनाई हुई है) का उल्लेख किया है। जिनभद्रगणि क्षमाभ्रमणका समय ६ठी शताब्दी है, इस लिये ७वीं शताब्दीमें जन्म पावेवाली 'प्रियदर्शना' का नाम उनके उल्लेखमें नहीं आ सकता, यह स्वतः छिद्र है। जिनभद्रजीके इस प्रमाणसे, वासवदत्ताके कर्ता सुबन्धुका समय जो बहुतसे विद्वान् ६ठी शताब्दी मतलालते हैं और उसे बाणका पुत्रायायी मानते हैं, सो हमारे विचारसे ठीक साधन देता है।

४२ वर्तमानमें इस नाटिकाकी जितनी संस्कृत आवृत्तियाँ प्रकाशित हुई हैं उन समयमें इसका नाम 'प्रियदर्शिका'

है और वह स्थानेश्वरके चक्रवर्ती नृपति कवि हर्षकी बनाई हुई है। हर्षका समय सर्वथा निश्चित है। ई स ६४८ में इस प्रतापी और विद्याविलासी नृपतिकी मृत्यु हुई थी। ई स. की ७वीं शताब्दीका पूरा पूर्वार्द्ध हर्षके पराक्रमी जीवनसे व्याप्त था। हमारे एक वृद्धमित्र साक्षात्वर श्रीके ह. ध्रुवने प्रियदर्शनाके गुजराती भाषान्तरकी भूमिकामें, इसका रचना-समय ई. स. ६१८ के लगभग अनुमानित किया है १३। इस ऊपरसे प्रस्तुत विषयमें, यह बात जानी जाती है कि प्रियदर्शनाका नामनिर्देश करनेवाले हरिभद्र सूरि उसके रचना समय बाद ही कभी हुए होंगे। प्रारुतगाथामें बतलाये मुताबिक हरिभद्र ६ठी शताब्दीमें नहीं हुए, ऐसा जो निर्णय हम करना चाहते हैं, उसमें यह भी एक प्रमाण है, इतनी यात ध्यानमें रख लेने लायक है।]

इस नामावलीमेंके कितनेएक नामोंका तो अभी तक विद्वानोंको शायद परिचय ही नहीं है। कितनेएक नाम विद्वत्समाजमें परिचित तो हैं परन्तु उन नामधारी व्यक्तियोंके अस्तित्वके बारेमें पुराविद् पण्डितोंमें परस्पर सँकड़ों ही वर्षों जितना बड़ा मतभेद है। कोई किसी विद्वानका अस्तित्व पहली शताब्दी मतलालता है, तो कोई पाँचवीं छठी शताब्दी मतलालता है। कोई किसी आचार्यको ई. स. के भी सौ दो सौ वर्ष पहले हुए साबित करता है, तो कोई उन्हें ९ वीं १० वीं शताब्दीसे भी अर्धाचीन सिद्ध करता है। इस प्रकार ऊपर दी हुई नामावलीमेंके कितने ही विद्वानोंके समयके विषयमें विद्वानोंका एकमत नहीं है। तथापि, देश और विदेशके विशेषज्ञ विद्वानोंने दीर्घपरिभ्रमपूर्वक चिन्तित ऊहापोह करके, इस नामावलीमेंके कई विद्वानोंके समयका ठीक ठीक निर्णय भी किया है; और यह बहुमतसे निर्णायकरूपमें स्वीकृत भी हुआ है। इस-

ऐसा छपा हुआ है, परन्तु श्रीवृत्त के शालाज्जी ध्रुवने, अपने गुजराती अनुवादकी प्रस्तावनामें (देखो, पृ ७६, नोट.) यह साधित किया है कि इसका मूल नाम 'प्रियदर्शिका' नहीं किन्तु 'प्रियदर्शना' होना चाहिए, और अपनी पुस्तकपर उन्होंने यही नाम छपवाया भी है। सो धृष्ट महाशयके इस अविकारका हरिभद्रके प्ररुत उल्लेखमें प्रामाणिक समर्थन होता है।

४३ देखो, पृ. ७९ पहली आवृत्ति ।

लिये, इन विद्वानोंके समयका विचार, हरिभद्रके समय-विचारमें बड़ा उपयोगी हो कर उसके द्वारा हम ठीक ठीक यह जान सकेंगे कि हरिभद्र किस समयमें हुए होने चाहिए।

ऊपर जो आचार्यनामावली दी है उसमें वैयाकरण भर्तृहरिका भी नाम सम्मिलित है। अनेकान्त-जयपताकाके चतुर्थ अधिकांशमें, शब्द ब्रह्मकी भी-मांसा करते हुए दो तीन स्थलोंपर हरिभद्रने इनका नामोल्लेख किया है और इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ वाक्य पदीयमेंसे कुछ श्लोक उद्धृत किये हैं। यथा—

(१) आह च शब्दार्थतत्त्वविद् (भर्तृहरिः)—^{४४}

' वाग्रूपता चेदुक्तामेदवबोधस्य शाश्वती ।

न प्रकाशः प्रकाशेत सा हि प्रत्यवमर्शिनी ॥

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते ।

४४ अनेकांतजयपताका। ऊपर हरिभद्रने स्वयं एक संक्षिप्त परंतु शब्दार्थका परिस्पष्ट करने वाली टीका लिखी है। [इस टीका के अन्तमें ऐसा उल्लेख है—'कृतिधर्मतो जा (या) - किनीमहत्तत्त्वानुराचार्यर्षी हरिभद्रस्य। टीकाप्येषाः वचूणिंका प्राया भावार्थमात्रयेदिनी नाम तस्यैवेति'] इस टीकामें मूलग्रंथमें जिन जिन विद्वानोंके विचारोंका-अवतरणोंका संग्रह किया गया है उन सबके प्रायः नाम लिख दिये हैं। मूल ग्रंथमें कहीं पर भी किसी के मुख्य नाम का उल्लेख न कर के जिस शास्त्रका जो पारंगत ज्ञाता है उसके सूत्र किसी विशेषणसे अथवा और किसी प्रसिद्ध उपनामसे उस उस विद्वान का स्मरण किया है। फिर टीकामें उन सबका स्पष्ट नामोल्लेख भी कर दिया है। कहीं पर मूल ग्रंथमें 'उक्तं च' मात्र कह कर ही अन्योक्त अवतरण उद्धृत कर दिया है और फिर टीकामें उसी तरह नाम लिख दिया है। यही क्रम 'शाश्वतायमुच्यते' की श्लोका टीकामें भी उपलब्ध होता है। इस क्रमानुसार, ऊपर जो 'शब्दार्थतत्त्वविद् भर्तृहरिः' विशेषण भर्तृहरि का है, ऐसा समझना चाहिए। आगे पर जहाँ कहीं हम टीकामें से ऐसे मुख्य नामोंको उद्धृत करें वहाँ पर पाठक इस नाट को स्वयं देखें।

अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन जायते ॥^{४५}

(२) उक्तं च (भर्तृहरिणा)—

' यथानुवाकः श्लोको वेति ।'^{४६}

(अनेकान्तजयपताका, अमदावाद पृष्ठ. ४१.)

चीनदेश निवासी प्रसिद्ध प्रवासी इत्सींग^{४७} ई. स. की ७ वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें भारतमें भ्रमण करनेको आया था। उसने अपने देशमें जा कर ई. स. ६९५ में अपना भ्रमण-वृत्तान्त लिखा। इसमें, उसने, उस समय भारतवर्षमें ध्याकरणशास्त्रका अध्ययन-अध्यापन जिस रीतिसे प्रचलित था उसका वर्णन लिखा है और साथ में मुख्य मुख्य वैयाकरणोंके नाम भी लिखे हैं। भर्तृहरिके विषयमें भी उसने लिखा है कि—य एक प्रसिद्ध वैयाकरण ये, और इन्होंने ७०० श्लोककी संख्या वाले वाक्यपदीयग्रंथकी रचना की है। इस ग्रंथका जिक्र करके उस प्रवासीने यह भी लिखा है कि इसके कर्ताकी ई. स. ६५० में मृत्यु हो गई है। इत्सींगके इस उल्लेखके विरुद्धमें आज तक कोई विशेष प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ; इस लिये इसे सत्य मान लेनेमें कोई हरकत नहीं है।

महान् भीमांसक कुमारिलने 'तंत्रवार्तिक' के प्रथम प्रकरणमें शब्दशास्त्रियोंकी खूब खबर ली है। उसमें पाणिनि, कात्यायन और पतंजलीके साथ साथ भर्तृहरिके ऊपर भी आक्षेप किये गये हैं। 'वाक्यपदीय' मेंसे अनेक श्लोकोंको उद्धृत कर

४५ काशीमें मुद्रित वाक्यपदीयके प्रथमकाण्डमें ये दोनों श्लोक (पृष्ठ ४६-७) पूर्वापर के क्रमसे अर्थात् आगे पीछे लिखे हुए मिलते हैं। पिछले श्लोकके ४ थं पादमें 'सर्वं शब्देन भासते' ऐसा पाठ भेद भी उपलब्ध है। प्रसिद्ध विष्णुवर विद्वान् विद्यानन्दी ने 'अष्टसहस्री' [११३०] में और प्रभाचंद्रने 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' [५११] में भी इन दोनों श्लोकोंकी वाक्य पदीयके क्रमसे उद्धृत किये हैं। बादी देवसूरिने भी 'स्याद्वादरत्नाकर' (पृ. ४२) में इन को दिया है।

४६ वाक्यपदीय, पृ. ६३ में यह प्राश्लोक इस प्रकार है यथानुवाकः श्लोको वा सोऽद्वयमुपगच्छति। आवृत्त्या, न तु स ग्रन्थः प्रत्यावृत्त्या निरूप्यते ॥ ४७ देखो, प्रो. मेख मुखर लिखित India: what it can teach us I, पृष्ठ २१०।

उनकी तीक्ष्ण समालोचना की है। उदाहरणके लिये 'वाक्यपदीय' और 'तन्त्रवार्तिक' मेंसे निम्न लिखित स्थल ले लीये जाँय।

वाक्यपदीयके (पृ० १३२) दूसरे प्रकरणमें १२१ वां श्लोक इस प्रकार है:—

अस्यर्थः सर्वशब्दानामिति प्रत्याग्यलक्षणम् ।

अपूर्वदेवतासर्वगः सममाहुर्गवादिषु ॥

कुमारिल भट्टने तन्त्रवार्तिकमें इस श्लोकको दो जगह (बनारस की आवृत्ति पृ. २५१-२५४) उद्धृत किया है। यथा—
'यथाहुः—

'अस्यर्थः सर्वशब्दानामिति प्रत्याग्यलक्षणम् ।

अपूर्वदेवतासर्वगः सममाहुर्गवादिषु ॥' इति ।

यत्तु 'अपूर्वदेवतासर्वगः सममाहुः।' इति, तत्राभिधीयते ।

वाक्यपदीयके प्रथम प्रकरणमेंके ७ वें श्लोकका उत्तरार्द्ध, तन्त्रवार्तिक (पृष्ठ २०९-१०) में कुमारिलने उद्धृत किया है और उसमें शब्दपरावर्तन कर भर्तृहरिके विचारका अवस्कन्दन किया है:—
यदपि केनचिदुक्तम्—

तत्त्वावबोधः शब्दानां नास्ति व्याकरणादृते ।' इति
तद्वृत्तसंग्रहप्रतिषेधेनैवपि वक्तव्यमासीत् ।

को हि प्रत्यक्षगम्यार्थे शास्त्रात्तत्त्वावधारणम् ।

शास्त्रलोकस्यभावज्ञ ईदृशं वक्तुमर्हति ? ॥

अत एव श्लोकस्योत्तरार्द्धं वक्तव्यम्—

तत्त्वावबोधः शब्दानां नास्ति श्रोत्रेन्द्रियादृते ।'
न ह्यत्र कश्चिद्विप्रतिषेधेनैवपि वक्तव्यमासीत् ।

प्रसिद्ध इतिहासज्ञ प्रो. का. वा. पाठकने अपने 'भर्तृहरि और कुमारिल' नामक निबन्धमें इस ऊपर लिखे गये प्रमाणाधारसे निर्णय किया है कि कुमारिल ई.स.की ८ वीं शताब्दीके पूर्व भागमें हुए होंगे। अध्यापक पाठक लिखते हैं कि—'मेरे विचारसे यह तो स्पष्ट है कि कुमारिलके समयमें व्याकरणशास्त्रके ज्ञाताओंमें भर्तृहरि भी एक विशिष्ट प्रमाणभूत विद्वान् माने जाते थे। भर्तृहरि

अपने जीवनकालमें तो इतने प्रसिद्ध हुए ही नहीं होंगे कि जिससे पाणिनि-संप्रदायके अनुयायी, उन्हें अपने संप्रदायका एक आप्त पुरुष समझने लगे हों और अतएव पाणिनि और पतंजलिके साथ वे भी महात्मीमांसककी समालोचनाके निशान बने हों। इसी कारणसे हुएनत्सांग, जिसने ई. स. ६२९-६४५ के बीचमें भारत-भ्रमण किया था, उसने इनका नाम तक नहीं लिया, परंतु इत्सींग, जिसने उक्त समयसे आधी शताब्दी बाद अपना प्रवास वृत्त लिखा है, वह लिखता है कि भारत-वर्ष के पाँचों खण्डोंमें भर्तृहरि एक प्रख्यात वैयाकरणके रूपमें प्रसिद्ध हैं। इस विवेचनसे हम ऐसा निर्णय कर सकते हैं कि जिस वर्षमें तन्त्रवार्तिककी रचना हुई उसके और भर्तृहरिके मृत्युवाले ई.स. ६५० के बीचमें आधी शताब्दी बीत चुकी होगी। अतएव कुमारिल ई. स. की ८ वीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें विद्यमान होने चाहिये ।"

हरिभद्रने अपने अनेक ग्रन्थोंमें मीमांसा-दर्शनकी आलोचना-प्रत्यालोचना की है। शास्त्रवार्ता-समुच्चयके १० वें प्रकरणमें मीमांसक प्रतिपादित 'सर्वज्ञ-निषेध' पर विचार किया गया है। उसमें पूर्वपक्षमें कुमारिल भट्टके मीमांसा-श्लोकवार्तिकके—

'प्रमाणपञ्चकं यत्र वस्तुरूपे न जायते ।

वस्तुसत्तावबोधार्थं तत्राभावप्रमाणंती ॥'

इस श्लोकका, 'शास्त्रवार्तासमुच्चय' (उक्त प्रकरणमें के ४ र्थ श्लोक) के

'प्रमाणपञ्चकाऽवृत्तेस्तत्राभावप्रमाणंती ।'

इस श्लोकार्द्धमें केवल अर्थशः ही नहीं परंतु शब्दशः अनुकरण किया हुआ स्पष्ट दिखाई देता है।

इसी तरह, मीमांसा-श्लोकवार्तिकके चौदना-सूत्र वाले प्रकरणमें—जहाँ पर वेदोंकी स्वतः प्रमाणता स्थापित करनेकी मीमांसा की हुई है—निम्न लिखित श्लोकार्द्ध कुमारिलने लिखा है:—

'तस्मादाश्लोकवद् वेदे सर्वसाधारणे सति ।'

मीमांसा श्लोकवार्तिक, पृ. ७४।

४९ मीमांसा श्लोकवार्तिक, पृष्ठ ४०१ ।

५० शास्त्रवार्तासमुच्चय, (देवचंद सा. पुस्तकालय)
फंडसे मुद्रित) पृष्ठ ३४९ ।

इसी श्लोकार्द्धको शास्त्रवार्ता-समुच्चयके एक प्रकरणमें हरिभद्रने भी निम्नलिखित श्लोकमें तद्वत्-फक्त प्रारम्भके एक शब्दका परिवर्तन कर-उद्धृत किया है । यथा—

आहचालोकवद्वेदे सर्वसाधारणे सति ।

धर्माधर्मपरिज्ञाता किमर्थं कल्प्यते नरः ॥ ५१

और फिर इस श्लोककी स्वोपज्ञ-व्याख्यामें 'आह च कुमारिलान्दिः' । इस प्रकार स्वयं ग्रंथकर्ताने सायणमें साक्षात् कुमारिलका नामोल्लेख भी कर दिया है ।

इस प्रमाणसे यह शत हो गया कि हरिभद्रने जैसे धैर्याकरण भर्तृहरिकी आलोचना की है वैसे ही भर्तृहरिके आलोचक भीमांसक कुमारिलकी भी समालोचना की है ।

ऊपर लिखे सुताधिक प्रो. पाठकके निर्णयानुसार कुमारिलका समय जो ई. स. की ८ वीं शताब्दीका पूर्वार्द्ध मान लिया जाय तो फिर हरिभद्रका समय भी वही मानना चाहिए । यद्यपि कि इस शताब्दीके उत्तरार्द्धके मध्य-भागमें ई. स. ७७८ में-समाप्त होनेवाली कुवलयमाला कथामें पूर्वोक्त उल्लेखानुसार स्पष्ट रूपसे हरिभद्रका नामस्मरण किया हुआ विद्यमान है । ऐसी दशामें उल्लिखित कुमारिल-समय और यह हरिभद्र समय दोनों एक ही हो जाते हैं । अतएव इन दोनों आचार्योंकी समकालीन मान लेनेके लिये दूसरा कोई मत दिखाई नहीं देता ।

इस मतकी पुष्टि अन्य प्रमाण भी यथेष्ट उपलब्ध होते हैं, सो भी यतलाते हैं ।

हरिभद्रके ग्रंथोंमें जिन जिन बौद्ध विद्वानोंके नाम मिलते हैं उनकी सूचि ऊपर दी गई है । इन विद्वानोंमेंसे आचार्य वसुयन्धु और महामति दिग्नाग तो प्राकृत गाथामें उल्लिखित हरिभद्रके मृत्यु-समयसे निर्विवाद रीतिसे पूर्वकाल ही में हो चुके हैं, इस लिये उनके जिकरकी तो यहां पर कोई अपेक्षा नहीं है, परंतु धर्मपाल, धर्मकीर्ति, धर्मो-

५१ शास्त्रवार्तासमुच्चय, बम्बई (दे. ला. जैनपुस्तको-द्वार फंड) पृ. ३५४.

५२ अनेकान्तजयपताकाकी तरह इस ग्रंथपर भी हरिभद्रने स्वयं एक संक्षिप्त व्याख्या लिखि है—जो उपलब्ध है ।

स्तर और शांतरक्षित आदि विद्वान् गाथोक हरिभद्रके मृत्युसमयसे अर्वाचीन कालमें हुए हैं, ऐसा ऐतिहासिकोंका बहुमत है । इस लिये हरिभद्रका समय भी गाथोक समयसे अवश्य अर्वाचीन मानना पड़ेगा । यहां पर प्रथम हम हरिभद्रके ग्रंथोंमें से उन कुछ अवतरणोंको उद्धृत कर देते हैं जिनमें धर्मपालादि बौद्ध विद्वानोंका जिकर पाया जाता है । फिर उनके समयका विचार करेंगे ।

अनेकान्तजयपताकाके ४ र्थ परिच्छेदमें, जहां पर पदार्थोंमें अनेकधर्मोंके आस्तित्वका स्थापन किया गया है, वहां पर एक प्रतिपक्षी बौद्धके मुखसे निम्न लिखित पंक्तियोंका उच्चारण ग्रंथकारने करवाया है—

‘म्यादेतस्सिद्धसाधनम्, एतदुक्तमेव नः पूर्वाचार्यैः-द्विविधा हि रूपादीनां शक्तिः— सामान्या प्रतिनियता च । तत्र सामान्या यथा घटसन्निवेशिनामुदकाद्याहरणादिकार्यकरणशक्तिः । प्रतिनियता यथा चक्षुर्विज्ञानादिकार्यकरणशक्तिरिति ।’

(अनेकान्तजयपताका, अमदाबाद, पृ. ५०)

इस अवतरणके पूर्वभागमें जो ‘नः पूर्वाचार्यैः’ यह वाक्यांश है, इसकी स्पष्ट व्याख्या स्वयं ग्रंथकार ने इस प्रकार की है—

‘नः—अस्माकंपूर्वाचार्यैः—धर्मपाल-धर्मकीर्त्यादिभिः ।’

इससे स्पष्ट है कि उद्धृत अवतरणकी हरिभद्रने धर्मपाल और धर्मकीर्तिके विचारोंका सूचक बतलाया है । धर्मपालका स्पष्ट नामोल्लेख तो फक्त इसी एक ही जगह हमारे देखनेमें आया है, परंतु धर्मकीर्तिका नाम तो पचासों जगह और भी लिखा हुआ दिखाई देता है । ‘अनेकान्तजयपताका’ ग्रंथ आस कर, भिन्न भिन्न बौद्धाचार्योंने अपने ग्रंथोंमें जैनधर्मके अनेकान्तवादका जो खण्डन किया था उसका समर्पक उत्तर देने ही के लिये रचा गया था । तार्किकचक्रचूडामणि आचार्य धर्मकीर्तिकी प्रशंसा प्रतिभा और प्राक्कल लेखिनीने भारतके तत्कालीन सबही दर्शनियोंके साथ जैनधर्मके ऊपर भी प्रचण्ड आक्रमण किया था । इस लिये हरिभद्रने, जहां कहीं थोड़ासा भी मौका मिल गया वहीं पर धर्म-

कीर्तिके भिन्न भिन्न विचारोंकी सौम्यभाव पूर्वक परंतु मर्मन्तिक रीतिसे चिकित्सा कर, जैनधर्म पर किये गये उनके आक्रमणोंका सूद सहित बदला चुकवा लेनेकी सफल चेष्टा की है । हरिमद्रने धर्मकीर्तिका विशेष कर 'न्यायवादी' के पाण्डित्यप्रदर्शक विशेषणसे उल्लेख किया है और कहीं कहीं पर उनके बनाप हुए 'हेतुविन्दु' और 'वार्तिक' आदि ग्रंथोंका भी नामस्मरण किया है । यथा—

(१) उक्तं च धर्मकीर्तिना 'न तत्र किञ्चिद् भवति न भवत्येव केवल' मिति वार्तिके ।

(अनेकां. यशोविजय जैनग्रंथमाला, पृ. १०)

(२) आह च न्यायवादी (धर्मकीर्तिवार्तिके)—
न प्रत्यक्षं कस्माचित् निश्चायकं, तद् युगपि गृह्णाति तत्र निश्चयेन, किं तर्हि । तत्प्रतिभासेन ।
(पृ. १७७.)

यदाह न्यायवादी (धर्मकीर्तिवार्तिके)—

(३) 'प्रत्यक्षं कल्पनापोढं प्रत्यक्षेणैव सिद्धयति ।
प्रत्यात्मवेद्यः सर्वेषां विकल्पो नाम संश्रयः ॥
संहृत्य सर्वतश्चिन्तां स्तिमितेनान्तरात्मना ।
स्थितोऽपि चक्षुषा रूपमीक्षते साऽक्षजा मतिः ॥
पुनर्विकल्पयन् किञ्चिदासीद् मे कल्पनेदृशी ।
इति वेत्ति न पूर्वोक्तावस्थायामिन्द्रियाद् गतौ ॥
इत्यादि, तदुपाकृतमवसेयम् । (पृष्ठ. २०७) ।

(४) आह च न्यायवादी (धर्मकीर्तिः)—
अर्थानां यच्च सांमान्यमन्यव्यावृत्तिलक्षणम् ।
यत्रिष्टास्त इमे शब्दा न रूपं तस्य किञ्चन ॥'
(अनेकां. अमदावाद, पृ. ३७)

(५) उक्तं च न्यायवादिना (धर्मकीर्तिना)—
पररूपं स्वरूपेण यथा संनियते धिया ।
एकार्थप्रतिभासिन्या भावानाश्रित्य भेदिनः ॥
तथा संवृतनानात्वाः संवृत्या भेदिनः स्वयम् ।
अभेदिन इवामान्ति भावा रूपेण केनचित् ॥
तस्या अभिप्रायवशात्सामान्यं सत् प्रकीर्तितम् ।

तदसत् परमार्थेन यथा सद्ब्रह्मिणं तया ॥

(बही प्रति पृ. ३९)

(६) तथा चोक्तम् (न्यायविदा वार्तिके)—
नीलपीतादियज्जानाद् बहिर्वदवभासते ।
तत्र सत्यमतो नास्ति विज्ञेयं तत्त्वतो बहिः ॥
तदपेक्षया (छा ?) च संवित्कर्तृता या कर्तृरूपता ।
साऽप्यतत्त्वमतः संविद्वद्वयेति विभाव्यते ॥

(बही प्रति पृ. ५४)

(७) एवं च यदाह न्यायवादी—(धर्मकीर्तिः)—
बीजादद्भुरजन्मा मेधूमास्तिद्विरितीदृशी ।
बाह्यायाश्रयिणी यापि कारकज्ञापकस्थितिः ॥
सापि तद्भूषणनिर्मासास्तथा नियतसङ्गमाः ।
बुद्धीराश्रित्य कल्प्येत यदि किंवा विरुद्धयते ॥
इत्यादि तदसंप्रतमिति दर्शितं भवति ।

(बही प्रति पृ. ५७)

(८) ग्राह्यग्राहकभावलक्षणएव तयोः प्रतिबन्ध इति चेत्, न, अस्य धर्मकीर्तिना—(भवत्कारिकचूडामणिना)—अनङ्गीकृतत्वात् ।

(बही प्रति पृ. ६०)

(९) यच्चोक्तमेतेन कारणानां भिन्नेभ्यः स्वभावैभ्यः कार्यस्य भिन्ना एव विशेषा इत्येतदपि प्रत्युक्तमिति । एतदप्युक्तं, कारणानां भिन्नेभ्यः स्वभावैभ्यः कार्यस्य तस्य तदविरोधात्, तदेकानि-कस्वभावत्वात् तथोपलब्धेः, धर्मकीर्तिनाप्यभ्युपगमत्वात्, 'हेतुविन्दौ' भिन्नस्वभावैभ्यश्चतुरादिभ्यः सहकारिभ्य एककार्योत्पत्तौ न कारणभेदाकार्यभेदः स्यात्' इत्याशङ्क्य 'न यथास्वं स्वभावभेदेन तद्विशेषोपयोगतस्तदुपयोगकार्यत्वभाव विशेषासङ्करात्' इत्यादिः (मन्वात्) स्वयमेवाभिधानात् ।

(बही प्रति, पृ. ६६)

आचार्य धर्मपाल और न्यायवादी धर्मकीर्ति इन दोनोंमें सुकरिष्यका सम्बन्ध या और ये ई. स. की ७ वीं शताब्दीके पूर्वोद्धम विद्यमान थे। चीनी प्रवासी ह्वेनत्सांग जब ई. स. ६३५में नाल्न्दाके विद्यार्थि

में पहुँचा था तब उसे मालूम हुआ कि उसके आने के कुछ ही समय पहले, आचार्य धर्मपाल जो विद्यापीठ के अध्यक्षस्थान पर नियुक्त थे, निवृत्त हो गये थे। हुपनत्सांग के समय धर्मपाल के शिष्य आचार्य शीलभद्र अपने गुरु के स्थान पर प्रतिष्ठित थे। उन्हीं के पास से हुपनत्सांग ने विद्याभ्युत्थान किया था। इस घृष्टान्त से यह ज्ञात होता है कि धर्मपाल ई. स. ६०० से ६३० के बीच में विद्यमान थे।

महामति धर्मकीर्ति भी धर्मपाल के शिष्य थे इसलिये उनके बाद के २५ वर्ष धर्मकीर्ति के आस्तित्व के मानने चाहिए। धर्मकीर्ति ई. स. ६३५ से ६५० तक वे विद्यमान होंगे। इस विचार की पुष्टि दूसरा भी प्रमाण मिलता है। तिब्बतीय इतिहास लेखक तारानाथ ने लिखा है कि टिबेट के राजा स्रोत्सगम्पो जो ई. स. ६१७ में जन्मा था और जिसने ६५०-७८ तक राज्य किया था, उसके समय में आचार्य धर्मकीर्ति तिब्बत में आये थे। इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि हुपनत्सांग जब नालंदा के विद्यापीठ में अभ्यास करता था तब धर्मकीर्ति बहुत छोटी उम्र के होंगे। इस लिये उसने अपने प्रवास-घृष्टान्त में उनका नामोल्लेख नहीं किया। परंतु हुपनत्सांग के बाद के चीनी यात्री हर्त्सांग ने—जिसने ई. स. ६७१-६९५ तक भारत में भ्रमण किया था—अपने यात्रावर्णन में लिखा है कि दिग्नागाचार्य के पीछे धर्मकीर्ति ने न्यायशास्त्र को गृह्य पद्धति किया है। इससे जाना जाता है कि हर्त्सांग के समय में धर्मकीर्ति की प्रसिद्धि खूब हो चुकी थी। अतः इन सब कथनों के मेल से धर्मकीर्ति का अस्तित्व उक्त समय में (ई. स. ६३५-६५०) मान लेने में कोई आपत्ति नहीं है।

अध्यापक का. पा. पाठ के अपने 'भर्तृहरि और कुमारिल' नामक निबन्ध में लिखा है कि—'मीमांसाश्लोककार्तिक के शून्यवाद-प्रकरण में कुमारिल ने बौद्धमत के 'आत्मा बुद्धि से भेदवाला दिव्य देता है' इस विचार का खण्डन किया है। श्लोक-कार्तिक की व्याख्या में इस स्थान पर सूचरितामित्र ने धर्मकीर्ति का निम्न लिखित श्लोक, जिसको शंकराचार्य और सुरेश्वरचार्य ने भी लिखा है, प्राप्ति उद्धृत किया है।

अविभागोऽपि बुद्ध्यामा विपर्यामितदर्शनैः ।

प्राथम्यं ग्राहकसांविधिभेदवानिव दध्यते ॥

इससे यह मालूम होता है कि कुमारिल ने दिग्नाग और धर्मकीर्ति-दोनों के विचारों की समालोचना की है। अतः यह सिद्ध होता है कि कुमारिल धर्मकीर्ति के बाद हुए। धर्मकीर्ति जब ईस्वी की ७ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विद्यमान थे तब कुमारिल उससे कम उम्र की शताब्दी के अन्त में होने चाहिए। कुमारिल का नामोल्लेख, जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, हारिमद्र ने किया है और हारिमद्र का नामस्मरण कुचलयमालाकथा के लिखने वाले दाक्षिण्यचिन्ह ने। दाक्षिण्यचिन्ह का समय ई. स. ८ वीं शताब्दी का तृतीय भाग निश्चित है। अतः हारिमद्र का अस्तित्व उसके प्रथमार्ध में या मध्यम-भाग में मानना पड़ेगा। इस प्रकार, भर्तृहरि और कुमारिल के कालक्रम से विचार जाय अथवा धर्मकीर्ति और कुमारिल के कालक्रम से विचार जाय—दोनों गणना से हारिमद्र का ८ वीं शताब्दी ही में—किर चाहे उसके आरंभ में या मध्य में—होना निश्चित होता है।

इसी तरह का, परंतु इनसे भी विशिष्ट, और एक प्रमाण है। नन्दीसूत्र नामक जैन आगम ग्रंथ ऊपर हरिमद्र सूत्रि ने ३३३६ श्लोक प्रमाण संहृत टीका लिखी है। इस टीका में, (जिस तरह आवश्यकतः प्रकी टीका में, आवश्यकचारिणों से शतश प्राकृत पाठ उद्धृत किये हैं वैसे) उन्होंने बहुतसी जगह, ईस्वी सूत्र पर जिनदास महत्तर की बनाई हुई चूर्ण नामक प्राकृत भाषामय पुरातन व्याख्या में से जैसे-जैसे वैसे, यद्वा लये लये अवतरण दिये हैं। जिनदास महत्तर ने नन्दीचूर्ण शक सवत् ५९८ (= विक्रम सवत् ७३३ = ई. स. ६७६) में समाप्त की थी। इस समय का उल्लेख, इस चूर्ण के अन्त में स्पष्ट रूप से इस प्रकार किया हुआ है—

'शकराजः पञ्चसु वर्षशतेषु व्यतिक्रान्तेषु अष्टनवतिषु नवत्ययनचूर्णि समाप्ता ।'

५४ नन्दीसूत्रचूर्ण, डेकन कालेज पुस्तक-संग्रह, न ११९७, सन् १८८४—८७. चार—पाँच वीं वर्ष पहले के किसी एक जैन विद्वाने

उदाहरणके लिये, हरिमद्रसूरिने नन्दीचूर्णिमैंसे जो पाठ अपनी टीकामैं उद्धृत किये ह उनमेंसे एक दो पाठ यहां पर लिख देते हैं ।

इस सूत्रके प्रारम्भमें जो स्थविरावली प्रकरण है उसकी ३६ वीं गाय का, जिसमें 'खदिलायरिय' की प्रशंसा है, व्याख्या हरिमद्रने इस प्रकार लिखी है ॥

(मूल गाथा—)

' जेसि इमो अणुओगो पयरइ अज्जावि अड्डुमरहम्मि ।
बहुनयरनिगायजेसे ते वदे खदिलायरिए ॥ '

व्याख्या—येपामनुयोगः प्रचरति, अद्यापि अर्धमरते वैताड्यादारत । बहुनगरेषु निर्गतं प्रसृतं मसिद्धं यशो येपा ते बहुनगरनिर्गतयशस, तान् वन्दे । सिद्ध (सिंह) वाचकशिष्यान् स्कन्दिलाचार्यान् । ' कह पुण तोसि अणुओगो ? उच्यते—
वारससवच्छरिए महंते दुग्मिक्खे काले मत्तट्ठा अण्ण-
णतो हिंढियाण गहणगुणणुप्पेहामावाओ विप्पणट्ठे सुत्ते, पुणो सुम्मिक्खे काले जाए महुराए महंते साधु-
समुदए खंदिलायरियप्पमुहसघेण जो जं संमरइ ति एवं संघडिये कालियसुय । जम्हा एयं महुराए कयं तम्हा माहुरी वायणा मण्णइ । सा य खदिलायरि-
यसम्मत ति काउ तस्सतिओ अणुओगो मण्णइ ।
अन्ने मणंति जहा, सुयं ण णठ्ठं । तम्मि दुग्मिक्खे काले जे अन्ने पहाणा अणुओगधरा ते विणट्ठा । एये खंदिलायरिए संघिरे (*), तेण महुराए पुणो अणुओगो पवत्तिओ ति माहुरी वायणा मण्णइ । तस्सतिओ अ अणुओगो मण्णइ । '

पुस्तक, न. ११९७, सन् १८८४-८७ पृष्ठ ४.)

नन्दीसूत्रकी वृहटीकामें, आचाराद्रसूत्र विषयक व्याख्यानमें, मलयगिरि सूरिने 'तथा चाह चूर्णिकृत्-' लिखकर, निम्न लिखित पाठ, नन्दीचूर्णिमैंसे उद्धृत किया है—

' दो सुयक्खंवा पणवीस अज्जयणाणि एयं आयारगासहिंयस्स आयारस्स पमाणं भणियं, अठ्ठारसपयसहस्सा पुण पडमसुयस्सवत्त नयमंभवे-
रमइयस्स पमाणं, विचित्तअत्थनिवद्धाणि य सुत्ताणि, गुरुवएसओ तोसि अत्थो जाणियव्वो ति । '

नन्दीटीका, (मुद्रित पृ. २११)

यही पाठ, हरिमद्रसूरिने भी अपनी टीकामें अविकलरूपसे उद्धृत किया हुआ है । (देखो, डे. पु पृ ७६) । ऐसे ही और भी कई जगह इस प्रकारके पाठ उद्धृत हैं । इससे यह बात निश्चित हुई कि हरिमद्रसूरि, शक सवत् ५९८ (वि. स. ७३३=ई. स. ६७६) से बाद ही में किसी समयमें हुए हों । गाथामें बतलाये मुताबिक विक्रम सवत् ५८५ में, अथवा, दूसरे उल्लेखोंमें लिखे मुजब, धी० स० १०५५ में नहीं हुए । चूर्णिके बने बाद कमसे कम ५० वर्ष अनंतर ही हरिमद्रने अपनी टीका लिखी होनी चाहिए । और इस लिये, इस हिसाबसे भी उनका समय वही ईस्वीकी ८ वीं शताब्दी निश्चित होता है ।

की प्रशस्ति का यह महत्त्व का भाग, जिसमें कर्ताने स्वकीय गुरुपरंपरा आदिका परिचय दिया है, कुछ विस्तृत होने पर भी उसे यहाँ पर उद्धृत कर देने के लोभ का हम संवरण नहीं कर सकते । प्रशस्ति इस प्रकार है—

अथि पयडा पुरीण पवइया नाम रयणसोहिह्ला ।
तत्पट्टिण मुचा पुहई सिरितोरसाणेण ॥
तस्स गुरु हरियत्तो आयरिओ आसि गुचवंसीओ ।
तीए नयरीए दिन्नो जिणनिवेशो तहि काले ॥
[तस्स] बहुकलाकुसलो भिद्धन्तवियाणओ कई दक्खो ।
आयरियदेवगुत्तो अज्जवि विज्जरए किसी (?) ॥
सिवचन्दगणी अह मयहरो ति सो एथ आगओ देसा ।
सिरिमिल्लमालनयरम्भि सँठिओ कप्परुक्खो व्व ॥
तस्स खमासमणगुणो नामेण जक्खदत्तगणिनामो ।
सिस्सो महइमहग्ग आसि तिलोए वि पयडजसो ॥५॥
तस्स य सीसा बहुया तववीरियलद्धचरणसंपण्णा ।
रम्मो गुज्जरदेसो जेहिं कओ देवहरएहिं ॥
आगासवप्पनयरे वडेसरो आसि जो खमासमणो ।
तस्स मुहँदसणे चिय अवि पसमइ ओ अहव्वोवि ॥
तस्स य आयारधरो तत्तायरिओ ति नाम सारगुणो ।
आधि तवतेयनिविजयपावतमोहो दिणयरो व्व ॥
जो दूमसलिलपवाहवेगहीरन्तगुणसहसमाण ।
सीसंगविउलसालो लगणखमो व्व निक्कपो ॥
सीसेण तस्स एसा हिरिदेवीदिनदंसणमणेण ।
इया कुयलयमाला विलसिरदक्खिखइधेण ॥ १० ॥
दिजजहिच्छियफलओ बहुकिचीकुसुमेरहिरामोओ ।
आयरियवीरमहो अवा (हा) वरो कप्परुक्खो व्व ॥
सो सिद्धन्त [मि] गुरु, पमाण नाएण (अ) जस्स हरियदो
बहुगन्धसत्यवित्थरपयड [समत्तमुअ] सच्चत्थो ॥
राया [य] खचियाण वंसे जाओ वडेसरो नाम ।
तत्सुज्जोयणनामो तणओ अह विरइया तेण ॥

इन गाथाओंमेंसे, प्रथमकी १० गाथाओंमें कथा-कर्ताने अपनी मूल गुरुपरंपरा का वर्णन दिया है जिसका तात्पर्य यह है—पहले हरिदत्त नामके एक गुप्तवंशीय आचार्य हुए । वे पवइया पुरी के तोरसाण नामक राजाके गुरु थे और उनके उपदे-

शसे उस नगरीमें, उस राजाने एक जिनमंदिर बनवाया था । उनके शिष्य देवगुप्त नामक हुए जो सिद्धान्तोंके ज्ञाता और कुशल कवि थे । उनका कीर्ति आज भी जगत्में फैल रही है । उनके बाद सिवचन्द्र गणी महत्तर नामके आचार्य हुए । उन्होंने देशमेंसे (पवइया नगरीवाले प्रदेशमेंसे !) आकर मिल्लमाल (जिसे श्रीमाल भी कहते हैं) नगरमें निवास किया । उनके यक्षदत्त गणी नामक क्षमा श्रमण गुणधारक प्रसिद्ध शिष्य हुए जिनके अनेक शिष्योंने गुजरात देशमें देवमंदिर (जिनमंदिर) बनवा कर उसकी शोभा बढ़ाई । इनके शिष्य आगासवप्प नगरमें रहनेवाले वडेसर नामक क्षमा श्रमण हुए जिनके मुखका दर्शन करके अभय जीव भी प्रशान्त हो जाता था । वडेसरके तत्तायरिय नामके बड़े तपस्वी और आचारधारक शिष्य हुए । इन्हीं तत्तायरियके शिष्य दाक्षिण्यचिन्ह हुए, जिन्होंने इंद्रदेविके दर्शनसे प्रसन्न हो कर इस कुयलयमाला कथाकी रचना की ।

इस प्रकार इन गाथाओंमें, अपनी मूल पूर्व गुरुपरंपराका जिकर करके कथाकारने फिर अनन्तरकी ३ (११-१३) गाथाओंमें अपने विशिष्ट उपकार गुरुओं-पूज्योंका सविशेष उल्लेख कर, उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की है । इस गाथा-कुलकका अर्थ इस प्रकार है—

‘इच्छित फलके देनेवाले, और कीर्तिकरूप कुसुमोंसे अलंकृत होनेके कारण नवीन कल्पवृक्षके समान दीर्घाई देनेवाले, आचार्य वीरभद्र तो जिसके सिद्धान्तोंके पढानेवाले गुरु हैं; और जिन्होंने अनेक ग्रन्थोंकी रचना कर समस्त श्रुत (आगमों) का सत्यार्थ प्रकट किया है वे आचार्य हरिभद्र जिसके प्रमाण और न्यायशास्त्रके सिद्धान्तवाले गुरु हैं । तथा, क्षत्रियवंशोत्पन्न वडेसर नामक राजाका जो पुत्र है और उद्योतन जिसका मूल नाम है उसने यह कथा निर्मित की है ।’

इस गाथाकुलकमें हरिभद्रसूरिके लिये ‘बहुग्रन्थ प्रणेनृत्त’ और ‘प्रमाण न्यायशास्त्रविषयक गुरुत्व’ के विपेक्षण जो सामिप्राय प्रयुक्त किये गये हैं उनसे विचारवान् विद्वान् स्पष्ट जान सकते हैं कि, कथाकर्ता यहाँ पर जिन हरिभद्रका स्मरण

करते हैं, वे, वे ही हरिभद्र सूरि हैं जिनको लक्ष्य कर प्रस्तुत प्रबन्धके लिखनेका परिश्रम किया गया है। क्यों कि इनके सिवा—‘अनेक ग्रन्थोंकी रचना कर समस्त श्रुतका सत्यार्थ प्रकट करनेवाले’ दूसरे कोई हरिभद्र जैन साहित्य या जैन इतिहासमें उपलब्ध नहीं होते।

अतः इससे यह अंतिम निर्णय हो जाता है कि महात् तत्त्वज्ञ आचार्य हरिभद्र और कुवलयमाला कथाके कर्ता उद्योतनसूरि ऊर्फ दाक्षिण्यचिन्ह दोनों (कुछ समय तक तो अवश्यही) समकालीन थे। इतनी विशाल ग्रन्थराशि लिखनेवाले महापुरुषकी कमसे कम ६०-७० वर्ष जितनी आयु तो अवश्य होगी। इस कारणसे, लगभग ईस्वीकी ८ वीं शताब्दीके प्रथम दशकमें हरिभद्रका जन्म और अष्टम दशकमें मृत्यु मान लिया जाय तो यह कोई असंगत नहीं मालूम देता। इस लिये, हम ई. स. ५०० से, ७७० (विक्रम संवत् ७५७ से ८२७) तक हरिभद्र सूरिका सच्चा-समय स्थिर करते हैं।

परिशिष्ट ।

—:—

१

हरिभद्र और शान्तिरक्षित ।

शास्त्रवार्तासमुच्चयके चतुर्थ स्तयकके निम्न लिखित श्लोकमें हरिभद्रने बौद्ध पण्डित शान्तिरक्षितके एक विचारका प्रतिक्षेप किया है। यथा—

एतैनैतत्प्रतिक्षिप्तं यदुक्तं सूक्ष्मबुद्धिना ।

‘नासतो भावकर्तृत्वं तदवस्थान्तरं न मः’ ॥

इस श्लोककी स्वोपज्ञ टीकामें ‘सूक्ष्मबुद्धिना—शान्तिरक्षितेन’ ऐसा निर्देश कर स्वरूपसे शान्तिरक्षितका नामोल्लेख किया है। डॉ. सतीशचन्द्र विद्याभूषणने अपनी ‘मध्यकालीन भारतीय न्याय-शास्त्रका इतिहास’ नामक पुस्तकमें (पृ. १२४) आचार्य शान्ति (न्त) रक्षितका समय ई. स. ७४९ के आसपास स्थिर किया है। इन शान्तिरक्षितने, हरिभद्रके शास्त्रवार्तासमुच्चयके समान

दार्शनिक विषयोंकी आलोचना करनेवाला ‘तत्त्व-संग्रह’ नामक एक प्रौढ ग्रन्थ बनाया है। इस ग्रन्थ पर पंडिका नामकी एक टीका भी उन्हींके समकालीन नालन्दा—विद्यापीठके तंत्रशास्त्राध्यापक आचार्य कमलशीलने उसी समयमें लिखी है। इस सटीक ग्रंथका प्राचीन हस्तलेख हमने गुजरातकी पुरातन राजधानी पाटनके प्रसिद्ध जैन-पुस्तकमंडागारमें देखा है। प्रस्तुत निबन्ध लिखनेके समय यह ग्रंथ हमारे सम्मुख न होनेसे यह तो हम नहीं कह सकते कि हरिभद्रने जो शान्तिरक्षितका उल्लिखित श्लोकार्द उद्धृत किया है वह इसी तत्त्वसंग्रहका है या अन्य किसी दूसरे ग्रन्थका। परन्तु इतना तो हमें विश्वास होता है कि यह श्लोकार्द होना चाहिये इन्हीं शान्तिरक्षितकी किसी कृतिमेंका। ऐसी स्थितिमें, डॉ. सतीशचन्द्र वि. का लिखा हुआ शान्तिरक्षितका समय यदि ठीक है तो हरिभद्र और शान्तिरक्षित दोनों समकालीन साबित होते हैं।

कुछ विद्वान् ऐसे समकालीन पुरुषोंको लक्ष्य कर ऐसी शंका किया करते हैं कि—उस पुरातन समयमें, आधुनिक कालकी तरह मुद्रार्यत्र, समाचारपत्र और रेल्वे आदि अतिशीघ्रगामी वाहतो बगैरह जैसे साधन नहीं थे कि जिनके द्वारा कोई व्यक्ति तथा उसका लेख या विचार तत्काल सारे देशमें परिचित हो जाय। उस समय लिये किसी विद्वान्का अधया उसके बनाये हुए ग्रंथका अन्यान्य विद्वानोंको परिचय मिलनेमें कुछ न कुछ कालावधि अवश्य अपेक्षित होती थी। इस विचारसे, यदि शान्तिरक्षित उक्तरीत्या ठीक हरिभद्रके समकालीन ही थे तो फिर हरिभद्र द्वारा उनके ग्रंथोक्त विचारोंका प्रतिक्षेप किया जाना कैसे संभव माना जा सकता है? इस विषयमें हमारा अभिप्राय यह है कि—यह कोई नियम नहीं है, कि, उस समयमें समकालीन विद्वानोंका एक दूसरे संप्रदायवालोंमें तुरन्त परिचय हो ही नहीं सकता था। यह बात अवश्य है कि आजकल जैसे कोई

२ यह ग्रंथ बड़ोदाराज्यकी ओरसे प्रकाशित होनेवाली संस्कृतपत्र्यामालामें छानेके लिये तैयार हो रहा है।

व्यक्ति या विचार चार छह महीनेहीमें मुद्रालयों और समाचारपत्रोंके द्वारा सर्वविश्रुत हो जाता है, उतनी शीघ्रताके साथ उस समयमें नहीं हो पाता था। परंतु ५-१० वर्ष जितनी कालावधिमें तो उस समयमें भी उत्तम विद्वान् यथेष्ट प्रसिद्धि प्राप्त कर सकता था। इसका कारण यह है कि उस समय जब कोई ऐसा असाधारण पण्डित तैयार होता था तो फिर वह अपने पाण्डित्यका परिचय देनेके लिये और दिग्विजय करनेके निमित्त देश-देशान्तरोंमें परिभ्रमण करता था और इस तरह अनेक राजसभाओंमें और पण्डित-परिषदोंमें उपस्थित हो कर वहांके अन्यान्य विद्वानोंके साथ शास्त्रार्थ या वाक्विवाद किये करता था। इसी तरह जब कोई विद्वान् किसी विषयका कोई खास अधीन और अपूर्व ग्रंथ लिखता था तो उसकी अनेक प्रतियां लिखवा कर प्रसिद्ध पुस्तकभांडागारों, राजमन्दिरों और धर्मस्थानोंमें तथा स्वतंत्र विद्वानोंके पास भेंट रूपसे या अवलोकनार्थ भेजा करता था। इस लिये प्रख्यात विद्वानकी अपने जीवन काल ही में यथेष्ट प्रसिद्धि प्राप्त कर लेनेमें और उसके बनाये हुए ग्रंथोंका, दूरियोंके द्वारा आलोचन-प्रत्यालोचनके किये जानेमें कोई आपत्ति नहीं है।

२

हरिभद्र और धर्मोत्तर।

दिग्नागाचार्य रचित 'न्यायप्रवेश-प्रकरण' ऊपर हरिभद्रने शिष्यहिता नामकी एक संक्षिप्त और स्फुट व्याख्या लिखी है। इस व्याख्याके प्रारंभके भागमें जहां 'अनुमान' शब्द की व्युत्पत्ति और उसका लक्षण लिखा है वहां एक उल्लेख खास ध्यान खींचने लायक है। वह उल्लेख इस प्रकार है:—

१ यह व्याख्या सटीकटीसर्ग (अथ, वेदोपनिषद्) से प्रकट हनेवाली Bibliotheca Buddhica में छप रही है। इसके बारेमें विशेष उत्तमान् ज्ञाननेके लिये, 'जैनशासन' नामक पत्रके दीर्घवर्षोंके खास अंकमें छपा हुआ बा-मिगनौका Dignaga's Nyayapiavesa and Haribhadra's Commentary on it नामक विषय देयना चाहिए।

भीयतेऽनेनेति मानं परिच्छिद्यत इत्यर्थः। अनुशब्दः पश्चादर्थ, पश्चात्मानमनुमानम्। पक्षधर्मग्रहणसम्बन्धस्मरणपूर्वकमित्यर्थः। वक्ष्यति च "त्रिरूपाहिङ्गाहिङ्गिनि [ज्ञान] मनुमानम्।"

इस अवतरणके अन्तमें जो 'वक्ष्यति' क्रिया लिख कर "त्रिरूपाहिङ्गाहिङ्गिनि ज्ञानमनुमानम्।" यह सूत्र लिखा है उस पर किसी एक पुरातन पण्डितने निम्न लिखित टिप्पणी लिखी है:—

नन्वेतत्सूत्रं धर्मोत्तरीयं न तु प्रकृतशास्त्रसत्कम्। एतच्छास्त्रसत्कमेतत्सूत्रम्—'हिङ्गं पुनरित्यादि।' तत्कथं 'वक्ष्यति च' इति प्रोच्यते? सत्प्रमेतत्। यद्यत्रैवं विध सूत्रं नास्ति तथा [पि] धर्मोत्तरीयसूत्रनप्यत्र सूत्रोक्तानुमानलक्षणाभिधायिकमेवेत्यर्थतोऽत्रत्य-धर्मोत्तरीयसूत्रयोः साम्यमेवेत्यर्थपेक्षया 'वक्ष्यति' इति व्याख्येयमिति न विरोधः।

इस टिप्पणीका आशय यह है कि व्याख्याकारने जो ऊपरके अवतरणमें "त्रिरूपाहिङ्गाहिङ्गिनि ज्ञानमनुमानम्।" यह सूत्र लिखा है उसके स्थान में लिङ्गानुसाररूपम् यह सूत्र लिखना चाहिये। क्योंकि कि यह सूत्र तो धर्मोत्तर आचार्यका बनाया हुआ है, दिग्नागका नहीं। दिग्नागका तो यही पिछला सूत्र है। ऐसी स्थिति होने पर, यहा पर जो धर्मोत्तरीय सूत्र लिखा गया है उसका समाधान यों कर लेना चाहिये, कि धर्मोत्तरका सूत्र भी प्रकृत स्वरूप ही अनुमानका लक्षण प्रदर्शित करता है, इस लिये इन दोनोंमें परस्पर अर्थसाम्य होनेसे हरिभद्रने जो (कदाचित् विस्मृतिके कारण?) धर्मोत्तरका सूत्र लिख दिया है तो उसमें कोई ऐसा विशेष विरोध नहीं दिखाई देता।

टिप्पणीकारके इस समाधानसे न्यायशास्त्रके अभ्यासियोंका तो समाधान हो जायगा परंतु इतिहासशास्त्रके अभ्यासियोंका नहीं। ऐतिहासिकोंके लिये तो इससे एक नया ही प्रश्न ऊठ खड़ा

२ देकनकाहेज पुस्तकालयमें की इस्तीकाल प्रति, नं. ७३८, १८७५-७६, पृ. २.

होता है । टिप्पणीलेखकके कथनानुसार यदि "त्रिरूपालिङ्गादिभिर्ज्ञानमनुमानं" यह सूत्र धर्मोत्तरके बनाये हुए किसी ग्रंथमेंका है तो यहाँ पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि यह धर्मोत्तर कौन और कब हुआ? धर्मकीर्तिके बनाये हुए न्यायविन्दु नामक ग्रंथ ऊपर टीका लिखनेवाले धर्मोत्तरका नाम विद्वानोंमें प्रसिद्ध है । प्रमाणपरीक्षा, अपोहप्रकरण, परलोक-सिद्धि, क्षणभंगसिद्धि और प्रमाण ? [विनिश्चय व्याख्या आदि ग्रंथ भी उनके बनाये हुए कहे जाते हैं । म. म. सतीशचन्द्र विंणे अपने पूर्वोक्त इतिहास में (पृ १३१) इन धर्मोत्तरका समय ई. स. ८४७ के आसपास स्थिर किया है । यदि यह समय ठीक है तो फिर हरिमद्र लिखित उक्त सूत्रके रचयिता धर्मोत्तर, इन प्रसिद्ध धर्मोत्तरसे भिन्न-फोरे दूसरे ही प्राचीन धर्मोत्तर-होने चाहिए । क्यों कि हरिमद्रका देहविल ८ ई० की चौ दश-श्रीके तीसरे पादमें हो चुका होगा यह हमने सप्रमाण सिद्ध कर ही दिया है ।

बौद्ध मतमें धर्मोत्तर नामसे प्रसिद्ध दो आचार्य हो गये हैं ऐसा प्रमाण महान् जैन तार्किक विद्वान् वादी देवसूरीके स्याद्वादरत्नाकर नामक प्रतिष्ठित तर्कग्रंथमेंसे मिलता है । इस ग्रंथके प्रथम परिच्छेदके "स्वपरव्यवसायि ज्ञानं प्रमाणम् ।" इस दूसरे सूत्रकी व्याख्यामें 'लक्ष्यलक्षणभाववाचक' शब्दोंके विधानाविधानकी मीमांसा करते हुए शुरु ही में धर्मोत्तरके तद्विषयक विचारोंकी आलोचना की है । ग्रंथकर्ता स्वयं इन धर्मोत्तरको, धर्मकीर्तिके 'न्यायविनिश्चय' और 'न्यायविन्दु' नामक प्रमाण ग्रंथोंके व्याख्याता बतलाये हैं और उनकी की हुई उन व्याख्याओंमेंसे कुछ अवतरण भी उद्धृत किये हैं । फिर इन धर्मोत्तर को 'बुद्धधर्मोत्तरानुसारी' (बुद्ध धर्मोत्तरके विचारोंका अनुसरण करने वाले) तथा 'बुद्धसेवाप्रसिद्ध' (बुद्ध [धर्मोत्तर] की सेवा करनेसे प्रासिद्धि पाने वाले) ऐसे विशेषणों से सम्बोधित कर इन्हें किसी बुद्ध धर्मोत्तरके अनुयायी बतलाये हैं; और अन्तमें इनके विचार-विधानसे उन बुद्ध धर्मोत्तरके तद्विषयक विचारोंका स्पष्टित होना बतला कर, इनके कथनको स्वमत-

विरोधी सिद्ध किया गया है । वादी देवसूरीके तद्विषयक सब लेखोंमें इस प्रकार है:—

(१) अत्राह धर्मोत्तरः—लक्ष्यलक्षणभावविधानवाक्ये लक्ष्यमनूय लक्षणमेव विधीयते । लक्ष्यं हि प्रसिद्धं भवति ततस्तदनुवाचम्, लक्षणं पुनरपसिद्धमिति तद्विषयम् । अज्ञातज्ञापने विधिरेत्यभिधानात् । सिद्धे तु लक्ष्यलक्षणभावो लक्षणमनूय लक्ष्यमेव विधीयते इति । (स्याद्वादरत्नाकर, पृ. १०,)

(२) साधो ! सौगत ! भूमर्तुर्धर्मकीर्तिकेनैकतने । व्यवस्थां कुरुते नूनमस्थापितमहत्तमः ॥ स हि महात्मा (धर्मकीर्तिः) विनिश्चये (न्यायविनिश्चये) प्रत्यक्षमेकं, न्यायविन्दौ तु प्रत्यक्षानुमाने द्वे अप्यप्रसाध्यैव तल्लक्षणानि प्रणयति स्म । किञ्च शब्दानित्यत्वसिद्धये कृतकत्वमसिद्धमपि सर्वमुपन्यस्य पश्चात् तत्सिद्धिमभिदधानोऽपि न लक्षणस्य तामनूयन्त्ये इति स्वामिमानमात्रम् । अपि च प्रत्यक्षलक्षणव्याख्यालक्षणे 'लक्ष्यलक्षणभावविधानवाक्ये' इत्यादिना लक्षणस्यैव विधिभिधिरपि विधेरेवापराधान बुद्धेः, यतो न्यायविनिश्चयटीकायां स्वार्थानुमानस्य लक्षणे 'तत्कथं त्रिरूपलिङ्गादिण एव दर्शनम्य नानुमानत्वप्रसङ्गः' इति पर्यनुयुक्तान् । एतदेव सामर्थ्यप्राप्तं दर्शयति यदनुमेयेऽर्थे ज्ञानं तत्त्वार्थमिति । इत्यनुमानम्यमानश्चानुमापयसि स्वयमेव लक्ष्यग्यापि विधिम् । स्पष्टमेवाभिदधासि च न्यायविन्दुवचो एतस्यैव लक्षणे, 'त्रिरूपाच्च लिङ्गाद्यदनुमेयालम्बनं ज्ञानं तत्त्वार्थमनुमानमिति ।' (देखो, न्यायविन्दुटीका, पिटर्स-नसम्पादित, पृ. २१) विनिश्चयटीकायामेव च परार्थानुमानलक्षणे 'त्रिरूपस्य लिङ्गस्य यदाह्वानं तत्पराथमनुमानमिति ।' च व्याचक्षाण इत्यक्षुण्णे ते वैचक्षण्यमिति ।

(स्याद्वादरत्नाकर, पृ. १०)

(३) अपि च भवद्भवनसूत्रणासूत्रधारो धर्मकीर्तिरपि 'न्यायविनिश्चयस्याच-द्वितीय-तृतीय-परिच्छेदेपु-' प्रत्यक्षं कल्पनापोदमभ्रान्तमिति ॥ १ ॥'

‘ तत्र स्वार्थं त्रिरूपालिङ्गतोऽर्थदृग्मिति ॥ २ ॥ ’
 ‘ परार्थमनुमानं तु स्वदृष्टार्थप्रकाशनमिति ॥ ३ ॥ ’
 त्रीणि लक्षणानि; ‘ तिमिरानुग्रमणनौयानसदृक्षो-
 भाघनाहितविभ्रममविकल्पकं ज्ञानं प्रत्यक्षमिति ॥ १ ॥ ’
 त्रिलक्षणालिङ्गाद्यनुमेयेऽर्थं ज्ञानं तत्स्वार्थमनुमानमि-
 ति ॥ २ ॥ ’ ‘ यथैव हि स्वयं त्रिरूपालिङ्गतो
 लिङ्गिनि ज्ञानमुत्पन्नं तथैव परत्र लिङ्गिज्ञानोत्पिपाद-
 यिषया त्रिरूपलिङ्गाख्यानं परार्थमनुमानमिति ॥ ३ ॥ ’ च
 व्याचक्षाणो लक्ष्यस्यैव विधिमकीर्तयत्, तथा ‘ लक्ष्य
 लक्षणमावविधानवाक्ये ’ इत्युपक्रम्य लक्षणमव वि-
 धाय त इत्यभिदधानः कथं न स्ववचनविरोधमव
 बुध्यसे ।

(स्याद्वादरत्नाकर, पृ. ११.)

(४) बलदेवबलं स्वायं दर्शयन्ननिर्दर्शनम् ।

वृद्धधर्मोत्तरस्यैवं भावमत्र न्यरूपयत् ॥

(स्याद्वादरत्नाकर, पृ. ११)

(५) वृद्धसेवाप्रसिद्धोऽपि ध्रुवत्वेन विशिङ्कितः ।

बालवत्स्यादुपाह्वयस्त्वेति विशिष्टोपायम् ॥

नथाहि—सोऽयं वृद्धधर्मोत्तरानुसार्थप्यलीकवाचा-
 लतया तुल्यस्वरूपयोरपि व्युत्पत्तिव्यवहारकालयोरनु-
 सृत्यामुपकल्पयन् बाल इवैकामप्यङ्गुलिं वेगवत्तया च-
 चलयन् द्वयीकृत्य दर्शयतीत्येवमुपाह्वयेत त्रैविध्य
 कोविदैः ।

(स्याद्वादरत्नाकर, पृ. १२.)

(६) यच्चावाचि ‘ अत एवत्यादि ’ तत्राय-
 माश्रयः, लक्ष्यं हि प्रसिद्धमनुवाद्यं भवतीत्यस्मा
 द्भूतविभक्तयो द्वितीयाद्याः समुपादायन्ते लक्षणं पुन-
 रप्रसिद्धं विधेयमित्यतो भव्यविभक्तिः प्रथमेव प्रयुज्यत
 इति । सोऽयं साहित्यज्ञताभिमानात् तत्र वृद्धधर्मोत्तर-
 मधरयति, स्वयं त्वेवं व्याचष्ट इति किमन्यदस्य दे-
 वानां प्रियस्य श्लाघनीयता प्रज्ञायाः ।

(स्याद्वादरत्नाकर, पृ. १३)

इन अवतरणोंसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि धर्मो-
 त्तर नामके दो आचार्य हो गये हैं । अतः हरि-
 भद्रने उक्त जिस धर्मोत्तरीयसूत्रको उद्धृत किया
 है उसके कर्ता, न्यायाधिन्दु आदि धर्मकोर्तिकृत

प्रर्थोंके टीकाकार धर्मोत्तर नहीं परंतु उनके पूर्वज
 वृद्धधर्मोत्तर होने चाहिए । नहीं तो फिर इन अर्वा-
 चीन धर्मोत्तरका समय कमसे कम १०० वर्षे त्रि
 तना पीछे हटाना चाहिए ।

परंतु इन प्रसिद्ध धर्मोत्तरके, हरिभद्रके पूर्वज
 न होनेमें एक इतर प्रमाण भी प्राप्त होता है । धर्मो-
 त्तर रचित न्यायविन्दुटीकाके ऊपर महयादी नाम
 के एक जैन धिष्टान्त की टिप्पणी लिखी हुई उपल-
 ब्ध है । इस टिप्पणीके वेगनेसे ज्ञात होता है कि
 धर्मोत्तरने अपनी टीकामें कई जगह न्यायविन्दु-
 के पूर्वटीकाकार विनीतदेवकी (और न्यायमें शां-
 न्तिभद्रकी भी) की हुई टीकाको दूषित बतलाई
 है और उसका मण्डन किया है । टिप्पणी लेख-
 कके इस बातके सूचक वाक्य कुछ ये हैं*—

१— सम्यग्ज्ञानेत्यादिना (१. ५) विनीतदेव-

व्याख्यां दूषयति । (पृ. ३)

२— हेयोऽर्थ इत्यादिना विनीतदेवस्य व्याख्या
 दूषिता । (पृ. १३).

३— उत्तरेण ग्रन्थेन सर्वशब्द (५. २) इत्या-
 दिना टीकाकृतां व्याख्यां दूषयति । विनी-
 तदेवशान्तभद्राभ्यामेवमाशङ्क्य व्याख्या-
 तम् । (पृ. १३).

४— यथार्थाविनाभावेत्यादिना (६. १३)
 अनेन विनीतदेवशान्तभद्रयोर्व्याख्या च दू-
 षिता । (पृ. १६).

५— अनेन लक्ष्यलक्षणभाव दर्शयता विनीतदेव-
 व्याख्याने संज्ञासंज्ञितसम्बन्धरूपं प्रत्युभयम् ।
 (पृ. १७).

६— तेन यद्विनीतदेवेन सामान्ययोर्वाच्यवाचक-
 भावमङ्गलकृत्य निर्विकल्पकत्वमिन्द्रियविज्ञा-
 नस्य प्रतिपादितं तद्वृत्तं भङ्ग्यम् । (पृ.
 २३-४).

ये विनीतदेवः राजा ललितचन्द्रके समकालीन

* विश्विआधिका बुद्धिआ (संपिटसर्ग, राशिया) में
 प्रकाशित ।

† देखो सतीशचन्द्र बिः लिखित ‘ मध्यकालीन भारतीय
 न्यायशास्त्रका इतिहास । पृ. १११ ।

थे। राजा ललितचन्द्रका समय अन्यान्य अनुमानोंके द्वारा ई. स. ७०८ के लगभग माना जाता है, अतएव विनीतदेवका भी वही समय मानना चाहिए। इस गणनासे, मल्लवादीके लेखानुसार विनीतदेवकी न्याय्या पर आक्षेप करनेवाले धर्मोत्तरका अस्तित्व या तो हरिभद्रके समयमें स्वीकारना चाहिए या उसके अनन्तर। ऐसी दृष्टामें तिव्वतीय इतिहासलेखक तारानाथके इस कथनको कि, आचार्य धर्मोत्तर, काश्मीरके राजा धनपालके, जो ई. स. ८४७ के आसपास राज्य करता था, समकालीन थे, असत्य माननेमें कोई कारण नहीं है।

३

हरिभद्र और मल्लवादी.

हरिभद्र और मल्लवादी आचार्यके सम्बन्धमें भी परस्पर इसी तरहकी एक उलझन है। मल्लवादी नामसे प्रसिद्ध एक बहुत बड़े तार्किक विद्वान् जैनधर्मके श्वेतांबर संप्रदायमें हो गये हैं। उन्होंने, जैनधर्मका सबसे गूढ़ और गभीर सिद्धान्त जो नयवाद कहलाता है, उस पर छद्मशारन्यचक्र नामक एक विशाल और ग्रीठ प्रथकी रचना की है। हरिभद्रसूरिने अपने अनेकान्तजयपताका नामक ग्रंथ में द्यौतीन स्थान पर उनका नामस्मरण किया है और उन्हें 'वादिमुख्य' बतला कर सिद्धसेन दिवाकर प्रणीत 'सम्माति महातर्क' के टीका लिखनेवाले लिखे हैं। यथा—

(१) उक्तं च वादिमुख्येन (टिका—मल्लवादिना सम्मतौ) —स्परसत्त्वव्युदासोपादानापावं हि वस्तुनो वस्तुत्वम्, अतो यद्यपि सन्न भवतीत्यसत्, तथापि परद्रव्यादिरूपेण सतः प्रतिपेधात् तस्य च तत्रावत्त्वात् तत्स्वरूपसत्त्वानुबन्धात् न निरुपायमेव तत् । इति प्रसज्यप्रतिषेधपक्षोदितदोषाभावः । (अनेकान्तजयपताका, काशी, पृ० ४७.)

(२) उक्तं च वादिमुख्येन (श्रीमल्लवादिना सम्मतौ) — न विषयग्रहणपरिणामादुत्तेऽपरः

सेवेदने विषयप्रतिभासो युज्यते युक्त्ययो-
गात् । (अनेकान्तजयपताका, पृ० १८)

जैन दन्तकथा मुजिथ इन मल्लवादीका अस्तित्व ईस्वीकी चौथी शताब्दीमें माना जाता है। परंतु, इधर उपयुक्त वर्णनानुसार धर्मोत्तररचित न्यायविन्दु-टीकाके ऊपरकी टिप्पणीके कर्ता भी मल्लवादी नामक जैनाचार्य ही ज्ञात होते हैं। आज तक जैनसाहित्यमें केवल एक ही मल्लवादीके होनेका उल्लेख देखा गया है, इस लिये धर्मोत्तरटीका-टिप्पणीके कर्ता मल्लवादी और 'छद्मशारन्यचक्र'के कर्ता प्रसिद्ध मल्लवादी दोनों एक ही समझे जायें तो उसमें कोई आश्चर्य नहीं है। और इसी कारणसे डॉ. सतीशचन्द्र वि. ने अपने नियन्धमें मल्लवादीका सत्ता-समय समुचितरूपसे वही लिखा है जो धर्मोत्तरके लिये स्थिर किया गया है। *

परंतु हरिभद्रके ग्रंथमें मल्लवादीका उक्त प्रकार स्पष्ट नामोल्लेख होनेसे, वे 'वादिमुख्य' और सुप्रसिद्ध मल्लवादी तो निःसन्देह रीतिसे हरिभद्रके अस्तित्व-समयसे-अर्थात् ईस्वीकी ८ वीं शताब्दी से-पूर्व ही में हो चुके हैं। इस लिये धर्मोत्तरटीकाकी टिप्पणी लिखनेवाले मल्लवादीको दूसरे मल्लवादी समझने चाहिए और वे धर्मोत्तरके बाद किसी समयमें हुए होने चाहिए। एवं हरिभद्रके ग्रंथोंसे हमें एक नये धर्मोत्तर और नये मल्लवादीका पता लगता है।

४

हरिभद्र सूरि और शंकराचार्य ।

वेदान्तमतप्रस्थापक नादि शंकराचार्यके सत्ता-समयके विषयमें भी हरिभद्रके समयनिर्णयसे कुछ प्रकाश डाला जा सकता है। शंकराचार्यके समयके बारेमें अनेक विद्वानोंके अनेक विचार हैं। कोई तो उन्हें ठेठ महात्मा शीतमयुद्धके समकालीन और कोई महाकवि कालिदास और नृपति विक्रमादित्यके समकालीन बतलाते हैं। कोई ईस्वीकी पहली

* देखो, पूर्वोक्त, मध्यकालीन भारतीय न्यायशास्त्रका इतिहास. पृ. ३४-३५ ।

शताब्दीमें, कोई चौथीमें, कोई पांचवीमें, कोई छठीमें, कोई ७ वीं में, कोई आठवींमें, कोई नववींमें और यहां तक कि कोई १४ वीं जैसे विन्कल अर्वाचीन काल तक भी उनका होना मानते हैं। परंतु इन सब विचारोंमेंसे हमें, हरिभद्रके साहित्यका अवलोकन करनेके बाद, प्रो. काशीनाथ याप पाठकका विचार युक्तिसंगत मालूम देता है। उनके विचारानुसार शंकराचार्य ईस्वीकी ८ वीं शताब्दीके अंतमें और नववींके प्रारंभमें हुए होने चाहिए। उन्होंने एक पुरातन सांप्रदायिक श्रोकके आधार परसे शक ७० (ई. स. ८८) में शंकराचार्यका जन्म होना बतलाया है। इसी समयके सम्बन्धमें अन्यान्य विद्वानोंके अनेक अनुकूल-प्रतिकूल अभिप्राय जो आज तक प्रकट हुए हैं उनमें सबसे विचला अभिप्राय प्रसिद्ध देशभक्त श्रीयुत बाल गंगाधर तिलकका, उनके 'गीतारहस्य' में प्रकट हुआ है। श्रीयुत तिलक महाशयके मतसे "इस कालको सौ वर्ष और भी पीछे हठाना चाहिए। क्योंकि महा-नुभाव पन्थके दर्शनप्रकाश नामक ग्रंथमें यह कहा है कि 'युगमप्योधिरसान्वितशके' अर्थात् शक संवत् ६४२ (विक्रमी संवत् ७७०) में श्रीशंकराचार्यने मुहामें प्रवेश किया, और उस समय उनकी आयु ३२ वर्षकी थी। अतएव यह सिद्ध होता है कि उनका जन्म शक ६१० (वि. सं. ७४५) में हुआ।" (गीतारहस्य, हिन्दी आवृत्ति, पृ. ५६४) हमारे विचारसे तिलक महाशयका यह कथन विशेय प्रामाणिक नहीं प्रतीत होता। क्योंकि शंकराचार्य यदि ७ वीं शताब्दीमें, अर्थात् हरिभद्रके पहले हुए होते तो उनका उल्लेख हरिभद्रके ग्रंथोंमें कहीं न कहीं अवश्य मिलता। हरिभद्र उल्लिखित विद्वानोंकी दीर्घ नामावलि जो हमने इस लेखमें ऊपर लिखी है उसके अवलोकनसे ज्ञात होता है

कि, उन्होंने अपने पूर्वमें जितने प्रसिद्ध मत और संप्रदाय प्रचलित थे उन प्रत्येकमें हो जाने वाले सभी बड़े बड़े तत्त्वज्ञोंके विचारों पर कुछ न कुछ अपना अभिप्राय प्रदर्शित किया है। शंकराचार्य भी यदि उनके पूर्वमें हो गये होते तो उनके विचारों की अलोचना किये बिना हरिभद्र कभी नहीं रुप रह सकते। शंकराचार्यके विचारोंकी मीमांसा करनेका तो हरिभद्रको ग्रास असाधारण कारण भी हो सकता था। न्याय कि, प्राणीरिक भाष्यके दूसरे अध्यायके द्वितीय पादमें यादरायणके

नैकस्मिन्नसम्भवात् [३३] एवं चात्माऽकारण्यम् [३४]

न च पर्यायादप्यविरोधो विकारादिभ्यः । ३५ ।

अन्यावर्धितेश्चोभयनित्यत्वद्विवेक्षेः । ३६ ।

इन ४ सूत्रों पर भाष्य लिखते हुए शंकराचार्यने, जैनधर्मका मूल और मुख्य सिद्धान्त जो 'स्याद्वाद' (अनेकान्तवाद), है उनके ऊपर अनेक असद्वक्षेप किये हैं। हरिभद्रने 'अनेकान्तजयपताका' में अनेकान्तवाद ऊपर किये जानेवाले सब ही आक्षेपोंका विस्तृत रीतिसे निरसन किया है। इस ग्रंथमें, तथा और और ग्रंथोंमें भी उन्होंने ब्रह्माद्वैत मतकी अनेक बार भीमांसा की है। ऐसी दशामें शंकराचार्य जैसे अठितीय अद्वैतवादीके विचारोंका यदि हरिभद्रके समयमें अस्तित्व होता (और तिलक महाशयके कथनानुसार होना ही चाहिए था) तो, फिर उनमें सद्बलित अनेकान्तवादपरक आक्षेपोंका उत्तर दिये बिना हरिभद्र कभी नहीं मौन रहते। इस लिये हमारे विचारसे शंकराचार्यका जन्म हरिभद्रके वेदघिल्यके बाद, अर्थात् प्रो. पाठकके विचारानुसार शक ७०० में होना विशेष युक्ति संगत मालूम देता है।

हरिषेणकृत कथाकोश ।



[लेखक—श्रीयुत पं. नाथूरामजी प्रेमी, भूतपूर्वसंपादक, जैन हितैषी ।]

दिगम्बर और श्वेताम्बरसम्प्रदायके विद्वानों द्वारा अनेक कथाकोश रचे गये हैं; परन्तु अभी तक जितने कथाकोश उपलब्ध हुए हैं, वे अपेक्षाकृत अर्वाचीन हैं—ग्यारहवीं शताब्दीके पहलेका अभी तक कोई कथाकोश प्राप्त नहीं हुआ है। इस देखते हम जिस कथाकोशका परिचय देना चाहते हैं वह शक संवत् ८५३, विक्रम संवत् ९८९ और ११ नामक वर्तमान संवत् के २४ वें वर्षका बना हुआ है और इसलिए इस समय हम उसे सबसे अर्वाचीन जैन कथाकोश कह सकते हैं।

इस कथाकोशकी एक प्रति पूनेके “ भाण्डार-र-प्राच्यविद्यासंशोधन मन्दिर ” में मौजूद है। वि० सं० १८६८ की लिखी हुई है। यह जयपुर गोधाजीके मन्दिरमें लिखी गई थी और संभवतः हाँसे गवर्नमेण्टके लिए खरीदी गई है। इसकी श्लोकसंख्या १६५००, पत्रसंख्या ३५० और कथासंख्या १५७ है। प्रायः सारा ग्रन्थ अनुपुष्प छन्दोंमें रचा गया है। रचना बहुत मीठी और सुन्दर तो नहीं है; परन्तु दिगम्बर सम्प्रदायके अन्य कथाकोशोंसे अच्छी है।

इसके कर्ता हरिषेण नामक आचार्य हैं जो अपनी गुरुपरम्परा इस भाँति बतलाते हैं—१ मीनि भट्टारक, २ श्रीहरिषेण, ३ भरतसेन और ४ हरिषेण। हरिषेण पुत्राट्ट संघके आचार्य थे। यद्यपि दिगम्बर सम्प्रदायके अनेक आचार्योंने इस संघको पाँच जैनाभासोंमें एक बतलाया है; परन्तु फिर भी यह दिगम्बर सम्प्रदायका ही भेद था। यह द्राविडसंघका नामान्तर जान पड़ता है। द्रविडदेशीय होनेके कारण इसका द्रविडसंघ नाम हुआ है। पुष्पा-

ट भी संभवतः द्रविड देशका ही नामान्तर है। इस कथाकोशमें ही भद्रबाहु-कथानकमें लिखा है—

अनेन सह संघोऽपि समरतो गुरुवाक्यतः ।

दक्षिणापथदेशस्थपुत्राटविषयं ययौ ॥४०॥

इससे सिद्ध है कि पुत्राट दक्षिणापथका ही एक देश है और उसे द्रविड देश मानना कुछ असंगत नहीं हो सकता। उस समय शायद कर्नाटक देश भी द्रविड देशमें गिना जाता था। इस संघका एक और नाम द्रमिल संघ भी है। न्याय-विनिश्चयालंकार और पार्श्वनाथचरित अदिके कर्ता सुप्रसिद्ध तार्किक वादिराजने अपनेकी द्रमिल-संघीय लिखा है। द्रविड देशको द्रमिल देश भी कहते हैं।

सुप्रसिद्ध हरिवंशपुराणके कर्ता प्रथम जिनसेन भी इसी पुत्राट संघके आचार्य थे—

“ व्युत्सृष्टापरसंघसन्ततिवृहत्पुत्राटसंघाश्रये— ”

हरिवंश-प्रज्ञप्ति ।

यह कथाकोश भी उसी वर्द्धमाननगरमें बनाया गया है जहाँ कि जिनसेनसूरिने हरिवंशपुराणकी रचना की थी। और जब कि जिनसेन पुत्राट संघके ही आचार्य हैं तब संभव है कि हरिषेण आचार्य जिनसेनकी ही शिष्यपरम्परामें हों। यदि मौनिभट्टारककी गुरुपरम्पराका पता लग जाय तो इस बातका निर्णय सहज ही हो जाय।

वर्द्धमानपुर कर्नाटक देशका ही कोई प्रसिद्ध नगर है। मालूम नहीं, इस समय वह किस नामसे प्रसिद्ध है। जिनसेनसूरि लिखते हैं—

“ कल्याणैः परिवर्द्धमानविपुलश्रीवर्द्धमाने पुरे,
श्रीपादनीलवन्द्यराजवशतो पर्याप्तशेषः x x ”

इसी प्रकार इस कथाकोशके कर्ता लिखते हैं—

“ जैनालयवातविराजिताते
चन्द्रावदातद्युतिसौधवाले ।

१ मेरे द्वारा सम्पादित और जैनग्रन्थरत्नाकर पार्थोलय, बम्बई, द्वारा प्रकाशित ‘ दर्शनसार ’ में जैनाभासोंका विस्तृत विवेचन देखिए।

२ दक्षिणमहाराजादो द्राविडसंघो महामोहो ।
॥ २८ ॥ देखेन ।

३ आपटकी संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरिमें पुत्राटका अर्थ ‘ कर्नाटक देश ’ लिखा है ।

कार्तस्वरापूर्णजनाधिवासे
श्रीवर्द्धमानाख्यपुरे x x x ॥ ”

इससे जान पड़ता है कि उस समय यह नगर बहुत समृद्धिशाली था और अनेक जैनमन्दिरोंसे सुशोभित था । वहँकि नगरराजके यनाथे हुए पार्श्व नाथालय नामक जैनमन्दिरका—जहाँ कि हरिवंश-पुराण समाप्त हुआ था—और भी कई ग्रन्थोंमें उल्लेख मिलता है ।

यह ग्रन्थ विनयपाल नामक राजाके समयमें लिखा गया है । ग्रन्थप्रशस्तिसे यह मालूम नहीं होता है कि विनयपालकी राजधानी कहाँ थी । सम-यतः यह वर्धमानपुरमें ही होगी । हम इस बातका पता नहीं लगा सके कि विनयपाल किसवंशका राजा था, परन्तु संभवतः वह राष्ट्रकूट राजाओंका माण्डलिक होगा और चतुर्थ गोविन्द या सुवर्ण वर्षका समकालीन होगा जिसने शक सन् ८५६ तक राज्य किया था ।

यह कथाकोश किसी ‘आराधना’ नामक ग्रन्थसे उद्धृत करके, सारांश रूपमें या उसके सहारेसे लिखा गया है, यह बात प्रशस्तिके आठवें श्लोकके ‘आराधनोद्धृत’ पदसे मालूम होती है । ऐसी दृष्टामें कहना होगा कि इस ग्रन्थकी कथायें अधिक नहीं तो हरिवंशके समयसे सो दो सौ वर्ष पहले की अवश्य होंगी ।

दिगम्बर सम्प्रदायमें ‘आराधना-कथाकोश’ नामके दो खस्तृत कथाकोश और भी हैं । इनमेंसे एक प्रभाचन्द्र भट्टारकका बनाया हुआ ग्रन्थ है और दूसरा महिभूषणके शिष्य नेमिदत्त ब्रह्मचारिकों पर्यमें है । यह दूसरा प्रथमका पद्यानुवाद मात्र है । “ये दोनों कथाकोश इस कथाकोशकी

१-नेमिदत्त महावारी वि० सं० १५७५ के लगभग हुए हैं ।

२-देवेन्द्रचन्द्रार्कसमर्पितेन तेन प्रभाचन्द्रमुनीदरेण ।
अनुमहर्षा रचितं सुभाषिताराधनासारकथाप्रबन्धः ॥ ६ ॥
तेन क्रमेणैव मया स्वशक्त्या श्लोके प्रसिद्धे विनयते सः ।
म गौणं किं भानुकरमकाशे स्थलीत्या गच्छति सर्वशोकः ॥ ७ ॥

—नेमिदत्तरक्त कथाकोश ।

अपेक्षा छोटे हैं, इसीलिए जान पड़ता है कि इसकी प्रति लिखनेवालेने इसके नामके साथ बृहत् विशेषण लगा दिया है । ग्रंथकर्तानें स्वयं इसे ‘कथाकोश’ ही लिखा है ।

हमको इस कथाकोशकी सब कथायें पढ़नेका अवसर नहीं मिला । ई भी वे बहुत मामूली और विशेषत्वहीन । कुछ कथायें ऐतिहासिक पुराणोंसे सम्बन्ध रखनेवाली हैं, जैसे चाणक्य, शकटाक्ष, और भट्टयाह, परन्तु वे भी वास्तविक इतिहाससे कम सम्बन्ध रखती हैं—केवल जैनधर्मकी महिमा बढ़ानेके उद्देश्यसे लिखी गई हैं ।

इसमें भट्टयाहकी जो कथा लिखी गई है उसमें दो बातें बड़ी विलक्षण हैं और पुरातत्त्वज्ञोंके ध्यानमें रहने योग्य हैं । एक तो यह कि, भट्टयाहने १३ वर्षका घोर दुर्भिक्ष पड़नेका निश्चय करके अपने शिष्योंको ही दक्षिणापथ तथा सिन्धुनादि देशोंको भेज दिया था, पर वे स्वयं उज्जयिनीमें रहे और कुछ दिनोंमें उज्जयिनीके निकट भाद्रपद- (भेलसा ?) नामक स्थानमें स्वर्गयासी हो गये । दूसरे, उज्जयिनी के राजा चन्द्रगुप्तने भट्टयाहके समीप दीक्षा ले ली थी और वे ही पीछे विशालाचार्यके नामसे प्रसिद्ध हुए थे^१ । वे भट्टयाहके समीप न रह कर दक्षिणापथको चले गये थे । अन्य कई कथाओंके और शिलालेखोंके अनुसार भट्टयाह आचार्य भी दक्षिणापथको गये थे और उनका स्व-

१ भट्टयाहुमुनिर्धारी भयस्तत्कवर्जितः ।

१। प्राप्ताधम तोन जिगाय सहस्रोहिततम् ॥ ४९

प्राप्य भाद्रपद देश ध्रुवगुज्जयिनीमगम ।

चकारानयनं धीरः स दिनानि बह्व्ययम् ॥ ५३

आराधनो समाराध्य विधिना स चतुर्विधाम् ।

समाधिमरण प्राप्य भट्टयाहुर्दिव ययौ ॥ ४४

२ भट्टयाहुवचः श्रुत्वा चन्द्रगुप्तो नरेश्वरः ।

अस्थैव योगिन पार्श्वं दधौ जैनेश्वर तपः ॥ १६

चन्द्रगुप्तमुनिं शीघ्रं प्रथमो दसार्श्विणाम् ।

सर्वसपाधिषो जातो विशालाचार्यसङ्गः ॥ १९

अनेन सह सघोषि समस्तो पुरवाययतः ।

दक्षिणापथदेशाख्यपुलाठविषयं ययौ ॥ ४०

लक्षणलक्षविधानविहीनः छन्दसापि रहितः प्रमया च ।

तस्य शुभ्रयशसो हि विनेयः संवत्स्र विनयी हरिषेणः ॥ ७

आराधनोद्धृतः पथ्यो भव्यानां भावितात्मना । हरिषेणकृतो माति कथाकोशो महीतले ॥ ८

हीनाधिकं चारुकथाप्रबन्धाख्यातं यदस्माभिरतिप्रमुषैः ।

मात्सर्यहीनाः कवयो धरण्यां तत्प्रोध्यन्तु स्फुटमादरेण ॥ ९

मदं भूयाज्जिनानां निरूपमयशसा शासनाय प्रकाशं,

जैनो धर्मोपि जीयाज्जगति हिततमो देहभाजां समस्तं ।

राजानोऽवन्तु लोकं सकलमतितरां चास्वातोऽनुकूलः,

सर्वे शास्यन्तु सत्त्वाः जिनवरवृषभाः सन्तु मोक्षप्रदा नः ॥ १०

नवाष्टनवकेष्वेपु स्थानेषु त्रिषु जायतः । विक्रमादित्यकालस्य परिमाणमिदं स्फुटम् ॥ ११

शतेष्वष्टसु विस्पष्टं पंचाशत् व्याधिकेषु च । शककालस्य सत्यस्य परिमाणमिदं भवेत् ॥ १२

संवत्सरे चतुर्विंशे वर्तमाने खराभिधे । विनयादिकपालस्य राज्ये शक्रोपमानके ॥ १३

एवं यथाक्रमोक्तेषु कालराज्येषु सत्सु कौ । कथाकोशः कृतोऽस्माभिर्भव्यानां हितकाम्यया ॥ १४

कथाकोशोऽयमीदृक्षो भव्यानां मलनाशनः । पठता शृण्वतां नित्यं व्याख्यातृणां च सर्वदा ॥ १५

सहस्रैर्द्वादशैर्बद्धो नूनं पंचशतान्वितैः । जिनधर्मश्रुतोद्युक्तैरस्माभिर्मतिवर्जितैः ॥ १७

इति श्रीहरिषेणाचार्यकृतं बृहत्कथाकोशं समाप्तं । ग्रन्थसंख्या १२५०० । श्रीरस्तु । कस्याणमस्तु ।

संवत् १८६८ का मासोत्तममासे जेठमास शुक्लपक्ष चतुर्थ्या तिथौ सूर्यवारे श्रीमूलसंघे नय्याम्नाये

वलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्यवे भट्टारकजी श्रीमहेन्द्रकीर्तिजी तत्पट्टे भट्टारकजी श्रीक्षेमन्द्र-

कीर्तिजी तत्पट्टे भट्टारकजी श्रीसुरेन्द्रकीर्तिजी तत्पट्टे भट्टारकशिरोमणी भट्टारकजी श्रीमुखेन्द्रकीर्तिजी

तदाम्नाये सवाई जयनगरे श्रीमन्नेमिनाथचैत्यालये गोधाख्यमन्दिरे पंडितोत्तमपंडितजी श्रीसंतोष-

रामजी तत्सिख्यपंडित वपतरामजी तच्छिष्य हरिवंशदासजी तत्सिष्य कृष्णचन्द्रः तेषां मध्ये वपतराम-

कृष्णचंद्राभ्यां ज्ञानावरणीकर्मक्षयार्थं बृहदाराधनाकथाकोशाख्यं ग्रन्थं स्वाशयेन लिपितं श्रोतुवक्तृजनानामिदं

शास्त्रं मंगलं भवतु । ”



गवास श्रवणयेल्लोलके चन्द्रगिरि पर्वतपर हुआ था, तथा उनके साथ चन्द्रगुप्त भी गये थे और उनका दूसरा नाम विशाखाचार्य नहीं किन्तु प्रभाचन्द्र था । विशाखाचार्य नामके आचार्य उस संघमें दूसरे ही थे । इन कथाओं और शिलालेखोंके आधारसे ही सम्राट् चन्द्रगुप्तके जैन होनेकी सारी दीवाल खड़ी की गई है और स्वर्गीय विन्सेंट स्मिथ जैसे सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ भी चन्द्रगुप्तका जैन होना 'संभवनीय' बतला गये हैं । जिन शिलालेखोंसे और कथाओंसे चन्द्रगुप्तका जैनत्व सिद्ध करनेका प्रयत्न किया जाता है, इसमें सन्देह ही है कि उनमेंसे कोई भी इस कथाकोशसे प्राचीन हो । हम आशा करते हैं कि इतिहासज्ञ इस विषयपर विशेष विचार करनेकी कृपा करेंगे ।

इस कथाकोशमें समन्तभद्र, अकलंकदेव और पात्रकेसरी (विद्यानन्द) की कथायें नहीं हैं, जो अवश्य होनी चाहिये थीं । क्यों कि इसके कर्ता उक्त समन्तभद्रादि आचार्योंके देशके ही थे । अकलंकदेव पात्रकेसरीसे थोड़े ही समय बाद हुए थे । प्रभाचन्द्र और नेमिदत्तके कथाकोशोंमें ही सबसे पहले उक्त कथायें लिखलाई देती हैं, जिससे संदेह होता है कि उनकी रचना किम्बदन्तियों या प्रचलित प्रवादोंके अनुसार स्वयं उक्त कथाकोशकारों द्वारा ही की गई है ।

अन्तमें हरिवेणके कथाकोशके प्रारम्भका मंगलाचरण और अन्तकी प्रशस्ति देकर हम इस लेखको समाप्त करते हैं:—

ओं नमो धीतरागाय ।

श्रियं परां प्राप्तमनन्तबोधं मुनिन्द्रेदेवन्द्रनेन्द्रवन्धम् ।

निरस्तकन्दर्पगजेन्द्रदर्पं नमाम्यहं वीरजिनं पवित्रम् ॥ १

विज्ञो न जायते नूनं न क्षुद्रामरलंघनम् । न भयं भय्यसत्त्वानां जिनमंगलकारिणाम् ॥ २

जि (ज) नस्य सर्वस्य कृतानुरागं विपश्चितां कर्णरसायनं च ।

समासतः साधुमनोभिरामं परं कथाकोशमहं प्रवक्षे ॥ ३

अन्तमें प्रथकर्ता प्रथके अमर होनेकी इच्छा करते हुए अपना परिचय इस प्रकार देते हैं --

यावच्चन्द्री रविः स्वर्गो यावत्सलिलराशयः । यावद्योमं नृगाधीशो यावद्भृगादिनिम्नगाः ॥ १

यावत्तारा धरा यावद्दामरावणयोः कथा । तावच्चारुकाकोशः तिष्ठतु क्षितिमण्डले ॥ २

मुगलमिदम् ।

यो बोधको भव्यकुमुद्वतीनां निःशेषराद्धान्तवचोमयूलेः ।

पुलाटसंघांवरसन्निवासी श्रीमौनिमहारकपूर्णचन्द्रः ॥ ३

जैनालयमातविराजितान्ते चन्द्रावदातपुतिसौम्यजाले ।

कार्तस्वरापूर्णजनाधिवासे श्रीवर्षमानासुर्यपुरे वसन्तः ॥ ४

मुगलमिदम् ।

सारागमाहितमतिविदुषां प्रपूज्यो नानातपोविधिविधानकरो विनेयः ।

संस्थाभवद्गुणनिधिजैनतामिवन्धः श्रीशब्दपूर्वपदको हरिवेण संज्ञः ॥ ५

छन्दोलंकृतिकाव्यनाटकचणः काव्यस्य कर्ता सतो,

वेत्ता व्याकरणस्य तर्कनिपुणस्तत्त्वार्थवेदी परं ।

नानाशास्त्रविचक्षणो बुधगणैः सेव्यो विशुद्धाशयः,

सेनान्तो भरतादिरत्र परमः शिष्यः नमूव क्षितौ ॥ ६

गयास अचणयेलोलके चन्द्रगिरि पर्वतपर हुआ था, तथा उनके साथ चन्द्रगुप्त भी गये थे और उनका दूसरा नाम विशाखाचार्य नहीं किन्तु प्रभाचंद्र था। विशाखाचार्य नामके आचार्य उस संघमें दूसरे ही थे। इन कथाओं और शिलालेखोंके आधारसे ही सम्राट् चन्द्रगुप्तके जैन होनेकी सारी शीवाल खड़ी की गई है और स्वर्गीय विन्सेंट स्मिथ जैसे सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ भी चन्द्रगुप्तका जैन होना 'संभवनीय' बतला गये हैं। जिन शिलालेखोंसे और कथाओंसे चन्द्रगुप्तका जैनत्व सिद्ध करनेका प्रयत्न किया जाता है, इसमें सन्देह ही है कि उनमेंसे कोई भी इस कथाकोशसे प्राचीन हो। हम आशा करते हैं कि इतिहासज्ञ इस विषयपर वि-
शेष विचार करनेकी कृपा करेंगे।

इस कथाकोशमें समन्तभद्र, अकलंकदेव और पात्रकेसरी (विद्यानन्द) की कथायें नहीं हैं, जो अवश्य होनी चाहिए थीं। क्यों कि इसके कर्ता उक्त समन्तभद्रादि आचार्योंके देशके ही थे। अकलंकदेव पात्रकेसरीसे थोड़े ही समय बाद हुए थे। प्रभाचन्द्र और नेमिदत्तके कथाकोशोंमें ही सबसे पहले उक्त कथायें दिखलाई देती हैं, जिससे संदेह होता है कि उनकी रचना किम्बदन्तियों या प्रचलित प्रवादोंके अनुसार स्वयं उक्त कथाकोशकर्ता द्वारा ही की गई है।

अन्तमें हरियेणके कथाकोशके प्रारंभका मंगला-चरण और अन्तकी प्रशस्ति देकर हम इस लेखको समाप्त करते हैं:—

ओं नमो धीतपागाय ।

अग्रं परा प्राप्तमनन्तबोधं मुनीन्द्रदेवेन्द्रनेन्द्रवन्द्यम् ।

निरस्तकन्दर्पगजेन्द्रदर्पं नमाम्यहं वीरजिनं पवित्रम् ॥ १

विज्जो न जायेते नूनं न सुद्धामरलंघनम् । न भयं भयसत्त्वानां जिनमंगलकारिणाम् ॥ २

जि (ज) नस्य सर्वस्य कृतानुरागं विपश्चितां कर्णरसायनं च ।

समासतः साधुमनोभिरामं परं कथाकोशमहं प्रवक्ष्ये ॥ ३

अन्तमें प्रथकर्ता प्रथके अमर होनेकी इच्छा करते हुए अपना परिचय इस प्रकार देते हैं --

यावच्चन्द्रो रविः स्वर्गो यावत्सलिलराशयः । यावद्योम नगाधीशो यावद्गंगादिनिम्नगाः ॥ १

यावत्तारा धरा यावद्दामरावणयोः कथा । तावत्तत्कथाकोशः तिष्ठतु क्षितिमण्डले ॥ २

युगलमिदम् ।

यो बोधको भव्यकुमुद्वतीनां निःशेषराद्धान्तबचोमयूखैः ।

पुनाटसंघान्नरसन्निवासी श्रीमौनिमट्टारकपूर्णचन्द्रः ॥ ३

जैनालयवातविराजितान्ते चन्द्रावदातधुतिसौधजले ।

कार्तित्वरापूर्णजनाधिवासे श्रीवर्धमानास्यपुरे वसन्तः ॥ ४

युगलमिदम् ।

सारागमाहितमतिविदुषा प्रपूज्यो नानातपोविधिविधानकरो विनेयः ।

तस्याभवद्गुणनिधिर्जिनतामिवंधः श्रीशब्दपूर्वपदको हरियेण संज्ञः ॥ ५

छन्दोलंकृतिकाव्यनाटकचणः काव्यस्य कर्ता सतो,

येत्ता व्याकरणस्य तर्कनिपुणस्तत्त्वार्थवेदी परं ।

नानाशास्त्रविचक्षणो बुधगणैः सेव्यो विशुद्धाशयः,

सेनान्तो मरतादिरत्र परमः शिष्यः बभूव क्षितौ ॥ ६

गयास श्रवणयेत्सोलके चन्द्रागिरि पर्वतपर हुआ था, तथा उनके साथ चन्द्रगुप्त भी गये थे और उनका दूसरा नाम विशालाचार्य नहीं किन्तु प्रमाचन्द्र था। विशालाचार्य नामके आचार्य उस संघमें दूसरे ही थे। इन कथाओं और शिलालेखोंके आधारसे ही सम्राट् चन्द्रगुप्तके जैन होनेकी सारी सीवाल खड़ी की गई है और स्वर्गीय विन्सेंट स्मिथ जैसे सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ भी चन्द्रगुप्तका जैन होना 'संभवनीय' मतला गये हैं। जिन शिलालेखोंसे और कथाओंसे चन्द्रगुप्तका जैनत्व सिद्ध करनेका प्रयत्न किया जाता है, इसमें सन्देह ही है कि उनमेंसे कोई भी इस कथाकोशसे प्राचीन हो। हम आशा करते हैं कि इतिहासज्ञ इस विषयपर वि-शेष विचार करनेकी कृपा करेंगे।

इस कथाकोशमें समन्तभद्र, अकलंकदेव और पात्रकेसरी (वियानन्द) की कथायें नहीं हैं; जो अवश्य होनी चाहिये थीं। क्यों कि इसके कर्ता उक्त समन्तभद्रादि आचार्योंके देशके ही थे। अकलंकदेव पात्रकेसरीसे थोड़े ही समय बाद हुए थे। प्रमाचन्द्र और नेमिदत्तके कथाकोशोंमें ही सबसे पहले उक्त कथायें दिखलाई देती हैं, जिससे संदेह होता है कि उनकी रचना किम्बदन्तियों या प्रचलित प्रवादोंके अनुसार स्वयं उक्त कथाकोशकारों द्वारा ही की गई है।

अन्तमें हरियेणके कथाकोशके प्रारम्भका मंगला-चरण और अन्तकी प्रशस्ति देकर हम इस लेखको समाप्त करते हैं:—

ओं नमो धीतरागाय ।

श्रियं परां प्राप्तमनन्तवोधं मुनिन्द्रेदेन्द्रेनरेन्द्रवन्द्यम् ।

निरस्तकन्दर्पगजिन्द्रदर्पं नमाम्यहं वीरजिनं पवित्रम् ॥ १

विघ्नो न जायते नूनं न क्षुद्रामरलंघनम् । न भयं भव्यसत्त्वानां जितमंगलकारिणाम् ॥ २

जि (ज) नस्य सर्वस्य कृतानुरागं विपश्चितां कर्णरसायनं च ।

समासतः साधुमनोभिरामं परं कथाकोशमहं प्रवक्षे ॥ ३

अन्तमें प्रथकर्ता प्रथके अमर होनेकी इच्छा करते हुए अपना परिचय इस प्रकार देते हैं --

यावच्चन्द्रो रविः स्वर्गो यावत्तालिलराशयः । यावद्योम नृगाधीशो यावद्गंगादिनिम्नगाः ॥ १

यावत्सारा धरा यावद्रामरावणयोः कथा । तावच्चालुक्याकोशः तिष्ठतु क्षितिमण्डले ॥ २

युगलभिरम् ।

यो बोधको भव्यकुमुद्वतीनां निःशेषराद्धान्तवचोमयूखैः ।

पुञ्जाटसंघावरसशिवासी श्रीमौनिमहारकपूर्णचन्द्रः ॥ ३

जैनालयवातविराजितान्ते चन्द्रावदातधुतिसौधजाले ।

कार्तस्वरापूर्णजनाधिवासे श्रीवर्धमानारूपपुरे वसन्तः ॥ ४

युगलभिरम् ।

सारागमाहितमतिर्विदुषां प्रपूज्यो नानातपोविधिविधानकरो विनेयः ।

तस्याभवद्गुणनिधिर्जनताभिवन्द्यः श्रीशब्दपूर्वपदको हरियेण संज्ञः ॥ ५

छन्दोलंकृतिकाव्यनाटकचणः काव्यस्य कर्ता सतो,

येन व्याकरणस्य तर्कनिपुणस्तत्त्वार्थवेदी परं ।

नानाशास्त्रविचक्षणो बुधगणेः सेव्यो विशुद्धाक्षयः,

सेनान्तो मरतादिरत्र परमः शिष्यः बभूव क्षितौ ॥ ६

जैन साहित्य संशोधक

भाग १]

गुजराती लेख विभाग

[अंक १]

डॉ. हर्मन जेकोबीनी कल्पसूत्रनी प्रस्तावना.

[अनुवादक—श्रीयुत अंबालाल चतुर्भाई शाहा, बी. ए.]

[नोट:—लीप्सीग (जर्मनी) मां प्रकट थती 'Abhandlungen für die Kunde des Morgenlandes' नामनी ग्रंथमालामां, ई० स० १८७९ मां डॉ. हर्मन जेकोबीए रोमन लिपिमां, विस्तृत प्रस्तावना, उपयोगी टिप्पण, विविध पाठांतरों, अने प्राकृत संस्कृत शब्दकोष साथे भद्रबाहुस्वामी विरचित कल्पसूत्र प्रकट कराव्युं हुतुं. ए पुस्तकनी, प्रस्तावनामां ए विद्वान् जैन स्कॉलरे कल्पसूत्र साथे संबंध धरावतारी बाबतो सिवाय बीजो पण धणीक बाबतो लंघाणथी चर्चेली छे, अने तेमां, तेमनी पहे-लाना जे केटलाक प्रसिद्ध यूरोपीय स्कॉलरोए जैनधर्मनी ऐतिहासिकता अने स्वतंत्रताना संबंधमां जुदा जुदा भ्रांतिवाळा विचारो प्रकट करेला हता, तेमनु संक्षेपमा निरसन कर्युं छे. डॉ. जेकोबीनुं ए अमूल्य अने प्रारंभिक पुस्तक अजे दुर्लभ थई ग्युं छे, तेमज जैनसमाजना मोटा भागने—इंग्रेजी केलवणी लीधेला ग्रेज्युएटो सुद्धाने—ए बातनी खबर नथी के उक्त विद्वाने पोताना ए उपयोगी पुस्तकमां जैनधर्मना विषयमां केवा केवा विचारो प्रदर्शित कर्यो छे. तेथी ए पुस्तकनी प्रस्तावनानो सरल अनुवाद अत्र आपवामां आवे छे.

आ ठेकाणे एटलुं सूचवी देवुं जरूरनुं छे के आ लेखमां जणावेलो, तथा एवा बीजा लेखो, के जे हमेशां आ पत्रमां प्रकट थना रहेशे तेमां जणावेलो बधा विचारो साथे संपादक संमत छे, एम समजी लेवानी कोईए मूल न करवी. संपादक हमेशां पोताना स्वतंत्र लेखोक्त विचारो माटेज जवाबदार होय छे. तेमज अन्य लेखकोना विचारो पण हमेशां एक सरस्वाज रहे छे, एम पण कोईए दृढ धारणा न करी लेवी. ज्ञान अने साधनोना अनुसार मोटा मोटा लेखकोना विचारोमां बण परिवर्तन थतुं रहे छे, ए सर्वानुभवसिद्ध हकिकत छे. एज नियमानुसार डॉ. जेकोबीना विचारोमां पण आ प्रस्तुत प्रस्तावना लख्या वाद, पाछज्झथी, केटलीक बज्जतोमां संशोधन—परिवर्तन थयुं छे, एम तेमना पाछज्झना लखाएला नेटलाक लेखो उपरथी समजाय छे. हवे पछीना अंकोमां 'पूर्वना पवित्र पुस्तको' (Sacred Books of the East) नामनी सुप्रसिद्ध ग्रंथमाळामां डॉ. जेकोबी द्वारा अनुवादित जैन सूत्रोना जे वे पुस्तको प्रसिद्ध थयां छे तेमनी प्रस्तावनानो अनुवाद पण कमथी आपवानी दच्छा छे. आशा छे के वाचको विचारपूर्वक तेमनो पूरेपूरो लाभ लेशे.—संपादक.]

महावीर निर्वाणना समयनुं निरूपण करता पहे-
ला आपणे शस्त्रआतमां ए तपास करीए के जैन-
धर्म अने बौद्धधर्म बने परस्पर स्वतंत्र धर्मो छे के एक
बीजामांथी नीकलेला छे. जे यूरोपीय विद्वानोए
आ विषय उपर आज सुधीमां लख्युं छे, ते सपञ्चा सा
मान्य रीते उपर दर्शावेला बीजा मतने स्वीकारवानुं
पोतानुं बलण बतावे छे. कोलब्रूक (Colebrook)
महावीरने गौतम बुद्धना गुरु तरीके माने छे अने
ते प्रमाण मानवानुं कारण ते ए बतावे छे के महा-
वीरनो एक इन्द्रभूति नामनो शिष्य घणीवार गौत-
मस्वामी अथवा गौतम नाम ओल्लखाय छे. प्रिन्सेप
(Prinsep) अने स्टीवन्सन (Stevenson) ए
बे विद्वानो तेनाज अभिप्रायने स्वीकारे छे, अने थोडा-
ज समय अगाउ, मि. एडवर्ड थोमसे (Mr. Ed.
Thomas) पण तेज मतनुं पुनः प्रतिपादन कर्तुं छे.
प्रो. वेबर (Prof. Weber) पोताना शत्रुंजय मा-
हात्म्य ('Ueber das Catumajaya mahatmya')
उपरना निबंधमां कोलब्रूकनी कल्पनाने आतिपूर्ण
सिद्ध करे छे अने लखे छे के, इन्द्रभूति ते गौतमबुद्धनी
माफक क्षत्रिय नहीं पण ब्राह्मण जातिनो हता. तेनुं
गोत्र गौतम होवाथी ते ए नामे पण ओल्लखाय छे.
परंतु आदला उपरथी तेनी गौतमबुद्धनी साथे एक-
ता करवी ते प्रकट भूल छे. जो इन्द्रभूति विरोधी
मत स्थापवाने वर्धमानना धर्ममार्गनो त्याग कर्षो
होत, तो, महावीर निर्वाण बाद थोडा बलत पछी
रचाएला जैनसूत्रोमां बारंवार तेना संबंधमां जे आदर
भरेला उल्लेखो करवामां आब्या छे ते कदापि न
करवामां आवत. बरहे तेथी उलटुं, महावीरनो
प्रिय शिष्य होवा छनां बने तेदली रीते तेनी नि-
दाज करवामां आबी होत * कारण के सूत्रोमां स्पष्ट

* इन्द्रभूतिना संबंधमा जे एक दंतकथा प्रचलित छे ते
उपरथी इन्द्रभूति तेमना गुरु उपर केदला अनुरक्त हना ते
स्पष्ट थाय छे. महावीरना देहत्याग बरने तेओ गेरराजर
हना; ज्यार तेमणे स्थान तरफ पछा करता पोताना पूज्य-

रीते कथन छे के महावीरना जमालि नामना भांजे
धर्मभेद कर्षो हता; तेमज भगवती सूत्र (सय १७)
मां महावीरना बीजा शिष्य मक्सलिपुत्त गोसा-
लना उपर पण स्फुट रीते आक्षेपो करेला
जोवामा आवेछे. (साथे साथे कही जाउं छुं के
आ मक्सलिपुत्त गोसाल ते पालिसूत्रोमां निर्दिष्ट
मंसलिगोसालज छे. तने ते स्थळे छे तथिकोमानो-
पाखंडमतावलविओमानो—एक तथा बुद्धमतना
विरोधी तरीके गणाव्यो छे.

प्रो. एच्. विल्सन (Prof. H. Wilson) 'हिंदु'
ओना धार्मिक संप्रदायो ' नामना पोताना निबंधमा
कोलब्रूकथी तइन विरुद्ध मत उपस्थित करे छे. ते
कहे छे के जैनधर्म ए बौद्ध धर्मनी शाखा छे अने ते
ई० स० नी दसमी सताब्दिना अरसामां बुद्धधर्मनी
पड़तीमांथी उत्पन्न थयो छे. प्रो. ए. वेबर पोताना
उपरोक्त पुस्तकमां जो के जैनधर्मनी आना करतो
बधारे प्राचीनता स्वीकारे छे परतु साथे ते बौद्धधर्म-
नी पूर्वकालिकता पण, एच् विल्सनना कहेवा मुज-
ब कबुल राखे छे. प्रो. लेसन (Prof. Lassen) एक-
दर वेबरना अभिप्रायनेज मळतो थाय छे (Ind-
Altenh. IV 735 Sqg). उपर उपरथी जोतां
केदलां कारणो प्रो. विल्सनना मतने पुष्टि आपतां
माळुम पड़े छे. कारण जैनसूत्रोमा जणाव्या प्रमाणे
महावीर विहारना—के जे बुद्धनी पण जन्म अने उप-
देशनी भूमि हती, त्यांना—निवासी मात्र हता,
एटलुंज नहीं पण ते बने समकालीन अने एकज
राजाओना राज्योमां विचरता हता, एवं पण वर्णन
मळी आवेछे. अलवत श्रेणिक अने कुणिक (अथवा

गुहना अण्यार्थी अग्रजानना समाचर साभार्या त्यारे तेओ
अत्यंत कोमग्रस्त बन्या हता. पछीथी तेमणे प्रबुद्ध धई जोयुं
के, एक अंतिम अवशिष्ट बंधन, के जेनाथी तेओ सत्कारबद्ध
हता, ते बालु कर्द नहीं पण तेमना गुरु प्रत्येको तेमनो प्रवल
प्रेमभाव हता. पथान तेमणे से बंधनने गर्वधा छेरी केवल-
ज्ञान प्राप्त कर्तुं हतु.

કોણિક) આવાં નામો વૌદ્ધમૂત્રોમાં જોવામાં આવનાં નથી, તથાપિ શ્રેણ્ય યા શ્રેણિક પણ શ્વેદો વિન્ધિ-સારના વિરુદ્ધ તરીકે જોવામાં આવે છે; અને તેનો પુત્ર કુણિક, કે જે ઔપપાતિકસૂત્રમાં વિન્ધિસાર-પુત્રતરીકે પણ ઓઢસાય છે, તે સ્પષ્ટ રીતે વિન્ધિમા-રના પુત્ર અજાતશત્રુજ હોવો જોડાયેલ. કારણ કે જૈન અને વૌદ્ધસૂત્રોમાં અનુક્રમે તે વચ્ચેનો પોતાના પિતાની હત્યા કરનાર તરીકે વર્ણવેલા જોવાય છે. કુણિકનો પુત્ર ઉદાયિન્, કે જેણે જૈનપરંપરાગત કથાનુસાર પાટલિપુત્ર વસાવ્યું હતું, તે અજાતશત્રુનો પુત્ર-વૃંદયિ મહાકર્ણ છે; એમ સંદેહાદર્શી સાધિત કરી રાખેલું છે. કારણ કે, વૌદ્ધોનું પણ તેના સંબંધમાં તેવુંજ કથન છે. આ ઉપરથી પટલ્યું તો નિઃસંદેહ જણાય છે કે વિન્ધિસાર અને અજાતશત્રુ, જેઓ બુદ્ધના સમકાલીન હતા, તેઓ પુનઃ જૈન આગમેમાં શ્રેણિક અને કુણિકના નામ મહાવીરના સમકાલીન દૃષ્ટિગોચર થાય છે. તેમનાથી કેટલેક અંશે અલ્પપ્રતિષ્ઠિત જ્ઞવી થીજી વ્યક્તિઓના સંબંધમાં પણ આવી હકિકત મળી આવે છે જેમકે મંલલિનો પુત્ર ગોસાલ (અથવા અનાનુસાર-મવલ્લિ; મંલલિ=મવલ્લિ; વિન્ધિસાર=વિન્ધિસાર) અને લિચ્છવિ (જૈન-લેચ્છવ) રા-જાઓ. અન્ય એક લલીલ પ્રો. વિલ્સન પોતાના પક્ષમાં એ રજૂ કરે છે કે, શાક્યસિંહ અને વર્ધમાનના વિશેષણો અથવા ગુણનામાં એક સરસ છે. ઉદાહરણ તરીકે-બુદ્ધ, જિન, અને મહાવીર (?) વિગેરે. અને થીજું પણ એ પ્રમાણ એ છે કે વચ્ચેની પત્નીનું નામ યશોદા હતું. આ પ્રમાણોથી, એ. વિલ્સન બુદ્ધ અને મહાવીર વચ્ચે એકજ વ્યક્તિ છે, એમ જણાવે છે. પરંતુ આ સિવાય તે વચ્ચેની વચ્ચે થીજું કોઈ પ્રકારનું સામ્ય નથી. વારણ કે આ સિવાયની જેટલી હકિકતો બુદ્ધના સંબંધમાં લલ્લવામાં આવી છે, તેમાંની એકે વર્ધમાનની હકિકત સાથે મળતી આવતી નથી. તેમજ વચ્ચે મહાત્માઓનાં સમાનાં નામ, જન્મમૂર્તી, ગિરિપરિવાર, આયુર્મર્યાદા, તથા તેમના જીવનના

અદ્ભૂત વનાવો અને આચાર-વિચારો કે જે તેમના ઉપદેશો ઉપરથી તારવી શકાય છે—તે સઘળાં તદ્દન ભિન્ન ભિન્ન છે. હું આ સ્થિતિ માત્ર એક છેલ્લી વાચત ઉપર થોડીક ચર્ચા કરીશ. પહેલી વાચતોને ટીકાની જરૂર નથી. હું જ્યાં સુધી નિર્ણય કરી શક્યો છું, તે ઉપરથી, મહાવીરનું માનસિક વલણ વીતરાગ (વિરક્ત) જીવન તરફ હતું. તેમનો ઉપદેશ પણ મુખ્યત્વે કરીને આધ્યાત્મિક જ્ઞાન અને ધાર્મિક આચારોને લગ-તોજ છે. તેમનું તત્ત્વજ્ઞાન અથવા પરમાર્થ (અધ્યાત્મિક) સ્વરૂપ વિષયક જ્ઞાન ન્યાયશાસ્ત્રની પૂર્વાપર સંગતિની દૃષ્ટિએ ઝરઝરૂં જણાતું નથી. કારણ કે તે ગંભીર અને સર્વાંગપૂર્ણ શોધ (ગ્રેપેશન) કરવાને બદલે માત્ર સૂક્ષ્મ અને શ્રમસાધિત મેદો (વિકલ્પો) ઉભા કરે છે. આ મિદ્ધાન્તનું નામ સ્યાદ્વાદ છે, અને તે શૂન્યવાદ કે જે વૌદ્ધતત્ત્વજ્ઞાનને પોતાની જાઢમાં ગૂંચવી નાંસે છે, તેના મયથી પોતાને દૂર રાખે છે. એ મિદ્ધાન્ત હેરોફિટસના પર્યાયાદ (Flux) સાથે થોડેક અંશે મળતો આવે છે—જો કે એ તેના જેટલો ગહન નથી. મહાવીર મર્યાસામાન્ય માન્યતા પ્રમાણે આત્માનું નિત્ય અસ્તિત્વ અને ધાર્મિક તપશ્ચરણના પ્રભાવ (મામર્થ્ય)ને વિશેષ માને છે; ત્યારે બૌદ્ધો આ વચ્ચે સિદ્ધાન્તોની વિરુદ્ધ કથન કરે છે. મહાવીરનું નીતિતત્ત્વશાસ્ત્ર પણ, માત્ર જેમ હિંદુધર્મના થીજા ઘળા સંપ્રદાયોમાં જોવામાં આવે છે તેમ, સાધુજીવનના નિયમોનુજ વર્ણન કરી વિરામ પામે છે. ટુકામા મહાવીર હિંદુધર્મના ધાર્મિક પુરુષોમા સાધારણ પ્રકારના લાગે છે. ધાર્મિક વિષયોના સંગ્રહમા તેમની બુદ્ધિશક્તિ હતી સ્તરી; પરંતુ બુદ્ધમાં જેવી પ્રતિભાશક્તિ નિ સશયરિતે માની શકાય છે, તેથી તો, નેમનામાં ન હતી. બુદ્ધ પોતાના તાત્ત્વિક વિચારો ઠેઠ શૂન્યવાદના કિનારા—અંતિમ મર્યાદા—સુધી લઈ જાય છે. અને તેમ કરવા છતાં પણ, તેઓ પોતાના તર્કને તદ્દન સ્પષ્ટ રાખવા પૂર્ણ કાઢતી રાખે છે. તેઓ પાડિત્યદર્શક મેદોપમેદો દેલાહવાનું

ચાતુર્ય વતાવવા કોશાગ્ર કરતા નથી; અને તેથી તેમનું તત્ત્વજ્ઞાન થોડા તત્ત્વમૂળ વિચારો ઉપર રચા-
 ણી એક સંસ્થિતિ(System) રૂપ બને છે. મહાવીરનું તત્ત્વજ્ઞાનતમ બનતું નથી. તે માત્ર ભિન્ન ભિન્ન વિષયો ઉપર પત્તિના રૂપમાં જ રહે છે તેની અંદર આધ્યાત્મિક વિષયના વિચારસમુચ્ચયને ધારણ કરવા યોગ્ય થોડા મૂલ્યમૂલ તત્ત્વો નથી. તત્ત્વજ્ઞાન વિષયક વિચારોમાં તર્કની પૂર્વાપર સંગતિ જાણવા ઉપરાંત બુદ્ધ ઉદાર અને મહાનું સૂત્રોમાં, તથા નીતિની કલ્પિતવાર્તાઓમાં, મનુષ્ય જાતિના ત્રિવિધ તાપના નિવારણ અર્થે જે દયાની તાત્ત્વ લાગણી પ્રકટ કરી છે, તે ઉપરથી તેમની પ્રતિભાનું શ્રેષ્ઠત્વ સ્પષ્ટ જણાઈ અંધ છે. જૈન ગ્રંથો કરતાં બૌદ્ધગ્રંથોની મહત્તા તેમના નૈતિક તત્ત્વને લઈને જ છે. મેં ઉપર કહ્યું છે તેમ, મહાવીરે નીતિ-શાસ્ત્રને અધ્યાત્મવિદ્યા કરતાં સ્વલ્પ દરજ્જાનું તથા તેના એક આનુષંગી સિદ્ધાંત તરીકે માન્યું છે. કારણ કે તેમનું સ્વાસ્થ્ય લક્ષ્ય પરમાર્થવિદ્યા ઉપર હતું. મહાવીર અને બુદ્ધના ઉપદેશની આ રૂપરેખા આપણને, તેઓ બન્ને ભિન્ન વ્યક્તિઓ હતા એમ માનવા દેશે છે. તે બંનેના મતભેદો પણ ઘણા વિચારણીય છે. તેમના તાત્ત્વિક વિચારોના યારિભાષિક યા સાંકેતિક શબ્દો પણ પરસ્પર મલ્લતા આવતા નથી. આવી રીતે મહાવીર અને બુદ્ધને એક માનવામાં વિરુદ્ધતા વધતી જતી હોવાથી, તે બંને પ્રતિષ્ઠિત-પુરુષો ભિન્ન પણ સમકાલીન વ્યક્તિઓ હતા, એમ વતાવતી જૈનો અને બૌદ્ધોની પરસ્પરાગત કથાઓને સાચી માનવા તરફ આપણે ધ્યાન આપવું જોઈએ. વસ્તુસ્થિતિ આવી હોવાના લીધે, બંને મતોની વચ્ચેનું સામાન્ય સાદૃશ્ય સ્વાભાવિક જ છે, એમ સહજ જણાઈ આવશે. બંને સંપ્રદાયોના સંસ્થાપકો સમકાલીન અને સમાન-દેશનિવાસી હોવાથી, પ્રાકૃતિક નિયમ પ્રમાણે, તે બંને એકજ પ્રકારના દેશકાલાનુરૂપ સર્વસામાન્ય તત્ત્વજ્ઞાન અને નીતિ વિષયક વિચારસમૂહનો આશ્રય છે તેમાં નવાઈ નથી. તેમના જમાનાનું ધ્યાન

સ્પષ્ટરિતે વ્રાજ્ઞાનધર્મ સામે થવાનું હતું. જો આપણે બુદ્ધના સમયના છે તૈથિક મતાચાર્યાના સિદ્ધાન્તોનું વર્ણન વાંચીશું—જે વર્ણન બૌદ્ધોના સામઘ્યપલ્લમુ-ત્તમાં આપેલું છે,—તો આપણને જણાશે કે તે સર્વ અલ્પ યા વધુ અંશે, તે વ્યવસ્થા સુધારકો હતા. તે વધારાથી બુદ્ધની જે વિશેષતા હતી તે તેમની પ્રતિ-ભાને લઈને જ હતી. બુદ્ધની માફક મહાવીર પણ એક વીજા સુધારક હતા અને તેઓ પોતાની સ્વતંત્ર મત સ્થાપવાને સફળ થયા હતા, એમ જો આપણે માનીએ તો તેમાં યુક્તિહિતતા કે અસંભવિતતા જેવું જણાતું નથી. આ વિચારને હું ઐતિહાસિક સત્ય તરીકે સ્થાપિત કરવા દલીલો રજુ કરું તેની પહેલાં મારે બૌદ્ધધર્મની પૂર્વકાલિકતાના હિમાયતીઓએ રજુ કરેલી કે વિરુદ્ધ યુક્તિઓનું નિરાકરણ કરવું જોઈએ. પ્રથમ, જો હું મૂલતો ન હોઉં તો હેમિલ્ટન બુકેનન (Hamilton Buchanan) ના કથનના આધારે એમ મનાય છે કે જૈનો જ્ઞાતિ વ્યવસ્થા સ્વીકારે છે; અને આ માન્યતાના પાયા ઉપર જૈનધર્મની ઉત્પત્તિના સંબંધમાં નીચેની કલ્પના ડાલી કરવામાં આવી છે, કે ય્યારે વ્રાજ્ઞાનોએ બૌદ્ધોને વ્રાસ આપવા માંડ્યો ત્યારે તેઓએ પોતાના ધર્મીય પ્રતિપર્થીઓની સાથે સમાધાન કરવા અર્થે જ્ઞાતિ વ્યવસ્થાનો સ્વીકાર કર્યો. કારણ કે જો તેમણે એટલું નમવું મૂક્યું ન હોત, તો વ્રાજ્ઞાનોએ તે પાસંડમતને સર્વથા દાવી દીધો હોત. આ વિચારમાંથી જ્યાં કલ્પના જન્મી, કે આ રીતે ક્ષીણ થતો બૌદ્ધધર્મજ જૈનધર્મના રૂપમાં પરિવર્તિત થયો. આ કલ્પનાનો આ રથ છે હું ઉદાપોહ કરવા માંગતો નથી. માત્ર એટલું જ જણાવીશ કે તે કલ્પનાનો હું અસ્વીકાર કરું છું.

જૈનધર્મમાં યતિ અને શ્રાવક નામના બે જ વિભાગ છે અને જો કદાચિત્તું હિંદુસ્થાનના કોઈ કોઈ ભાગમાં જૈનો લોકવ્યવહારમાં જ્ઞાતિભેદો સ્વીકારતા હોય તો, તે પ્રમાણે તો, દક્ષિણ હિંદુસ્થાનના સ્ત્રીગતિ અને મુસલમાનો તથા સિલોનના બૌદ્ધો પણ સ્વીકારે

છે. આ વાસ્તવે ધર્મની સાથે કોઈ સંબંધ નથી. આ જ્ઞાનિભેદો તો માત્ર સામાજિક ભેદો છે અને તે ભારતવાસીઓનાં મગજમાં ઘટલા તો ઝંડા જડ ધાલીને વેટે । છે કે તેમને ધાર્મિક સુધારકના શબ્દો ઘીલ-બુલ સ્વેદી શકે તેમ નથી. બૌદ્ધધર્મના લેખોમાં અનેક ટેકાળે દ્રાહ્મણોનો ઉલ્લેખ થયેલો છે, પણ તે-ટલા ઉપરથી કોઈ બૌદ્ધધર્મ ઉપર જ્ઞાતિરૂપી ધાર્મિક યોજનાને સ્વીકારવાનો આરોપ ન મૂકી શકે, ઘીલી દલીલ એવી કરવામાં આવે છે, કે જૈનોની પ્રાકૃત ભાષા વરતાં બૌદ્ધોની પાલિભાષા વધારે પુરાતન છે; અને તેટલા માટે તે બૌદ્ધધર્મની પૂર્વાલિકતા સ્થાપન કરવાને એક પ્રમાણ છે. જો કે આ દલીલ તદ્દન સાચી છે, તો પણ તે કોઈ વાસ્તવ સિદ્ધ કરી શકતી નથી. કારણ કે, હું આગલ ઉપર બનાવીશ તે પ્રમાણે જૈનમૂત્રો જે રૂપમાં હાલમાં વિદ્યમાન છે તે રૂપ મહાવીર નિર્વાણ પછી એક હજાર જેટલાં વર્ષો વાદ નહીં કરવામાં આવ્યું હતું. આ ઉપરથી ઘટલું તો તર્ક-સિદ્ધજ છે કે તે પહેલાંનાં એક હજાર વર્ષોમાં એ સૂત્રોની ભાષામાં ઘણા ફેરફારો થયા હોવા જોઈએ. કારણ કે જે આચાર્યો મુલથી અથવા ભેમથી પોતાની શિષ્યપરંપરાને એ સૂત્રો સોંપતા ગયા હોય, તેમનું સ્વાભાવિક વલણ, તે મૂત્રોની ભાષાના જે જૂનાં રૂપો પ્રચલિત ભાષામાંથી અદૃશ્ય થયા હોય તેમના વચ્ચે વર્તમાન વાર્પદ્ધતિપ્રમાણેના રૂપોનો વ્યવહાર કરવાનું થાય, એ નિઃસંશય છે. દાસલા તરીકે, મધ્યયુગના જર્મન લેખકોના ગ્રંથોના ઉતારાઓ પણ, ઉતારા કરનારાઓની દેશ તથા કાલની ભાષામાંજ થયા હતા, એ સ્પષ્ટ જોવાય છે. આવી વસ્તુસ્થિતિ હોવા છતાં પણ એક ઉદાહરણમાં મૂલભાષાની નિજાની રહી ગઈ છે તે સ્પષ્ટ વતાની આપે છે કે મૂલ ભાષા, સૂત્રોની હાલની ભાષાથી, અન્ય ઘણા આકારોની માફક એક વિશેષ આકારમાં જુદી પડે છે. દાસલા તરીકે, સૂત્રોમાં વપરાયેલાં 'અગ્ની', 'આ-ચારિય', 'સુદ્ધમ', વિગેરે શબ્દો ભૂલ્યા. જે છંદોમાં

આ શબ્દો વપરાયા છે તેઓના માપ ઉપરથી જણાય છે કે મૂલમાં—સૂત્રની રચના કરનારાઓના સમયમાં—એ શબ્દોનું ઉચ્ચારણ 'અમી', 'આચાર્ય', 'સુદ્ધ' વિગેરેના રૂપમાં થતું હોવું જોઈએ. જો તે વસ્તે આ પ્રમાણે ઉચ્ચારણ ન થતું હોત—અને સૂત્રકારોની ભાષા પણ સર્વથા હાલના લિખિત સૂત્રોના જેવીજ હોત—તો તેઓ પણ—સઘઠી પ્રાકૃત ભાષાઓને સરસી રીતે લાગુ પડતા સ્વરશાસ્ત્રના નિયમો તેમની ભાષાને પણ લાગુ પડેલા હોવાથી—એ શબ્દોનો ઉચ્ચાર તેમ ન કરી શક્યા હોત. આ વિષયના વિસ્તૃત વિવેચન માટે હું વાચકને "Zeitschrift für vergleichende Sprachforschung" v. XXIII; p. 591, 599 જોવાની મલામણ કરું છું. આ થોડીક હકિકતો ઉપરથી સમજી શકાય છે, કે અપાનું અક્ષર રૂપ જૈન સાહિત્યની પ્રાચીનતાની વિરુદ્ધમાં દલીલ તરીકે રજુ કરી શકાય તેમ નથી, અને અપારે આમ છે તો પછી તેથી દલીલને જૈનધર્મને બૌદ્ધધર્મથી અર્વાચીન સ્થાપિત કરવામાં પ્રમાણ તરીકે તો લેવાયજ કેમ? અંતમાં, આપણે વઠી જાળીએ છીએ કે જૈન સાહિત્યનો બૌદ્ધધર્મના નામે ઓઢાલા—તો એક ભાગ તો નષ્ટ થઈ ગયો છે; અને તે ફરી ભાષામાં રચાયેલો હતો તે આપણે ઘીલકુલ જાણતા નથી.*

આપણે ઉપર જોયું તે પ્રમાણે જૈનોના પવિત્ર સૂત્રો વિશ્વિસાર અને અજાતશત્રુના સમયને મહાવીરના જીવનસમય તરીકે બતાવે છે. હવે જૈનધર્મ તે પુરાતન કાલમાં હતો કે નહીં તેની ઇતિહાસિક દૃષ્ટિએ શોધ કરવાની જરૂર છે. સૂત્રોમાં જૈનયતિઓ માટે બહુ પ્રચલિત શબ્દ 'નિગંથ' અને સાધ્વીઓ માટે 'નિગંથી' મઠી આવે છે. વરાહમિહિર અને હેમ-

ચન્દ્રેટલાક અત્ય પ્રાચીન જૈન ગ્રંથમાં ઉલ્લેખ કરેલો જોવામાં આવે છે કે ચીટપૂર્વોની રચના યંદ્રુત ભાષામાં થયેલી હતાં. ડૉ. ઝેકોયીની યાગના—તે વસ્તે એ વચ્ચેનો નહીં આપ્યા હોય.—જ. સા. સ. સંપાદક.

ચંદ્ર તેમને ' નિર્ગ્રંથ ' કહે છે. શંકર, આનંદગિરિ
હ્યાદિ લેખકો તેને વહેલે ' વિવક્ષન ' ' મુક્તોત્તર '
પદ્મા પર્યાયાર્થિત શબ્દો વાપરે છે. ણટલું ન પળ
ધ્યાનમાં રાખવું જોઈએ કે પ્રાચીન શબ્દ ' આર્હત '
અને ત્યાર પછીનાં અર્વાચીન શબ્દ ' જૈન ' ન વચ્ચે
સરસી રીતે જૈનમાનુસ્ય શ્રાવક ઉપયોગે લાગુ પડે-
છે. બૌદ્ધ શ્રમણોથી ભિન્ન પદ્મા ધાર્મિક પુરુષો માટે
વપરાતો ' નિર્ગ્રંથ ' શબ્દ ' નિગળ્થ ' રૂપમાં અશોકની
આજ્ઞાઓમાં નજર પડે છે, અને ડૉ. બુહલરે
(Dr. Bühler) ' અશોકની નવી ત્રણ આજ્ઞાઓ '
(Three new edicts of Asoka p 6) વાઙ્મા
લેખના છઠ્ઠા પૃથ્થમાં તે શબ્દને જૈનગ્રન્થ ' નિર્ગ્રંથ '
તરીકે અત્યાર આગમચક્ષ સાચીત કરી લીધો છે.
બૌદ્ધોના પિટકોમાં નિગળ્થોને બુદ્ધ અને તેના અનુ-
યાયીઓના પ્રતિપક્ષી તરીકે જણાવાનો ઉલ્લેખ
મળેલો અધિ છે. (See Childers, Pali Dictionary,
S. V. Niganttha.)

આ વઘણી વાચતો ઉપરથી ણટલું સર્વાંત કરી શ-
કાય છે કે જૈનો અને બૌદ્ધો પરાપર પ્રતિસ્પર્ધીઓ હતા.
આ પ્રાચીન પ્રતિયોગિતાના અસ્તિત્વનું અનુમાન તે-
મની પ્રાચીન ઇતિહાસિક કથાઓ ઉપરથી પણ
થઈ શકે એમ છે. બૌદ્ધો જુલા શત્રુઓમાં કહે છે કે
અજાતશત્રુપ તેના પિતાનું સ્વન કર્યું હતું. તેમજ
તેના મટે ઘીનું એમ પણ તેઓ જણાવે છે કે, તેણે
પોતાના જુના ધર્મનો ત્યાગ કરી સદ્ધર્મ-બૌદ્ધધર્મનો
આશ્રય લીધો તેની પહેલાં તે ઘાતકી અને દુષ્ટ
મનનો હતો. આનાથી વિરુદ્ધ જૈનો, કુળિક કે
જૈને આપણે પહેલાં અજાતશત્રુથી અભિજ્ઞરૂપે નહીં
કરી ગયા છીએ, તેને બુદ્ધિપૂર્વક પિતૃહત્યાના દોષથી
દૂર રાખવાનો પ્રયત્ન કરે છે. નિરયાવલિસૂત્રમાં આ
સંબંધી એક લાંબી કથા લખાણલી છે, તેમાં
કહેવામાં આવ્યું છે, કે, કુળિકે પોતાના પિ-
તાને પોતા તરફ અન્યાયપણે વર્તતા માની
લઈ તેને કારાગૃહમાં નાંખ્યો હતો. પરંતુ

જ્યારે તેની માતાએ તેને સમજાવ્યો કે ' તારો પિતા
તારા તરફ હંમેશાં માયાનુભવ રાખતો આવ્યો છે
અને તેના હાથે એક પણ ણટું કાર્ય નથી થયું કે
જેના લીધે તેને આવી જાનની શિક્ષ ' તારા તરફથી
મોગવચી પડે. ' માતાના આ કથનથી કુળિકને
પોતાના પિતાના સંજ્ઞાન્યની સ્વાત્તી થઈ અને તેથી તે
પદ્ધતાપ કરતો, જાત કોઢાઢી લઈ પિતાની ઘેડી
તોડવા નિકળ્યો. શ્રેણિકે કુળિકને હાથમાં કોઢા-
ઢી લઈને આવતો જોઈ ધાર્યું કે આજે કુળિકને
હાથે પોતાનું મૃત્યુ થશે; તેથી તેણે પોતાના સંતાનને
આવા પાપના દોષથી દૂર રાખવા સારું જાતેજ
આત્મચાત કર્યો. પોતાના પિતાને આ રીતે મૃત્યુપામેલો
જોઈને કુળિકને સ્વાભાવિક રીતેજ ઘણું દુઃખ થયું.
વિગેરે. વિગેરે. આવી રીતે મોઢા ભાવથી—નિષ્કપટ-
પણે વહેલી કથા એમ સૂચવે છે કે બૌદ્ધોના ફરલ્લ
જૈનોને પોતાના આશ્રયદાતાના પાપના સંવેષમાં
ઓછા નિષ્પક્ષપાતવણે ચોલવાનું એક કાળ હતું;
અને તે ને કે કુળિકે બૌદ્ધોની ઉપર પોતાની પ્રત્યક્તા
વતાવતાં પહેલાં ઘણા સમય સુધી તેણે જૈનો ઉપર
પોતાની મંદરવાની રાહી હતી.

તેવીજ રીતે, એક સંપ્રદાયના સંસ્થાપક તરીકે
અથવા પ્રાચીન કાઢથી ચાલતા આવતા એક
ધર્મના સુધારક તરીકે ગણાવા લાયક—અને હું એ રીતે
મતનોજ સ્વીકાર કરું છું—મહાવીર નામની બુદ્ધથી
તદુદન ભિન્ન પદ્ધતી એક વ્યક્તિનો સમય, પ્રાચીન
કાઢમાં સ્થાપન કરી શકાય નેમ છે. પ્રથમતો,
જનરલ કનિંગ્હમ (General Cunningham),
મથુરાના કંકાલી ટિલામાંથી શોધી કાઢેલા એક
શિલાલેખની શરૂઆતમાં ' અર્હત મહાવીર દેવનાત '
ને નમસ્કાર કરેલો છે (Archaeol. Survey of
India, Vol. I, P. 35, Ed. Thomas, Jainism
in the early period of Asoka p 82.)
અને આ શિલાલેખ એક ' ઉમી નમ્ર મૂર્તિ ' ની
નીચે કોતરેલો છે. આ ઉપરથી, એ સ્પષ્ટ પ્રતીત થાય છે

ते उक्त महावीर शब्द ते वर्धमान नामने माटे वप-
यायो छे, पण बुद्धने माटे नहीं. ए शिलालेख उपर
वत्सर ९८ लखेलो छे. मथुरामां मळेल्लो शिला-
लेखानी तारीखो कया संवत्तने उद्देशीने लखायली
छे ते हजी नकी थयुं नथी; छतां पण कनिष्क अने
हुविष्कना नामनिर्देशथी एखलुं तो सिद्ध थाय छे
के ते शिलालेखो ई० स० नी शरूआतना छे.
बीजो पुरायो ए छे के बौद्धग्रंथोमां पण जैनधर्मना
संस्थापकना संबंधमां केटलाक उल्लेखो मळी आवे छे;
ते उल्लेखो तेना—जैनधर्मना प्रवर्तकना—कोई सामा-
न्य नामना रूपमां नहीं पण 'निगण्ठनाथ' अथवा
'निगण्ठनातपुत्त'ना विशेषनामना रूपमां छे, आपणे
पहेलां जोई गया छीए के ' निगण्ठ ' ए जैनयति-
वाचक शब्द छे; अने 'नातपुत्त' ने हुं कल्पसूत्र अने
उत्तराध्ययनमा आवेला महावीरना 'नायपुत्त' विरुद्ध
तरीके मानुं छुं. नेपालना बौद्धग्रंथो निगण्ठनाथने
ज्ञातिने पुत्र कहे छे (Burnouf. Lotus de
la bonne loi p. 450), अने जैनो पण तेने
' ज्ञातपुत्र ' कहे छे. (See Petersburg
Dictionary S. V. Jnataputra) वळी हेमचं-
दना परिशिष्ट पर्व १-३ वाळो नीचेनो श्लोक सर-
खावया जेवो छे:-

कल्याणपादपारामं श्रुतगङ्गाहिमाचलम् ।

विश्वाम्भोजरवि देवं वन्दे श्रीज्ञातनन्दनम् ॥

महावीरने आ नाम आपवानुं कारण ए छे के
तेना पिता ज्ञातक्षत्रिय-ज्ञात जातिना क्षत्रिय-हता.
निगण्ठनातपुत्तने सामञ्जस्यफलसुत्तमां अभिवैश्यायन
गोत्रना लख्या छे. आ बौद्धलोकोनी भूल छे.
कारण के, महावीर तो गौतम गोत्रना हता. बौद्ध-
लेखकोए धर्मसंस्थापक अने तेमना मुख्य शिष्य सुध-
र्माने उलटपालट लखी दीधा छे. अर्थात् शिष्यनुं
गोत्र सुत्तने लगायुं छे. जैन सूत्रोमां सुधर्माने महा-
वीरना सिद्धान्तोना प्रवर्तक तरीके लख्या छे, के
जेमणे अवस्थामानि प्रथम सूत्रोपदेश आप्यो हतो.

आ सुधर्मा 'अभिवैश्यायन' गोत्रना हता. दुर्भाग्ये,
निगण्ठनातपुत्तना सिद्धांतदर्शक सामञ्जस्यफलसुत्तना
ते भागनो अर्थ स्पष्ट समजातो नथी. छतां पण तेना
आनुपानिक भाषन्तर उपरथी, हुं कही शकुं छुं के
'निगण्ठनातपुत्त' ने महावीर तरीकेज गणवामां
कोई पण प्रकारनो वाध आवे तेम नथी. डॉ० बुल्हरे
पण एक कथाना आधारे महावीरने निगण्ठनातपुत्त
रूपे जे स्वीकार्या छे ते हकिमत पण आ कथनेने
पुष्टि आप छे. बौद्धधर्मना आस्वायत्तार(Hardy. Man-
ual of Buddhism p. 271), वैद्यन्तर अने अन्य-
ग्रंथोमां एवो उल्लेख छे के निगण्ठनातपुत्त पोताना
उपालिनामना एक शिष्य, के जेणे बौद्धधर्मनो अंगी-
कार कयों हतो तेनी साथे कलह कयों पछी पावामां
काल कर्यों हतो. कल्पसूत्रप्रमाणे पण महावीरनुं देहा-
वसान पावामाज थपलुं होवाथी, तेमज जैन यतिओ
निगण्ठो कहेवाता होवाथी, ए स्पष्टरीति सिद्ध थाय
छे के 'निगण्ठनाथ' ए शब्द महावीर माटेज वपरायो
छे. आ प्रमाणे बुद्ध अने महावीर ए बने भिन्न
परंतु समकालीन व्यक्तियो हती. आ उपरथी ए
पण स्पष्ट छे के आ बने धर्मोपदेशकोना निर्वाण
समयमां थोडाकज वर्षांनुं अंतर होव जोईए. हवे
जनरल कनिङ्गहामे करेली अशोकनी त्रण नवी
आज्ञाओनी ओष उपरथी, अने डॉ. बुल्हरे पैति-
हासिक अने भाषाशास्त्रीनी दृष्टिए करेला तेमना
अर्थालोचन उपरथी, बुद्धनो निर्वाण-समय ई. स.
पूर्व ४७७ ना अरसामा निर्णीत थयो छे. तेथी
महावीर निर्वाणनो समय पण ई. स. पूर्व ४९०
अने ४६० नी वचे आवयो जोईए.

श्वेताम्बरोनी परंपरानुसार महावीर-निर्वाणनो
समय विक्रम संवत् पहेलां ४७० वर्षे आवे छे, अने
दिगम्बरोना मते विक्रमसंवत् पूर्व ६०५ वर्षे आवे
छे. आ बने संप्रदायोनी नोंयाणली निर्वाणनी तारी-
खोमां जे १२५ वर्षनो तफावत जोवामां आवे छे ते
संवत् अनं शक वच्चेना कालनी बराबर छे, अने

આ ઉપરથી એવી સંભાવના ઊભી થાય છે કે દિગમ્બરોનો વિક્રમ સંવત્ તે શાલિવાહનનો કલક છે. રાણ કે શાલિવાહનનો હમેશાં જુના વિક્રમ સાથે સંબંધિત થઈ જાય છે. શ્વેતામ્બરો વિક્રમ સંવત્ ૬૬૮ સ. પૂર્વે ૫૭ વર્ષે શરૂ થયો, એમ માને છે. મહાવીર નિર્વાણ અને વિક્રમ સંવત્ વચ્ચેના ૪૭૦ વર્ષના અંતર સંબંધી હકિકત શ્વેતામ્બરોના ઘણા ગ્રંથોમાં મળી આવે છે. એનું પ્રાચીનતમ પ્રમાણ—મેરુતુક્કની ‘વિચારશ્રેણિ’ ના પાયામૂત, નીચે આપેલી સ્મારક ગાથાઓ છે. એ ગાથાઓમાં મહાવીર નિર્વાણ અને વિક્રમાદિત્ય રાજાની વચ્ચેના અંતરમા જે જે રાજવંશોએ જેટલાં જેટલાં વર્ષો સુધી રાજ્ય કર્યું તેમની નોંધ આપેલી છે. તે ગાથાઓ હં અહીં ટાકુ છું,— અને તેમની સાથે તેમના પ્રથમ પ્રકાશક ડૉ. ગુલ્હેરે કરેલી ટિપ્પણી (Indian Antiquary II. 362.) ડમેરૂં છું.

જં રયણિ કાલગઓ અરિહા તિત્વંકરો મહાવીર ।
તં રયણિ જવંતિવદ્ અહિસિત્તો પાલગો રાયા । ૧।
સઠી પાલગરણ્ણો પળવળ્ણસયં તુ હોદ્દ નંદાણ ।
અઠસયં મુરિયાણં તીસં ચિઅ પૂતમિત્તસ ૨।
પલમિત્ત મ્હાનુમિત્તા સઢી ઘરિસાણિ વત્ત નહ્વહ્ણે ।
તહ ગદ્ધમિહ્ણરજ્જં તેરસવરિસા સમસ્સ વ્હ ૩।
‘૧ જે રાત્રે અહંત તીર્થંકર મહાવીર નિર્વાણ પામ્યા,
તેજ રાત્રે અવન્તીપતિ પાલકનો રાજ્યાભિષેક થયો.

‘૨ પાલક રાજાનું રાજ્ય ૬૦ વર્ષ સુધી રહ્યું. પછી ૧૫૫ વર્ષસુધી નન્દોણ રાજ્ય કર્યું. તેના વાવ ૧૦૮ વર્ષ સૌંધ રાજ્ય ચાલ્યું. પછી ત્રીસ વર્ષ પુન્યમિત્રનું રાજ્ય રહ્યું.

‘૩ વાદમાં ૬૦ વર્ષ વલમિત્ર અને માનુમિત્રે રાજ્ય કર્યું. અને તેમની પછી ૪૦ વર્ષ નમોવાહન રાજાએ રાજ્ય કર્યું. તેની પછી તેર વર્ષ ગર્દભિલનું રાજ્ય રહ્યું, અને પછી ચાર વર્ષ શકરાજનું રાજ્ય ચાલ્યું.’

આ ગાથાઓનો હેતુ સ્પષ્ટ ધર્મીક ટીકાઓમાં તથા કાલગણના-વિષયક ઘણા ગ્રંથોમાં થયેલો છે.

પણ તેમનું મૂળ ચોક્કસ જણાતું નથી. આ ગાથાઓ વીર અને વિક્રમ સંવત્ વચ્ચેના નિકાલ, અને પ્રાચીન કાલગણનાના આધાર રૂપ બને છે. ઉપરોક્ત ગાથાઓના અનુસારે મૌર્યવંશના રાજ્યના પ્રારંભથી તે વિક્રમ સંવત્ના પ્રારંભ સુધી વ્યતીત થયેલી વર્ષ-સંખ્યા ૨૫૫ થાય છે. અર્થાત્ ૪+૧૨+૪૦+૬૦+૩૦+૧૦૮. આમાં વિક્રમ સંવત્ અને ગ્રિગ્લિ સનની શરૂઆતની વચ્ચેના ૫૭ વર્ષે ડમેર-વાથી ચન્દ્રગુપ્તના અભિષેકનો કાલ્લ છે. સ. પૂર્વે ૩૧૨ વર્ષે આવે છે. આ રીતે ગ્રીક પ્રમાણો દ્વારા મળી આવતી તારીખ સાથે, આ તારીખની ફાટ થઈ જાય છે; અને તેથી એ પણ સિદ્ધ થઈ જાય છે કે ત્રીજી ગાથામાં જણાવેલો વિક્રમ (?) તે છે. સ. પૂર્વે ૫૭ વર્ષમાં શરૂ થયેલા સંવત્ યુગના સંસ્થાપકને વાચક છે, નહીં કે ઈ.સ. ૭૮ માં શરૂ થતા શક યુગના પ્રવર્તકનો નામવર્ધક. જો આમ ન માનીએ તો ચન્દ્રગુપ્તના અભિષેકનો કાલ્લ ઈ.સ. પૂર્વે ૧૭૭ વર્ષે આવે.

૬૦ વર્ષનું પાલકનું રાજ્ય અને ૧૫૫ વર્ષનું નવ-નન્દોનું શાસનવચ્ચે—મઝ્ઝાને ફુલ ૨૧૫ વર્ષ પ્રમાણ ચન્દ્રગુપ્ત અને નિર્વાણ વચ્ચેનો કાલ્લ છે. હવે ઈ.સ. ૦ પૂર્વેના ૩૧૨ વર્ષોમાં, આ ૨૧૫ ડમેર-વાથી, આપણે ઈ.સ. ૦ પૂર્વે ૫૨૭ મા વર્ષને મહાવીર નિર્વાણના નામાંકિત કાલ્લ તરીકે પ્રાપ્ત કરી

૧ હું નીચેની વાવ ઉપર ધ્યાન સેવું છું કે ચન્દ્રગુપ્તના અભિષેકનો આ કાલ્લ તે સેલ્સુસીડનના સનની આરંભ થયેલો વેચતો આવે છે. મિ. એડવર્ડ ટોમસ માને છે કે (Records of the Gupta Dynasty in India p. 17, 18.) સેલ્સુસીડનસરે લાંબા વચ્ચત સુધી ઉત્તર હિંદુસ્થાનમાં પોતાનું સ્થાન ટકાવી રાખ્યું હતું; અને પછીની રાજવંશવાદીની કાલગણનામાંક નોંધો ઉપર પછી અચર કરી હતી. મિ. ટોમસના સિદ્ધાંતની સત્યતા જો પ્રત્યક્ષ પ્રમાણથી સાબીત થાય તો ચન્દ્રગુપ્તના અભિષેકનો જૈન તારીખ, જે સમગ્ર સાચી છે, તેમાં સહજ શંકાકારો ઊભી કરતી આ હકિકતનો સહેલાઈથી જુલસો આપી શકાય.

ચક્રી એ. આ કાઠ, અને સીલોનની કાઠ ગણના અનુસારે વુઢનું નિર્વાળ, જે ૬૦ સં. પૂર્વે ૫૪૩ મા વર્ષમાં થયું હતું, તેની વચ્ચે માત્ર ૧૬ વર્ષનો જ તફાવત રહે છે.

મહાવીર-નિર્વાળ અને ચન્દ્રગુપ્તના અભિષેક વચ્ચેના કાઠના સંબંધમાં વીજી પણ એક ગણના છે, જે હેમચન્દ્રના પરિશિષ્ટ પર્વમાં મળી આવે છે. એ પ્રમથના, ૮ મા સર્ગના, ૩૪૧ માં શ્લોકમાં લખેલું છે કે—

एवं च श्रीमहावीरि मुक्ते वर्षशते गते ।

पञ्चपञ्चाब्दधिके चन्द्रगुप्तोऽभवन्नुपः ॥

‘ અને આ પ્રમાણે મહાવીર નિર્વાળ પછી ૧૫૫ વર્ષે ચન્દ્રગુપ્ત રાજા થયો. ’

૬૦ સં. પૂર્વેના ૩૧૨ વર્ષોમાં ૧૫૫ ઉમેર-યાથી, આપણે જોઈશું કે મહાવીર નિર્વાળ ૬૦ સં. પૂર્વે ૪૬૭ માં આવે છે.

હેમચન્દ્ર ચન્દ્રગુપ્ત અને નિર્વાળની વચ્ચે જેટલાં વર્ષોનું અંતર વસાવે છે તેટલાં વર્ષો તો ગાથાઓ માત્ર નન્દોના રાજ્યના જણાવે છે, આ ઉપરથી એમ જણાય છે કે હેમચન્દ્ર પાલકના રાજ્યનાં ૬૦ વર્ષો ગણનામાં લીધાં નથી. હેમચન્દ્ર આવી રીતે ૬૦ વર્ષો છોડી દેવા જેવી મૂલ કંઈ એમાનવું કટણ લાગે છે. તેથી હું એમ અનુમાન કરું છું કે કાઠગણનાત્મક ગાથાઓમાં જે પરંપરાગત હકિકત લખવામાં આવી છે તેથી ભિન્નજ કોઈ સંપ્રદાયને હેમચન્દ્ર અનુમર્થી હોવા જોઈએ. કારણ કે મારા વિચાર પ્રમાણે ગા-થોક્ત હકિકત પૂર્ણરિતે સાચી નથી. નન્દોનો રાજ્ય-કાઠ, જે ગાથાઓમાં ૧૫૫ વર્ષ જેટલો આપનામાં આવ્યો છે તે અસાધારણરિતે અધિક છે, છટલુંજ નહીં, પરંતુ મગધના રાજવંશોની ગણનામાં અવન્તીપતિ પાલકનું નામ આવતું તે મને તો ઘણુંજ સંશયજનક લાગે છે. બૌદ્ધો અથવા બ્રાહ્મણો આ નામના રાજાનો વિસ્તૃત નિર્દેશ કરતા નથી. મગધની રાજાવલીમાં પાલક નામના એક રાજાનો ઉલ્લેખ મળે છે સરો,

પણ તે પ્રયોત-વંશનો છે, કે જે (પ્રયોતવંશ) ઐશુનાગ વંશની પહેલાં થઈ ગયો હતો. મહાવીરના સમકાલીન જે મગધના રાજાઓ હતા તે શૈશુનાગ-વંશના હતા. ઉચ્ચત્રિની અથવા અવન્તીના રાજા તરીકે એક વીજા પાલકનું નામ મૃત્તિકાટિકમાં જોવામાં આવે છે, અને તેના માટે ત્યાં એવું વર્ણન છે કે આર્થકે તેને રાજ્યપ્રદ કર્યો હતો. આ પાલક તે કદાચિત્ કથાસરિત્સાગરમાં વસતે દેશના કલ્પિત રાજા ઉદયનના સાઝા તરીકે જે પાલકનું નામ આપેલું છે, તે સંભવી શકે. પરંતુ, આ ઉદયન જેમ કુ-ળિકના પુત્ર ઉદાધીના વડેલાં પ્રાંતિથી પ્રસિદ્ધિમાં આવ્યો સંભવે છે, તેમ, એ પાલક પણ, તેજ નામના પ્રયોત વંશના રાજા માટે મૂલથી પ્રસિદ્ધ થયો લાગે છે. અને તેમ થવાથી તેને મહાવીરનો સમકાલીન સમજી લેવામાં આવ્યો હોય એમ જણાય છે. આ ગમે તેમ થયું હોય, પણ સત્ય વાત તો એ છે કે જૈ-નોની અસલ કાઠગણનામાં પાલકને સ્થાન નજ મળ્યું જોઈએ. હું તો એમ ધારું છું કે સીલોનની બૌદ્ધ કાઠ-ગણના સાથે પોતાના ઇતિહાસને મળતો રાજાવાની ત્રાસર એનો એવું તેને પોતાની કાઠ ગણના-માં દાખલ કરી દીધો છે, અને તેથી તે માત્ર કલ્પ-ના-પ્રસૂત છે. પરંપરાગત મહાવીરનિર્વાળની તારીખ અને હેમચન્દ્રના ઉલ્લેખ ઉપરથી સૂચવાતી તારીખ વચ્ચે જે સાઠ વર્ષનો વિરોધ આવે છે, તે જોઈ, બૌદ્ધ કાઠ-ગણનામાં મેઝલી દીધેલી ૬૬ વર્ષની અસં-ગતિનું સ્મરણ થાય છે; અને તેથી આપણને માનવું પડે છે કે એ વસ્તે મૂલેની ઉત્પત્તિ યથાંત્ર નથી પણ એક—વીજાની અસરથી—અનુદરશનાંથી—થપ્પી હોવી જોઈએ. તામિલ દેશમાં જૈનો કેટલી મોટી સંસ્થાવાઝા અને યન્તિસંપન્ન હતા તે આપણે જાણીએ છીએ; અને તામિલ ભાષાના પ્રા-ચીન સાહિત્ય ઉપર જૈન ધર્મની કેટલી વધી છાપ પડી હતી, તે ગ્રૌલ (Gaul) અને કેલ્ડવેલ (Caldwell) ના જણાવ્યા પ્રમાણે જાણી શકાય

તેમ છે. સીલોતની સામેના દ્વિપકલ્પમાં રહેતા ત-
સ્કાલીન જૈનો ઉપર કદાચિત્ત વૌદ્ધેની અસર થઈ
હોય અને તે વચ્ચે તેમણે પોતાના પ્રતિસ્પર્ધી પંથની
અનુસાર પોતાની કાલ્પગણનામાં ફેરફાર કર્યો
હોય. પરંતુ આ માત્ર આનુમાનિક વિચાર છે, અને
તેથી વધારે લંબાણ કરી હું આનો કિંમત ઘટાડવા
ઇચ્છતો નથી.

હવે આપણે મહાવીર નિર્વાણ-સમયના વિવેચન
ઉપર પાછા ફરી જોઈશું કે હેમચંદ્રની નોંધ અનુસાર
ઈ. સ. પૂર્વે ૪૬૭ વર્ષે મહાવીર નિર્વાણ થયું હોય
તે અસંભવિત નથી. કારણ કે, તે (સમય) ઈ. સ.
પૂર્વે ૪૭૭ વર્ષવાઢા બુદ્ધના નિર્વાણ-સમયની સાથે
ઘળીજ સુંદર રીતે વંધ વેસ છે. અને આ સમકાલીન-
તા હોવી આવશ્યક છે, એમ અમે ઉપરની શોધમાં
જણાવી ગયા છીએ.

આ નિર્ણય કરેલા નિર્વાણ-સમયની મહત્તા પર-
પરાગત નિર્વાણસમય કરતાં કેટલી વધી વધારે છે તે
જૈન ઇતિહાસમાંથી મઢી આવતા વીજા પ્રમાણે ઉપર
થી નક્કી થાય છે. આવશ્યક સૂત્ર નામના એક પવિત્ર
જૈન આગમના ' ઉવગ્રાય નિજ્જુત્તી ' નામના પ્રક-
રણમાં છ નિન્દ્વોનું વર્ણન આવે છે, અને તેજ વર્ણન
સંવત્ ૧૧૭૯ (નવકરહર) માં રચાણ્લી દેવેન્દ્રગ-
ણિની ઉત્તરાધ્યયનસૂત્રની ટીકામાં^૧ વહુ વિસ્તાર-
પૂર્વક પુનઃ આપવામાં આવ્યું છે. આ વજ્ઞે મંથોમાં
જણાવ્યા પ્રમાણે અવ્યક્ત નામનો ત્રીજો નિન્દ્વ વીર-
નિર્વાણ પછી ૨૧૪ મે વર્ષે આપાદ નામના આચાર્યના
શિષ્યોએ ચલાવ્યો હતો. રાજગૃહના મૌર્ય રાજા
ચલમદ્ર—જેને આવશ્યકસૂત્રમાં ' મુરિયલમદ્ર '
અને ઉત્તરાધ્યયનમાં ' મૌરિયવંસપસૂઓ ' તરીકે
લલેલો છે—તેણે આ નિન્દ્વ મત પ્રવર્તકોને પાછા
સન્માર્ગે (જૈનમતમાં) વાઢ્યા હતા. ગાથાઓ પ્રમાણે

જો મૌર્યવંશની ઉત્પત્તિ વીર સંવત્ ૨૧૫ માં થઈ
હોય તો તે વંશની એક શાલા વી. સં. ૨૧૪ માં
રાજગૃહમાં રાજ્ય કરતી હોય તે કેમ સંભવી શકે ?
પણ જો આપણે હેમચંદ્રના કથન અનુસાર મૌર્યવંશ
નિર્વાણ પછી ૧૫૫ વર્ષે શરૂ થયો તેમ સ્વીકારીએ તો
તેમાં કોઈ અસંભવિતતા આવતી નથી. અને આમ
માનવાથી નિર્વાણની નિશ્ચિત કરેલી તારીખ પણ
સાચી ઠરે છે. નીચેની ચર્ચા ઉપરથી પણ આપણે
એજ નિર્ણય ઉપર આધાર છીએ. દરેક સ્થવિરાચ્છી-
માં વર્ણવ્યા પ્રમાણે સ્થૂલમદ્રના મહાગિરિ અને સુહ-
સ્તી નામના બે શિષ્યો હતા. હવે સ્થૂલમદ્ર તો
સઘઢા લેલકોના મતે વીરનિર્વાણ પછી ૨૧૫ વર્ષે
સ્વર્ગસ્થ થયા હતા. મેરુતુંગના લલ્યા પ્રમાણે મહા-
ગિરિ વી. નિ. પછી ૨૪૫ માં મૃત્યુ પામ્યા હતા
અને તેમના પછી સુહસ્તી યુગપ્રધાન બન્યા હતા.
તેમણે અશોકના પૌત્ર અને ઉત્તરાધિકારી સંપ્રતિને
જૈનધર્મનો ઉપાસક બનાવ્યો હતો. અશોક ચન્દ્ર-
ગુપ્તના અભિષેક પછી ૯૪ વર્ષે ગુજરી ગયો હતો.
(બુદ્ધ નિર્વાણ પછી ૧૬૨ વર્ષે ચંદ્રગુપ્તનો અભિષેક.
૧૬૨+૯૪=૨૫૬ અશોક-મૃત્યુ.) ગાથા પ્રમાણે
સંપ્રતિનું રાજ્ય મહાવીર નિર્વાણ પછી ૩૦૯ વર્ષે
(૨૧૫+૯૪) શરૂ થયું અને હેમચંદ્રનાં કથનાનુ-
સાર ૨૪૯ વર્ષે (૧૫૫+૯૪). હવે આપણે
ગણત્રી કરીને જોઈએ છીએ તો આમાં હેમચંદ્રની
હકિકતજ સ્તરી હોય તેમ જણાય છે. કારણ કે
સંપ્રતિ અને સુહસ્તી (કે જે ૨૪૫ માં યુગપ્રધાન
બન્યા) વજ્ઞે સમકાલીન હતા. એમ ઉપરની નોંધથી
સ્પષ્ટ જણાય છે. આ નોંધ મહાવીર નિર્વાણની જે
તારીખ આપણે શોધી કાઢી છે તેની સત્યતા સ્થા-
પિત કરવામાં પૂર્ણ સહાયક થાય છે.*

^૧ આ ટીકા સાન્ન્યચાર્યની ટીકામાંથી રદ્ધત કરવામાં
આવી છે મૂલ સૂત્રનું અર્થનોંધન તે કરવાનું પોતાનું કરેલું છે,
અને તેમાં જોવામાં આવતી ઘળી કથાઓ શબ્દેશબ્દ સા-
ન્ન્યાચાર્યની ટીકામાંથી રતોરેલી છે.

જીઉપરની કાલગણના સંબંધી તપાસને હવે યમાત કરી,
જૈનોના પ્રાદુર્ભાવનો સમય નક્કી કરવામાટે મારી પહેલાંના
લેલકોએ જે પ્રયત્નો કર્યા છે તેમના સંવંધમાં થોડા શબ્દો
લલવા યોગ્ય ધારૂ છું. આ લેલકોને જૈનધર્મની ઉત્પત્તિ
નિશ્ચિત કરવામાં ઘળીજ અપૂર્ણ માહિતી મળી હતી, અને

હવે હું કલ્પસૂત્રના લોકવિશ્વત્ લેક્ષક મદ્રવાહુના સંવંધમાં જૈનો શું કહે છે તે વિષય ઉપર આવું છું. આ સ્થવિરના સંવંધમાં જે થોડી ઘણી સત્ય હકિકતો છે તે પણ અનૈતિહાસિક દંતકથાઓ સથિ ઇટલી વધી મેલ્સેસ થઈ ગઈ છે કે જેથી તેમને તારવી કાઢવાનું કામ અશક્ય થઈ પડ્યું છે. તેમ છતાં પણ મદ્રવાહુ-સંવંધી દંતકથાઓનું ઇતિહાસિક મૂલ્ય થોડી કાઢવા માટે પ્રયત્ન કરવાની આવશ્યકતા છે. આ કાર્ય માટે મેં જે પુરાવાઓની

પ્રતિ તેમના પ્રયત્નો નિષ્ફળ નિવડ્યા છે, ઇટલજ નહીં પણ કાલગણના સંવંધી શોધમાં તે મોટા ચિન્મરુપ ચર્ચે પડ્યા છે. પ્રો. વેવરે, ડી. નિ. ૧૮૦ માં ધ્રુવસેન રાજાનો આગલ વ્યસૂત્ર વાંચવામાં આવ્યું હતું, તે હકિકત, અને શિલાલિપ્ય જે ડી. નિ. પછી ૧૪૭ માં રાજ્ય ક તો હતો તેથી દંતકથાવાળી હકિકત, એ બંનેનો મેલ્સેસ કરી, તેના ઉપરથી મહાવીર-નિર્વાણની તારીખ ઈ. સ. પૂર્વે ૩૪૯ નક્કી કરી છે. પ્રો. વેવરની ગણનાની પાયાભૂત આ વસ્તુ તારીખો જો સ્વરાશય-જો કે તે વિષયમાં મને તો ગંભીર શંકાઓ છે-તો પણ ઉપર જણાવેલી નોંધોમાં ત્રણ ધ્રુવસેનોમાંનો કયો ધ્રુવસેન અને છ શિલાલિપ્યોમાંનો કયો શિલાલિપ્ય લેવાનો છે, તે નક્કી કરવું અશક્ય છે. આ અનિશ્ચય ઉપરાંત, યલ્મીવંશના કાલગણના ઉપર પ્રો. વેવરે પોતાની ગણતરી ડમી કરી છે તેનો જ હજી તો નિર્ણય થયો નથી. પ્રો. વેવરના સિદ્ધાન્તની (Ind. Alt. IV. p 702 sqq.) ટીકા કરતી પ્રો. લેચનની દલીલો પણ તેના જૈવાજ અનિષ્કટક પાયા ઉપર ડમી થઈ ગઈ હોવાથી તેના સંવંધમાં પણ વધારે વિવેચન કરવાની જરૂર નથી. સર્પજયમાહાત્મ્ય જેને ડૉ. વુહ્લર 'વારમા અગર ચૈદમા સૈકાના કોઈ એક યાત્રિનો કંગલ વૃટ લેખ' કહે છે (Three new Edicts of Aśoka, p. 21. note) તેમાં પણ વિક્રમ પહેલાં ૪૭૦ મા વર્ષના મહાવીર નિર્વાણ-પાયાથી એવી ચાલતી આવતી હકિકત આપેલી છે. પણ વેવરે અગર લેસને આ અગત્યના કથન ઉપર કાંઈ પણ લક્ષ્ય આપ્યું નથી. તેનું કારણ કદાચિત્ તેમના ચરણમાં બીજા ધર્મોના મુલાખલામાં જૈન ધર્મ એ એક અર્વાચીન જ ધર્મ છે, એમ જાણે કે એક ચિદાન્ત મનાઈ ગયો હોય તેમ લાગે છે. પરંતુ આ હુરામદ છે કે વીંચ વર્ષોમાં, જે વિશાળ પ્રમાણમાં જૈન સાહિત્ય આપણને મળ્યું છે, તેની આગલ, હવે ટકી શકે તેમ નથી. ડૉ. વુહ્લરનો આપણે ઉપકાર માનવો જોઈએ કે જેમણે સમગ્ર જૈન સાહિત્ય યુરોપીય વિદ્વાનોની આગલ લાવી મુક્યું છે; અને તેમ કરી અપૂર્ણ અને શંકાસ્પદ મૂલ્યોમાંથી જૈનધર્મસંવંધી હકિકતો મેલ્સેસના સંકટમાંથી આપણને મુક્ત કર્યાં છે.

મદદ લીધી છે તેમને કાલકમાનુસાર ગોટવવા જોઈએ. અને તેથી તે સર્વેના હું નીચે પ્રમાણે ત્રણ વર્ગો પાડું છું. પહેલા વર્ગમાં કલ્પસૂત્રમાં આપેલી સ્થવિરાવલીઓ, તથા આવશ્યકસૂત્ર અને નન્દીસૂત્રની શરૂઆતમાં આપેલી સ્થવિરાવલી મૂકું છું. બીજા વર્ગમાં, ધર્મધોપના ક્ષપિમંડલસૂત્રને મૂકું છું. આ વધારા ગ્રંથો ડી. નિ. ૧૮૦ પછીના છે. આનાથી ઘણાં સૈકાઓ પછી રચાઈને હેમચંદ્રનું પારિણિત પર્વ પણ બીજા વિભાગમાં અંતર્ભૂત થાય છે ત્રીજા વર્ગમાં કલ્પસૂત્રની વધારે અર્વાચીન ટીકાઓમાં આવતી કથાઓ, પદ્મમંદિરગણિ રચિત ક્ષપિમંડલસૂત્ર વૃત્તિ (આ વૃત્તિ સંવત્ ૧૫૧૩માં જેસલમેરમાં સમાપ્ત થઈ છે.) આદિ બીજા ગ્રંથો મૂકવામાં આવ્યા છે. સ્થવિરાવલીનાં અનુસાર મહાવીર પછી મદ્રવાહુ છઠ્ઠા સ્થવિર છે. તેમના ગોત્રનું નામ 'પ્રાચીન' છે. પ્રાચીન એ શબ્દ ઘણું કરાંને 'જૂનું' એવા અર્થમાં વપરાયે છે કારણ કે આ નામનું ગોત્ર ભારતવર્ષના બીજા કોઈ ગ્રંથમાં જોવામાં આવતું નથી. મદ્રવાહુ યશોમદ્રના શિષ્ય હતા, અને કલ્પસૂત્રની ચિન્મૂત સ્થવિરાવલીમાં વતાવ્યા પ્રમાણે તેમને (મદ્રવાહુને) ગોદાસ, આમિદત્ત, જનદત્ત, અને સોમદત્ત નામના ચાર શિષ્યો હતા. આમાંના પહેલા એ ગોદાસ નામે ગણ સ્થાપ્યો હતો.

ક્ષપિમંડલસૂત્રમાં મદ્રવાહુની એક જ ગાથા વહેંચી સ્તુતિ કરેલી છે, પણ તેમના ઉત્તરાધિકારી સ્થૂળગદ્રની સ્તુતિ વીસ ગાથાઓમાં કરવામાં આવી છે. મદ્રવાહુની સ્તુતિ-ગાથા નીચે પ્રમાણે છે.

દસકલ્પવ્યવહારા

નિજ્જુદ્ધા જેણ નવમ-પુચ્ચાઓ ।

વંદામિ મદ્રવાહું

તમપાંચમ-સયલસુગનાર્ણિ ॥

‘જેમણે નવમા પર્વમાર્થી દશકલ્પો અને વ્યવહાર (સૂત્ર) રચ્યું હતું, એવા અંતિમ શ્રુતકવલી મદ્રવાહુને હું વંદન કરું છું. ‘અપાંચમ’ તે. અનુવાદ ‘છેલ્લું

નહીં ' એમ પળ કરવો હોય તો થાય, પરંતુ તેનો સામાન્ય અર્થ ' તદ્દન છેલ્લું ' એમ થતો હોવાથી મેં મારા માપાન્તરમાં તેમ કર્યું છે. છતાં પણ સામાન્ય પરંપરાનુસાર રથૂલમદ્ર ચૌદપૂર્વધારી મનાતા હોવાથી, મદ્રવાહુ ઉપાન્ય (છેલ્લાની પહેલા) શ્રુતકવલી ગણાય છે રથૂલમદ્રથી તે વજ્રસ્વામી સુધીના સ્થવિરો દશ પૂર્વોના ધારક હતા, અને તેટલા મોટે તેઓ દશપૂર્વી કહેવાય છે. વજ્રસ્વામી પછી પૂર્વોનું જ્ઞાન તદ્દન હુત થયું હતું.—જુઓ, હેમચંદ્ર વિરાચિત, અભિધાન ચિન્તામણિ, શ્લોક. ૧૨—૩૪. હેમચંદ્ર પરિશિષ્ટ પર્વના નવમા સર્ગમાં, કેવી રીતે રથૂલમદ્ર સાથે છેલ્લાં ચાર પૂર્વો વિચ્છિન્ન થયા તે સંબંધમાં નીચે પ્રમાણે વર્ણન આપે છે.—પાટલીપુત્રના સંધે ૧૧ અંગો એકત્ર કરી, દ્વિધ્વાદ નામના વારમા અંગને પ્રાપ્ત કરવા મટે ૪૯૯ સાધુઓ સથે રથૂલમદ્રને મદ્રવાહુની પાસે, જેઓ તે વચ્ચે નેપાલમાં રહેતા હતા, ત્યાં મોકલ્યા. મદ્રવાહુએ તે સમયે ' મહાપ્રાણવત ' અંગીકાર કરેલું હોવાથી પોતાના ૯ શિષ્યોને ઘણેજ થોડો થોડો પાઠ આપી શકતા હતા. તેથી કરીને કેટલાક વચ્ચત પછી, રથૂલમદ્ર સિવાય બીજા વધા શિષ્યો ફેંટાઠાં જઈ તેમની પાસેથી જતા રહ્યા હતા. રથૂલમદ્ર મદ્રવાહુ પાસેથી દશ વર્ષમાં દશ પૂર્વો શીખ્યા હતા, ત્યાર વાદ મદ્રવાહુને તેમની વર્તણુકમાં દોષ જણાયાથી બાકીનાં પૂર્વો શિલ્પવવાની તેમણે ના પાડી. પરંતુ જ્યારે રથૂલમદ્રે વહુ પ્રાર્થના કરી, અને પોતાના દોષની ક્ષમા માંગી ત્યારે તેમણે અગલ શિલ્પવવા માંડ્યું; અને તે ઘડી ધરતે કે છેલ્લાં ચાર પૂર્વો તેમણે વીજા કોઈને શિલ્પવવાં નહીં. હવે આ કથાની સાથે ધર્મધોષના કષ્ટોનો વિરોધ આપણે ઘડી રીતે મટાડી શકીએ કે, રથૂલમદ્રે છેલ્લાં ચાર પૂર્વોનું જ્ઞાન વીજા કોઈને આપ્યું ન હતું તે ઉપરથી ધર્મધોષ તેમનું જ્ઞાન અપૂર્ણ માની લીધું હશે અને આ અપેક્ષાએ મદ્રવાહુનું જ્ઞાન રથૂલમદ્ર કરતા સંપૂર્ણ હોવાથી તેઓ ' અપિચ્છમસયલભુયનાળી ' કહી

ગણાય છે. પરંતુ આ રીતનો અર્થ કેટલેક અંગે અમસાધિત હોવાથી મને એમ માન્યું ટીક લાગે છે કે પ્રાચીનતર હકિકત અનુસાર મદ્રવાહુએ છેલ્લા શ્રુતકવલી હતા; પણ પાછળથી, રથૂલમદ્ર—જેમના વિપર્યાય વર્ણી દંતકથાઓ લોકમાં પ્રચિદ્ધ છે—તે પણ તેવી પ્રકારના પદ્મધર સ્થવિરોની ગણનામાં ગણાવા લાગ્યા હતા.

ધર્મધોષની ગાથાના પૂર્વાર્ધ ઉપરથી માલુમ પડે છે કે મદ્રવાહુએ નવમા પૂર્વમાથી દશકલ્પો અને વ્યવહારસૂત્ર ઉદ્ધૃત કર્યા હતાં. કલ્પસૂત્રની વર્ણી ટીકાઓના ઉપોદ્ધાતમાં આ દશકલ્પો સંબંધી નિર્દેશ થયેલો જોવામાં આવે છે. (Stevenson, Kalpa-sutra p 3 sqq.) તે ઉપરથી દશકલ્પની મતલબ મુસ્યત્વે કરીને કલ્પસૂત્ર જણે. વ્યવહાર સૂત્ર તે જનઆગમોમાં ગણાતા છેદોમાંનું એક છેદ છે. કાપિ મળ્ડલસૂત્રની વૃત્તિમાં મદ્રવાહુસ્વામીની કૃતિશ્રીની નીચે પ્રમાણે એક મોટી યાદી આપી છે:—

દશવૈકાલિકસ્યાચારાત્સૂત્રકૃતાઙ્ગયોઃ ।
ઉત્તરાધ્યયનસૂર્યમજ્જત્યોઃ કલકલસ્યચ ॥
વ્યવહારપિભાપિતાવચ્ચકાનામિવાઃ (?) ક્રમાત્ ।
દશાશ્રુતાત્સ્યસ્કન્ધસ્ય નિર્ણયકોદેશ સોડતનોત્ ॥
તથાન્યાં ભગવાંશ્ચક્રે સંહિતાન્માદ્રવાહુવીમ્ ।

' તેમણે દશવૈકાલિક, આચારાંગ, સૂત્રકૃત્યાંગ, ઉત્તરાધ્યયન, સૂર્યમજ્જતિ, કલકલ' (?) વ્યવહાર, કાપિભાપિત, આવચ્ચક, અને છેવટે દશાશ્રુતસ્કન્ધની એમ અનુક્રમે દશ નિર્ણયકો રચી. ભગવાન્ મદ્રવાહુએ આ ઉપરાંત મદ્રવાહુવી સંહિતા પણ લખાવી હતી. ટાં. વૃહલ્લે અત્યાર આગમચ રહ્યું છે કે આગમોની નિર્ણયકો વધી મદ્રવાહુનાં છે (I c. p. 6) અને પોતે પણ આચારાંગ નિર્ણયક અને ઓષનિર્ણયક પ્રાપ્ત કરી છે, એમ જાણાવે છે. આગલ ઉપર જણા-

૧ આ પાઠ અસદ્ છે આ ઠંકણે ' વલ્લ ' એવો પાઠ જોઈએ ' વલ્લ ' એટલે વલ્લમુત અને શાસ્ત્રમાં ' વૃહલ્લ ' કહેવામાં આવે છે તે આદિ નિર્દિષ્ટ છે—સંપાદક.

વીશ કે મદ્રવાહુપ દશાશ્રતસ્કંધની નિર્ધીક્ત નહીં પણ દશાશ્રતસ્કંધ મૂળજ રચ્યું છે. આ દશાશ્રતસ્કંધ કેટલીક વસ્તુ ભૂલથી કલ્પસૂત્ર મનાય છે. સંહિતાના સંબંધમા આપણે આગલ ઉપર વિચાર કરીશું.

આ વધી કૃતિઓ ઉપરાંત કલ્પસૂત્રની કથાઓ-માનીં એક ગાથા અનુસાર મદ્રવાહુને ઉવસગહર-સ્તોત્રના પળ પ્રણેતા માનવામાં આવે છે.—

ઉવસગહરં યુત્તં કારુણ જેણ સંવકલ્હાણં ।
કરુણાપરેણ વિહિંસં સ મદ્રવાહુ મુરુ જયડ ॥
' જે મદ્રવાહુ સ્વામીએ કરુણા લાવીને ઉવસગહર નામનું સ્તોત્ર રચી સંવતું કલ્યાણ કર્યું છે તેમનો જય થાઓ. '

આ પૃષ્ઠની નીચે^૧ નોટમાં તે સ્તોત્રનું મૂલ્ય તેમજ ભાષાન્તર આપું છું; અને જો તે સરેસર મદ્રવાહુનું જ વનાવેલું હોય તો તે અર્વાચીન વિશાલ જૈન સ્તોત્ર સાહિત્યનો પ્રાચીનતમ નમુનો છે.

મદ્રવાહુના દેહાવસાનનો સમય, દેમચંદ્રથી માઢોને ઠેઠ અર્વાચીનમાં અર્વાચીન ટીકાકાર સુધીના વધા લેલકાં નિર્વિશેષપણે વીર નીર્વાળ સંવત્ ૧૭૦ મા મૂકે છે. ૬૫૦ પરિ૦ પર્વ ૯., ૧૧૨:

વીરમોક્ષાદ્વર્ષશતે સમત્યગ્રે ગતે સતિ ।
મદ્રવાહુરપિ સ્વામી યયો સ્વર્ગ સમાધિના ॥
' મહાવીર નિર્વાળ પછી ૧૭૦ વર્ષ જ્યારે વીતી ગયાં ત્યારે મદ્રવાહુ સમાધિપૂર્વક સ્વર્ગ પહોંચ્યા. '

મારે અહિં કહેયું જોડાઈ કે વધા શ્રતકેવાલિઓની મિતિઓ અપાશમા આવી છે સરી પણ તે આધાર રાખવા લાયક છે કે નહીં તેનો નિર્ણય હું કરી શકતો નથી.

મદ્રવાહુ અને વરાહમિહિર વચ્ચે થયેલી સ્પર્ધાના સંબંધમાં, દેમચંદ્ર સિવાય ઘણા અર્વાચીન જૈન ગ્રંથ-કારોએ એક દંતકથા આપેલી છે. આ દંતકથા ઉત્પત્તિ થવાનું કારણ મને નીચે મુજબ લગે છે. એક તો

^૧ ઉવસગહર સ્તોત્ર જૈનસમાજમાં ઘણું જ પ્રાદુર અને સર્વેન સુલભ હોવાથી તે અગ્ર આપ્યું નથા — અનુવાદક.

મદ્રવાહુએ સૂર્યવન્ન સિ ટકા આને માદ્રવાહવી નામની સંહિતા એમ જે સગોલ-વિચાર-વિપયક ગ્રંથો, તથા ઉવસગહર નામનું સ્તોત્ર—રચ્યું છે, એમ જે મનાય છે તેથી, અને વીજું, જૈનજ્યોતિષશાસ્ત્રને અગ્રજ્યોતિ-વિદો જે ધિકારતા હતા (સિદ્ધાન્તશિરોમણિ ૩-૧) તેથી, મદ્રવાહુ અને જૈન જ્યોતિષશાસ્ત્રની મહત્તા દેલા-હવાની લાલચના પરિણામે એ દંતકથા જન્મ પામી છે. આ દંતકથાનો સાર નીચે પ્રમાણ છે.—પ્રતિ-ષ્ઠાનપૂર્વનિવાસી મદ્રવહુ અને વરાહમિહિર એ બન્ને માર્દેશ્રો જૈન સાધુ થયા હતા. તેમના ગુરુ યશોમદ્રે પોતાના અવસાન પહેલાં સંભૂતિવિજય અને મદ્રવાહુને પોતાના પછી આચાર્યપદના અધિકારી નિમ્ણા.એ પદને માટે વરાહમિહિરે આશા રાખી હતી, પરંતુ તેમાં નિ-રાશ મલ્લવાથી ક્રોધાયમાન થઈ તેણે જૈનધર્મનો ત્યાગ કર્યો. પછીથી પોતાના જ્યોતિષશાસ્ત્રના જ્ઞાન-થી તેણે લોકોમાં ઘણી પ્રતિષ્ઠા મેલ્લી અને તે પ્રતિ-ષ્ઠાને એક કલ્પિતકથા ફેલાવી રૂઝ-પ્રવલ્લ બના-વી. ' મારી મક્તિથી સૂર્યદેવ મારા ઉપર પ્રસન્ન થઈ, મને પોતાના વિમાનમાં બેસાડી જ્યોતિર્મંડલમાં લઈ ગયા હતા અને યાં સર્વ નક્ષત્રાધિકની ગતિ વિગેરે તે-મણે મને પ્રત્યક્ષ વતાવી છે. ' આવી રીતે મોઢા લોકોની આગલ તે પોતાની વડાઈ મારવા લાગ્યો, અને તેના-લધે સુદ્ધ રાજાનો પણ તે સારો કૃપાપાત્ર બની ગયો. પોતાની આવી લાગવગના જોરે, તેણે જૈનેને રાજા-ના સન્માનથી વંચિત બનાવ્યા. એટલે મદ્રવાહુ સધર્મી બંધુઓની સહાયે અલ્યા અને જ્યોતિર્વિધાના પેતાના ઉકુલ જ્ઞાનથી પોતાના મર્દને પરાજિત કર્યો વરાહ-મિહિરે ક્રોધ અને માનભંગ ન સહી શકવાના કારણે પ્રાણત્યાગ કર્યો, અને મરીને તે એક દુષ્ટ વ્યંતર બન્યો. પછીથી પોતાનું જૂનું વેર ચાલવા તેણે જૈનોના ઘરોમાં રોગનો ઉપદ્રવ શરુ કર્યો. મદ્રવાહુએ ઉવસગહર સ્તોત્રની રચના કરી તે વ્યંતરને નમાડી મૂકી ઉપ-દ્રવનો નાશ કર્યો. ત્યાર પછી તેમણે પોતાના નામ ની સંહિતા રચી.

आ उपर आपेली कथा देखीती रीतेज कांद पण ऐतिहासिक उपयोगिता वाली जणाती नथी. तेमज हेमचंद्रे तेनो उल्लेख पण करेलो नहीं होवाधी ते अर्वाचीन होय रेम भासे छे. तेथी आ संबंधमां आपणने फोई पण जातनो विचार करवानी जरूर नथी. परंतु भद्रबाहुसंहिताना संबंधमां काटिक विवेचन करवानी जरूर छे. डॉ० बृहलर पोते ते नामतें एक पुस्तक मेळव्यानु जणावे छे. तेओ फहे छे के ए संहिता अन्य रंहिताओना जेवोज छे. अने मुकाबलामा ते अर्वाचीन समयमा वनेली होय तेम जणाय छे. बराहमिहिर, बीजा अनेक ग्रंथकारोना उल्लेखो साथे सिद्धसेतें नामना एक जैन ज्योतिषीनो पण उल्लेख करे छे, (Kern, *Burhat Samhit*, Preface p 29) परंतु प्रस्तुत पुस्तकना संबंधमा ते काई सूचन करतो नथी. आ उपरथी एटलो निर्णय करी शकय छे के भाद्रबाहुधी संहिता बराहमिहिरनी पछीथी रचाएली छे. अने तेथी केई पण रीते तना कर्ता भद्रबाहु, ते कल्पसूत्रना कर्ता भद्रबाहु तो नज होई शके. कारण के कल्पसूत्रनी अंतिम आवृत्तिज—तेमां जणाव्या प्रमाण—बीर संवत् ९८० एटले ई. स. ४५४ अथवा ५१४ मां थएली छे. आ समय बराहमिहिरनी पहेलानो छे—निदान तेनो समकालीन तो खरोज.

कालक्रमपूर्वक गोठवतां भद्रबाहुना संबंधमां उपर प्रमाणेनी हकिकत जैनग्रंथोमथी मळी आवे छे. ऐतिहासिक दृष्टि तेनी उपयोगिता गमे ते होय छतां एटलें तो निर्विवाद छे के सषष्ठा जैन लेखको एकमते तेमने पोताना एक प्राचीनतम अने सौथी बघोर समर्थ लेखक माने छे. तेमनी कृतिओ समग्र जैनसाहित्यनो एक विशिष्ट भाग

१ सिद्धमेन एक प्रयात जैन लेखक छे अने एबु कहेवाय छे के तेमणे विमलादित्येन नवीन संवत् प्रवर्तवया मागे केटलीक सहायता आपी हती कल्याणमंदिरस्तोत्रनामनी तेमनी एक कृति मनाय छे,

होवाधी ए समग्र साहित्यनी समानज तेमनुं पण भवितव्य सजीएलुं छे. अने आ कारणथी हवे आपणे समग्र जैन साहित्यनुं सामान्य रीते विवेचन करवुं जरूरनुं छे. ए साहित्यनो सर्वोत्कृष्ट अने पवित्र भाग ते ४५५ आगमो गणाय छे. आमना केटलाकना कर्ताओनां नामो पण वनाववामां आव्यां छे. उदाहरण तरीके दशवैकालिकमूत्रना कर्ता धर्ममव दशाश्रुताकंध अने व्यवहार मूत्रना कर्ता भद्रबाहु, अने प्रजापनाना कर्ता श्यामार्थने वनाववामा आवे छे. परंतु घणा आगमो तो महावीरे पोतेज प्रकृत्या छे, एम कहेवाय छे. आ कहेवानो अर्थ एवो नथी के साक्षात् महावीरेज अंगो अने उपगोनी रचना करी छे. पण तेनो भावार्थ एम छे के ते आगमोमां वर्णवेली बधी हकिकतो महावीरे पोतेज उपदेशी छे, अने तेथी ते तेमनाज करेला कहेवाय छे. हिंदुस्थानमा ग्रंथकर्तृना मात्र मूळ वस्तु—मूलमत तत्त्वना अर्थना उपदेशने आश्रिते मनाय छे, नही के शब्दरचनाने आश्रिते. शब्दरचना गमे तेम थाय, तेने प्राधान्य आपवामां आवनुं नथी. फलत अर्थमात्रनेज महत्त्व अपाय छे. ग्रंथकर्तृत्वनो जे अर्थ आपणे समजीए छीए ते अर्थमां महावीर सूत्रोना कर्ता गथीज, एम आपणे सेहलाईथी सिद्ध करी झकीए छीए. कारण के घणां खरा सूत्रोनी शरुआतमां आपेली नोंध उपरथी जणाय छे के ते सुधर्माए जन्म-

१ नाचे आपेली आगमोनी टीप ३० बृहलर कृपावरी मने मेळवी आपी छे. १ अंगो—आचारंग, सूत्रकृतग, स्थानाग, समयायांग, भगवतां, ज्ञाताधर्मेकथा, उपासकरां, अंतकृद्दशा, अनुत्तरीपपातिक, प्रश्नव्याकरण, अने विपाक सूत्र; २ उपगोः—ओपपातिक, राजप्रथ, जावाभिगम, प्रजापना, जन्मद्वीपप्रशस्ति, चन्द्रप्रज्ञति, सूर्यप्रज्ञति, निर्यावली, जेमां—कल्यावतय, पुष्टिपक, पूषपुलिक अने बदिदशा, ए अंतर्गत थएला छे; ३ प्रकीर्णकोः—चतुःकरण, आनुष्ठयात्यान, भक्ष, संस्तर, तण्डुलबद्गली, चन्द्रबीज, देवेन्द्रस्तर, गणिवीज, महाप्रत्याग्यान, योगरतद; ४ छेदो—निर्नाध, महानिर्नाध, व्यवहार, दशाश्रुतस्वप्न, गृहस्वप्न, पञ्चकल्प; ५ नन्दामूत्र, अनुयोगद्वार; ६ मूलसूत्रोः—उत्तरायण, आयुष्यक, दशवैकालिक अने पिण्डनियुक्त.

સ્વામીને કહેલા છે. ઘણું કરીને તો મહાવીરના સિદ્ધાન્તો અને શ્લોકો મૂળમાં—પ્રારંભમાં જુદા જુદા પ્રયોગ રૂપે રચાયાજ ન હતા. પરંતુ મદ્રાહુના સમયમાં અગિયારે અંગો મોજુદ હતાં એમ હકિકતો ઉપરથી જણાય છે, કારણ કે તેમણે એ અંગોની વ્યાખ્યા રૂપે કેટલિક કૃતિઓ કરી હતી. ઉપર ટાંકેલી મદ્રાહુ અને સ્થૂલમદ્રની કથાનો ભાવાર્થ જોતાં માન્ય પડે છે કે પાટલીપુત્રના સંધે અગિયાર અંગોનો સંગ્રહ કર્યો હતો. ત્યાર બાદ સૂત્રોમાં ઘણા ફેરફારો થયા હોવા જોઈએ. અને આ વાત સ્થાનાંગ સૂત્રથી સાબીત પણ થઈ શકે છે. એ સૂત્રનાં ૭ માં સ્થાનમાં, સાત નિન્દ્યોનું વર્ણન કરેલું છે. આ સાતે નિન્દ્યોના સંબંધમાં આવશ્યકસૂત્રમાં વિશેષ વિવેચન આપવામાં આવેલું છે. આમાંના સાતમાં નિન્દ્ય ધીર નિર્વાણ પછી ૫૮૪ વર્ષે પ્રાદુર્ભૂત થયો હતો એમ લેવાયું છે. આ ઉપરથી એવું સ્પષ્ટ થાય છે કે મહાધીર પછી છઠ્ઠી-સાતમી સદી પુરુષમાં પણ સૂત્રો મહત્વના પરિવર્તનોના પાત્ર થઈ શકતા હતાં.

છેલ્લામાં છેલ્લું જૈનસૂત્રોનું પુસ્તકાધિરોહણ સામાન્ય અને પ્રાચીનમાન્યતાના આધારે વી. મં. ૧૮૦ માં દેવધર્મિણી ક્ષમાશ્રમણે કર્યું. * ધીરનિર્વાણની તારીખ,

૧ ઉત્તરાધ્યયનની ટીકા જેવા વધારે અર્થોચીન પ્રયોગો અસ્પષ્ટ વિશ્વવાદી નિન્દ્યોની સંજ્ઞામાં યોગ્ય એક નવીન યુક્તિ વિશ્વવાદી નિન્દ્યોનો ઉમેરો પણ થયેલો છે અને એ નિન્દ્ય તે વી. નિ. સવત્ ૬૦૫ માં ઉત્પન્ન થયેલો દિગમ્બર મત છે. દિગમ્બરો શ્વેતામ્બરોની ઉત્પત્તિ ગુપ્તિમ્મ નામના સ્થિરતા વાલતામાં, જે સવત્ ૩૬-૪૬ માં થઈ ગયા હતા, તે વચ્ચે થયેલી થતાં છે.

* આ નોંધ સાથે, કલ્પસૂત્ર અને કૃષ્ણમહાસૂત્રની સ્થિતિ વિશ્વવાદી છેદ્યા સ્થિતિ તરીકે દેવધર્મિણીનું જે નામ આપે છે તે, અને આવશ્યક અને મન્દિરસૂત્રની સ્થિતિ વિશ્વવાદીઓ દેવધર્મિણી સુધીના સ્થિતિઓનાં નામ આપતાં હતાં પણ તેમને (દેવધર્મિણી) જે નામવિદેશ કરતી નથી તે,—આ બન્ને હકિકતો, બહુ સમત થાય છે. એ ઉપરથી એવું અનુમાન થાય છે કે તેમણે મન્દિર અને આવશ્યક સૂત્રના પ્રારંભમાં આ સ્થિતિ વિશ્વવાદી મુખી હશે.

જો તે વચ્ચે વિક્રમ સંવત્ ૪૭૦ વર્ષ પહેલાં થયેલી મનાતી હશે તો તે વી. નિ. ૧૮૦ ની સાલ ઈ. સ. ૪૫૪ ની વચ્ચે થાય છે, પરંતુ તે વચ્ચે જો વી. નિ. ની તારીખ આપણે ઉપર જે નવીન નિર્ણય કરી છે તે પ્રમાણે મનાતી હશે તો તે સાલ ઈ. સ. ૫૧૪ ની વચ્ચે થાય છે. જિનપ્રમુખિ અને પન્ન-મન્દિરગણી લેલ છે કે દેવધર્મિણીએ પ્ચાર ૪૬ આગમો—સિદ્ધાન્તોને નષ્ટ થવાની તૈયારીમાં જોયા ત્યારે તેમણે વલમીપુરના સંધની મદદથી તે પુસ્તકારૂઢ કરાવ્યા. એમ કહેવાય છે કે પ્રાચીન-કાલમાં આચાર્યો પોતાના અધ્યોને પુસ્તકની અપેક્ષા સિવાય (‘પુસ્તકાનપેક્ષા’) જ સૂત્ર શિક્ષવતા હતા. પણ પાછલથી પુસ્તકોની સહાયતાથી શિક્ષવ-વાની શરૂઆત થઈ. અને જૈન ઉપાશ્રયોમાં એ પ્રયાસ જોવા ચાલી આવે છે. આ વૃદ્ધ સંપ્રદાયનો અર્થ એમ નથી કે દેવધર્મિણીએ પહેલીજ વચ્ચે જૈનોના પવિત્ર જ્ઞાને પુસ્તકારૂઢ કરાવ્યું; પણ તેની પટલીજ મતલબ છે કે, પ્રાચીનકાલમાં આચાર્યો લિખિત પુસ્તકો કરતાં પોતાની સ્મૃતિ ઉપરજ વધારે આધાર રાખતા હતા. †

જૈનધર્મના વૃદ્ધધોષ દેવધર્મિણીએ લખા કરીને સમગ્ર સામ્પ્રદાયિક જૈન સાહિત્ય કે જે તેમને તે વચ્ચેના પુસ્તકોમાંથી અને વિચિત્ર આચાર્યોના મુલેથી મળ્યું હતું તે વધું, આગમોના રૂપમાં તેમણે મોટવ્યું. આ કાર્ય ઘણું મોટું થયું હતું, કારણ કે તે વચ્ચે ઘણાક આગમો તો ઘટિત થઈ ગયા હતા અને તેના અમુક અમુક ઘટક ભાગોજ વાકી રહ્યા હતા. આ

† આ સમયથી માત્ર ૩૦ વર્ષ પહેલાંજ એલ સન ૪૧૦ અને ૪૧૩ ની વચ્ચે વૃદ્ધધોષ બૌદ્ધ પિટરો અને અપેક્ષાઓ-ને, ધર્મની ચિન્તન સ્થિતિને માટે પુસ્તકોમાં લગાવી, યોગ્યતામાં બૌદ્ધધર્મો, અને ગુજરાતમાં જૈનધર્મો લગભગ સમાન વચ્ચેના પુસ્તકારૂઢ થયા તે ઉપરથી એવું અનુમાન થઈ શકે કે જૈનોએ બૌદ્ધોનાં આ પ્રતિનિધિ અનુદરશ કર્યું હશે. અર્થ તો હિંદુધર્મમાં પાંચમી સદીમાં સાહિત્યના દેવધર્મ લેખન (વચ્ચ) નો વધારે ઉપયોગ થવા લાગ્યો હતો.

વૃદ્ધિત ભાગોને દેવધિગણીય પોતાને જમ યોગ્ય લાગુ તે પ્રમાણે અનુસંધાત કરી પ્રકૃત કર્યા. ઘણાક આગમોમાં જે અસંવદ્ધ અને અપૂર્ણ વર્ણનો મઠી ઓંધ છે તેનું કારણ માત્ર આજ કલ્પના દ્વારા આપણે સમજી શકીએ છીએ. વિષયમાન જૈન આગમોની વ્યવસ્થા—(રચના) મુખ્યત્વે કરીને પના સંપાદક દેવધિગણીનેજ આમારી છે. તેમણેજ તેને અધ્યાયો-અધ્યયનોમાં વિમલ્લ કર્યા, અને પ્રથમગણના(પટલે ૩૨ અક્ષરનો એક શ્લોક એમ શ્લોક પ્રમાણ)ની પદ્ધતિ લેખલ કરી. આ પ્રથમગણનાના હિસાબે, સો સો અગર હજાર હજાર શ્લોકની સંખ્યાસૂચક અંકો, હસ્તલિખિત પ્રતિઓમાં સર્વત્ર એકજ રૂપમાં લેખવામાં આવેલા છે. રસ્તાઓના માપને માટે ડમા કરેલા માઈલના પથરાઓ જેવા આ સંખ્યા-સૂચક અંકો મૂકવાનો ઉદ્દેશ એજ છે કે મૂળ સૂત્રોમાં પુનઃ વધારા—ઉમેરા ન થવા પામે. પરંતુ વાસ્તવિકતા આ ઉદ્દેશ સફળ થયો હોય એમ લાગત નથી.

દેવધિગણીના પછીના સમયમાં પણ જૈન આગમોમાં ઘણા ફેરફાર થયા હોવા જોઈએ. હાલની હસ્તલિખિત પ્રતોમાં વિવિધ પાઠાન્તરો મળે છે છતાં, પરંતુ, જુદી જુદી લેખન પદ્ધતિને લઈને તેની ઉત્પત્તિ થયેલી છે. તે સિવાય તે વધારે ઉપયોગી કે વધારે પ્રમાણવાળાં નથી. પણ પુરાતન સમયમાં કાંઈક જુદાજ સ્થિતિ હોવી જોઈએ. કારણ કે ટીકાકારો પોતાની ટીકાઓમાં અનેક પાઠાન્તરોનો નિર્દેશ કરેલો છે, કે જે હાલના હસ્તલેખોમાં જોવામાં આવતાં નથી. આથી મારું એમ માનવું છે કે વર્તમાનમાં જે સૂત્રપાઠ મૂળની પ્રતિઓમાં જોવામાં આવે છે, તથા અર્વાચીન ટીકાકારોએ જેને પોતાની

ટીકાઓમાં લીધેલો છે તે મૂળ ટીકાકારોએ નિર્ણીત કરેલો પાઠ છે. કલ્પસૂત્રના સંબંધમાં તો આ વાત નિશ્ચિત છે, એમ હું સ્વાત્રીપૂર્વક કહી શકું છું. સૂત્રોની જે જે ટીકાઓ અત્યારે વિચરમાન છે તે સમગ્રી સીધી અથવા આટકતરીરીતે પ્રાકૃતમાં રચાઈને પ્રાચીન ચૂર્ણિઓ અગર વૃત્તિઓના આધારે લખાઈ છે. એ ચૂર્ણિઓ તથા વૃત્તિઓ હાલમાં યા તો નહ થઈ ગઈ છે, અથવા તો કશું જ અસ્તિત્વ ધરાવે છે. પ્રાચીન ટીકાકારોએ મૂળસૂત્રો ને ઘણાજ અવ્યવસ્થિત રૂપમાં જોયાં હશે. કારણ કે તેમને તેના ઘણા પાઠાન્તરો નોંધવાની આવશ્યકતા લાગી હતી. આમાંના ઘણાક પાઠાન્તરો પછીના ટીકાકારોએ પણ પોતાની ટીકાઓમાં ટાંક્યાં છે. કેટલાક ટીકાકારો ફક્ત એકજ પાઠ સ્વીકારી તે ઉપરજ ટીકા કરવાનું જણાવે છે. ઉદાહરણ તરીકે ઉત્તરાધ્યયનનું ત્રના ટીકાકાર દેવેન્દ્રગણી લઈ શકાય. વીજા કેટલાક ટીકાકારો પાઠાન્તરો જોવાની ઈચ્છાવાળાં તે ચૂર્ણિ જોવાની મલામણ કરે છે પ્રમાણ તરીકે કલ્પસૂત્રના સૌથી પ્રાચીન ટીકાકાર, કે જેમની ટીકા મેલત્તવા હું શકિતમાન થયો છું, તે જિનપ્રમમુનિ લઈ શકાય. આ કારણથી વર્તમાન વિવેચકોનો ઉદ્દેશ તો માત્ર પ્રાચીન ટીકાકારોએ જે સૂત્રપાઠ સ્વીકાર્યો હતો તેનોજ પુનરુદ્ધાર કરવાનો હોવો જોઈએ. સાક્ષાત્ દેવધિગણીએ પુસ્તકારૂઢ કરેલો સૂત્રપાઠ તો આજે મલ્લયો અશક્ય જ છે.

દેવધિગણીના સમય પર્ચનની જૈન સાહિત્યની અવ્યવસ્થિત સ્થિતિ ઉપરથી એ અનુમાન પણ કરી શકાય એવું છે કે જે માપમાં તે પવિત્ર જ્ઞાન એક પેઢીથી વીજી પેઢિને આવવામાં આવતું હતું તેમાં ક્રમથી ફેરફારો થતા ગયા હતા. જે માપા મહાવીર અને તેમના અનન્તર શિષ્યો—અર્થાત્ ગણધરો—બોલતા હતા તે તો સ્વેચ્છર મગધદેશનીજ ભાષા હતી. તેઓ સંસ્કૃતમાપા બોલે એ તો અસંભવિતજ છે.

૧ ઉપ દેવધિગણીના સમય પર્ચનની જૈનો સ્વેચ્છર વેદસ્વારો-યોજ પોતાના પવિત્ર ધર્મશાસ્ત્રજ્ઞાન આપતા રહ્યા હતા. ચાર-પાંચે, પૂર્વોનો અગ્રુક ભાગ તો મહાવીર પછીની આઠમી પેઢિ-એજ હવે થઈ ગયો હતો. તેમજ દસમી પેઢિના પૂર્વેજ હવે પૂર્વો નહ થયાં હતા. નિદન જૈન ઇતિહાસ તો આપણને એમજ કહે છે

પરંતુ, જૈન પ્રાકૃત અશોકના શિલાલેલોની અથવા પ્રાકૃત વૈયાકરણોની માગધી માપા સાથે ઘર્ણજ યોડું મળતા પળું ધરાવે છે. તેમ છતાં જૈનો પોતે તેને ' માગધી ' કહે છે. હેમચંદ્રે પોતાના પ્રાકૃતવ્યાકરણના ચોથા પાદના ૨૮૭ મા સૂત્રની વ્યાખ્યામાં જે અર્ધાં માથા ઉદ્ધત કરેલી છે તેમા લક્ષ્યું છે કે પ્રાચીન સૂત્રો એકલી અર્ધમાગધી માપામાજ લલા-પ્લા હતા:—

પોરાણં અદ્દમાગહાસાનિઅયં હવડ સુત્તં ॥

હેમચંદ્ર આ સ્થલે પોતાનું ટિપ્પણ કરે છે કે, જો કે આવો પરંપરાગત વૃદ્ધ સંપ્રદાય છે, પરંતુ, માગધી માપાનું જે લક્ષણ આગળ ઉપર આપવામા આવેશે તે જૈન પ્રાકૃતને લાગુ પડતું નથી; અર્થાત્ જૈન પ્રાકૃત માગધીથી ભિન્ન છે.

જૈનોની પવિત્ર માપાના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરવા આગળ વધી પ તેની પહેલા આપણે પટલું ધ્યાનમા રાખવું જોઈએ કે તેમની પ્રાકૃત માપામા બે ભેદો દેલાઈ આવે છે. ૧—પ્રાચીન ગચ ગ્રંથોની માપા, અને, ૨—ટીકાકારો અને કવિઓની માપા. જે માપામા પ્રાચીન ગચ ગ્રંથો લલાયા છે તે માપા ઘણે અંશે ટીકાકારો અને કવિઓની માપાથી ભિન્ન છે. ટીકાકારો અને કવિઓની માપા મહારાષ્ટ્રી છે, અને તે પ્રાકૃત વ્યાકરણના પહેલા પાદમા જે નિયમો આપેલા છે તેને સર્વથા અનુસરનારી છે. પરંતુ સાથે એ પણ જાણવું જરૂરનું છે કે હેમચંદ્રની મહારાષ્ટ્રી તે ' હાલ, ' ' સેતુવન, ' અને નાટકોની મહારાષ્ટ્રી માપા સાથે એકમાત્ર ધારણ કરતી નથી. આ વલે વચ્ચે બે મોટા સ્પષ્ટ ભેદો છે. એક તો—આચરૂપે અથવા દ્વિત્વરૂપે દન્ત્ય ' ન ' નો ઉપયોગ થાય છે તે, અને બીજો ' યશ્રુતિ ' નો વ્યવહાર છે. આ માપા કે જેને ઊચિતરીતે જૈન મહારાષ્ટ્રી કહી શકાય તેનું હેમચંદ્રે સંપૂર્ણ લક્ષણ આપ્યું છે. આ લક્ષણ કાલિકાચાર્ય કથા જેવા એક અર્વાચીન નિવંધમા પણ પૂર્ણરીતે પ્રયુક્ત થયેલું કોઈ પણ વાચક સ્પષ્ટ

જોઈ શકે છે. પ્રાચીન સૂત્રોની માપા જેને હું જૈન પ્રાકૃત કહું છું તે જૈન મહારાષ્ટ્રીથી નેટલીક વાચ-તોમા જૂદી પડે છે. જેમ કે, જ્યારે જૈન મહારાષ્ટ્રી માપાના પુર્ણિગના પ્રથમા તથા સપ્તમીના એકવચનના રૂપોને અંતે ' ઓ ' અને ' ંમિ ' અનુક્રમે આવે છે, ત્યારે જૈન પ્રાકૃતમા તેના સ્થાને અનુક્રમે ' એ ' અને ' ંસિ ' આવે છે. ઉદાહરણ તરીકે, જૈ૦ મ૦—' સ્કો, ' જૈ૦ પ્રા૦—' સ્થે, ' સં૦—શકઃ, જૈ૦ મ૦—' વર્મિ, ' ' મોલિમિ, ' સાહું-મિ ' જૈ૦ પ્રા૦—' વર્સિ, ' ' કુચિહસિ, ' સાહુસિ. અવ્યય મૂતકૃદન્તને અંતે જૈન મહારાષ્ટ્રીમાં સાધારણ રીતે ' ઝળે, ' ' ઝળ, ' અથવા ' હં ' આવે છે. પરંતુ તેનાથી પ્રાચીન પટલે જૈન પ્રાકૃત માપામા તેને અંતે ' ઇત્વા ' અથવા ' ઇત્વા ણં ' આવે છે. દાતલા તરીકે જૈ૦ મ૦—' કાઝળે, ' ' નાઝળે, ' ગંતુ-ળે, ' ' કાઝળ, ' ' કાઝે ' ઇત્યાદિ; જૈ૦ પ્રા૦—' કરિત્વા, ' ' જાનિત્વા, ' ' ગચ્છિત્વા, ' અથ-વા, ' કરિત્વા ણં ' ઇત્યાદિ. જૈન-પ્રાકૃતમા અઘતનમૂત રહ્યો છે, પરંતુ જૈન મહારાષ્ટ્રીમા તેને વડલે સામાન્યરીતે મૂત કૃદંત આવે છે. આવા સાધારણ ભેદો ઉપરાત, જૈન પ્રાકૃતમાં ઘણા આર્ષ શબ્દો, રૂપો તથા વાકયા-શો પણ મળી આવે છે, જે જૈન મહારાષ્ટ્રીમાથી બહિ-ષ્કૃત થયા છે.

જૈન મહારાષ્ટ્રીના સ્વરૂપના સંબંધમાં તો કોઈ પણ શંકાને સ્થાન જ નથી. કારણ કે હેમચંદ્રે તેના સં-બંધમા સ્પષ્ટરીતે વર્ણન આપ્યું છે. એ માપા એકંદરરી-તે ' હાલ ' નોજ મહારાષ્ટ્રી માપા છે. એમ છતાં બંને વચ્ચે જે ભેદો દૃષ્ટિગોચર થાય છે તે તેની ઉત્પ-ત્તિસ્થાનના ભેદને લઈને છે. મારા માનવા પ્રમાણે જૈન મહારાષ્ટ્રી મુરાહ્મની માપા સાથે ઘણોજ નિકટ સંબંધ ધરાવનારી છે. કેમ કે પરંપરાગત હકિકતને

૧આ આચર્યકારક કથા મૂલરૂપે હુ યોગેશ્વર સમયમાં પ્રક-ટ કરવા ઇચ્છું છું, કા જ કે, તેનો અંદર નેટલીક સાચો અને ઐતિહાસિક પરંપરાના મુદ્દાઓ રહેલા છે.

આધારે જૈન શાસ્ત્રોનું સંસ્કરણ, ઉપર જનાવ્યા પ્રમાણે વલમીપુરમા થયું હતું. આ કારણને લઈને તેને જૈન સૌરાષ્ટ્રી નામ આપ્યું વધારે યુક્ત ગણી શકાય શરૂ; પરંતુ, સાધારણરીતે મહારાષ્ટ્રીને નામે ઓલ્ખાતી પ્રાકૃતભાષાના સામાન્ય સ્વરૂપની સાથે તે ઘણે અંશે મળતી હોવાથી અને હેમચંદ્રે તેને તેલુંજ નામ આપી દીધેલું હોવાથી; * તલું નામ આપવાની હું હિંમત કરી શકતો નથી.

ઘઠી જૈન પ્રાકૃતનું સ્વરૂપ પણ શોધી કાઢવું કઠણ નથી. તે એકદરરિતે જૈન મહારાષ્ટ્રીની સરસીજ માપા હોવાથી અને ભેદ માત્ર આર્પરૂપોની દૃષ્ટિએ જ ઉત્પન્ન થયેલો હોવાથી, આપણે તેને યોગ્ય રીતે પ્રાચીન મહારાષ્ટ્રી અથવા આર્પ મહારાષ્ટ્રી કહી શકીએ છીએ. હેમચંદ્ર તેને ' આર્પમ્ ' ઇટલે ઋષિઓની માપા કહે છે. અને જૈન મહારાષ્ટ્રીની અદરજ તેનું વર્ણન કરે છે. તેના વિશિષ્ટ રૂપોને તેઓ સામાન્ય નિયમોના અપવાદ રૂપે માને છે. અને જણાવે છે કે, પ્રાયઃ સામાન્ય પ્રાકૃતના નિયમો ઋષિઓની માપાને વિકલ્પે લાગુ પડે છે. આ રીતે, તેઓ પોતાનું મન્તવ્ય પ્રકટ કરી સૂચવે છે કે જૈન પ્રાકૃતનું સાદુ-શ્ય બીજી કોઈ પણ પ્રાકૃત ભાષા કરતા મહારાષ્ટ્રી સાથે વધારે છે. તેમનું આ કથન ઘણું પ્રમાણભૂત છે. કારણ કે એક તો તેઓ પ્રાકૃત ભાષાના પૂર્ણ જ્ઞાતા છે, અને બીજું, સંપૂર્ણ લોકમાન્યતાથી પ્રતિકૂલ એવો પોતાનો અભિપ્રાય તેમણે આપેલો છે. જૈન પ્રાકૃતમા હેમચંદ્રે જે માગધીત્વ જોયું તે માત્ર અકારાન્ત ધુલિંગ શબ્દના પ્રથમાના એક વચની રૂપના અંતે આવતા ' એ ' પ્રત્યય લાજ છે, અને હું પણ તે સિ-

હેમચંદ્રના વ્યાકરણમા કનત પ્રાકૃત એવું સામાન્ય નામજ મળે છે, મહારાષ્ટ્રી એવું વિશેષ નામ મળતું નથી. ડૉ. એકોબીયલ આ કથન કે, હેમચંદ્રે જૈનધર્મોનાં પ્રાકૃતને મહારાષ્ટ્રી એવું નામ આપ્યું છે, તે અમારા સમજવામાં ચરાચર આવતું નથી.—સંપાદક.

વાય બીજો કોઈ તફાવત જોઈ શક્યો નથી. * જે જે યાવતોમાં શૌરસેની અને માગધી સામાન્ય પ્રાકૃતથી જુદી પડેલું તેવથી યાવતોમાં જૈન પ્રાકૃત, ઉપર વતા-વેલા વે અપવાદો અને અન્ય વે અપવાદો વાદ કરતાં સાધારણ પ્રાકૃતને સર્વાંશે મળતી આવે છે. હેમચંદ્ર (૪, ૨૬૪, ૨૬૫; અને ૪, ૨૭૮) શૌરસેની (—અને માગધી) મા 'મગવાન્' અને 'મગવન્' તેમજ 'મધવાન્' અને 'મધવન્' રૂપી પ્રથમા અને સંચો-ધનના એકવચનના રૂપોને વદલે અનુક્રમે 'મયવં' અને 'મધવં' તથા 'તસ્માત્' ને વદલે 'તા' નું વિધાન કરે છે. આ રૂપો જૈન પ્રાકૃતમા પણ આવે છે. મહારાષ્ટ્રી સિવાયની અન્ય પ્રાકૃત માપાની સાથે જૈન પ્રાકૃતની સમાનતાના આ દાલલાઓ, સામાન્ય માપા સાથેની તેના સમાનતાના દાલલાઓના ડુ-

ક્રો. વેચરવું નિધ્યપૂર્વક એમ કહેવું છે કે, યં, ડં, અને ટ્થ ને વદલે વ્ય, અને ટ્થ ને વદલે એક નો ફેરફાર શિદ્ધ કરે છે કે જૈન-પ્રાકૃત તે માગધી છે. વેચર 'વ' અને 'લ' રૂપી સ્વરૂપ વર્ણક ચિન્હોને (વર્ણોને) વ્ય અને ટ્થ સૂચક બતાવે છે. પરતુ તે (ચિન્હો) વાસ્તવમા ડજ અને ટ્થ શોધક છે. આ ચિન્હો જૈન મહારાષ્ટ્રી તેમજ જૈન પ્રાકૃત એ બન્ને માપામા વપરાય છે. અને જૈન મહારાષ્ટ્રીમા તો તેને નિર્ણાતરત્વ ડજ અને ટ્થ સૂચક ગણવામાં આવે છે. તેથી જૈન પ્રાકૃતમા પણ તે તેજ અક્ષર સૂચક હોવા જોઈએ. જો એમ ન ગણતા હોત અને હેમચંદ્રે તેને જૈન પ્રાકૃતમા ભિન્ન અક્ષર સૂચક વાચ્યા હોત તો જરૂર તેમણે તેને ૨, ૮૬ અને ૯૦ સૂત્રોમા અપવાદરૂપે જણાવ્યા હોત. આ ઉપરાંત ચારે હેમચંદ્ર શૌરસેનીમા (૪, ૨૬૬ સત્રમા) યં ન વદલે વ્ય, અને માગધીમા જ્ ય અને યુ ને માટે ય નો (૪, ૨૬૨), તેમજ સ્વરની મધ્યમા આવેલા ડ ને માટે 'x' નો (૪, ૨૬૬) આદેશ કરે છે, ચારે જો તેમણે વેચરની માફક ડજ અક્ષરો વાચ્યા હોત તો તે સૂત્રોમાં જરૂર એમ જણવ્યું હોત કે આર્પે માપામાં પણ એમજ ધાય છે. લિપિશાસ્ત્રની દૃષ્ટિએ એક (કે જેના પ્રાચીન રૂપો 'x' અને 'x') અને 'x' એ સજ્ઞાઓની સમજૂતી માટે ડં, વુલ્હા નાકદેવા પ્રમાણે યાદ રાખવું જોઈએ કે અક્ષરો જોડવામા જૈનો સાધારણ રીતે બીજા અક્ષરને પહેલા અક્ષરની પછી નહીં પણ તેના નીચે મૂકે છે. પહેલી ત્રણ સજ્ઞાઓ તે કુ નો ઉત્તરોત્તર થયેલા ગદ્યો રૂપો છે. અને બીજી સજ્ઞા 'x' મા જ પું પુરાતન રૂપ સર્થાત્ ડ દષ્ટિ લેવા છે. આ નિયમાનુસાર કલ્પસૂત્રના મુદ્દમા આવેલા પૂર્વોક્ત જોડાક્ષરોને મેં kkh અને jh થી દર્શાવ્યા છે,

કાવલે ઘણા થોડા અને અનુપયોગી લાગે છે. તેટલા માટે હું જૈન પ્રાકૃતને મહારાષ્ટ્રી માપા તરીકે જાહેર કરતાં વિલકુલ સંકોચ પામતો નથી. પ્રો. લેસને પણ પોતાના Institutiones linguae Pracriticae નામના પુસ્તકના પૃ. ૪૨ માં પણ તેમજ જાહેર કર્યું છે. જે જે વાચતોમાં જૈન પ્રાકૃત મહારાષ્ટ્રીયાં જુદી પડે છે, તે તે વાચતોમાં તેણે સાધારણતઃ પ્રાચીનરૂપો કાયમ રાખ્યાં છે. 'અ' માપાના આનાથી પણ વધારાપ્રાચીન રૂપની નિશાની પૃ. ૫ ઉપર સૂચવેલા શબ્દોમાં જોવામાં આવે છે. આ નિશાની તે, પરસ્પર ન જોડાય તેવા બે વ્યંજનોની વચ્ચે લિખિત માપામાં, જેમ નિત્યરૂપે સ્વરનો અંતર્ભાવ થાય છે, તેમ ન થતાં વિકલ્પરૂપે થાય છે, તે છે. આથી જાતની—વિકલ્પે સ્વર ઉમેરવાની—ઘટ જ પ્રાચીન સૂત્રોમાં આવતાં પ્રાકૃત પદ્યોની માત્રાગણનામાં લેવી જરૂરી છે, અને જે વૈદિક કવિઓની પદ્ધતિ સાથે પણ કેટલીક સામ્યતા ધરાવતી જોવાય છે, તેનો, પાછળના પ્રાકૃત કવિઓ વિલકુલ સ્વીકાર કરતા નથી. તેમની કૃતિઓમાં તો પ્રત્યેક સ્વરનો ઉચ્ચાર એક સ્વતંત્ર વર્ણની માફક નિત્યરૂપે થયો જોઈએ. 'સેતુવન્ધ' 'સસસની' અને ત્યાર પછીના પ્રાકૃત શ્લોકો આદિ ગ્રંથોની પદ્ધતિમાં, અને તેનાથી પ્રાચીન એવા પદ્યબંધ સૂત્રોની પદ્ધતિમાં જે ભેદ જોવામાં આવે છે, તેનું કારણ માત્ર માપામાં થયેલું પરિવર્તન જ છે, અને આવું પરિવર્તન વૈદિક અને સાહિત્યિક સંસ્કૃત માપામાં પણ પ્રત્યક્ષ થયેલું જોવાય છે^૧. અહિં સુધી આપણે જોનારા પવિત્ર ગ્રંથોની માપાનો ક્રમિક વિકાસ આલેખ્યો છે. પણ તેની કેટલીક અનિયમિતતાઓ વઢી જુદા જ પ્રકાર

રનો છે; અને તે સ્પષ્ટરીતે એમ દર્શાવતી હોય તેમ લાગે છે કે લિખિત સૂત્રોની માપા કરતાં અસલ માપા જુદા જ હતા.

ઉપર જેમ મેં જણાવ્યું છે તેમ મહાવીર અને તેમના ગણધરોની મૂળ માપા માગધીજ હતા, અને તેની પુલ્હિગની પ્રથમાનો 'અ' પ્રત્યય જે કાયમ રહ્યો છે તે આ કથનનું પ્રમાણ સ્વરૂપ છે. સંક્ષેપમાં એટલું જ કહેવાનું છે કે જૈનગ્રંથોની છેલ્લી પુનર્રચના થઈ તે પહેલાં તેની માપાનું સ્વરૂપ નહીં થયું ન હતું. મૂળમાં, જનસમુદાયની આ વ્યવહારુ માપામાં ગુંથા-પ્લા ધર્મશાસ્ત્રોનું જ્ઞાન જે પુરુષો મુલપાઠથી વીજા-અને આપતા જતા હતા, તેઓ તે માપાને પોતાના દેશ અને કાઢની પ્રચલિત માપા સાથે બંધ બેસતી કમતા રહેતા હતા. આપણા સ્ત્રીસ્તી સનની આરંભની સદિઓમાં હિંદુસ્થાનનો દેશી માપાઓમા મહારાષ્ટ્રની વાક પદ્ધતિએ જ અપ્રસ્થાન સંપ્રાપ્ત કરેલું જણાય છે તેથી, અને વૈદ્યકરણોએ સર્વપ્રાકૃત માપાઓની આધારમૂત તરીકે તેની જે ગણના કરેલી દેસાએ છે તેથી, તથા તેનું સાહિત્ય—કે જેના કેટલાક પ્રતિષ્ઠિત નમુના આજે પણ વિચિત્રતાથી—વિશાળ હોવાથી, જૈનો તેના પ્રમાણે વશ થયા હોય અને પોતાના ગ્રંથોને મુક્તકારુઢ કરતી વચ્ચે તે માપાની અનુસાર પોતાના પુસ્તકોની માપાની વ્યવસ્થા કરી હોય, તો તેમાં આશ્ચર્ય પામવા જેવું નથી. લિખિત પુસ્તકોની માપામાં આવું માપા-પરિવર્તન સાહિત્યના ઇતિહાસમાં બીજે કોઈ સ્થલે જોવામાં નથી આવતું એમ નથી. મેં પાછળના એક પાના ઉપર, ઉત્તાર કરનારાઓના હાથે મધ્યકાલીન ગર્મન ગ્રંથોની માપામાં આવું માપા-પરિવર્તન થયું હતું, એમ સૂચવ્યું છે. જૈન ગ્રંથોના સંપાદકને સર્વલક્ષણોપેત મહારાષ્ટ્રી માપાનો સર્વથા સ્વીકાર કરવો ગમ્યો નહીં હશે અને તેથી તેમણે ચિરકાલીન પૂર્વપરંપરાથી ચાલતાં આવેલાં અને તેથી જ પવિત્ર મનાયેલાં એવાં ઘણાં આર્ય રૂપોને કાયમ રાખ્યાં હશે. કારણ કે

૧ વેદોમાં ચામ કરીને 'ય' અને 'વ' ની પહેલાં વિકલ્પે સ્વર ઉમેરવાની જે પદ્ધતિ હતી તે પાછળના સંસ્કૃત સાહિત્યમાં સર્વથા યદિષ્ટ કરવામાં આવી છે. પરંતુ જૈન પ્રાકૃતમાં આનાથી ઊલટું, એટલે, પૂર્વે વિન્યસે સ્વરનો અંતર્ભાવ કરવાની જે પદ્ધતિ હતી, તે અર્વાચીન પ્રકૃતમાં, જ્યાં આગળ વ્યંજન સમુદાય સંયુક્ત આવ ન પામતો હોય ત્યાં, તે એક નિયમરૂપે થઈ ગઈ છે.

આર્ય ભાષા હમેશાં ગંભીર પ્રકારની લેક્ષનશૈલી માટે યાસ રીતે યોગ્ય મનાતી આવી છે.

જૈન મહારાષ્ટ્રી ઉચારથી પવિત્ર ભાષા તરીકે નથી થઈ, ત્યારથી તે ઘણા વચ્ચે મુઠી જૈનોની સાહિત્યિક ભાષા તરીકે ચાલુ રહી હતી. પરંતુ પાછળથી તેનું સ્થાન સંસ્કૃતે લીધું હતું. પૂર્વના સઘળી પ્રાચીન ટીકાઓ પટલે ચૂર્ણિયો અને વૃત્તિઓ, તથા યોગ્ય પળ ઘણા સ્વતંત્ર ગ્રંથો પ્રાકૃત ભાષામાં લખાયા હતા. ૬૦ સં ૧૦૦૦ અને ૧૧૦૦ ની મધ્યમાં જૈનોએ સંસ્કૃતને પોતાની સાહિત્યિક ભાષા તરીકે અંગીકાર કરી હતી. પરંતુ આ ફેરફાર વાંદ આકસ્મિક કે સંપૂર્ણ રૂપે ન હોતો થયો, કારણ કે, આ સમય પહેલાંનાં પળ મક્કામરસ્તોત્ર, કલ્યાણમેદિરાસોત્ર, શામનસ્તુતયઃ જેવાં જૈનગ્રંથકારોનાં સંસ્કૃત કાવ્યો, મોજુદ છે. અને તેમજ જિનપ્રમથીનુ (—સંવત્ ૧૩૬૪) પર્યુષણાકલ્પનિધિકૃત્યાસ્વાન, અને યોગ્ય ઘણાં પ્રાકૃતસ્તોત્રો આદિ જેવા, વાર્તા સદીની પછી પણ રચાણા પ્રાકૃત ગ્રંથો વિદ્યમાન છે.

આ ચાલુ વિષય છોડતાં પહેલાં હું જૈનગ્રંથોની શુદ્ધલેક્ષન વિદ્યા તરફ યાચનાનું ધ્યાન સ્થેતું છું. જો કે, પ્રાયઃ સર્વ હસ્તલિખિત પ્રતિઓ એકજ ઢંગની જોવામાં આવે છે, તથાપિ નિચેની વાતોમાં તે પરસ્પર વિરુદ્ધ પડતી દેખાવ છે —

૧) કેટલીક પ્રતિઓમાં ‘ય’-શ્રુતિ ‘અ’ અને ‘આ’ ની પછી જ વપરાઈ છે; ત્યારે કેટલીક પ્રતિઓમાં ‘ઈ’ અને ‘ઈ’ ‘ઉ’ અને ‘ઊ’ તથા ‘ઘ’ અને ‘ઘો’ ની પછી પણ જોવામાં આવે છે. હેમચંદ્ર પોતાના વ્યાકરણના ૧, ૧૮૦ માં સૂત્રમાં વિધાન કરે છે કે ‘ય’ શ્રુતિ ‘અ’ અને ‘આ’ ની પછી આવે છે. પણ ટીકામાં કહે છે કે કેટલેક પ્રસંગે તે અન્ય સ્થળે પણ જોવામાં આવે છે તેમનો એ નિયમ અંશતઃ અમારી હસ્તલિખિત પ્રતિઓથી સિદ્ધ થાય છે. કારણ કે ‘ય’ અને ‘યા’ દેશક સ્થળે ‘અ’ ને ‘આ’ ની પછી આવે છે. પરંતુ ઘણીક પ્રતિઓમાં ‘ય’

અને ‘યા’ સઘળા સ્વરો પાછળ પણ લખેલા દેખાય છે. આ વજ્રે જાતની જોડણી (વર્ણરચના) ઘણી જુની તેમજ ઘણી સારી પ્રતિઓમાં નજરે પડે છે. તેથી આ વેમાંથી કયી વધારે શુદ્ધ છે તેનો નિર્ણય કરવો અઘડ્ય છે. વ્યુત્પત્તિશાસ્ત્રની દૃષ્ટિ ‘ય’ શ્રુતિ વધા સ્વરો પાછળ આવે તે વધારે સ્વરૂપ—સંગત છે. કારણ કે ‘ય’ શ્રુતિ તે માત્ર હુસ્ત દ્વયજનનો અવશેષ છે’. મેં વલ્પમૂત્રની મારી આ આવૃત્તિમાં એજ પદ્ધતિ સ્વીકારી છે.

૨) કેટલીક પ્રતિઓમાં સંયુક્ત-વ્યજ્જનો પહેલાંના એ અને ઓ અનુક્રમે ઈ અને ઉ ના રૂપમાં પરિવર્તિત થયેલા જોવાય છે. આનું કારણ એ છે કે દેવનાગરી લિપિમાં એ અને ઓ ના હ્રસ્વરૂપની સૂચક સંજ્ઞાઓનો અમાવ છે. અને તેને લઈને નીચે પ્રમાણેનાં ગુંચવાડો ઊભો થયો છે. જો એ તથા ઓ લલવામાં આવે તો વર્ણ-પરિમાણની ઉપેક્ષા થાય છે. કારણ કે સંયુક્ત વ્યજ્જનની પૂર્વેનો સ્વર હ્રસ્વ થયો જોઈએ, અને એ અને ઓ તો દીર્ઘસંજ્ઞક સ્વરો છે. જો આથી ઊલટી રીતે લલવામાં આવે અર્થાત્ ઈ તથા ઉ મૂકવામાં આવે તો એ અને ઓ વર્ણના સ્વરૂપનું વાસ્તવિક દર્શન ન થઈ શકે. આ કારણથી જ્યાં એવા વર્ણોના સંસ્કૃત પ્રતિરૂપો સંધિ-સ્વરાત્મક હોય ત્યાં મેં એ અને ઓ જ લલવા છે.

૩) કેટલીક પ્રતિઓમાં જ અને કેટલીક પ્રતિઓમાં ણ આવે છે. (જુઓ, હેમં ૧, ૨૨૮) મેં આવા દરેક પ્રસંગે ઉત્તમ પ્રતિઓના આધિક્ય તરફ લક્ષ્ય રાખી સામાન્ય રીતે તે પ્રમાણે વર્ણ-પ્રયોગ સ્વીકાર્યો છે.

૪) કેટલીક વચ્ચે, કેટલીક પ્રતિઓના પ્રારં-

૧ પશ્ચિમ હિંદુસ્થાનની મુઘલઓમાંના પ્રાકૃત શિલાલેખોમાં ઈ ના પૂર્વેના જ નો આદેશ થયેલો છે. ત. પવિત્રિકા અને પવર્ષતિકા—પ્રમજિતિકા.

મમાં જ લેલેલો જોવામાં આવે છે. સરસાવો, હેમ-
ચંદ્ર ૧,૨૨૯.

૫) બે સ્વરોની વચ્ચે આવતા વ્યંજનને કાયમ રાસવો અથવા તેના વડેલે વીજાનો આદ્ય કરવો, અગર તો, તેનો રોપ કરવો, તે વાચત ગ્રંથોની નકલ કરનારાઓની—રહિયાઓની પસંદગી ઉપર આધાર રાસતો હોય તેમ લાગે છે.

૬) કલ્પસૂત્રની ૬૬ પ્રતિમાં (ઇંડિઆ ઑફિસ લાઈબ્રેરી ૧૫૯૯) જ્વ ને વડેલે જ્વ અને કેવલ અથવા સંયુક્ત શબ્દોની આદિના વ ને માટે બ લેલેલો છે. ઉદાહરણ તરીકે—વિવદ્ધન ને વડેલે વિવદ્ધન, મહાધીર, इत्यादि. આ વિશેષતાનું કારણ એમ લાગે છે કે તે પ્રતિ પૂર્વ હિન્દુસ્થાનમાં લસાઈ હશે.

૭) ડ અને ડ (ઓ) નો ધર્મી વાર પરસ્પર વિનિમય (અદલાવડો) થાય છે. પરંતુ તેનો ૩૩ નિ સાથે કોઈ સંબંધ નથી. કારણ કે જ્યારે ડ અથવા ડ ની પહેલાં વ્યંજન આવેલો હોય છે ત્યારે નં ૦૨ માં કહેલી વાચત વાદ કરતા ધ્યારે પણ પરસ્પર આ વિનિમય થતો નથી. A અને J નામની કલ્પસૂત્રની પ્રતિઓમાં આ સંજ્ઞાઓના સંબંધમાં ભાગ્યેજ મૂલ થપ્પલી જોવામાં આવે છે.

ઉપર વર્ણવેલા વર્ણ વિન્યાસ-વિષયક ભેદો વ્યાકરણશાસ્ત્રની ભિન્ન ભિન્ન શાખાઓને અંગે ડમા થપ્પલા છે. મારી આવૃત્તિના મૂળની નીચે, મેં તમામ વિવિધ પાઠાન્તરો સમાલ પૂર્વેક નોંધ્યાં છે. માત્ર છઠ્ઠા અને સાતમા નંબરમાં જણાવેલી હકિકતને અંગે ઉપસ્થિત થપ્પલાં પાઠાન્તરો લખ્યાં નથી. છતાં પણ સૌથી પ્રાચીન અને પ્રામાણિક જોડણી કંઈ હશે તેને નિર્ણય કરી શક્યો નથી. કાગલની ધર્મીક હસ્તલિખિત પ્રતિઓ તપાસતાં મને એવી પ્રતીતિ થઈ છે કે તેના ઉપરથી જૈન પ્રાકૃત ભાષાના વિદ્યુદ્ધ વર્ણ વિન્યાસનો પત્તો મેઝવી શકાય તેમ નથી. પરંતુ તાટપત્રની પ્રાચીનતમ પ્રતિઓને ચારીકાઈથી તપાસતાં વધારે સંતોષકારક પરિણામ

મેઝવી શકાય તેમ છે. હું એમ ધારું છું કે પ્રાયઃ કોઈ પણ વસ્તુ સંપૂર્ણ જૈનલેક્ષકો એક ચોક્કસ વર્ણ-વિન્યાસ-પદ્ધતિનું અવલંબન કર્યું હોય તેમ લાગતું નથી. કારણ કે ગુફાઓના શિલાલેખોની પ્રાકૃતની સાથે વીજા પ્રાકૃત ભાષાઓમાં તેમજ આધુનિક ભારતવર્ષની પ્રચલિત દેશ ભાષાઓમાં પણ એક જ શબ્દની વારંવાર ભિન્ન ભિન્ન રીતિએ જોડણી કરા-
ણી જોવામાં આવે છે.

આ વિષય પૂર્ણ કરતાં પહેલાં મારે જણાવવું જોઈ-
એ કે, મેં જૈન-પ્રાકૃતના વર્ણવિન્યાસના સંબંધમાં એક-અંગતિ સ્થાપવાનો ઉદ્દેશ રાખ્યો નથી. પણ એક જૈનગ્રંથના પ્રથમ આ પ્રકાશનના સમયે વસ્તુ-સ્થિતિનો કેટલોક સ્થાલ આવવો મને યોગ્ય લાગ્યો-
છે. જો કે મને આશા ગ્રંથમાં એક જ પ્રકારની જોડણી સ્વીકારવી સરલ પદ્ધતિ સહી—જેમકે નિત્ય ણ યા જ જ લલ્લવો, પરંતુ ભારતવાસિઓના હૃદયમાં જાણે મજબૂત રીતે જામી ગઈ હોય તેવી અનિયમિતતાની અંતઃપ્રેરણાને આઘાતન પહોંચાડવા માટે મેં અન્ય પ્રતિઓથી સમર્થિત એવી A નામની સૌથી પ્રાચીન પ્રતિની જોડણી સાધારણ રીતે કબુલ રાખી છે. અને તેથી એક શબ્દની સદા એક જ રીતે જોડણી કરવામાં આવી નથી.

જૈન ધર્મ અને સાહિત્યને લગતા સામાન્ય પ્રશ્નો-
ના સંબંધમાં હું જેટલી હકિકત એકઠી કરી શક્યો છું, તે આપી દર્શાવે, હવે રાસ કલ્પસૂત્રના સંબંધમાં કેટ-
લુંક વિવેચન કરીશ. આ ગ્રંથનો, જૈનોના પવિત્ર પુ-
સ્તકો તરીકે ગણાતા આગમોમાં તો સ્વાસ ગણના થતો નથી. અને દિગમ્બરો તો એ બનાવટી ગ્રંથ સુદાં કહેતાં અચકાતા નથી. તેમને આમ કહેવાનું કારણ એ છે કે, એની અંદર દિગમ્બર માન્યતા વિરુદ્ધ, મહાવીર ત્રિશુલાની કુશિમાં આવ્યા તેનો પહેલા દેવાનંદાની કુશિમાં આવ્યા હતા, આલુ વર્ણન આવે-
લું છે. પરંતુ આ વર્ણન આચારાંગસૂત્ર તથા આવ-
શ્યકસૂત્રમાં પણ આવતું હોવાથી, એ પુરાતન

એમ લાગે છે. અને તેથી દિગમ્બરોનો ઉપરોક્ત આક્ષેપ નિર્રથક નિવેદ છે. શ્વેતાંવર સંપ્રદાયમાં કલ્પસૂત્ર એક પ્રતિષ્ઠિત ગ્રંથ મનાય છે. અને પ્રતિવર્ષ વર્ષાવાસ ઇટલે પઞ્ચુત્તપમાં તે જોહર રીતે (સમામાં) વંચાય છે.

આ કલ્પસૂત્ર તે મદ્રવાહુ સ્વામીની કૃતિ મનાય છે. આ ગ્રંથની વસ્તુ તેમણે પ્રત્યાહ્વાનપ્રવાદ નામના નવમા પૂર્વમાંથી લીધી છે, છતાં કિરણાવલી નામની ટીકાના નિમ્નલિખિત અવતરણ ઉપરથી માલુમ પડે છે.

‘ પ્રણેતા તાવત્ સર્વાક્ષરસન્નિપાન વિચક્ષણશ્ચતુર્દશપૂર્વવિદ્યુ યુગમધાન. શ્રીમદ્રવાહુસ્વામી દશાશ્રુત-સ્કન્ધપ્રત્યાહ્વાનધ્યયનરૂપતયા પ્રત્યાહ્વાનપ્રવાદાભિધાનનવમપૂર્વાત્ કલ્પસૂત્રમિદં સૂત્રિતયાનુ. ’

અર્થાત્-આના કર્તા તે, સર્વશાસ્ત્રપ રગમી, ચતુર્દશપૂર્વના વેદા અને યુગપ્રધાન તથા મદ્રવાહુ સ્વામી છે. તેમણે પ્રત્યાહ્વાન પ્રવાદ નામના નવમા પૂર્વમાંથી દશાશ્રુતસ્કંધના આઠમા અધ્યયન રૂપે આ કલ્પસૂત્ર રચ્યું છે.

કિરણાવલી ટીકાકારનું ઉપરોક્ત કથન, —કે જેનું પુનરાવર્તન બીજા ટીકાકારોએ પણ પોતાની ટીકાઓમાં કર્યું છે, —કે કલ્પસૂત્ર તે પર્યુષણાકરૂપ છે, અને તે દશાશ્રુતસ્કંધનું આઠમું અધ્યયન છે; તે મૂલમરેણું છે. આ મૂલ કલ્પસૂત્રના અંતિમ શબ્દોના આશયને વરાવર ન સમજવાથી થઈ છે. શબ્દોનો જો વરાવર અર્થ કરીએ તો તેનાથી ઇટલુંજ સિદ્ધ થાય છે કે કલ્પમૂત્ર એ નામ, એ ગ્રંથના હેતુના પ્રકરણને અર્થાત્ સામાચારી, કે જેની અંદર યતિઓના આચારોના નિયમો આપવામાં આવ્યા છે, તેનેજ લાગુ પડે છે. કારણ કે તેની અંતમાં જ્યાં કથન છે કે ‘મહાવીરે’ આ પ્રમાણે પર્યુષણાકરૂપ નામના આઠમા અધ્યયનનું આહ્વાન કર્યું, માપણ કર્યું, પ્રજાપન કર્યું, અને વારંવાર ઉપદેશ આપ્યો, આ શબ્દોમાત્ર સામાચારીને જ લાગુ પડી શકે; કારણ કે જિનચરિત્ર અને

સ્થવિરાવલી મહાવીરે પોતે કહી હોય એમ માની શકાય નહીં. જિનચરિત્રમાં મહાવીરના નિર્વાણ પછીની વનેલી વીનાઓ લેલી છે અને સ્થવિરાવલીમાં તેમની પછીનો જનધર્મનો ઇતિહાસ આપેલો છે. આ ભાગોનો પર્યુષણા યા વર્ષાવાસ સાથે કોઈ જાતનો સંબંધ નથી. નેથી તે પર્યુષણાકરૂપનું નામ ધરાવવાના ચિલકુલ અધિકારી નથી. અને તદનુસાર, વાસ્તવિકરીતે દશાશ્રુતસ્કંધના આઠમા અધ્યયનના ભાગ તરીકે પણ તેને માની શકાય નહીં. આ અનુમાન ઉપરથી સ્વામાવિકરીતેજ એવો અર્થ કલિત થાય છે કે પર્યુષણાકરૂપ એ નામ વાસ્તવિકરીતે સામાચારીનું જ છે, અને તેમ હોવાથી દશાશ્રુતસ્કંધનું આઠમું અધ્યયન પણ તેટલાજ ભાગને કહી શકાય. તેટલા માટે, તેટલા ભાગનેજ મદ્રવાહુસ્વામીની કૃતિ તરીકે માનવો જોઈએ. ઇટલું તો સ્વયંસિદ્ધ છે કે મદ્રવાહુસ્વામીની પછીની પણ ઘણી પેઢીઓની નામાવલી આપતી સ્થવિરાવલી મદ્રવાહુની રચેલી ન હોઈ શકે તેમજ તે એક કર્તાની પણ કૃતિ નથી. સ્થવિરાવલીની સંક્ષિપ્ત વાચના અને વિસ્તર વાચના અર્થાત્ સ્થવિરોના ટુંકી અને વિસ્તૃત નામાવલી, અસલમાં, બન્ને એકમેકથી સ્વતંત્ર હોવી જોઈએ. કારણ કે, તે બન્નેની માપાસૈલી અને વર્ણવ-સ્તુમાં પરસ્પર ભિન્નતાઓ રહેલી છે. આ સ્થવિરાવલિઓ, જેની અંદર અસલમાં હજારો દશકેવલી (દશપૂર્વી ?) વજ્ર અને તેમના અન્તેવાસિઓનાં જ નામ હશે, તેની અંતે કેટલીક ગાથાઓ ઉમેરવામાં આવી છે; અને તેની અંદર ફલ્ગુમિત્રથી માંડીને દેવધર્મિગણી ધૃષ્ટીના સ્થવિરોનાં નામો આવેલાં છે. કલ્પસૂત્રની કેટલીક પ્રતિઓમાં આ ગાથાઓનું ગદ્યરૂપાન્તર, તેની પહેલાં દાક્ષલ કરવામાં આવેલું છે. એ તો દેસીતી રીતેજ અર્વાચીન ઉમેરો છે. કારણ કે ઘણી પ્રતિઓમાં એ ગદ્યરૂપાન્તરને પડતું મૂકવામાં આવ્યું છે. તેમજ સૌથી પ્રાચીન ટીકાકારે આ ફેરફારનો ડહોલ પણ કરેલો છે. આ ઉપરાંત, આ ગ્રંથની

અગ્રિયારમી ગ્રંથશતી (ગ્રંથ ૧૦૦૦—૧૧૦૦); પ્રમાણ કરતાં પ્રત્યક્ષરિતે વધારે ગ્રંથસંસ્થાવાળી થયેલી છે. તેથી જો એ પ્રસ્તુત પ્રકરણને વાતલ કરવામાં આવે તો તેની સંસ્થા પણ બરાબર પ્રમાણસર થઈ રહે છે. વઢી સ્થવિરાવલીના પ્રથમના વે સૂત્રો બીજા વધાં સૂત્રોથી રચનામાં જુદા પડે છે; અને તેથી મારા ધારણા પ્રમાણે, શાયદ એક વચ્ચે તેનો અંતર્ભાવ જિનચરિત્રમા થતો હશે. આ રીતે આપણે સ્થવિરાવલીમાં મિત્ર મિત્ર પ્રકારના ચાર પાંચ પ્રકરણો જોઈ શકીએ છીએ. ડૉ. સ્ટીવન્સન જે એવું અનુમાન કરે છે કે અસલનું જિનચરિત્ર તે મહાવીર ચરિત્ર જેટલું જ હશે (કલ્પસૂત્ર પૃ. ૯૯), તેને હું સ્વોડું માનતો નથી. પરંતુ સાથે મારું એ પણ વિશેષ માનવું છે કે ડૉ. સ્ટીવન્સને જે ડેમરા દર્શાવ્યા છે તે ઉપરાંત બીજા પણ કેટલાક ડેમરા તેમાં થયા છે; અને તેને લઈને આ ભાગ આટલો વિસ્તૃત થયેલો છે. આ કથનના પ્રમાણ તરીકે માત્ર હું ચૌદ સ્વપ્નોના વર્ણનના નિર્દેશ કરું છું. આ વર્ણન સમય પુસ્તક નો આર્થ-માપાશૈલીથી તદ્દન મિત્ર પડે છે. કારણ કે, એમાં જે ઘણા લાંબા લાંબા અને ગુંચવાડા મરેલા સમાસો દૃષ્ટિગોચર થાય છે, તે સ્વાસ, સુકાવલામાં અર્વાચીન એવા મરતવર્ણ્ય કાવ્ય-સાહિત્યમાં આવતા સમાસોના આકારના છે. કહેવાની માથે જ રહ્યું છે કે, એમાં વીરનિર્વાણના ૯૮૦ અને ૯૯૩ વર્ષ સંબંધી જે અવતરણો આપેલા છે, તે કર્તાના નિર્દેશક નથી પરંતુ કલ્પસૂત્રના સંપાદક દેવધિગણીને ઉદ્દેશીને લખાયા છે. જે આર્થ-માપા-શૈલીમાં આ જિનચરિત્રની રચના થયેલી છે તેજ માપા-શૈલી ગદ્યરચનાવાળા પ્રાચીન સૂત્રોમાં પણ જોવાય છે. તેથી આના કર્તા મદ્રવાહુ ન હોઈ શકે એમ કહી શકાય તેમ નથી. પરંતુ, આ પ્રથમે પ્રત્યક્ષ પ્રમાણના અભાવે અનિર્ણયાત્મક સ્થિતિમાજ રહેવાં વેલો ઠીક લાગે છે.

જૈન વિદ્વાનો કલ્પસૂત્રમાં ચર્ચાળા વિષયોના

વૈષમ્ય (ન્યુનાધિક્ય) થી સર્વથા વિજ્ઞાત છે, એમ તો સ્પષ્ટ દેખાઈ આવે છે. પરંતુ, તેઓ આનું કારણ એ વતાવે છે કે પર્યુષણ-સામાચારીની પહેલા જે આ વે ભાગો મુકવામાં આવેલા છે તે ‘મંગલાર્થમ્’ એટલે મંગલમાટેજ મુકવામાં આવેલા છે. આ વાત પર્યુષણાકલ્પનિયૈક્તિમા નીચે પ્રમાણે જણાવી છે:—

પુરિમ-ચરિમાણ કપ્પો

ઉ મંગલં વદ્ધમાણ-તિત્થંમિ ।

તો પરિકહિયા જિનપરિ-

કહા ય થેરાવલી ચેત્થ [મ્] ॥

માવાર્થ—પહેલા અને છેલ્લા જિનોનો કલ્પ વર્ધમાનના તીર્થમાં મંગલમૂત છે. અને તેટલા માટે જિનચરિત્રો, અને સ્થવિરાવલી અહિં કહેવામાં આવી છે. પછીના ટીકાકારોએ આ ગાથાના ઉત્તરાર્થને વદલી તેને ‘અધિકારત્રયમ્’ ની પદ્યવદ્ધ વિષયમૂચિના આકારમાં ફેરવી નાલી છે:—

પુરિમ-ચરિમાણ કપ્પો

મંગલં વદ્ધમાણ-તિત્થંમિ ।

તો પરિકહિયા જિનગણ-

હરાઈ-થેરાવલિ-ચરિત્તં ॥

માવાર્થ—વર્ધમાનના તીર્થમાં પહેલા અને છેલ્લા જિનોનો કલ્પ મંગલ-સ્વરૂપ છે, તેટલા માટે જિન (ચરિત્ર) ગણધરાદિ સ્થવિરાવલી અને ચરિત્ર અર્થાત્ પર્યુષણ-સામાચારી કહેવામાં આવી છે.

પરંપરાગત કથાનુસાર જૈનાગમોના નીચેના સંસ્કરણ વચ્ચે દેવધિગણીએ જિનચરિત્ર, સ્થવિરાવલી અને સામાચારી એ ત્રણે માયોને કલ્પસૂત્ર એવા નામ નીચે એકજ પુસ્તકમાં પુસ્તકારૂઢ કર્યા હોય તેમ જણાય છે, —જો કે તેનો આગમોમાં અંતર્ભાવ થતો નથી. આ પરંપરાગત કથાની સમ્યક્તાના પક્ષમાં વે વલેલો છે. પહેલી એ કે, આ બીજાની તારીસ કલ્પસૂત્રમાં આપેલી છે. અને બીજી એ કે, આનું કલ્પસૂત્ર ઠો ઠો ગ્રંથોની (૩૨ અસુરોનો) પ્રમાણવાળી ગ્રંથ-ગતિઓમાં

નાણ્યું છે, ઘણું કરીને મૂઢ મંથને પછીના ડંબરાબોથી વચાવવા મોટેજ સંપાદકને આ વ્યવસ્થા સ્વીકારવાની આવશ્યકતા લાગી હશે. આ મંથશતિઓની નિશાની મૂઢમંથમા પ્રં. ૧૦૦, પ્રં. ૨૦૦ इत्यादि रूपमा મૂકેલી છે. આ નિશાનીઓ સઘળી હસ્તલિખિત પ્રતિઓમાં સમાન ગણાએજ મૂકેલી જોવામાં આવે છે. કલ્પસૂત્રમા આવા ૧૨૧૬ મંથો હોવાનું કહેવાય છે. ઉદાહરણ તરીકે A પ્રતિના પુષ્પિકા-લેખમાં આપેલો નીચેનો શ્લોક લઈ શકાય:—

एकः सहस्रो (१) द्विशतीसमेतः

श्लिष्टस्ततः षोडशभिर्धन्तु ।

कल्पस्य संख्या कथिता विशिष्टा

विशारदैः पर्युपणाभिधस्य ॥

આ સંખ્યાને હોધે વર્તમાનમા સામાન્યરીતે આ પુસ્તક 'ચારસે સૂત્ર' તરીકે પણ ઓઢલાય છે.

આ આવૃત્તિમા મારી ગણત્રી મુજબ વ્યવસ્થિત સંખ્યા ઉપરાત એકસોથી વધારે મંથો (શ્લોકો) અધિક છે, અને કેટલીક મંથશતીનું પ્રમાણ ૧૦૦ થી ૧૨૫ જેટલા મંથોનું જોવામા આવે છે. આ રીતે ન્યૂનાધિક મંથપમાણવાઢી અવ્યવસ્થા જોઈને, કેટલાક સંવેહજનક પ્રકરણો કાઢી નાણી, આ સૂત્રને મૂઢ સ્વરૂપમા—અસલની મંથસંખ્યામા—લાવી મૂકવાનું મારું મન થઈ આવે છે. પરંતુ, આ સૂત્રની શિથિલ રચના, અને ઇમા વારંવાર આવતી પુનરુક્તિઓ, કે જે સૂત્રાણીનું એક સ્વાસ લક્ષણ જ છે, તેને લઈને આમાના કયા ભાગો અમૂલક છે, તે શોધી કાઢવાનું કામ કઠણ હોવાથી, હું તેમ કરતા મારા મનને રોકી રાણું છે.

અહીં કહેવાય છે કે, પહેલાના વસતમાં આણું કલ્પસૂત્ર પજ્જસણની પ્રથમ રાત્રિ ૨૫ વાચવામાં આવતું હતું. પરંતુ, ય્યારથી તે આનન્દપુરના રાજા ધ્રુવસેનને,

છે ૧૮૫૩ સૂત્રની ટીકાઓમા લખ્યા પ્રમાણે તો 'પ્રથમ રાત્રિ' નહીં પણ અતિમ રાત્રિ એ કલ્પસૂત્રનું અધ્યયન-ધ્રુવણ કરવામા આવતું હતું.—સંપાદક.

પોતાના સેનાગજ નામના પ્રિયપુત્રના મરણજનિત શોકથી મુક્ત કરવા અર્થે, તેને સમામાં વાચવામા આણું ત્યારથી તે સૂત્ર નવ વાચનાઓ અથવા વ્યાખ્યાનો દ્વારા સાર્થ સમજાવવામા આવે છે. આ નવ વાચનાઓ કેટલીક પ્રતિભોમા, તેમજ કેટલીક ટીકાઓમા ચિન્હ અથવા ઉદ્દેશ કરી જુદી જુદી વતાવવામા આવી છે. પરંતુ આ વિષયમા વધાનો-એક મત નહીં હોવાથી મારી આવૃત્તિમા મેં આ વાચનાત્મક વિભાગો દાણલ કર્યા નથી. સાધારણ રીતે મહાવીરચરિત છ વાચનામાં વિમક્ત કરવામાં આવે છે. વાકીના જિનચરિતો સાતમી વાચનામા ગણાય છે. અથવા તો મહાવીરચરિતની પાચ, અને વાકીના જિનચરિતોની બે, આવી રીતે પણ સાત વાચનાઓ ગણાય છે. થેરાવલી અને સામાચારી એ દેરેકની એકેક વાચના કહેવાય છે,* જિનચરિત અને સામાચારી નામના માગમા, સૂત્રો અથવા પ્રકરણોના રૂપમાં મૂઢ મંથનો એક ધીજો પણ પેઢાવિભાગ વર્ણીક પ્રતિભોમાં આપેલો જોવામાં આવે છે, આ વિભાગ તે ઘણું કરીને ટીકાકારોને આમારી છે. કારણ કે તેમણેજ આનો ઉપયોગ કરેલો છે. સ્થવિરાવલી ઉપર ટીકા રચાણી નહીં હોવાથી તેની સૂત્રોમા વહેંચણી થવા પામી નથી. યદ્યપિ આ સૂત્રાત્મક વિભાગ સઘળી પ્રતિઓ અને ટીકાઓમા એકજ

† આ બોનાનો મિતિના સંબંધમાં એક મત નથી. કેટલાક તેને વી. નિ. ૧૮૦ મા વર્ષમાં મૂકે છે, કેટલાક ૧૯૧ માં અને કેટલાક વઢી વી. સં. ૧૦૮૦ માં મૂકે છે.

છે ૩ નામની હસ્તલિખિત પ્રતિમા નીચે પ્રમાણે વ્યાખ્યાનકોની વહેંચણી કરેલી છે:—'પુરિમ-ચરિમગયા-શકસ્તવં યાવત, શકસ્તવગમોવતારસંચારઃ, સ્વપ્રતિવાગભેરધામિમહા, અન્નો-સ્વપ્રકોઢા-પ્રીતિરુકુટુમ્બાવેચારાઃ, વૌક્ષા-જ્ઞાન-પરિવા-મોહા, ધોષાધેનાય-પ્રતિભેચરિતાન્તરાણિ, ધીઆદિનાયચરિત્ર-ત્રય-વિણલયઃ, સામાચારોમિચ્છા (૧) પ્રીકાલિકાનાયકયા.' ફાલિકાનાચાર્યનો કયા સ્વતંત્ર હોવાથી તે કલ્પસૂત્રની પાઢ સદ્ન અર્વાચીન સમયમા દાણલ થણી છે. ઘેર આપેલી વાચનાની ગણનામાં આદિનાય અથવા ઋષભચરિત્ર અને સ્થવિરાવલી એ બંનેને એકજ વાચનામાં મૂકી ધીધા છે, આ

સરસો જોવામાં આવતો નથી; તથાપિ, તે વધુ મિત્ર પળ પડતો નથી. અને તેથી કરીને આ આવૃત્તિમાંનું કોઈ પણ સૂત્ર, હસ્તલિખિત પ્રતિઓમાં સરલતાપૂર્વક લેવા શકાય તેમ છે. એરાવલીની તેર સૂત્રોમાં કરેલો વહેંચણી મારી પોતાની છે. કારણ કે, કોઈ પણ પ્રતિમાં આવી વહેંચણી કરેલી જોવામાં આવતી નથી.

કલ્પસૂત્ર ઉપર સૌથી પ્રાચીન ટીકા જો કે મેં જોઈ નથી, પણ તે ચૂર્ણિ હોય તેમ લાગે છે. તે બીજી બધી ચૂર્ણિઓની માફક પ્રાકૃતમાંજ લખાણી હશે. કારણ કે ટીકાઓમાં કોઈ કોઈ પ્રસંગે તેના અવતરણો લીધેલાં જોવામાં આવે છે. તેના કર્તાનું નામ મળતું નથી, પણ તે હમેશાં ચૂર્ણિકારના નામે ઓળખાય છે. વાકાંની બધી અર્વાચીન ટીકાઓ સૌથી અગર ણાડકતરી રીતે તેના ઉપરજ રચાણી છે. અને પ્રાયઃ તે તેના સંસ્કૃત ભાષાંતર રૂપે જ છે. આમ માનવાનું કારણ એ છે કે એ ટીકાઓમાં મૂલના જે અર્થો આપેલા છે તે 'સપ્તઠી ટીકાઓમાં લગભગ એકજ સરવા, શબ્દે શબ્દ, મળતા આવે છે. આ વાત સર્વ ટીકાઓનું મૂલ એકજ મારી લઈએ તોજ સમજાવી શકાય તેમ છે. બીજું એ છે કે સર્વ ટીકાઓ ચૂર્ણિને મુખ્ય પ્રમાણ માને છે. તેથી આપણે પણ તે કૃતિને સ્વામાવિકરિતે તે સર્વેના પાયામૃત-(મૂલમૃત) માનવી જોઈએ. ઘણાક આધુનિક ટીકાકારોએ પોતાની ટીકાઓમાં ઉત્તરાધ્યયન અને આવશ્યકસૂત્રની ટીકામાંથી કેટલીક કથાઓ લઈને વચમાં દાખલ કરી દીધી છે. અને કોઈ કોઈ સ્થલે વિસ્તારયુક્ત એવી અપ્રસ્તુત 'હકિકતો' ઉમેરી દીધી છે.

સૌથી જૂની ટીકા તરીકે મેં સંદેહવિપૌવાધે નામની યજ્ઞિકાને ઉપયોગમાં લીધી છે. એના કર્તા

બંને ભાગોને જો આપણે બે જુદી જુદી વાચનામાં વિભક્ત કરીએ, અને કાલિદાસચર્યની કથાને પાંચ નોંધીએ તો તે વાચનાનો પ્રસિદ્ધ વ્યવસ્થાની બરાબર ખરું રહે છે.

જિનપ્રમમુનિ છે. તેમણે એ ટીકા અયોધ્યામાં સંવત ૧૩૬૪ ના આશ્વિન સુદી ૮ અર્થાત્ સને ૧૩૦૭ માં પૂરી કરી હતી. એની ગ્રંથ સંખ્યા ૩૦૪૦ છે. એ ટીકાની અંદર તેમણે પર્યુષણાકલ્પનિર્યુક્તિની ૫૫ ટીકા લખી છે, આ પર્યુષણાકલ્પનિર્યુક્તિની છાસઠ પ્રાકૃત ગાથાઓ છે, અને તે પર્યુષણા ઉપર એક નિર્વાંધ રૂપે છે. આ નિર્યુક્તિની ટીકા તેના કર્તાના કહેવા મુજબ નિશીથચૂર્ણિમાંથી સંગૃહીત કરવામાં આવી છે, અને થોડા ટુંકા સંસ્કૃત વાક્યો સિવાય તે પ્રાકૃતમાં જ લખાણી છે. આ આશ્ચર્યકારક વાત આપણને ઉદાહરણ આપી સમજાવે છે કે જૈન-ગ્રંથકારો પોતાના પૂર્વજોની કૃતિઓમાં કેટલો બધો સ્વરાચિત ઉમેરો કરતા હતા. જો પર્યુષણાનિર્યુક્તિ ઉપર તેના પહેલાની સંસ્કૃત ટીકા હોત તો જિનપ્રમમુનિએ ચૂરૂર તેની નકલ કરી હોત. પરંતુ પોતાને અન્ય સાધનોના અભાવે આત્મનિર્ભર થવાનું હોવાથી તેમણે નિશીથચૂર્ણિમાંથી અવતરણો લીધા. પરંતુ તે અવતરણોનું સંસ્કૃત માયાન્તર સુદ્ધાં કરવાની તેમણે તત્સદી લીધી નથી. આપણને માનવાને કારણ મળે છે કે જિનપ્રમમુનિના સમયમાં કલ્પસૂત્ર ઉપર કોઈ એક સંસ્કૃત ટીકા વિદ્યમાન હતી. કારણ કે તેઓ પોતાની ટીકા સંસ્કૃતમાં લખે છે; પરંતુ ચૂર્ણિનો સારાંશ આપતા નથી. આ ટીકાની મારી પ્રતિ કે જેને માટે હું ડૉ. ગુલ્લરની ઉદારતાનો ઋણી છું, તે સંવત ૧૬૭૪ માં લલવામાં આવી હતી. એમાંનાં ઉતારા તથા એમાં નિર્દિષ્ટ કરેલાં વિવિધ પાઠાન્તરો મેં ટિપ્પણમાંડના ચિન્હથી દર્શાવ્યાં છે.

મૂલગ્રંથના અર્થવિષેષનના વિષયમાં ઉપરની ટીકા સિવાય નીચે સૂચવેલી બીજી ત્રણ ટીકાઓ પણ થોડેજ અંશે મિત્ર પડે છે. પરંતુ આ ટીકાઓમાં એક ઉપોદ્ધાત ઉપરાંત અન્ય મંથોમાંથી ઘણાં અવતરણો અને કથાઓ આપેલી છે. તેમાં પર્યુષણાકલ્પનિર્યુક્તિની ટીકા નથી. તે ત્રણે ટીકાઓ નીચે પ્રમાણે છે:—

૧-વિનયવિજયજીકૃત સુવોધિકા. સં. ૧૬૯૬. આ ટીકાનું ગ્રંથપરિમાણ ૫૪૦૦ છે. આની જે પ્રતિ મેં વાપરી છે તે મુંબઈના સંગ્રહની છે.

૨-ધર્મસાગરકૃત કિરણાવાલી ઉર્ફે વ્યાખ્યાનપદ્ધતિ. સંવત્ ૧૬૨૮. ગ્રંથસંખ્યા, ૭૦૦૦. મુંબઈ.

૩-સમયસુંદરકૃત કલ્પલતા. આમાં સાલ આપેલી નથી. પણ લેખક કહે છે કે તેના ગુરુ, સકલ. ચંદ્રના ગુરુ, જિનચંદ્ર અકબરના વલતમા વિધમાન હતા. આ ઉપરથી તેમના સમયનું અનુમાન કરી શકાય તેમ છે. આ કલ્પલતા તે, જેના ઉપોદ્ધાતનું ડૉ. સ્ટીવન્સન માપાન્તર કર્યાનો ઢોંગ કરે છે, તે કલ્પલતા નથી. આ કલ્પલતાની એક પ્રતિ ડૉ. બુલ્હેરે કૃપા કરીને મને વાપરવા આપી હતી. તેની ગ્રંથસંખ્યા મૂલ અને ટીકા બંનેની મળીને ૭૭૦૦ છે. તેના ઉપર મિતિ સંવત્ ૧૬૯૯ ની છે.

આ ટીકાઓથી વધારે અર્વાચીન અને એનાથી અલપ મહત્ત્વના ગ્રંથો નીચે પ્રમાણે છે.—

૪-લક્ષ્મીવલ્લભકૃત કલ્પદ્રુમ. આમાં દરેક સૂત્રની પાછલ તેનું સસ્કૃત માર્પાંતર આપેલું છે. આ ગ્રંથનો મોટો ભાગ અન્ય ટીકાઓમા ઉપલબ્ધ થતી કથાઓનો બનેલો છે. આ ટીકાને અતે કાલિકાચાર્યની કથા પણ ઉમેરેલી છે. મારી પાસે કલ્પદ્રુમની એક હસ્તલિખિત પ્રતિ છે. પણ તે લરાબ અને અર્વાચીન છે. સં. ૧૯૦૩.

૫-મૂલની બધે પંક્તિઓ વચ્ચે આપેલા માપાન્તર રૂપ એક નનામા લેખકનો ટવો. કથાસમૂહ અને સ્વપ્નોનું ગુજરાતી સ્પટીકરણ તેના યોગ્યસ્થાને દાખલ કરેલા છે. આ આવૃત્તિમા મેં તેને ૦ નિશાનીથી દાખવ્યો છે. આના લેખક અગમ્યસુંદર ગુનિ હતા (કદાચ તે કર્તા પણ હોઈ શકે !). સંવત્ ૧૭૬૧.

૬-કથાદિ રહિત એક ટવો. આ પ્રતિ હિન્દિ આ ઑફિસ લાહોરેની નં. ૧૫૯૯ ની છે. કોલકાતે

પોતાના સારાંશો (Abstracts) તૈયાર કરવામાં આ પ્રતિનો ઉપયોગ કર્યો હતો.

મેં તપાસેલા અને ફેટલેક પ્રસંગે ઉપયોગમા લીધેલા એવા ઉપરોક્ત ગ્રંથો ઉપરાંત નીચેના ગ્રંથો પણ અહિંયાં ઉલ્લિખિત કરવા યોગ્ય ધારું છું.

૭-વિજયતિલકની કલ્પદીપિકા. સં. ૧૬૮૧ ગ્રંથસંખ્યા. ૪૫૦૦. હાં. બુલ્હેરની આ ટીકાની પ્રતિ મેં જોઈ છે.

૮-યશોવિજયનો શાલામઘ (?). ડૉ. સ્ટીવન્સને પોતાના કલ્પસૂત્રની પ્રસ્તાવનાના નવમા પૃષ્ઠ ઉપર આનો નિર્દેશ કરેલો છે.

૯-કલ્પસૂત્રટીકા. જુઓ, ડૉ. બુલ્હેરનો સંસ્કૃત હસ્તલિખિત પુસ્તકોની ચોપનો રીપોર્ટ. ૧૮૭૨-૭૩.

૧૦-ચાર્લિનના સંગ્રહની એક નનામી ટીકાની પ્રતિ. (પ્રતિ અથવા પત્ર. ૬૩૮.) આ પ્રતિ તદ્દન બેપરવાઈથી લેલેલી છે અને તે મને કોઈ રીતે ઉપયોગી નિવડી નથી. સંવત્ ૧૭૫૯.

ટિપ્પણમા મેં માત્ર સંદેહવિષયોપધિમાંથી ઉતારા આપ્યા છે. પહેલાં મેં સુવોધિકા અને કિરણાવાલી-માથી ઉતારા કર્યા હતા, પરંતુ મને સંદેહવિષયોપધિ મળવાથી, સૌથી પ્રાચીન ટીકાકારના શબ્દોમા સમજુતી આપવાનું મેં વધારે યોગ્ય ધાર્યું છે.

કલ્પસૂત્રનું એક અંગ્રેજી માપાન્તર રે. ૦ ડૉ. સ્ટીવન્સને પ્રકટ કર્યું છે. જૈનગ્રંથોમા આજ સુધીમા પ્રમાણ ગણાતું માત્ર આ એકજ પુસ્તક પ્રકટ થયેલું છે, પરંતુ મારે દિલ્હીની સાથે લલતું પડે છે કે તે માત્ર યથાર્થ નથી પટલુંજ નહીં પણ તે અવિશ્વસનીય પણ છે. જો કે એ એક માપાન્તર ગણાય છે.

૧ 'કલ્પસૂત્ર અને નવતત્ત્વ.' આ બંને ગ્રંથો જૈન ધર્મ અને તત્ત્વજ્ઞાન વિષયના છે, અને માગધી માપામાથી માપાન્તરિત કરેલા છે આમાં એક પરિશિષ્ટ આપવામા આવ્યું છે, અને તેની અદર મૂલ્યમયની માપા ઉપર વિવેચન કરેલું છે. ભાષા ન્તરકર્તા રે. જે. સ્ટીવન્સન, ડી. ડી. બી. પી. આર. એ. પૃષ્ઠ ૧૪૪૮.

પરંતુ વાસ્તવિકતામાં તે માધાન્તર નથી, ઇટલુંજ નહીં. ણ ઘણે ભાગે તો વેકાઢજીથી ઘસડી કાઢેલો એક ગાંઠ માત્ર છે. આનો પ્રથમનો ભાગ માધાન્તરમાં, ગામાચારીના વિશેષ કઠિન ભાગ કરતાં સાધારણ-યા વધારે વિશ્વસનીય રીતે ઉતારવામાં આવ્યો છે. ગરળ કે એ પ્રકરણમાં ડૉ. સ્ટીવન્સન કોઈ પણ હત્ત્વનો ભાગ મૂકી દેતા નથી. મૂઠમાં જ્યાં જ્યાં ફેટ ભાગો આવે છે ત્યાં ત્યાં તેઓ માધાન્તર કરવાને બદલે માત્ર વિવરણ કરે છે. પરંતુ સામાચારીમાં તો નિરાઢીજ બાબત ટૂંટિગોચર થાય છે. ત્યાં તો તેમણે યા તો મોટા ભાગોને ઉઢાવીજ દીધા છે, અથવા તો સંક્ષિપ્ત રૂપમાં મૂકી દીધા છે. એમાં અર્થની સ્પષ્ટતા તરફ ભાગ્યેજ ધ્યાન આપવામાં આવ્યું છે.*

વાસ્તવિકતામાં ડૉ. સ્ટીવન્સનના પુસ્તકને, આજ-કાલ પ્રકટ થતા પ્રાકૃત-સંસ્કૃત માધાના મંથો તથા તેના માધાન્તરોની પદ્ધતિએ તપાસવું તે તેમને શ્રેષ્ઠ અન્યાય કરવા જેવું છે. કારણ કે ત્રીસ વર્ષ પહેલાંનો તે સમય પૌર્વાત્ય સાહિત્યના અધ્યયનની બાલ્યાવસ્થાનો પ્રારંભિક કાઢ હતો. અને માધાવિજ્ઞાનની યથાર્થતાના સંબંધમાં જેટલો વિચાર અત્યારે કરવામાં આવે છે તેટલો તે યત્ને કરવામાં આવતો ન હતો. ડૉ. સ્ટીવન્સન પોતાના સંશોધન-ક્ષેત્રમાં પહેલ કરનાર હતા અને તેમણે મહાન ઉત્સાહ અને અવિશ્રાન્ત ઊર્મગથી પોતાના કાર્યક્ષેત્રમાં ઉધમ કર્યો હતો. પરંતુ દિલગીરી પામવા જેવું ઇટલુંજ છે કે ડૉ. સ્ટીવન્સન પોતાના માધાવિજ્ઞાનના અભ્યાસના અમાવ-થી* તેમજ તેમનું માનસિક વરળ ઈશ્વરવિપયક જ્ઞાન

૧ આ ઠેકાણે ટિપ્પણમાં ડૉ. જેકોર્બીએ સામાચારી-માંના એક સૂત્રનું, ડૉ. સ્ટીવન્સને કરેલા તેજ સૂત્રના માધાન્તર સાથે, પોતાનું માધાન્તર તુલનાર્થે મૂકેલું છે. પરંતુ તે આ પત્રની દૃષ્ટિએ અનુપયોગી હોવાથી, અહીં આપ્યું નથી. અનુવાદક

* ડૉ. સ્ટીવન્સનનું પ્રાકૃતભાષા સંબંધી જ્ઞાન કેટલું સધુ મર્યાદિત હતું, તે આપણે તેમને કરેલી માળખીમાળા ઉપરની ટીપ્પણ ઉપરથી સહેલાઈથી સમજી શકીએ છીએ. પૃ. ૧૪૩ ઉપર

તરફ જુલેકું હોવાથી તેઓ પોતાની મહેનતના પ્રમાણમાં યોગ્ય પરિણામો ઉપજાવી શક્યા નથી. હું માત્ર યથાર્થસ્થિતિને લક્ષ્યમાં રહેને જ પ્રાચ્યવિદ્યાના અભ્યાસિઓને તેમના કલ્પસૂત્રને ન વાપરવાની સૂચના કરું છું.

કલ્પસૂત્રની પ્રસ્તુત આવૃત્તિ નીચે જણાવેલી પ્રતિઓ ઉપરથી તૈયાર કરવામાં આવી છે.

૧ સંજ્ઞાવાઢી પ્રતિ મારા કરેલા સંપ્રહમાં સર્વોત્તમ છે. તેના ૧૧૩ પાના છે, અને તે ચાંદીની શાહીથી લેખેલી છે. આનાં ઘણાં શરા પાનાં ક્રમથી કાઢા અને રાતારંગથી રંગેલાં છે. એકેક પાના ઉપર છ છ લીટિઓ છે. મૂઠ મંથમાં ઘણાં ચિત્રો આપેલાં છે. તેના હાસિઆમાં અરવશ્થાનના શિલ્પશાસ્ત્રના નિયમપ્રમાણે વેલ-બુટ્ટિઓ કોતરેલી છે. (આવી જાતની હસ્તલેખિત પ્રતિઓ જૈનો પાંચે ઘણી જોવામાં આવે છે.) તેના લાંબા પુષ્પિકાલેખમાં, તેની લલાયાની સાલ વિક્રમ સંવત્ ૧૪૮૪ (સન ૧૪૨૭) આપેલી છે. એ પ્રતિમાં સૂત્ર અગર વાચનાના વિ-

તેઓ લેખે છે કે ‘તિસલા’ અને ‘માહી’ આ બન્ને પ્રથમાના રૂપો છે, પૃ. ૧૪૨ ઉપર તેઓ ‘કુલિંછિ’ અને ‘સમળિ’ ની અનુભમે ‘કુલિંછિ’ અને ‘સમળિ’ના રૂપમાં જોડી કરે છે અને ‘પાશિતા યે’ ને ‘પાશિતાળ’ લેખે છે. આટલું કહ્યું તેમના પ્રાકૃતના જ્ઞાનના સંબંધમાં બધ છે. સંસ્કૃતભાષા સ્વથી પણ તેમનું જ્ઞાન કેટલા કેટલા દરજ્જાનું હતું તે કલ્પલતામાના (પૃ. ૧૨) એક સંસ્કૃત પદ્યના તેમણે કરેલા અંગ્રેજી માધાન્તરને, આગળ પૃ. ૧૨ ઉપર આપેલા તેજ પદ્યના મારા માધાન્તર સાથે સરસાવવાથી જણાઈ આવશે. ડૉ. સ્ટીવન્સનનું માધાન્તર નીચે મુજબ છે.—‘હવે હું કલ્પસૂત્રના કર્તાનો ડાખ કરું છું. તેમનું નામ શ્રીમદ્રાહુસ્વામી હતું. તે એક વિવક્ષણ શુદ્ધ હતા. તેઓ પોતાના વિષયની (ટિપ્પણ, મૂળ નાટ્ય-પૂર્વ) ચીંદ શાસ્ત્રના જાણનાર હતા, અને વિવક્ષણ આચાર્ય હતા. અહીં નામ સૂચવાતા યથો—દશાધુતતરન્થ, અટમાધ્યયન, અને પ્રત્યાસ્થાનપ્રવાદ કે જેમાં તેમણે નવ શાસ્ત્રો જોડે—તેને, માર્ગદર્શક તરીકે રાસીને તેમણે આ વરપણ બનાવ્યું હતું.

ભાગો વતાવેલા નથી. તેમાં આપેલું સ્વમર્ણન પ્રસિદ્ધ વર્ણનથી ભિન્ન જણાય છે. અને સ્પષ્ટરોતેજ તે અસલી હોય તેમ લાગતું નથી. કારણ કે આ સ્વમર્ણ-વર્ણના પ્રારંભમાં સાધારણરોતે મૂકવામાં આવતું મં.૨૦૦ નું ચિન્હ અહીં મૂકેલું નથી. ?

[A સંજ્ઞાવાદ્યો પ્રતિનુ વર્ણન કર્યા બાદ, ડૉ. જે. કોર્બી, અન્ય અલ્પ મહત્વની પ્રતિઓ—કે જેમાંની કેટલીકને તેમણે પરસ્પર મેલ્લી હતી અને કેટલીકને માત્ર તપાસી જ હતી તેનાં નામો અને વર્ણનો આપે છે. પરંતુ, તે આ પત્રની દૃષ્ટિ અનુપયોગી હોવા થી, અહીં આપ્યાં નથી. અનુવાદક.]

અનુપૂર્તિ.

૧. આ સંપૂર્ણ ઉપોદ્ધાતમાં સર્વત્ર મેં શ્વેતાંવર સંપ્રદાય-નોજ આધાર લીધો છે. દિગંધરોની પળ પોતાની સાંપ્રદાયિક માન્યતા છે, અને તે શ્વેતાંવર સંપ્રદાયથી કેટલીક પરંતુ અગત્યની શાબતોમાં ભિન્નતા રાખે છે. આ સંપ્રદાયની માન્યતાની માહિતી મેં, ડૉ. બુહરે વાંચવા આપેલી એક આધુનિક ગુર્વાલી ઉપરથી મેલ્લી છે. તે જયપુરમાં,—તેજ શહેરની આપામાં લખાણેલી છે. એ ગુર્વાલીમાં ઘણી પ્રાકૃત ગાયાઓ સમજાવવામાં આવી છે. અને તે ગાયાઓની પ્રાકૃતભાષા શૌરસેની સાથે આશ્ચર્યજનક મળતાણું ધરાવે છે. આ ગુર્વાલીમાં બે મદ્રવાહુનો ઉલ્લેખ છે. પહેલા મદ્રવાહુ, જે અંતિમ શ્રુતકેવલી હતા, તે વીર નિર્વાણના ૧૬૨ મા વર્ષમાં ગુજરી ગયા હતા. અને બીજા મદ્રવાહુ જે સ્થવિર કહેવાતા હતા, તેમની મિતિ વી. સં. ૪૯૨—૫૧૧ આપેલી છે. તેઓ યશોમદ્રના અંતેવાસી હતા, આ યશોમદ્રનાં ગુરુનું નામ સુમદ્ર હતું અને તેઓ (વી. સં. ૪૬૮—૪૭૪ માં) વિદ્યમાન હતા. સુમદ્રના અસ્તિત્વના બીજા વર્ષમાં અર્થાત્ વી. સં. ૪૭૦ માં વિક્રમનો જન્મ થયો હતો. આ હકિકતને એ ગુર્વા-

લીમાં ઉદ્ધૃત કરેલી અર્ધા ગાથા દ્વારા પુષ્ટિ મળે છે:—

સત્તરિ ચતુસદ્જુતો

તિળ કાલા વિક્રમો હવઃ જન્મો ।

આ ટેકાણે એ ધ્યાનમાં રાખવું જોઈએ કે વિક્રમના સંવત્ની શરુઆત તેના જન્મથી થતી નથી પરંતુ તેના રાજ્યારોહણના સમયથી અર્થાત્ તેના આયુષ્યના ૧૮ મા વર્ષથી થાય છે. આ હિસાબ પ્રમાણે એ ગુર્વાલીમાં, વીર નિર્વાણનું ૪૯૨ મું વર્ષ, કે તેમાં મદ્રવાહુની કારકીર્દીની શરુઆત થાય છે, તેને વિક્રમ સંવત્ ૪ ની સાથે સરલાવવામાં આવેલું છે. વળી તેની અંદર બીજા મદ્રવાહુથી માંડીને સંવત્ ૧૮૪૦ સુધીના સ્થવિરોની અનવરત નોંધ આપવામાં આવી છે. અને તે સ્ત્રી પરંપરાના આધારે ગોઠવેલી હોય તેમ દેખાય છે.

આ ગુર્વાલીની અનુસાર પુણ્યદંત (સમય-વી. સં. ૬૩૩ થી ૬૮૩) પછી સપ્તઘા અંગો નદ થઈ ગયાં હતાં. તેમણે સમગ્ર પવિત્ર પ્રવચન-પુસ્તકોમાં લખાવ્યું હતું. તેમના અવસાનનું વર્ષ જે વી. સં. ૬૮૩ છે, તેને પણ વિક્રમના જન્મ વર્ષ તરીકે ગણવામાં આવ્યું છે.

મદ્રવાહુના સંઘમાં દિગંધર પરંપરા મટે જુઓ Lewis Rice. મદ્રવાહુ અને શ્રવણ વેલ્લોલ; ઈન્ડિ. ઇન્ટિ. ૩. ૫૦ ૧૫૩. કળીટકની દિગંધર પરંપરામાં મદ્રવાહુને ઉત્તરહિંદુસ્થાનમાંથી સ્વદેશ છોડી પરદેશ જતા સંઘના નેતા તરીકે ગણાવ્યા છે; અને પાટલીપુત્રના રાજા ચન્દ્રગુપ્તને, તેમાં, તેમના એક વીક્ષિત શિષ્ય તરીકે ગણાવ્યો છે.

૧ ઉપરોક્ત કથનાનુસાર મહાવીર અને વિક્રમના સંવત્ની વચ્ચે ૪૮૮ વર્ષનું અંતર પડે છે. અને તેથી મહાવીર નિર્વાણનો સમય ૬. ઇ. પૂર્વે ૫૪૫ માં આવે છે, આ હિસાબે આ સાલ અને ઊંછોતની કાલગણનાનુસાર નિર્ણય કરેલી મુદ-નિર્ણયની સાલની વચ્ચે માત્ર બે જ વર્ષનો ફરક રહે છે.



જૈનધર્મનું અધ્યયન.

[લેખક—શ્રીયુત સી. ડી. રાજવાડે, ઇમ્. ઇ. ડી. પસ. સી. પ્રોફેસર ઑફ પાટી, ઘરોડા કૉલેજ.]

પ્રો. વેમર, બુલ્હર, જેકોબી, હૉર્નલ, માન્ડારકર, સ્યુમન, રાઈસ, ગેરિનાટ વિગેરે વિદ્વાનોએ જૈનધર્મના સંબંધમાં અંતઃકરણપૂર્વક અથવા પરિશ્રમ કરી અनेક મહત્ત્વની શોધો પ્રકટ કરેલી હોવા છતાં, ભારતવર્ષીય વિદ્વાનોએ હજી સુધી ઇ ધર્મના અભ્યાસ તરફ પુરતું ધ્યાન આપ્યું નથી. પ્રાચ્યવિદ્યા-કલા-સાહિત્યના સંશોધનના પ્રારંભ કાળમાં, કદાચિત્ જૈનસાધુઓની સ્લાસીનતાને લીધે, તથા, હસ્તલિખિત પુસ્તકોમાં છુપાપૂંછે પોતાના ધર્મનું પવિત્ર જ્ઞાન જૈનતરોને આપ-વામાં તેઓની નાસુધી હોવાને લીધે, તદ્વિપથક અધ્ય-યનમાં વિદ્વાનોને પ્રેરણા થઈ નહીં હોય. પછી તો, વિદ્વાનોનો અનુરાગ બૌદ્ધધર્મના અભ્યાસમાં વધતો ગયેલો હોવાથી કેટલેક અંશે, તેઓની ધર્મવિષયક અભ્યાસમાં આ એક મહત્ત્વની શાલા તરફ ઉપેક્ષા થઈ ગઈ હતી. વસ્તુતઃ, પ્રારંભમાં વિદ્વાનોના મગજ ઉપર બૌદ્ધધર્મની ઇટલી તો પ્રબલ સત્તા જામી ગઈ હતી કે તેઓ જૈનધર્મને બૌદ્ધધર્મની એક શાલા તરી-કેજ જણાવવા લાગ્યા હતા. પરંતુ, હવે તેઓની દૃષ્ટિ-મર્યાદાને આચ્છાદિત કરનારા પડઢો નષ્ટ થવા માંઢ્યાં છે અને તેથી જૈનધર્મ પૂર્વના ધર્મોમાં પોતાનું સ્વતંત્ર સ્થાન પ્રાપ્ત કરતો જાય છે. જૈનસમાજ પળ સુસ્તીમાથી જાગ્રત થતો જાય છે. અનેક નિયતકાલિ-ક અને સામયિક પત્રાદિ પ્રકટ થતા દૃષ્ટિગોચર થાય છે. સાધુઓને પળ પોતાની જવાબદારીનું માન યતું હોય તેમ જણાય છે. કોમના ધનિકર્મ તરફ-થી મઢ્ઢી ઉદારતાના આશ્રિત ચનેલાં પરોષકારી મંઢ્ઢો દિવસે દિવસે વિશેષ રૂપમાં જૈન ગ્રંથો પ્રકટ કરતા જાય છે. જૈનધર્મ અને સાહિત્યવિષયના અનેક

લઘુ ગ્રંથો, સાર ગ્રંથો, સ્થૂલવર્ણનાત્મક ગ્રંથો, રહસ્યો-દુષાટકગ્રંથો(Key=કુંચીઓ) શબ્દકોશો, ઇત્યા-દિ ભારતવર્ષના વિદ્વાનો દ્વારા સંપાદિત થઈ, પ્રકા-શિત થતા જાય છે. અને આ સર્વે ઉપરાંત, દેશી માપામાં પળ પ્રતિવર્ષ મોટા પ્રમાણમાં જૈનસાહિત્ય મહાર પડતું જાય છે.

આમ હોવા છતાં હજી ઘણું કરવાનું બાકી છે. જૈનધર્મ તે માત્ર જૈનોને જ નહીં, પરંતુ તેમના સિવાય પ્રાચ્યસંશોધનના પ્રત્યેક વિચાર્ય અને સ્લાસ કરીને જેઓ પૌર્વાત્ય દેશોના ધર્મોના તુલનાત્મક અભ્યાસમાં રસ લેતા હોય તેમને તક્ષીન કરી નાંખે એવો રમિક વિષય છે.

જૈન સાહિત્યની અર્વાચીન સંશોધન પદ્ધતિ અનુ-સાર અને ગુણદોષની વિવેચક દૃષ્ટિએ અભ્યાસ થવા-ની મ્હુ આવશ્યકતા છે. આ વિષયના નિપ્પાત વિદ્વાનો સ્પષ્ટ જણાવે છે કે આવી રીતે તુલનાત્મક પદ્ધતિએ તેનો અભ્યાસ થવાથી હિંદુસ્થાનના પ્રાચીન ઇતિહાસના સંબંધમાં અત્યાર સુધીમાં અજ્ઞાત રહેલી ઘણીક હકિકતો પ્રકટ થયો, અને ઇતિહાસિક કા-લ્પની માહિતી વગરનાં ઘણીક સ્લાડી જગ્યાઓ પૂર્ણ થયો. આવી રીતે, ઇતિહાસ-મેરી, તેમજ આર્યાવર્તના પ્રાચીન ધર્મોના અને તત્ત્વજ્ઞાનના અભ્યાસીને જૈન-સાહિત્ય એક તદ્દન નવું અને અણસેડાપૂંછું વિમ્મૂત ક્ષેત્ર છે. પરંતુ વર્તમાનમાં જૈનધર્મના અભ્યાસીને—કે જ નિપ્પક્ષપાતી અને સમદર્શી મનથી ઇ વિષયનો અભ્યાસ કરવા માંગતો હોય, તેને પોતાના કાર્યમાં કેટલીક મુશ્કેલિઓ નઢે છે. પ્રથમ અને પ્રધાન મુશ્કેલી ઇ છે કે યોગ્ય રીતે સંપાદન કરેલા મૂલ

અને પ્રામાણિક મંથોનો અસ્યોર અમાવ છે. પણ વાચત તો મુવિજાત છે કે જૈનોના પવિત્ર મંથોની માયા અર્ધમાગધીના નામે ઓઢસાતી પ્રાકૃત છે. આ માયા અસ્યોર ધના જૈનસાધુઓ પણ બરાબર સમજતા નથી. કારણ કે ઝ્યોર તેઓને તે મંથોના અર્થને સમજાવવાનો પ્રસંગ આવે છે ત્યારે તેઓ પણ મૂઝ સાથે આપેલી સંસ્કૃત છાયા અથવા ટીકા અપરથીજ પોતાનું કામ ચલાવે છે. આવી પદ્ધતિનું વિશેષ અનુસરણ થવાને લીધે મૂઝ માયા—પ્રાકૃતમાયાના અધ્યયનની ઉપેક્ષા થઈ છે, અને પરિણામે ધર્નાક મૂલો અને અસંગતિઓ સ્વાભાવિકરિતે તે માયામાં દાક્ષલ થઈ ગઈ છે. ધર્ના હસ્તલિખિત પ્રતિઓ શુદ્ધ પાઠાન્તરોની દૃષ્ટિ તો નિરાશાજનક સ્થિતિવાઢીજ જોવામાં આવે છે. તેથી જૈનસાહિત્યના વ્યાસંગિઓએ પ્રથમ તો વિવિધ પુસ્તકાલયોમાં સંગ્રહીત સપઢી પ્રતિઓ એકત્ર કરી, સૂક્ષ્મનિરીક્ષણપૂર્વક તેને પરસ્પર મેલવવાનું કાર્ય હાથ ધરવું જોઈએ. ત્યાર પછી પાઠા-ટેકન્ટ સોસાપટ્ટીએ છપાવેલી વૌદ્ધ મંથોની આવૃત્તિઓની પદ્ધતિ અપર જૈનોના પવિત્ર મંથોની વિધાસ-પાત્ર આવૃત્તિઓ તૈયાર કરવી જોઈએ. અલબત્ત, આ કાર્ય ધર્નુજ ત્રાસદાયક અને શ્રમસાધ્ય છે. પરંતુ જ્યાં સુધી આ કાર્ય થાય નહીં ત્યાં સુધી એક પગલું પણ આગઢ્ઢ વધવાની આશા રાહી શકીએ નહીં.

આ કાર્ય એકાદ વ્યક્તિથી થાય તેવું નથી. પણ તેમાં વિવિધ મંઢઢો અને સંસ્થાઓની સહકારિતાની જરૂર છે. વર્તમાનમાં આ દિશામાં જે કેટલાક પ્રયત્નો થઈ રહ્યા છે તેમાં તો માત્ર નિરાશાજનક થેવડાપર્નુજ જોવામાં આવે છે. લગભગ સપઢી સંસ્થાઓ ઉત્તરાધ્યયનસૂત્ર અને કરૂપસૂત્ર જેવા અતિ-શય લોકપ્રિય થપલા મૂઢમંથો છપાવે છે. પરંતુ તેમના જેટલાજ મહત્ત્વના અન્વમંથો તદ્દન ઉપેક્ષાપાત્ર વન્યા છે. આ કાર્ય માટે ઉત્તમ માર્ગ તો એ છે કે આ દિશામાં પ્રયત્ન કરનારી સપઢી સંસ્થાઓએ સંપથી એકત્ર થઈ પ્રામાણિક પદ્ધતિએ મૂઢ મંથો

તૈયાર કરવાનું કામ અપાડવું જોઈએ. મારું માનવું છે કે આરાના ‘સેન્ટલ જૈન પસ્ટિશિમ હાઉસ’ જેવા મંઢઢને આ પ્રકારનું સહકારી કાર્ય અપાડવું કટણ પડે તેમ નથી. આ અપરાંત, હાલમાં છપાતા સપઢ્ઢ મંથો પોથી સાર્દશ્માં—(પત્રાકોર) છપાય છે અને તેથી તેનાં પાનાં છુટાં રહેતાં હોવાથી તેનો અપયોગ-કરતી વસ્તે વિધાર્થીઓને ધર્નાજ અઢઢળ પડે છે. વઢી કેટલાક સંપાદકો તો પોતાનું કર્તવ્ય પટલે સુધી મૂઢી જતા (મૂઢી નથી જતા પણ વાળતા જ નથી) એમ કહેવું વધારે ઉચિત છે.—મુનિ જિનવિજય) હોય તેમ જળાય છે કે મંથમાં આવતાં અવતરણોને જુદા પાડવા માટે નિશાની સરહી પણ કરતા નથી.

અપર નિર્દેશેલું કાર્ય ઝ્યોર અર્વાચીન પદ્ધતિ અનુસાર યોગ્યરિતે પૂર્ણ થશે—પટલે કે ઝ્યોર મૂઢમંથો-માં, પ્રકરણો અને સૂત્રોના આકારમાં જુદા જુદા સ્પષ્ટ વિભાગો પાડવામાં આવશે, તેમાં આવતાં અવતરણોને ઓઢસાવવામાં આવશે, અનુસન્ધાનોનું અન્વયણ કરવામાં આવશે, અનુક્રમણિકાઓ અને સૂચિપત્રો તૈયાર કરવામાં આવશે, ત્યારવાદ અર્વાચીન વિવેચનશાસ્ત્રની પદ્ધતિના નિયમોની સહાયતા પૂર્વક આ સાહિત્યની તપાસ માટે યોગ્ય સમય આઢ્ઢો ગળાશે. નવા સાહિત્યમાંથી જુનું સાહિત્ય સંભાલૂપૂર્વક તારવવું પડશે. વિવિધ મંથોની વની શકે ત્યાં સુધી સમયનિર્ણય કરવો પડશે, અને, તેની શુદ્ધતા યા નિર્દોષતા તપાસી તપાસીને જોવી પડશે. આમ કરતી વસ્તે સ્વાભાવિકરિતે ચર્ચાપાત્ર મુદ્દાઓના સંબંધમાં ઝઢાપોહ કરવા માટે છૂટ રહેવી જોઈએ, અને તે અપર પ્રામાણિક મતભેદ પ્રકટ કરવાની સ્વતંત્રતા હોવી જોઈએ. અત્યારે પ્રાચ્ય-વિધાવિપયક વિવેચનશાસ્ત્રના ને મિત્ર સંપ્રદાયો નજરે પડે છે. એક પક્ષ મૂઢમંથોને જેટલા વને જેટલા પુરાતનકાલના વતાવવા પ્રયત્ન કરે છે, અને વીજો પક્ષ તેને યેન કેન પ્રકારેન કાર્ડિટના પઢીના કોઈ એક કાલમાગમાં—અર્થાત્ અર્વાચીન સમયમાં

લેંચી લાવવા પ્રયત્નશીલ દેસાચ છે. ફેટલાક વઢી
 એવા પળ લોકો છે, જેમનાં મગજ પુરાણપ્રિયતાના
 વિચારોથી અતિશય સંકુચિત થઈ જાવું જોઈએ.
 અને તેથી પ્રાચીન ગ્રંથોમાં એક પળ મૂળ યા દોષ
 બતાવવામાં આવે છે તો તેઓ સ્વૂન ચીઢાઈ જાય છે.
 તેમનું એમ માનવું હોય છે કે મૂળ ગ્રંથના કોઈ પળ
 લિખિત અર્થ યા વિચારના સંબંધમાં સ્વતંત્ર ચર્ચા બિ-
 શ્કુલ કરી શકાયજ નહીં. પરંતુ આ મત અત્યારે
 પૂરી શકે તેમ નથી. છતાં. પળ ઇટલું તો જરૂર
 રાદ રાખવું જોઈએ કે પુરાણપ્રિયતાના પળ ઘણાક
 ઇયોગો છે. તે દ્વારા આપણને પુરાતન પરંપરાઓનો
 ઇરિચય મળે છે અને ઘણીક વસ્તે અન્ય સાધનોના
 શમાવે તેજ માત્ર આપણને માર્ગદર્શક હોય છે.
 તો કે પરંપરાઓની પળ ગંભીરપણે પરીક્ષા તો કરવીજ
 જોઈએ; પરંતુ તેનો સર્વથા સ્યાગ કરવો પળ કોઈ
 િતિ ન્યાય્ય નથીજ. અને આ વાતમાં સાધુવર્ગજ
 ત્રાસ મદદ કરવાની છે. તેણે પોતાની હંમેશની
 વૃષ્ટીનો સ્યાગ કરી, પોતાની પાસે જે પરંપરાગત
 િટો માહિતિઓનો મંડોલ હોય તે ઉપાસકો સમક્ષ
 ળ કરવો જોઈએ. હવે તેઓને એવો મય રાખવાની
 જરૂર નથી કે આમ કરવાથી કદાચિત્ તેઓ પોતાના
 ધર્મને જોખમમાં નાલી દેશે. કારણ કે સંતાડી રાસ-
 વાથી કદાપિ સત્યની વૃદ્ધિ થઈ શકતી નથી.

પળ આ મધી વ્યવસ્થા કરવા અને જૈનધર્મના
 અભ્યાસને સંગીન પાયા ઉપર લાવી મૂકવા માટે
 એક ઉત્સાહી અને શક્તિશાળી વિદ્વન્મંડલે આગલ
 આવવું જોઈએ; અને પોતાના દૃઢતામરેલા કામ દ્વારા
 જગતને બતાવવું જોઈએ કે આજ સુધીમાં શોધાણી
 અન્ય જ્ઞાનશાસ્ત્રો જેવી આ પળ એક શાસ્ત્ર છે,
 અને તે વીજી મધી શાસ્ત્રાઓથી લેશ માત્ર પળ મહ-
 ત્વમાં ઉતરે તેવી નથી. સુમાયે પવિત્ર આગમોની
 માપામાં નિપુણ થવાની એક મુશ્કેલી તો હવે મુન્-
 હના વિશ્વવિદ્યાલયે પોતાના અભ્યાસક્રમમાં
 અર્ધ-માગધીને સ્થાન આપી દૂર કરી છે. હવે

તો જૈન વિદ્યાર્થીઓની એ ફરજ છે કે તેમણે
 અંતઃકરણપર્વક આ માપાનો અભ્યાસ સ્વીકારી
 લેવો જોઈએ, અને જૈનકોમના ધનિકવર્ગે આ કાર્ય-
 માં વિશેષ ઉત્તેજન આપવા, દરેક પ્રકારની, તેમને
 મદદ કરવી જોઈએ. મેં સાંમઝ્યું છે કે એક જૈન
 સંસ્થા જૈન-ધર્મના વિદ્યાર્થીઓને જે મદદ જોઈએ તે
 સપઢી આપવા તૈયાર છે; તેથી આ વિષયના ઉત્સાહી
 વિદ્યાર્થીઓ આગલ આવી આ મહાન કાર્યના પ્રથમ
 પ્લોટું ટૂંક સમયમાં બતાવશે એ આપણે આશા
 રાલીએ છીએ.



જૈન આગમ સાહિત્યની મૂળ

ભાષા કઈ ?

અથવા

અર્ધમાગધી ઇટલે શું ?



[લેખક—શ્રીયુત પં. બેચરદાસ જીવરાજ,
 સ્થાય-ધ્યાકરણતીર્થ.]

જૈન ધર્મનું પ્રાચીન સાહિત્ય, જે અંગ, ઉપાંગ,
 નિર્યુક્તિ, માપ્ય અને ચૂળિં વિગેરેના રૂપમાં અત્યારે
 ઉપલબ્ધ થાય છે, તે મધ્યામાં વિશેષતઃ પ્રાચીન ગ-
 નાતું અંગસાહિત્ય કઈ માપામાં લખાયું છે ? એ
 પ્રશ્ન અઘાવધિ વિવાદાસ્પદ રહ્યો છે. જો ધારે તો
 ભારતવર્ષના માપાશાસ્ત્રિઓ એ પ્રશ્નને એક પઢમાં પળ
 સમાહિત ફરી શકે, પરંતુ તે મહાશયો પાસે, એવા
 અનેક પ્રશ્નો ઉપસ્થિત રહેલા હોવાથી અત્યાર સુધી
 આ પ્રશ્નને વગર સત્કારે જ ઉમા રહેવું પડ્યું છે.

❖ The study of Jainism ના શિરોલેખ નોંધે
 આ લેખ, લેખકે મઢ અંગેજીમાં, મરોડા કોલેજના પયા
 કેન્દ્રવારી માસના મેગેજીનમાં, પ્રગટ કરાવ્યો હતો. પરંતુ
 મુશ્કય કરીને જૈન સમાજમાં વાવવા માટે જ આ લેખ
 લખાણો હોવાથી લેખકની ળાસ ઇચ્છાનુસાર, અહીં એનો
 ગુજરાતી અનુવાદ પ્રગટ કરવામાં આવે છે.—સંપાદક,

આ યુગે પ્રત્યેક પ્રાચીન સાહિત્યની ભાષાનો ઇતિહાસ નિર્ણીત થઈ તે તે સાહિત્યના આરંભ-સમયો પણ લગભગ અવધારવામાં આવ્યા છે, તેવા પ્રસંગે જૈન ધર્મના પ્રાચીન સાહિત્યની શરૂઆતને લગતો વાતેમાં યોજાણ મૂળ ભાષા સંબંધી ઇતિહાસ પણ નિર્ણીત થવો અત્યંત આવશ્યક છે.

સંસારની પ્રત્યેક પ્રજાને વારસામાં મળેલ તત્ત્વ-જ્ઞાન વા આચારપદ્ધતિની સત્યતાનો મૂળ પાયો તે તે પ્રજાના મૂળ સાહિત્યના ઇતિહાસ ઉપર જ બંધાઈ-લ છે; તેમ જૈન પ્રજાના વારસા ઉતાર તત્ત્વજ્ઞાન વા આચારશૈલીની સ્થિતતા, તે પ્રજાના મૂળ સાહિત્યના ઇતિહાસ ઉપર અવલભે, એ કાર્યકારણના અસ્થિતિ નિયમને અનુસરતું જ છે. આટલી પ્રસ્તાવના કરી હું મારા પ્રશ્નની ચર્ચાની શરૂઆત કરીશ. કહેવાય છે કે,

‘ અદ્ધમાગહાપ્ ભાસાપ્ ભાસતિ અરિહા ’

પટલે ‘ અર્હન્ (વર્તમાન શાસનાધીશ શ્રીજ્ઞાત-પુત્ર-મહાવીર પણ) અર્ધમાગધી ભાષા દ્વારા બોલે છે ’ એ ઉક્તિ ઉપરાંત, આ પણ એક બીજી ઉક્તિ છે કે,

‘ અર્થ ભાસઈ અરિહા

સુતં ગંયંતિ ગણહરા નિરુગ્ન ’

અર્થાત્ ‘ અર્હન્ અર્થેનિ-માવેનિ-તત્ત્વજ્ઞાનના મૂળ મુદ્દાઓનિ-માયે છે અને ગણધરો તે મુદ્દાઓને (લોકપ્રાદ્ય કરવા માટે) નિપુણતા પૂર્વક ગંઠે છે કે ગુંથે છે. ’ આ બંને ઉક્તિઓથી એમ જાણી શકાય છે કે, શાસનાધીશ દીર્ઘતપસ્વી મહાવીરની સાર્વજનિક ભાષા અર્ધમાગધી હોવી જોઈએ, અને એ ઉપરથી જ એવી પરંપરા ચાલી આવે છે કે, જૈન ધર્મના અંગ-સાહિત્યની (જે અત્યારે વિદ્યમાન છે તેની પણ) મૂળ ભાષા માગધી વા અર્ધમાગધી છે. પણ આ પરંપરાને, અત્યારે ઉપલબ્ધ થતા અંગ-સાહિત્ય તત્ત્વદૃષ્ટિ-

પાત કરતાં તો, હું ઇતિવૃત્તની કોટિમાં મૂક્તાં નીચેનાં કારણોથી અચકાઉં છું.

પ્રત્યુત્ત ચર્ચાનું લંબાણ કરતાં પહેલાં મારે જણાવવું જરૂરનું છે કે, જેમ સંસ્કૃત, પ્રાકૃત અને પાલી વિગેરેનાં વ્યાકરણો છે તેમ જો અર્ધમાગધીનું પણ એકાદ સાંગોપાંગ વ્યાકરણ હોત તો, મારે આ પ્રશ્ન સાથે અર્ધમાગધીના સ્વરૂપને લગતો વાંજો પ્રશ્ન ન જ કરવો પડત.

વ્યાકરણકાર આચાર્યો જેવા કે-વરરુચિ, ચંડ, હેમચંદ્ર, કાત્યાયન, ત્રિવિક્રમ, સિંહરાજ, યાસ્મિક, સ્વધીધર અને માર્કેડેય વિગેરે ધંદિતોએ પોત પોતાના પ્રાકૃત વ્યાકરણમાં પ્રાકૃત, શૌરસેની, માગધી, પૈશાચી અને અપભ્રંશ ભાષાઓનાં સ્વરૂપ દર્શાવતી વેળા જો કયાંય અર્ધમાગધી ભાષાનું પણ પૂરેપૂરું સ્વરૂપ બતાવવા કૃપા કરી હોત તો આપણે તેઓના અત્યંત ઋણી થાત. પણ તે મહાશયો તરફથી તેવો પ્રયત્ન ન થયેલ હોવાથી અત્યારે હું ‘ જૈન સાહિત્યની મૂળ ભાષા કઈ ? ’ એ પ્રશ્નને ચર્ચવાના પ્રસંગ પહેલાં તે સંબંધે ચાલ્યો આવતો ‘ અર્ધમાગધીમયતા ’ કે ‘ માગધીમયતા ’ નો પ્રવાદ ત્યારે જ ચર્ચા શકું, જ્યારે પ્રથમ અહીં અર્ધમાગધી અને માગધી ભાષાનું પૂરેપૂરું સ્વરૂપ ઉપસ્થિત કરી શકું. એ હેતુથી જ પ્રારંભમાં પ્રકૃત ચર્ચાના મૂળરૂપ તે બંને ભાષાઓના સ્વરૂપની ચર્ચા કરતો ક્રમશઃ મારા અંતિમ ધ્યેય સુધી મહોંચવા યથામતિ પ્રયત્ન કરીશ.

આ સ્થળે મારે વાચકોનું લક્ષ્ય ‘ અર્ધમાગધી ’ શબ્દની વ્યુત્પત્તિ તરફ વિશેષ સંત્રાણનું છે. કારણ કે તે વ્યુત્પત્તિમાં જ તેનું સ્વરૂપ રહસ્ય છુપાઈલું છે. ‘ અર્ધમાગધી ’ શબ્દ ‘ અર્ધ ’ અને ‘ માગધી ’ શબ્દના એકીકરણથી બનેલો છે, તે વાત સૌ કોઈ સમજી શકે તેમ છે. તદ્વત ‘ અર્ધ ’ શબ્દ એક વિશિષ્ટ અર્થને સૂચવતો હોય એમ તેના પૂર્વ નિપાત ઉપરથી અવગોળી શકાય છે. સાધારણ રીતે ‘ અર્ધ ’ શબ્દ ‘ લગભગ અડધું ’ અને ‘ બરાબર અડધું ’ એ

૧ જુઓ ઔપચારિક મુદ્ર (પૃ. ૭૭)

૨ જુઓ શાસ્ત્રિક મુદ્ર (પૃ. ૧૮)

વજ્રે અર્થનો સૂચક છે. જે સમાસમા તે 'અર્થ' શબ્દ અવયવિથી પૂર્વના સ્થાનને શોમાવતો હોય, ત્યા તે, 'વરાવર અહધા' અર્થને સૂચવવા સાથે નાન્યતર જાતિમા રહે છે, અને જે સમાસમા તે ('અર્થ' શબ્દ) અવયવિથી પૂર્વના કે પછીના સ્થાનને અલઠ્ઠત કરતો હોય ત્યા, તે સાધારણ અર્થને જણાવે છે, અને તે સાથે તેને નરજાતિમા રહેવું પડે છે. આ હકિકત આદિમ વૈયાકરણ પાણિનિજીએ પોતાની અષ્ટાધ્યાયીમા "અર્થ નપુસકમ્ । ૨।૨।૨।" એ સૂત્રમા અને હેમચંદ્રજીએ "સર્મેડ્શેડ્ધર્થ નચા । ૩।૧।૫૪ ।" એ સૂત્રમા સ્પષ્ટપણે જણાવેલી છે. અર્થાત્ 'માગધ્યા અર્ધમ્-અર્ધમાગધી' એ વ્યુત્પત્તિથી થતો અર્ધમાગધી શબ્દ એમ સ્પષ્ટપણે સૂચવે છે કે, જે ભાષામા વરાવર અહધી માગધી ભાષા અને વરાવર અહધી બીજી બીજી ભાષાઓ મિશ્રિત થઈ હોય, તે જ ભાષા અર્ધમાગધી શબ્દથી સંબોધી શકાય. જો આપણે શબ્દોનો હિસાબ લગાવીએ તો એમ કહી શકાય કે, જે ભાષામા સો શબ્દોમા પચાસ શબ્દો તો માગધી ભાષાના, અને પચાસ શબ્દો બીજી બીજી ભાષાના—પ્રાકૃત, પાલી, શૌરસેની અને વૈશાલી વિગેરેના—મિશ્રિત થઈ હોય તે જ ભાષા 'અર્ધમાગધી' શબ્દનો અર્થ ધારણ કરી શકે છે. પરંતુ એમ તો ન જ હોઈ શકે કે, જે (સાહિત્યની) ભાષામા એકાદ રૂપ માગધી ભાષાનું હોય, અને બીજા વધારા રૂપે પ્રાકૃત^૧ કે ક્ષત્ર ભાષાના હોય તેને અર્ધ-માગધીનું નામ પડી શકે.

આ રીતે હું પ્રસિદ્ધ વૈયાકરણોના સાક્ષ આપવા ઉપરાંત વ્યુત્પત્તિ ઉપરથી પણ અર્ધમાગધી શબ્દના ઉપર જણાવેલા અર્થને જ સ્થિર કરૂં છું. અને એ જ અર્થને લક્ષ્યમા રાહી મારે અહીં સમઠી ચર્ચા કરવાની છે.

૧ અહીં હું 'પ્રાકૃત' તથા આગળ આવવા 'ઘૌરાશ્ત્રી' શબ્દથી પ્રાદેશિક સંકલિત અઢમ અધ્યાયગત તે ભાષાને વિવધ છું કે જે ભાષાનું વ્યાકરણ શૌરસેનીના પ્રકરણ પહેલાં આપેલું છે.

તીર્થંકર માપિત અર્થને ગણધરો જે સૂત્ર રૂપમા રૂથે છે તે સૂત્રો વર્ડે ભાષાએ નિવદ્ધ હોય છે, તેના માટે જૈન સાહિત્યમા નીચે પ્રમાણેનો જૂનો ઉલ્લેખ મળી આવે છે

“પોરાણમદ્દમાગહ—

માસાનિચય હવડ સુત્તં ।”

અર્થાત્ “ગણધર પ્રચિત પુરાતન સૂત્ર, અર્ધમાગધી ભાષામા હોય છે.” આમા આવેલ અર્ધમાગધ શબ્દના અર્થને સ્ફુટ કરતા નિશીય-ચૂર્ણકાર શ્રીજિનદાસ મહત્તરજી જણાવે છે કે—

“મગદ્દહવિસયમાસાનિવદ્ધ અદ્દમાગહ; અહવા અટ્ટારસદેધીમાસાણિયત્ત અદ્દમાગધં”

—નિશીયચૂર્ણ, લિ. પૃ. ૩૫૨.

અર્થાત્ “મગધદેશની અહધી ભાષામા નિવંધા-પલ તે અર્ધમાગધ, અથવા અદાર પ્રકારની દેશી ભાષામા નિયત થઈ તે અર્ધમાગધ.”

મારા વિચાર પ્રમાણે આર્ય શ્રીજિનદાસ મહત્તરજી એ જણાવેલ ઉપરનો અર્થ, મેં સ્થિર કરેલ અર્થથી જુદો હોય એમ જણાતું નથી.

તેઓ જે અદાર પ્રકારની દેશી ભાષામા નિયત સૂત્રને અર્ધમાગધનું નામ આપે છે, તે સંબંધે કાંઈ સ-વિશેષ જણાવતા નથી, ઇટલે મારાથી એ જાણી શકાતું નથી કે, અહીં તેઓએ અદાર પ્રકારમા ફર્ડ ફર્ડ દેશી ભાષાઓની વિવક્ષા કરી છે. તો પણ હું ઇટલું તો કહી શકું છું કે, અંગ સાહિત્યનો મુખ્ય સંબંધ શ્રી મહાવીરની જન્મભૂમિ (મગધદેશ) ની ભાષા સાથે હોવાથી તે અદાર પ્રકારની દેશી ભાષામા પણ મા-ગધી ભાષાની પ્રધાનતા હોવી જ જોઈએ. વઠી એથી એ પણ સમજે છે કે, મગધના નિકટવર્તી બીજા બીજા પ્રાંતોની ભાષાઓનો પણ માગધીને સંપર્ક થઈ હો-વાને લીધે બીજી બીજી પ્રાંતિક (દેશી) ભાષાઓથી મિશ્રિત એવી માગધીને પણ તે મહત્તરજીએ અર્ધમાગધ કહી હોય.

આ રીતે મહત્તરજીએ કરેલ અર્ધમાગધની વર્ણ

વ્યાખ્યાથી પણ અહીં જણાવેલ 'અર્ધમાગધી' નો અર્થ સંવાદિત થતો જણાય છે.

ए ज प्रकारे महर्षि मार्कंडेय पण पोताना 'प्राकृत-तत्सर्वस्व' नामना व्याकरणमां जणावे छे के—

“शौरसेन्या अदूरत्वाद् इयमेवार्धमागधी ।”

—प्राकृत सर्वस्व, पृ. १०३

અર્થાત્ “મગધ દેશ અને શૂરસેન દેશ પાસે પાસે હોવાને લીધે મગધની (માગધી) ભાષાને શૂરસેન વેશની ભાષાનો (શૌરસેનીનો) સંપર્ક થયેલ હોવાથી માગધી ભાષાને જ અર્ધમાગધી સમજવાની છે.” શૌરસેની ભાષામાં પ્રાકૃતનું અને પાલીનું કેટલુંક મિશ્રણ રહેતું હોવાથી તેના સંપર્કવાળી માગધી ભાષામાં પણ તે મિશ્રણ સંભવે છે. દટલે માર્કંડેયજીના આ લક્ષણથી પણ ‘માગધ્યા અર્ધસ્’ વાળી વ્યુત્પત્તિને જરા પણ આંધ આવતી હોય તેમ જણાતું નથી.

આટલા ઉપરથી દટલું જ સમજી શકાય છે કે, ગણધરો દ્વારા ગુંથાણ અંગ-સાહિત્ય તો મૂળ અર્ધ-માગધી ભાષામાં જ હતું અને તે અર્ધમાગધી ભાષા, બરાબર અડધી માગધી અને અર્ધ અંશમાં બીજી બીજી પાઠી વિગેરે ભાષાઓથી મિશ્રિત થયેલી હતી. આ હ-ક્રિત ઉપરનાં પ્રમાણોથી મારા વિચાર પ્રમાણે નિ-ર્વિવાદ બેવી છે.

હવે હું હાલમાં જે જૈન આગમ-સાહિત્ય વિચમાન છે તેની મુલ્ય માપા કર્દે છે, તે સંવંધમાં ઝઠાપોહ કર્યા ઇચ્છુ છું.

આ પ્રશ્નને મોરે વે દૃષ્ટિ, વિચારવાનો છે—એક તો વિચમાન અંગસાહિત્યની ઉત્તરોત્તર થયેલ સ્થિતિની દૃષ્ટિ, અને બીજું તેમાં જણાતી ભાષાની દૃષ્ટિ.

જે અંગ સાહિત્ય અત્યારે વિચમાન છે તે અનેક પરિવર્તનો પામતું પામતું કર્દે કર્દે સ્થિતિઓમાંથી પસાર થઈ આપણી પાસે આવેલું છે, તે વાસ્ત નીચેની હક્રિત ઉપરથી જાણી શકાશે.

પરમ શ્રમણ શ્રીમહાવીરનું વર્તન જ એક મહોપદેશ-કની ગરજ સારે તેવું હોવાથી અને તેમના તથા તે-

મના શ્રમણોના આચાર દટલા વધા નિવૃત્તિપરાયણ હતા કે જેથી આત્મ-નિષ્ઠ દવા તેમનામાના કોઈને, ગુરુ તરફથી પ્રાપ્ત થયેલ આત્મજ્ઞાનના સંક્ષિપ્ત પરંતુ ગંભીર ઉપદેશાત્મક વાક્ય-સમૂહોને લિપિવદ્ધ કર-વાની જરા પણ જરૂર હતી નહીં. દટલે તેઓ તે ઉપદેશાત્મક વાક્ય-સમૂહોને પોતાની આત્મજાગૃતિ મોટે બેવાને તેવા કંઠસ્થ રાખતા હતા. અને એ ઉપ-દેશો બહુજ ટુંકા વાક્યોમા સમાણા હોવાથી તે સૂત્ર દવા નામ પ્રસિદ્ધ થયા હતા. અને એ જ કારણથી અત્યારે ઉપલબ્ધ થતા તે સૂત્રોના વિશાલ વિસ્તારનું પણ સૂત્ર દવું જ નામ પ્રસિદ્ધ થઈ રહ્યું છે. અર્થાત્ જે સૂત્ર શબ્દ, તે ગણધર મહાશયોના સમયે પોતાની (‘સૂચનાત્ સૂત્રમ્’ વાળી) રૂઝી વ્યુત્પત્તિને ચરિતાર્થ કરતો હતો, તે જ સૂત્ર શબ્દ, અત્યારે પોતાની તે વ્યુત્પત્તિને કોરે મૂકી, જૈન સપ્રદાયની રૂઢિને વશ થઈ, પ્રમાણમા લાલો શ્લોકો જેટલા ગણાતા (!) ગ્રંથોને પણ પોતાના માવમાં સમાવવા લાગ્યો છે !

કહેવાની જરૂર નથી કે, ડયા સુધી ગણધરોના અનન્તર શિષ્ય દવા સ્થવિર મહાશયોએ તે સંક્ષિપ્ત સૂત્રોને કઠસ્થ રાખ્યા હતાં ત્યા સુધી તો તેની અર્ધ-માગધી જરા પણ ધરિવર્તન નહીં પામી હોય. પણ ડ્યારે તે સૂત્રો શિષ્ય પરંપરામા પ્રચાર પામ્યા હશે અને તે શિષ્યપરંપરા મિત્ર મિત્ર દેશોમા વિહાર કર-તી હશે, ત્યારે સંભવ છે કે જરૂર તે સૂત્રોની મૂળ ભાષા—અર્ધમાગધી ભાષા—મિત્ર મિત્ર દેશના સંસર્ગને લીધે, સ્થિતિગ્રંથને લીધે અને ઉચ્ચારમેદને લીધે પરિવર્તન પામવા લાગી હોય.

વધારે આગલ ન જતા પરમ શ્રમણ મહાવીરના બીજા સૈકાની જ વાત તરફ લક્ષ્ય કરતાં જણાય છે કે—“ડ્યારે આર્ય શ્રીસ્તૂલમ્નર વિચમાન હતા ત્યારે દેશમા (મગધમા ?) એક સાથે ઉપરાઉપર

૧ જુઓ રૂપકપરિભાષા.

૨. જુઓ— પરિણિષ્ટપદ— (અષ્ટમ સર્ગ, શ્લો. ૧૧૩ તથા નવમ સર્ગ, શ્લો. ૫૫-૫૬)

महाभीषण बार दुकाळी पडी होती. ते समये साधु-
ओनो संघ पोताना निर्वाह मोटे समुद्र कांठाना प्रदे-
शामां रहेवा गयो हतो. त्यां साधुओ निर्वाहनी पीडाने
लीपे कंठस्थ रहेल श्रुतेने गणी सकता न हता, अने
तेथी ते श्रुत विसरावा लाग्युं. आ रीते अजना दुकाळनी
असर पवित्र श्रुत उपर पण एक सरली पडवाथी एक दु-
काळ्यानी जेवा ज ते श्रुतना पण हाल हवाल थया. ज्यारे
ते भीषण दुकाळ मटी सुकाळ थयो त्यारे
पाटलीपुत्रमां (पटणामां) श्रीसंघ भेगो मळ्यो अने
जे जेने याद हंतुं ते बंधुं एकटुं करायुं. आ रीते मांड
मांड अगिजार अंगो संधाया. पण दृष्टिवाद नामनुं
बारळुं अंग तो समूळुं नाश पाय्या जेवुं ज थई गयुं
हतुं. कारण के, ते समये आर्य भद्रबाहु एकला ज
दृष्टिवादना अभ्यासी होता. ” आ उपरथी जाणी
शकाय छे के, श्रीवीरना बीजा सैकाथी ज श्रुतनी छिन्न
मिन्नता-श्रुतनी भाषामां अने भावामां परिवर्तन,—
न्यूनाधिकता—नी शरुआत थवा लागी. आपणा कम-
भाये आ शरुआत पटलेथी ज अटकी नहीं, पण उत्तरो-
त्तर विशेष विशेष बघती गई. एटल के ते दुकाळी
उतर्यो पछी आगळ आवतां लगभग ऋणसें चारसें
वर्षे—वीर निर्वाणथी पाचमां छठा सैकामां—आर्य
श्रीस्कंदिल अने वज्रस्वामिनी निकटना समयमां
तेथी ज एक बीजी भीषण बार दुकाळी आ देशे
पार करी होती. ते हकिकतनुं वर्णन आपतां जणाव-
वामां आवे छे के—“ वार वर्षनो मयंकर दुकाळ
पड्ये साधुओ अजने मोटे जुदे जुदे स्थले हिंडता
होवाथी श्रुतनुं ग्रहण, गुणन अने चिंतन न करी
शक्या. एथी ते श्रुत विप्रनष्ट थयुं, अने ज्यारे फरी
वार सुकाळ थयो त्यारे मधुरामां श्रीस्कंदिलाचार्य प्रमुख
संघे मोटो साधुसमुदाय भेगो करी जे जेने सांमर्थ्युं ते
बंधुं कालिकश्रुत संघटित कयुं. ” आ दुकाळे तो

मांड मांड बची रहेल ते श्रुतनी घणी विशेष हानी
करी. आ उद्धार शूरसेन देशनी पाटनगर मधुरामां
थएल होवाथी ते श्रुतमा शूरसेनी भाषानुं घणुं मिश्रण
थवा साथे तेमां जुदां जुदां अनेक पांठांतरो पण
बघवां लाग्यां.

हेवे तो खेद साथे जणावुं पडे छे के, ते विषम
दुःखनो प्रसंग वांत्था पछी पण प्रकृति देवीनी अकू-
पाथी पाछी तेवी ज बार दुकाळीए श्रीवीरात् १० मा
सैकामां देश उपर पोतानो पंजो चलाच्यो अने ते
वखते तो घणा बहुश्रुतांनुं अवसान थवा साथे जे
जीर्ण जीर्ण श्रुत रहेलुं हलुं ते पण बहु ज छिन्न मिन्न
थई गयुं. आ थी ते समयना अंग साहित्यनी स्थिति
साथे श्रीवीरना समयना अंग साहित्यनी तुलना कर-
नारने, वे ओरमान भाई बच्चे जेटलुं अंतर होय
तेटलुं अंतर, ते बे बच्चे लागे ए सर्वथा संघटितकल्प
छे, ए विषम समयनी स्थिति दर्शावतां जणाववामां
आवे छे के—

“ श्रीदेवधिगणिक्षमाश्रमणेन श्रीवीराद् असी-
त्यधिकनवशत (९८०) वर्षे जातेन द्वादशवर्षीयदु-
र्भिक्षवशाद् बहुतरसाधुव्यापत्तौ बहुश्रुताविच्छिन्नौ च
जाताया + + + भविष्यद्भय्यलोकपकाराय, श्रुत-
भक्तये च श्रीसंधाग्रहाद् मृतावशिष्टतदाकालीनसर्व-
साधून् वलभ्यामाकार्य तन्मुसाद् विच्छिन्नावशिष्टान्
न्यूनाधिकान् श्रुतिता—ऽश्रुतितान् आगमालापकान्
अनुक्रमेण स्वमत्या संकल्य पुस्तकारूढाः कृताः ।
ततो मूलतो गणघरमापितानामपि तत्संकलनानन्तरं
सर्वेषामपि आगमनां कतो श्रीदेवधिगणिक्षमाश्रमण
एव जातः, ” समयसुन्दरगणीरचितसामाचारीशतके.

१. जुओ—प्रज्ञापना, आर्यदेशविचार.

२. बहु पाठभेदोपी युक्ताता धीअभयदेवसूरीजी जणावे छे के.

“ अज्ञा घय दास्यमिदं गमीर

प्रायोऽस्य कृदानी च पुस्तकानि । ”

प्रनव्यावरणयुक्तिप्रारम्भे.

“ किमपि स्फुटीकृतमिह स्फुटेऽप्यर्थतः
सकष्टमतिदेशतो विविधधाच्यनातोऽपि यत् ”
हानाधर्मव्यावृत्तिप्राने.

१-२. जुओ, आंमेदतुंगपुरिनी विचारणेनी.

३. जुओ, मंदिरुणि, लि. पृ. ४.

४. कालिकश्रुत मोटे जुओ, मंदिरु.

અર્થાત્ “શ્રીદેવાર્ધિગણે ક્ષમશ્રમણે, વાર દુકાઢીને લીધે ઘળા સાધુઓનો નાશ થયે અને અનેક વહુશ્રુતોનો વિચ્છેદ થયે, શ્રુત મક્તિથી પ્રેરાઈ માવી પ્રજાના (આપણા) ઉપકાર માટે શ્રીધીરાત્ ૯૮૦ વર્ષે શ્રી-સંઘના આગ્રહથી તે ફાઢે બચેલ સાધુઓને વલમી-પુરમાં બોલાવી તેઓના મુલ્કથી અવશેષ રહેલ ઓછા-મંધતા, વૃટ્તિ અને અવૃટ્તિ આગમના પાઠોને અનુ-ક્રમે પોતાની યુદ્ધિથી સાંકઢી પુસ્તકારૂઢ કર્યા, આવી રીતે મૂઢમાં સૂત્રો ગણધરોનાં ગુંથેલા હોવા છતાં દેવધિગણિય તેનું પુનઃ સંકલન કરેલું હોવાથી તે બધા આગમોના કર્તા શ્રીદેવાર્ધિગણે ક્ષમાશ્રમણ જ કહેવાય છે.”

ઉપરની હકિકતથી સમજી શકાશે કે ગણ-ધરોય ગુંથેલ સૂત્રો (અંગો) ઉપર કેવા કેવા યુગો પસર્યા છે. જે સાહિત્ય ઉપર કુદરત તરફથી જ આવો મીષણ પ્રકોપ થાય તે સાહિત્ય, પરંપરામાં એક સરખું જ ઉતરી જાય, એ વાત મારી કલ્પનામાં તો બંધ બેસતી નથી આવતી. કિંતુ જે અંગસાહિત્ય અત્યારે વિદ્યમાન છે તે દુકાઢીના મીષણ પ્રહારોને લીધે ફાઢ, રૂઢિ, સ્પર્શ અને સ્વાચ્છંદનાં અસહ્ય જાત્તમોથી જલમાણ સ્થિતિમાં આપણી પાસે હયાતી ધરાવે છે.

આ રીતે અંગ સાહિત્યની ઉત્તરોત્તર થયેલ સ્થિ-તિના નિરીક્ષણથી આપણે સમજી શકીએ છીએ કે વિદ્યમાન અંગ સાહિત્ય તે ગણધરકૃત અંગસાહિત્યની પરિવર્તિત પ્રતિચ્છાયા છે. અને એ અનુમાન કર-વાને ઉપરનાં પ્રમાણો પૂરતાં જણાય છે. જ્યારે અંગ-સાહિત્યના મૂઢ માધોમાં પણ ન્યૂનાધિકતા થવા લાગી, ત્યારે તેમાં યોજાણ બિચારી ભાષા શી રીતે સ્થિર રહી શકે? પટલે આ વિદ્યમાન અંગ સાહિ-ત્યમાં “માગધ્યા અર્થ”ની દૃષ્ટિએ અર્ધમાગધી ભાષા પણ ટકી શકી નથી, તો પછી તેમા માગધી ભાષાનો પ્રયોગ તો શી રીતે રહી શકે?

જો કે વૃદ્ધપ્રવાદ અને સાંપ્રદાયિક પરંપરા તો

આ અંગોમાં પણ માગધી વા અર્ધમાગધી ભાષા પ્રયોજાયાનું સૂચવે છે, પરંતુ આપણે માપાદૃષ્ટિએ અંગોમાં યોજાણ ભાષાનું પરીક્ષણ કરી તે પ્રવાદની સમૂહતા વા નિર્મૂહતા જાણી લેવી જરૂરની છે. આ વિષયને ચર્ચતા પહેલાં મારે જ્ઞાન સૌકર્યને સ્વા-તર માગધી ભાષાનું પૂરેપૂરું શબ્દશરીર પ્રથમ અહીં દેલાડવું જોડીએ, જે દ્વારા માગધી ભાષાના શબ્દ શરીર સાથે અંગસાહિત્યના શબ્દપિંડને સરલાવવાથી ડારના પ્રવાદની તથ્યતા આપોઆપ જણાઈ આવે.

માગધી ભાષાની પ્રક્રિયાનો ઘણો ભાગ પ્રાકૃત ભાષાની પ્રક્રિયાને મઢતો છે, પટલે હું તે મઢતા માગનો ડલેક્ષ નહીં કરતાં અહીં તેના કેટલાક અવવાદોનો જ એક કોઠો આપીશ; અને સાથે તે કોઠામાં પ્રાકૃત ભાષાનાં અને અંગ સાહિત્યનાં રૂપો પણ આપીશ કે જેથી તે અંગ સાહિત્યનાં રૂપોનું માગ-ધીનાં કયાં કયાં રૂપો સાથે વિશેષ સામ્ય છે તે શીઘ્ર તારવી શકાશે અને તે તારવણી ઉપરથી જ અંગ સાહિત્યની ભાષાનો નિર્ણય થવા સાથે ઉપરના પારંપરિક પ્રવાદનું પ્રામાણ્ય પણ પ્રત્યક્ષ થઈ જશે.

સુલનાની દૃષ્ટિએ રૂપોનું કોષ્ટક આ પ્રમાણે છે.

૧ સંસ્કૃત.	પ્રાકૃત.	માગધી.	અંગસાહિત્ય.
મીનઃ	મીમો	મીમિ	મીમે, મીમો
મીમાત્	મીમાઓ	{	મીમાદો મીમાજો
			મીમાડુ
મીમસ્ય	મીમસ્ત		મીમસ્ત મીમસ્ત
			મીમાહ
મીમાનામ્	મીમાણં	{	મીમાણં મીમાણં
			મીમાહં
અહમ્	અહં	હમે	અહં
વચ્મ્	અચ્ઢે	હમે	અચ્ઢે
કચ્ચુકિન્	કંચુડ !	{	કંચુડઆ !
			કંચુડ !
રાજન્	રાયા !		લાયં !

भगवन् !	{ भगवन्तो ! भयवं ! भगवन्त !	■	नाथ	नाह	{ नाथ नाह नाह
भवान्	भवन्तो भवं	०	इह	इह	इध इह
भगवान्	भगवन्तो भगवं	{ भगवं भयवं	गच्छत	गच्छह	{ गक्षथ गच्छह गक्षह
ति, ते	इ, ए दि, दे	ति, ते. इ ए.	भवह	भवह	{ भोदि भवह—ति होदि
२ पुरुष	पुरिस पुलिश	पुरिस	पूर्व	पुञ्च	पूरव पुञ्च
समशरीर	समसरीर शमशलील	समसरीर	कृत्वा	{ कारुण कारिण	{ करिय करिता करिदूण
काष्ठ	कट्ट कस्ट	कट्ट		{ करिअ	{ कडुअ
हस्त	हत्थ हस्त	हत्थ		गत्वा	{ गमिऊण गमिअ
पट्टन	पट्टण पस्टण	पट्टण			{ गमिय { गमिता गमिदूण { गच्छिता
सुष्ठु	सुट्टु शुस्टु	सुट्टु			{ गडुअ
उपस्थित	उवट्ठिअ उवस्तिद	उवट्ठिअ-त	गमिप्यति	गच्छिहिइ	गच्छिस्सिदि गच्छिहिइ
अर्थ	अत्थ अस्त	अत्थ—ट्ट	इदानीम्	{ एण्हिं एसाहे इभाणि दाणि	{ दानि इभाणि इयाणि
जनपद	जणवय यणवद	जणवय			
अथ	अज्ज अय्य	अज्ज			
यथा	जहा यथा	जहा			
अन्य	अन्न अन्न	अन्न-ण			
पुण्य	पुण्ण पुञ्च	पुण्ण—अ	तस्मात्	तम्हा	ता तम्हा
प्रज्ञा	पण्णा पञ्जा	पण्णा			
सर्वज्ञ	सव्वण्णु सव्वञ्जु	सव्वण्णु			
अञ्जलि	{ अंजलि अञ्जलि	अंजलि			
व्रजति	वच्चइ वञ्जदि	वच्चइ			
गच्छामि	गच्छामि गक्षामि	गच्छामि			
भोक्ष	भोक्ख भो५क	भोक्ख			
यक्ष	जक्ख य५क	जक्ख			
संभेक्षते	संभेच्छइ शंभेक्केदि	संभेहइ			
तिष्ठति	चिट्ठइ चिष्ठदि	चिट्ठइ			
श्रुत	सुअ सुद	सुअ			
अन्तःपुर	अन्तेउर उन्देउर	अन्तउर			
तावत्	ताव दाव	ताव			
पर्यव	पज्जव { पर्यव पज्जव	पज्जव			

उपरना कोष्टकमां उषां में १ नो अंक मूक्यो छे ते कोष्टक विभक्तिना विकारने लगतुं छे, अने ज्यां में २ नो अंक मूक्यो छे ते कोष्टक ध्वंजनना विकारने सूचवे छे, उपरना कोष्टकमां वताव्या सिवायनी मागधीनी बीजी बधी प्राक्रिया प्राकृतनी जेवी ज छे जो के, उपरना कोष्टकधी अंग साहित्यनां रूपो. मागधी भाषानां रूपो साथे केटलुं साम्य छे, ते स्पष्ट जाणी शकय तेम छे; तो पण मारे जणावतुं जोईए के, आटलां वषां मागधी भाषाना रूपो साथे अंग साहित्यना मात्र एकाद वे ज रूपो साम्य धरावे छे—विभक्तिना विकारमां आवेल 'मीमे' अने 'भगवं' (बजे, प्रथमाना एक वचन

છે) એ વે રૂપનું જ માગધી રૂપો સાથે સામ્ય જ-
નાય છે. પરંતુ વ્યંજન વિકારમાં તો એક વળ રૂપ
एवું નથી જણાતું કે જેનું માગધીનાં તે રૂપો સાથે
સામ્ય હોય.

આવી વસ્તુ રિશ્તિના સંધે સહજ પ્રથમ થાય છે
કે, જે અંગ સાહિત્યનાં રૂપોમાં માત્ર બે જ રૂપો
માગધી જેવાં હોય અને બીજાં વધારાં રૂપો પ્રાકૃત
જેવાં હોય તો, શું તે સાહિત્યની ભાષા માગધી ગ-
ણશે કે પ્રાકૃત ? આ પ્રશ્નનો જે ઉત્તર આવે છે
તે જ ઉત્તર ‘અત્યારના અંગસાહિત્યની ભાષા ફરફ ?’
ए. પ્રશ્નને લાગુ પડે છે.

સમસ્ત અંગસાહિત્યની ભાષામાં મઠ્ઠી આવતા
માત્ર માગધી ભાષાના રૂપ દ્વિતયને જ આશ્રીને તે
ભાષાને માગધી કે અર્ધ-માગધી કહેવાનું સાહસ
કોઈ પણ સાક્ષર કરે ए. સંભવતું નથી. આમ હોવા
છતાં પ્રાચીન પ્રવાદને માન આપવા સ્વાતર આચાર્ય
હેમચંદ્રજીए અને વૃષિકાર અમયદેવસૂરિજીए માત્ર
દોઢ પંક્તિ દ્વારા પુલિંગી પ્રથમાના ઇકારાન્ત
મત્સ્યવાઢા રૂપને આશ્રીને વિદ્યમાન અંગસાહિત્યની
ભાષાની અર્ધમાગધીમયતા હોવાનું જે જણાવ્યું છે
તે ઇતિહાસમૂલક છે, કે અદ્ધામૂલક છે ? તે વાચકો
પોતે જ વિચારી શકશે.

ઉપરના હેતુઓથી હું તો આ અનુમાન ઉપર
આઢ્યા છું કે, ગળધર મહાશયોના સમયનું અંગ
સાહિત્ય, જ્યાં સુધી કોઈ જાતના પરિવર્તનને પામ્યું
તે હતું ત્યાં સુધી તેનું અર્ધમાગધીત્વ સ્વીકારી
શકાય, પણ ઉપર તેને પૂર્વોક્ત અનેક વિષમ કાર-
ણોથી પરિવર્તનની રિયતિમાં વારંવાર આવવું પડ્યું
ત્યારે તેનાં માવ અને ભાષા ए મંત્રેને લોકાનુસારી
થવાની જાણે ફરજ ન પડી હોય તેમ નવલવા
લાગ્યાં, અને આસ્તે આસ્તે તેની સમૂઢગી અર્ધમાગધી
ભાષા લક્ષી જઈ તેનું સ્થાન કેટલાક સમય સુધી માગધી
મિશ્રિત શૌરસેનીए લીધું. અને પછી છેવટે વલમીપુ-
રમાં થપલ ઉદ્ધારને વસેતે તો તે શૌરસેની પણ

અન્તર્હિત થઈ અને તેને સ્થાને સૌરાષ્ટ્રના પ્રમાણે ઢ્રીહે-
માચાર્યજીના આઢમા અધ્યાયમાં પ્રયોજાપલ પ્રાકૃત
ભાષાનો પ્રયોગ થયો. આમ છતાં તેની પ્રાકૃત ભાષાની
પ્રાચીનતા ફાઈ સમૂઢગી વિળક્ષી નથી, ઇટલે વિચ-
માન અંગોમાં પણ કેટલાંક પ્રાચીન રૂપો (આર્ધ
રૂપો) રહેલાં છે, પણ તે માગધીનાં તો નહીં જ. ઇથી
વિદ્યમાન અંગ સાહિત્યને અર્ધમાગધીમય અંગ સાહિ-
ત્યથી જુઢું માનવા સાથે તેની ભાષાને પણ આર્ધ
પ્રાકૃત મિશ્રિત સૌરાષ્ટ્રી પ્રાકૃત કહેતાં જરા પણ
અપ્રમાણ્યનો ભય રહે તો હોય, एવું ઉપરના હેતુ-
ઓથી જણાતું નથી.

છેવટે આ સંવંધે વિશેષ વિચાર કરી વિદ્વાનો
પોત પોતાનો વિશિષ્ટ અભિપ્રાય પ્રકટ કરશે તો હું
મારા વિચારોની પુનઃ સરયાસત્યતાની કસોટી કરી
શકીશ.*

“હરિમદ્રસૂરિનો સમંયનિર્ણય.”

[છે.—શ્રીયુત હીરપલાલ અમૃતલાલ શાહ, ધી. ઇ.]

૧) મુનિશ્રી જિનવિજયજી મહારાજે હરિમદ્રસૂરિ-
ના સમયનિર્ણયના સંવંધમાં બહુપરિશ્રમપૂર્વક ઘળા
પ્રમાણો ઇકત્ર કરી જે ઝહાપોહ કર્યો છે અને તેના
પરિણામ રૂપે જે સમય તેમણે નક્કી કર્યો છે તે સંવં-
ધમાં સ્ફુરી આવતા મારા કેટલાક વિચારો હું અહીં
રજુ કરું છું.

આ વિષયમાં વિશેષ આધારમૂત સવઢ પ્રમાણ
મહારાજશ્રીને દાક્ષિણ્યચિન્હ ઉપે ઉઢોતનસૂરિની
કુવલયમાઢા કથામાંથી મઢી આવ્યું છે. ए કથામાં,
પ્રસ્તાવનામાં સમરાદિત્ય ચરિત્રની પ્રશંસા કરતાં
“ મવવિરહ ” શબ્દના પ્રયોગથી હરિમદ્રસૂરિનો નિ-
ર્દેશ કરવામાં આવ્યો છે. તેમજ પ્રશસ્તિમાં હરિમદ્ર-
સૂરિને પોતાના અધ્યાપકગુરુ તરીકે જણાવ્યા છે.

છ આ નિબંધ એ પૂનામાં મઢેલ પ્રથમ પ્રાચ્યવિદ્યાસંતોષક
પરિવર્દ માટે તૈયાર થયો હતો.—લેખક.

કુવલયમાલાની રચના શક સંવત્ ૭૦૦ માં થઈ. દટલે તે ઉપરથી શક સંવત્ ૭૦૦—વિક્રમ સંવત્ ૮૩૫—ઈ. સ. ૭૭૮ નો સમય હરિમદ્સુરિનો નિર્ણાત થાય છે.

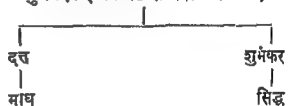
૨) એ કથાકર્તા દાક્ષિણ્યચિન્હ સંબંધી હકિકત પ્રમાવકચરિત્રમાં (જુઓ, નિર્ણયસાગર પ્રેસની આવૃત્તિ, પૃ૦ ૨૦૧—૨, શ્લોકો ૮૮—૯૭) મઝી આવે છે. ત્યાં તેમનો અને સિદ્ધર્ષિનો પરસ્પર સંવાદ મુકેલો છે અને સાથે સિદ્ધર્ષિના ગુરુમાઈ તરીકે તેમને જણાવ્યા છે. આ વાત જો સત્ય હોય તો સિદ્ધર્ષિનો સમય પણ શક સંવત્ ૭૦૦—ઈ. સ. ૭૭૮ વિક્રમ સંવત્ ૮૩૫, લગમગ આવે. એક બીજી હકિકત (તેમાં કેટલું વજુદ છે તે તો કહેવાય નહીં) પણ ધ્યાન દેવા જેવી છે. જૈન શ્વેતામ્બર કોન્ફરન્સ હેરલ્ડ નામના માસિકના સને ૧૯૧૫ ના જુલાઈ—અક્ટોબરના અંકમાં, પૃ૦, ૩૫૧ ઉપર એક તપાગચ્છની પટ્ટાવલી આપેલી છે. એ પટ્ટાવલીમાં સિદ્ધર્ષિને હરિમદ્સુરિના પ્રાણેજ તરીકે લખેલા છે. આ હકિકત અન્ય જોવામાં આવતી નથી. આના ઉપરથી હરિમદ્સુરિ, ઉદ્યોતનસુરિ અને સિદ્ધર્ષિ ત્રણે સમકાલીન છે તેવી સૂચના મળી આવે છે.

૩) સિદ્ધર્ષિ એ હરિમદ્સુરિનો અનેક પ્રકારે નિર્દેશ કર્યો છે. દટલે તેમનો સમય હરિમદ્સુરિના સમયની સાથે જ તપાસવો પડે છે. ઉપર જણાવેલ હેરલ્ડ માસિકના અંકમાં ડૉ. જેકોબી તથા શ્રીયુત મોતીચંદ ગિરધર કાપડિઆ વચ્ચે, સિદ્ધર્ષિના સમયના સંબંધમાં ચાલેલો પત્રવ્યવહાર છપાવેલો છે. તેમાં સિદ્ધર્ષિની તારીખ વાસ્તવ ધર્મીક ચર્ચા ચર્ચાળી છે. સુપ્રસિદ્ધ સંસ્કૃત કવિ માધવે પ્રમાચન્દ્રસૂરિ (પ્રમાવકચરિત્રમાં) સિદ્ધર્ષિના કાકાના દાકરા તરીકે લખે છે. ડૉ. જેકોબીના જણાવ્યા પ્રમાણે (હેરલ્ડ, પત્રવ્યવહાર, પૃ૦ ૨૪૪) માધકવિના શ્લોકોનો ઉપયોગ લગમગ ઈ. સ. ૮૦૦ માં થયેલા વામનાચાર્યે, તથા ઈ. સ. ૮૫૦ માં થયેલા આનંદવર્ધને કરેલો છે. માટે માધ-

કવિ અને સાથેસાથે સિદ્ધર્ષિ પણ ઈ. સ. ૮૦૦ પ. હલાં વિદ્યમાન હોવા જોઈએ. [અત્રે જણાવવાની જરૂર છે કે માધ કવિનો સમય તપાસવામાં પ્રો. મેકડોનેલે એ મોટી મૂલ કરેલી છે કે તેમણે વામનાચાર્ય તથા આનંદવર્ધન સંબંધી હકિકત વિશ્વકુલ ધ્યાનમાં લીધીજ નથી.]

ઉપમિતિની પ્રસ્તાવનામાં ડૉ. જેકોબી એ બીજી હકિકતો સાથે પ્રમાવકચરિત્રમાં જણાવ્યા મુજબ માધ અને સિદ્ધર્ષિના કૌટુંબિક સંબંધનું દેવલ આપેલું છે જે નીચે મુજબ છે:—

સુપ્રમદેવ (વર્મલાટ રાજાનો અમાલ્ય)



માધ કવિ દત્તકના પુત્ર અને સુપ્રમદેવના પૌત્ર હતા, એમ તેમણે જાતે શિશુપાલવધમાં લેખેલું છે. રાજા વર્મલાટ વસન્તગદના લેખમાં જણાવ્યા મુજબ સં ૬૮૨ ના રાજ્ય કરતો હતો. આટલી હકિકત જાણ્યા પછી દટલું તો ચોક્કસ માનવું જોઈએ કે સુપ્રમદેવ અને માધ વચ્ચે જોહામાં જોછું પચાસ વર્ષનું અંતર હોવું જોઈએ. અર્થાત્ માધ કવિનું બાલપણ સંવત્ ૭૩૨ લગમગ આવે છે, અને તેજ સમય સિદ્ધર્ષિનો પણ ગણી શકાય. આ સંવત્ ૭૩૨ તે ઈ. સ. ૬૭૫ ની બરાબર થાય છે. [વસન્તગદ વાઢો લેખ જે સંબંધ આપે છે તે વિક્રમ સંવત્ છે કે અન્ય કોઈ સંવત્ છે, તે ચોક્કસ થવાની જરૂર છે.]

૪) ઉપરના બીજા અને ત્રીજા ફકરામાં આપેલી હકિકત ચરિત્ર ઉપરથી લીધી છે. તેમાં દંતકથા હોય તે ના કબુલ કરી શકાય નહીં. પરંતુ તેની તારવણી કરતાં જો તેમાં સત્યાશ મઝી આવે તો, તે નિર્મૂલ તો નહીં જ ગણી શકાય. હરિમદ્સુરિનું સ્વર્ગમન સૂચવનારી પ્રસિદ્ધ ગાથામાં જે ૫૮૫ મું વર્ષ આવ્યું છે તે વિક્રમ સંવત્નું તો સ્પષ્ટ શકાય જ નહીં. કારણ કે હરિમદ્-

સૂરિ ડ્યોતનસૂરિ (શક વર્ષ ૭૦૦) ના સમકાલીન હતા, તેમજ સિદ્ધાર્પિ પળ પ્રભાવકચરિત્રમાં જણાવ્યા પ્રમાણે માધ કવિ (ઈ. સ. ૮૦૦ પહેલાં) અને ડ્યોતનસૂરિ (શક. સં. ૭૦૦) ના સમકાલીન હતા, તેથી તેમણે ઓપેલું ૯૬૨ નું વર્ષ પણ વિક્રમ સંવત્સુ વર્ષ ન માની શકાય. મર્તુહરિ અને કુમારિલ મટ્ટનાં અવતરણો હરિમદ્સૂરિના ગ્રંથોમાં મળે છે, તેથી પણ મહારાજશ્રી જિનવિજયવી કહે છે તેમ, ઈ. સ. ૭૦૦ પૂર્વે તો તેમનો સમય મૂકાય જ નહીં; અર્થાત્ આ રીતે પણ ૫૮૫ મું વર્ષ તે વિક્રમતું તો ન જ સંભવી શકે.

૫) હરિમદ્સૂરિના સંબંધના અન્ય ઊલ્લેખો તપાસીએ. હેરલ્ડમાના ઉક્ત પત્રવ્યવહારના પૃષ્ઠ ૨૫૦ મા મુનિસુન્દરારિએ માનતુજ્ઞને બાળમટ્ટના સમકાલીન તરીકે જણાવ્યાની હકિકત છે. ત્યાં જ માનદેવસૂરિને હરિમદ્સૂરિના મિત્રતરીકે લખ્યાનો પણ ઊલ્લેખ છે. માનતુજ્ઞસૂરિ, મહાવીરની પટ્ટપરંપરામાં બીસમા નંબરે છે અને માનદેવસૂરિ અઠાવીસમા નંબરે છે. (જુઓ, તેજ હેરલ્ડમાની પટ્ટાવલી, પૃ. ૨૪૭-૨૫૦) બાળમટ્ટ રાજા હર્ષનો સમકાલીન હોવાથી તેનો સમય ઈ. સ. ૬૨૯-૬૪૫ લેણાય છે. હવે બીસમી અઠાવીસમાં સૂરિ સુધીના વર્ષોનો જો પત્તો લાગે તો હરિમદ્સૂરિના સમયનો નિર્ણય, આ રીતે પણ, કરી શકાય. આ ઉપરથી પટ્ટલું તો સ્પષ્ટ થાય છે કે હરિમદ્સૂરિ ઈ. સ. ૬૨૯-૬૪૫ પહેલાં પટ્ટલે વિક્રમ સંવત્ ૬૮૬-૭૦૨ પહેલાં ન જ હોઈ શકે. કારણકે એ સમય તો માનતુજ્ઞ સૂરિની વિદ્યમાનતાનો છે, જે હરિમદ્સૂરિના મિત્ર માનદેવથી આઠ પેઢી પહેલાં થઈ ગયા હતા, [ડૉ. જેકોબીથી આ સ્થાને મૂલ ચર્ચાઈ છે (હેરલ્ડ, પત્રવ્યવહાર, પાને, ૨૫૦.). બાળમટ્ટનો સમય ગણવામાં ઈ. સ. ૬૨૯-૬૪૫ ના ગાઢામાં ૧૭ વર્ષ ડેમરીને વિક્રમ સંવત્ તારવેલાં હોઈએ તેને ચલે મૂકી તેમણે ડલટાં ૫૭ વર્ષ બાદ કર્યા છે.] આ હકિકતથી પણ હરિમદ્સૂરિનું ૫૮૫ મું વર્ષ તે વિક્ર-

મ સંવત્સુ તો ન જ હોઈ શકે, તે વાચાત વાચક વર્ગ સહજ સમજી શકશે.

આ સ્થાને પટ્ટાવલિઓની વધુ મદદ આપણે લઈ શકીએ તેમ નથી. કારણ કે તેનો પરસ્પર ક્રમ ધળો જ ગુંચવળીમરેલો હોઈ, સંવત્સરની ગણતરી નિયમ વિનાની અને મૂલ ઉપર મૂલોથી મિશ્રિત થઈ ગઈ છે. અને તેથી તે નિરુપયોગી ઠેર છે. હરિમદ્સૂરિના સ્વર્ગવાસના ૫૮૫ મા વર્ષને વિક્રમ સંવત્ તરીકે માની લઈ તેમાં ૪૭૦ વર્ષ ડેમરીને તેને વીર સંવત્ ૧૦૫૫ મું નક્કી કર્યું એ પ્રથમ મૂલ થઈ. બીજે ટેકાળે-પટ્ટાવલિમાં મૂલ મૂલ એક મૂલ તરીકે ન રહેતાં ચલે-૫૮૬ વિક્રમ સંવત્ અને ૧૦૫૫ ને વીર સંવત્-મૂલ વસ્તુ તરીકે મૂકાયાં. મૂલનું મૂલ અંસાઈ ગયું.

૬) આપ્રમાણે એક અગર વીજા ગ્રંથકારની સાક્ષી જોઈ, જે હકિકત મઠી તે મેળી તપાસીને અનુમાનો કર્યા. હવે સંવત્સરની ગણતરી શી સાક્ષી પૂરે છે તે તપાસીએ. મૂલ ગાથામાં ૫૮૫ મું વર્ષ કયા સંવત્સુ છે તે જણાવેલું નથી. જિનવિજયવી મહારાજે વાચક પ્રમાણે રજુ કરી સ્પષ્ટ જણાવ્યું છે કે ૫૮૫ ને વિક્રમ સંવત્ તરીકે તો ન જ લઈ શકાય. ગુપ્ત સંવત્ લેતા તેમને ડ્યોતનસૂરિના વર્ષ (૭૦૦ શક) નો મેલ નથી મળ્યો. કારણ કે તેમણે ગુપ્ત સંવત્સની શરૂઆત, અત્યારે મૂલથી જ રીતે ગણાય છે તેમ, શક વર્ષ ૨૪૧ મા ગણી છે. અને તેને લઈ ૫૮૫ ગુપ્ત વર્ષ; તેમને શક ૮૨૬ (૫૮૫+૨૪૧=૮૨૬) ની બરાબર લાગ્યું, તેથી તેમણે ગાથાને નિમૂલ ડરાવી છે.

વસ્તુતઃ તેમ કરી શકાય નહીં. ૫૮૬ વર્ષ કોઈ પણ સંવત્સરનાં તો સ્વરાં જ. અને મારા નમ્ર મત મુજબ તે ગુપ્ત વર્ષ જ છે. પરંતુ ગુપ્તવર્ષની જે ગણના સામાન્યતઃ અત્યારે ગણાય છે, અને મહારાજશ્રીએ પણ તેજ પ્રકારે ગણી છે, તે ગણના યથાર્થ નથી. ગુપ્ત સંવત્, જિનસેન આચાર્યે પોતાના હરિવંશપુરાણમાં,

ગાથાઓ ઉપરથી આપેલા સરવાળા મુજબ વીરાત્ ૭૨૭ માં શરૂ થયેલો સમજાય છે. વીરાત્ ૬૦૫ વર્ષ અને ઈ. સ. ૭૮ વર્ષ શક વર્ષની શરૂઆત થાય છે. આ હિસાબે વીરનિર્વાણનો સમય ઈ. સ. પૂર્વે ૧૨૭ માં નક્કી થાય છે. અને તે મુજબ ગુપ્ત સવત્ વીરાત્ ૭૨૭ = ઈ. સ. ૨૦૦ = શક ૧૨૨ = વિક્રમ સવત્ ૨૫૭ માં શરૂ થવો જોઈએ. આ ગણતરી અનુસાર હરિમદ્રના સ્વર્ગવાસના ગાથોક્ત ૫૮૫ માં સવત્સરને ગુપ્ત સવત્ તરીકે લેતા, ૫૮૫ માં ૧૨૨ વર્ષ ઉમેરીએ તો શક વર્ષ ૭૦૭ (૫૮૫ + ૧૨૨ = ૭૦૭) થાય છે. પટ્ટલે આ રીતે યોગ્યતાનુસાર જણાવેલી હકિકત અને ગાથા ઉપરથી મળતી હકિકતનો વિરોધ નિર્મૂલ્ય થઈ જાય છે. શક વર્ષ ૨૪૧ માં (અશ્વેરુનીના લેલા-નુસાર) જે સવત્સરની શરૂઆત મનાય છે તે ગુપ્ત સવત્ નથી પરંતુ ગુપ્ત-વલમી સંવત્, અર્થાત્ વલમી સવત્ છે. આ મામલે વિશેષ સ્પષ્ટીકરણ મેં મારા ગુપ્ત સંવત્ પરના લેખમાં કરેલું છે. ગુપ્ત સવત્ માટે વાચકશ્રી આગળ એક ઉદાહરણ રજૂ કરાશિ. ડૉ. જેકોબી (હેરલ્ડ, પત્રવ્યવહાર પૃ. ૨૫૦ માં) મુનિસુવરસૂરિની ગુર્વાલી પરથી ઉલ્લેખ કર્યો છે કે મહાવીરની પટ્ટપરપરાના પદ્મત્રીશમાં આચાર્ય રવિપ્રમસૂરિ વિક્રમ સંવત્ ૭૦૦ માં થયા. હેરલ્ડના તેજ અક્ષરોમાં જે પટ્ટાવલી સુદ્રિત છે તેમાં (પૃ. ૩૫૪ ઉપર) તેજ સૂરિને ત્રીશમાં ગણ્યા છે. (આટલી મૂલ તો માફ કરી શકાય.) અને કહ્યું છે કે તેમણે નાહુલ નગરમાં સં. ૯૫૨ માં શ્રી નેમિવિંધ્યની પ્રતિષ્ઠા કરી હતી. “વિક્રમ સંવત્” ૭૦૦ અને “સ” ૯૫૨ માં પરસ્પર વિરોધ છે તે સહજ જણાઈ આવે છે. પરંતુ તે જ સવત્સરે આ નવી ગણતરી પ્રમાણેનો ગુપ્ત સવત્ માનીએ અને તેમાં ૨૫૭ વર્ષ ઉમેરીએ તો વિક્રમ સવત્ ૯૫૭ મળી આવે છે. અને આ રીતે આ વજ્રે લેખોનો પરસ્પર વિરોધ ટલી જાય છે.

૭) ગુપ્ત સવત્ ને બદલે મૂલથી ૫૮૫ ને વલમી સવત્ ગણીએ તો તેની બરાબર (૫૮૫ માં ૩૭૬ વર્ષ ઉમેરતા) વિક્રમ સંવત્ ૯૬૧ આવે. આ સાલ સિદ્ધર્થિ મહારાજે પોતાની કથાની પ્રશસ્તિમાં જે ૯૬૨ ની સાલ આપેલી છે તેને મળતી આવે છે. પરંતુ પ્રશ્ન એ થાય છે કે આવી મૂલ તેમના સમયમાં થવાનો સમ્ભવ સ્વરૂપ અને સિદ્ધર્થિ મહારાજે પોતે તેવી મૂલ કરી હોય તેમ મનાય સ્વરૂપ આ મામલે કોઈ કદી શકાય તેમ નથી. પરંતુ અત્રે ઉપાનિષદો પર ડૉ. જેકોબીએ લેખેલી પ્રસ્તાવના તથા તેના પરિશિષ્ટોના અંતે ડૉ. એન. મીરોનોએ અપેલા શ્લોકનું સ્મરણ કરવાને નહીં ગણાય. શ્રીચંદ્રકેવાલિચરિત્રમાં, સ. ૫૯૮ માં સિદ્ધર્થિએ આ ગ્રંથ રચ્યો હતો, એમ લેખેલ છે. આ ૫૯૮ ને વર્તમાન ગણતરીએ ગણતા ગુપ્ત સવત્ તરીકે લેતા એ પૂર્વોક્ત ૫૮૫ ગુપ્ત સવત્ની નજીક આવી જાય છે. જો આશી સિદ્ધર્થિની તારીખ નિર્ણાત થતી હોય તો કાલક્રમ આ રીતે આવે છે—

ગુપ્ત સંવત્ ૫૭૮ દાક્ષિણ્યચિન્હે ‘કુવલયમાલા’ રચી.

” ” ૫૮૫ હરિભદ્રસૂરિનું સ્વર્ગગમન.

” ” ૫૮૬ (મૂલથી વલમી સવત્ ગણાઈને તે પરથી લખાણ વિક્રમ સવત્ ૯૬૨ માં) સિદ્ધર્થિએ ઉપાનિષદ ભવમર્ષના કથા રચી.

” ” ૫૯૮ સિદ્ધર્થિએ શ્રીચંદ્રકેવાલિચરિત્ર રચ્યું.

અને પરી યાદ દેવાની જરૂર છે કે અહીં આપેલો ગુપ્ત સંવત્ ૫૮૫ તે ઈ. સ. ૭૮૫ = વિક્રમ સંવત્ ૯૬૧ = શક સંવત્ ૭૦૭ બરાબર સમજવો. હું આ પ્રમાણે કાલગણના નોંધું છું. તે ઉપરથી જે નિર્ણય પરિણામે સર્વમાન્ય થાય તે સ્વરો. વાકી ઉપોત્તપની ગણતરીએ ગુપ્ત સંવત્ ૫૮૫—૫૮૭ માં, એટલે ઈ. સ. ૭૮૫—૭૮૭ માં નક્ષત્ર વિગેરેની હકિકત જે સિદ્ધર્થિ મહારાજે મૂકી છે તે જો બરાબર મળી રહે, તો મૂલ ચપટી છે તેમ નિશ્ચિન માની શકાય.

જ્યોતિપની ગણતરી કરી ડૉ. જેકોબી તે વાવતનો નિર્ણય ઘળી સહેલાઈથી કરી શકે તેમ છે. સાથે સાથે પુની પણ તપાસ થવી જોઈએ કે નક્ષત્રનો જે યોગ સિદ્ધિર્જીવે લખ્યો છે તે કરી કરીને ક્યારે આવે છે.

૮) હવે સિદ્ધર્પિના હરિમદ્સૂરિ પરત્વેના ડહેલો તપાસીએ. 'અનાગત પરિજ્ઞાય' પદનો અર્થ ડૉ. જેકોબી સાક્ષાત્ ગુરુ તરીકે લીધો છે. અન્ય સર્વ તે પદનો અર્થ પરીક્ષ ગુરુ તરીકે લે છે. પરીક્ષ ગુરુ તરીકે લેતાં પૃથી કલ્પના થાય છે કે હરિમદ્સૂરિ વિશિષ્ટજ્ઞાનથી ભાવી જન્મનારા સિદ્ધર્પિને જાણીને "લલિતાવિસ્તરા" લખી, આ અર્થ ડૉ. જેકોબીને અત્યંત અસંગત લાગે છે. મારા નમ્ર મત મુજબ "અનાગત પરિજ્ઞાય" પદ સિદ્ધર્પિના અસ્તિત્વ પરત્વે ન લેતાં તેમના માનસિક પરિવર્તનો પરત્વે (Knowing his psychological development) સમજીએ તો ક્ષિપ્રતા દૂર થાય છે. સિદ્ધર્પિ મહારાજનું વલણ શું છે, તે સમજી રહેલ ગુરુને તેમનું ભાવી વલણ અને દેશકાલ સમજવાં મુશ્કેલ નથી; અને તેથી જાણે આગમચેતીપૂર્વક તેમણે તે "લલિત વિસ્તરા"ની રચના કરી કે જે સિદ્ધર્પિને પરમ ઉપકારક થઈ પડી.

ઉપામિતિ ૦ ના આઠ પ્રસ્તાવના ધર્મવોધકર ગુરુનું વર્ણન આપેલું છે. ત્યાં સદુપદેશ આપનાવાઝા પૂર્વસૂરિઓને વિશિષ્ટ જ્ઞાનવાઝા તથા ભવિષ્ય પારખનારા કક્ષા છે. કારણ કે તેમના ઉપદેશો (અગર ઉપદેશક પ્રંથો) ભવિષ્યમાં સર્વ પ્રાણીને ઉપકારક રહે છે. ઇટલે સાક્ષાત્ ગુરુ ન હોવા છતાં સાક્ષાત્ ગુરુ અને પરીક્ષ ગુરુ વચ્ચે રહેતું કાલવ્યવધાન નિકળી જાય છે. હરિમદ્સૂરિ વિદ્યમાન ન હોય ત્યારે આવા પરીક્ષ ગુરુની કક્ષામાં તે આવે તેમા નવાઈ નથી. પ્રશ-

સ્તિમા "ધર્મવોધકર ગુરુ"નો સાક્ષાત્પણાનો અર્થ લેવામા પણ તેથી દાની નથી આવતી. પ્રશસ્તિનો હેતુ ગ્રંથકારનો યત્નિચિત્ત પરિચય દેવાનો હોઈને તેમાં વર્ણવેલ ધર્મવોધકર ગુરુ સાક્ષાત્ ગુરુ તરીકે જ લેવા જોઈએ. પોતાના ગુરુની વિશિષ્ટતા માટે અગર વિશેષ ઓલ્લાણ માટે ગુરુપરંપરાનો નિર્દેશ મેલે આવે પણ તેનું મૂલ્ય તો સાક્ષાત્પરંપરા જ રહે. સાક્ષાત્પરંપરા વિનાનો નિર્દેશ પ્રશસ્તિમા તો, મારા નમ્ર મત મુજબ, અસાધ્ય જ ગણાય. દાક્ષિણ્ય ચિન્હની પ્રશસ્તિ જોઈશું તો આ હકિકત સારી રીતે સ્પષ્ટ થશે. ઉપામિતિ ૦ ની રચના વચ્ચે હરિમદ્સૂરિ વિદ્યમાન ન હોય તેથી "માવતઃ" શબ્દના પ્રયોગ પૂર્વક ("પ્રસ્તાવે માવતો હન્ત") અન્યત્ર નિર્દેશ પણ સાક્ષાત્પરંપરાને વાધક ન રહે.

ઘઠી પૂર્વસૂરિઓ અને તેમની કૃતિઓ સામાન્ય રીતે સર્વને સદુપદેશકારક થઈ પડે, તો ઘઠી સામાન્ય વર્ગનો વ્યવચ્છેદ કરી પોતાને માટે જ "લલિત વિસ્તરા"નો વધો પ્રયાસ કલ્પવાનું લાભે કાઢે તો પ્રયોજન જ નથી રહેતું, કારણ કે લેલક પોતે સર્વની સાથે ઉપકૃતવર્ગમા તો આવી જ જાય છે.

૯) સંવત્સર તથા જુદી જુદી કથાઓપરથી હરિમદ્સૂરિ અને સિદ્ધર્પિ માટેની હકિકતો વાચકવર્ગ આગલ વિશેષ ચર્ચા માટે રજૂ કરી છે. કુવલ્યમાલા તથા ઉપામિતિ ૦ ની અન્ય પ્રતિબોમા તે મુજબ જ ડહેલો છે કે ફેરફાર છે તે તપાસવાની જરૂર છે. તેમ છતાં અને જ્યોતિપની ગણતરી મેલ્લવતા સર્વ હકિકતનો નિર્ણય થશે તે નિઃસંદેહ છે.

જૈન સાહિત્યથી અજ્ઞાતજન મહારાજશ્રીના લેલ પર દુષ્ટિપાત કરતો લેલ લેલ, તેમા જો દોષ દુષ્ટિ-ગોચર થાય તો તે ક્ષાન્તવ્ય ગણવા યોજના કરે છે,



સંપાદકીય વિચાર.



ભાંડારકર પ્રાચ્યવિદ્યાસંશોધન મન્દિર

અને

જૈન સાહિત્ય સંશોધન કાર્ય.



ડૉ. સર રામકૃષ્ણ ગોપાલ ભાંડારકરનું નામ સંસ્કૃત વાચનના પારદર્શી વિદ્વાન્ તરીકે અને પુરાતત્ત્વના પરમ-પણિત તરીકે જગત્પ્રસિદ્ધ છે. તેમણે પોતાનું સમગ્ર જીવન અને સર્વસ્વ સાહિત્યસેવાના ચરણે સમર્પણ કરી, ભારતભૂમિના મૂતકાલીન ગૌરવનો, અન્ધકારના અણતમાથી ઉદ્ધાર કરવામા ઉત્તમ માગ મજબૂતો છે. અને તરૂણ ભારતીઓને મવિષ્યમા વર્ધે દિશામા પ્રયત્ન કરવાની જરૂરત છે, તે વિષયમા આદર્શનો માર્ગ આપ્યો છે. ગિર્વાણગિરાના એ પરમ ઉપાસક અને મરતમૂમિના મહાનૂ મક્કનું ઝજ્જલ નામ અને આદર્શ કાર્ય મનિ-પ્યની પ્રજાની દૃષ્ટિ આગળ હંમેશા શ્રદ્ધાકતું રહે અને તેના યોગે એ પ્રજા પોતાના કર્તવ્યની પૂર્તિમા પ્રયત્નશીલ બની રહે તેવા શુભ ઉદ્દેશ્યથી, સર રામકૃષ્ણના સમા નશીલ દેશવન્ધુઓ, તેમના સ્વાસ પ્રશંસકો અને મિત્રો, તેમજ હતાહી શિષ્યોએ મઢીને, તેમના જન્મની ૮૦ મી વર્ષગાઠના દિવસે, એટલે તા. ૬ જુલાઈ, ૧૯૧૭ ના રોજ, પૂના ગઢરમા, 'ભાંડારકર પ્રાચ્યવિદ્યાસંશોધન મન્દિર (Bhandarkar Oriental Research Institute)' નામની એક અત્યાવશ્યક સંસ્થાની સ્થાપના કરી છે.

પ્રાચ્યવિદ્યાસંશોધનનો અર્થ—પૃથ્વીના પૂર્વાય ગોલાદ્દમા આવેલા દેશોમા (જેમા હિન્દુસ્થાન પ્રધાનપણું મોગવે છે) વસતી પ્રજાઓના વિદ્યા, કલા, સાહિત્ય, ઇતિહાસ, આદિની શોધ-સોઢ કરવી, એવો થાય છે. યુરોપ અને અમેરિકા જેવા વિદેશોમા આ વિષયની શોધસોઢ કરનારી અનેક સંસ્થાઓ

સ્થાપિત થયેલી છે. એ સંસ્થાઓમાં અનેક મોટા મોટા અધ્યાસીઓ અને અધ્યાપકો સતત કાર્ય કર્યા કરે છે,—પ્રતિવર્ષ નવી નવી શોધો કરી જગત આગળ રજુ કરતા રહે છે. પરંતુ જે પ્રજાની સંસ્કૃતિની શોધ-સોઢ માટે એ વિદેશો લોકો એટલા ઊમંગથી કાર્ય કર્યા કરે છે તે પ્રજાના હૃદ પોતાના દેશમા તો એવી એક પળ સંસ્થા આજ સુધીમા અસ્તિત્વમા આવી ન હતી, એ હોરોર દેશના અને દેશ ઉપર રાજકર્તા સત્તાના મોટા પૂર્ણ લજ્જાજનક વાનત છે. અસ્તુ સર રામકૃષ્ણપંથના પુણ્ય નિમિત્તે ભારતને હવે આવી જાતની એક વ્યાપક સંસ્થાની પ્રાપ્તિ થઈ છે, અને તેથી એ વિષયના રાસિકોને આનંદ થાય તે સ્વામાવિક જ છે.

એ સંસ્થાની સ્થાપનાનો મુલ્ય ઉદ્દેશ્ય એ છે કે—પ્રાચ્યવિદ્યાની શોધસોઢમા રસ લેનારા વિદ્વાનો અને વિદ્યાર્થીઓને અપેક્ષિત એવું સઘળું સાહિત્ય પૂરું પાડી શકે તેવું એક અચનન (up to date) પુસ્તકાલય સ્થાપન કરવું. એ પુસ્તકાલયમા સઘળી જાતના હસ્તલિખિત અને મુદ્રિત પુસ્તકો, જુદા જુદા દેશો અને જુદી જુદી માપાઓમા પ્રકટ થતા આ વિષયના સઘળા સામયિક અને નિયતકાલિક પત્રો અને રિપોર્ટો, તથા આવી જ જાતનું પ્રકટ થતું વીજું વિવિધ પ્રકારનું સમગ્ર સાહિત્ય, એકત્ર સંગ્રહીત કરવામા આવશે.

વીજો મુલ્ય ઉદ્દેશ્ય આ સંસ્થાનો એ પણ છે કે—આવી શોધસોઢની પ્રવૃત્તિમા રસ લેનારો ઇચ્છા રાખનારા ગ્રેજ્યુએટો અને પાણ્ડિતો—શાસ્ત્રિઓને, સંશોધન વિદ્યાનું અર્વાચીન પદ્ધતિએ ઉત્તમ શિક્ષણ આપી નવા સંશોધકો તૈયાર કરવા.

આ સંસ્થાના પૃથા ઉચ્ચ ઉદ્દેશ્યો તથા એમા કાર્ય કરવા માટે જાડાણના નિમ્વાર્થ સ્કૉલરોના સતત

પ્રયત્નથી સંતુષ્ટ થઈ, મુંબઈની સરકારે પોતાના કવ-જામાં જે, ડેક્કન કૉલેજમાં સંરક્ષિત જુનાં હસ્તલિખિત પુસ્તકોનો સુપ્રસિદ્ધ અમૂલ્ય સંગ્રહ હતો, તે આ સંસ્થાને સ્વાધીન કરી, આ કાર્યમાં પ્રગ્નસનીય ઉદારતા અને માયાલુ સહાનુમતિ દેલાડી છે. તેવી જ રીતે ડૉ. સર રામકૃષ્ણપતે પણ પોતાના લાંબા અને માન-ભરેલા જીવનમાં સંગૃહીત કરેલાં વિવિધ માપા અને વિવિધ જાતના પુસ્તકોનો મોટો મેઢાર, એ સંસ્થાને અર્પણ કરી, એ વાતની સંસ્થાની પ્રધાન આવશ્ય-કતાને કેટલેક અંશે પૂર્ણ કરી છે.

દાનવીર પારસી ગૃહસ્થ તાતાબનુઓ, આ સં-સ્થાને સૌથી પ્રથમ એક સારા પ્રમાણમાં આર્થિક મદત કરી આ કાર્યને પ્રારંભિક ગતી આપી, ધીમી ચાલ, પણ મક્કમ પળે ચાલતું કર્યું છે. તાતાબનુઓ-ના દાનથી સંસ્થાનું પ્રથમ મકાન બાંધવામાં આવ્યું છે, અને તેનું નામ 'તાતા રીસર્ચ હૉલ' એવું રાસવામાં આવ્યું છે, ઉપર જણાવેલા બધાં પુસ્તકો હાલ તુર-તમાં એ હૉલમાં જ સ્થાપન કરેલાં છે તા. ૬, જુલાઈ, ૧૯૧૭ ના દિવસે મુંબઈના માજી ગવર્નર લૉર્ડ વિલિંગ્ટનના હોથે એ સંસ્થાનો ઉદ્ઘાટન-સમારંભ કરવામાં આવ્યો હતો.

..

ડેક્કન કૉલેજમાંથી આ સંસ્થાની સ્વાધીનતામાં આવેલા હસ્તલિખિત પુસ્તકોના મહાન અને અમૂલ્ય સંગ્રહમાં જૈન પુસ્તકોની સરૂચા ધણી મોટી અને ઘણી ફિમતી છે. એમાં ૬૦૦ જેટલા ગ્રંથો સાલ્પેત્ર ઉપર લેખેલા છે અને લગભગ ૬૦૦૦ જેટલા કાગળ ઉપર લેખેલા છે. એ ગ્રંથોમાં કેટલાક તો એવા અપૂર્વ છે કે જેની વીજી નકલ અન્યત્ર ક્યાંય જોવામાં આવતી નથી. પાટળ, સંમાત, જેસલમેર, વીકાનિર, આદિ સ્થલોમાં જે જૈનોના જુના પુસ્તક મેઢારો હતા તે-માંથી આ ઘણા પુસ્તકો સરકારે મ્હોંમાગ્યા પૈસા આપીને સ્તરીદ કર્યા છે; અને આવી રીતે ઠાણો રૂપિઆના પુસ્તકો એ સંગ્રહમાં સંગૃહીત થયેલો છે.

આટલી મોટી સંસ્થામાં જૈન ગ્રંથો દુનિયાની વીજી ફાઈ લાઈબ્રેરીમાં નથી. આ કારણથી, એ પુસ્તકો-ના ઉત્તમ નિમિત્તે જૈન સમાજ તરફથી હાર્દિક સહાનુમતિ અને આર્થિક સહાયતા મળે એવી ઇચ્છા થી, આ સંસ્થાના નિઃસ્વાર્થ કાર્યવાહકો મુંબઈના કેટલાક આપણા જૈન ભાઈઓને મળ્યા અને તેમની સાથે આ સંબંધમાં કેટલીક વાતચીત કરી, જૈન સમાજના વિશેષ પરિચયમાં આવ્યા તેમણે પ્રયત્ન કર્યો. એ પ્રયત્નનો પરિણામ કેમ અને કેવો આવ્યો તેનો ટૂંક અહેવાલ, આ સંસ્થા તરફથી છેલ્લા જુનાઈ મહિનામાં બહાર પડેલા 'એનાલ્સ ઓફ ધી મળ્ડા-રફર ઓ. રી. ઇન્સ્ટીટ્યુટ' ના પ્રથમ અંકમાં આપ-લા વર્કિંગ કમીટીના રીપોર્ટના ૫૩ માં પાન ઉપર નીચે પ્રમાણે આપેલો છે.

'The opening of the Institute by His Excellency had already made the Institute's name well-known in Bom- bay and elsewhere, and the Secretaries lost no time in availing themselves of this opportunity. They approached some of the big merchants of Bombay and especially the leaders of the Jain community. After repeated visits to Bombay and interviews with various persons, it was possible to arrange for a meeting of the Jain community in Godiji Maharaja's Upas'raya on 17th February 1918 under the presidentship of Pravartaka Kanlivijayaji Maharaja. Dr. Belvalkar and Dr. Sirdesai spoke there on behalf of the Institute, explain- ing its objects and calling upon the Jain community to do their own share for the cause, which by reason of the fact that the Deccan College MSS. Library was specially rich in Jain works, had a special claim upon them. Shet Gulabchand Devchand and others also made appropriate speeches. And a committee was appointed to collect subscriptions from the leaders of the

(b) set apart this amount as a permanent fund the interest of which (less five per cent, deducted as contribution for the general funds of the Institute) would be exclusively devoted to such Jain purposes as the Association might mention.

તાત્પર્ય—નામદાર ગવર્નરના હાથે આ સંસ્થાની ઉદ્ઘાટન ક્રિયા થઈ ગયા પછી મુંબઈ વિગેરે સ્થળોમાં આ સંસ્થા પ્રસિદ્ધિ પામી ચુકી હતી. અને તેથી સેક્રેટરીઓ આ અવસરનો લાભ લેવામાં ચિલકુલ ટીલ ન કરતાં તુરતજ મુંબઈના કેટલાક મોટા વ્યાપારિઓ પાસે ગયા હતા. ત્યાં ટ્રાસ કરીને તેમણે જૈનકોમના કેટલાક આગેવાનોની મુલાકાત લીધી. આ પ્રમાણે અનેકવાર મુંબઈ જઈ આવ્યા પછી અને અનેક ગૃહસ્થોની સાથે આ વિષયમાં વાતચીત થયા પછી જૈન સમાજની એક મીટિંગ ભરવાની ગોઠવણ થઈ શકી હતી. આ મીટિંગ તા. ૧૭ ફેબ્રુઆરી, ૧૯૧૮ ના દિવસે ગોઠાજીના જૈન ઉપાશ્રયમાં પ્રવર્તક શ્રીકાન્તિવિજયજી મહારાજના પ્રમુખપણા નીચે મઠી હતી. સંસ્થા તરફથી ડૉ. વેલ્વલકર અને ડૉ. સરદેશાઈનાં માપણો થયાં હતાં અને તેમાં સંસ્થાના ઉદ્દેશ્યો સમજાવવા સાથે જૈનકોમને આ કાર્યમાં પોતાનો ભાગ ભજવવા માટે નિયેદન કરવામાં આવ્યું હતું. આ શુભ કાર્યમાં જૈનકોમને ટ્રાસ સહાનુમૂતિ ચતાવવાનું કારણ એ હતું કે ડેક્કન કૉલેજના હસ્ત લિખિત પુસ્તકોમાં મોટી સંખ્યા જૈનધર્મના ગ્રંથોની છે અને તેટલા માટે તેમની સહાનુમૂતિ ઉપર એ સંસ્થાનો હક છે. શેઠ ગુલાબચંદ દેવચંદ આદિ ગૃહસ્થોએ પણ એ મીટિંગમાં પ્રસંગોચિત માપણો કર્યા હતાં. તે પછી, ફંડ મેળો કરવા માટે જૈનકોમના કેટલાક આગેવાનોની એક કમિટી નીમવામાં આવી હતી. છેવટે, પ્રવર્તક શ્રીકાન્તિવિજયજી મહારાજે શ્રોતાજનોને આ ઉમદા કાર્યમાં મદત કરવા માટે પોતાથી ચનતું કરવા પ્રેરણા કરી હતી. તેમણે જનાલ્યું હતું કે આ કાર્યની ઉપયોગિતા છે, તે આધ્યા

ત્મિક દૃષ્ટિએ છે, વ્યાવહારિક કે આર્થિક દૃષ્ટિએ આ ચાલત જોવાની નથી. इत्यादि.

જૈનકોમની સાથેના અમારા કોલકરાર કરવાના અંગે કેવા કેવા પ્રકારની મુશ્કેલિઓ ઊભી થવા પામી છે તેનું આ સ્થળે સવિસ્તર વર્ણન કરવું અનાવશ્યક છે. આ કોલકરારની માંજગઢ થવા દરમ્યાન જૈનગૃહસ્થોના સૂચવવા ઉપરથી કેટલીક વસ્તે અમને આશા થતી કે, એ કોમ પાસેથી રૂ. ૨૫-૫૦ હજાર રૂપિયા પ્રાપ્ત કરવા અમે શક્તિમાન થઈશું, ત્યારે કેટલીક વસ્તે એવી નિરાશા થતી કે આટલી થી માંજગઢ કે વાટાવાટનાં પરિણામમાં માત્ર પાંચ હજાર રૂપિયાનો જ લાભ થવાનો છે. છેવટમાં અમે માત્ર મુનિ જિનવિજયજીને ધન્યવાદ બાપીએ લીધે કે જેમના ઉત્સાહ અને અશ્રાન્ત પ્રયત્નને લઈને સંસ્થાની પહેલી સંવત્સરી (તા. ૬, જુલાઈ, ૧૯૧૮) ના પ્રસંગે જૈન સમાજ તરફથી ઝિંજી લિખિત ઉદ્ગાર પ્રકટ કરવા તેઓ અધિકારી થયા હતા.

× × × ×

જૈન કોન્ફરન્સના સેક્રેટરી અને આ સંસ્થાના કાર્યકારી મેંઢલ વચ્ચેના કરારની શરતો નીચે પ્રમાણે થઈ છે:—

૧—જૈન કોમ તરફથી આ સંસ્થાને રૂ. ૨૫૦૦૦

ની રકમ, ટ્રાસ કોઈ પણ પ્રકારના વિશિષ્ટ પ્રતિબંધ સિવાય જો દાન કરવામાં આવશે તો સંસ્થા તેના ચદલામાં નીચે આપેલી શરતો કબૂલ કરશે.

(અ) વ્યક્તિગત દાતાઓને, તેમની ચક્ષીસના પ્રમાણમાં, સંસ્થા તેમને પેટ્રન, વાઈસ પેટ્રન, બેનીફિક્ટર અને લાર્ડફ મેમ્બરના સાધારણ હકો ચક્ષશે.

(બ) ૧૦ હજાર અથવા તેથી અધિક રકમ આપનાર દાની ગૃહસ્થનું, તેમની ઇચ્છા હશે તો, તક્તી ઉપર નામ કોતરવામાં આવશે,

(क) पुस्तक प्रकाशन कार्यमा जे रकम संस्थाने मळसे तेनो योग्य हिस्सो—लगभग २ जैनग्रन्थ प्रकाशनना कार्यमा खर्च करवा कबुलात आपथे. अने

(ख) छपाएला जैनग्रन्थेना बेचाणना खर्च खुटण बाद करतां रहेला नफानी २ रकम सर्वथा जैन साहित्यना अर्थ जुडी राखी मुकवामां आवेश.

२-आ उपरांत, जैन समाज वषारानी रु० २५००० नी रकम आपवा कबुलात आपथे तो संस्था तरफथी तेना बदलामां

(अ) संस्थानो जे विद्यमान हॉल छे तेनी बाजुमां एक हॉल (जेना खर्चनो अडसट्रो रु. ३०००० नो कोरेलो छे) गांधवामां आवेशे, अने ते दाता (जो ते एक व्यक्ति हशे तो) नी अथवा जैन समाजनी सम्मति अनुसार तेनुं योग्य नाम आपवामां आवेशे. अथवा

(ब) आ रकम एक स्थायी फंडना रूपमां अलग राखवामां आवेशे अने तेना व्याजनी रकमनो, (संस्थाना साधारण फंड माटे तेमांथी पांच टका काडी लई) जे जे कार्यमां उपयोग करवानुं जैन समाज सूचवशे ते ते कार्यमां तेनो उपयोग करवामां आवेशे.

आ रीपोर्टमां, उपर मारुं नाम लेवामां आवुं छे तेथी ए सम्बन्धमां मारे अही केटलो कबुलातो करवानी आवश्यकता छे. आ रीपोर्टमा प्रारंभमां जणाव्या प्रमाणे ज्यारे मुंवरना गोडीजीना जैन उपाश्रयमां प्रवर्तक श्रीकांतिविजयजी म०ना प्रमुखपणा नीचे, आ संस्थाने जैनसमाज तरफथी सहायता करवा माटे जे मीटिंग मळी हती ते वखते हुं पण त्यां हाजर हतो. संस्था तरफथी डॉ. बेत्तलकर विगेरेण जे भाषणो आप्यां हतां तेमा, संस्थानी स्वाधीनतामां अविला विशाल जैन साहित्यनी केट-

लीक स्थूल रूपरेखानुं पण वर्णन करवामां आवुं हतुं. ए वर्णन सामळी मारा मनमां ते वधुं साहित्य जेवानी प्रबल उत्कंठा थई आवी, अने तेथी, हुं मुंचईथी विहार करी अही (पूनामां) आव्यो. अही आव्यां पछी, ए संस्थाना कार्यवाहको साथे विशेष परिचय थयो. मुंवरना जे मीटिंग भराणी हती अने तेमां जे आ कार्यमा मदत करवा माटे केटलाएक भाईओनो कमीटी नामवामा आवी हतो, तेनुं परिणाम अंते शून्य जेनुं जणानुं लागतुं होवाथी, ए लोकाना मनमां बहु ज निराशा थई आवी हती. मारो समागम थया पछी, ए कार्यमा प्रयत्न करवा मने ज ए भाईओ खास प्रेरणा करवा लाभ्या, थारि मने बहु मुंनवण थवा लागी. मारी परिस्थितिनो विचार जणावतां में, प्रथम तो ए भाईओने एम ज चोस्ते जवाप आप्यो के, आ कार्यमा, मारा जेवा एक अज्ञातमार्गी, एकांतयात्री अने एकाकी रमता (अथवा रखडवा) भिक्षुप भाग लेवाथी काई सफलता मळे तेम नथी, कारण के पैसा आपनारा हमेशां कार्यनी उपयोगिता—अनुपयोगितानो विचार करवा के समजवा जेटली फुरसदखाला होता नथी अने तेथी सीधा—सादा माणसना कहेवा उपरथी तेओ खीसामाथी बेक काडी आपे, पूवी आशा राखवी मूखता गणाय. लोको हमेशां म्होंदुं जोई चादलो करवानी देवथी देवाई रहेला छे, तेथी तेवा मोटा म्होंदावाळा माणसना कपाळे ज तेओ चंदन—चोला चोंटाडवा तैयार थाय छे; माटे, आ कार्यमा तो, कोई। बहुश्रुतपदविमूषित, बहुजनसम्मत अने बहुशुश्रूषपरिवृत गणाता नामवर आचार्यनी सेवा-स्तवना करवाथी तमारी आशा सफल थाय तेम छे. परंतु, मने ए संस्थाहस्तक रहेलां समग्र जैनपुस्तकेनो ध्यानपूर्वक-जेवानो अने तेमां छपाएला विविध ऐतिहासिक साधनो—ग्रमाणेनुं विस्तृत टाचण करी लेवानो प्रबल लोभ हतो, तेथी विचार थयो के जो हुं आ लोकाने उपर प्रमाणेनो सूको जवार आपीने ज

બેસી રહીશ તો, જે કાર્ય માટે હું અહીં આવ્યો છું તે યથેષ્ટ રીતે પૂર્ણ થાય તેમ નથી. કારણ કે એ માર્દ-ઓની પ્રસન્નતા મરેલી સહાનુભૂતિ શિવાય મારાથી એ વિશાલ જૈન સાહિત્યનું સ્વેચ્છાપૂર્વક નિરીક્ષણ કરી શકાય તેમ સંભવતું નથી. બીજું, સંસ્થાનું કાર્ય પૂર્ણ મને બહુ જ ઉપયોગી અને અત્યુત્તમ જણાયું. એ સંસ્થાને જો પ્રારંભમા જૈન સમાજ તરફથી સારી સહાયતા મળે તો, તે સમાજ અને દેશ-વજેની દૃષ્ટિએ એક માનવદુર્લભ કાર્ય ગણાશે. જૈન સમાજ પોતાના નિર્જીવ સ્વાતામ્યોમાં જ્યારે દર વર્ષે હજારો-લાલો-રૂપિયા (કાઠની આકાશા ધગર જ ?) સ્વર્ણ છે ત્યારે આવા એક સજીવન અને સાર્વજનિક સ્વાતામ્ય ૨૫-૬૦ હજાર રૂપિયા આપવા તેને કોઈ હિસાબમા નથી. તેમ જ આજ સુધીમા, આવી જાતના કોઈ પણ જાનેતર સજ્જનો જૈનસમાજ પાસે વિશિષ્ટ રીતે સહાયતા માંગવા આવ્યા નથી અને જો આ પ્રસંગે આવ્યા છે તો તેમને નિરાશ મને યાદા વાલ્લવામા જૈન કોમને એક પ્રકારનું કલંક જેવું છે. તથા તાતા બન્ધુઓ જેવા પારસી સજ્જનોએ, જે જૈનમા સાહિત્ય કે ધર્મનો એ સંસ્થા સાથે કોઈ પણ પ્રકારનો સમ્બન્ધ નથી, તેમણે સીધી પ્રથમ એક ઉદાર રકમ આપી પારસીકોમની કિર્તિ વધારી છે, ત્યારે જૈનસમાજનો તો, એ સંસ્થામા એક દૃષ્ટિએ સ્વાર્થ પળ છે; તેથી જો કોઈક સહાયતા આપવામા આવે તો પરમાર્થ સાથે સ્વાર્થ સાધન પણ થાય તેમ છે. આ વધા વિચારોના કોષે, મને એમા યથાશક્તિ પ્રયત્ન કરી જોવાનું સાદૃશ્ય થઈ આવ્યું. અને તદનુસાર, મેં કેટલાએક પરિચિત અને સાહિત્યપ્રિય ગૃહસ્થોને, આ કાર્યમા કોઈક સહાયતા આપવા-અપાવવા માટે, પ્રત્યક્ષમાં તેમ જ પત્રો દ્વારા સૂચનાઓ કરવા માઢી. તેના પરિણામે, કેટલાક માર્દઓની આજ્ઞા આપનારી અને વિશ્વાસ મરેલી સમ્મતિથી, મેં, એ સંસ્થાના પ્રથમ વાર્ષિકોત્સવના મોટા મેલાવડા પ્રસંગે, ઉપર જણાવ્યા પ્રમાણે, ૨૫ હજાર રૂપિયા, જૈનસમાજ તરફથી એ

સંસ્થાને મેટ આપવાની કબૂલાત આપવાનું સાદૃશ્ય કર્યું હતું. અને તેના બદલામાં, સંસ્થા પાસેથી, કેટલીક વાટાઘાટ કર્યા પછી, ઉપર ફલમ ૧ મા જણાવ્યા પ્રમાણે શરતો કબૂલ કરાવવામાં આવી હતી.

જૈન સમાજના સદ્ભાગ્યે, મેં ઓપેલી ઉપરોક્ત કબૂલાતના સમાચાર વર્તમાનપત્રોમાંથી ફલકતા નિવાસી જૈનનાતિશિરોમુખ્ય ધર્મપ્રિય વાતુ શ્રીવદ્રીદા-સજી મુકોમના મુખ્ય વાતુ શ્રીરાજકુમાર સિંઘજીની જાળમા આવ્યા અને તેથી તેમણે મને એક પત્ર દ્વારા એ સંબન્ધમાં વિશેષ હકીકત જણાવવાની સૂચના કરી. તે જ પ્રસંગે વડોદરા નિવાસી અને ગાયકવાડ સર-કારના માનવંતા શ્રેવેશ સેઠ લાલમાઈ કલ્યાણમાઈ કાર્ય પ્રસંગે અહીં (પૂનામાં) આવતાં મને મળવા આવ્યા. તેમને પ્રત્યક્ષમા એ સંબંધી વધી હકીકત સમજાવતા, તેમ જ ઉક્ત વાતુજીને સવિસ્તર પત્ર લખી મોકલતા, એ વજે ઉત્સાહી, ઉદાર અને ઉમંગી સદ્-ગૃહસ્થોએ આ કાર્યમાં યથેષ્ટ મદત આપવા-અપાવ-વાનો માર આનંદપૂર્વક પોતાના માથે ઉપાડી લેવાનો સ્વીકાર કર્યો. થોડા જ દિવસ પછી મને વાતુ શ્રીરાજકુમારસિંઘજીનો એક બીજો પત્ર આવ્યો. તેમાં તેમણે ૨૫ હજાર જ નહીં પરંતુ ૫૦ હજારની મોટી રકમ મેળવી આપવાનો ઇચ્છા પ્રદર્શિત કરી, અને એ બીજી ૨૫ હજારની વધારાની રકમના બદલામાં જૈનકોમના અથવા કોઈ જૈન ગૃહસ્થના નામે એક હોલ બાંધવા સંબંધી જ્યવસ્થા કરવાનું જણાવ્યું. વાતુ સાહેબ પોતાની પૂરી લાગણી અને વજનદાર પ્રયત્નના લીધે થોડા જ દિવસોમા જુદા જુદા સદ્ગૃહસ્થો પાસેથી આપવા કબૂલેલી રકમના મોટા ભાગના વચનો મેલવી લીધા હતા. તથા ૨૫ હજારની સામઢી એક નાદર રકમ, ધાનવીર સેઠ દીરજી સેતલ્લી પાસેથી તેમના નામે લાઈબ્રેરી હોલ બંધાવવાની શરતે, લેવાની લીધી હતી.

સંશોધન માટે એક નવું દ્વાર ઉઘાડી આપવાનું સ્વેચ્છાસભર માન બાબૂ શ્રીરાજકુમારસિંઘજી અને સેઠ શ્રીલાલભાઈ એ બંને સજ્જનોને ઘટે છે. તેઓ જ વાસ્તવિક ધન્ય-વાદને પાત્ર છે. તેમના જ સુપ્રયત્ન અને પ્રારંભિક ઉદારતાને લીધે આ કાર્ય મૂર્તિમત સ્વરૂપ પ્રાપ્ત કરી શક્યું છે.

પરંતુ, આપણે જૈનો આરંભે શૂરા ગણાઈએ છીએ. કોઈ પણ કાર્યનો પ્રારંભ કરતાં જેટલો ઉત્સાહ આપણે ધરાવીએ અને બતાવીએ છીએ તેટલો ઉત્સાહ અંત સુધી આપણામાં રહેતો નથી. અને તેથી આપણું કોઈ પણ કાર્ય ધીસેવિધા સફળ થઈ શકતું નથી. આપણા સમાજનું એ જન્મસિદ્ધ લક્ષણ આ કાર્યમાં પણ જાવીને ઊંડું જ રહ્યું છે. શરૂઆત કરતી વખતે જે જ દિવસમાં જેટલી રકમ આ કાર્ય માટે ઉક્ત થતી હોય અન્ય ગૃહસ્થો પાસેથી મરાવી શક્યા હતા તે-ટલી રકમ, તે ગૃહસ્થો પાસેથી ઉઘરાવીને હજી સુધી અહીં પહોંચાડી પણ શક્યા નથી. તેમ જ ૮-૧૦ હજારનાં વચનો જે લેવાનાં બાકી હતાં તે હજી સુધી લેવાયાં નથી. સંસ્થાની મૂલ્ય શરત એવી હતી કે, ૧૯૧૮ ના ડીસેમ્બરના અંત સુધીમાં જો કબૂલેલી બધી રકમ સંસ્થાને સ્વાધીન કરવામાં આવશે તો જ સંસ્થા, ઉપર આપેલી પોતાની શરતો કબૂલ રાખશે. તેના બદલે, આજ ૧૯૨૦ નો એપ્રિલ મહિનો પૂર્ણ થાય છે, તો પણ હજી સુધી બધી રકમ પહોંચતી કરવામાં આવી નથી, અને તેથી સંસ્થાએ અઘાપિ કોઈ પણ પ્રકારનું જૈન સાહિત્ય સંબંધી કાર્ય હાથમાં લીધું નથી. કબૂલેલી રકમ 'હેલીમોડી' આપવાની તો છે જ, અને તે આપવા માટે ઉક્ત થતે સજ્જનોની કાળજી પણ છે જ, પરંતુ ફક્ત નજીવા આંતરેને સંદેશો એ બાબત હજી અવગણે રસદબા કરે છે, અને તેના લીધે ખાટલી મુદત દરમિયાન, ૩-૪ હજાર જેટલા રૂપિયા જૈનસાહિત્યમાટે સર્ચાતા અટક્યા છે. અને પરિણામે આપણા લાભમાં નુકસાન થતું જાય છે. તેથી હવે જેમ અને તેમ તુરતમાં જ કબૂલેલી

બધી રકમ સંસ્થાને પહોંચતી કરવા માટે ઉક્ત થતે માર્ગોને સામગ્રહ નિવેદન છે. તેમના કહેવા પ્રમાણે ફક્ત જે કલાકનું જ કામ છે, અને એ જે કલાક કાઢવાથી એક તો આપણા માથેથી પ્રતિજ્ઞા-પાલનનો મોટો ભાર ઓછો થઈ જશે અને વીજું એ લોકોને દવાજન પૂર્વક, આપણે આપણા સાહિત્યના સંવ-ન્ધમાં હીલચાલ કરવા માટે કહી શકીશું. નહીં તો આટલી મોટી રકમ એન અડચણના પ્રસંગે આપણે આપવા છતાં પણ એ સંસ્થાના કાર્યવ્યવહારમાં આપણો અવાજ યોગ્ય રીતે સાંભળવામાં આવે, તેવી આશા રાખવી ફોફટ છે; અને આપણા સાહિત્યના સંશોધ-નની જે સીમા ઇચ્છાર્થી આપણે આટલો પરિશ્રમ ઉઠાવ્યો છે, તે ઇચ્છા ઠીક ઠીક સફળ થાય તેમ માનવું મૂલ મરેલું છે. મનુષ્યને જ્યારે અમુક પ્રકારની સ્વાસ્થ્ય ગરજ હોય છે ત્યારે તેને જે કહો તે કરવા કબૂલ થાય છે, પરંતુ ગરજસરે તેમાંનું કેટલું પડાય છે, તે સૌ કોઈને અનુભવસિદ્ધ છે. એ જ મનુષ્યસ્વભાવ આ વાતમાં પણ લાગૂ પડે તો તે બનવા જોગ છે, અને તેમાં વઝી આપણી ડીલ આપણને જ જીતેલું જોઈએ સ્પષ્ટ થોલતાં અટકાવી શકે છે.

મુંબઈ સરકારના પટ્ટીકવર્કર્સ ડીપાર્ટમેન્ટ તરફથી આજ ઘણાં વર્ષો થયાં સંસ્કૃતસીરીક્ષ નામે એક ગ્રંથ-માલા પ્રકટ થાય છે. એ કામમાં સરકાર દરવર્ષે ૧૨ હજાર રૂપિયાનો ખર્ચ કરે છે. એ સીરીક્ષમાં આપણા જૈન ગ્રંથો પણ પ્રકટ થયા કરે છે. દેશનામમાલા, કુમારપાલચરિત, અને પ્રાકૃતવ્યાકરણ તથા દ્વાચાશ્ર-યકાવ્ય, વિગેરે આપણા ગ્રંથો એ જ સીરીક્ષમાં છપાયા છે. છતાં જે વર્ષોથી સરકારે આ સીરીક્ષનું સંપૂર્ણ કામ માંડારકર ઇન્સ્ટીટ્યુટને સ્વાધીન કર્યું છે અને તે કાર્યની વ્યવસ્થા, એ સંસ્થા પોતાની ઇચ્છા પ્રમાણે કરે છે. જૈન સમાજ તરફથી અપાતી ૨૫ હ૦ ની રક-મના બદલામાં, આ સંસ્થાએ ફક્ત ૧ ની પેટા ફક્ત 'દ્વા' માં જળવેલી શરતે જ કબૂલ કરેલી છે, તે શરત પ્રમાણે, સરકાર તરફથી મળતી ઉપરોક્ત

૧૨ હજારની ગ્રાંટમાંથી ૩ પટલે ૩ હજાર રૂપિયા સીધા જૈનસાહિત્યના સંશોધન-પ્રકાશન અર્થે જ સ્વર્ચવા જોઈએ. પરંતુ હજી સુધી કોઈ પણ રકમ તે કામમાટે એ સંસ્થાએ સ્વર્ચવા કાઢી હોય તેમ જણાતું નથી. એ સંબંધમાં કોઈ પૂછપરછ કરવામાં આવે છે તો સીધો પટલો જ જવાબ મળે છે કે, તમે તમારી કબૂલાત હજી પૂરી પાડી શક્યા નથી, તેથી અમે એ સંબંધમાં કોઈ સ્પષ્ટ જવાબ આપી શકતા નથી. (—જો કે આપણે અત્યારસુધીમાં લગભગ ૩૦૦૦૦ રૂપિયા તો એમને પહોંચાડી પણ ચુક્યા છીએ) મારી અહીં પ્રત્યક્ષ હયાતી હોવા છતાં, અને એ વધા કાર્ય-વાહકો સાથે મારી અંગત મૈત્રી હોવા છતાં, આપણા આલસને લીધે, આવી પરિસ્થિતિ નજરે પડે છે, તો પછી પાછલ્લથી, લાંબા સમયે આપણી આશા ફેટલે અંશે સફળ થઈ શકશે, તે સહજ સમજી શકાય તેવી બાબત છે.

હું આ કાર્યમાં ફેટલેક અંશે નિમિત્તમૂત થયેલો હોવાથી અને અંતરંગ વધી વ્યવસ્થા કરવાનો વિશ્વાસ મારા ઉપર જ વધા માર્દોએ રાસેલો હોવાથી, આ સમ્બન્ધી મારા સ્પષ્ટ વિચારો સમાજ આગળ રજૂ કરવાની મારી ત્યાસ કરજ છે, અને તેથી આટલો અંગત જુલાસો કરવો મેં અહીં યોગ્ય ધાર્યો છે.

છેવટે, હવે હું પટલું જ નિવેદન કરું છું કે જે જે સદગૃહસ્થોએ આ કાર્યમાં રકમ મરી હોય, તે તુરત આપી દઈ અને બાકી જે થોડી ધણી રકમ સ્વૂટી હોય તે મંડાવી લઈને, જૈન-ધર્મે તેમ જલ્દીથી આ સંસ્થાને પહોંચતી કરવી જોઈએ, કે જેથી આપણા લામમાં વિના કારણે નુકસાન ન થાય. બીજું એ પણ એક નિવેદન છે કે સંસ્થા સાથે જે કોઈ વ્યવહાર રાસવામાં આવે તે વધો વ્યવસ્થાપૂર્વક અને નિયમસર રહેવો જોઈએ. એ કાર્ય, કોઈ એક વ્યક્તિ સાથે સમ્બદ્ધ નથી પરંતુ સમાજ સાથે સમ્બદ્ધ છે, અને તેથી જ મેં શરૂ-આતથી લઈને આજ સુધીના વધો વ્યવહાર મારા નામે ન રાસતાં, જૈન શ્રેતાચર કોન્ફરન્સના જનરલ સેકે

ટરીના નામે રાસાવ્યો છે. પરંતુ હેદ તો એ છે કે, અહીંથી જે વધો વિગેરે તે સેકેટરીના નામે મોકલવામાં આવે છે તેનો સવિસ્તર જવાબ મળવો તો વાજુએ રહ્યો પરંતુ વધની પોંચ સુધાં પણ મળતી નથી. વાણિ-આમાઈના હાથમાં અનેક વસ્તે સામ્રાજ્ય સ્થાપવાના સાધનો આવેલાં છતાં એક ગામડું પણ તેમના કવજામાં રહી શક્યું નથી તેનું કારણ આવી અવ્યવસ્થા જ છે. માટે, હવે દરેક કાર્ય ચોક્કસ લક્ષણ અને નિયમપુરસ્સર કરતાં સીલવાની આવશ્યકતા છે. તેમ યથે તો જ આપણે આપેલી ઉદારતાનો આપણને કોઈ પણ પ્રકારનો જવાબ મળી શકશે. નહીં તો સવાલ કરવાનો અધિકાર પણ નહીં મળે. બાકી, અહીંના એ સજ્જનો કાર્ય કરવામાં વહુ જ ઉત્સાહી અને નિઃસ્વાર્થ વૃત્તિવાળા છે. આપણી જન્મભૂમિનું ગૌરવ કેમ વધે એવી માવનાને આદર્શ રાસી પ્રવૃત્તિ કરનારા છે. સર્વસ્વનો મોગ આપીને પણ અંગીકૃત કરેલા કાર્યને, પાર ઉતારનારા છે. વિદ્વા સાથે જિજ્ઞાસુ માથે ધરાવનારા છે અને જાતિ અભિમાન જાલવી રાસવાની ઇચ્છા રાસતાં છતાં વધાની સાથે વન્ધુમાથે દેલાડવાની વૃત્તિ વત્તાવનારા છે. તેથી, વ્યવસ્થાપૂર્વક અને નિરક્ષિપપુરસ્સર જો આપણે આપણું વચન શીઘ્ર પાડીશું તો આપણા સાહિત્ય માટે, આ સંસ્થા દ્વારા કેટલુંક ઉપયોગી કાર્ય, કાલાતરે પણ થઈ શકશે એવી આશા છે. તથાસ્તુ.

જૈન સાહિત્ય પ્રકાશન કાર્ય.

એ વહુ સુશી થવા જેવું છે કે, છેલ્લાં કેટલાંક વર્ષોથી આપણા સમાજમાં પ્રાચીન પુસ્તકોના પ્રકાશનનું કાર્ય ઠીક ક્ષણથી ચાલી રહ્યું છે. આજ સુધીમાં સેંકડો અંશે છપાઈ બહાર પડી, ગયા છે અને પડતા જ જાય છે. જે અંશોના દર્શન પણ દુર્લભ મનાતાં હતા તેવા ગ્રન્થો આજે દરેક સાધુ-શ્રાવક

ના હાથમા ફરતા જોવામા આવે છે. જે ગ્રંથની એક નકલ ઉતરાવતા સેંકડો રૂપિયા સર્ચ કરવા પડતા હતા તે ગ્રંથ આજે મફત સુધા મળી શકે છે. એ વધો પ્રતાપ ઉત્સાહી પુસ્તક-પ્રકાશકો અને તેમને સહાયતા આપતા-અપાવતા મુનિજનોનો છે.

પરંતુ, હાલમા જે પદ્ધતિએ આપણામા આ સાહિત્ય પ્રકાશન કાર્ય ચાલે છે તે પદ્ધતિ—જો કે એ પદ્ધતિ પણ મૂળ ગ્રંથોને સર્વથા નષ્ટ થવામાથી બચાવી રાखવા જેટલી ઉપકારક તો છે જ, પરંતુ—સમયની આવશ્યકતાની અપેક્ષાએ વધુ જ અસ્પષ્ટ-પ્રદાયક છે. વર્તમાનમા એક તો ગ્રંથનિરીક્ષણની અનેક પદ્ધતિઓ બહાર આવતી જાય છે, બીજું લોકોનું સાધારણ જ્ઞાન વિસ્તૃત થતું જાય છે, અને તેથી તેમનામા આગલ કરતા વધારે વિચારપૂર્વક ગ્રંથ જોવાની જિજ્ઞાસા વધતી જાય છે, અને ત્રીજું જન-સમાજનો મોટો ભાગ, જિજ્ઞાસા ધરાવવા છતાં, જુના ગ્રંથોને પરિશ્રમપૂર્વક સાદત વાંચી-સમજી, અભ્યવ-હાર્ય ભાષામા લેખાણ અસ્પષ્ટ વિચારોને પોતાના મગજમા ઠરાવવા જેટલું કષ્ટ ઊઠાવવા રાજી નથી. તેથી હાલની પદ્ધતિએ પ્રકટ થતું આપણું સાહિત્ય શોકદૃષ્ટિએ તો અપ્રકટ જેવું જ છે, આજની પદ્ધતિનો ઉપયોગ ૫૦ વર્ષ પહેલાં હતો તે સમયે જ આવી પદ્ધતિએ છપાણા ગ્રંથો લોકોના મનમા આનંદ ઉત્પન્ન કરી શકતા હતા. હવે તેમ કરી શકે તેવી પરિસ્થિતિ નથી. આજે હું, અહીં ગ્રંથ પ્રકાશનની પદ્ધતિ ઉપર વિશેષ વિવેચન ન કરતા, જે પદ્ધતિએ ગ્રંથો વર્તમાનમા છપાય છે તેનો પણ લોકોને પૂરો લાભ મળતો નથી, તે સંબંધમા બે શબ્દો જણાવવા ઇચ્છું છું.

જે વ્યક્તિઓના પ્રયત્ને આ પુસ્તક-પ્રકાશન કાર્ય ચાલી રહ્યું છે, તેમના ઉત્સાહ, પરિશ્રમ અને આશય ઉત્તમ હોવા છતાં વિચારસંકુચિતતાનો એક મોટો દોષ તેમનામા પ્રધાન પણ મોગવી રહ્યું છે, અને તેથી સ્વરા જિજ્ઞાસુઓને, એ નિર્જીવ પદ્ધતિ

છપાતા પુસ્તકો પણ જોવા-વાંચવા માટે મળી શકતા નથી. આજ સુધીમા સેંકડો ગ્રંથો છપાઈ પ્રકટ થઈ ચુક્યા છે, છતાં, સાધુઓની પેઢીઓ સિવાય બીજે ટેકાળે તેના દર્શન થવા દુર્લભ છે. આ કારણ-થી જૈનેતર સેંકડો વિદ્વાનોને તો પૂરી એ પણ સ્વર નથી કે કોઈ જૈન સંસ્થા પણ હિન્દુસ્થાનમાં જૈન પુસ્તકો છપાવવાનું કામ કરે છે કે કેમ ! જે સાધુ-ઓને પુસ્તકનું નામ સુધા પણ બરાબર વાંચતા ન આવડતું હોય તેમની પાસે પણ, સીસમના કમ્બોટોમા અને રેશમના રુમાલોમા બાધી મુકેલી દરેક પુસ્તકની એક-બે નકલો અવશ્ય મળી આવશે, પરંતુ જૈનોની રાજધાની જેવા ગણતા શહેર અમદાવાદમા વસતા પ્રો. શ્રી આનંદશંકર કે સાક્ષર શ્રી કેશવલાલ ધ્રુવ જેવાને, તેમ જ, જૈન પુસ્તકપ્રકાશનના કાર્ય માટે પાટનગર મનાતા માવનગર શહેરમા રહેતા પ્રો. મીઠે જેવા વિદ્વાનોને જોવા પુરતું પણ પુસ્તક મળવું દુર્લભ થઈ રહે છે. આવી સ્થિતિમા જૈન સાહિત્યનો શ્રી રીતે ભા-કોમા પ્રસાર થાય અને શ્રી રીતે વિદ્વાનો તેમા રસ લેતા થઈ શકે ? તે સહજ સમજી શકાય તેમ છે.

યૂરોપની લિપિમા છપાણા અને સોનાના મૂલ્યે વેચાતા યૌદ્ધ ધર્મના પિટક ગ્રંથો હિન્દુસ્તાનની લગભગ દરેક કાલેજની લાઈબ્રેરીમા વિદ્યમાન છે, ત્યારે ક્યવત કાગલની ફિમતે વેચાતા કે મફત વહેંચતા જૈન આગમો ઇંગ્લેન્ડની યુનિવર્સિટીની લાઈબ્રેરી સુધામા પણ ઉપલબ્ધ નથી !

મુંબઈ યુનિવર્સિટીએ ચાલુ વર્ષથી, જૈનસાહિત્યની મૂલ અને પૂજ્યમાપા અર્ધમાગધીને પોતાના પઠન-ક્રમમા દાખલ કરી છે એ પઠન ક્રમમા જે પુસ્તકો નિયત કરવામા આન્યા છે (એ ગ્રંથો સ્વાસ કરીને મારી સૂચનાનુસાર જ નોંધવામા આન્યા છે અને તેના નામો નોંધેની નોટમા આપ્યા છે) તેની નકલો પણ વિચાર્પીઓને મળી શકતી નથી. ડૉ. ગુણે કે, જેમણે જ અર્ધમાગધીના સાહિત્યને પોતાના પઠનક્રમમા

ઠરાવ મુક્યો હતો, મને થોડા દિવસ ઉપર, એક સંદેશો કહેવડાવતાં ગણાવે છે કે—

Please say to Muniji that students of Ardhamagadhi are complaining that the Jain Publishers do not sell them the books although in stock. People who were keen upon introducing Ardhamagadhi into the University should, I think, behave better.

P. D. Gunc.

અર્થાત્—‘મહેરવાની કરી મુનિજીને કહેશે કે અર્ધ-માગધીના વિદ્યાર્થીઓ ફર્યાદ કરે છે કે જૈન પુસ્તક પ્રકાશકો પુસ્તકો શિલીકમાં હોવા છતાં તેમને વેચાતાં આપતાં નથી. હું ધારું છું કે જે લોકો અર્ધમાગધી માપને યુનિવર્સિટીમાં દાખલ કરાવવા માટે ઉત્સુક હતા તેમણે અધિક સુંદર વર્તન રાખવું જોઈય.

પી. ડી. ગુને,

આવી જ રીતે કેટલાય વિદ્યાર્થીઓની પણ સૂચના આવ્યા કરે છે. અને કેટલાક તો યુનિવર્સિટીના રજીસ્ટ્રારને ફર્યાદ પણ કરી ચુક્યા છે કે, જે પુસ્તકો વિદ્યાર્થીઓને અભ્યાસ અર્થે મળી શકતાં નથી તેવાં પુસ્તકો યુનિવર્સિટી શું સમજીને કોર્સમાં દાખલ કરે છે ! इत्यादि.

મારા એક વિદ્વાન્ મિત્ર, પ્રો. રાજવાડે (ચરોડા કૉલેજના પાલી માપના અધ્યાપક) જૈન આગમોનો અભ્યાસ કરવા પ્રથમ ઉત્કંઠા ધરાવે છે. તેઓ આજ બે વર્ષથી મને વારંવાર તે પુસ્તકો મેળવી આપવાની સૂચના કર્યાં કરે છે, પરંતુ સાધુઓના કબાટોમાં બંધ થયેલા એ પુસ્તકો શી રીતે બહાર આવી શકે ? એ પુસ્તકો લેવા માટે તેઓ જાતે, આગમોદય સમિતિની ઑફિસમાં—મુંબઈ અને સુરત ફેરો છાઈ આવ્યા હતા, પરંતુ જૈનિતર હોવાથી સમિતિના નોકરે તેમને તે પુસ્તકો આપવાની ના પાડી હતી !

ચાલુ વર્ષમાં, અહીં (પૂના) ના એક બુદ્ધિશાલી

બ્રાહ્મણ વિદ્યાર્થી, યી. એ. માં આનર્સ સવજેક્ટ તરીકે જૈન સાહિત્ય સીધું હતું, પરંતુ તેને છેલ્લા અઢત્તો-વર મામ સુધી પાટચ પુસ્તક ન મળવાથી તે નિરાશ થયો હતો; અને આસેરે, મેં મારી પાસેથી પુસ્તક આપ્યું ત્યારે માત્ર પંદર દિવસમાં તેણે મારી પાસે તે વર્ધુ પુસ્તક ચાંચી જઈ પોતાની પરીક્ષાની તૈયારી કરી હતી. આઘી યુનિવર્સિટીમાં જૈન સાહિત્યનો તે એક જ વિદ્યાર્થી હતો. તેનું પરીક્ષાપત્ર તૈયાર કરવાની જ્યારે જરૂરત પડી ત્યારે પરીક્ષકને પણ તે પુસ્તક ક્યાંથી મેળવવું તેની ચિંતા થઈ પડતાં મારી પાસે તેની માંગણી કરવામાં આવી હતી. આવી રીતે અધ્યાપકોને પેપરો કાઢવા માટે પણ જ્યારે પુસ્તકો મળતાં નથી તો પછી ચાંચવા કે સીલવવા માટે તો ક્યાં થી જ મળે ?

આ તો ઉદાહરણરૂપે એક બે દાખલા નોંધ્યા છે. આવી જાતના તો અનેક ઉદાહરણો મારા અનુભવ-વામાં આવ્યા છે અને આવે છે. જે લોકો વિચારા ધર્મપ્રેમથી મોઢામાવે હજારો-લાક્ષો રૂપિઆ પુસ્તકોદ્ધારના નામે આપતા રહે છે, તેમનો આત્મ-જો આ સત્ય હકીકત સમજવા જેટલો જ્ઞાનવાન્ હોય તો તેમના મનને કેવું લાગી આવે ! આવાં જ કારણોથી મારું એ કહેવું થાય છે કે વર્તમાનમાં જે પદ્ધતિ પુસ્તક પ્રકાશન પ્રવૃત્તિ ચાલે છે તે સમ-યની આવશ્યકતાની દૃષ્ટિ અનુયોગી જ છે.

જૈન સાહિત્ય માટે કઈ દિશામાં અને કઈ પદ્ધતિ પર કાર્ય કરવાની હવે આવશ્યકતા છે, તેનું દિગ્દર્શન આ અંકમાં અન્યત્ર પ્રકટ થયેલા પ્રો. રાજવાડેના ગુજરાતી લેખમાં, અને લાહોરની ઓરિન્ટલ કોલેજના પ્રો. શ્રીધનારસી દાસ જૈનના ઇંગ્લીશ લેખમાં, ઉત્તમ રીતે કરાવવામાં આવ્યું છે. પ્રો. રાજવાડે પાલીમાપના અને બૌદ્ધ ધર્મના કંઠા અભ્યાસી છે. તેઓ જૈન આગમોનો માર્મિક અભ્યાસ કરી બૌદ્ધ અને જૈન સાહિત્ય (પાલી અને પ્રાકૃત શાસ્ત્ર-મય) ની તુલનાત્મક દૃષ્ટિ વિવિધતા અને વિશિષ્ટ

ષ્ટતાઓ તારવી કાઢવાની ઉત્કટ ઇચ્છા રાસે છે. જૈન સાહિત્ય ઉપર તેમનું ઘણું પ્રેમ છે. જ્યારે અમારા આ ત્રૈમાસિકની છાપાવાની શરુઆતના તેમને સમાચાર મળ્યા ત્યારે એક પત્રદ્વારા તેઓ પોતાની સહાનુભૂતિ વતાવતા મને લખે છે કે—

I am glad your quarterly is starting its life so early. I shall certainly do all, I can to help it by contribution for I love the Jainagama and am anxious that its Knowledge should spread in our country.

અર્થાત્—‘આપના ત્રૈમાસિકને આટલું વહેલું પોતાનું જીવન પ્રારંભ કરતું આળી મને ઘણો આનંદ થાય છે. હું તેને લેવો દ્વારા જેટલી મદદ થઈ શકશે તેટલી અવસ્ય કરીશ. કારણ કે હું જૈન આગમોને યાદું છું, અને તેના જ્ઞાનનો આપણા દેશમાં પ્રસાર થાય તેમ જોવા ઉત્સુક છું.’ આ ઉપરથી જણાશે કે જૈન સાહિત્ય માટે તેમની માવના કેટલી સુંદર છે. આવા રસિક અને જિજ્ઞાસુ વિદ્વાનો માટે તો આપણને માન હોવું જોઈએ અને પુસ્તકાલયો જે સહાયતાઓ તેમને જોઈતી હોય તે ઉદારમને આપવી જોઈએ. આવી જાતના યોગ્ય વિદ્વાનોના હાથમાં જો પુસ્તકો જાય તો જ પુસ્તક પ્રકાશકો અને સંશાપકોને પરિશ્રમ સફળ છે. બાકી તો સાધુઓ મેલ રેશમીરુમાલોમાં બાંધી મુકી તેમને ઘૂપ આપ્યા કરે. એવેઈ અને કંસારીઓ શિવાય તેમનો રસાસ્વાદ બીજા લઈ શકે તેવી સ્થિતિ આજે તો જણાતી નથી.

આ કહેવાનું તાત્પર્ય પટલું જ છે કે, એક તો પુસ્તકપ્રકાશકોએ જરા પોતાની વિચાર સંકુચિતતા દૂર કરી, યોગ્ય વિદ્વાનોના હાથમાં આપણું સાહિત્ય જવા પોતે તેવો સ્વાસ્થ્ય પ્રયત્ન કરવો જોઈએ. મોંઝું, હવે એ જુની (નિર્માલ્ય) પદ્ધતિને છોડી, નવીન પદ્ધતિએ નવું સાહિત્ય તૈયાર કરાવવું જોઈએ. અને એ સાહિત્ય યોગ્ય વિદ્વાનોના હાથે સંશોધિત

થઈ પ્રકાશિત થવું જોઈએ. હાલમાં જે મન્યો છપાય છે તે શુદ્ધતાની દૃષ્ટિએ વધુ જ અસંતોષ આપે તેવા છે. મૂલ મન્યને વનતી રીતે શુદ્ધ કરવા તરફ વધુ જ ઓછો કાલબી રસાય છે. શોધનારા કે પ્રકટ કરનારાઓને સ્ત્રી વસ્તુસ્થિતિનું માન હોતું નથી અને તેથી કેટલીક વસ્તુઓ તેમના હાથે પરી મૂલો થતા જોવાય છે, કે જે વિદ્વાનોની દૃષ્ટિમાં બિલ્કુલ અક્ષમ્ય ગણાય છે. આ સમ્બન્ધમાં અમે આગળ ઉપર સવિસ્તર લખ્યા ઇચ્છીએ છીએ. તેથી આજે તો પટલું જ જણાવીને વિરમીએ છીએ કે આપણા ઉત્સાહી પુસ્તક સંશોધક—પ્રકાશકોએ હવે એ વિષયનું જરા સારું જ્ઞાન મેલવી યાદ પદ્ધતિમાં પરિવર્તન કરી સમયાનુસાર સફળ પ્રયત્ન કરવાની આવશ્યકતા છે. તેમ કરવાથી જ દ્રવ્ય આપનાર અને પરિશ્રમ કરનાર વ્યક્તિનાં પ્રયત્નો સફળ થશે.



મુંબઈ યુનિવર્સિટીમાં માગધી (પ્રાકૃત) ભાષા.

આજે કેટલાંક વર્ષો થયાં, જૈન કોન્ફરન્સ અને શ્રી મનસુખલાલ રવજીમાંઈ મેહતા જેવા જૈનસાહિત્ય રસિક ગૃહસ્થોએ મુંબઈ યુનિવર્સિટીને, પોતાના પઠનક્રમમાં જૈન સાહિત્યની મૂલ અને પવિત્ર ભાષા જે સાધારણ રીતે માગધી અથવા અર્ધમાગધી કહેવાય છે, તેને સ્થાન આપવા માટે અનેક વાર વિજ્ઞાપનો કરી હતા. પરંતુ, એક તો તે ભાષાનું સાહિત્ય યોગ્ય રીતે તૈયાર થવું ન હોવાથી, અને બીજું તેના અભ્યાસીઓ નિષ્ફલ્યો કે નહીં તેની સ્વાત્રી ન હોવાથી, યુનિવર્સિટીએ તે વાસ્તવમાં કાંઈ સ્વાસ્થ્ય ધ્યાન આપ્યું ન હતું. પરંતુ જ્યારે ૧—૭ વર્ષ ઉપર બૌદ્ધ સાહિત્યની પવિત્ર ભાષા પાલીને યુનિવર્સિટીએ પોતાના અભ્યાસક્રમમાં દાખલ કરી અને છેક હાઈસ્કૂલો સુધીમાં તેનો અભ્યાસ ચાલવા માંડ્યો; ત્યારે, પ્રાકૃત ભાષાના પ્રેમિઓએ પોતાની મિય ભાષાને પણ તેવી રીતે અભ્યાસક્રમમાં દાખલ કરવા માટે યુનિવર્સિટીને

વિશેષ આમ્રહ કરવા માહ્યો. તેના પરિણામે આ વર્ષે, યુનિવર્સિટી માગધી (પ્રાકૃત) ભાષાને બીજી ભાષા કરીકે પોતાના કોર્સમાં દાખલ કરી છે, એવાત જાણી તે ભાષાના ઉપાસકોને આનંદ થયા વિના નહીં રહે. પાલી ભાષા જો કે હાઈસ્કૂલમાંથી જ સીંચવાય છે પરંતુ માગધી (પ્રાકૃત) ભાષાનું શિક્ષણ કૉલે-જમાં જ આપવામાં આવશે અને તે પળ મેટ્રીકમાં બીજી ભાષા કરીકે જેણે સંસ્કૃત છીધી હશે તેને જ. (—પાલી ભાષાને પણ હવેથી હાઈસ્કૂલમાંથી કાઢી નાંચવાનો ઠરાવ થયો છે.) અમારા વિચાર પ્રમાણે આ નિયમ આવડ્યક છે, કારણ કે પ્રાકૃતની મૂલ પ્રકૃતિ સંસ્કૃત છે, તેથી જો સંસ્કૃત ભાષા અવગત ન હોય તો પ્રાકૃત ભાષાનો એક તો અભ્યાસ પણ વહુ કઠિન થઈ પડે તેમ છે; અને બીજું, તેના અભ્યાસીને પોતાનું જ્ઞાન વધારવાનું અન્ય સાધન ન મળવાથી તે ભાષા તેને અનુપયોગી અને કટાલો મરેલી થઈ પડે તેમ છે. સીંચોન વિગેરે દેશોમાં સંસ્કૃત સિવાય જ પાલી છીંચવામાં આવે છે સરી, પરંતુ, તે ભાષાના સાધનો પ્રાકૃતની અપેક્ષા વહુ જ વિસ્તૃત છે. સંસ્કૃત ભાષાના પાણિનિ અને હેમચન્દ્રના વ્યાકરણો જેવા પાલીભાષાનાં સ્વતંત્ર અને સર્વોગપૂર્ણ કેટલાય વ્યાકરણો બનેલા છે. કોપો પણ અનેક છે, સિવાય, નવીન પદ્ધતિ અનેક પાઠમાલાઓ અને વાચનમા-લાઓ પણ થપ્તી છે. તેથી તે ભાષા સીંચનારને કોઈ પણ પ્રકારની અઢચળ પડે તેમ નથી. તેમ જ પાલી ભાષાનું સાહિત્ય પણ વહુ જ વિશાલ અને સુદર હોવાથી તેના અભ્યાસીને પોતાના જ્ઞાન માટે જોઈએ તેવા વિચારો તેમાંથી મળી આવે તેમ છે.

માગધી (પ્રાકૃત) ભાષાના અભ્યાસીને માટે તેવી કોઈ પણ જાતની સગવડ નથી, તેમ જ તેનું સાહિત્ય પણ વહુ જ અલ્પ અને સાધારણ પ્રતિનું છે. તેથી, સંસ્કૃત સિવાય, કેવલ પ્રાકૃત અળનારને તે મારરૂપ જ થઈ પડે તેમ છે, અસ્તુ.

આવતા બે વર્ષ માટે, યુનિવર્સિટી નીચે પ્રમા-

જેના અર્થે અભ્યાસક્રમમાટે નિયત કર્યા છે.—
પ્રથમવર્ષ (પ્રીવિયસ ક્લાસ).

૧૯૨૧

- ૧ હરિમદ્ગ્રન્થ—સમરાદ્ધકહા, પ્રથમ થે મન.
- ૨ પઝમચરિય, વિમલસુરિગ્રન્થ, ઉદ્દેશ ૧—૧૮.
- ૩ પ્રાકૃતમાર્ગોપદેશિકા, પ. ચેચરદાસગ્રન્થ.

૧૯૨૨

- ૧ હરિમદ્ગ્રન્થ—સમરાદ્ધકહા, મવ ૩—૪.
- ૨ પઝમચરિય, વિમલસુરિગ્રન્થ, ઉદ્દેશ ૧૯—૩૭.
- ૩ પ્રાકૃતમાર્ગોપદેશિકા, પ. ચેચરદાસગ્રન્થ.

દ્વિતીયવર્ષ (ઇન્ટર મીનિયટ ક્લાસ).

૧૯૨૧

- ૧ કર્પૂરમંજરી, રાજશેલરગ્રન્થ.
- ૨ હેમચન્દ્રગ્રન્થ પ્રાકૃત વ્યાકરણ (અષ્ટમાધ્યાય), પાદ ૧ થી ૩.

૧૯૨૨

- ૧ વાકપતિરાજગ્રન્થ, ગડડવહો, ગાથા ૫૧૨.
- ૨ રાયપતેનીય મુત.
- ૩ હેમચન્દ્રગ્રન્થ પ્રાકૃત વ્યાકરણ (ઉપર પ્રમાણે). થી. પ. ક્લાસ.

૧૯૨૨

- ૧ આચારાગ સૂત્ર.
- ૨ હેમચન્દ્રગ્રન્થ સંપૂર્ણ પ્રાકૃત વ્યાકરણ.
- ૩ કુમારપાલચરિત (પ્રાકૃતદ્વચાશ્રય).

૧૯૨૩

- ૧ સૂત્રકૃતાન્ગ સૂત્ર.
- ૨ હેમચન્દ્રગ્રન્થ સંપૂર્ણ પ્રાકૃત વ્યાકરણ.
- ૩ કુમારપાલચરિત (પ્રાકૃતદ્વચાશ્રય).

સ્થાભામાવને છીધે યમ્ પ. ક્લાસના પાઠ્ય પુસ્તકોના નામો અહીં આપી શકતા નથી.

JAINA SAHITYA SANSHODHAKA

OR

JAIN LITERARY RESEARCH

Vol 1,]

April 1920

[PART 1

THE UNDERCURRENTS OF JAINISM A REPLY TO CRITICISMS

By Dr S K. BELVALKAR, M A PH. D.,
Professor of Sanskrit, Deccan College, Poona

My paper on the Undercurrents of Jainism contributed to the July 1917 issue of the Indian Philosophical Review has given rise to a good deal of stir and opposition which has expressed itself in critical notices published in several Magazines as also in private and friendly letters. It has therefore become necessary for me to re state my position, which seems to have been somewhat misunderstood. Another paper on the Post-Upanishadic Thought ferment which I read some time ago before the Poona Literary Club forms the needed preliminary to the paper on Jainism, and a critic of mine who was inclined to condemn my paper on Jainism had the goodness to confess that the other paper has been to him an "eye-opener". In what follows I am attempting to re-state my position in regard to Jainism, which aspires to be strictly impartial and consistent with the requirements of a genetic or historical study of philosophy.

Lord Mahavira is regarded as the last of the Tirthankaras, which means that the Jain religion was not founded by him in the sense in which Lord Gautama founded Buddhism. And yet Mahavira must have played an important part in the history of Jainism; else we could not account for the great reverence in which his name is universally held. A religion like Jainism with a history spreading over centuries cannot be supposed to have remained absolutely impervious to its changing and chequered environment. No religion—neither Christianity nor Brahmanism—has remained ever the same, whatever the strictly orthodox view might choose to maintain. The first question then is to determine the precise service and contribution of Mahavira to Jainism. This contribution of course must be important and sufficiently distinctive.

Lord Mahavira was an elder contemporary of the Buddha and their

sphere of activity was also largely identical. Both probably spoke the same language, had to deal with the same men and same problems, and though their conclusions might be conceivably different their starting point was also the same. The statements and references in their extant Scriptures tell the same story. While a passage from the Digha Nikaya speaks of 62 current philosophical systems another Jain Sutta speaks of 363 such systems; and persons like Makkhali Gosala, or Sanjaya Belatthiputta but a somewhat similar figure in the estimation of both these religious teachers. The Nikaya has thus preserved to us the view of the latter:—

“If you ask me whether there is another world—well, if I thought there were, I would say so. But I don't say so. And I don't think it is thus or thus. And I don't deny it. And I don't say that there neither is, nor is not, another world. And if you ask me about the beings produced by chance; or whether there is any fruit, any result, of good or bad actions; or whether a man who has won the truth continues or not after death—to each or any of these questions do I give the same reply”.

The Jain Sutta regards this view as a variety of the as many as 67 kinds of Agnosticism current at the time, and it is formulated as—*‘असि’* ति पि मे नो, *‘नसि’* ति पि मे नो, *‘असि च नसि च’* ति पि मे नो, *‘नेवसि च नसि’* ति पि मे नो.

When an extremely subtle and almost unimpeachable dialectic of which the above may serve as a specimen seemed to throw all established theories and traditions into the melting pot, it became imperative upon all who claimed to teach an old and positive doctrine to defend their position. The

Buddha who had no metaphysical creed to plead could afford to maintain a judicious silence when pressed to answer questions ‘that it were vain and bootless to inquire after.’ But how about a system like Jainism which had to accept the Jiva-Ajiva doctrine as a part of the inherited tradition? And it is just here that we must imagine Mahavira to have played his great role. Jacobi has said in one place:—“The similarity between some of these heretical doctrines on the one hand and Jain and Buddhist ideas on the other is very suggestive and favours the assumption that the Buddha as well as Mahavira owed some of his conceptions to these very heretics and formulated others under the influence of the controversies which were continually going on with them. Thus, I think, that in opposition to the agnosticism of Sanjaya, Mahavira has established the Syadvada; and we can also trace the influence of agnosticism in the Buddhist doctrine about Nirvana.”

What Lord Mahavira probably actually accomplished was a judicious tempering of the pronounced agnosticism of Sanjaya by lending to it an apparent positive aspect. While Sanjaya says “I cannot say if it is and I cannot say if it is not,” Mahavira says “I can say that the thing in a sense is and in a sense is not.” The difference between these positions is rather formal, but it was perhaps deemed enough to satisfy the subtle and high-strung logical acumen of the day: in any case Mahavira was able to harmonise with this tempered agnosticism his traditional Jiva-Ajiva metaphysics and so present a bold front to the attack which gave a death-blow to many an established dogma. Mahavira had in his own days to contend against many heretical

philosophers, and it is perhaps open to question whether in addition to the combative part he was able also to carry out a large constructive programme especially in the realm of metaphysics. It was already enough achievement for the Syadvada, to have turned the tables against the free-thinkers and to have restored to pious men the peace of mind that was so violently disturbed by the thought-forms of the period: the bringing out of the implicit positive assumptions of the Syadvada by the Utpada-Vyaya-Dhauvya doctrine (which so closely resembles the Samkhya view of reality) is perhaps the work of the disciples and commentators. [It was under this assumption that my original paper was written; and although possibly the paper may be admitted to contain some over-statements, the general position can be overthrown only if traces of the Utpada-Vyaya-Dhauvya doctrine can be found in the teachings of Mahavira himself, or if the Syadvada can be proved to be earlier than Mahavira.]

Sankaracharya was a Bhashyakara and the account he has to give of Jainism represents merely an expanded form of the view of Jainism which is as old as Badarayana the author of the Vedanta-sutras. The sutra-नैकस्मिन्सर्वमवत् (II. ii. 33) has been interpreted by all the Bhashyakaras in the same manner, and its very wording suggests that the view here taken of Jainism is an ancient view which cannot have been entirely a deliberate misrepresentation. Badarayana may have perhaps failed to distinguish between the position of Sanjaya Bellatthiputta and that assumed by Mahavira, though it must be admitted that as far as Buddhism is concerned his account is surprisingly

accurate and can only have sprung from an actual first-hand acquaintance with that Canon. In any case that is the oldest account of Jainism in non-Jain texts that is to us available; and (the theory of a wilful and malicious misrepresentation apart) there is no reason why we should not regard it as not untruly representing a tendency in Jainism which was its weakest and the most vulnerable spot. In its later presentation of course Syadvada becomes all that my critics claim for it; nay more: it becomes almost a platitude which no body would care to seriously call into question; although just exactly why it should have been wedded to the rather simple Jiva-Ajiva doctrine and not with one subtler and more worthy of it needs explanation.

If all this is acceptable, there is no reason why the historical development of Jainism which I have presented and which sets forth the great reforming and reconstructing activity of the last Jain Tirthankara in its truest light, not dissociating it from its surroundings, should not also be regarded as an earnest effort to understand and not a purely ignorant and top-lofty essay to vilify this great religion of India.

*. In this reply I have not thought it necessary to notice all the points dealt with in the several criticisms. I am at present trying to study Jainism in the original in a more systematic fashion, and if I discover that I have been instrumental in spreading incorrect notions about a religion which I respect, I shall certainly take the first opportunity to admit my mistakes. There is nothing wrong in being wrong. In return I wish my critics would give me credit for honest intentions.

THE IMMEDIATE TASK BEFORE US.

BY BENARSI DASS JAIN, M. A. PROFESSOR ORIENTAL COLLEGE, LAHORE.

It is a matter of great joy to learn that we, the Jains, who had practically ignored the modern method of Historical Research, have after all realised its value and are now prepared to apply it to the problems connected with the history of our religion. Fortunately, the European Scholars have already made a start in this direction, the results of which are scattered in various books and articles devoted to Oriental Research, not an inconsiderable number of which are written in languages other than English, viz, German, Italian and French. Still there is much left for us to do.

I think it will not be out of place here to point out what work the world urgently demands of us. This work divides itself into two classes—archæological and Scriptural. The nature and scope of the former class of work have been very ably and clearly set forth by the Late Prof. V. A. Smith in his appeal read at "the Literary Conference of the Jains" held at Ajmer in 1914. In support of the late professor's appeal I may state that, according to our Doctrine, the restoration of an old temple, image or manuscript brings a greater reward than the production of a new one. This belief inculcates Archæological Research as a religious duty upon us.

The second class of work which mainly deals with Literature has many lines. Before proceeding to them, I shall show how important our literature is for a proper

understanding of the ancient History of India.

Prof. H. Jacobi writes, "The records of the Buddhists and Jains about the philosophical ideas current at the time of the Buddha and Mahavira, in spite though they be, are of the greatest importance to the historian of that epoch."

Prof. Rhys Davids remarks, "But they (i. e. Jain records) are none the less historically important, because they give evidence of a stage less cultured, more animistic, that is to say, earlier. And incidentally they undoubtedly will be found as the portions accessible already show, to contain a large number of important references to the ancient geography, the political divisions, the social and economic conditions of India at a period hitherto very imperfectly understood."

Prof. V. A. Smith says, "The sacred books of the Jain sect, which are still very imperfectly known, also contain numerous historical statements and allusions of considerable value."

The authenticity of our scripture has been established by Prof. G. Buhler. Some thirty years ago, a large number of inscriptions on the pedestals of Jain statues were discovered at Mathura. Most of them are dated from the

1 Sacred Books of the East, Vol. XLV p. XXVII.

2. Buddhist India 1903 p. 163.

3. Early History of India 1914 p. 10.

4. Vienna Oriental Journal Vols I-IV Epigraphia Indica Vols I-II.

year 5 to 98 of the era of the Indo-Scythian kings Kaniska, Huviska and Vasudeva, and are hence generally assigned to the first and second centuries A. D. In a number of them, the dedicators of the statues give not only their own names, but also those of the religious teachers to whose communities they belonged. Further they give these teachers their official titles, still used, among the Jains: *Vacaka* 'teacher' and *Gani* head of a school. Lastly they specify the names of the schools (*Gana*), the subdivisions (*Kula*) and branches (*Sakha*) to which the teachers belonged. Exactly the same division into *Gana*, *Kula* and *Sakha* is found in the Kalpa Sutra. It is of the highest importance, that in spite of the mutilation and faulty reproduction of the inscriptions, nine of the names which appear in the *Kalpāsūtra* are recognisable in them.

This agreement of the inscriptions with the Kalpasutra proves "that the tradition of the Svetambaras really contains ancient historic elements, and by no means deserves to be looked upon with distrust."

Now that we are convinced of the importance and authenticity of our literature we should get some idea of its extent. An idea of the bulk of the extant literature can well be formed from the various catalogues of Sanskrit and Prakrit Mss. published by the Government. The most important ones are—

Buhler's reports in the search of Sanskrit Mss

Peterson's	"	"	"
Bhandarkar's	"	"	"

5. Buhler's Indian Sect of the Jains pp. 42, 48.

6. Buhler's Indian Sect of the Jains p. 44.

especially the one for the years 1883-84

Weber's Catalogue of Sanskrit and Prakrit Mss in the Royal Library at Berlin (three parts, 1886, 1888, 1892).

From a perusal of these catalogues it will be clear that our extant Literature fully represents all branches of learning.

About our literary culture. Prof. Buhler remarks, "They (the Jains) did not rest content with explaining their own teachings; they turned also to secular sciences of the Brahmins. They have accomplished so much of importance, in grammar, in astronomy, as well as in some branches of letters, that they have won respect even from their enemies, and some of their works are still of importance to European Science. In Southern India, where they worked among the Dravidian tribes, they also advanced the development of these languages. The Kanarese literary language and the Tamil and Telugu rest on the foundations laid by the Jaina monks. This activity led them, indeed, far from their proper goal, but it created for them an important position in the history of literature and culture."

Now I come to the subject under consideration. The Bhandars or Jain libraries of the Panjab have not as yet been catalogued or examined by any one. I think I am not wrong in estimating the number of Mss in these Bhandars to be about ten thousand. The following is a list of the chief Bhandars.—

Delhi. Ambala city, Rohtak, Hissar, Patiala, Samana, Malerkotla, Ludhiana, Zira, Jullandhar, Hoshiarpur, Jandiala,

7. Buhler's Indian Sect of the Jains p. 22.

Patti, Amritsar, Vairawal, Gujranwala * and Narowal.

I am sure that several rare works will come to light if these Bhandars are carefully examined. Hence, the earliest opportunity should be availed to prepare a catalogue of their contents. Most of the Bhandars are the property of the Sangha or the Jain community at large, and the Jain Conference, therefore, can lay a claim to examine them. Moreover, individual *Sadhus* and *Pujas* have their own Mss. which also should be catalogued as far as practicable.

The want for critically edited Jain texts has been repeatedly brought to notice. Prof. Rhys Davids wrote, "The Jain records are unfortunately as yet known only in fragments. It is the greatest desideratum for the history of this period" that they should be made accessible in full. "10

Later on he wrote, "The Jains themselves have now printed in Bombay a complete edition of their sacred books. But the critical value of this edition, and of other editions of separate texts printed elsewhere in India, leaves much to be desired."11

Dr. F. W. Thomas writes, "Most if not all, of the *Angas* have, indeed, been published in India, and some in Europe.

8. *The Panjab University Library has a Ms. copy of a catalogue of Mss. in the Bhandar attached to the Jain temple at Gujranwala. I have not been able to find out who prepared it. Presumably it was prepared by Pt. Kashi Nath Kunte who examined some of the Sanskrit libraries of the Panjab in the eighties.*

9. *Several centuries preceeding the Christian era.*

10. *Buddhist India p. 163.*

11. *Encyclopaedia Britannica, Eleventh Edition, Sub voce 'Jain.'*

But it is not yet possible for any scholar to point to a shelf or shelves in his library and say, "There is the Jain Canon" and so many books and essays have a tentative character through the impossibility of examining the whole collection. Would it not be possible and a great help to future studies, if the whole (I do not mean, of course, with all the commentaries) could be made available in such a preliminary but complete condition."12 Prof. A. C. Woolner remarks, "Jain literature is neither so famous, nor so widely studied as the Pali Buddhist literature. Much of it is still in manuscript or in uncritical editions. Much of it again is difficult without (and even with) a commentary."13

No doubt considerable progress has been made in India in the publication of the sacred texts, but a good deal yet remains. A complete set of the Svetambara Canon was published about forty years ago by Rai Dhanpat Singh Bahadur of Baluchar (Murshidabad). This set provided, as it is, with the usual Sanskrit commentary and the Gujarati paraphrase (Tabba) "is worthless as an edition, being made with no regard whatsoever to textual or grammatical correctness both in its Sanskrit and Prakrit portions. Still it has its uses for the purposes of collation."14 Most of the volumes of this set are out of stock and cannot be had at any price.

Another attempt to bring out an edition of the Svetambara Canon is being made by the trustees of the Devchand Lalbhai Pustakodhar Fund, Bombay. This edition, though decidedly superior

12. *Proceeding of a literary Conference of the Jains held at Ajmer 1914, last page.*

13. *Introduction to Prakrit p. 72.*

14. *Hoernle's Uvasagadasao, Introduction p. XI.*

to the Baluchar edition, yet falls short of many conveniences which a good edition should provide to its readers e.g. Introduction, Index, Notes, *Variae Lectiones* etc. Copies of this edition also are very difficult to have as only a limited number of copies is printed.

Similar activities have been at work in the publication of Diganbar texts.

Stray texts have appeared in Europe most of which are printed in Roman characters and not therefore, suitable for Indians.

Under these circumstances, it is evident that we should lose no time in removing this long-felt want that has only partially been fulfilled.

In the course of a speech delivered at the S. S. Jain Conference in 1917, Principal A. C. Woolner of the Oriental College, Lahore remarked that the fact why European Scholars had done comparatively less work in Jainism was due to the absence of graded readers, grammars and dictionaries of Jain Prakrits. The want of such books has also been felt in India. One or two readers were published in Germany and Italy, but they were of no use to us.

So far as I know, there is not a single grammar that deals exclusively with our sacred languages. Hema Candra's Prakrit grammar was not written with any express object to help in the study of Jain literature. Dr. R. Pischel's *Grammatik der Prakrit-Sprachen* in German is an encyclopaedia of Prakrits and is not meant for beginners.

It is, therefore, the proper time that a graded series of Jain Readers and Grammars be brought out.

In 1912 Dr. Suali of Italy announced that he had collected materials for the compilation of a Prakrit Dictionary, and proved that the circumstances then fully

justified the undertaking of such a work.¹⁵ So far as I can say on the authority of price-lists of oriental books printed in Europe, Dr. Suali's dictionary never appeared.

Various attempts have been and are being made in India for a Prakrit Dictionary. I have seen the first four volumes of the *Abhidhana Rajendra* prepared at Ratlam. It does not seem to have proved useful in proportion to the amount of money and labour spent on it.

Under the management of Mr. Kesari Chand Bhandari of Indore, the S. S. Jain Conference is contemplating to bring out a Jain Prakrit Dictionary. The work of indexing words from Sutras has fairly advanced. How far this dictionary proves useful will be seen when it is out. Sometime ago I read an advertisement from Pt. Haigovind Das of Calcutta about his proposed Prakrit Dictionary. But I do not know how far his work has progressed. These individual attempts on the part of the various sects show that the present circumstances are quite favourable for undertaking a Prakrit Dictionary.

Now the compilation of a dictionary is a huge task that cannot be successfully done by a single man. It requires a large staff of workers with a sufficient financial support. It is, therefore, extremely desirable that all those who have an inclination to undertake a Prakrit Dictionary should unite to make a combined effort.

A good and up-to-date Bibliography forms an indispensable book in a well-equipped library and a very valuable companion to a scholar. In 1906 Dr. Guerinot of France published his *Passai*

¹⁵ *Journal of the German Oriental Society* (Z. D. M. G.) 1912, p. 541.

do Bibliographie Jaina" in French to which a supplement entitled "Notes do Bibliographie Jaina" appeared in the *Journal Asiatique* for July-August 1909. Now that full eleven years have passed since the supplement was added, Dr. Guerinot's work can hardly be called up-to-date. This short-coming together with the fact that the work is written in French makes it quite necessary that a complete Bibliography should be undertaken in India.

The last work that seems to me important and urgent is the collection of materials for a history of Jainism in the Panjab. That Jainism existed in this province as early as the seventh century A. D. is proved by Hsuen Tsiang's description of a Jain temple near *Sinhabapura*¹⁶ (in the Salt Range between the rivers Indus and Jhelum). The ruins of this temple were discovered by Sir A. Stein in 1890.¹⁷

Sir Alexander Cunningham found at Kangra two Jain statues with inscrip-

16 Cunningham's *Archaeological Survey Report*, Vol. V p. 102.

17 *Vienna Oriental Journal*, Vol. IV p. 80.

tions on their pedestals which show that Jainism was prevalent in the Kangra valley a thousand years ago.¹⁸ The latter statement is fully corroborated by mention of Kangra Jain temples in a *Vijayli* edited by Munu Jina Vijaya in his *विजय-लिपि*.

It goes without saying that a book on the history of Jainism in the Panjab will be extremely valuable and interesting as well. For the writing of such a book local tradition will be of great value. Hence it is advisable that an early step¹⁹ should be taken to collect local tradition which, if now neglected, will soon die out for ever.

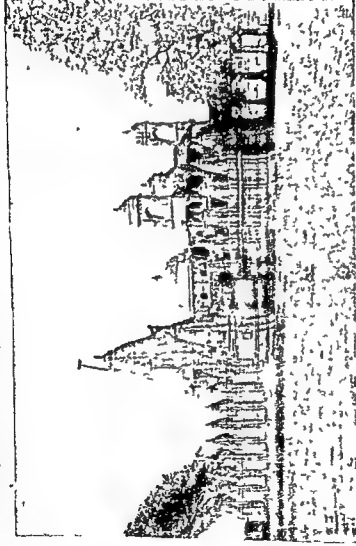
The above is only a brief resume of what should receive an early attention of our Research Society. There are however numerous minor lines which individual workers will find for themselves.

18 *Epigraphia Indica* Vol. I p. 119.

19 I think much matter will be forthcoming if the Research Society, or still better, if the Sectarian Conferences issue a circular letter to their various *Sabhas* in the Panjab mentioning in details the points about which information is sought.



जैन साहित्य संशोधक



पार्वतीया जैन मंदिर, करहेडा, मेवाड़ ।

॥ अहम् ॥

नमोऽस्तु श्रमणाय भगवते महावीराय ।

जै न सा हि त्य सं शो ध क

‘पुरिस्ता । सद्यमेव समभिजाणाहि । सद्यस्ताणाए उचट्टिए मेहावी मारं तरइ ।’

‘जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ; जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ ।’

‘दिट्ठं, सुयं, मयं, विण्णायं जं पत्थ परिकहिज्झइ ।’

—निर्ग्रन्थप्रवचन—आचार्यगुरु ।

भाग १]

हिन्दी लेख विभाग

[अंक २]

जैनेन्द्र व्याकरण और आचार्य देवनन्दी ।

[लेखक—श्रीधुत पं. नाथूरामजी प्रेमी, सम्पादक जैनहितैषी ।]

जैनेन्द्र ।

इन्द्रध्वजः काशकटरनाथिनालाशकटायनाः ।

पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यथै च शाब्दिकः ॥

—चातुपाठ ।

मुख्यसोधकर्ता पं० बोपदेवने उक्त श्लोकमें जिन आठ व्याकरणोंके नामोंका उल्लेख किया है, उनमें एक ‘जैनेन्द्र’ भी हैं । ये जैनेन्द्र अथवा जैनैन्द्र व्याकरणके कर्त्ता कौन थे इस विषयमें इतिहासज्ञोंमें कुछ समय तक बड़ा विवाद चला था । डॉ० फिल हार्नेने इसे जिनदेव अथवा भगवान् महावीरदास इन्द्रके लिए कहा गया सिद्ध करनेका प्रयत्न किया

था और इसके सुवृत्तमें उन्होंने कल्पसूत्रकी समय-सुन्दरकृत टीका, और लक्ष्मीवल्लभकृत उपदेशमालाकरणिकाका यह उल्लेख पेश किया था कि जिनदेव महावीर जिस समय ८ वर्ष के थे उस समय इन्द्रने उनसे शब्दलक्षणसंबंधी कुछ प्रश्न किये और उनके उत्तररूप यह व्याकरण बतलाया गया, इसलिये इसका नाम जैनेन्द्र पड़ा ।—

यदिन्द्राय जितेन्द्रेण कीमारापि निरूपितम् ।

ऐन्द्रं जैनेन्द्रमिति तस्याहुः शब्दानुशासनम् ॥

श्वेताम्बरसम्प्रदायके और भी कई ग्रन्थोंमें इस

१ इतिथन एण्डिपेगी जिन्द १०, पृ० २५ ।

प्रकारके उल्लेख मिलते हैं। कल्पसूत्रकी विनयविजय कृत सुबोधिकाटीका में लिखा है—

“[शकः] यत्र भगवान् तिष्ठति तत्र पण्डितगेहे समाजगमः । अगस्त्य च पण्डितयोग्ये आसने भगवन्तं उपवेश्य पण्डितमनोगतान् शब्देहाग्नं पश्चच्छ, श्रीविरोडपि बालोऽयं किं वक्ष्यतीत्युक्तं पुरु सात्त्विकोऽपि सुवांति उत्तराणि ददौ, ततो 'जैनैन्द्रव्याकरणे' ज्ञे ! यतः—

सप्रभो य तत्समयसं भगवतं आसणे निवेशिता ।

सहस्र लक्ष्मणे पुच्छे वाग्वर्णं अवयवा इद ॥ ”

अर्थात् भगवानको मातापिताने पाठशाला में गुरुके पास पढ़नेके लिए भेजा है, यह जानकर इन्द्र स्वर्गसे आया और पण्डितके घर, जहां भगवान थे वहां, गया । उसने भगवानको पण्डितके आसनपर बिठा दिया और पण्डितके मनमें जो जो सन्देश थे, उन सबको पूछा । जय सब लोक यह मुननेके लिए उत्तराणि हो रहे थे कि देखें यह बालक क्या उत्तर देता है, भगवान बरने सब प्रश्नोंके उत्तर दे दिये, तब 'जैनैन्द्र व्याकरण' बना ।

परंतु इस प्रसंगके वे सब उल्लेख अपेक्षाकृत अर्थात्वीन ही हैं जिनमें भगवानके उत्तररूप इस व्याकरणका नाम 'जैनैन्द्र' यतलाया है । प्राचीन उल्लेखोंमें इसका नाम जैनैन्द्रकी जगह 'ऐन्द्र' प्रकट किया गया है । जैसा कि आवश्यकसूत्रकी हरिभद्रावृत्तिके पृष्ठ १८२ में—

“ शकश्च तत्समक्षं सेवनाचार्यसमक्षं भगवन्तं तीर्थंकर आसने निवेश्य शब्दस्य लक्षणं पृच्छति । भगवतः च व्याकरणं श्रम्यथापि । व्याक्रियन्ते लोकिः सामयिकाः शब्दाः अनेन इति व्याकरणं शब्दशास्त्रम् । तदवयवाः केचन वराध्यायेन गृहीताः, ततश्च ऐन्द्रं व्याकरणं संजातम् । ”

इसी प्रकार सुप्रसिद्ध आचार्य हेमचन्द्र अपने योगशास्त्रके प्रथम प्रकाशमें लिखते हैंः—

“ मातापितृभ्यामन्येयुः प्रारब्धेऽन्यापनोत्सवे ।

आः सर्वज्ञस्य क्षिपत्यमितिन्द्रस्तमुपास्थित ॥ ५६ ॥

उपाध्यायाने तस्मिन्नासवेनोपवेशितः ।

प्रणम्य प्रार्थितः स्वामी शब्दवारागण जगो ॥ ५७ ॥

इदं भगवतोन्नाय प्रोक्तं शब्दानुशासनम् ।

उपाध्यायेन तच्छ्रुत्वा लोकैवेन्द्रोऽभिहितम् ॥ ५८ ॥

इसके अनुसार भगवानने इन्द्रके लिये जो शब्दानुशासन कहा, उपाध्यायने उसे मुंनूर लोकमें

'ऐन्द्र' नामसे प्रकट किया । अर्थात् इन्द्रके लिये जो व्याकरण कहा गया, उसका नाम 'ऐन्द्र' हुआ ।

प्राचीन कालमें इन्द्रनामक आचार्यका बनाया हुआ एक संस्कृत व्याकरण था । इसका उल्लेख अनेक ग्रन्थोंमें मिलता है । ऊपर दिये हुए दोषदेव के श्लोकमें भी उसका नाम दर्ज है । हरिवंशपुराणके कर्त्ताने देवतान्द्रिको 'इन्द्रचंद्राकर्त्तनैन्द्रव्यापिध्याकरणेक्षिणः' विशेषण दिया है । शान्द्राणवचंद्रिकाकी ताडपत्रवाली प्रतिमें, जो १३ वीं शताब्दिके लगभग की लिखी हुई मातृम होती है, "इन्द्रश्चन्द्रः दारुदतनयः" आदि श्लोकमें इन्द्रक व्याकरणका उल्लेख है । बहुत समय हुआ यह नष्ट होगया है । जय यह उपलब्ध ही नहीं है तब इसके विषयमें कुछ कहनेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती । यद्यपि आजकलके समयमें इस बातपर कोई भी विद्वान् विश्वास नहीं कर सकता है कि भगवान् महावीरने भी कोई व्याकरण बनाया होगा और वह भी मागधी या प्राकृतका नहीं, किन्तु ब्राह्मणोंकी खास भाषा संस्कृतका—तो भी यह निस्सन्देह है कि वह व्याकरण 'जैनैन्द्र' तो नहीं था । यदि बनाया भी होगा तो वह 'ऐन्द्र' ही होगा । कर्षा कि हरिभद्रसूरि और हेमचंद्रसूरि उसीका उल्लेख करते हैं जैनैन्द्रका नहीं । जान पड़ता है, विनयविजय और लक्ष्मीविलम्बने पीछेसे 'ऐन्द्र' को ही 'जैनैन्द्र' बना डाला है । उनके समयमें भी 'ऐन्द्र' अप्राप्य था, इसलिये उन्होंने प्राप्य 'जैनैन्द्र' को ही भगवान महावीरकी कृति यतलाना विशेष सुखकर और लाभप्रद सोचा होगा ।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि हरिभद्रसूरि विक्रमकी आठवीं शताब्दिके और हेमचंद्रसूरि तेरवीं शताब्दिके विद्वान् हैं जिन्होंने 'ऐन्द्र' को भगवानका व्याकरण बनलाया है, परंतु 'जैनैन्द्र'

१ डॉ० ए० सी० बर्नेलेने इन्द्रव्याकरणके विषयमें चीनी तिब्बतीय और भारतीय साहित्यमें जो जो उल्लेख मिलते हैं उनको संपन्न करके 'ओन दि ऐन्द्रस्कूल ऑफ सेस्क्रीट प्रोग्रेसिव' नामकी एक बड़ी पुस्तक लिखी है ।

२ "तेन प्रणष्टमैन्द्र तदवयवाकरणं भुवि "

—न्यायपरिभाषा, तरंग ४ ।

को भगवत्प्रणीत यत्नलानेवाले विनयविजय और लक्ष्मीवल्लभ विक्रमकी अठारहवीं शताब्दिमें हुए हैं।

विनयविजयजैके इस उल्लेखने बड़ा काम किया कि भगवत्प्रणीत व्याकरणका नाम 'जैनेन्द्र' है। यह निश्चय है कि भगवत्प्रणीत व्याकरणको 'जैनेन्द्र' लिखते समय उनका लक्ष्य इस देवनन्दि या पूज्यपादद्वारा 'जैनेन्द्र' पर ही रहा होगा, परन्तु जान पड़ता है कि वे इस विषयमें उक्त उल्लेखके सिवाय और कुछ प्रयत्न नहीं कर सके। यह काम बाकी ही पड़ा रहा कि वह जैनेन्द्र व्याकरण लोगोंके समक्ष उपस्थित कर दिया जाय और भक्तजन अपने भगवानकी व्याकरणज्ञता देखकर गदग हो जायें। सुदीकी बात है कि उनके कुछ ही समय बाद वि० स० १७९७ में एक श्वेताम्बर विद्वान्ने इस कार्यको पूरा कर डाला—साक्षात् महावीर देवका बनाया हुआ व्याकरण तैयार कर दिया और उसका दूसरा नाम 'भगवद्वाग्वादिनी' रखवा।

इस भगवद्वाग्वादिनी की सबसे पहली प्रतिके दर्शन करनेका सौभाग्य हमें पूनेके भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूटमें प्राप्त हुआ। यह तक्षक नगरमें रत्नपि नामक लेखकद्वारा वि० स० १७९७ में लिखी गई थी। इसकी पत्रसंख्या ३०, और श्लोकसंख्या ८०० है। प्रत्येक पत्रमें ११ पंक्तियां, और प्रत्येक पक्तिमें ४० अक्षर हैं। प्रति बहुत सुन्दर है। जैनेन्द्रका सत्रपाठ मान है—और वह सूत्रपाठ है जिसपर शब्दाणेत्रचन्द्रिका टीका लिखी गई है। इस वाग्वादिनीके जाविदकारक अच्छे वैय्याकरण दिखते हैं उन्होंने शक्तिभर इस बातको सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि इसके कर्त्ता साक्षात् महावीर भगवान हैं। दिगम्बरी देवनन्दीका बनाया हुआ यह कमी नहीं हो सजता। उनकी सय सुक्ति यों हमने इस ग्रन्थके परिचयमें—जो परिशिष्टमें दिया गया है—उद्धृत करदी हैं। उन सब पर विचार करनेकी यहाँ आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। इस लेखको पूरा पढ़लेने पर पाठकोंको वे सब सुक्ति यों स्वयं ही सारहीन प्रतीत होने लगेंगी।

हमारा अनुमान है कि डॉ० कीलहार्नके हा०में यह 'भगवद्वाग्वादिनी' की प्रति अवश्य पड़ी होगी और इसीकी रूपासे प्रेरित होकर उन्होंने अपना पूर्वोक्त लेख लिखा होगा। उनके लेखमें जो श्लोकादि प्रमाणस्वरूप दिये गये हैं वे सब इसीपरसे लिये गये जान पड़ते हैं। अस्तु।

डॉ० कीलहार्नके इस भ्रमको सबसे पहले प्रो० पाठकने दूर किया था और अब तो जैनेन्द्र व्याकरणकी बहुत प्रसिद्धि हो चुकी है। उसकी या उसके परिशोधित-परिवर्तित-संस्करणकी कई टीकायें भी छप चुकी हैं। इस लिए अब सभी विद्वान् इस विषयमें सहमत हो गये हैं कि जैनेन्द्र व्याकरण किसी तार्थिकर या भगवानका नहीं किन्तु अन्य वैयाकरणोंके समान ही एक विद्वानका बनाया हुआ है और उनका नाम देवनन्दि या पूज्यपाद था।

देवनन्दि अथवा पूज्यपाद।

श्रीगुदपिरटमुनिपस्य बलाकापच्छः

शिश्वोऽजनिश्च भुवनत्रयवर्तिकीर्ति।

चारित्र्यचक्रुरसिलावनिपादमौलि-

मालाशिलीमुखाविराजितपादपद्म ॥ १ ॥

एवं महाकार्यपरम्पराया

स्यात्कारमुद्राश्रिततत्त्ववीपः।

भद्र समन्ताद्गुणतो गणीश-

समन्तभद्रोऽजनि वादिस्तिष्ठ ॥ २ ॥

तत —

यो देवनन्दिप्रथमाभिधानो

मुदथा महत्वा स जिनैर्बुद्धिः।

श्रीपूज्यपादोऽजनि देवताभि-

नैःश्रुजित पादयुगं यदीयम् ॥ ३ ॥

जैनेन्द्र निजज्ञ-दभानमसुल्ल सवार्थसिद्धि- परा

सिद्धान्तो निपुणत्वमुदकविता जैनाभिप्रेक्षः स्वकः।

छन्द सुसमाधेय समाधिस्ततः स्वात्म्य यदोयं विदा-

भाह्यावीह स पूज्यपादमुनिपः पूज्यो मुनीनां गणेशः॥

इस अवतरणके ताँसर श्लोकका अभिप्राय यह है कि उनका पहला नाम देवनन्दि था, बुद्धिकी

॥ ये श्लोक धातुक्त प० कलापा भगवाणानिदेने सर्वार्थ- सिद्धिकी भूमिकामें उद्धृत किये हैं, पर यह नहीं श्रुत किया है कि ये कहाँके ॥

प्रकारके उल्लेख मिलते हैं। कल्पमूत्रकी विनयविजय शत सुबोधिकाटीका में लिखा है:—

"[शक्रः] यत्र भगवान् तिष्ठति तत्र पण्डितगेरे समा-
जगाम । अगम्य च पण्डितयोग्ये आसने भगवन्तं उपवेश्य
पण्डितमनोगतान् सन्देहान् पप्रच्छ, श्रीवीरोऽपि बालोऽयं
किं वक्ष्यतीत्युक्तं सु सकललोपे तु सर्वाणि उत्तराणि ददाति,
ततो 'जैनेन्द्रव्याकरणं' जज्ञे । यतः—

तत्रगो य तत्तमवस भगवतं आसने निवेशिता ।

गृहस लक्षणं पुच्छे वाग्वर्णं अवयवा इव ॥ "

अर्थात् भगवानको मातापिताने पाठशाला में गुरुके पास पढ़नेके लिए भेजा है, यह जानकर इन्द्र स्वर्गसे आया और पण्डितके घर, जहां भगवान थे वहां, गया। उसने भगवानको पण्डितके आसनपर बिठा दिया और पण्डितके मनमें जो जो सन्देह थे, उन सबको पूछा। जय सब लोक यह सुननेके लिए उत्कर्षण हो रहे थे कि देखे यह बालक क्या उत्तर देता है, भगवान वीरने सब प्रश्नोंके उत्तर दे दिये, तब 'जैनेन्द्र व्याकरण' बना।

परंतु इस प्रसंगके ये सब उल्लेख अपेक्षाकृत अर्वाचीन ही हैं जिनमें भगवानके उत्तररूप इस व्याकरणका नाम 'जैनेन्द्र' बतलाया है। प्राचीन उल्लेखोंमें इसका नाम जैनेन्द्रकी जगह 'ऐन्द्र' प्रकट किया गया है। जैसा कि आवश्यकसूत्रकी हारिभद्रीयवृत्तिके पृष्ठ १८२ में—

"शक्रश्च तत्तमसं लेखाचार्यसमक्ष भगवन्तं तर्क्य-
आसने निवेश्य शब्दस्य लक्षणं पृच्छति । भगवतः न
व्याकरणं श्रम्यमायि । व्याप्तिगन्ते उर्ध्विष्टसामयिकाः
शब्दाः अनेन इति व्याकरणं शब्दशालम् । तद्वचसाः केचन
समाध्यायेन गृहीताः, ततश्च ऐन्द्रं व्याकरणं संजातम् । "

इसी प्रकार सुप्रसिद्ध आचार्य हेमचन्द्र अपने योगशास्त्रके प्रथम प्रकाशमें लिखते हैं:—

"मातापितृभ्यामन्येयुः प्रारब्धेऽप्यापोतसवे ।

आः सर्वस्य शिष्यार्थमतीवस्तमुपास्थित ॥५६॥

उपाध्यायासने तस्मिन्नासवेनोपवेशितः ।

प्रणम्य प्रार्थितः स्वार्थं शब्दवाराधनं जगौ ॥५७॥

इदं भगवतोन्नाथ प्रोक्ता शब्दानुशासनम् ।

उपाध्यायेन तन्नुक्ता लोकैर्वैभक्तिमतिरिति ॥ ५८ ॥

इसके अनुसार भगवानने इन्द्रके लिये जो शब्दानुशासन कहा, उपाध्यायने उसे सुनकर लोकमें

'ऐन्द्र' नामसे प्रकट किया। अर्थात् इन्द्रके लिये जो व्याकरण कहा गया, उसका नाम 'ऐन्द्र' हुआ।

प्राचीन कालमें इन्द्रनामक आचार्यका बनाया हुआ एक संस्कृत व्याकरण था। इसका उल्लेख अनेक ग्रन्थोंमें मिलता है। ऊपर दिये हुए उपोदेय के श्लोकमें भी उसका नाम दर्ज है। हरिवंशपुराणके कर्त्ताने देवनन्दिको 'इन्द्रचंद्राकैर्जैनद्रव्यापिध्या-
करणेक्षिणः' विशेषण दिया है। शब्दार्णवचंद्रिकाकी ताडपत्रयात्री प्रतिमें, जो १३ वीं शताब्दिके लगभग की लिखी हुई मालूम होती है, "इन्द्रश्चन्द्रः शक्रतनयः" आदि श्लोकमें इन्द्रके व्याकरणका उल्लेख है। बहुत समय हुआ यह नष्ट होगया है। जय यह उपलब्ध ही नहीं है तब इसके विषयमें कुछ कहनेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। यद्यपि आजकलके समयमें इस बातपर कोई भी विद्वान् विश्वास नहीं कर सकता है कि भगवान् महावीरने भी कोई व्याकरण बनाया होगा और वह भी माराभी या प्राकृतका नहीं, किन्तु ब्राह्मणोंकी खास भाषा संस्कृतका—तो भी यह निस्सन्देह है कि वह व्याकरण 'जैनेन्द्र' तो नहीं था। यदि बनाया भी होगा तो वह 'ऐन्द्र' ही होगा। क्योंकि हारिभद्रसूरि और हेमचंद्रसूरि उसीका उल्लेख करते हैं जैनेन्द्रका नहीं। जान पड़ता है, विनयविजय और लक्ष्मीवल्लभने पीछेसे 'ऐन्द्र' को ही 'जैनेन्द्र' बना डाला है। उनके समयमें भी 'ऐन्द्र' अप्राप्य था, इसलिए उन्होंने प्राप्य 'जैनेन्द्र' को ही भगवान महावीरकी कृति बतलाना विशेष सुखकर और लाभप्रद सोचा होगा।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि हारिभद्रसूरि विक्रमकी आठवीं शताब्दिके और हेमचंद्रसूरि तेरवीं शताब्दिके विद्वान् हैं जिन्होंने 'ऐन्द्र' को भगवानका व्याकरण बतलाया है, परंतु 'जैनेन्द्र'

१ बौ० ए० खों० बर्जेलने इन्द्रव्याकरणके विषयमें नीची तिथितीय और भारतीय साहित्यमें जो जो उल्लेख मिलते हैं उनको संघट्ट करके 'जोन दि ऐन्द्रडूल ऑफ सरस्ता प्रागेरियन्ट' नामकी एक बड़ी पुस्तक लिखी है।

२ "तेन प्रणष्टमैन्द्र तद्व्याकरणं भुवि "

—स्वामीरित्तामर, तमस ४।

को भगवत्प्रणीत यतलानेशान्ने विनयविजय और लक्ष्मीवल्लभ विक्रमकी अठाग्रहवीं शताब्दिमें हुए हैं।

विनयविजयजोक्त इस उल्लेखने बड़ा काम किया कि भगवत्प्रणीत व्याकरणका नाम 'जैनेन्द्र' है। यह निश्चय है कि भगवत्प्रणीत व्याकरणको 'जैनेन्द्र' लिखते समय उनका लक्ष्य इस देवनन्दि या पूज्यपादिकृत 'जैनेन्द्र' पर ही रहा होगा; परन्तु जान पड़ता है कि वे इस विषयमें उक्त उल्लेखके सिवाय और कुछ प्रयत्न नहीं कर सके। यह काम बाकी ही पड़ा रहा कि वह जैनेन्द्र व्याकरण लोगोंके समक्ष उपस्थित कर दिया जाय और भक्तजन अपने भगवानकी व्याकरणप्रता देखकर गह्वर हो जायँ। लुशीकी बात है कि उनके कुछ ही समय बाद वि० सं० १७९७ में एक श्वेताम्बर विद्वान्ने इस कार्यको पूरा कर डाला—साक्षात् महावीर देवका बनाया हुआ व्याकरण तैयार कर दिया और उसका दूसरा नाम 'भगवद्वाग्वादिनी' रखवा।

इस भगवद्वाग्वादिनी की सबसे पहली प्रतिके दर्शन करनेका सौभाग्य हमें पुनेके भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूटमें प्राप्त हुआ। यह तत्काल नगरमें रत्नपिं नामक लेखकद्वारा वि० सं० १७९७ में लिखी गई थी। इसकी पत्रसंख्या ३०, और श्लोकसंख्या ८०० है। प्रत्येक पत्रमें ११ पंक्तियाँ, और प्रत्येक पंक्तिमें ४० अक्षर हैं। प्रति बहुत शुद्ध है। जैनेन्द्रका सूत्रपाठ मात्र है—और वह सूत्रपाठ है जिसपर शब्दार्णवचन्द्रिका टीका लिखी गई है। इस वाग्वादिनीके धाविष्कारक अच्छे वैय्याकरण दिग्गज हैं उन्होंने शक्तिभर इस यातको सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि इसके कर्त्ता साक्षात् महावीर भगवान हैं। दिग्म्बरी देवनन्दीका बनाया हुआ यह कमी नहीं हो सकता। उनकी सय सुक्तिर्या हमने इस ग्रन्थके परिचयमें—जो परिशिष्टमें दिया गया है—उद्धृत करदी हैं। उन सब पर विचार करनेकी यहाँ आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। इस लेखको पूरा पढ़लेने पर पाठकोंको वे सब सुक्तियों स्वयं ही सारहीन प्रतीत होने लगेंगी।

हमारा अनुमान है कि डॉ० कीलहार्नके हाथमें यह 'भगवद्वाग्वादिनी' की प्रति अवश्य पड़ी होगी और इसीकी कृपासे प्रेरित होकर उन्होंने अपना पूर्वोक्त लेख लिखा होगा। उनके लेखमें जो श्लोकादि प्रमाणस्वरूप दिये गये हैं वे सब इसीपरसे लिये गये जान पड़ते हैं। अस्तु।

डॉ० कीलहार्नके इस भ्रमको सबसे पहले प्रो० पाठकने दूर किया था और अब तो जैनेन्द्र व्याकरणकी बहुत प्रसिद्धि हो चुकी है। उसकी या उसके परिपोषित-परिवर्तित संस्करणकी कई टीकायें भी छप चुकी हैं। इस लिए अब सभी विद्वान् इस विषयमें सहमत हो गये हैं कि जैनेन्द्र व्याकरण किसी तार्थिकर या भगवानका नहीं किन्तु अन्य वैयाकरणोंके समान ही एक विद्वानका बनाया हुआ है और उनका नाम देवनन्दि या पूज्यपाद था।

देवनन्दि अथवा पूज्यपाद।

श्रीगुरुविचित्रमणिपस्य वलाकापचक्रः

शिष्योऽजनिष्ठ भुवनत्रयवर्तकीर्तिः।

चारित्र्यचक्रपुरसिलावनिपादमौलि-

मालाशिलीमुखाविराजितपादपयः ॥ १ ॥

एवं महाचार्यपरम्परायां

स्यात्कारमुद्गमिकततरवदीपः।

भद्रः समन्ताद्गुणतो गणीशः

समन्तभद्रोऽजनि वादिसिंहः ॥ २ ॥

ततः—

यो देवनन्दिप्रथमाभिधानो

बुद्धा महत्वा ॥ जिनद्विजिः।

श्रीपूज्यपादोऽजनि देवताभि-

गैरुजित पादयुग यदीयम् ॥ ३ ॥

जैनेन्द्रं निजज्ञद्वयमायममुल्लं सर्वार्थसिद्धिः परा

विद्वान्ते निपुणत्वमुदकविता जेनाभिप्रेतः स्वकः।

छन्दः सूत्रमपि यं समाधिदातकं स्वास्थ्य यदीयं विश-

मास्थताहि स पूज्यपादमुनिपः पूज्यो मुनीनां गणैः ॥ ४ ॥

इस अवतरणके ताँसरे श्लोकका अभिप्राय यह है कि उनका पहला नाम देवनन्दि था, बुद्धिकी

+ ये श्लोक प्रायुक्त पं० कलावा भरमापा निटवेने सर्वार्थ-
सिद्धिकी भूमिकामें उद्धृत किये हैं; पर यह नहीं सूचित
किया है कि ये कहाँ हैं।

कवि हो गये हैं। उन्होंने अमृतगतिरुत धर्म-परीक्षाके आधारसे वि० सं० १२६७ के लगभग 'धर्मपरीक्षा' नामका ग्रन्थ कनडी भाषामें लिखा है। इस ग्रन्थकी प्रशस्तिमें पूज्यपाद आचार्यकी बड़ी प्रशंसा लिखी है और वे जैनेन्द्रव्याकरण के रचयिता थे, इस बातका स्पष्ट उल्लेख किया है। साथ ही उनकी अन्यान्य रचनाओंका भी परिचय दिया है --

भारद्वाजैनेन्द्रभासुरं=एनल् ओरेद पाणिनीयवने टांकु व-
रैद तत्तार्थम टिप्पणदिन भतिपिद यत्र-मनादिशास्त्रोपक्रम ।
भूखणार्थं दिशेपिदि जसमु ताखिन्द विश्वविद्याभरण
भण्णालियाराधितपदबमल पूज्यपाद त्रीन्त्रम् ॥

इसका अभिप्राय यह है कि प्रवीन्द्र पूज्यपादने-
जिनके चरणक्रमलौकी अनेक भव्य आराधना
करते थे और जो विश्वभरकी विद्याओंके शृंगार
थे-- प्रकाशमान जैनेन्द्र व्याकरणकी रचना की,
पाणिनि व्याकरणकी टीका लिखी, टिप्पणहारा
(सर्वार्थसिद्धि नामक तत्त्वार्थसञ्ज्ञटीका) तत्त्वा-
र्थका अर्थवबोधन किया और पृथ्वीकी रक्षाके
लिए धर्ममंत्रादि शास्त्रकी रचना की।

आचार्य शुभचन्द्रने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ गाना-
र्णवके प्रारम्भमें देवनन्दिकी प्रशंसा करते हुए
लिखा है:

अपाकुर्वन्ति यद्वाचः कायवाचिचलसमयम् ।

कलङ्कमग्निना घोड्य देवनन्दी नमस्यते ॥

अर्थात् जिनकी वाणी देह धारियोंके शरीर,
घचन और मन सम्बन्धी मैलको मिटा देती है, उन
देवनन्दीको मैं नमस्कार करता हूँ। इस श्लोकमें
देवनन्दिकी वाणीकी जो विशेषता बतलाई है, वह
विचार योग्य है। हमारी समझमें देवनन्दिके तीन
ग्रन्थोंको लक्ष्य करके यह प्रशंसा की गई है। शरी-
रके मैलको नाश करनेके लिए उनकी वैयकशाल,
घचनका मैल (दोष) मिटानेके लिए जैनेन्द्र व्या-
करण और मनका मैल दूर करनेके लिए समाधि-
तंत्र है। अतएव इससे भी मालूम होता है कि
घचनदोषको दूर करनेवाली उनकी कोई रचना
अवश्य है और वह जैनेन्द्र व्याकरण ही हो सक-
ती है।

इनके सिवाय विक्रमकी आठवीं शताब्दि के बाद
कनडी भाषामें जितने काव्य ग्रन्थ लिखे गये हैं,
प्रायः उन सभीमें प्रारम्भिक श्लोकोंमें पूज्यपादकी
प्रशंसा की गई है।

इन सब उल्लेखोंसे यह बात अच्छी तरह स्पष्ट
हो जाती है कि पूज्यपाद एक बहुत ही प्रसिद्ध ग्रंथ-
कार हो गये हैं और देवनन्दि उनका ही दूसरा
नाम था। साथ ही वे सुप्रसिद्ध जैनेन्द्र व्याकरणके
कर्ता थे। इस बातकी इतना विस्तारसे लिखनेकी
आवश्यकता इसी कारण हुई कि बहुत लोग पूज्य-
पाद और देवनन्दि को जुदा जुदा मानते थे और
कोई कोई पूज्यपादको देवनन्दिका विशेषण ही
समझ बैठे थे।

जैनेन्द्रको प्रत्येक हस्तलिखित प्रतिके प्रारम्भमें
नीचे लिखा श्लोक मिलता है:—

स्वर्णाराग्यन्तिकी यस्य शिष्याऽवभासते ।

देवनन्दितपूजेश नमस्तस्मै स्वयंभुवे ॥

इसमें ग्रन्थकर्ताने 'देवनन्दितपूजेश' पदमें जो
कि भगवानका विशेषण है, अपना नाम भी प्रगट
कर दिया है। संस्कृत प्राकृत ग्रन्थोंके मंगलाचर-
णोंमें यह पद्धति अनेक विद्वानोंने स्वीकार की है।
इससे स्वयं ग्रन्थकर्ताके घचनोंसे भी जैनेन्द्रके
कर्ता 'देवनन्दि' ठहरते हैं।

७ गणरत्न महोदधिके कर्ता धर्ममान (द्वेताश्व-

७ देखो हिस्की आक दि कनडी लिटरेचर ।

७ देखिए नां तियायामृतके मंगलाचरणम घोषदेव
बहते है:—

“सोमै सोमसमाचार सोमाभ सोमसमभम् ।

सोमदेव सुनि नत्वा नातिवास्यामृत सुवे ॥”

२ आचार्य धनन्तर्य लघीयस्वयकी कृतिके प्रारम्भमें
बहते हैं—

“जिनाधीर्धं सुनि चन्द्रमकलकं पुनः पुनः ।

अनन्तवीर्यमानो वि स्वाद्वादन्यायनायम् ॥”

३ भाग्यचन्द्रमें देवसेनसुरि मंगलाचरण करते हैं—

पणमिव सुरसेगुण्य सुलेगणइत्येदिग महावीर ।

बोच्छामि भावसणहमिगमो भव्यरवेहई ॥

* साधानुगीयसन्धानजनचन्द्रगोमि—

दिव्यममृदहिसामनमोजुन्याः ।

र) और हम शब्दानुशासनके लघुन्यास बनाने-
नाटे कनकप्रभ भी जैनन्द्र व्याकरणके कर्त्ताका
नाम देवनन्दिही बनाने हैं। अनः हम समझते हैं
कि अब इस विषयमें किसी प्रकारका कोई सन्देह
बची नहीं रह जाता है कि यह व्याकरण देवनन्दि
या पूज्यपादका बनाया हुआ है।

प्रथम जैन व्याकरण ।

जैनों तक हम जानते हैं जैनोंका सबसे पहला
संस्कृत व्याकरण यही है। अभी तक इसके पहलेका
कोई भी व्याकरण ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ है।
शाकटायन, सिद्धहेमशब्दानुशासन आदि सब
व्याकरण इससे पीछेके वने हुए हैं। इस ग्रन्थकी
सायले बड़ी विदोषता यह है कि इसके सूत्र बहुत
ही संक्षिप्त हैं। 'अधेमात्रालाघवे पुत्रोत्सवे मन्यन्ते
वैय्याकरणाः।' इस प्रवादकी सच्चाई इसके सूत्रोंपर
एहि डालनेसे बहुत अच्छी तरह स्पष्ट होती है।
संज्ञाकृत लाघवकी भी इसमें स्वीकार किया है।
जब कि पाणिनीयमें संज्ञाकृत लाघवग्रहण नहीं कि-
या है। इसकी प्रशंसामें जैनद्रप्रक्रियामें लिखा है—

नमः श्रीपूज्यपादाय लक्षणं बहुप्रकृतम् ।

सदेवान तदग्न्य न यथाशक्ति न तत् उचितम् ॥

संस्करण भेद ।

जैनद्र व्याकरणका मूल सूत्रपाठ दो प्रकारका
उपलब्ध है—एक तो वह जिसपर आचार्य अभय-
नन्दिकी 'महावृत्ति' तथा छतकीर्तिरुत 'पंचवस्तु'
नाम की प्रक्रिया है; और दूसरा वह जिसपर सोम-
देव सूरिरुत 'शब्दार्णवचन्द्रिका' और गुणनन्दि-
रुत 'जैनद्रप्रक्रिया' है। पहले प्रकारके पाठमें
लगभग ३००० और दूसरेमें लगभग ३५०० सूत्र
हैं, अर्थात् एकसे दूसरेमें कोई ५०० सूत्र अधिक
हैं! और जो ३००० सूत्र हैं वे भी दोनोंमें एकसे
नहीं हैं। अर्थात् दूसरे सूत्रपाठमें पहले सूत्रपाठके
मेकडों सूत्र परिवर्तित और परिचर्चित भी किये
गये हैं। पहले प्रकारका सूत्रपाठ पाणिनीय सूत्रपा-

ठके ढंग का है, वर्तमानदृष्टिसे यह कुछ अपूर्णता
जान पड़ता है और इसी लिए महावृत्तिमें बहुतसे
वार्तिक तथा उपसंख्यान आदि बना कर उसकी
पूर्णता की गई दिग्व्यापार देनी है, जब कि दूसरा
पाठ प्रायः पूर्णता जान पड़ता है और इसी कारण
उसकी टीकाओंमें वार्तिक आदि नहीं दिग्व्यापार
देते। दोनों पाठोंमें बहुतसी संज्ञायें भी भिन्न प्रकार
की हैं।

इन भिन्नताओंके होने हुए भी दोनों पाठोंमें
समानता भी कम नहीं है। दोनोंके अधिकांश सूत्र
समान हैं, दोनोंके प्रारंभका प्रगल्भावरण बिलकुल
एक ही है और दोनोंके कर्त्ताओंका नाम भी देवन-
न्दि या पूज्यपाद लिखा हुआ मिलता है।

असली सूत्रपाठ ।

अब प्रश्न यह है कि इन दोनोंमेंसे स्वयं देवन-
न्दि या पूज्यपादका बनाया हुआ असली सूत्रपाठ
कौनसा है। सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ प्रो० के० बी०
पाठकका कथन है कि दूसरा पाठ जिसपर सोम-
देवकी शब्दार्णवचन्द्रिका लिखी गई है—वास्तविक
पाठ है। हमारे दिग्गम्यर सम्प्रदायके विद्वानोंमें
श्रीयुक्त पं० पद्मलालजी याकलीवाल और उनके
अनुयायी पं० श्रीलालजी व्याकरणशास्त्री भी इसी
मतकी माननेवाले हैं। इसके विरुद्ध न्यायतीर्थ
और न्याशास्त्री पं० यंशीधरजी दूसरे पाठकी वा-
स्तविक मानते हैं, जिसपर कि अभयनन्दि की वृत्ति
लिखी गई है। यद्यपि इन दोनोंही पक्षके विद्वानों-
की धोरसे अभी तक कोई ऐसा पुष्ट प्रमाण उपस्थित
नहीं किये गये हैं जिनसे इस प्रश्नका अच्छी तरह
निर्णय हो जाय; परन्तु हमको पं० यंशीधरजीकी
मत ठीक मालूम होता है और पाठक यह जानकर
प्रसन्न होंगे कि हमें इस मतको करीब करीब नि-
र्ध्रान्त मान लेनेके अनेक पुष्ट प्रमाण मिल गये हैं।

इन प्रमाणोंके आधारसे हम इन सिद्धान्तपर
पहुँचे हैं कि आचार्य देवनन्दि या पूज्यपादका ब-
नाया हुआ सूत्रपाठ वही है जिसपर अभयनन्दिने
अपनी महावृत्ति लिखी है। यह सूत्रपाठ उस सम-
य तक तो ठीक समझा जाता रहा जब तक पाठ्य-
कीर्तिका शाकटायन व्याकरण नहीं बना था। शाय-

१ यह जैनद्रप्रक्रिया गुणनन्दिरुत है या नहीं, इसमें
हमें बहुत कुछ सन्देह है। आगे चलकर इस विषयका
सुलझा किया गया है।

द शाकटायनको भी जैनेन्द्रके होते हुए एक जुदा व्याकरण बनानेकी आवश्यकता इसी लिए मालूम पड़ी होगी कि जैनेन्द्र अपूर्ण था, और बिना वार्तिकों और उपसंख्यानो वादिके काम नहीं चल सकता था। परन्तु जब शाकटायन जैसा सर्वांगपूर्ण व्याकरण बन चुका, तब जैनेन्द्रव्याकरणके मकोंको उसकी छुटियाँ विशेष खटकेने लगीं और उनमेंसे आचार्य गुणनन्दिने उसे सर्वांगपूर्ण बनानेका प्रयत्न किया। इस प्रयत्नका फल ही यह दूसरा सूत्रपाठ है जिसपर सोमदेवकी शब्दार्णवचन्द्रिका रची गयी है। इस सूत्रपाठको चारीकीके साथ देखनेसे मालूम पड़ता है कि गुणनन्दिके समय तक व्याकरणसिद्ध जितने प्रयोग होने लगे थे उन सबके सूत्र उसमें मौजूद हैं और इसलिए उसके टीकाकारोंको वार्तिक आदि बनानेके झंझटोंमें नहीं पड़ना पड़ा है। अभयनन्दिकी महावृत्तिके ऐसे बीसों वार्तिक हैं जिनके इस पाठमें सूत्रही बना दिये गये हैं। नीचे लिखे प्रमाणोंसे हमारे इन सब विचारोंकी पुष्टि होती है:—

१—शब्दार्णवचन्द्रिकाके अन्तमें 'नीचे लिखा हुआ श्लोक देखिए—

धीसोमदेवयतिनिमित्तमादध नि

या नैः प्रतीतगुणनन्दितशब्दवार्थी।

सोऽय सताममलचेतसि विस्फुरन्ती

वृत्तिः सदान्तपश परिवर्तिषीष्ट ॥

इसमें सुप्रसिद्ध गुणनन्दि आचार्यके शब्दवार्थि या शब्दार्णवमें प्रवेश करनेके लिए सोमदेवकृत वृत्तिको नौका के समान बतलाया है। इससे यह जान पड़ता है कि आचार्य गुणनन्दिके बनाये हुए व्याकरण ग्रन्थकी यह टीका है और उसका नाम

इसका आशय यह है कि गुणनन्दिने जिसके शरीरको विस्तृत किया है, उस शब्दार्णवको जाननेकी इच्छा रखनेवालोंके लिए तथा आश्रय लेनेवालोंके लिए यह प्रकिया साक्षात् नायक समान काम देगी। इसमें 'शब्दार्णव' को 'गुणनन्दि तानितवपुः' विशेषण दिया है, वह विशेष ध्यान देने योग्य है। इससे साफ समझमें आता है कि गुणनन्दिके जिस व्याकरणपर ये दोनों टीकायें—शब्दार्णव चन्द्रिका और जैनेन्द्रप्रकिया—लिखी गई हैं उसका नाम 'शब्दार्णव' है और वह मूल (असली) जैनेन्द्र व्याकरणके संक्षिप्त शरीरको तानित या विस्तृत करके बनाया गया है।

शब्दार्णवचन्द्रिकाके प्रारंभका मंगलाचरण भी इस विषयमें ध्यान देने योग्य है:—

धीपूज्यपादममलं गुणनन्दिदेवं

सोमामरप्रतिपञ्चितपादयुग्मम्।

सिद्धं समुन्नतपदं ययमं जैनेन्द्र

तच्छब्दलक्षणमहं विनमामि वीरम् ॥

इसमें ग्रन्थकर्ताने भगवान् महावीरके विशेषणरूपमें क्रमसे पूज्यपादका, गुणनादिका और आपना (सोमामर या सोमदेवका) उल्लेख किया है और इसमें ये निस्सन्देह यही ध्यानीत करते हैं कि मुख्य व्याकरणके कर्ता पूज्यपाद हैं, उसकी विस्तृत करनेवाले गुणनन्दि हैं और फिर उसकी टीका करनेवाले सोमदेव (स्वयं) हैं। यदि यह चन्द्रिका टीका पूज्यपादकृत ग्रन्थकी ही होती, तो मंगलाचरणमें गुणनन्दिका नाम लानेकी कोई आवश्यकता नहीं थी। गुणनन्दि उनकी गुरुपरम्परामें भी नहीं हैं, जो उनका उल्लेख करना आवश्यक ही होता। अतः यह सिद्ध है कि चन्द्रिका

शेषको अनावश्यक बतलाया है—“स्वाभाविक-
स्वादिभिधानस्यैकशेषानारम्भः ।” (१-१-१९)
और इसी लिए देवचन्द्रि या पूज्यपादका व्याकरण
‘अनेकशेष’ कहलाता है । चन्द्रिका टीकाके
कर्ता स्वयं ही “आदाद्युपजोपक्रमम्” (१-४-११४)
सूत्रकी टीकामें उदाहरण देते हैं कि “देवो
पक्षमनेकशेषव्याकरणम्” यह उदाहरण अभयन-
न्दिकृत महावृत्तिमें भी दिया गया है । इससे सिद्ध
है कि शब्दार्णवचन्द्रिकाके कर्ता भी उस व्याक-
रणको देवोपक्ष या देवचन्द्रिकृत मानते हैं, जो अ-
नेकशेष है, अर्थात् जिसमें ‘एकशेष’ प्रकरण
नहीं है । और ऐसा व्याकरण वही है जिसकी टीका
अभयनान्दिने की है ।

आचार्य विद्यानन्दि अपने तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक
(पृष्ठ २६५) में ‘नैगमसंग्रह-’ आदि सूत्रकी
व्याख्या करते हुए लिखते हैं—“नयश्च नयौ च न-
याश्च नया इत्येकशेषस्य स्वाभाविकस्याभिधाने दर्श-
नात् केपाविसिद्धा वचनोपलम्भाच्च न विरुद्धवते ।”
इसमें स्वाभाविकताके कारण एकशेष की अना-
वश्यकता प्रतिपादित है और यह अनावश्यकता
जैनान्द्रके वास्तविक सूत्रपाठमें ही उपलब्ध होती
है । “स्वाभाविकत्वादिभिधानस्यैकशेषानारम्भः”
(१-१-१९) यह सूत्र शब्दार्णववाले पाठमें नहीं है,
अतः विद्यानन्द भी इसी सूत्रवाले जैनान्द्रपाठको
माननेवाले थे । पाठकोंको यह स्मरण रखना
चाहिए कि उपलब्ध व्याकरणोंमें अनेकशेष व्याक-
रण केवल देवचन्द्रिकृत ही है, दूसरा नहीं ।

३—‘सर्वार्थसिद्धि’ तत्त्वार्थ सूत्रकी सुप्रसिद्ध
टीका है । इसके कर्ता स्वयं पूज्यपाद या देवचन्द्रि
है जिनका कि बताया हुआ प्रस्तुत जैनान्द्र व्याकर-
ण है । इस टीकामें अध्याय ५ सूत्र २४ की व्याख्या
करते हुए वे लिखते हैं—“‘अन्यतोऽपि’ इति तसि
छने सर्वतः ।” इसी सूत्रकी व्याख्या करते हुए
राजवार्तिककार लिखते हैं—“‘दृश्यतेऽन्यतो-
पिति’ तसि कृते सर्वेषु भवेयु सर्वत इति भवति ।”
जान पड़ता है या तो सर्वार्थसिद्धिकारने इस
सूत्रको संक्षेप करके लिखा होगा, या लेखकों तथा
छपानेवालोंन प्रारम्भका ‘दृश्यते’ शब्द जोड़ दिया

होगा; कुछ भी हो, पर यह पूरा सूत्र ‘दृश्यतेऽन्य-
तोपि’ ही है और यह अभयनन्दिवाले सूत्रपाठमें
अ० ४ पा० ७ का ७५ वाँ सूत्र है । परन्तु शब्दार्ण-
ववाले पाठमें न तो यह सूत्र ही है और न इसके
प्रतिपाद्यना विधानकर्ता कोई और ही सूत्र है ।
अतः यह निश्चि है कि पूज्यपादका असली सूत्रपा-
ठ वही है जिसमें उक्त सूत्र मौजूद है ।

४—भट्टकलंकदेवने तत्त्वार्थराजवार्तिकमें ‘आद्ये
परोक्षे (अ० १ सू० ११)’ की व्याख्यामें “सर्वादि
सर्वनाम ।” (१-१-२५) सूत्रका उल्लेख किया
है, इसी तरह पण्डित आशाधरने अनंगारधर्मासू-
तटीका (अ० ७ श्लो० २४) में “स्तोकै प्रतिना”
(१-३-३७) और “भार्थ” (१-४-१४) इन
दो सूत्रोंको उद्धृत किया है और ये तीनों ही सूत्र
जैनान्द्रके अभयनन्दिवृत्तिवाले सूत्रपाठमें ही मिल-
ते हैं । शब्दार्णववाले पाठमें इनका अस्ति-
त्व ही नहीं है । अतः अकलंकदेव और पं० आशा-
धरइसो अभयनन्दिवाले पाठको ही माननेवाले थे ।
अकलंकदेव वि० की नौवीं शताब्दिके और आशा-
धर १३ वीं शताब्दिके विद्वान् हैं ।

५—पं० श्रीलालजी शास्त्रीने शब्दार्णवचन्द्रिकाकी
भूमिकामें लिखा है कि आचार्य पूज्यपादने स्ववि-
मित ‘सर्वार्थसिद्धि’ में ‘प्रमाणनयैराधिगमः’
(अ० १ सू० ६) की टीकामें यह वाक्य दिया है—
“नयशब्दस्याल्लघुत्वरत्वाः पूर्णनिपातः प्राप्नोति नप-
दोपः । अभ्यहितत्वात्प्रमाणस्य तत्पुर्णनिपातः ।”
और अभयनन्दिवाले पाठमें इस विषयका प्रतिपा-
दन करनेवाला कोई सूत्र नहीं है । केवल अभय-
नन्दिका ‘अभ्यहितं पूर्णं निपतति’ वार्तिक है ।
यदि अभयनन्दिवाला सूत्रपाठ ठीक होता तो
उसमें इस विषयका प्रतिपादक सूत्र अवश्य होता
जो कि नहीं है । पर शब्दार्णववाले पाठमें “अर्थ”
(१-३-११५) ऐसा सूत्र है जो इसी विषयको
प्रतिपादित करता है । इसलिये यही सूत्रपाठ देव-
चन्द्रिकृत है । बस, पं० श्रीलालजीकी सबसे
बड़ी दलील यही है जिससे वे शब्दार्णववाले
पाठको असली सिद्ध करना चाहते हैं । इसके
सिवाय वे और कोई उल्लेख योग्य प्रमाण अपने

पक्षमें नहीं दे सके हैं । अब इसपर हमारा निवेदन सुन लीजिए—

"अल्पाक्षरम्" [२-२-३४] यह सूत्र पाणिनिका है और इसके ऊपर कात्यायनका "अभ्यर्हितं च" वार्तिक तथा पतञ्जलिका "अभ्यर्हितं पूर्वं निपतति" भाष्य है । इससे मालूम होता है कि पूज्यपादने अपनी सर्वार्थसिद्धिटीकाके इस स्थलमें पाणिनि और पतञ्जलिके हो सूत्र तथा भाष्यको लक्ष्यकर उक्त विधान किया है । अब इस पर यह प्रश्न होगा कि जब सर्वार्थसिद्धिकार स्वयं एक व्याकरणके कर्ता हैं, तब उन्होंने पाणिनिका और उसके भाष्यका आश्रय क्यों लिया ? हमारी समझमें इसका उत्तर यह है कि पूज्यपाद स्वामी यद्यपि सर्वार्थसिद्धिकी रचनाके समय अपना व्याकरण तो बना चुके होंगे परन्तु उस समय उनके व्याकरणने विशेष प्रसिद्धि लाभ नहीं की होगी और इस कारण स्वयं उनके ही हृदयमें उसकी इतनी प्रमाणता नहीं होगी कि वे अन्य प्रसिद्ध व्याकरणों तथा उनके वार्तिकों और भाष्योंको सर्वथा भुला दें—या उनका आश्रय नहीं लें । कुछ भी हो परन्तु यह तो निश्चय है कि उन्होंने अपनी सर्वार्थसिद्धिमें अन्य व्याकरणोंकी भी मत दिये हैं । इस विषयमें हम एक और प्रमाण उपास्थित करते हैं जो बहुत ही पुष्ट और स्पष्ट है—

सर्वार्थसिद्धि अ० ४ सूत्र २२ की व्याख्यामें लिखा है—“यथाहुः द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसर्गानामिति ।” इसकी अन्य पुरुषकी 'आहुः' क्रिया ही कह रही है कि प्रत्ययकर्ता यहाँ किसी अन्य पुरुषका वचन दे रहे हैं । अब पतञ्जलिका महामाष्य देखिए । उसमें १-२-१ के ५ वें वार्तिकके भाष्यमें विलकुल यही वाक्य दिया हुआ है—एक अक्षरका भी हेरफेर नहीं है । इससे स्पष्ट है कि सर्वार्थसिद्धिके कर्ता अन्य व्याकरण

१ तत्त्वार्थराजवार्तिकमें इसी 'प्रमाणनयैरभिप्रायः' सूत्रकी व्याख्यामें पतञ्जलिका यह भाष्य ज्यों का ज्यों अक्षरशः दिया है । धर्मयगन्धिका भी यही वार्तिक है ।

२ राजवार्तिक और ओष्ठवार्तिकमें भी यह वाक्य उद्धृत किया गया है ।

ग्रन्थोंके भी प्रमाण देते हैं । और भी एक प्रमाण लीजिए—

सर्वार्थसिद्धि अ० ७ सूत्र १६ की व्याख्यामें लिखा है—“शास्त्रेऽपि 'अश्ववृषयोर्मथुनेच्छायामि' त्येवमादिषु तदेव गृह्यते ।” यह पाणिनिके ७-१-५१ सूत्रपर कात्यायनका पहला वार्तिक है । यहाँ “अश्ववृषयोर्मथुनेच्छायाम्” इतने शब्द हैं और इन्हींको सर्वार्थसिद्धिकारने लिया है । यहाँ कात्यायनके वार्तिकको उन्होंने 'शास्त्र' शब्दसे व्यक्त किया है ।

सर्वार्थसिद्धि अ० ५ सूत्र ४ की व्याख्यामें 'नित्य' शब्दको सिद्ध करनेके लिए पूज्यपाद स्वामी लिखते हैं—“ने ध्रुवे त्यः इति निष्पादितत्वात् ।” परन्तु जैनेन्द्रमें 'नित्य' शब्दको सिद्ध करनेवाला कोई मूल सूत्र नहीं है, इस लिए अभयनन्दिने अपनी वृत्तिमें “इत्येस्तु” (३-२-८१) सूत्रकी व्याख्यामें 'नेर्ध्रुव इति वक्तव्यम्' । यह वार्तिक बनाया है गौतम 'नित्यं सर्वकालं भवं नित्यं' इस तरह स्पष्ट किया है । जैनेन्द्रमें 'त्य' प्रत्यय ही नहीं है, इसके बदले 'य' प्रत्यय है । इससे मालूम होता है कि सर्वार्थसिद्धिकारने स्वनिर्मित व्याकरणको लक्ष्यमें रखकर पूर्वोक्त बात नहीं कही है । अन्य व्याकरणोंके प्रमाण भी वे देते थे और यह प्रमाण भी उसी तरह का है ।

परन्तु इससे पाठकोंको यह न समझ लेना चाहिए कि सर्वार्थसिद्धिमें ग्रन्थकर्ताने अपने जैनेन्द्रसूत्रोंका कहीं उपयोग ही नहीं किया है । नहीं, कुछ स्थानोंमें उन्होंने अपने निजके सूत्र भी दिये हैं । जैसे पांचवे अध्यायके पहले सूत्रके व्याख्यातमें लिखा है “विशेषणं विशेष्येण” इति वृत्ति । यह जैनेन्द्रका १-३-५२ वां सूत्र है । यह सूत्र शब्दार्णवचन्द्रिका (१-३-४८) वाले पाठमें भी है ।

इन सब प्रमाणोंसे यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है कि जैनेन्द्रका असली सूत्रपाठ यही है जिसपर अभयनन्दिद्रुत वृत्ति है, शब्दार्णवचन्द्रिका

१ सर्वार्थसिद्धिवार्तिकमें भी है “शास्त्रेऽपि अश्ववृषयोर्मथुनेच्छायामित्येवमादिषु तदेव स्मर्यमाहते ।”

कावाला पाठ असली सूत्रपाठको सशोधित और परिवर्धित करके बनाया गया है और उसका यह संस्करण सम्भवतः गुणनन्दि आचार्यकृत है।

अब एक प्रश्न यह रह जाता है कि जय गुणनन्दि ने मूल ग्रंथमें इतना परिवर्तन और सशोधन किया था, तब उस परिवर्तित ग्रन्थका नाम जैनेन्द्र की क्यों रखा ? इसके उत्तरमें निवेदन है कि एक तो दाम्पार्ण्यचन्द्रिका और जैनेन्द्रप्रक्रियाके पूर्वोद्धिखित श्लोकोंसे गुणनन्दिके व्याकरणका नाम 'जैनेन्द्र' नहीं किन्तु 'दाम्पार्ण्य' मालूम होता है। सम्भव है कि लेखकोंके भ्रमसे इन टीकाग्रंथोंमें 'जैनेन्द्र' नाम शामिल हो गया हो। दूसरा यदि 'जैनेन्द्र' नाम भी हो, तो ऐसा कुछ अनुचित भी नहीं है। क्यों कि गुणनन्दिने जो प्रयत्न किया है, वह अपना एक द्युतप्र प्रथ बनानेकी इच्छासे नहीं किन्तु पूर्वनिर्मित 'जैनेन्द्र' को सार्वांगपूर्ण बनानेकी सविच्छासे किया है और इसी लिए उन्होंने जैनेन्द्रके आधेसे अधिक सूत्र ज्यों के त्यों रहने दिये हं तथा मंगलाचरण आदि भी उसका ज्यों का त्यों रखा है। हमारा विश्वास है कि गुणनन्दि इस सशोधित और परिवर्तित सूत्र-पाठको ही तैयार करके न रहे गये होंगे, उन्होंने इसपर कोई वृत्ति या टीका ग्रंथ भी अद्यय लिखा होगा, जो अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है। समा-तन जैन ग्रन्थमालामें जो जैनेन्द्र-प्रक्रिया छपी है, वह जैसा कि हम आगे सिद्ध करेंगे गुणनन्दिकी बनाई हुई नहीं है।

जैनेन्द्रकी टीकायें।

पूज्यपादस्वामीजी महाराज असली जैनेन्द्रकी इस समय तक केवल तीन ही टीकायें उपलब्ध हैं—१ अभयनन्दिन 'महावृत्ति', २ आर्यश्रुतकीर्तिकी 'पंच-वस्तु-प्रक्रिया', और ३ वृत्तमहाचन्द्रन 'लघु जैनेन्द्र'। परन्तु इनके सिवाय इसकी और भी कई टीकायें होनी चाहिए। पंचवस्तुके अन्तमें नीचे लिखा हुआ एक श्लोक है—

सूत्रतन्मात्रमुच्यते प्रविलसन्त्यासोरुतत्प्रक्षित
श्रीमद्वृत्तिरपाठसंप्रयुक्त माप्यापमग्यातरम् ।
टीकामालमिहाहस्तारं चेत जैनेन्द्राद्यागमं,
प्रासादं पृथुपंचवस्तुक्रमिह संगानमपारोक्षम् ॥

इसमें जैनेन्द्र शब्दागम या जैनेन्द्र व्याकरणको महलकी उपमा दी गई है। वह मूलसूत्ररूप स्तम्भों पर खड़ा किया गया है, न्यासरूप उसकी रत्नमय भूमि है, वृत्तिरूप उसके किवाड़ हैं, भाष्यरूप शय्यातल है, और टीकारूप उसके माल या मजिल हैं। यह पंचवस्तु टीका उसकी सोपान श्रेणी है। इसके द्वारा उक्त महल पर आरोहण किया जासकता है। इससे मालूम होता है कि पंचवस्तुके कर्ताके समयमें इस व्याकरणपर १ न्यास, २ वृत्ति, ३ भाष्य और ४ टीका, इतने व्याख्या ग्रन्थ मौजूद थे। इनमेंसे श्रीमद्वृत्ति या वृत्ति तो यह अभयनन्दिकी महावृत्ति ही होगी, ऐसा जान पड़ता है। शेष तीन टीकायें अभी तक उपलब्ध नहीं हुई हैं। हमारा अनुमान है कि इनमेंसे एक टीकाग्रन्थ चाहे वह न्यास हो या भाष्य हो, स्वयं पूज्यपादस्वामीका बनाया हुआ होगा। क्यों कि वे केवल सूत्रग्रन्थ ही बनाकर रह गये होंगे, यह बात समझमें नहीं आती। अपनी मानी हुई अतिशय सूक्ष्म संज्ञाओं और परिभाषाओंका स्पर्शकरण करनेके लिए उन्हें कोई टीका, वृत्ति या न्यास अद्यय बनाना पड़ा होगा, जिस तरह शाकटायनने अपने व्याकरणपर असोघवृत्ति नामकी स्वोपज्ञ टीका बनाई है।

आचार्य विद्यानन्दने अष्टसहस्री (पृष्ठ १३२) में 'प्यखे कर्मण्युपसर्त्यानात् का' यह ध्वनन उद्धृत किया है। यह किसी व्याकरण ग्रन्थका धार्मिक है, परन्तु पाणिनिके किसी भी धार्मिकमें यह नहीं मिलता। अभयनन्दिकी महावृत्तिमें अद्यय ही "प्यखे कर्मणि का यत्तन्मा" [४-१-३८] इस प्रकारका धार्मिक है, परन्तु हमारा खयाल है कि अभयनन्दिकी वृत्ति विद्यानन्दसे पीछेकी वनी हुई है, इस लिए विद्यानन्दने यह धार्मिक अभयनन्दिकी वृत्तिसे नहीं किन्तु अन्य ही किसी ग्रन्थसे लिया होगा और आश्चर्य नहीं जो यह स्वयं पूज्यपादवृत्त टीकाग्रन्थ हो। सुनते हैं, जैनेन्द्रका न्यास कर्नाटक प्रांतके जैन पुस्तक भण्डारोंमें है। उसके प्राप्त करनेकी बहुत आवश्यकता है। उससे इस व्याकरणसम्बन्धी अनेक संशयोंका निराकरण हो-
जायगा।

आगे हम उपलब्ध टीका ग्रन्थोंका परिचय देते हैं:—

१-महावृत्ति । इसकी एक प्रति पूरेके भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूटमें मौजूद है । इसकी श्लोकसंख्या १३००० के लगभग है । इसके प्रारम्भके ३१४ पत्र एक लेखकके लिखे हुए और शेष ७२ पत्र, चित्र सुदी २ स० १९३३ को किसी दूसरे लेखकके लिखे हुए हैं । प्रतिके दोनों ही भाग जयपुरके लिखे हुए मालूम होते हैं । कई स्थानों में कुछ पंक्तियाँ छूटी हुई हैं । इसका प्रारम्भ इसतरह हुआ है:—

ओ नमः । धीमत्सर्वज्ञवीरागतद्वचनतद्गुणारिगुण्यो नमः ।

देवदेव विन नत्वा सर्वसत्ताभयप्रदम् ।

राष्ट्रशास्त्रस्य सूत्राणां महाशक्तिविश्रयते ॥ १ ॥

मण्डलक्षणमसुत्रजपारम्भै-

रस्यसमुक्तमभिधानिबोधो दधिदैः ।

तत्सर्वलोकहृदयप्रियवाचनार्थै-

व्यंशकीलोकस्यभयनदेमुनि, समस्तम् ॥ २ ॥

विष्ट चारपरिपाठनार्थमादाविष्टदेवतानमस्कारलक्षणं मंगलमिवमाहाचार्यः ।

और अन्तमें कोई प्रशस्ति आदि न देकर सिर्फ इतना ही लिखा है—

“इत्यभयनन्दिनिर्दिष्टाया जैनेन्द्रव्याकरणमहाश्रुती पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः । समाप्तध्यायं पंचमोऽध्यायः ।”

इससे मालूम होता है कि इस महावृत्तिके कर्ता अभयनन्दि मुनि हैं । उन्होंने न तो अपनी गुरुपरम्पराका ही परिचय दिया है और न ग्रन्थरचनाका समय ही दिया है, इससे निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि वे कब हुए हैं । परन्तु उन्होंने सन् ३-२-५५ की टीकामें एक जगह उदाहरण दिया है—“तत्सर्वार्थातिरिक्तमधीयते ।” इससे मालूम होता है कि भट्टकलंकदेवसे बाद अर्थात् वि० की नौवीं शताब्दिके बाद—और पंचवस्तुके पूर्वोल्लिखित श्लोकमें इसी वृत्तिका उल्लेख जान पड़ता है, इस लिए आर्य ध्रुतकीर्तिके अर्थात् विक्रमकी चारहवीं शताब्दिके पहले—किसी समयमें वे हुए

हैं । हमारा अनुमान है कि चन्द्रप्रमकाव्यके कर्ता महाकवि वीरनन्दिने जिन अभयनन्दिका अपना गुरु बतलाया है, येव ही अभयनन्दि होंगे । आचार्य नेमिचन्द्रने भी गोममदसार-कर्मकाण्डकी ४३६ वां पाठामें इनका उल्लेख किया है । अतएव इनका समय विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दिके पूर्वार्धके लगभग निश्चित होता है । जैनेन्द्रकी उपलब्ध टीकाओंमें यही टीका सबसे प्राचीन मालूम आती है । प्रो० एस० के० बेलवलकरने अभयनन्दिका समय ई० सन् १३००—१३५० के लगभग मालूम नहीं किन प्रमाणोंसे निश्चित किया है ।

२-पञ्चवस्तु । भांडारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूटमें इसकी दो प्रतियाँ मौजूद हैं, जिनमें एक ३०० ४०० वर्ष पहलेकी लिखी हुई है और बहुत टूटा है । पत्रसंख्या ९१ है । इस पर लेखकका नाम और प्रति लिखनेका समय आदि नहीं है । इसके अन्तमें केवल इतना लिखा हुआ है—

“कतिरिय देवनवाचार्यस्य परवादिमधनस्य ॥ छ ॥

शुभ भवतु लेखकाऽक्योः ॥ श्रीरंघस्य ॥”

दूसरी प्रति रत्नकरण्डभाषकाचार्यधनिका आदि अनेक भाषाग्रन्थोंके रचयिता सुप्रसिद्ध पण्डित सदासुखजीके हाथकी लिखी हुई है और संवत् १९१० की लिखी हुई है । इसके अन्तमें प्रति-लेखकने आपना परिचय इसतरह दिया है—

अस्मि नमश्चन्द्रनिधिधियुक्ते छन्दे सद्यस्यम् (?) युष्मत्तुष्यम् ।

स प्रक्रियावन्धनिबन्धनेयं चतुस्तुतुरीयदानसमाप्ता (?) ॥

धीमन्मराणांमधियेसारात्रि धीरामासिंह विलसत्यल्लेखि ।

धीमद्वसुधेनेह सदासुखेन धीयुक्तलेखनिनाम्यवुद्धये ॥

शास्त्रार्थशास्त्रं पठिते न येसैस्वदेहसपालनभारवोद्रे ।

किं दर्शनीयं कथनीयमेतद् वृथापसथावलापपट्टिः ॥

यह प्रति भी प्रायः टूटा है ।

यह टीका प्रक्रियायुद्ध टीका है और बड़े अच्छे

* वीरनन्दि और अभयनन्दिका समय जाननेके लिए देखो त्रिलोकसार ग्रन्थकी मेरी लिखी भूमिका ।

१ नं० १०५९ सन् १८६७-९१ की रिपोर्ट । २ नं०

५९० सन् १८७१-७६ की रिपोर्ट । ३ इस ग्रन्थकी एक

प्रति परतापगढ़ (माढवा) के पुगने दि० जैनमन्दिरके मं-

डारमें भी है । देखो जैनमित्र ता० २६ अगत १९१५ ।

हंगसे लिखी गई है। इसकी श्लोकसंख्या ३६०० के लगभग है। प्रारंभके विचारार्थियोंके लिए यही उपयोगी है। इसका प्रारंभ इसप्रकार किया है—

ओं नमः श्रोग्रान्तिनाथाय ।

अमृतश्रतयनाथाय नमो जन्मप्रमथने ।

नयप्रमाणवापरिमन्वत्पञ्चानाथ आनये ॥ १ ॥

प्रत्याहारस्यादापिष्टेद्वारानुतिवचन मंगलाधैमुपासम् ।

आगे चलकर पान्चये पात्रमें इस प्रकार लिखा है—
प्राग धैर्यगण-धर-नरणादीना संघोनी बहूना ममवशात्
संशयानः शिष्य-मपूच्छानि स्म-कस्तन्निधिरिति ।

संज्ञास्वरूपप्रतिहरजयिष्यैर्जन्मा

सौषष्ठ्य धनक इतीश्वमिहाहुरन्ये ।

तत्र स्वरूपप्रतिहरजयिष्यस्तोऽस्मि-

न्सधि त्रिधा कथयति श्रुतकान्तिरायः ॥

इस ग्रन्थके आदि-अन्तमें कहीं भी इसके कर्त्ताका नाम नहीं है। केवल इसी जगह यह नाम आया है और इससे मालूम होता है कि पंचवस्तुके रचायिता आर्य श्रुतकीर्ति हैं।

कनडी भाषाके चन्द्रप्रमचरित नामक ग्रन्थके कर्त्ता अगल कविने श्रुतकीर्तिको अपना गुरु बतलाया है—“ इति परमपुरनाथकलभूमुत्समुद्भूतप्रय-
चनसौप्तिकरिनाथ-श्रुतकीर्तिश्रियचक्रवार्त्तपद-
प्रतिधानदीर्घवर्तिश्रीमदगलदेवविरचिते चन्द्रप्रम-
चरिते-” इत्यादि । और यह चरित शक संवत् १०११ (वि० सं० ११४६) में बनकर समाप्त हुआ है। अतएव पंचवस्तुको भी अभयनन्दि महावृत्तिके कुछ ही पीछे की-विक्रमकी बारहवीं शताब्दि के प्रारंभ की-रचना समझना चाहिये । नन्दिसंघकी गुर्वीयलीमें श्रुतकीर्तिकी व्याकरण भास्कर लिखा है—

“ त्रैविध्यः श्रुतकीर्त्यान्ध्र्यो व्याकरणभास्करः । ”

ये नन्दिसंघ, देशीयगण और सुतकगच्छके आचार्य थे। श्रुतकीर्ति नामके और भी कई आचार्य हो गये हैं।

३—लघुजैनेन्द्र । इसका एक प्रति अकलेभर (भरोच) के दिगम्बर जैनमन्दिरमें है और दूसरी

१ देखो प्रो० पिट्टेनकी दूसरी रिपोर्ट सन १८८०, पृष्ठ १९४ ।

अधूरी प्रति परतायगढ़ (मालवा) के पुराने दि० जैनमन्दिरमें है । उसमें इस तरह प्रारंभ किया गया है—

महावृत्ति सुभक्तकलबुधपूजनी सुभक्ती,

विलोक्योद्यद्दानय भुविभयनन्दीप्रवहिताम् ।

अनेकैः सच्छब्दैर्भ्रमविवर्तकैः संरुद्धभूता (?)

प्रकृतैः स ह ननुमातिमहाचन्द्रविभूषः (?) ॥

इससे मालूम होता है कि यह अभयनन्दी वृत्तिके आधारसे लिखी गई है। पण्डित महाचन्द्रजी वि-
क्रमकी इसी यांसचीं शताब्दिके ग्रन्थकर्त्ता हैं। इन्होंने संस्कृत, प्राकृत और भाषामें कई ग्रन्थ लिखे हैं।

४—जैनेन्द्रप्रक्रिया । इस न्यायतार्थ न्यायशास्त्री प० यशोधरजीने अभी हाल ही लिखी है। इसका अभी केवल पूर्वार्ध ही छपकर प्रकाशित हुआ है।

गन्धारवकी टीकायें ।

जैनेन्द्र सूत्रपाठके संशोधित परिवर्धित स्वरूप-
णका नाम-जैसा कि पहले लिखा जा चुका है—
गन्धारव है। इसके कर्त्ता आचार्य गुणनन्दि हैं। यह बहुत संभव है कि सूत्रपाठके सिवाय इन्होंने उसकी कोई टीका या वृत्ति भी बनाई होगी जो कि अभीतक उपलब्ध नहीं हुई है।

गुणनन्दि नामके कई आचार्य हो गये हैं। उनमेंसे एक शक संवत् ३८८ (वि० सं० ५२३) में पूज्यपादसे भी पहलेके हैं^१। दूसरे गुणनन्दि का उल्लेख श्रवणपेलगोलके ४२, ४३ और ४७ वें नम्बरके शिलालेखोंमें मिलता है। ये घलाकापिच्छके शिष्य और गृध्रपिच्छके प्रशिष्य थे। तर्क, व्याकरण और साहित्य शास्त्रके बहुत बड़े विद्वान् थे। इनके ३०० शास्त्रप्रारंभगत शिष्य थे और उनमें ७२ शिष्य सिद्धान्तशास्त्री थे। आदि पंथके गुरु देवेन्द्र भी इन्हीं के शिष्य थे। अनेक ग्रन्थकारोंने इन्हें कई काव्योंका कर्त्ता बतलाया है; परन्तु अभी-

१ देखो जैनमित्र ता० २६ अगस्त १९१५ ।

२ मर्कराका ताम्रपत्र, इन्डियन एण्टिक्वैरी, जिल्द १, पृष्ठ २५३-२५५ । तथा एपिग्राफिका कर्नाटिका—जिल्द १, का पदवा लेख ।

तक इनका कोई काव्य नहीं मिला है। कर्नाटक कविचरितके कर्ताने इनका समय वि० संवत् ९५७ निश्चय किया है। क्योंकि इनके शिष्य देवेन्द्रके शिष्य आदि पंथका जन्म वि० सं० ९५९ में हुआ था और उसने ३१ वर्षकी अवस्थामें अपने सुप्रसिद्ध कनडी काव्य भारतचम्पू और आदिपूरण निर्माण किये हैं। हमारा अनुमान है कि येही गुणनन्दि शब्दार्णवके कर्त्ता होंगे। अचण बेलगोलके ४७ वें शिलालेखमें इनके सम्बन्धमें नीचे लिखे श्लोक मिलते हैं:—

श्रीशुद्धपिच्छमुनिपत्य बलाकपिच्छः

शिष्योऽजिष्ठिररत्नयवर्तिकीर्तिः ।

शरिद्रवचुराधिरावनिपालमौलि-

माराशिलीमुखविजितपादपदः ॥ १ ॥

तच्छिष्यो गुणनन्दिपण्डितयतिः चारिद्रवकेस्वरः ।

तत्कव्यारणादिशास्त्रविपुणः सादित्वविधापतिः ॥ ७

मिथ्यात्वादिनदानादिचिन्तुरपठसंपातकभर्यो ।

मध्याम्नोर्जीदवाकगे विजयतां कन्दैर्दण्डावहः ॥ ८

तच्छिष्यालिखितं विद्वत्तुमिषयः शास्त्रादिपारंगताः ।

तैपु कृष्टवमा द्विपत्तितिताः विद्वान्ताशास्त्रार्थकाः ॥ ९

महाशाने पटरो विविचरिताः तैपु प्रसिद्धो मुनिः ।

नानानुनमप्रम णनिपुणो देवन्द्रेष्टेष्टिकः ॥ १०

चन्द्रप्रभवचित महाकाव्यके कर्त्ता वीरनन्दिका समय शक संवत् ९०० के लगभग निश्चित होता है। क्योंकि वादिराजसुदिने अपने पाध्वनाथकाव्यमें इनका स्मरण किया है। और वीरनन्दिकी सुवपरम्परा इस प्रकार है—१ श्रीगुणनन्दि, २ विद्युध-गुणनन्दि, ३ अभयनन्दि और वीरनन्दि। यदि पहले गुणनन्दि और वीरनन्दिके बीचमें हम ७८ वर्षका अन्तर मान लें, तो पहले गुणनन्दिका समय वही शक संवत् ८२२ वा वि० सं० ९५७ के लगभग आ जायगा। इससे यह निश्चय होता है कि वीरनन्दिकी सुवपरम्परके प्रथम गुणनन्दि और आदिपंथके गुरु देवेन्द्रके गुरु गुणनन्दि एक ही होंगे और जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं येही शब्दार्णवके कर्त्ता होंगे।

गुणनन्दि नामके एक और आचार्य शक संवत् १०३७ [वि० सं० ११७२] में हुए हैं जो मेघचन्द्र

शैविचके गुरु थे। संभव है कि शब्दार्णवके कर्त्ता ये ही हों।

शब्दार्णवकी इस समय की टीकायें उपलब्ध हैं और दोनों ही सनातन जैन ग्रन्थमालामें छप चुकी हैं—१ शब्दार्णवचन्द्रिका, और २ शब्दार्णवप्रक्रिया।

१—शब्दार्णवचन्द्रिका। इसकी एक बहुत ही प्राचीन और अतिशय जीर्ण प्रति भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूटमें मौजूद है। यह ताडपनपर नामकी लिपिमें है। इसके आदि-अन्तके पत्र प्रायः नष्ट हो गये हैं। इसमें छपी हुई प्रतिमें जो गद्य प्रशस्ति है, वह नहीं है। और अन्तमें एक श्लोक है जो आधा पड़ा जाता है—“मंगलमस्तु। ... इन्द्रध्वजशकटतनयः पार्णनिः पूजयादौ यन्मोघाचापिश-लिरमरः काशकृष्णि ... शब्दपारायणस्येति।”

इसके कर्त्ता श्रीसोमदेव मुनि हैं। ये शिलाहार वंशके राजा भोजदेव [द्वितीय] के समयमें हुए हैं और अर्जुनिका नामक ग्रामके त्रिभुवनतिलक नामक जैनमन्दिरमें—जो कि महाभण्डलेस्वर गंङ्गरादिसदेवका बनवाया हुआ था—उन्होंने इसे शक संवत् ११२७ [वि० सं० १२६२] में बनाया है। यह ग्राम इस समय आजर नामक प्रसिद्ध है और कोल्हापुर राज्यमें है। वादीमयकांफुश श्रीविशालकीर्ति पण्डितदेवके वैद्यावृत्त्यसे इस ग्रन्थकी रचना हुई है:—

“श्रीसोमदेववसतिनिर्मितिमाध्वाति
या नौः प्रतीतगुणनन्देशब्दार्णवौ।

१ नं० २५ सन १८८०-८१ की रिपोर्ट।

२ ये विशालकीर्ति वे ही मालूम होते हैं जिनका उल्लेख १० आशापरने अपने अनगारथमौल्यतकी प्रशस्ति की टीकामें ‘वादीमयविशालकीर्ति’ के नामसे किया है और जिनको उन्होंने न्यायशास्त्रमें पारंगत किया था। १० आशापर वि० सं० १२४९ के लगभग पारंगत आये थे और वि० सं० १३०० तक उनके अस्तित्वका पता लगता है। (देखो मज्झिमसिद्धसत्तमाख्यामें ‘पण्डित प्रवर आशापर शीर्षलेख’) अतः ये मंदिरका वैद्यावृत्त करनेवाले विशालकीर्ति इन्हें ही हो सकते हैं। १० आशापरने पावने १२६२ ही वे दक्षिण और चले आये होंगे।

संय गताममन्त्रेतासि पितृपुराणी

श्रुति सदा सुतपदा परिवर्तिषीष्ट ॥

स्वस्ति श्रीशंकराचार्यदेवशान्त्यंशुं श्रीमहास्वाम्यधिष्ठि-
रावतारमहामण्डलभृगुशरीरिदयैवेत्यनिर्मापितप्रशुबनतिलक-
जिनालये श्रीमत्परमपरमेश्विभ्रीमेनाथश्रीपादपारायनवल्लभ
मादीमवज्ञातुः श्रीविशालश्रीतिष्वितदेवैवेत्यनुसृतः श्रीमन्त्रि-
ल्लहारकुलनमलमार्गद्विजः पुंजराश्रीधरा जपरमेश्वरपद्मसत्रा-
रकपश्चिमचक्रवर्तिश्रीश्रीश्रीमोजदेवविजयराज्ये शतवर्षेष्टसह-
स्रैकज्ञानचतुर्विंशति ११२० तमकोधनसंवल्ले स्वरिन
समस्त नयनविद्याचक्रकयतिश्रीपूज्यपादानुरक्तचेतसा श्री-
मरघोमदेवमुनीश्वरेण विरचितेयं शब्दार्णवचन्द्रिका नाम
वृत्तिरिति । इति श्रीपूज्यपादरुतजैनेन्द्रमहाव्याकरणं
सम्पूर्णम् । "

यशस्वितिलकचम्पूके कर्ता सुप्रसिद्ध सांमदेय-
सूरि इनसे पहले हुए हैं । क्योंकि इनका उक्त चम्पू
शक संवत् ८८१ [वि० १०१६] में समाप्त हुआ
था । अतएव उनसे और इनसे कोई सम्बन्ध नहीं
है, यह स्पष्ट है ।

इस ग्रन्थके मंगलाचरणमें नीचे लिखे दो श्लोक
दिये हैं:—

श्रीपूज्यपादममल गुणनन्दिदेवं

श्रीमत्परमपूजितपादगुणम् ।

सिद्ध समुत्तमदेवं शुभम जिनम्

स-छन्दलक्षणमहं विनमामि वारम् ॥ १ ॥

श्रीमूलसंयजलजप्रतिबोधमानो-

मैवन्दुर्वा क्षितभुजगसुधाकरस्य ।

राज्ञान्तोयनिधिवृद्धिकरस्य वृत्ति

रमे हरीदुयतये वरदीक्षिताय ॥ २ ॥

इनमेंसे पहले श्लोकमें पूज्यपाद, गुणनन्दि और
सांमदेय ये विशेषण धीरे भगवानकी दिये हैं ।
दूसरे श्लोकमें कहा है कि यह टीका मूलसंघीय
मेघचन्द्रके शिष्य नागचन्द्र (मुञ्जगसुधाकर) और
उनके शिष्य हरिचन्द्र यतिके लिए बनाई जाती है ।

गुणनान्दिकी प्रशंसा द्वारा विधातुपाठके अन्तमें
भी एक पद्यमें की गई है जिसका अन्तिम खण
यह है:—

शब्दप्रज्ञा य जीयाद् गुणनिधिगुणनन्दितीक्ष्णसुधीरयः ।

अर्थात् इसमें शब्दप्रज्ञा विशेषण देकर गुणनान्दि-

की जगद्गार्णव व्याकरणका कर्ता ही प्रकट किया
गया है ।

अथ वेम्पना चाहिए कि ये मेघचन्द्र और नाग-
चन्द्र आदि कौन थे और कब हुए थे:—

ये मेघचन्द्र आचारसारके कर्ता वीरनन्दि सि-
द्धान्त चक्रवर्तिके गुरु ही मालूम होते हैं । ये पंडे
भारी विद्वान् थे । इन्हें सिद्धान्तज्ञतामें जिनसेन
और वीरसेनके मर्यादा, न्यायमें अकलंकके
समान और व्याकरणमें साक्षात् पूज्यपाद महेश
यतलार्थ हैं । अथर्ववेदमूलके सं० ४७, ५० और
५१ नध्यर्गके शिलालेखोंसे मालूम होता है कि इन-
का स्यर्गयास शक संवत् १०३७ (वि० सं० ११७२)
में और उनके शुभचन्द्रदेव नामक शिष्यका स्यर्ग-
यास शक संवत् १०६८ (वि० सं० १२०३) में हुआ
था । तथा उनके दूसरे शिष्य प्रभाचन्द्रदेवने शक
सं० १०८५ (वि० सं० ११७६) में एक महापूजाप्र-
तिष्ठा कराई थी । जब सांमदेयने शब्दार्णवचन्दि-
का मेघचन्द्रके प्रशिष्य हरिचन्द्रके लिए शक सं०
११२७ (वि० सं० १२६२) में बनाई थी, तब मेघ-
चन्द्रका समय वि० सं० ११७२ के लगभग नामा
जा सकता है ।

नागचन्द्र नामके दो विद्वान् हैं । गये हैं, एक
पपरामायणके कर्ता नागचन्द्र जिनका दूसरा नाम
अभिनय पंप था, और दूसरे लभिसारटीकाके कर्ता
नागचन्द्र । पहले गृहस्थ थे और दूसरे मुनि ।
अभिनय पंपके गुरुका नाम बालचन्द्र था जो मेघच-
न्द्रके सहाध्यायी थे, और दूसरे स्वयं बालचन्द्रके
शिष्य थे । इन दूसरे नागचन्द्रके शिष्य हरिचन्द्र-
के लिए यह वृत्ति बनाई गई है । इन्हें जो 'राज्ञान्त
तोयनिधिवृद्धिकर' विशेषण दिया है उससे मा-
लूम होता है, कि ये सिद्धान्तचक्रवर्ती या सिद्धान्त-
ज्ञातोंके ज्ञाता या टीकाकार होंगे ।

२—शब्दार्णवप्रक्रिया । यह जैनेन्द्र प्रक्रियाके
नामसे लपरी है, परन्तु हमारा अनुमान है कि इस-

१ मेघचन्द्रके विषयमें विशेष जाननेके लिए देखो भाषि-
कचन्द्र ग्रन्थमालाके 'आचारसार' की भूमिका ।

२ देखो, 'शनिश्चलपुत्र एत अथर्ववेदश्लोक' का ४० वां
शिलालेख ।

का नाम शब्दार्णव-प्रक्रिया ही होगा। हमें इसकी कोई हस्तलिखित प्रति नहीं मिल सकी। जिस तरह अमयनन्दिका छुत्तिके बाद उसीके आधारसे प्रक्रियारूप पंचवस्तु टीका बनी है, उसी प्रकार सोमदेवकी शब्दार्णव-चन्द्रिकाके बाद उसीके आधारसे यह प्रक्रिया बनी है। प्रकाशकोंने इसके कर्ताका नाम गुणनन्दि प्रकट किया है; परन्तु जान पड़ता है इसके अन्तिम श्लोकोंमें गुणनन्दिका नाम देखकर ही भ्रमचक्ष इसके कर्त्ताका नाम गुणनन्दि समझ लिया गया है। ये श्लोक नीचे दिये जाते हैं:—

सर्वधि दधते समांसमभिन्नः स्वार्तार्थनामोप्रतं
निर्ज्ञातं बहुतद्धितं कृतमिहास्वार्ता यथाःशालिनम् ।
सैवा श्रीगुणनन्दितामितावपुः सध्याण्यं निर्णयं
नावत्याभयतां चित्तिलुमनसा साक्षात्स्वयं प्रक्रिया ॥ १ ॥
हुरितमदेभनिर्गुभङ्गमभ्यलसेदनसमोमनसैः ।
राजन्तुगाधिराजो गुणनन्दी भुवि चिरं जायात् ॥ २ ॥
सम्प्राप्यं सकलसुखप्रियकरं संप्रापिते सद्गते
प्रादिष्टावस्यसुचिरप्रवानमलकः कातो विवेकी प्रियः ।
सोयं यः श्रुतकीर्तिदेवयतिषो भट्टारकोत्तमकां
रैरन्यान्मम मानसे कविपतिः सदाजहं सधिरम् ॥ ३ ॥

इनमेंसे पहले पद्यका आशय पहले लिखा जा चुका है। उससे यह स्पष्ट होता है कि गुणनन्दिके शब्दार्णवके लिए यह प्रक्रिया नायके समान है। और दूसरे पद्यमें कहा है कि सिंहके समान गुणनन्दि पृथ्वीपर सदा जयवन्त रहें। मालूम नहीं, इन पद्योंसे इस प्रक्रियाका कर्तृत्व गुणनन्दिको कैसे प्राप्त होता है। यदि इसके कर्ता स्वयं गुणनन्दी होते तो वे स्वयं ही अपने लिए यह कैसे कहते कि वे गुणनन्दि सदा जयवन्त रहें। इनसे तो साफ प्रकट होता है कि गुणनन्दि ग्रन्थकर्त्तासे कोई पृथक् ही व्यक्त है जिसे वह शब्दास्पद समझता है। अर्थात् यह निस्संदेह है कि इसके कर्ता गुणनन्दिके अतिरिक्त कोई दूसरे ही हैं।

१ छपी हुई प्रतिके अन्तमें “ इति प्रक्रियावतरे रुद्रिभिः पञ्च समाप्तः । समाप्त्यर्थं प्रक्रिया । ” इस तरह छपा है। इससे भी इसका नाम जैनेन्द्र प्रक्रिया नहीं जान पड़ता।

तीसरे पद्यमें भट्टारकशिरोमणि श्रुतकीर्ति देवकी प्रशंसा करता हुआ कवि कहता है कि वे मेरे मनरूप मानससरोवरमें राजहंसके समान चिरकाल तक विराजमान रहें। इसमें भी ग्रन्थकर्ता अपना नाम प्रकट नहीं करते हैं; परन्तु अनुमानसे ऐसा जान पड़ता है कि वे श्रुतकीर्तिदेवके कोई शिष्य होंगे और संभवतः उन श्रुतकीर्तिके नहीं जो पंचवस्तुके कर्ता हैं। ये श्रुतकीर्ति पंचवस्तुके कर्त्तासे पृथक् जान पड़ते हैं। क्योंकि इन्हें प्रक्रियाके कर्ताने ‘कविपति’ बतलाया है, व्याकरणज्ञ नहीं। ये वे ही श्रुतकीर्ति मालूम होते हैं जिनका समय प्रो० पाठकने शक संवत् १०४१ या वि० सं० ११८० बतलाया है। अचणवेल्लोळके जैनगुरुओंने ‘चारकीर्ति पंडिताचार्य’ का पद शक संवत् १०३९ के बाद धारण किया है और पहले ‘चारकीर्ति’ इन्हीं श्रुतकीर्तिके पुत्र थे। अचणवेल्लोळके १०८ वें शिलालेखमें इनका जिकर है और इनकी बहुत ही प्रशंसा की गई है। लिखा है—

तत्र सर्वशरीररक्षाकृतमतिविजितेभ्यः ।

सिद्धसाधनवर्द्धनप्रतिलब्धकीर्तिकलापकः ॥ २२ ॥

विभूतश्रुतकीर्तिभट्टारकयतिरसमजायत ।

प्रस्तुतद्वचनामृतांशुविनाशिताखिलहृत्तमाः ॥ २३ ॥

प्रक्रियाके कर्त्ताने इन्हें भट्टारकोत्तंस और श्रुतकीर्तिदेवयतिप लिखा है और इस लेखमें भी भट्टारकयति लिखा है। अतः ये दोनों एक मालूम होते हैं। आश्चर्य नहीं जो इनके पुत्र और शिष्य चारकीर्ति पण्डिताचार्य ही इस प्रक्रियाके कर्त्ता हों।

समय-निर्णय ।

१) शाकटायन व्याकरण और उसकी अमोघवृत्ति नामकी टीका दोनों ही के कर्ता शाकटायन नामके आचार्य हैं, इस बातका प्रो० के० सी० पाठकने अनेक प्रमाण देकर सिद्ध किया है और उन्होंने यह भी बतलाया है कि अमोघवृत्ति राष्ट्रकूट राजा

१ देखो ‘सिद्धमय आफ संस्कृत प्रामर’ पृष्ठ ६० ।

२ देखो, मेरा लिखा ‘कनीटक जैन कवि’ पृष्ठ २० । ३ देखो, जैनसिद्धान्तमास्कर, किरण २-३, पृष्ठ ११८ ।

४ देखो, इंडियन एण्डिवेरी, अक्टूबर ४३, पृष्ठ २०५-१२ में प्रो० पाठकका लेख ।

अमोघ वर्षके समयमें उसीके नामसे बनाई गई है। इससे यह सिद्ध होता है कि शाकटायन व्याकरण (सूत्र) अमोघ वर्षके समयमें अथवा उससे कुछ पहले बनाया गया होगा। अमोघवर्षके शक संवत् ७३७ से ८०० तक (वि० सं० ८७२ से ९३५ तक) राज्य किया है। अतः यदि हम शाकटायन सूत्रोंके बननेका समय वि० सं० ८५० के लगभग मान लें, तो यह वास्तविकता के निकट ही रहेगा।

शाकटायन व्याकरणकी बारीकीके साथ देखने से मालूम होता है कि यह जैनेन्द्रसे पीछे बना हुआ है। क्योंकि उसके अनेक सूत्र जैनेन्द्रका अनुकरण करके रचे गये हैं। उदाहरणके लिए जैनेन्द्रके " वस्तेद्वेष्ट " (४-१-१५४), " शिलाया-ष्ट " (४-१-१५५) " दृष्ट " (४-१-२०९) आदि सूत्रोंको शाकटायनने थोड़ा बहुत फेरफार करके अथवा ज्योंका त्यों ले लिया है। जैनेन्द्रका एक सूत्र है— " दिदादिः " (१-१-५१) शाकटायनने इसे ज्योंका त्यों रख कर अपना पहले अध्याय, पहले पादका ५२ वां सूत्र बना लिया है। इस सूत्रकी लक्ष्य करके भट्टाकलकदेव अपने राजवार्तिक (१-५१, पृष्ठ ३७) में लिखते हैं— " वचिदवयवे दिदादिरिति । " और भट्टाकलकदेव शाकटायन तथा अमोघवर्षसे पहले राष्ट्रकूट राजा साहसतुंगके समयमें हुए हैं, अत एव यह निश्चय है कि अकलकदेवने जो ' दिदादि ' सूत्रका प्रमाण दिया है, यह जैनेन्द्रके सूत्रकी ही लक्ष्य करके दिया है। शाकटायनक सूत्रकी लक्ष्य करके नहीं। इससे यह सिद्ध हुआ कि शाकटायन जैनेन्द्रसे पीछेका बना हुआ है। अर्थात् जैनेन्द्र वि० सं० ८५० से भी पहले बन चुका था।

२) वामनप्रणीत लिङ्गागनुशासन नामका एक ग्रन्थ अभी हाल ही तायकवाड ओरियंटल सोसैटीमें प्रकाशित हुआ है। इसका कर्ता पं० वामन राष्ट्रकूट राजा जगत्तुंग या गोविन्द तृतीयके समयमें गुहा है और इस राजाने शक ७८६ ते ७३६ (वि० ८०१—८७१) तक राज्य किया है। यह ग्रन्थ कर्ता नीचे लिखे पद्यमें जैनेन्द्रको उल्लेख करता है—

यादिप्रणतमय वाररव सवान्
जैनेन्द्रलक्षणत विविध तथान्यत् ।

लिङ्गस्य लक्ष्म ही समस्य विनेपयुक्तः ।

मुक्त गया परिमितं विदग्धा द्वायाः ॥ ३१ ॥

इससे भी सिद्ध होता है कि वि० सं० ८५० के लगभग जैनेन्द्र प्रख्यात व्याकरणोंमें गिना जाता था। अतएव यह इस समयसे भी पहलेका बना हुआ होना चाहिए।

३) हरिवंशपुराण शक संवत् ७०५ (वि० सं० ८२०)-का बना हुआ है। इस समय यह समाप्त हुआ है। उस समय दक्षिणमें राष्ट्रकूट राजा कृष्ण (शुभतुंग या साहसतुंग) का पुत्र भ्रावह्म (गोविन्दराज द्वितीय) राज्य करता था। इस राजाने शक ६९७ ते ७०० तक [वि० ८३२ से ८४०] तक राज्य किया है। इस हरिवंशपुराणमें पूज्यपाद या देवनन्दिकी प्रशंसा इस प्रकार की गई है

व ह दचन्द्रार्कजैनेन्द्रव्यापि (दि) व्याकरणेक्षणः ।

देवस्य देववन्द्यस्य न नदते गिरः नद्यम् ॥ ३१ ॥

यह बात निस्सन्देह होकर कही जा सकती है कि जैनेन्द्रव्याकरणके कर्ता देवनन्दि वि० सं ८०० से भी पहलेके हैं।

४) उपर बतलाया चुका है कि तरुणार्थराजवार्तिकमें जैनेन्द्र व्याकरणके एक सूत्रका हवाला दिया गया है। इसी तरह " सर्वादि सर्वनाम " [१-१-३५] सूत्र भी जैनेन्द्रका है, और उसका उल्लेख राजवार्तिक अध्याय १ सूत्र ११ की व्याख्यामें किया गया है। इससे सिद्ध है कि जैनेन्द्र व्याकरण राजवार्तिकसे पहलेका बना हुआ है। राजवार्तिकके कर्ता अकलकदेव राष्ट्रकूट राजा साहसतुंग-जिराफा वुसरा नाम शुभतुंग और कृष्ण भी हैं—की सम्मान गये थे, इसका उल्लेख ध्रुवधर्मलोलकी महर्षिधर्मप्रशस्तिमें किया गया है, और साहसतुंगने शक संवत् ६७५ से ६९७ [वि० सं० ८१० से ८३२] तक राज्य किया है। यदि राजवार्तिकको हम इस राजाके ही समयका बना हुआ मानें, तो भी जैनेन्द्र वि० सं ८०० से पहलेका बना हुआ सिद्ध होता है।

१ देव देवान्द्रका ही सक्षिप्त नाम है। मन्त्रार्णवचन्द्रिकामें १-४-११४ सूत्रकी व्याख्यामें लिखा है— " देवेश समनेकमेव व्याकरणम् । "

उक्त प्रमाणोंसे यह तो निश्चय हो गया कि जैनेन्द्रके कर्ता विक्रम सं० ८०० से पहले हुए हैं। परन्तु यह निश्चय नहीं हुआ कि कितने पहले हुए हैं। इसके लिए आनेके प्रमाण देखिए।

५—मर्कटा (कुर्य) में एक बहुत ही प्राचीन ताम्र-पत्र मिला है। यह शक संवत् ८८ (वि० सं० ५२३) का लिखा हुआ है। उस समय गंगवंशीय राजा

अविनीत राज्य करता था। अविनीत राजाका नाम भी इस लेखमें है। इसमें कुन्दकुन्दान्वय और देशीयगणके मुनियोंकी परम्परा इस प्रकार दी हुई है:— गुणचन्द्र—अभयनन्दि—शीलभद्र—जाननन्दि—

गुणनन्दि और वदननन्दि। पूर्वोक्त अविनीत राजाके बाद उसका पुत्र दुर्धनीत राजा हुआ है। हिस्त्री

याफ कनडी लिटरेचर नामक अंगरेजी ग्रन्थ और 'कर्नाटककविचरित्र' नामक कनडी ग्रन्थके अनु-

सार इस राजाका राज्यकाल ई० सन ४८२ से ५१२ (वि० ५३९—६९) तक है। यह कनडी भाषाया

कवि था। भारविके किरातार्जुनीय काव्यके १५ वें सर्गकी कनडी टीका इसने लिखी है। कर्नाटक-

कविचरित्रके कर्ता लिखते हैं कि यह राजा पूज्य पाद यतीन्द्रका शिष्य था। अतः पूज्यपादको हमें

विक्रमकी छठी शताब्दिके प्रारंभका ग्रन्थकर्ता मानना चाहिए। मर्कटाके उक्त ताम्रपत्रसे भी यह

बात पुष्ट होती है। वि० संवत् ५२३ में अविनीत राजा था। इसके १६ वर्ष बाद वि० सं० ५३९, में उसका पुत्र दुर्धनीत राजा हुआ होगा, अतएव उ-

सका जो राज्यकाल बतलाया गया है, वह अग्रज्य ठीक होगा। और जिन वदननन्दिके समय उक्त ताम्रपत्र लिखा गया है, समयतः उन्हींकी शिष्य

परम्परामें श्रद्धा उन्हींके शिष्य या प्राशिष्य जैनेन्द्रके कर्ता देवनन्दि या पूज्यपाद होंगे। क्योंकि ताम्रपत्र की मुनिपरम्परामें नन्द्यन्त नाम ही अधिक है, और

इसका भी नाम नन्द्यन्त है। इतना ही नहीं बल्कि इनके शिष्य वज्रनन्दि का नाम भी नन्द्यन्त है। अतः जयन्त कोई प्रमाण इसका विरोधी न मिले,

१ इन्डियन एन्डियरी, जिन्द १, पृष्ठ ३६३-६५ और एपिग्राफिका कर्नाटिका, जिन्द १ का पृष्ठ ६८ । २ आर. नरसिंहाचार्य, २५० १० एन ।

तबतक हमें देवनन्दि को कुन्दकुन्दान्वय और देशीयगणके आचार्य वदननन्दि का शिष्य या प्रशिष्य माननेमें कोई दोष नहीं दिखता। उनका समय विक्रमकी छठी शताब्दिका प्रारंभ भी प्रायः निश्चित समझना चाहिए।

६—इस समयकी पुष्टिमें एक और भी अच्छा प्रमाण मिलता है। वि० सं० ९१० में बने हुए 'द. शनसार' नामक प्राकृत ग्रन्थमें लिखा है कि पूज्यपादके शिष्य वज्रनन्दिने वि० सं० ५२६ में दक्षिण मधुरा या मधुरामें द्राघिउसवकी स्थापना की:—

सिरीपुजपादपासां दधिदुषपस काणो दुगे ।

णामणे वज्रपदी पाहुदवेदी महासचो ॥

पंचसए छत्तीसे विज्रमरायस मरणपत्तरस ।

दधिलेखमहुराजादो दाविदसंगो महाभोहो ॥

इससे भी पूज्यपादका समय घड़ी छठी शताब्दिका प्रारंभ निश्चित होता है।

प्रो० पाठके प्रमाण।

सुप्रसिद्ध इतिहासक पं० कर्दामाथ बापूजी पाठकने अपने शाकटायन व्याकरणसम्बन्धी लेखमें कुछ प्रमाण ऐसे दिये हैं जिनसे ऐसा भाल होता है कि जैनेन्द्रके समयका माना अन्तिम निर्णय हो गया। इन प्रमाणोंको भी हम अपने पाठकोंके सम्मुख उपस्थित कर देना चाहते हैं, परन्तु साथ ही यह भी कह देना चाहते हैं कि ये प्रमाण जिस नवीन ढङ्गे किये गये हैं, उसमें कुछ भी द्रम नहीं है। जैसा कि हम पहले सिद्ध कर चुके हैं जैनेन्द्रका असली सूत्रपाठ वही है जिसपर अभयनन्दि की महावृत्ति रची गई है। परन्तु पाठक महोदयने जितने प्रमाण दिये हैं, वे सब शब्दार्णवचन्द्रिकाके सूत्रपाठको असली जैनेन्द्रसूत्र मानकर दिये हैं, इस कारण वे तथ्यतक माया नहीं हो सकने जयन्त कि पुष्ट प्रमाणोंसे यह सिद्ध नहीं कर दिया जाय कि शब्दार्णवचन्द्रिका का पाठ ही ठीक है और इसके विरुद्धमें दिये हुए हमारे प्रमाणोंका पूरा पूरा खण्डन न कर दिया जाय।

१—जैनेन्द्रका एक सूत्र है—“हस्तादेयेन्यस्ते-
ये चेः” [२-३-३६]। इस सूत्रके अनुसार ‘चि’
का ‘चाय’ हो जाता है, उस अवस्थामें जब कि
हाथसे ग्रहण करने योग्य हो, उत उपसर्गके बाद न
है और चोरी करके न लिया गया हो। जैसे ‘पुण्य
प्रचायः’। हस्तादेय न होनेसे पुण्यप्रचय, उत उपसर्ग
होनेसे ‘पुण्योच्य’ और चोरी होनेसे ‘पुण्यप्रचय’
होता है। इस सूत्रमें उत उपसर्गके बात जो ‘चाय’
होनेका निषेध किया गया है, वह पाणिनिमें, +
उसके धातुकर्म और भाष्यमें भी नहीं है। परन्तु
पाणिनि की काशिकाधृतिमें ३-३-४० सूत्रके व्या-
ख्यानमें है—“उच्यस्य प्रतिषेधो षक्यः।” इस-
से सिद्ध होता है कि काशिकाके कर्त्ता धामन और
जयादित्यने इसे जैनेन्द्रपरसे ही लिया है और
जयादित्य की मृत्यु वि० सं० ७१७ में हो चुकी थी
ऐसा चिनी यात्री इतिहासने अपने यात्राविवरणमें
लिखा है। अतः जैनेन्द्रव्याकरण वि० सं० ७१७
से भी पहलेका बना हुआ होना चाहिए।

२—पाणिनि व्याकरणमें नीचे लिखा हुआ एक
सूत्र है—

“शारद्वस्तुनकदभीमिदं भृगुवत्सामायणे पु।”

४-१-१०२।

इसके स्थानमें जैनेन्द्रका सूत्र इस प्रकार है—

“शारद्वस्तुनकदभीमिदं भृगुवत्सामायणवृ-
गणन ह्यवशिष्टे।” ३-१-११४।

इसीका अनुकरणकारी सूत्र शाकटायनमें इस
तरह का है—

१ इन प्रमाणोंमें जहाँ जहाँ जैनेन्द्रका उल्लेख हो, वहीं वहाँ
शारदार्णव-चन्द्रिकाका सूत्रपठ समझना चाहिए। सूत्रोंके
मध्य भी उसीके अनुसार दिये गये हैं।

* ‘हस्तादेये’ हस्तेनादानेऽनुदि वाचि चिजो घन भवत्य-
तेये। पुण्यप्रचायः। हस्तादेय इति किं? पुण्यप्रचयं
करोति तद्विशेषः। अनुदाति किं? फलोच्यः। अल्लय
इति किं? फलप्रचयं करोति चौर्येण (शारदार्णव-चन्द्रिका
पृष्ठ ५९)

+ पाणिनिका सूत्र इस प्रकार है—“हस्तादाने चैरस्तेये”
(३-३-४०)

“शारद्वस्तुनकदभीमिदं भृगुवत्सामायणे पु।”
शाकटायनके सूत्र २-४-३६।

इस सूत्रकी अमोघवृत्तोंमें

“आभिर्गम्यो यो वारिगण्यः। आभिर्गमिन्त्यः।”

इस तरह व्याख्या की है।

इन सूत्रोंसे यह बात मालूम होती है कि पाणि-
निमें ‘वारिगण्य’ शब्द सिद्ध नहीं किया गया है
जब कि जैनेन्द्रमें किया गया है। ‘वारिगण्य’ सांध्य
कारिकाके कर्त्ता ईश्वरकृष्णका दूसरा नाम है और
सुप्रसिद्ध चीनी विद्वान् डा० टंकुरुकुके मतानुसार
ईश्वरकृष्ण वि० सं० ५०७ के लगभग विद्यमान थे।
इससे निश्चय हुआ कि जैनेन्द्रव्याकरण ईश्वरकृष्ण-
के बाद—वि० सं० ५०७ के बाद और काशिकासे
पहले—वि० सं० ७१७ से पहले—किसी समय
बना है।

३—जैनेन्द्रका और एक सूत्र है—“गुरुदयाद्
भायुकेऽद्वे” (३-२-२५)। शाकटायनने भी इसे
अपना २-४-२२४ वां सूत्र बना लिया है। हेमच-
न्द्रने थोडासा परिवर्तन करके “उदितगुरोर्मा-
युक्तेऽद्वे” (६-२-२५) बनाया है। इस सूत्रमें द्वादश-
वर्षात्मक बहिर्स्पष्ट संवत्सरपञ्चतिका उल्लेख किया

१ इस संवत्सरका उत्पत्ति बृहस्पतिकी गति परसे हुई है,
इस कारण इसे बहिर्स्पष्ट संवत्सर कहते हैं। जिस समय
यह मालूम हुआ कि नक्षत्रमण्डलमेंसे बृहस्पतिकी एक
प्रदक्षिणा लगभग १२ वर्षमें होती है, उसी समय इस संव-
त्सरकी उत्पत्ति हुई होगी, ऐसा जान पड़ता है। जिस तरह-
सूर्यकी एक प्रदक्षिणाके फलका एक सौर वर्ष और उससे
१२ वर्ष भागकी मास कहते हैं, उसी तरह इस पद्धतिमें सूर्यके
प्रदक्षिणा कालको एक गुरुवर्ष और उसके लगभग १२ वर्ष
भागकी गुरुमास कहते थे। सूर्यसाभिध्यके कारण गुरु वर्षमें
कुछ दिन अस्त रहकर जिस नक्षत्रमें उदय होता है, उसी
नक्षत्रके नाम गुरुवर्षके मासोंके नाम रखे जाते थे। ये
सूर्यके मास वस्तुतः सौर वर्षोंके नाम हैं, इस कारण इन्हें
‘संवत्सर’, वैशाख संवत्सर आदि कहते थे। इन पद्धति-
को अच्छी तरह समझनेके लिए स्वर्गोपमं संस्करणमालङ्करण
दीक्षितका “भारतीय ज्योतिःशास्त्राचा इतिहास” और
डॉ० फ्लीटके “ग्रह संस्करण” में इन्हें दीक्षित महारा-
जों अंगरेजों निबन्ध पढ़ना चाहिए।

गया है। यह पद्धति प्राचीन गुप्त और कदम्बवंशी राजाओंके समय तक प्रचलित थी, इसके कई प्रमाण पाये गये हैं। प्राचीन गुप्तोंके शक सन् ३७७ में ४५० [वि० सं० ४५४ से ५८०] तक तक के पाँच ताम्रपत्र पाये गये हैं। उनमें चैत्रादि संवत्सरोंका उपयोग किया गया है और इन्हीं गुप्तोंके समकालीन कदम्बवंशी राजा सृगेश्वरमर्कित ताम्रपत्रों में भी पाँच संवत्सरका उल्लेख है। इससे मालूम होता है कि इस ग्रहस्पति संवत्सरका सबसे पहले उल्लेख करनेवाले जैनेन्द्रव्याकरणके कर्त्ता हैं और इसलिये जैनेन्द्रकी रचना का समय ईस्वी सन्की पाँचवीं शताब्दीके उत्तरार्ध (विक्रमकी छठी शताब्दीका पूर्वार्ध) के लगभग होना चाहिए। यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि जैनेन्द्रकी रचना ईश्वरकृष्णके पहले अर्थात् वि० सं० ५०७ के पहले नहीं हो सकती, क्योंकि उसमें पार्यगण्यका उल्लेख है।

पाठक महाशयने इन प्रमाणोंमें 'हस्तादेवेनु-यस्तेये च', 'शरद्वच्छुनकदर्भाभिर्दामकृष्णरणात् भृगुयत्साप्रायणवृषगणग्राहणवसिष्ठे' और 'गुरु-दयाद् भाग्येन्द्रे' सूत्र दिये हैं, परन्तु ये तीनों ही जैनेन्द्रके असली सूत्रपाठमें इन रूपोंमें नहीं हैं, अतएव इनसे जैनेन्द्रका समय किसी तरह भी निश्चिन नहीं हो सकता है।

हाँ, यदि जैनेन्द्रकी कोई स्थय देवचन्द्रिकृत वृत्ति उपलब्ध हो जाय, जिसके कि होनेका हमने अनुमान किया है, और उसमें इन सूत्रोंके विषयकी प्रतिपादन करनेवाले वार्तिक आदि मिल जाय—मिल जानेकी सम्भावना भी बहुत है—तो अवश्य ही पाठक महाशयके ये प्रमाण बहुत ही उपयोगी सिद्ध होंगे।

पाठक महाशयके इन प्रमाणोंके ठीक न होने पर भी दर्शनसारके और मर्कराके ताम्रपत्रके प्रमाणसे यह बात लगभग निश्चित ही है कि जैनेन्द्र विक्रमकी छठी शताब्दीके प्रारंभ की रचना है।

जैनेन्द्रोक्त अन्य आचार्य ।

पाणिनि आदि वैयाकरणोंने जिस तरह अपनेसे पहलेके वैयाकरणोंके नामोंका उल्लेख किया है उसी तरह जैनेन्द्रसत्रोंमें भी नीचे लिखे आचार्योंका उल्लेख मिलता है—

१-याद भूतबलेः । ३-४८३ ।

२-गुणे श्रीदत्तस्याक्रियाम् । १-६-३४ ।

३-कगपिठवा यशोभद्रस्य । २-१-९९ ।

४-रात्रेः रुतिप्रभाचन्द्रस्य । ४-३-१८० ।

५-वत्से सिद्धसेनस्य । ५-१-७ ।

६-चतुर्थय समस्तभद्रस्य । ५-४-१४० ।

जहाँ तक हम जानते हैं, उक्त छहों आचार्य ग्रन्थकर्त्ता तो हो गये हैं, परन्तु उन्होंने कोई व्याकरण ग्रन्थ भी बनाये होंगे, ऐसा विश्वास नहीं होता। जान पड़ता है, पूर्वाक्त आचार्योंके ग्रन्थोंमें जो जुदा जुदा प्रकारके शब्दप्रयोग पाये जाते होंगे उन्हींको व्याकरणसिद्ध करनेके लिए ये सब सूत्र रचे गये हैं। इन आचार्योंमेंसे जिन जिनके ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उनके शब्दप्रयोगोंकी बारीकीके साथ जाँच करनेसे इस बातका निर्णय हो सकता है। आशा है कि जैन समाजके पण्डित गण इस विषयमें परिश्रम करनेकी कृपा करेंगे।

१ भूतबलि । इनका परिचय इन्द्रनन्दिकृत

धृतावतार कथामें दिया गया है। भगवान् महावीरके निर्वाणके ६८३ वर्ष बाद तक अगज्ञानकी प्रवृत्ति रही। इसके बाद विनयधर, श्रीदत्त, शिवदत्त, और अर्हदत्त नामके चार आरातीय मुनि हुए जिन्हें अंग और पूर्वके अंशोंका ज्ञान था। इनके बाद अर्हद्वलि और माघनन्दि आचार्य हुए। इन्हें उन अंशोंके भी कुछ अंश ज्ञान रहा। इनके बाद धरसेन आचार्य हुए। इन्होंने भूतबलि और पुष्पदन्त नामक दो मुनियोंको विधिपूर्वक अध्ययन कराया और इन दोनोंने महाकर्मप्रकृतिप्राभृत या पद्मकण्ड नामक शास्त्रकी रचना की। यह ग्रन्थ ३६ हजार श्लोक प्रमाण है। इसके प्रारंभका कुछ भाग पुण-

१ सभवतः यह ग्रन्थ मूढविद् (मंगलोर) के जैन-
पंडित नौजद है।

दन्त आचार्यका और शेष भूतबालिका वनाया हुआ है। वीरनिर्वाणसत्र ६८३ के बाद पूर्वोक्त समय आचार्य क्रमसे हुए, या अक्रमसे, और उनसे बीचमें कितना कितना समय लगा, यह जाननेका कोई भी साधन नहीं है। यदि हम इनके बीचका समय २५० वर्ष मान ले तो भूतबालिका समय वीरनिर्वाण सत्र ९३३ (शक संवत् ६२८ वि० सं० ४६३) के लगभग निश्चित होता है। और इस हिसाबसे वे पृथ्वीपाद स्वामांसे कुछ ही पहले हुए ह, ऐसा अनुमान होता है।

२ श्रीदत्त । विक्रमकी ९ वां शताब्दिके सुप्रसिद्ध लेखक विद्यानन्दन अपने तत्त्वार्थशोकवार्तिकमें श्रीदत्तके 'जल्पनिर्णय' नामक ग्रन्थका उल्लेख किया है—

द्विप्रकार जगौ जल्प तथ-प्रतिभगचाम् ।

त्रिपथैर्वादिनां जेता धादत्तो जल्पनिर्णय ॥

इससे मालूम होता है कि ये १३ धादियोंके जीतनेवाले बड़े भारी तार्किक थे। आदिपुराणके कर्ता जिनसेनसूत्रिने भी इनका स्मरण किया है और इन्हें धादिगजांका प्रमेदन करनेके लिए सिद्ध बतलाया है—

श्रीदत्ताय नमस्तस्मै तयः प्रादीतमूर्तये ।

कण्ठीरवायित येन प्रवादीभप्रमेदने ॥ ४५

वीरनिर्वाण संघत ६८३ के बाद जो ४ आरातीय मुनि हुए हैं, उनमें भी एक का नाम श्रीदत्त है। उनका समय वीरनिर्वाण सं० ७०० (शक सं० ९५-वि० सं० २३०) के लगभग होता है। यह भी संभव है कि आरातीय श्रीदत्त दूसरे हों और जल्प निर्णयके कर्ता दूसरे। तथा इन्हीं दूसरेका उल्लेख जनेन्द्रमें किया गया है।

३ यशोभद्र । आदिपुराणमें सम्भवत इन्हीं यशोभद्रका स्मरण करने हुए कहा है—

१ ध्रुवोक्तधारके कर्ता 'नेमिचन्द्र' ने और हरिवेश-पुराणके कर्ताने धार निवोण १०५ वर्ष बाद शककाल माना है। उन्हाकी गणनाके अनुसार हमने यहा शक संवत् दिया है।

विदुर्गणेषु ससत्सु यस्य नामापि कीर्तितम् ।

निर्वर्णयति तद्वर्गं यशोभद्रः स पातु न ॥ १६

इनके विषयमें और कोई उल्लेख नहीं मिला और न यही मालूम हुआ कि इनके वनाये हुए काल कौन ग्रन्थ है। आदिपुराणके उक्त श्लोकसे तो वे तार्किक ही जान पड़ते हैं।

४ प्रभाचन्द्र । आदिपुराणमें न्याय कुमुदचन्द्रोदयके कर्ता जिन प्रभाचन्द्रका स्मरण किया है, उनसे ये पृथक् और पहलेके मालूम होते हैं। नयाँ कि चन्द्रोदयके कर्ता अकलङ्कभट्टके समयमें हुए हैं, इस लिए उनका जिहा जनेन्द्रमें नहीं हो सकता। मालूम नहीं, ये प्रभाचन्द्र किस ग्रन्थके कर्ता हैं और कब हुए हैं।

५ सिद्धसेन । ये सिद्धसेन दिषाकरके नामसे प्रसिद्ध हैं। ये बड़े भारी तार्किक हुए हैं। स्वर्गायि डा० सतीशचन्द्र विद्याभूषणका जयाल था कि वि-क्रमकी समाके 'क्षपणक' नामक रत्न यही थे। आदिपुराणमें इनका कवि, और प्रधादिगजकेसरी कहकर और हरिवेशपुराणमें सूक्तियोंका कर्ता कहकर स्मरण किया है। न्यायावतार, सम्मतितर्क, कल्याणमन्दिरस्तोत्र और २० धार्मिशिकायें (स्तुतियाँ) इनकी उपलब्ध हैं। यदि विक्रमका समय ईसाकी छठी शताब्दी माना जाय-जैसा कि प्रो० मोक्षमूलर आदि मानते हैं-तो सिद्धसेन इसी समय में हुए हैं और लगभग यही समय जनेन्द्रके वननाका है। *

६ समन्तभद्र । दिगम्बर सम्प्रदायके ये बहुत ही प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं। यीसों दिगम्बर ग्रन्थकारोंन इनका उल्लेख किया है। ये बड़े भारी तार्किक और कवि थे। इनका गृहस्थावस्थाका नाम यमें था। ये फणिमण्डल (?) के उरगपुर-नरेशके

* सिद्धसे ईश्वरी ६ ठी शताब्दीसे बहुत पहले हो गये हैं। क्योंकि विक्रमकी ५ वां शताब्दीमें हो जाने वाले आचार्य महापादोंने सिद्धसेनके सम्मतितर्क ऊपर टीका किया थी। हमार विचारमें सिद्धसेन विक्रमकी प्रथम शताब्दिमें हुए हैं।

पुत्र थे। इनके बनाये हुए देवायम (आन्तमीमांसा), युक्त्यनुशासन, बृहत्सयंभूस्तोत्र, जिन शतक और स्तनकरण्ड धायकाचार ये ग्रन्थ छप चुके हैं। हरिवंशपुराणमें इनके एक 'जीवसिद्धि' नामक ग्रन्थका उल्लेख मिलता है। परम्पण्डुओंके पहले पांच गण्डोंपर भी इनकी बनाई हुई ४८ हजार श्लोक प्रमाण संस्कृत टीकाका उल्लेख मिला है। आवश्यक्सूत्रकी मलयागिरिकृत टीकामें 'आध-स्तुतिकारोऽप्याह' कहकर इनके स्वयंभू स्तोत्रका एक पद्य उद्धृत किया है। इससे मालूम होता है कि ये सिद्धसेनसे भी पहले के ग्रन्थकर्ता हैं। क्यों कि सिद्धसेन भी स्तुतिकारके नामसे प्रसिद्ध है। अभी तक इन दोनों ही आचार्योंका समय निर्णय नहीं हुआ है।

पूज्यपादके अन्य ग्रन्थ ।

जैनेन्द्रके सिवाय पूज्यपादस्वामीके बनाये हुए अथवा केवल तीन ही ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं और ये तीनों ही छप चुके हैं:-

१—सर्वार्थसिद्धि । दिगम्बर सम्प्रदायमें आचार्य उमास्वातिरुत तत्त्वार्थसूत्रकी यह सबसे पहली टीका है। अन्य सब टीकायें इसके यादकी हैं और ये सब इसको आगे रख कर लिखी गई हैं।

२—समाधिस्तोत्र । इसमें लगभग १०० श्लोक हैं, इस लिए इसे समाधिशतक भी कहते हैं। अध्यात्मका पटुत ही गंभीर और तात्त्विक ग्रन्थ है। इस पर कई संस्कृत टीकायें लिखी गई हैं।

३—इष्टोपदेश। यह केवल १० श्लोकप्रमाण छोटो-

सा ग्रन्थ है और सुन्दर उपदेशपूर्ण है। ५० आशा-धरने इसपर एक संस्कृत निबन्ध लिखा है।

इनके सिवाय कहा जाता है कि इनके बनाये हुए और भी कई ग्रन्थ हैं। सर्वार्थसिद्धिकी भूमिकामें श्रीयुत पं० कलापा निटवेने लिखा है कि चिकित्सा-शास्त्रपर भी पूज्यपादस्वामीके दो ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, जिनमेंसे एकमें चिकित्साका और दूसरेमें औषधों तथा धान्योंका गुणनिरूपण है। परन्तु पण्डितश्री महाशयने न तो उक्त ग्रन्थोंका नाम ही लिखा है और न यही लिखनेकी कृपा की है कि वे कहाँ उपलब्ध हैं। शुभचन्द्राचार्यरुत ज्ञानार्णवके नीचे लिगे श्लोकके 'काय' शब्दसे भी यह बात ध्यानित होती है कि पूज्यपादस्वामीका कोई चिकित्सा ग्रन्थ है:-

अथादुर्नित यद्वाचः क यवावचित्तसंभयम् ।

कलद्रुक्मद्दिनां सोय देवतन्दी नमस्यते ॥

पूनेके भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूटमें 'पूज्य-पादकृत वैद्यक' नामका एक ग्रन्थ है। यह भाषा-निक कनडीमें लिखा हुआ कनडी भाषाका ग्रन्थ है। पर इसमें न तो कहीं पूज्यपादका उल्लेख है और न यही मालूम होता है कि यह उनका बनाया हुआ होगा।

विजयनगरके हरिहरराजाके समयमें एक मंग-राज नामका कनडी कवि हुआ है। वि० सं० १४१६ के लगभग उसका अस्तित्व काल है। स्वाधर विषोंकी प्रक्रिया और चिकित्सापर उसने खगेन्द्रमणिदर्पण नामका एक ग्रन्थ लिखा है। इसमें यह आपकी पूज्यपादका शिष्य बतलाता है और यह भी लिखता है कि यह ग्रन्थ पूज्यपादके वैद्यक ग्रन्थसे संगृहीत है। इससे मालूम होता है कि पूज्यपाद नामके एक विद्वान् विक्रमकी तरहवीं शताब्दिमें भी हो गये हैं और लोग भ्रमचरा उन्हींके वैद्यक ग्रन्थको जैनेन्द्रके कर्ताका ही बनाया हुआ समझकर उल्लेख कर दिया करते हैं।

वृत्तविलास कविकी कनडी धर्मपरीक्षाका जो पद्य पहले उद्धृत किया जा चुका है उसमें दो ग्रन्थोंका और भी उल्लेख है, एक पाणिनिव्याक-

१ लेखक महाशयके इस कथनमें कि, समन्तभद्र सिद्धसेनसे भी पहले हुए हैं, कोई प्रमाण नहीं है। हमारे विचारसे सिद्धसेन समन्तभद्रके पुरोगामी हैं। इस विषयके विशेष विचार जाननेके लिये, इस पत्रके प्रथम अंशमें प्रकाशित 'सिद्धसेन दिवाकर और स्वयं समन्तभद्र' शीर्षक हमारा लेख देखना चाहिए।

रणकी टीकाका और दूसरा यंत्रमंत्रविषयक शास्त्रका । पूज्यपादद्वारा पाणिनिकी टीकाका लिखा जाना अशंभव नहीं है, परन्तु साथ ही वृत्तविलास को पूज्यपादके 'जिनेन्द्रवृद्धि' नामसे भी यह भ्रम हो गया हो तो आश्चर्य नहीं । क्यों कि पाणिनिकी काशिका वृत्तिपर जो न्यास है उसके कर्त्ताका भी नाम 'जिनेन्द्रवृद्धि' है। इस नामसाम्यसे यह समझ लिया जा सकता है कि पूज्यपादने भी पाणिनिकी टीका लिखी है । न्यासकार 'जिनेन्द्रवृद्धि' वास्तवमें श्रीलभिक्षु थे और ये अपने नामके साथ 'श्री श्रीलभिक्षुदेशीयाचार्य' इस याज्ञ पदवीको लगाने हैं । पूज्यपादके कनडी चरित लेखकने लिखा है कि पाणिनि पूज्यपादके मामा थे और पाणिनिके अधूरे ग्रन्थको उन्होंने ही पूर्ण किया था; परन्तु इस समय ऐसी बातोंपर विश्वास नहीं किया जा सकता ।

'जैनाभिषक' नामक एक और ग्रन्थका जिकर "जैनेन्द्र निजशब्दभागमतुलं" आदि श्लोकमें किया गया है । यह श्लोक उपरपृष्ठ ६५ में दिया जा चुका है । जहाँ तक हमारा खयाल है जैनाभिषेक और यंत्रमंत्रविषयक ग्रन्थ भी अन्य किसी पूज्यपादके बनाये हुए होंगे और भ्रमसे इनके समझ लिये गये होंगे ।

कनडी पूज्यपादचरितमें पूज्यपादके बनाये हुए अर्हन्वर्तिष्ठालक्षण और शान्म्यष्टक नाम स्तोत्रका भी जिकर है ।

पूज्यपाद-चरित ।

अन्य घड़े घड़े आचार्योंके समान पूज्यपादके जीवनसम्बन्धी घटनाओंसे भी हम अपरिचित हैं । उनके जाननेका कोई साधन भी नहीं है । सिवाय इसके कि ये एक समर्थ आचार्य थे और हमारे उपकारके लिए अनेक ग्रन्थ बनाकर रख गये हैं, उनका कोई इतिहास नहीं है । आगे हम एक कनडी भाषाके पूज्यपाद-चरितका सारांश देते हैं, जिससे उन लोगोंका मनोरंजन अवश्य होगा, जो अपने प्रत्येक महापुरुषका जीवनचरित-वाहे घढ़ कैसा ही हो-पढ़नेके लिए उत्कण्ठित रहते हैं । विद्वान् पाठक इसमें यह समझ सकेंगे कि

सत्यताकी जरा भी परवा न करनेवाले और साम्प्रदायिकताके मोहमें बहनेवाले लेखक किस-तरह तिलका ताड़ बनाते हैं ।

इस चरितको चन्द्रय्य नामक कविने दुःपम कालके परिधावी संवत्सरकी आश्विन शुक्ल ५, शुक्रवार, तुलालग्रामे समाप्त किया है । यह कवि कर्नाटक देशके मलयनगरकी 'ब्राह्मणगली' का रहने-वाला था । वत्सगोत्री और सूर्यवंशी ब्राह्मण धम्मणाके दो पुत्र हुए सातप्पा हुव्व ब्रह्मरस और विजयप्पा । विजयप्पाके ब्रह्मरस और ब्रह्मरस के देवप्पा हुआ । इसी देवप्पाकी कुसुमम्मा नामक पुत्रीसे कवि चन्द्रय्य का जन्म हुआ था ।

चरितका सारांश यह है:—

"कर्नाटक देशके 'कोले' नामक ग्रामके माधव-भट्ट नामक ब्राह्मण और श्रीवेची ब्राह्मणीसे पूज्यपादका जन्म हुआ । ज्योतिषियोंने बालकको त्रिलोकपञ्च यतलाया, इस कारण उसका नाम पूज्यपाद रखा गया । माधवभट्टने अपनी स्त्रीके कहनेसे जैनधर्म स्वीकार करलिया । भट्टजीके सालेका नाम पाणिनि था, उसे भी उन्होंने जैनी बननेको कहा, परन्तु प्रतिष्ठाके खयालसे वह जैनी न होकर मुडी-गुंडग्राममें वैष्णव संन्यासी हो गया । पूज्यपादकी कमलिनी नामक छोटी बहिन हुई, वह गुणभट्टको ब्याही गई । गुणभट्टको उससे नागार्जुन नामक पुत्र हुआ ।

पूज्यपादने एक बगीचेमें एक सांपके मुँहमें फंसे हुए मेंडकको देखा । इससे उन्हें घेराव्य हो गया और वे जैन साधु बन गये ।

पाणिनि अपना व्याकरण रच रहे थे । वह पूरा न होने पाया था कि उन्होंने अपना मरणकाल निरुद आया जान लिया । इससे उन्होंने पूज्यपाद से जाकर कहा कि इसे आप पूरा कर दीजिए । उन्होंने पूरा करना स्वीकार कर लिया ।

पाणिनि दुर्धर्मान्वश मरकर सर्प हुए । एक बार उसने पूज्यपादको देखकर क्रुत्कार किया, इसपर पूज्यपादने कहा, विद्वत्तास रखो, मैं तुम्हारे व्याकरणको पूरा कर दूंगा । इसके बाद उन्होंने पाणिनि व्याकरणको पूरा कर दिया ।

इसके पहले वे जैनेन्द्र व्याकरण, अहं प्रतिष्ठा लक्षण, और वैद्यक ज्योतिष आदिके कई ग्रन्थ रच चुके थे ।

गुणभट्टके मर जानेसे नागार्जुन अतिशय दरिद्री हो गया । पूज्यपादने उसे पञ्चावतीका एक मंत्र दिया और सिद्ध करनेकी विधि बतला दी । पञ्चावतीने नागार्जुनके निकट प्रकट होकर उसे सिद्ध रसकी धनस्पाणि बतला दी ।

इस सिद्धरससे नागार्जुन सोना बनाने लगा । उसने गर्जना परिहार करनेके लिए पूज्यपादने एक मामूली धनस्पातिले कई घड़े सिद्धरस बना दिया । नागार्जुन जब पर्वतोंको सुगन्धमय बनाने लगा, तब घरणेन्द्र-पञ्चावतीने उसे रोका और जिनालय बनानेको कहा । तदनुसार उसने एक जिनालय बनाया और पादरत्नाधकी प्रतिमा स्थापित की ।

पूज्यपाद पेरोंमें गगनगामी लेप लगाकर विदेह-क्षेत्रको जाया करते थे । उस समय उनके शिष्य वज्रनन्दिने अपने साथियोंसे झगडा करके ब्राह्मिड सघर्षी स्थापना की ।

नागार्जुन अपने मंत्र तन्त्र तथा रसादि सिद्ध करके बहुत ही प्रसिद्ध हो गया । एकबार दो सुन्दरी स्त्रियाँ आई जो गाने नाचनेमें कुशल थीं । नागार्जुन उनपर मोहित हो गया । वे वहीं रहने लगीं और एक दिन अचानक पाकर उसे मारकर और उसकी रसगुटिका लेकर चली गयी ।

पूज्यपाद मुनि बहुत समयतक योगाभ्यास करते रहे । फिर एक देवके विमानमें बैठकर उन्होंने अनेक तीर्थोंकी यात्रा की । मार्गमें एक जगह उनकी दृष्टि नष्ट हो गई थी, सो उन्होंने एक शान्त्यष्टक बनाकर ज्योंकी त्यों कर दी । इसने बाद उन्होंने अपने प्राममें आकर समाधिपूर्ण मरण किया ।

इस लेखके लिखनेमें हमें श्रद्धेय मुनि जिनजिजयजी और पण्डित चरदास जीराजजीसे बहुत अधिक सहायता मिली है । इस लिए हम उन दोनों सज्जनोंसे प्रति दृढज्ञता प्रकट करते हैं । मुनिमहोदयकी कृपासे हमको जो इस लेख सम्बन्धी सामग्री प्राप्त हुई है, वह यदि न मिलती तो

यह लेख शायद ही इस रूपमें पाठकोंके सम्मुख उपस्थित हो सकता ।

पुना—भाद्रकृष्ण ६ सं० १९७७ त्रिभूमीय

परिशिष्ट ।

[भगवद्भागवतदिनीका विशेष परिचय]

इसके प्रारम्भमें पहले 'लक्ष्मीरासन्तिकी यस्य' आदि प्रसिद्ध भगलाचरणका श्लोक लिखा गया था । परन्तु पीछेसे उसपर हस्ताल फेर दी गई है और उसकी जगह यह श्लोक और उत्थानिका लिख दी गई है—

आ नमः पार्श्वाय ।

त्वारतमग्निमदुतामत्रितेनाद्रुतात्मा

विपनमपि मघोना वृद्धता शब्दशास्त्रम् ।

धुतमदरिपुरासीद वादिवृन्दापणीना

परमपदपदुर्ध्व स धिये वीरदेव ।

अष्टवर्षिर्लोडपि तथावधमन्त्रात्-पर्यन्ताप्रमुक्तः स भगवा निदं प्राह-सिद्धिरनेकान्तात् । १-१ ।

इसके बाद सूत्रपाठ शुरू हो गया है । पहले पत्रके ऊपर मार्जिनमें एक टिप्पणी इस प्रकार दी है जिसमें पाणिनि आदि व्याकरणोंकी अप्रामाणिक ठहराया है ।

“प्रमाणपद-यामुपेक्षणायाणि पाणिन्यादिप्रणीतानि स्वात्कारवादिप्रवृत्तानि गिरिजाकादिभाषितवत् । अप्रामाणानि च कपोलक-पनामलिनानि हीनसामृत्वात्तद्वदेव ।”

इसके बाद प्रत्येक पादके अन्तमें ओर आदिमें इस प्रकार लिखा है जिससे इस सूत्रपाठके भगवन्पणीत होनेमें कोई सन्देह बाकी न रह जाय—

“इति भगवद्भागवदित्यां प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ।

अनन्तः पार्श्वाय । स भगवानिदं प्राह ।”

सर्वत्र 'नमः पार्श्वाय' लिखना भी हेतुपूर्वक है । जब ग्रन्थकर्ता स्वयं महावीर भगवान् हैं तब उनके ग्रन्थमें उनसे पहलेके तीर्थंकर पार्श्वनाथको ही नमस्कार किया जा सकता है । देखिए, कितनी दूरतकका विचार किया गया है ।

आगे अध्याय २ पाद २ के 'सहस्रचक्राफोरे' (६४) सूत्रपर निम्न प्रकार टिप्पणी दी है और इससे

सिद्ध किया है कि यदि यह व्याकरण भगवद्भूत न हो तो फिर सिद्धहैमने अमुरु सूत्रकी उपपत्ति नहीं धेट सकती !—

“इदं शास्त्रमुशासन भगवत्कर्तृकमेव भवति । ‘सहवह-
चरयापतेरिधानंरुसजनेमे किंलिद्धं चवन्-डीं सासहिवायाहिचा-
चलिपापति, ससिचयिदधिजज्ञिनेमीति सिद्धहैमसूत्रस्याऽ-
न्यथानुपपत्तेः । सर्ववर्षपाणि न्योस्तु । ‘आदवर्णोपयोगेपिनी
विद्वेत् १, आदवमहनजन फिपिनी लिद्धं चेत् २ ।”

इसके बाद ३-२-२५ सूत्रपर इस प्रकार टिप्पणी दी है—

“कथं न यथः प्राग्भावेत्यदि । क्षेत्रादिनिर्यापि शिक्षाविज्ञेयाः ।

सुमारशब्दः प्राचयानामादिबन मासूत्रवचना ।

मधुमे तु भिन्नतैत्रे वाचकं मनुसामिव ॥

इत्यान्यथानुपपत्तेरिति यौटिगतिमिरोपलक्षणम् ।

इसके बाद ३-४-४२ सूत्र (स्तेयार्हत्य) पर फिर एक टिप्पणी है । देखिए—

“इदं शास्त्रमुशासन भगवत्कर्तृकमेव भवति । अर्हत्य
स्तोन्त १, महायाद्वा २, सासंभगेमृदुताय ३, स्तेनान्न
लुक् चे ४, ति पिद्धहैमसूत्रान्यथानुपपत्तेः । गणिन्यादी-
नाहृत्यशब्द प्रति मृदाभागात् । यथ सरस्वतीवृद्धाभरणे
तदासिः ? ऐन्द्रागुषारदहृतशब्दतथोति पश्य ।”

फिर ३-४-४० सूत्र (रात्रे प्रभाचन्द्रस्य) पर एक टिप्पणी है । इसमें यौटिगों या दिगम्बरियों का सरकार किया गया है—

“इदं शास्त्रमुशासनं भगवत्कर्तृकमेव भवति । रात्रेः प्रभाच-
न्द्रस्य सूत्रस्य प्रक्षेपता स्फुटत्वात् । अतो बौटिकतिमिरेप
लक्षणे—

देवनन्दिमता मोह प्रशेपरज्योति चेत् ।

चिराय भवता रात्रे प्रभाचन्द्रस्य जीव्यता ॥

योत्तरः य स्थावनांशः प्रभेदो नम यस्य यः(?) ।

विस्मयो रमयोः श्लेषा य त चेदेवनन्दिनामिति ॥

विक्रमादनुश्रुत्याग्ने ४०६ देवनन्दी, ततो गुणनंदि क्रमा-
नदि लोचनान्तेतर मुनिरेशुगाग्ने प्रथम. प्रभाचद्र इति
बोटिके ।”

१ यह ‘यौटिगमत्ततिमिरोपलक्षण’ नामका कोई ग्रन्थ
है और सम्भवतः इसी वाग्वादिनाके तर्तिका बनाया हुआ
होगा । इनका पता लगानेकी यही जरूरत है । इससे दि-
गम्बर और स्वेताम्बर सम्प्रदायसम्बन्धी अनेक बातों पर
प्रकाश पड़ेगा ।

इसी तरह ४-३७ (घेत्तः सिद्धसेनस्य) सूत्र
पर लिखा है—

“घेत्तः सिद्धसेनस्य, चतुर्थ्य समतमदस्य प्रक्षेपेऽन्वयता
स्फुटत्वात्, गते प्रभाचन्द्रस्य मदिति बोटिकतिमिरोप-
लक्षणे ।”

अन्तमें ५-४-६५ (दाष्ट्योमि) सूत्रपर एक टि-
प्पणी दी है जिसमें पाणिनि आदि द्रव्याकरणोंकी अ-
सर्वश्रुता सिद्ध की गई है—

“प्रयोगाज्ञातना माभूदनादासद्धा हि प्रयोगाः । हानिना
तु केवल ते प्रकाश्यते न तु किर्यत इति । अतएव दाष्ट्योमि
पाणिनीयवृष्यं वर्षप्रथमन्यः नाना न्यरयवरपरः स्यात् १४-
कार नञान सर्ववर्षकर्तृकहालापः यत्रानुसारि । अतएव पाणि-
न्यादयोऽसर्वश्रुः इति सिद्धं । अतएव तेषा तत्त्वत आसत्त्वाभा-
व इति सिद्धिः । नन्त्याः प्रयुक्तिमितत निर्जसंभुम्याः यदि यु-
क्तित्वे मरुकारणैव भवत्कृतमाप्ते न तु सारस्वतवाग्देव्या ।
दाष्ट्योदिप्रमर्शः सुर्वस्वतश्चश्रुप्राप्तिः दाष्ट्या कालापापुपजीवी
पाणिनिरजिनन्त्यं प्रति नाव्यक्तः ।”

जहाँ सूत्रपाठ समाप्त होता है, वहाँ लिखा हैः—

इत्यान्यद्भगवानर्हन्भुत्वेन्द्रस्तु मुदं बहन् ।

वाग्दवप्राज्जचन्द्रः स्वभावेराभिमुनोऽभवत् ॥

आगे ग्रन्थ प्रशस्ति देखिए—

“धा नमः सकलकलाःकालपेशलशीलशक्तिने पा-
र्याय पार्ष्वापार्याय । हरति तत्प्रयचनमुषाममुद्रलहरिनायि-
नो मृदामुनिन्यः । परिभ्रमासं जैकेन्द्र नाम महाव्याकरण ।
तदिदं वास्तव्य श्रीवीरप्रभुमधोने पृच्छते प्रकाश्याचकार । सपा-
दलक्षकामायानकपरमतमदायकगपदार्परममिति । नम
श्रीमचन्द्र परमेश्वरपादप्रवादविशदस्यादादनयसमुपासनगुणको-
टिमत्कोटिऽगणायिर्भूतिर्चिन्मृति चेमलमद्रवादबुलविलुप्तवृहत्त-
पोनिगमनिर्गतनागपुरीयस्वचउगच्छसमुत्पत्त्यपार्थचंद्रा-
सामुत्पत्तातुसुक्तिविरामदवपाप्यायचारचरणारविंदरजोराजी-
मयुक्तासुक्ताचनपदवीपविजिताक्षयचंद्रवर्णेभ्यः ससुधी
रक्तचंद्रम् । श्रीवीरात् २०६७ विक्रमतृपात् स. १७९७
कात्पुनचित्पुनबोदशभौमे तक्षकान्यपरस्थने रत्नपिंगा दर्श-
नपावि याग लिखत विरं नयार ।”

ग्रन्थके पहले पत्रकी रगली पीठभर भी कुछ
टिप्पणियाँ हैं और उनमें अधिकांश वे ही हैं जो
ऊपर दी जा चुकी हैं । शेष इस प्रकार हैंः—

आ नमः पादत्रय ।

जेनेन्द्रमेन्द्रत सिद्धहमतो जयहेमवत् ।

प्ररुत्यतद्रुत्वास्त्रान्यनामेतुमिति ।

कथ

इदंशब्दः कः शिरुस्त्रापिसली शाकटायनः ।

पाणिन्यमरजिनेन्द्र जयंयष्टा हि शाब्दिकाः ॥

इति ? चतुर्था तद्धितानुसङ्गणात् ।

यदिदाय जिनेन्द्रेण कौमारपि निरूपित ।

एदं जैनेन्द्रमिति नत्वाहुः शब्दानुज्ञासनं ।

यदावश्यकानिर्गुणैः-

अहं तं अस्मादिभरो जाणित्ता अहियअट्ठास तु ।

कयकोअलकार ल्हार्यरिअस्स उवर्णित्ति ॥

सज्जो अ तस्समत्ता भयवत्तं अ सगे निवेसित्ता ।

सहसलत्तल्लः पुच्छे वागरण अययवा इदं ॥ इति ॥

तदवयवा, केचन उपाध्यायेन ग्रह्यताः । ततश्चेन्द्रं

व्याकरणं सजातामात हविशद्भः ।

यथु देवनिदिबौटिक पूज्यपाद इताच्छतस्तदुगुका

पूज्यपादस्य कक्षण ।

द्विषधानकथः काव्य रत्नत्रयमपथिवमम् ।

इति धनजयके पाददुपु । नेति चैरकथ जैनेन्द्रमिति । द्वादशा-

स्वरमध्यामिति चेत् । इतरोपपदस्याभावात् । जैनकुमारसभ

यद्गतिरिति चेत् । कुमारवादिदं प्राति अपाभावात् धारयति कृतत-

द्धितभावाच्च । तर्हि

लक्ष्मीरार्थतिका यस्य निरवयवावभासने ।

देयनीदितपूजरो नमस्तस्यै स्वयंभुवे ।

का गतिरिति चेत् ।

लक्ष्मीरार्थतिकापयमुद्देशस्य कितरां ।

ऐन्द्रत्वयकि तत्तार्यो मोक्षमार्गस्य पश्यत् ॥^१

मिवादयथेत्प्रथम यदि हेमेत्वपेक्षते ।

कालापकादि न तथा पट्ट्वैन्द्रं महते कृतिः ॥

पूर्वतः । सिप् नस् अस् १ सिप् धस् थ २ तिप् तस् सि

३ इह वदि मदि १ यस् आयां ध्व २ त आताम् शब्द

३ इति ।

आख्यातरीतिं प्रति दयराज

मिद्वस्मयो यः पित रदितादा ।

जीवं प्रपन्नहृमसाथ विदं

तत्त्वादिस स्वा मतिमारमनाथ ॥^२

तर्हि सिद्धसेनादिविशेषापि दुर्निवार इति चेत् ।

जातामात्रोपि चिद्वार्य प्रस्थात्मकारणोऽपि यः ।

जनता वा वराकाय परास्मन् धीर तरुः ॥

इति बौटिकमततिमिरोपलक्षणस्य सुयुक्ताकाशे । इक्षजिने-

द्रो प्रयुक्तरिणी यदतो टे- टातद्धिततत्पर्यमासमिद्विहीरेयम-

द्रेद जैनेन्द्र व्याकरणानां । सिद्धिमनेकातादित्वां अःXएXपाई

खतधारीते हेमानीकृतवर्मन्प्रक्षेपार्थविजेशचिरजीया इति

प्रसन्न चंद्रोपले (?) ।

१ इसके आगे ४-३-७ सूत्रों टिप्पणा जैसा ही जिला

हे और फिर १-४-४० सूत्रों की टिप्पणों के 'देवनन्दिमता'

आदि दो श्लोक दिये हैं ।

२ इसके आगे ५-४-६५ सूत्रों की टिप्पणी दी है ॥

गंधहस्तिमहाभाष्यकी खोज

और

आत्ममीमांसा (देवागम) की स्वतंत्रता ।

[लेखक—श्रीधुन बाबू जूगलकिशोरजी, मरुनार ।]

पता जाता है कि भगवान् श्रीसमन्तभद्राचार्यने तत्त्वार्थसूत्र पर 'गंधहस्ति महाभाष्य' नामके एक महान् ग्रंथकी रचना की थी। जिसकी श्लोक-संख्याका परिमाण ८४ हजार है। यह ग्रंथ भारतके किसी भी प्रसिद्ध भंडारमें नहीं पाया जाता। विद्वानोंकी इच्छा इस ग्रंथराजको देखनेके लिये वहाँ ही प्रबल है। चम्पईके सुप्रसिद्ध सेठ श्रीमान् माणिकचंद हीराचंदजी जे० पी० ने इस ग्रंथरत्नका दर्शन मात्र करानेवालेके चारने ५०० रुपयेका नकद पारितोषिक भी निकाला था। परंतु वेद है कि कोई भी उनका इस इच्छाको पूरा नहीं कर सका और वे अपनी इस महती इच्छाको हृदयमें रखते हुए ही इस संसारसे कृप कर गये। निःसन्देह जैनाचार्योंमें स्वामी समन्तभद्रका आसन बहुत ही ऊँचा है। वे एक बड़े ही अपूर्व और अद्वितीय प्रतिभाशाली आचार्य हो गये हैं। उनका शासन महावीर भगवान्के शासनके तुल्य समझा जाता है और उनकी आत्ममीमांसादिक कृतियोंको देखकर बड़े बड़े वादी विद्वान् चकित होते हैं। ऐसी हालतमें आचार्य महाराजकी इस महती कृतिके लिये जिसका मंगलाचरण ही आत्ममीमांसा (देवागम) कहा जाता है, यदि विद्वान् लोग उत्कण्ठित और लालायित हो तो इसमें कुछ भी आश्चर्य और अस्वाभाविकता नहीं है। और यही कारण है कि अभी तक इन ग्रंथरत्नकी खोजका प्रयत्न जारी है और अब विदेशोंमें भी उसकी तलाश की जा रही है। हालमें कुछ समाचारपत्रों द्वारा यह प्रकट

हुआ था कि पना लायब्रेरीकी किसी सूची परसे आस्ट्रिया देशका एक नगरकी लायब्रेरीमें उक्त ग्रंथके अस्तित्वका पता चलता है। साथ ही, उसकी कापी करनेके लिये दो एक विद्वानोंको वहाँ भेजने और खर्चके लिये कुछ चढ़ा एकत्र करनेका प्रस्ताव भी उपस्थित किया गया था। हम नहीं कह सकते कि ग्रंथके अस्तित्वका यह समाचार कहाँ तक सत्य है और इन बातका यथोचित निर्णय करनेके लिये अभी तक क्या क्या प्रयत्न किया गया है। परंतु इतना जरूर कहेंगे कि बहुतसे 'भंडारोंकी सूचियों' अनेक स्थानों पर सम्पूर्ण पाई जाती हैं। पूना लायब्रेरीकी ही सूचीमें सिद्धसेन विद्याकरके नामसे 'वादिगजगंधहस्तिन्' नामके एक महान् ग्रंथका उल्लेख मिलता है जो यथार्थ नहीं है। वहाँ इस नामका कोई ग्रंथ नहीं। यह नाम किसी दूसरे ही ग्रंथके स्थान पर गलतीसे दर्ज हो गया है। ऐसी हालतमें केवल सूचीके आधार पर आस्ट्रिया जैसे सुदूरदेशकी यात्राके लिये कुछ विद्वानोंका निकलना और भारी खर्च उठाना युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता। बेहतर तरीका, इसके लिये, यह हो सकता है कि वहाँके किसी प्रसिद्ध फोटोग्राफरके द्वारा उक्त ग्रंथके आद्यतके १०-२० पन्नोंका फोटो पहले भेगाया जाय और उन परसे यदि यह निर्णय हो जाय कि वास्तवमें यह ग्रंथ पही महाभाष्य ग्रंथ है तो फिर उसके शेष पन्नोंका भी फोटो आदि भेगा लिया जाय। अस्तु। ग्रंथके वहाँ अस्तित्व विषयमें अभी तक हमारा कोई विश्वास नहीं है।

आस्ट्रियाके एक प्रसिद्ध नगरकी प्रसिद्ध लायब्रेरी में उक्त ग्रंथ मौजूद हो और हमें जैकोबी जैसे खोजी विद्वानोंको उसका पता तक न लगे, यह बात कुछ समझमें नहीं आती। हमें इस ग्रंथके विषयमें यह बात भी बहुत खटकती है कि 'आप्त भीमांसा' अर्थात् 'देवागम' शास्त्रकी, जो कुल ११४ श्लोकपरिमाण है, इसका मंगलाचरण बनला या जाता है। देवागम भारतके प्रायः सभी प्रसिद्ध भंडारोंमें पाया जाता है। उस पर अनेक टीका, टिप्पण और भाष्य भी उपलब्ध हैं। अकलंकदेवकी 'अष्टशती' और विद्यानंद स्वामीकी 'अष्टसहस्री' उसीके भाष्य और महाभाष्य हैं। जिस ग्रंथका मंगलाचरण ही इतने महत्त्वकी लिये हुए हो वह शेष संपूर्ण ग्रंथ कितना महत्त्वशाली होगा और विद्वानोंने उसका कितना अधिक सग्रह किया होगा, इसके बनलानेकी जरूरत नहीं है। भिन्न पाठक सहजहीमें इसका अनुमान कर सकते हैं। परंतु तो भी ऐसे महान ग्रंथका भारतके किसी भंडारमें अस्तित्व न होना, उसके शेष अंशोंपर टीका-टिप्पणका मिलना तो दूर रहा उनके नामोंकी कहीं चर्चातक न होना, यह सब कुछ कम आश्चर्यमें डालनेवाला बातें नहीं हैं। और इनपरसे तरह तरहके विचार उत्पन्न होते हैं। यह कयाल पैदा होता है कि क्या समन्तभट्टने 'गन्धहस्तिमहाभाष्य' नामका कोई ग्रंथ बनाया ही नहीं और उनकी आप्तभीमांसा (देवागम) एक स्वतंत्र ग्रंथ है? यदि बनाया तो क्या वह पूरा हो सका और आप्तभीमांसा तक ही बनकर रह गया? यदि पूरा हो गया था तो क्या फिर बन कर समाप्त होते ही किसी कारण विशेषसे यह नष्ट हो गया? यदि नष्ट नहीं हुआ तो क्या फिर प्रचलित सिद्धांतोंके विरुद्ध उसमें कुछ ऐसी बात थी जिनके कारण वादके आचार्यों खासकर भट्टारकोंको उसे लुप्त करनेकी जरूरत पड़ी यद्यपि वादका उसके नष्ट हो जानेका कोई दूसरा ही कारण है? इन सब चिकल्पांकी छोड़कर अभी तक हमें यह भी मालूम नहीं हुआ कि, १ समन्तभट्टने 'गन्धहस्तिमहाभाष्य' नामका कोई ग्रंथ बनाया है, २ वह उमास्वातिके तराथ सूत्रका भाष्य है, ३ उसकी श्लोकसंख्या ८४ हजार

है और 'देवागम' स्तौन उसका अदिम भाग-चरण है इन सब बातोंकी उपलब्धि कहासे होती है-कौनसे प्राचीन अचार्यके किस ग्रंथमें इन सब बातोंका पता चलता है? यह दृष्टिगत है कि आजकलके अच्छे अच्छे विद्वान्-न सिर्फ जैन विद्वान बल्कि सत्ताशचंद्र विद्याभूपति, भारती जैसे अजैन विद्वान भी-अपने अपने ग्रंथों तथा लेखोंमें इन सब बातोंका उल्लेख करते हुए देखे जाते हैं। परंतु ये सब उल्लेख एक दूसरेकी देवादर्शों में परस्पर विरोध उत्पन्न करते हैं। इसी प्रकारके कुछ उल्लेख पिछले भाष्यादिनामों में पाये जाते हैं। इन सब आधुनिक उल्लेखोंसे इस विषयका कोई ठोका निर्णय नहीं हो सकता। और न हम उन्हें पढ़ा हो लतमें बिना किसी हेतुके प्रमाणोंपरिमाण रख सकते हैं। हमारी रायमें इन सब बातोंके निर्णयार्थ विद्वानोंके समाधानार्थ अंतरंग खाजकी बहुत बड़ी जरूरत है। हमें सबसे पहले-विदेशोंमें जानेसे भी पहले-अपने घरके साहित्यको गहरा दृष्टीगोचर होना, तब कहीं हम यथार्थ निर्णय पर पहुंच सकेंगे। अस्तु।

इस विषयमें हमने आजतक जो कुछ खोज की है और उसके द्वारा हमें जो कुछ मालूम हो सका है उसे हम अपने पाठकोंके विचारार्थ और यथार्थ निर्णयकी सहायतार्थ नीचे प्रकट करते हैं -

१-उमास्वातिके तराथसूत्रपर सवार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्रेयस्वार्तिक और श्रुतसागरी नामकी जो टीकाएँ उपलब्ध हैं उनमें, जहां तक हमारे देखनेमें आया कहीं भी 'गन्धहस्ति महाभाष्य' का नामोल्लेख नहीं है और न इसी बातका कोई उल्लेख पाया जाता है कि समन्तभट्टने उक्त तराथसूत्रपर भाष्य लिखा है। समन्तभट्टका अस्तित्वकाल इन सब टीकाओंके बनेसे पहले माना जाता है। यदि इन टीकाओंके रचयिता पूज्यपाद, अकलंक देव, विद्यानन्द और श्रुतसागरके समयोंमें समन्तभट्टका उसी सूत्रपर ऐसा कोई महत्त्वशाली भाष्य विद्यमान होता तो उक्त टीकाकार किसी न किसी रूपमें इस बातको सूचित जरूर करते, ऐसा हृदय कहता है। परंतु उनके टीकाग्रन्थोंसे ऐसी कोई

पाई जाती। प्रत्युत, श्रुतसागरसूरिने अपने अध्य-
यन विषयक अथवा टीकाके आधार विषयक जिन
प्रधान ग्रन्थोंका उल्लेख अपनी टीकाकी संधियोंमें
किया है उनमें साफ तौरसे श्लोकवार्तिक और
सर्वाधिसिद्धिका ही नाम पाया जाता है, गन्धहस्ति-
महाभाष्यका नहीं। यदि ऐसा महान् ग्रन्थ उन्हें
उपलब्ध होता तो कोई चजह नहीं थी कि वे उस-
का भी साथमें नामें लेख न करने।

२—आप्तमीमांसा (देवागम) पर, जिसे गन्ध-
हस्तिमहाभाष्यका मंगलाचरण कहा जाता है, इस
समय तीन संस्कृत टीकाएँ उपलब्ध हैं। एक 'वसु-
नन्दिवृत्ति', दूसरी 'अष्टशती' और तीसरी 'अष्टसहस्री'
इनमेंसे किसी भी टीकामें गन्धहस्ति महाभाष्यका
कोई नाम नहीं है, और न यही कहीं सूचित किया
है कि यह आप्तमीमांसा ग्रन्थ गन्धहस्ति महाभा-
ष्यका मंगलाचरण अथवा उसका प्राथमिक
अंश है। किसी दूसरे ग्रन्थका एक अंश होनेकी
छातमें ऐसी सूचनाका किया जाना बहुत कुछ
स्यामाधिक था।

३—श्रीइन्द्रनन्दि आचार्यके बनाये हुए श्रुता-
घटार 'ग्रन्थमें भी समन्तभद्रके साथ, जहाँ कर्म-
प्राभूतपर उनकी ४८ हजार श्लोकपरिमाण एक
सुन्दर संस्कृत टीकाका उल्लेख किया गया है वहाँ
गन्धहस्ति महाभाष्यका कोई नाम नहीं है। बल्कि
इतना प्रकट किया गया है कि वे दूसरे सिद्धान्त
ग्रन्थ (कपाय प्राभूत) पर टीका लिखना चाहते
थे परंतु उनके एक सधर्मी साधुने द्रव्यादिशुद्धि-
पर प्रयत्नके अभावसे उन्हें ऐसा करनेसे रोक
दिया। बहुत संभव है कि इसके बाद उनके द्वारा
कोई बड़ा ग्रन्थ न लिखा गया हो।

४—अथयणेल्लुके जितने शिलालेखोंमें समन्त-
भद्रका नाम आया है उनमेंसे किसीमें भी आचार्य
महोदयके नामके साथ 'गन्धहस्ति महाभाष्य' का
उल्लेख नहीं है। और न यही लिखा मिलता है कि
उन्होंने तत्त्वार्थसूत्र पर कोई टीका लिखी है। हाँ,
उनके शिष्य शिवकोटि आचार्यके सम्बन्धमें इतना
कथन जरूर पाया जाता है कि उन्होंने तत्त्वार्थ-
सूत्रको अलंकृत किया, अर्थात् उसपर टीका लिखी
(देखो शिला लेख नं० १०५)

५—ग्रलनेमिदत्तने आगधना कथाकोशमें सम-
न्तभद्रको एक कथा दी है परंतु उसमें उनके किसी
भी गन्धहस्तिमहाभाष्यके नामकी कोई उपलब्धि
नहीं होती।

६—संस्कृत प्राचूनके और भी बहुतसे उपलब्ध
ग्रन्थ जो देखनेमें आये और जिनमें किसी न किसी
रूपसे समन्तभद्रका स्मरण किया गया है उनमें
भी हमें स्पष्टरूपसे कहीं गन्धहस्ति महाभाष्यका
नाम नहीं मिला। और दूसरे अनेक विद्वानोंसे जो
इस विषयमें दूर्युक्त किया गया तो यही उत्तर
मिला कि गन्धहस्ति महाभाष्यका नाम किसी प्रा-
चीन ग्रन्थमें हमारे देखनेमें नहीं आया, अथवा हमें
कुछ याद नहीं है।

७—ग्रन्थके नाममें 'महाभाष्य' शब्दसे यह
सूचित होता है कि इस ग्रन्थसे पहले भी तत्त्वार्थ-
सूत्रपर कोई भाष्य विद्यमान था जिसकी अपेक्षा
इसे 'महाभाष्य' संज्ञा दी गई है। परंतु दिग्गम्बर
साहित्यसे इस बातका कहीं कोई पता नहीं चलता
कि समन्तभद्रसे पहले भी तत्त्वार्थसूत्र पर कोई
भाष्य विद्यमान था। रहीं श्वेताम्बर साहित्यकी
यात, सो श्वेताम्बर भई इस बातकी मानते ही हैं
कि उनका मौजूदा 'तत्त्वार्थधिगम भाष्य' स्वयं
उमास्वामिका बनाया हुआ है। परंतु उनकी इस
मान्यताको स्वीकार करनेके लिये अभी हम तैय्यार
नहीं हैं। उनका वह ग्रन्थ अभी विवादग्रस्त है।
उसके विषयमें हमें बहुत कुछ कहने सुननेकी जरू-
रत है। इस पर यदि यह कहा जाय कि बादकी
बने हुए भाष्योंकी अपेक्ष यह अधिक बड़ा होनेके कारण
उसे पछिसे महाभाष्य संज्ञा दी गई है तो यह मा-
नना पड़ेगा कि उसका असली नाम 'गन्धहस्ति
भाष्य' अथवा 'गन्धहस्ति' ऐसा कुछ था।

८—ऊपर जिन ग्रन्थोंका उल्लेख किया गया
है उनमें कहीं यह भी जिकर नहीं है कि समन्त-
भद्रने ८४ हजार श्लोकपरिमाणका कोई ग्रन्थ रचा
है और इस लिये गन्धहस्ति महाभाष्यका जो परि-
माण ८४ हजार कहा जाता है उसकी इस संख्याकी
भी किसी प्राचीन साहित्यसे उपलब्धि नहीं होती।

९—जय उमास्वामिके तत्त्वार्थसूत्रपर ८४ हजार

श्लोकपरिमाण एक महत्प्रशाली भाष्य पहलेसे मौजूद था तब यह बात समझमें नहीं आती कि सर्वार्थसिद्धि राजवार्तिक और श्लोकवार्तिकके बननेकी जरूरत ही क्या पैदा हुई। यदि यह कहा जाय कि ये ग्रन्थ गन्धहस्ति महाभाष्यका सार लेकर सक्षेपगचिवाले शिष्योंके वास्ते बनाये गये हैं तो यह बात भी कुछ यनती हुई मालूम नहीं होती क्या कि ऐसी हालतमें श्रीपूज्यपाद, अकल कदेव और विद्यानन्द स्वामी अपने अपने ग्रन्थोंमें इस प्रकारका कोई उल्लेख जरूर करते जैसा कि आम तौर पर दूसरे आचार्योंने किया है, जिन्होंने अपने ग्रन्थोंको दूसरे ग्रन्थोंके आधारपर अथवा उनका सार लेकर बनाया है। परन्तु चूं कि इनमें ऐसा कोई उल्लेख नहीं है इस लिये सर्वार्थसिद्धि आदि ग्रन्थ गन्धहस्तिमहाभाष्यके आधारपर बना उसका सार लेकर बनाये गये हैं ऐसा माननेको जी नहीं चाहता। इसके सिवाय अकलकदेव और विद्यानन्द का भाष्य वार्तिकके ढंगसे लिखे गये हैं। वे 'वार्तिक कहलाते भी हैं। और वार्तिकम उक्त, अनुक्त, दुरुक्त तीनों प्रकारके अर्थोंका विचारणा और अभिव्यक्ति हुआ करता है, जिससे उनका परिमाण पहले भाष्यसे प्रायः कुछ बढ़ जाता है। जैसे कि सर्वार्थसिद्धि राजवार्तिकका और राजवार्तिकसे श्लोकवार्तिकका परिमाण उदा हुआ है। ऐसी हालतमें यदि समन्तभद्रका ८४ हजार श्लोक सत्यावाला भाष्य पहलेसे मौजूद था तो अकल देव और विद्यानन्दके वार्तिकोंका परिमाण उससे जरूर कुछ बढ़ जाना चाहिये था। परन्तु उदना तो दूर रहा वह उलटा उससे कई गुणा घट रहा है। दोनों वार्तिकोंकी श्लोकसंख्याका परिमाण व मश १६ और २० हजारसे अधिक नहीं। ऐसी हालतमें कमसेकम अकल देव और विद्यानन्दके सम यमें गन्धहस्ति महाभाष्यका अस्तित्व स्वीकार करनेके लिये तो और भी हृदय तय्यार नहीं होता।

१०—जिस आत्ममीमासा (देवागम स्तोत्र) को गन्धहस्ति महाभाष्यका मंगलाचरण बतलाया जाता है उसकी आन्तिम कारिका इस प्रकार है—

इतीयमात्ममासा विविता हितमिच्छताम्।

सम्यग्मेध्यापदेशार्थविशेषप्रतिपत्तये ॥

यह कारिका जिस ढंग और जिस शैलीसे लिखी गई है और इसमें जो कुछ कथन किया गया है उससे आत्ममीमासाके एक विलकुल स्वतन्त्र ग्रन्थ होनेकी बहुत ज्यादा सम्भावना पाई जाती है। इस कारिकाको दत्ते हुए वसुनन्दी आचार्य अपनी टीकामें इस 'शास्त्रार्थापसहार कारिका' लिखते हैं साथ ही इस कारिकाकी टीकाके अन्तमें प्रथकर्ता भी समन्तभद्रका नाम दृष्टव्य 'निर्युद्धनचप्रानिह' इत्यादि विशेषणोंसे साथ देते हैं जिससे मालूम होता है कि इस कारिकाके साथ प्रथकी समाप्ति हो गई प्रथके अन्तगत किसी खास विषयकी नहीं। विद्यानन्दस्वामी अष्टसहस्रीमें, इस कारिकाके द्वारा 'प्रारम्भनिर्ग्रहण' (प्रारम्भ किये हुए कार्यकी परिसमाप्ति) आवधिकी सूचित करने हुए टीकामें लिखते हैं—

इति देवागमाय स्वकपाखण्डे द शब्दे ।

अत्र शब्दपरिग्रहात्

इन शब्दोंसे भी प्रायः यही व्यनित होता है कि देवागम मशख जो कि आत्ममीमासाके शुरुमें 'देवागम' शब्द होनेसे उसीका दूसरा नाम है एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है और उसकी समाप्ति इस कारिकाके साथ ही हो जाती है। तब यह किसी दूसरे ग्रन्थका आदिम अंश अथवा मंगलाचरण मालूम नहीं होता।

११—अकलकदेव अपनी अप्रशस्तीने जान भमें लिखते हैं—

योग्यै च ग्रन्थमनभद्रं ततो तस्मै तम वीतम्।

कृत्वा विनियतं स्वको भगवता देवागमस्य कृति ॥२१॥

वसुनन्दी आचार्य अपनी देवागमवृत्तिने

अन्तमें मन्त्रित करते हैं "श्रीसमन्तभद्राचार्यस्य

देवागमाख्याया वृत्ते सक्षेपभूत विवरण कृतम् ।

कर्नाटकदेशस्थ हुमचा जि० शिमोगाने

एक शिलालेखमें निम्न आशयका उल्लेख मि

लता है—

इत्यादि विवरण भाग १, अ १ पृष्ठ ४४५।

“अकलंकने समेतभद्रके देवागमपर भाष्य लिमा ।
आत्ममीमांसा प्रथको समदाकर चतल्लिवाले विधानं-
दिको नगोस्तु ।”

इन सब अवतरणोंसे भी प्रायः यही पाया जाता है कि समन्तभद्रका ‘देवागम’ उनकी एक पृथक् कृति अथवा स्वतंत्र ग्रंथ है ।

१२—श्रीशुभचंद्राचार्यविरचित पांडवपुराणका एक पद्य इस प्रकार है—

“समन्तभद्रं भद्रार्थो भातु भारतभूषणः ।

देवागमेन येनात्र ध्येका देवागमः कृतः” ॥ १५ ॥

इस पद्यके द्वारा ग्रंथकर्ता महाशय, स्वामी समन्तभद्रका ‘भारतभूषण’ आदि विशेषणोंके साथ स्मरण करते हुए, प्रकट करते हैं कि उन्होंने अपने देवागमशास्त्रके द्वारा (गंधहस्तिमहाभाष्य अथवा तत्त्वार्थसूत्रकी टीकाके द्वारा नहीं) जिनेंद्रदेवके आगम (जैनागम) को संसारमें ध्यक्त कर दिया है । इससे देवागमकी स्वयंत्रता और भी स्पष्ट शब्दोंमें उद्घोषित होती है और यह पाया जाता है कि संसारमें समन्तभद्रकी विशेष प्रसिद्धि का कारण भी उनका ‘देवागम’ ग्रंथ ही हुआ है । यदि यह देवागम कोई पृथक् ग्रंथ न होकर गंधहस्ति महाभाष्यका ही एक अंश—उसका केवल मंगलाचरण—होता तो कोई चजह नहीं थी कि उस महान् ग्रंथका कहीं नामोल्लेख न करके उसके केवल एक छोटेसे अंशका ही उल्लेख किया जाता । उस संपूर्ण ग्रंथके द्वारा तो और भी अधिकताके साथ जैनागम ध्यक्त हुआ होगा फिर उसका नाम क्यों नहीं ? और क्यों आम तौरपर देवागम अथवा आत्ममीमांसाका ही नामोल्लेख पाया जाता है ? जरूर इसमें कुछ रहस्य है और यह कमसे कम देवागमकी स्वतंत्रताका समर्थक जान पड़ता है ।

१३—श्रीवियानंदस्वामीने ‘युक्त्यनुशासन’ ग्रंथकी टीका लिखते हुए सबसे पहले उसकी उत्थानिकारूपसे यह वाक्य दिया है—

“श्रीसमन्तभद्रस्वामिभिरात्ममीमांसायामन्यये गन्धव-
ष्टेदाद् व्यवसायिनेन भगवता । धर्मादाहृतान्त्यतीर्थैकर-
परमदेवेन गोपक्षि । किं चिकीर्षवो भवन्त हात ते पृष्ठा
इव प्राहुः ।”

इसके बाद मूल ग्रंथका प्रथम पद्य उद्धृत किया है जो इस प्रकार है—

“आहं महत्वा भुवि वर्द्धमानं

तां वर्द्धमानं स्तुतिगोचरतम् ।

निर्गोपवः म्यो वयमयं वारं

विशोण्णदेवाशयपञ्चम्यम् ॥ १ ॥

अथहिमन् काले परीक्षावग नमस्ये ।”

वियानंदाचार्यके इस संपूर्णकथनसे मालूम होता है कि स्वामी समन्तभद्रने आत्ममीमांसा (देवागम) के अनन्तर ही—उक्त ग्रंथद्वारा अर्हन्तदेवकी परीक्षाके बाद ही—‘युक्त्यनुशासन’ ग्रंथकी रचना की है । यदि ‘देवागम’ को गंधहस्तिमहाभाष्यका एक अंग और उसका आदिम भाग माना जाय तो युक्त्यनुशासनको भी उक्त महाभाष्यका तदनन्तर अंग कहना होगा । परन्तु ऐसा नहीं कहा जाता । युक्त्यनुशासन समन्तभद्रका, महावीर भगवानकी स्तुतिको लिये हुए हितान्वेषणका उपाय प्रतिपादक एक स्वतंत्र ग्रंथ माना जाता है । नीचे के कुछ पद्यों और उनकी कथनशैलीसे भी प्रायः ऐसा ही आशय ध्वनित होता है—

“नराणां मोक्षे अयं भस्पाशच्छिद्रे मुने,

न च न्येषु देव दपगुणकृष्यान्वासरलता ।

किम् न्यायान्दायकृतगुणशोपज्ञमना,

हितान्वेषोपायस्तय गुणस्यासंगगतः” ॥ ६४ ॥

—युक्त्यनुशासन ।

“धर्मद्वाराजनेश्वरमलगुणमोक्षे परिक्षेपैः

साक्षात्स्वामिसमन्तभद्रगुणैस्तत्त्वं समीक्ष्यासितम् ।

श्रीकं युक्त्यनुशासने विजयिभिः स्याद्वाद्मागीश्वर-
विधानवदुत्तरैरुत्तरिदं श्रीसत्यवाक्यार्थिभिः ॥”

—टी० वियानंदस्वामी ।

“आवसिद्धिचि शयीह कृतयुक्त्यनुशासनम् ।

नचः समन्तभद्रस्य वीरस्यैव विज्ञाते ॥”

—हरिवंशे जिनसेनः ।

ऐसी हालतमें ‘देवागम’ को भी युक्त्यनुशासनके सदृश गंधहस्तिमहाभाष्यका कोई अंग न मान कर एक स्वतंत्र ग्रंथ कहना चाहिये ।

१४—श्रीधर्मभूषणयतिविरचित ‘न्यायदीपिका’ में, सर्वशकी सिद्धि करते हुए, आत्ममी-

मांसाका एक पद्य निम्न प्रकारसे उद्धृत किया हुआ मिलता है:-

“ तत्कं स्वानिभिर्महाभाष्यस्यादावाप्तमीमांसाप्रस्तावे सुमान्तरितदूरयो... । ”

इससे मालूम होता है कि स्वामी समन्तभद्र-प्रणीत 'महाभाष्य' की आदिमें आतमीमांसा नामका एक प्रस्ताव है। और सिर्फ यही एक उल्लेख है जो अभी तक हमें इस विषयमें प्राप्त हो सका है और जिससे प्रचलित प्रवादको कुछ आश्वासन मिलता है। यद्यपि इस उल्लेखमें 'गंधहस्ति महाभाष्य' ऐसा स्पष्ट नाम नहीं है, न इस 'महाभाष्य' को उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रका भाष्य प्रकट किया है, न यह ही सूचित किया है कि उसकी प्र. संख्या ८४ हजार श्लोक परिमाण है और इसलिये संभव है कि यह महाभाष्य समन्तभद्रका उपर्युल्लिखित, ४८ हजार श्लोक संख्याको लिये हुए, 'कर्मप्राप्तुं' सिद्धान्तवाला भाष्य हो अथवा कोई दूसरा ही भाष्य हो। और उसमें आचार्य 'प्रहो-दयने आद्यद्यकतानुसार, अपने आतमीमांसा ग्रंथको भी यतौर एक प्रस्तावके शामिल कर दिया हो, तो भी धर्मभूषणके इस उल्लेखसे प्रकृत गंधहस्ति महाभाष्यका आशय जरूर निकाला जा सकता है। परंतु जब हम इस उल्लेखको ऊपर दिये हुए संपूर्ण अनुसंधानोंकी रोशनीमें पढ़ते हैं और साथ ही, इस बातकी ध्यानमें रखते हैं कि धर्मभूषणजी विनामकी १५ वीं शताब्दीके विद्वान् हैं, तो ऐसा मालूम होता है कि यह उल्लेख उस वक्तके प्रचलित प्रवाद, श्लोकोक्ति अथवा दंतकथाओंके आधार पर ही किया गया है। वास्तविक तथ्यसे इसका प्रायः कोई सम्बन्ध नहीं। और न यह मानने अथवा कहनेका कोई कारण है कि धर्मभूषणजीने गंधहस्तिमहाभाष्यको स्वयं देवकार ही ऐसा उल्लेख किया है। यदि ऐसा होता तो रास गंधहस्तिमहाभाष्यका भी कोई मदत्त्वपूर्ण उल्लेख राजवार्तिकादि ग्रंथोंके स्थानोंमें अथवा उनके साथ जरूर पाया जाता। परंतु ऐसा नहीं है, न्यायदीपिकाओं दूसरी जगह भी आतमीमांसाका ही उल्लेख किया

गया है। वहाँ ऊपरके सदरा महाभाष्यादि शब्दों का प्रयोग भी नहीं है बल्कि बहुत सीधे सादे शब्दोंमें 'तद्वत्तासनीमांसाया १३ भिन्मंतभद्राचार्यः' ऐसा कहा गया है। धर्मभूषणजीके समयसे अवतक ऐसा कोई महान् विषय भी उपस्थित नहीं हुआ कि जिससे गंधहस्ति महाभाष्य जैसे ग्रंथका एकदम लोप होना मान लिया जाय। और यदि ऐसा मान भी लिया जाय तो उनसे पहले प्राचीन साहित्यमें उसके उल्लेख न होनेका कारण क्या दे, इसका संतोषजनक उत्तर कुछ भी मालूम नहीं होता। और इस लिये हमारी रायमें धर्मभूषणजीका उपर्युक्त उल्लेख प्रचलित प्रवादपर ही अवलम्बित है। प्रचलित प्रवादपर अक्सर उल्लेख हुआ करते हैं और ये बहुतसे ग्रंथोंमें पाये जाते हैं। आजकल भी, जब कि गंधहस्तिमहाभाष्यका कहीं पता नहीं और यह भी निश्चय नहीं कि किसी समय उसका अस्तित्व था भी या कि नहीं, बहुतसे अच्छे अच्छे विद्वान् अपने लेखों तथा ग्रंथोंमें गंधहस्ति महाभाष्यका उल्लेख परिचित अथवा निश्चित ग्रंथके तौर पर करते हैं, उसे तत्त्वार्थसूत्रकी टीका बतलाते हैं और उसके श्लोकोँकी संख्याका परिमाण तक देते हैं। यह सब प्रचलित प्रवादका ही गतीजा है। कभी कभी इस प्रचलित प्रवादकी धुनमें अर्धका अनर्थ भी हो जाता है, जिसका एक उदाहरण हम अपने पाठकोंके सामने नीचे रखते हैं—

उक्त न्यायदीपिकामें एक स्थानपर ये वाक्य दिये हैं:—

तद्विपरीतलक्षणा हि संशयः। यश्च जवातिराम् " अनेक-
वर्तिनिदिशतापर्वदासामकः संशयः, तद्विपरीतोऽप्रमदः " इति। भाष्ये च ॥ " संशयो हि निर्णयविरोधी नापमदः " इति।

पं० गूचचन्द्रजीने न्यायदीपिकापर लिखी हुई अपनी भाषाटीकामें, इन वाक्योंका अनुवाद देते हुए, 'भाष्य' शब्दसे 'गन्धहस्तिमहाभाष्य' का अर्थ सूचित किया है। अर्थात्, सर्वसाधारण पर यह प्रकट किया है कि संशयो हि निर्णयविरोधी नपव नमदः' यह वाक्य गन्धहस्तिमहाभाष्यका एक वाक्य है। टीकाके 'मंशोधनकर्ता' पं० गंधीध

शास्त्रीने भी उनकी इस बातको पास कर दिया है— अर्थात्, पुस्तकपर अपने द्वारा संशोधन किये जानेकी मुहर लगाकर इस बातकी रजिस्टरी कर दी है कि उक्त ग्रन्थ गन्धहस्तिमहाभाष्यका ही ग्रन्थ है। परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। यह ग्रन्थ राजवार्तिक भाष्यका ग्रन्थ है। राजवार्तिकमें 'अवग्रहेहावायधारणा' इस सूत्रपर जो १० वाँ वार्तिक दिया है उसीके भाष्यका यह एक ग्रन्थ है *। इस ग्रन्थसे पहले जो ग्रन्थ, 'यद्वाजवार्तिक' शब्दोंके साथ न्यायदीपिकाकी ऊपरकी पंक्तियोंमें उद्धृत पाया जाता है वह उक्त सूत्रका ९ वाँ वार्तिक है। दूसरे शब्दोंमें यों समझना चाहिये कि ग्रन्थकर्ताने पहले राजवार्तिक भाष्यका एक वार्तिक और फिर एक वार्तिकका भाष्यांश उद्धृत किया है, जिसको हमारे दोनों पंडित महान्यायोंमें नहीं समझा और न समझनेकी कोशिश की। उनका रामने मूल ग्रन्थमें 'गन्धहस्ति महाभाष्य' ऐसा कोई नाम नहीं था और यह हम

हैं। और इसलिये प्रायः उन सबकी जॉन्च अनेक मार्गों और अनेक पहलुओंसे होगी चाहिये। हर एक बातकी असलियतकी खोज निकालनेके लिये गहरे अनुसंधानकी जरूरत है। तभी कुछ यथार्थ निर्णय हो सकता है।

१५—ऊपर श्रुतावतारके आधारपर यह प्रकट किया गया है कि समन्तभट्टने 'कर्मप्राभृत' सिद्धान्तपर ४८ हजार श्लोक परिमाण एक सुन्दर संस्कृत टीका लिखी थी। यह टीका 'चूडामणि' नामकी एक कनड़ी टीकाके बाद, प्रायः उसे देखकर लिखी गई है। चूडामणि की श्लोकसंख्याका परिमाण ८३ हजार दिया है और वह उस कर्मप्राभृत तथा साथ ही, कपायप्राभृत नामके दोनों सिद्धान्तों पर लिखी गई थी। भट्टकलंकदेवने, अपने कर्नाटक शब्दानुशासनमें इस चूडामणि टीकाको 'तत्त्वार्थ महाशास्त्रकी व्याख्या' (तत्त्वार्थमहाशास्त्रव्याख्यानस्य*) 'चूडामण्यभिधानस्य महाशास्त्रस्य.. उपलभ्यमानत्वात्'।) लिखा है,

हो गया हो अथवा उनके शिष्य शिवकोटिने जो तत्त्वार्थसूत्रकी टीका लिखी है उसी परसे इस विषयमें उनके नामकी प्रसिद्धि हो गई हो। कुछ भी हो, यथार्थ वस्तुस्थितिकी खोज निकालनेकी बहुत बड़ी जरूरत है, जिसके लिये विद्वानोंको प्रयत्न करना चाहिये। अस्तु।

गन्धहस्तिमहाभाष्य और आसमीमांसाके सम्बन्धमें हम अपने इन अनुसंधानों और विचारोंकी विद्वानोंके सामने रखते हुए उनसे अत्यन्त नम्रताके साथ निवेदन करने हैं कि ये इन पर बड़ी शांतिके साथ गहरा विचार करनेकी कृपा करें और उसी याद हमें अपने विचारोंसे सूचित करके कृतार्थ बना दें। यदि हमारा कोई अनुसंधान अथवा विचार उन्हें ठीक प्रतीत न हो तो हमें युक्तिपूर्वक उससे सूचित किया जाय। साथ ही, जिन विद्वानोंकी किसी प्राचीन साहित्यसे गन्धहस्तिमहाभाष्यके नामादिक चारों बातोंमेंसे किसी भी बातकी कुछ उपलब्धि हुई हो, वे हम पर उसके प्रकट करनेकी उदारता दिखलायें, जिससे हम अपने विचारोंमें यथोचित फेरफार करनेके लिये समर्थ हो सकें, अथवा उसकी सहायतासे किसी दूसरे नवीन अनुसंधानको प्रस्तुत कर सकें। आशा है, विज्ञ पाठक हमारे इस समुचित निवेदनपर ध्यान देनेकी अवश्य कृपा करेंगे, और इस तरह एक ऐतिहासिक तत्त्वके निर्णय करनेमें सहयोगिताका परिचय देंगे।

अन्तमें हम अपने पाठकों पर इतना और प्रकट किये देते हैं कि इस लेखका कुछ भाग लिखे जानेके बाद हमें अपने मित्र श्रीयुत मुनि जिनविज यजी आदिके द्वारा यह मालूम करके बहुत अफसोस हुआ कि डेक्कन कालिज पूना लायब्रेरीकी

किसी सूचीके आधार पर एक पंडित महाशयने, समाजके पत्रोंमें, जो इस प्रकारका समाचार प्रकाशित कराया था कि, गन्धहस्तिमहाभाष्य आस्ट्रिया देशके अमुक नगरकी लायब्रेरीमें मौजूद है और इसलिये वहाँ जाकर उसकी कापी लानेके लिये कुछ विद्वानोंकी योजना होनी चाहिये, वह बिल्कुल उनका भ्रम और बेसमझीका परिणाम था। उन्हें सूची देखना ही नहीं आया। मूवीमें, जो किसी रिपोर्टके अन्तर्गत है, आस्ट्रियाके विद्वान् डाक्टर बुल्हर्ने कुछ ऐसे प्रसिद्ध जैनग्रंथोंके नाम, उनके कर्ताओंके नाम सहित प्रकट किये थे जो उपलब्ध हैं, तथा जो उपलब्ध नहीं हैं किन्तु उनके नाम सुने जाते हैं। समस्तभद्रका 'गन्धहस्तिमहाभाष्य' भी अनुपलब्ध ग्रंथोंमें था जिसका नाम सुनकर ही उन्होंने उसे अपनी सूचीमें दाखिल किया था। उसके सम्बन्धमें यह कहीं प्रकट नहीं किया गया कि यह अमुक लायब्रेरीमें मौजूद है। पंडितजीने इस सूचीमें गन्धहस्तिमहाभाष्यका नाम देख कर ही, बिना कुछ सोचे समझे, आस्ट्रिया देशके एक नगरकी लायब्रेरीमें उसके अस्तित्वका निश्चय कर दिया और उसे सर्व साधारण पर प्रकट कर दिया। यह कितनी भूलकी बात है! हमें अपने पंडितजीकी इस कार्य-यार पर बहुत नैर्द होता है जिसके कारण समाजकी व्यर्थ ही एक प्रकारके चक्करमें पड़ने और खंडा एकत्र करने-कराने आदिका कष्ट उठाना पड़ा। आशा है पंडितजी, जिनका नाम यहाँ देनेकी हम कोई जरूरत नहीं समझते, आगामीसे ऐसी मोटी भूल न करनेका ध्यान रखेंगे।

(जैन हिन्दी, भाग १५, अंक १ से उद्धृत ।)

तीर्थयात्राके लिये निकलनेवाले संघोंका वर्णन ।

वपुः पवित्रीकुरु तीर्थयात्रया चितं पवित्रीकुरु धर्मवाञ्छया ।

विचं पवित्रीकुरु पात्रदन्तः कलं पवित्रीकुरु मन्त्रगिः ॥

—उपदेशतर्गिणी ।

जैन धर्मके औपदेशिक ग्रन्थसमूहमें, जैनगृहस्थों (श्रावकों) के लिये जिन जिन धर्मकृत्योंका विधान किया गया है उनमें तीर्थयात्रा करनेका भी एक विधान है । मुख्य कर जिन स्थानोंमें तीर्थकर आदि पूज्य माने जाने वाले जैनधर्मके महापुरुषोंका जन्म, दीक्षा, केवलया निर्वाण आदि पवित्र कार्य-जिसे जैन संप्रदायमें 'कल्याणक' कहते हैं- हुआ हो उन्हें तीर्थस्थान कहते हैं । परन्तु किसी अन्य विशिष्ट घटनाके कारण या स्थलविशेषकी पवित्रताके कारण और स्थान भी ऐसे तीर्थस्थान माने जाते हैं । समेतशिखर, राजगृह, पायापुरी, खण्डगिरि आदि स्थल पूर्वमें; तक्षशिला, कांगडा, अहिच्छत्र, हस्तिनापुर आदि उत्तरमें; शत्रुंजय, गिरनार, आश्रु, तारंगा आदि पश्चिममें, और श्रीपर्वत, श्रवणवेलगोला, मुडगद्री, कुलपाक आदि दक्षिणमें जैनियोंके प्रसिद्ध तीर्थस्थान हैं । तीर्थस्थानोंके मानने पूजनेकी यह प्रथा केवल जैनधर्म ही में प्रचलित है यह बात नहीं है । संसारके प्रायः सभी प्राचीन और प्रसिद्ध धर्मोंमें ऐसे तीर्थस्थान माने और पूजे जाते हैं । ब्राह्मणोंमें हरिद्वार, सोमनाथ, रामेश्वर, जगन्नाथ इत्यादि; बौद्धोंमें कपिलवस्तु, मृगदाव, योत्रिगया, कुशीनार इत्यादि; क्रिश्चियनोंमें जेरुसलेम; और मुसलमानोंमें मका मदीना आदि स्थान सैकड़ों ही वर्षोंसे तीर्थस्थानके रूपमें जगद्विख्यात हैं । क्या मूर्तिपूजा माननेवाले और क्या नहीं माननेवाले-क्या ईश्वरवादी और क्या अनीश्वरवादी इस विषयमें सभी परममत रखते हुए दिखाई देते हैं ।

महापुरुषोंके चरणस्पर्शमें पवित्रित भूमिका दर्शन

और स्पर्शन करनेसे भावुक मनुष्यके भद्र हृदयमें भयत्ता प्रकट होती है और मनकी मलिनता अन्तरित होती है यह मानवसमाज सिद्धिवात् है । केवल, प्रकृतिकी सुन्दरताको, स्थलकी विशुद्धताको और वातावरणकी निःशब्दताको देख कर ही संस्कारी हृदयवाले मनुष्यके मनमें सात्त्विकभाव प्रकट होने लगते हैं; तो फिर यदि उस स्थानके साथ किसी स्वाभिमत लोकोत्तर महापुरुषकी जीवनघटनाको कोई स्मृतिस्मर्यन्ध जुड़ा हुआ हो तो यह तो कहना ही क्या । जो शांति और जो सात्त्विकता मनुष्योंको अन्य उपाधिप्रस्तुत स्थानोंमें सैकड़ों लेखोंके वाचनेसे और सैकड़ों ही व्याख्यानोके सुननेसे प्राप्त नहीं हो सकती, वह ऐसे शुद्ध, पवित्र और पूज्य स्थानमें एक दिन जाकर रहनेसे प्राप्त हो सकती है; ऐसा अनेक महापुरुषोंका अनुभव है । श्रमण भगवान् श्रीमहावीर और गौतम बुद्ध जो वर्णोत्तक निज्जन बनोंमें धूमत रहे उसका कारण केवल यही शांतिलाभ करना था, और इसी प्रवृत्तिद्वारा उन्होंने अपनी मुक्ति प्राप्त की थी । संसारके महापुरुषोंके अनुभूत इस सिद्धान्तको लक्ष्यमें लेकर धर्मप्रवर्तकोंने तीर्थयात्राकी प्रथा प्रचलित की है और उसके अनुसार अति प्राचीन कालसे संसारके उपर्युक्त सभी धर्मोंके आस्तिक अनुयायी अपने अपने तीर्थस्थानोंमें अनेक प्रकारके कष्ट उठाकर भी, अधिक नहीं तो केवल एकवार, दर्शन मात्र करनेके लिये ही जाते रहे हैं, अथवा जानेकी अभिलाषा रखते रहे हैं । जैनधर्मोपदेशकोंने भी अपने तीर्थोंके दर्शन स्पर्शन करनेका उपदेश

किया है और तदनुसार जैन समाजमें प्रवृत्ति भी चली आ रही है ।

पुराण जमानेमें, आज कलके समान, मुसाफरी करनेके लिये रखे घोंगरह जैसे साधनों की सुविधा न होनेसे, तथा मार्गमें अनेक प्रकारके कष्टोंके आनेकी बहुत कुछ संभावना रहनेसे, उस समय के बड़े बड़े श्रीमान लोक भी अकेले-टुकेले घरसे बहार निकल कर दूरके देशोंमें जानेकी हिम्मत कम रखते थे । तो फिर साधारण और गरीबघरोंके लोगोंके लिये तो कहना ही क्या । इस लिये उस समय प्रायः लोग बहुतसों संख्यामें एकत्र हो कर तीर्थयात्राके लिये निकला करते थे । यात्रियोंके इस समूहको संघ कहा करते हैं । पिछले जमानेमें, जैनसमाजमेंसे जुदा जुदा तीर्थोंकी यात्राके लिये जुदा जुदा देशोंमें प्रतिवर्ष प्रायः सैकड़ों ही ऐसे छोटे बड़े संघ निकला करते थे, और अब तक भी सालमें दो बार निकलते रहते हैं । बहुत घरके इन संघोंके निकालनेमें कोई एक श्रीमान भावुक अग्रणी होता है और वह अपनी औरसे हजारों लाखों रुपये खर्च कर सैकड़ों हजारों यात्रियोंके तीर्थदर्शनकी अभिलाषाको पूर्ण करनेमें सहायक बनता है । ऐसे संघ निकालनेवाले को समाजकी ओर से 'संघपति' की पदवी मिलती है और वह फिर सदा समाजमें अग्रणी माना जाता है ।

संघके निकालनेकी क्या विधि है—वह जिस तरहसे निकाला जाता है और उसका निकालनेवालेको क्या क्या करना चाहिए—इसके विषयमें आखिरीधर्मात्मक ग्रन्थमें निम्न प्रकारका वर्णन दिया है ।

संघ निकालनेवाले पुरुषको स्वयंसे प्रथम, अमीन-प्र तीर्थकी यात्रा पूर्ण न हो तब तक, निम्न प्रका-

१ जैन जातिधर्म बहुतसे कुटुम्बोंको जो सघो-सघट्-धिर्घा-सिंहर्द्ध अंदि अटक है वह इसी 'संघपति' पदवी का अपभ्रंश रूप है ।

२ यह ग्रंथ तपागच्छके आचार्य रत्नसंगरार सुरिका बनाया हुआ है । इसकी रचना विक्रम संवत् १५०६ में हुई है । भावगुरुजी आश्विनन्द जैन समाजमें इसे छप कर प्रकट किया है ।

रके नियम करने चाहिए—दिनमें एक ही दफ्तर भोजन करना चाहिए, रास्तेमें पैदल चलना चाहिए, खाली जमीन पर सोना चाहिए, सचित्र वस्तु पानी न चाहिए, ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए, इत्यादि । इस प्रकार यात्राके लिये नियमादि स्वीकार कर फिर राजाके पास जावे और उसे यथायोग्य भेंट दे कर संघ निकालनेकी इजाजत लेवे । फिर यात्रामें साथ ले चलनेके लिये शुक्तिपूर्वक मंदिर बनवावे । अनन्तर, अपने स्वजनोंकी और साधर्मिभ्रातृर्योंकी संघमें आनेके लिये

१ जिस संघमें इस प्रकारके नियमोंका पालन करते हुए संघपति और अभ्याग्य यात्री चलते हैं उस संघको 'पदरी पालक' (गुजरातीमें—छरी पलते) संघ कहते हैं । 'पदरी' से मतलब उन नियमोंका । जिनमें अन्तमें 'री' अक्षर आता है । यथा—

‘एकाहारी, दर्शनधारी, यात्रासु भूशयनकारी, सच्चित्तपरिहारी, पादचारी, ग्रहचारी, च ।

आद्याविधि पृ. १६५.

एकाहारी भूमिसंस्तारकारी
पदभ्यां चारी शुद्धसम्यक्त्वधारी ।
यात्राकाले सर्वसच्चित्तहारी
पुण्यात्मा स्याद् ग्रहचारी विधेकी ॥

—उपदेशतरंगिणी, पृ. २४१.

२ प्राचीन समयमें राजाशाके सिखा ऐसे संघ घोंगरह निकल नहीं सकते थे तथा उनको एक राज्यमेंसे दूसरे राज्यमें जाने आने नहीं दिये जाते थे । इसलिये संघ निकालनेवालेको प्रथम राजाके पास जाकर उसके आगे रूप-योवी सूत्र भेंट कर उसे रास्ता बनवा पड़ता था और उसने पाछेसे संघ निकालनेका परवाना (मुहलमानी शब्द करमान) लेना पड़ता था । प्रमाणके लिये देखो मेरा लिखा हुआ शत्रुजय तीर्थोद्धार प्रबन्ध, पृ. ५६-७५ ।

तथा सोमसौभाग्यकाव्य, पृ. १४०-४१ ।

३ ये मन्दिर सोना, चाँदी, आदि धातुओंके तथा हस्ति-दन्त, चन्दन अथवा अन्य प्रकारके उत्तम काष्ठके बनाये जाते थे । ये एक प्रकारके सिंहासन समान अथवा रथके जैसे होते थे । इनकी मनुष्य उठाने अथवा रथकी तरह पोढ़े या धैल खींचते थे । सघने प्रमाणमें ऐसे एक या अनेक मंदिर संघके साथ रहते थे ।

आदरपूर्वक आमंत्रण भेजे। भक्तिपूर्वक शुभमहाराजको भी निमंत्रण करे। गांवमें जीवादिंसा बन्ध करानेके लिये अमरिपट्ट वज्रवावे। मंदिरोंमें महापूजादि महात्सव मनावे। फिर, जो जो मनुष्य संघमें साथ आनेकी इच्छा प्रदर्शित करें उनमेंसे जिनके पास भत्ता न हो उन्हें भत्ता देवे, वाहन न हो उन्हें वाहन देवे, तथा जो बिल्कुल निराधार हो उन्हें भीटे वचनोंसे आश्वासन दे कर जिस वस्तुकी जरूरत हो उसकी पूर्ति करे। और इस प्रकार गांवमें हंडोरा पिटाकर सहायतादान पूर्वक निरुत्साह मनवालोंको भी यात्राके लिये उत्साहित करे। गातेमें यात्रियोंके ठहरनेके लिये, पड़ावोंमें काम आने लायक छोटे बड़े पेस अनेक डेरें, तंबू, राबड़ी, चांदनी आदि तैयार करवावे। भोजनकी सामग्रीके लिए कड़ाह, परांत, हंडे आदि भाजन और पानीके संग्रहके लिये बड़ी बड़ी कोटियां, टांकियां आदि बर्तन बनवावे। मनुष्योंके बँडनेके लिये तथा सामान भरनेके लिये गाड़ी, सहेज-घाल, रथ, म्पाना, पालखी, बेल (पोठ) उठ, घोडा आदि सब प्रकारके वाहनोंका संग्रह करे। संघकी रक्षाके लिये अच्छे अच्छे वक्तादुर और शूर सुमनोंको (सिपाहियोंको) बुलावे और उन्हें अस्त्र शस्त्रादि देकर उनका सम्मान करे। तथा गीत, नृत्य और वाद्यविपयक सामग्रीको भी साथमें रखे—अर्थात् गान और नृत्य करनेवाले भोजकों-गंधर्वोंको और बाजे बजानेवाले यजवर्षियोंको भी संघके साथ रखे। इस प्रकार सब तरहकी तैयारी कर अच्छे मुहूर्तमें नुम शकुनोंके साथ प्रस्थान-मगल करे। प्रस्थान करनेके अवसर पर, सकल समुदायको—संघके साथ चलनेवाले तथा गांवमें बसनेवाले सभी साधर्मिभाइयोंको—एकत्र उत्तम प्रकारके भोजन कराकर, ताम्बूल आदि सुखवास देकर, तथा पंचांग वस्त्रादि पहना कर सत्कृत करे। तदनन्तर, सुप्रतिष्ठ, धर्मिष्ठ, पूज्य और भाग्यवान् मनुष्योंके हाथसे 'संघाधिपत्य' का तिलक करावे। स्वयं संघकी महापूजा करे और इस प्रकार दूस-रोंके पासमें भी 'संघाधिपत्य' का तिलक कापवे। यह सब काम हो चुकने पर फिर संघके साथ

आनेवालोंमेंसे यथायोग्य किसीको महाधर, किसीको अग्रेसर, किसीको पृष्ठरक्षक और किसीको संघाध्यक्षक आदि पद देकर तदनुकूल कार्यविभाग नियत करे। संघके चलने-ठहरने आदिके सब संकेत यात्रियोंको जाहिर करे—अर्थात् अमुक प्रकारकी सूचना मिलने पर यात्रियोंको ठहर जाना चाहिए, अमुक प्रकारकी सूचना मिलने पर चलना चाहिए, अमुक प्रकारकी सूचना मिलने पर एकत्र होना चाहिए, इत्यादि सब बातें संघजनोंको स्पष्ट समझा देनी चाहिए। रास्तेमें संघगतिको सबकी संभाल रखनी चाहिए। कहीं किसीकी गाड़ी ग्यौरद टूट जाय या और किसी प्रकारकी कठिनाई आ जाय तो उसे हर प्रकारसे सहायता देनी चाहिए।

इस प्रकार प्रयाण करते हुए मार्गमें जितने गांव और शहर आवें उनके मंदिरोंमें स्नात्र-महोत्सव करावे तथा उन पर महाध्वज चढ़ावे। सब मंदिरोंके बाजे-गाजेके साथ जाकर दर्शन करे। जहां कहींपर कोई मंदिर वर्गैरह जीर्ण-शीर्ण हालतमें दिखाई दे तो उसके उद्धार आदिका खयाल रखे। जय दूरसे अर्भीष्ट तीर्थ-स्थलके (पर्वतादिके) दर्शन हो तब सुवर्ण, रत्न या मोतियोंसे उसे बधावे और यात्रियोंको लड्ड आदि बांटकर तथा भोजन करा कर साधर्मिवात्सल्य करे। यथोचित दान देवे। फिर जय तीर्थस्थल पर पहुंचे तो बड़े आडंबरके साथ शयं प्रवेशोत्सव करे और दूसरोंसे करावे। इस तरह तीर्थस्थानमें प्रवेश करके, प्रथम हर्षपूजा, फिर अष्टोपचार पूजा, और तदनंतर विधिपूर्वक स्नान करे। इसके बाद, माला पहनना, धृतधारा देना, पहरामनी रखना, नवांग जिनपूजा करना, पुष्पगृह और कदलीगृह बनवा कर महापूजा रचना, बहुमूल्य वस्त्रादिकी घनाई हुई महाध्वजा चढ़ाना, रात्रिजागरण करना, नानाप्रकारके गीत और नृत्यादिस उत्सव मनाना, तीर्थनिमित्त उपवासआदिक तपस्या करना, लक्ष यां कोटि परिमित चावल आदि—आदि शब्दसे सुगुप्ता, लक्ष्मि, पलायची, नालियर इत्यादि समझने चाहिए—चढ़ाना, २४, ५२, ७२ या १०८ संख्यामें फल थादि भेंट भरना, भक्ष्य ऐसे सब प्रकारके भोज्य पदार्थों

से भरे हुए थालोंका रखना, रेशम आदि मूल्यवान् वस्त्रके बने हुए चंदुए, अंगलछन, दीप, तेल, धीती, चन्दन, केसर, पुष्पचंगरी, कलश, धूपदान, आरती, आभरण, प्रदीप, चामर, भृंगार, थाल, कञ्चोल, घंटा, झड़ुरी, पट्टा आदि विविध वाद्य, इत्यादि प्रकारकी मंदिरमें काम आनेवालीं सब चीजोंका दान करना; इत्यादि प्रकारके जो तीर्थ वृत्त्य हैं उन्हें विधिपूर्वक पूर्ण करे। इसके बाद तीर्थस्थान पर कोई छोटी बड़ी देवकुलिका करावे। सूघधारादिक कारीगरोंका सत्कार करे। तीर्थका कोई हिस्सा नष्ट-भ्रष्ट होनेकी अवस्थामें हो तो उसे ठीक करवा देवे। तीर्थकी रक्षा करनेवालोंका बहुमान करे। तीर्थके निर्वाहके लिये कोई जमीन आदिका स्थायी दान करे। साधर्मिवात्सल्य करे। गुरुओं और संघजनोंको पहचानणी दे कर भक्तिभाव प्रकट करे और भोजन, सेवक, गंधर्व, आदि जैन याचक जन हों उन्हें उचित दान वितरण करे। इत्यादि।

इस प्रकार संघ ले जानेवालेके लिये मुख्य मुख्य कृत्य बतलाये गये हैं।

प्राचीन समयमें, जैन इतिहासमें प्रसिद्ध ऐसे प्रायः सभी जैन राजा-महाराजाओंने और सेठ—साहुकारोंने इस प्रकारके बड़े बड़े सघ निकाले थे और उनमें लाखों करोड़ों रुपये खर्च किये थे। उदाहरणके लिये ऐसे दो चार प्रसिद्ध संघोंका यहां पर उल्लेख करना उचित मालूम होता है।

गुजरातके परमार्हत राजा कुमारपाल चौलुक्यने सौराष्ट्रके गिरनार और शत्रुजयादि तीर्थोंकी यात्राके लिये बड़ा भारी संघ निकाला था। उसके बारेमें जिनप्रवन्धन गणीने (संघम् १५९२) अपने 'कुमारपाल प्रवन्ध' नामक ग्रंथमें जो उल्लेख किया है, उसका सार यहां पर दिया जाता है—

हेमचन्द्राचार्यके मुखसे तीर्थ यात्रासे होनेवाला पुण्यलाभ सुन कर कुमारपालने भी तीर्थयात्रा करनेका मनोरथ किया और तत्काल सभ सामग्री एकत्र कर शुद्ध मुहूर्तमें यात्राके लिये प्रस्थान किया। प्रस्थान करते समय उसने प्रथम, शहरके सभी चैत्यों (मंदिरों) में अष्टान्धिक उत्सव मनाया। गांवमें अमारिपट्ट वज्रवाया। कैदम्यानॉम

जो कैदी थे उन्हें बन्धन मुक्त किये और सकल संघकी पूजाका महामहोत्सव किया। संघके प्रयाणसमयमें सबसे आगे राजाका देवालय चलता था। यह देवालय सुवर्ण और रत्नोंसे जड़ा हुआ था और राज्यके पट्टहस्तिकी पीठ पर स्थापित किया हुआ था। इसमें सुवर्णकी बनी हुई जिनमूर्ति स्थापित थी। राजाके इस मुख्य देवालयके पीछे पीछे क्रमसे ७२ सामंताके, २४ मंदिर बनवानेवाले बाहड़ मंत्री और उसके साथ अन्य मंत्रियोंके, तथा १८०० बड़े बड़े व्यापारियोंके देवालय चलते थे। इन सब देवाल्यों पर श्वेतातपत्र रखे हुए थे और अंदर सुवर्ण और मोतियोंसे जड़े हुए छत्र-चामरादि शोभ रहे थे। . . इस संघमें कुमारपाल राजा मुख्य संघपति था और उसके साथ ७२ सामंत, बाहड़ (वाम्भट) आदि मंत्री, राजमात्य नागसेठका पुत्र सेठ आभड, पद्मभाषक-विचक्रयर्ती श्रीपाल और उसका पुत्र दानवीर कविश्रेष्ठ सिद्धपाल, कपर्दी भंडारी, प्रह्लादन पुर (पालनपुर) का संस्थापक राणा प्रह्लाद, ९९ लाख सुवर्णाधिपति सेठ छाडाक, राजदौहित्रिक प्रतापमल्ल, अठारह सौ व्यवहारी, हेमचंद्रसुरि आदि अनेक आचार्य, अनेक गांवों और नगरोंसे आए हुए करोड़ों मनुष्य, छहों दर्शनोंके अनुयायी, ११ लाख घोड़े, ११ सौ हाथी, १८ लाख पैदल सिपाही और अनेक याचक जन थे। राजा हमेशा पैदल चलता था और सो भी नंगे पैरोंसे। हेमचन्द्र सुरिने उसे वाहन पर बैठजानेका अथवा तो पैरोंमें जूने वगैरह पहर लेनेके लिये आग्रह भी किया तो भी उसने वैसा नहीं किया। राजाके इस व्रतको देख कर और भी सैकड़ों संघजन उसी तरह चलने लगे। संघके साथ समुदाय बहुत बड़ा होनेसे कहीं लोकोंको रास्तेमें कष्टन हो इस लिये वह हमेशा पांच कोसकी मंजल करता था। जगह जगह लड्डू, नालियर आदिकी प्रभावना किये जाता था। जितने जितने जिनमंदिर आने थे उन सब पर सुवर्ण और मोतियोंसे जड़ी हुई ध्वजायें चढ़ाता जाता था और मंदिरमें की प्रत्येक मूर्तिके लिये सोनेका छत्र और चामरादि दान किये जाता था। गांवों और

सभी मनुष्योंको भोजन करवाता था। सामने आने वाले राजाओं तथा सेठ-साहुकारोंको यथायोग्य पहारामणी देता था। प्रतिदिन संघमें, सामंत, मंत्री, सेठ आदि सभी संघजनोंको एकत्र कर स्नात्र महोत्सव मनाता था। प्रत्येक गांव और नगरमें साधर्मिक भाइयोंको अन्न, वस्त्र और प्रच्छन्न धन देकर साधर्मिकवात्सल्य करता था। प्रतिदिन भोजन करने के समय असमर्थ श्रावकोंको तथा दूसरे भूखे प्यासे गरीब गुराँथोंको अपने हाथसे भोजन करा कर फिर स्वयंभोजन करता था। हमेशा त्रिकाल जिनपूजा, उभयकाल प्रतिश्रमण तथा पर्यदे (अष्टमी और चतुर्दशी आदि के) दिन पोषध व्रतादि करता था। जितने याचकजन आते थे उनको इच्छित दान देकर संतुष्ट करता था। इस प्रकार प्रयाण करता हुआ वह धधुका भगरमें पहुंचा जो हेमचन्द्राचार्यका जन्मस्थान था। इस नगरमें उसने पहले ही ७ हाथ ऊंचा झोलिकायिहार नामक मंदिर बनवाया था जिस पर ध्वजा चढ़ाई तथा स्नात्र महोत्सव कराया। वहांसे वह क्रमशः प्रयाण करता हुआ, प्राचीन घलभी शहरके मैदानमें पहुंचा। इस जगह दो सुंदर पहाडियाँ हैं जिनकी चोटी पर दो मन्दिर बनवाये और उनमेंसे एकमें ऋषभदेवकी और दूसरेमें पार्श्वनाथकी मूर्ति प्रतिष्ठित की। वहांसे चल कर वह संघ उस जगह पहुंचा जहांसे शत्रुंजय पर्वतका स्पष्ट दर्शन हो सकता था। उस दिन सघने वहीं पड़ाव किया और राजाने सकल संघके साथ शत्रुंजयको दण्डवत् नमस्कार करके पञ्चाङ्ग प्रणाम किया। उस दिन तीर्थदर्शन निमित्त उपवास किया गया और सोने चांदिके फूलोंसे और मोतियोंसे शत्रुंजयके वधाया गया। कुङ्कुम और चंदनादिसे अष्टमंगलका आलेखन किया गया और उनपर अनेक प्रकारके नैवेद्योंसे भरे हुए थाल रक्खे गये। वहां पर फिर पूजा पढ़ाई गई, आचार्यका व्याख्या-न सुना गया और रात्रिजागरणका उत्सव मनाया गया। राजराणी सूपल देवी, राजपुत्री लीलू कुमारी और अन्य सय सामंत वगैरहकी खिन्नोने भी सोनेके थालोंमें मोती और अक्षत भरकर पर्वतको

बधाया। इस प्रकार उस दिन प्रथम तीर्थदर्शनके सब कृत्य करके दूसरे दिन संघने उपवासका पारणा किया और तदर्थ उत्सव मनाया गया। तीसरे दिन संघ प्रयाण करके शत्रुंजयकी तलहट्टीमें पहुंचा। वहां पर पादलिप्तपुर (पालीताना) में राजाने पहले ही पार्श्वनाथका मन्दिर बनवा रक्खा था, जिस पर उस समय सुवर्णनिर्मित कलश, दण्ड और ध्वज आदिका आरोपण कर विधिपूर्वक स्नात्र महोत्सव कराया। उसके बाद अपनी दाहिनी बाजमें हेमचन्द्रसूरिकी साथ लेकर, सामंत, मंत्री, सेठ, साहुकार इत्यादि सबके साथ शत्रुंजय पर चढ़ने लगा। मार्गमें जितने वृक्ष आते थे उन सब पर वस्त्रमण्ड चढ़वाता हुआ और प्रत्येक स्थान पर सुवर्ण, पुष्प, चंदन इत्यादिसे पूजन करता हुआ, मरुदेवा नामक शिखर उपर पहुंचा। वहांपर जगन्माता स्वरू, मरुदेवाकी, तथा शान्तिनाथ और कपर्दि यक्षादिककी पूजा-अर्चा कर प्रथम प्रतौली (पोल) पर पहुंचा। वहां पर अनेक याचक जन खड़े थे जिनको यथायोग्य दान देकर आगे बढ़ा और युगादिदेव आदिनाथके मुख्य मन्दिरका द्वार दिखाई देते ही सघासेर प्रमाण मोतियोंसे उसे बधाया। तदनन्तर मन्दिरको तीन प्रदक्षिणा कर गर्भागारमें गया और वहां पर युगादि देवकी प्रशमरसपरिपूर्ण भव्य मूर्तिके दर्शन कर परम उल्लसित हुआ और नौ लाख सुवर्णके मूल्यवाले नौ हार चढ़ा कर उस मूर्तिकी नवांग पूजा की। तदनन्तर संघपतिके लिये जो जो तीर्थ ठहरे बतलाये गये हैं उन सबका उसने यथाविधि पालन किया। इत्यादि।

पाठक कुमारपालकी यात्राके इस वर्णनका ऊपर पहले दिये गये आन्ध्रविधिके संघवर्णनके साथ मिलान करेंगे तो मालूम हो जायगा कि संघके निकालनेका जो वर्णन ग्रन्थकारोंने दिया है वह केवल वर्णनमात्र ही नहीं है परंतु उसके अनुसार यथार्थ आचरण भी होता रहा है। और यह आचरण उस पुराणे जमाने ही में होता था सो भी बात नहीं है। वर्तमानमें भी ऐसे संघ निकालने-पाले यथाशक्ति और यथासाधन उक्त विधि

पालन करते रहते हैं। इस प्रकारके छोटे बड़े दो चार संघोंके देखनेका तथा उनके साथ जा कर यात्रा करनेका इस लेखकको भी सौभाग्य प्राप्त हुआ है जिनमें इस वर्णनका बहुत कुछ प्रत्यक्ष अनुभव भी मिला है। अस्तु।

कहते हैं, इसी तरह पहले 'गोपगिरि (गवालियर) के आम नामक राजाने वप्पभट्टिसुरिके^१ उपदेवासे शत्रुंजयकी यात्राके लिये एक संघ निकाला था जिसमें १ लाख पौष्टिक,^२ १ लाख घोड़े, ७०० हाथी, २० हजार ऊँट, ३ लाख प्यादे और २० हजार श्रावक-कुटुंब थे। (देखो रत्नमन्दिर गणिरचित उपदेशतरंगिणी, पृ० २४८)

चिक्रमकी १४ वीं शताब्दीमें थारापट्ट नगरमें आभू नामक एक श्रीमालभातीय बहुत बड़ा श्रावक हो गया है। इसकी 'पश्चिममण्डलिक' की पद्धति मिली थी। इसने शत्रुंजयकी यात्राके लिये जो संघ निकाला उसमें ७०० तो मंदिर और १०५० जिन मूर्तियां थीं! अन्य समुदाय इस प्रकार था:— ४ हजार गाड़ियां, ५ हजार घोड़े, २२ सौ ऊँट, ९० सुखासन^३, ९९ श्रीकरा, ७ प्रपा, पानीसे भरी हुई मशकें उठा कर चलनेवाले ४२ बैल और ३० भैंसे, १०० भोजन धनानेको बड़े बड़े कड़ाह, १०० हल-याई, १०० रस्तेय, २०० माली, १०० तंबोली, १३६ हाट, १४ लुहार, और १६ सुतार थे। ३६ आचार्य थे। सब मिलकर १२ करोड़का उसके संघमें खर्च हुआ था।

१ वप्पभट्टिसुरिका स्वर्गवास संवत् ८९५ में हुआ था। आमराजके लिये देखो मेरा शत्रुंजय तीर्थोद्धार पत्रग्रन्थ, पृ ४२ की टिप्पणी।

२ पुराने जमानेमें बनजरी लोग जिन बैलों पर माल लद कर आते जाते थे उनको पौष्टिक कहते थे। गुजरातीमें वसे पोठ कहते हैं। मनुष्य भी इन बैलों पर सवार करते थे।

३ यह प्राचीन प्रसिद्ध नगर पालनपुर एजन्सीमें आया हुआ है। आजकल इसे थराद कहते हैं।

४ देखो, उपदेशतरंगिणी, पृ० २४८. तथा सुरुतसार काव्य, पृष्ठ ४६।

महामंत्री वस्तुपालने १२ थार संघ निकाल कर शत्रुंजयकी यात्रायें की थीं। जिनमें स १२८५ में जो यात्रा की उसके साथमें २४ तो हाथीदांतके बने हुए और १२० चंदन आदि लकड़ीके बने हुए मंदिर थे। ४५ सौ नाडियां, १८ सौ बाहिनियां, ७०० सुखासन, ५०० पालखियां, ७० आचार्य, २ हजार भेताम्बर यति, ११ सौ दिगम्बर भट्टारकादि, १९०० श्रीकरा, ४ हजार घोड़े, २ हजार ऊँट, और सात लाख मनुष्य थे^१।

वस्तुपालकी इस अनुपम तीर्थयात्राका वर्णन, उसके समकालीन और सुहृद् ऐसे बड़े बड़े कवियोंने बहुत विस्तृत और भव्य रीतिसे किया है^२। उदाहरणके लिये गुर्जरेश्वर पुरोहित सोमेश्वर महाकवि रचित कीर्तिकौमुदी नामक काव्यके कुछ पद्य यहां पर उद्धृत कर दिये जाते हैं:—

चिकीर्षिता शोषस्थेन तीर्थ-

यात्रास्य सोऽयं शरदाऽऽश्रमेतः।

महात्मनामंहितकार्यसिद्धौ

विधिविधत्ते हि सदानुकूल्यम् ॥ १

पाथेयबन्तः पथि योग्ययुग्माः

सोपानहः शोडशमाजनाधः।

श्रीवस्तुपालेन समं जनीयाः

प्रयाणकाय प्रवगा बभूवुः ॥ ४

आकारितस्तेन रुतादरेण

दूरादपि थादजनः समेतः।

व्युत्तरीयानि पुनर्यज्ञाधि

दिग्नरेभ्योऽपि दिग्नराणि ॥ ५

समं समभेरापि बन्धुर्गण-

निसर्गबिन्धुर्विबुधजनस्य।

गुप्ते मुहूर्तेऽयं शुभेर्निमित्तै-

र्मन्त्री स्वनाथानुमतः प्रतस्थे ॥ ६

रथेस्तुरगैः करभेमहोक्षे

१ उपदेशतरंगिणी, पृ० २४७.

२ देखो, सोमेश्वररचित कीर्तिकौमुदी, सर्ग ९; ठक्कुर अरिसिंह रचित सुरुतसारकतनाकव्य, सर्ग ५; बारचदसुरि रचित वसंतविजय महाकाव्य, सर्ग १०-११-१२-१३; और सद्यप्रभासुरि हत घर्मा-भ्युदयमहाकाव्य, सर्ग १५, इत्यादि।

जग्मुस्तदा केऽपि कथंचनापि ।
 मन्त्रीश्वरे धर्मधारापुराणे
 तस्मिन् विशधाम भरस्तु तेषाम् ॥ १०
 न वाहनं यस्य ॥ तस्य वाहनं
 नासीद्धनं यस्य स तस्य वित्तम् ।
 ॥ जीवरं यस्य स तस्य वर्णं
 कल्पद्रुमः प्रददौ पृथिव्याम् ॥ ११
 भुङ्क्ते स्म सर्वेष्वपि भुक्त्वस्तु
 शेते स्म सुतेषु स यात्रिकेषु ।
 प्रमुष्यते स्म प्रथमं तदिदं
 संघप्रभृत्यनमाचचार ॥ १२
 प्रभूतभोज्यानि बहूदकानि
 सुगौरवान्मुन्युदमानवानि ।
 तस्यातिदुर्गपि पथि प्रयाणा-
 न्दुपानलीलासदृशान्यभूवन् ॥ १३
 याऽऽप्रसंगेषु जगाम येपु
 पुरेषु वै शिष्टतत्तरेणेषु ।
 तेषामघोशैः सविशेषमेव
 संमान्यमानः सममानयत्तान् ॥ १४
 अभ्यर्च्यमानः पथिकैरनेकै-
 र्यस्तूयनेकान्यपि वस्तुपालः ।
 तैर्भ्यः प्रभूतानि पथि प्रयच्छ-
 माह करोति स्म न कुप्यति स्म ॥ १५
 पुरुष वृष्टेऽपि च पार्श्वयोश्च
 परिरुज्जितः खरहेतिहस्ताः ।
 यात्राजनं धर्मानं तस्य शब्ध
 दशदिग्दशः शुभटा ररक्षुः ॥ १६
 समुद्रतीर्थाजिनेन्द्रहर्म्य-
 नैवैः सरोमिथ सरोजरम्यैः ।
 मस्यानमार्गः सचिवस्य सोऽभू-
 दजामतामप्युपलक्षणीयः ॥ १७
 यावन्ति धिम्बानि जिनेश्वराणां
 श्वेताम्बराणां च कदम्बवानि ।
 मार्गेषु तेषां मुपिताभितार्तिः
 पूजा ॥ निर्यस्य ततः प्रतस्थे ॥ २०
 स पंचवैर्निर्निपयप्रपञ्च-
 प्रयाणकैः प्रीणितभयलोकः ।
 धराधरं धर्मधुंधरधी-

शत्रुजयं शत्रुजयी जगाम ॥ २१

-कीर्तिकौमुदी, संग ९ ।

इन श्लोकोंका भावार्थ यह है कि-शरत्कालके आने पर मंत्री वस्तुपालने तीर्थयात्राके लिये तैयारी की । उसके साथ गांवके अन्यान्य लोक भी भत्ता, वाहन, जलादिके वर्तन इत्यादि मार्गमें आवश्यक पैसे सब बीज ले ले कर तैयार हुए । मंत्रीने दूर दूर देशोंके यात्राकोंको भी संघमें आनेके लिये आदर पूर्वक आमंत्रण किया था इससे वे भी सब लोक आ पहुँचे । इस प्रकार सब लोगोंके तैयार हो जाने पर, अपने कुटुंबी, सगे, सम्बन्धी, स्नेही इत्यादि सब जनोंके साथ, राजाकी आज्ञापूर्वक, मंत्रीने शुभ मुहूर्तमें प्रयाण किया । यात्रियोंमेंसे कोई रथोंपर, कोई घोड़ोंपर, कोई ऊँटोंपर, कोई बैलोंपर, इस तरह जुदा जुदा वाहनों पर सवार होकर चलते थे, पर उन सबका भार मंत्रीके शिरपर था । साथ चलनेवाले यात्रियोंमेंसे जिसके पास वाहन नहीं था उसको वाहन देकर, जिसके पास धन नहीं था उसको धन देकर और जिसके पास वस्त्र नहीं था उसे वस्त्र देकर मंत्रीने उस समय साक्षात् कल्पवृक्षके समान आचरण किया था । संघमें सब मनुष्योंके भोजन कर लेनेपर मंत्री भोजन करना था, सबके सोजाने बाद सोता था और सबके ऊठनेके पहले ऊठता था—इस प्रकार संघकी संपूर्ण प्रतिपालना करता था । यात्रियोंकी हमेशा उत्तम प्रकारका भोजन कराया जाता था, मीठा पानी पिलाया जाता था और दूध-दही आदि गोरस खिलाया जाता था । इस कारण वह निपम मार्गकी मुसाफरी भी लोगोंको उद्यानलीलके जैसी आनन्ददायक हो गई थी । जिन जिन गांवों-नगरोंमें वह संघ पहुँचता था वे सब गांव-नगर वहाँके निवासियोंकी ओरसे ध्वजा-तोरणादिसे खूब सजाये जाते थे और वहाँके अधिकारी वगैरह सब जन आदरपूर्वक उस संघकी पेशवाईमें आते थे । स्थान स्थानमें अनेक याचक जन आकर मंत्रीके पास अनेक प्रकारकी याचना करते थे और यह सबको यथायोग्य दान देकर संतुष्ट करता था—परन्तु इस विषयमें न कभी यह अहंकार ही प्र-

शित करता था और न तिरस्कार ही । रास्तेमें चलता हुआ वह सब आगे, पीछे ओर अगल-अगलमें, अर्थात् चारों ओर, राथोंमें शरत् लिये हुए घोड़े सवारोंसे सरक्षित रहता था । मार्गमें जितने भी जीर्ण-शीर्ण मन्दिर ओर तालाब आदि जलाशय मिलते थे उस सबको ठीक-ठान या नवीन यन-वाता हुआ वह सब चला जाता था । इस कारण उस रास्तेसे निकलकर जानेवाले अज्ञात जनोको भी चिरकाल तक उस सबके प्रयाणका परिचय मिलता रहता था । इसी तरह रास्तेमें जितने मन्दिर आते ओर उनमें जितनी जिनमूर्ति यां होती थी उन सबकी पूजा-अर्चा करवाई जाती थी । एवं हीया प्रयाण करता हुआ आंतर और बाह्य दोनों प्रकारके शत्रुओं ऊपर जय प्राप्त कर नेवाला वह महामंत्री ५—६ ही दिनमें शत्रुजय पर्यन्त पर पहुँच गया था । इत्यादि ।

विक्रमकी १५ वीं शताब्दीके अन्तिम भागमें, स० गुणराज नामका एक प्रसिद्ध धनिक आधक हो गया है जो कर्णावतीका निवासी था । उसने शत्रुजय, गिरनार, आप, राणकपुर, मांडव, ईडर-गढ आदि गुजरात, काठियावाड, मेवाड, मारवाड, मालवा, आगड इत्यादि देशोंके प्रसिद्ध प्रसिद्ध तीर्थोंकी यात्रा निमित्त बहुत पण्डित सब निराळा था । इस सधमें मुख्य आचार्य तपागच्छके सोमसुंदर सूरि थे । ऊर्हीके उपदेशसे यह सब निराला था । इस संघका विस्तृत वर्णन सोमसोमनाथ नामक काव्यके ८ वें सर्गमें किया हुआ है । काव्यका व नामेवाला कवि प्रतिष्ठासोम स्वयं सोमसुंदर सूरि-का हस्तदीक्षित शिष्य था । इस लिए उसका यह वर्णन प्रायः आखों देखा कदा जा सकता है ।

जिसासु पाठकोंको तो इस बारेमें खुद उक्त का ध्य ही को करना चाहिए । परन्तु कुछ नमूना दिया नेके लिये उसके थोड़ेसे पद्य यहाँपर भी दे दिये जाते हैं—

दीर्घालिकापर्व समाययो मुदा

साम्राज्यदानप्रतिग्रहभुवि ।

श्रोतृर्थायात्राकृतये स्तौती तदा

महोद्यम निमित्तवान् महेश्वराद् ॥

सन्नीक्रियन्ते स्म मनोरथे सम
रथा महोभ्यः स्वगृहैष्योमया ।

सुखासनश्रोद्गुरार्थैश्चिष्ट

द्वैष्ट गरिष्ठ भुवि तैर्विधापितम् ॥

पर सहस्राब्धस्तुत्सुगमा

भक्ता उदात्ता हृदयगमा पुन ।

द्रव्यैर्भ्रियन्ते स्म मया महोमया

अभेष्टा वेगभृता च वेमराः ॥

अहिम्नदर्शोत्तपातसाहिताद्

रथाश्रुतग्रीतमना मनोपिणम् ।

दिव्यावरेयं किल पर्यधापयत्

क्याहिमुद्ये सह भूरिभिर्भने ॥

समापयद् द्वागति निजां च त

वद्य नकेतीप्रमुखा नृपोचितम् ।

पर, गहयान् शुभटान् महोद्भटान्

श्रोन्मादिनस्तानमितोद्य सादिन ॥

श्रीतीर्थयात्रापुरमाणमीजित

दशो सद्गोत्रलकर च दस्य तत् ।

स मार्गणप्राणिगणस्य कामित

सपूरयन् श्रीगुणराजस्यराद् ॥

भये मुहूर्ते उपमावभाविताः

सपान्वित सोवपुराच्चवाल च ।

कुम्भः शुभाम्भोभारितोऽस्य समुखा-

यभूव माय सपवाशिरस्थितः ॥

इति प्रकृतेः कर्तुं प्रमातिगे

ससुचितस्तोऽज्ज्वलमगलोदयः ।

अवीरमयाम इति प्रसिद्धिद्युत्

पुरे ययो श्रीगुणराजसाधुराद् ॥

तस्मिन्मिलन् स्म पुर नरेशो

दधुरा नरा पुष्पवराश्रुतदाम् ।

प्रवर्द्धने स्मानप्रसन्न उच्चके

दिनेदिने वादिरिन्दुशशिने ॥

देवाख्या श्रीनिर्गया दशाऽक्षशा

सौवर्णदण्डवजकुम्भशोभिता ।

चमत्कृतलोपजगत्त्रया स्फुट-

चित्रैर्विचित्रैर्विशिष्टिफलितैः ॥

जेनन्दविभ्यं सक्षिता महोन्मिता-

स्तुत्येव श्रीः सुभगमणिपुत्र ।

रथाधिरुवा दृढबन्धवन्धुराः
 पथि प्रवेत्तु, निदशाचलाचलाः॥
 तत्पृष्ठतः शिष्टगारिष्ठोत्तरः
 खराजुभास्यद् युतिस्तन्तिष्ठतः ।
 पुराचचालाचलकन्दरावली-
 पांथैः प्रवृत्तं प्रतिपादमण्डिताः ॥
 श्रीश्रीकरीशोभितपुष्टो लसन्-
 सुखासनस्मापतिपादनस्थिता ।
 साम्यं दधाना निविष्ट विडौजसो
 महेभ्यराजस्तद्लु प्रतस्थिरं ॥
 तरंगरंगसुरगादिमसरसुरैः
 खरैश्चलस्यन्दनचक्रमण्डलैः ।
 मृग समुत्थातमिलारकोऽभित
 प्रादृष्टादयत्तानविम्वमम्बरैः ॥
 तदाभुजप्रोक्तसदृशदावली-
 हक्काभिनादैर्द्वैराजिद्विधैः ।
 भेरी नफेरी-स्वरगाविकास्वरैः
 नृगाण्यत्कालकलिर्ननाश सः ॥
 श्रीसप्तसरकैः शकटैर्भरोक्तै
 निर्घडितो मूर्ध्नि स शेषपत्रग ।
 कष्टेन पातालतले स्थितस्तदा
 कुलापलाबिद्धरलं च भारिताः ॥
 सुखासन-स्यन्दन राजवाहन-
 धीवाहिनीनां यरवाजिनां नृणाम् ।
 कथिद्विपाथिद् गुणराजसंघराट्
 संघेन सद्यसमक्रोमरोत्तमः ॥
 श्रीमन्महीराजगङ्गा गङ्गाधुरः
 काङ्क्ष बालाह्वय ईश्वर, रुनी ।
 श्रीवाचसुनोस्तनया नयान्विता
 पंचेपुरपाधिकरुचम्पदः ॥
 पंचाप्यमी पंचमुखामविक्रमा
 क्रमान्जनम्राक्षितिपा भयान्विताः ।
 पक्षारपुरस्ताच्च राजगता यन्तः
 धीधरसा पथि सत्पथस्थिताः ॥
 पुरे पुरे श्रीमलिकाय राजकाः
 सोपायनाः सम्मुखमागताः समे ।
 चतुः प्रणामं गुणराजनामभूत
 तनोतिशुभ्रालः प्रमौलयः ॥

भिः संप्रतिभूतिरेव ज्ञामनं
 विभासयन् जैनमसृष्टशास्त्रः ।
 कुमारपालः किमु निमित्तामित-
 प्रभावनः पावनपुण्यभावनः ॥
 किं वस्तुपालोऽन मनोरथान् पृथक्
 कृतार्थयथाधिजनस्य शस्यधीः ।
 इयं गृजन्महसम्हमगिना
 धंयुक्तं संपतिः समागमत् ॥

इन श्लोकोंका तात्पर्य यह है कि—जय हर्षके
 साम्राज्यका दान करनेवाला ऐसा दीपालिका पर्व
 आया तब—अर्थात् चातुर्मासकी समाप्तिके समय
 पर—गुणराज सेठने तीर्थयात्राके लिये यूय जबरद-
 स्त तैयारी करनी शुरू की । उसके साथ और भी
 बड़े बड़े धनिक लोक मनोरथोंके साथ ही अपने
 अपने घरोंमें रथों वगैरहको सजाने लगे । तथा सु-
 खासन, सिंह,सन आदि जुदा जुदा तरहके वाहन
 बनाने लगे । हजारों ही ऊँची जातिके घोड़े तैयार
 किये जाने लगे तथा खस्यार और ऊट सामानसे
 लदे जाने लगे ।

यों तैयारी कर वह चतुर सेठ अनेक प्रकारकी
 बट्टमूल्य मेंटें लेकर अपना राजकर्ता जो अहम्मद
 बादशाह था उसके पास गया और वे मेंटें उसके
 सामने रख कर उसको खुश खुश किया ।

बादशाहने भी यदलेमें, अपने फयाहि (?) आदि
 सहचारियोंके साथ, गुणराज सेठको आदरपूर्वक
 किमती खरपाव देकर उसका उचित सम्मान
 किया । इसके उपरान्त बादशाहने सेठको संघमें ले
 जानेके लिये अपना निजका जो बादशाही खेमा था
 वह समर्पण किया और नफेरी आदि शाही याजे भी
 —कि जो खास राजाओंहीके आगे बजाये जा सकते
 हैं—वजानेके लिये देकर सेठका घुमान किया ।
 छंघरों रक्षाके लिये हजारों ही प्यादे और घोड़े-
 सवार सिपाही भी बादशाहने उसके साथ भेजे ।

इस प्रकार यात्राके लिये शाही फरमान लेकर,
 सकल समुदायके साथ, अन्य मुहूर्तमें, याचकगण-
 की इच्छित दान देते हुए, शुभ शकुनपूर्वक गुण-
 राज सेठने अपने नगरसे प्रस्थान किया ।
 कर्णायनीसे रवाना होकर संघ वीरमगांय प

हुंवा जहाँ चारों दिशाओंमेंसे असंख्य मनुष्य आ आकर उस संघमें शामिल हुए। फिर शुरुपक्षके चंद्रकी तरह दिन प्रतिदिन वह समुदाय इस प्रकार अन्यान्य स्थानोंसे आनेवाले जनसमूहसे खूब बढ़ता गया।

संघमें सबसे आगे रथारूढ़ देवालय (मन्दिर) चलते थे, जो खूब ऊँचे होकर सोनेके कलश और ध्वजा बंधादिसे अलंकृत थे, कुशल कारोगरोंकी की हुई अनेक प्रकारकी चित्र विचित्र रचनाओंके कारण देखनेवालेको चमत्कृत बनाते थे और जिनके अंदर भव्य आशुतिवाली जिन प्रतिमायें सुशोभित थीं।

देवाल्योंके पीछे पीछे, सूर्यके समान तेजस्वी ऐसा गुणराज सेठ चलता था जिसके आगे यज्ञ-नेवाले धार्जोंके प्रतिध्वनिसे गस्तेमें आनेवाले बड़े बड़े पट्टड शङ्खायमान हो जाते थे। संघपतिके पीछे पीछे, संघमेंके अन्यान्य बड़े बड़े धनाढ्य लोक चलते थे जो राजाओंके उचित ऐसे सुखा-सनोंमें बैठे हुए थे और जिनकी अगल-बगलमें नौकर लोक अथवा गिरीयां लेकर चलते थे। अन्य धार्जोंके सैकड़ों ही लोक घोड़े जुड़े हुए रथोंमें बैठे हुए चलते थे कि, जिन रथोंके घोड़ोंकी सुरियोंसे तथा पहियोंसे उड़ती हुई धूलके कारण सारा आकाश ढँकसा जाता था।

सुभटोंके हुंकारोंसे, घोड़ोंकी हिनहिनाहोंसे और भेरी नफेरी आदि धार्जोंके घोर शब्दसे, देखनेवालेको मानों यह प्रतीत होता था कि कलिकाल अब इस जगत्मेंसे नष्ट हो गया है और फिर सन्-युगका संचार हो रहा है। उस संघके साथ इतनी गाड़ियां थीं कि जिनके भारसे द्वयूर ही मानों शेषनाग पातालमें चला गया है और कुलाचल क्षिप्त हो रहे हैं। संघके साथ इतने रथ, सुखा-सन, पालखियां, घोड़े और मनुष्य आदि थे कि जिनकी संख्या कोई बड़ा विद्वान् भी नहीं कर सकता था।

संघपति गुणराज सेठके महाराज, गजराज, कालू, वाला और ईश्वर नामके पांच पुत्र थे, जो सिंहके समान पराक्रमी और कामके समान रूप-वान् थे। ये पाँचों पुत्र संघकी रक्षासंबंधी सारी

व्यवस्था रखते थे और सुभटोंके साथ इनमेंसे कोई संघके आगे, कोई पीछे और कोई अगल-बगलमें चलता था। इनका पराक्रम और तेज इतना था कि राजा और राणा भी आकर इनके पैरोंमें पड़ते थे।

जिस जिस गांव और नगरमें सं० गुणराजका वह संघ पहुंचता था वहाँ के मलिक और राणक आदि सब अधिकारी लोक भेंट ले लेकर संघके सामने आते थे और जमीनपर सिर टेककर उसको प्रणाम करते थे।

गुणराज सेठके इस महान् संघको देखकर लोकोंके मनमें, पुराणे ग्रन्थोंमें वर्णन किये हुए संप्रतिराजा, कुमारपालराजा और महामंत्री वस्तुपाल आदिके संघोंका स्मरण हो आता था और क्षणभर उनकी यही भास हो जाता था कि क्या यह राजा संप्रति, या कुमारपाल, अथवा मंत्री वस्तुपाल ही तो संघ लेकर नहीं आ रहा है? इस प्रकार महान् ठाठके साथ चलता हुआ गुणराजका वह संघ क्रमसे पुंधुका शहरमें पहुंचा। इत्यादि।

खरतर गच्छके महोपाध्याय जयसोमके उपदे-शसे सिंधके फरीदपुर नगरसे, वि. सं. १४८४ में, पंजाबके प्रसिद्ध प्राचीन स्थान कांगडेके जैन मंदिरोंकी यात्राके लिये जो संघ निकला था उसका बहुत ही मनोरंजक वर्णन, हमारी संपादन की हुई विज्ञप्ति-त्रिवेणी नामक पुस्तकमें किया हुआ है, जिसमेंका कुछ भाग प्रकृतोपयोगी होनेसे यहाँ पर दिया जाता है।

“संघको चलतेसमय बहुत अच्छे और अनुकूल शकुन हुए। फरीदपुरसे थोड़ी ही दूरी पर विपा-सा (व्यासा) नदी थी। उसके किनारोंपर, जहाँ जान्गु, कदम्ब, नीम्ब, खजूर आदि वृक्षोंकी गहरी घटा जमी हुई थी और नदीके कूलोंसे ऊठी हुई ठंडी वायु मन्द मन्द सींचते चली आती थी, ऐसे चांदिके जैसे चमकिले रेतिके मैदानमें संघने अपने प्रयाणका पहला पड़ाव किया। दूसरे दिन नदीको पार करके जालंधरकी ओर संघने प्रस्थान किया। संघमें सबसे आगे सिपाही चलते थे जो मार्गमें रक्षणके निमित्त लिये गये थे। उनमेंसे किसीके

हाथमें-तलवार थी तो किसीके हाथमें भङ्ग था। कोई धनुष लेकर चलता था तो कोई जय-रदस्त लट्ट उठाये हुआ था। इस प्रकार सबसे आगे उछलते, फूटते और गर्जते हुए सिपाही चले जाते थे। उनके पीछे बड़ी तेजीके साथ चलने-वाले ऐसे बड़े बड़े बैल चलते थे जिन पर सब प्रकारका मार्गोपयोगी सामान भरा हुआ था। उनके बाद संघके लोक चले थे जो कितने एक गाड़ी घोड़ा आदि वाहनों पर बैठे हुए थे और कई एक देव-गुरु-भक्ति निमित्त पैदल ही चलते थे। कितने ही धर्मी जन तो साधुओंकी समान नंगे ही पैर मुसाफरी करने थे। इस प्रकार अविच्छिन्न प्रयाण करता हुआ और रास्तेमें आनेवाले गाँवों को लांघता हुआ सब निश्चिन्दीपुर के पास के मैदानमें, सरौघर के किनारे आ कर ठहरा। संघके आनेकी खबर सारे गाँवमें फैली और मनुष्योंके झुंडके झुंड उसे देखनेके लिये आने लगे। गाँव का मालिक जो सुरनाथ (सुल्तान) करके था वह भी अपने दिवान के साथ एक ऊँच घोड़े पर चढ़ कर आया, और जन्मभरमें कभी नहीं देखे हुए ऐसे साधुओंको देखकर उसे बड़ा विस्मय हुआ। उपाध्यायजीने उस रोचक धर्मोपदेश सुनाया, जिसे सुन कर नगरेके लोकोंके साथ वह बड़ा खुश हुआ और साधुओंकी स्तुति कर उसने सादर प्रणाम किया। बादमें-संघपति सोमाका सम्मान कर अपने स्थान पर गया। संघ वहाँसे प्रयाण कर क्रमसे तलपाटक पहुँचा। वहाँ पर गुरुओंकी वन्दन करने के लिये देवपालपुरका श्रावकसमुदाय आया और अपने गाँवमें आनेके लिये संघको अत्याग्रह करने लगा। उन लोकों को किसी तरह समाज-बुझाकर संघने वहाँ से आगे प्रयाण किया और विपाशा (व्यासा) नदीके किनारे किनारे होता हुआ क्रमसे मध्य देशमें पहुँचा। जगह जगह ठहरता हुआ संघ इस देश को पार कर रहा था, कि इतनेमें एक दिन, एक तरफसे पोपेश यशोरथके-सैन्यका और दूसरी ओरसे शकन्दर के सैन्यका, " भगो, दोड़ो, यह फौज आई, वह फौज आई," इस प्रकारका चारों तरफसे कोलाहल सुनाई

दिया। इसे सुनकर संघके हाँस ऊट गये। सब दि-टमूढ़ हो गये। यात्रीलोक दिलमें बड़े भयराये और अब क्या किया जाय इसकी किक्रमें निद्राएँ हो-र-हे। किन्तु प्रकाश हाँस समाप्त कर और परमात्माका ध्यान घर संघ पीछा लाँटा और विपाशा के तटका आश्रय लिया। नावों में बैठ कर जल्दी से उस को पार किया और कुंगुद नाम के घाट में हो कर मध्य, जांगल, जालन्धर और काश्मीर इन चार देशोंकी सीमाके मध्य में रहे हुए हरियाणा नामके स्थान में पहुँचा। इस स्थलका निरूपद्रथ जान कर वहाँ पर पड़ाव डाला। वहाँ पर, कानुक यज्ञके मंदिर के नजदीक, शुचि और धान्यप्रधान स्थान में, चैत्र सुदि एकादशी के रोज सर्वोत्तम समय में, नाना प्रकार के घावोंके यज्ञने पर और भाट-चार-णों के, विरदावली बोलने पर, सब संघने इकट्ठा हो कर, साधुश्रेष्ठ सोमा को, उसके निषेध करनेपर भी, सर्वाधिपतिका पद दिया। मल्लिङ्गवाहनके सं० मागटके पाँच और सा० देवा के पुत्र उद्धर को महाधर पद दिया गया। सा० नीषा, सा० रूपा और सा० भोजा को भी महाधर पद से भलकृत किया गया। सैलहस्त्य का विरद मुन्ध्यासगीत्रीय-सा० जिनदत्त को समर्पण किया गया। इस प्रकार वहाँ पर पदोदान करनेके साथ उन उन मनुष्योंने सब की, भोजन-वस्त्र-आभूषणादि विविध वस्तुओं द्वारा भक्ति और पूजा कर याचक लोकों को भी खूब दान दिया। संघके इस कार्यको देख कर मानों गुश हुआ हुआ और उस के गुणों का गान करनेके लिये ही मानों गर्जना करता हुआ दूसरे दिन खूब जोर से मेघ वर्षने लगा। घेर घेर जितने बड़े बड़े ओले बादल में से गिरने लगे और झाड़ों तथा झुंफडीयों को उखाड़ कर फेंक देनेवाला प्रचण्ड पवन चलने लगा। इस जलवृष्टिके कारण संघ को वहाँ पर पाँच दिन तक पड़ाव रखना पड़ा। ६ वें दिन सवेरे ही वहाँ से कूच की। सपा-दलशपरत की तंग घाटियों को लांघता हुआ, स-घन झाड़ियों को पार करता हुआ, नाना प्रकारके-पवित्राव प्रदेशों को आश्चर्य की दृष्टि से देखता हुआ ओर पहाड़ी मनुष्योंके आचार-विचारोंका

अनुभव करता हुआ संघ फिर विषाशाके तट पर पहुंचा। उसे सुखपूर्वक ऊतर कर, अनेक बड़े बड़े गाँवोंके बीच होता हुआ, और तत्तद् गाँवों के लोको और स्वाभियों को मिलता हुआ, क्रम से पाताल-गंगा के तट ऊपर पहुंचा। उसे भी निरायास पार कर क्रम से आगे बढ़ते हुए और पहाड़ों की चोटियों को पैरों नीचे कुचलते हुए संघ ने दूरसे सोनेके कलशवाले प्रासादोंकी पंक्तिवाला नगर को देखा कि जिसका दूसरा नाम सुशर्मपुर है, देखा। उसे देखा कर संघ-जनोंने तीर्थके प्रथम-दर्शन से उत्पन्न होने वाले आनंदानुसार, दान धर्मादि सुकृत्यों द्वारा अपनी तीर्थभक्ति प्रकट की। नगर-कोट्टके नीचे बाणगंगा नदी बहती है जिसे ऊतर कर संघ गाँवमें जानेकी तैयारी कर रहा था कि इतने में उसका आगमन सुन कर गाँवका जैनसमुदाय, सुन्दर घस्त्राभूषण पहन कर, स्वागत करनेके लिये सामने आया। अनेक प्रकारके वादियों और जयजयारवोंके प्रचंड घोषपूर्वक महान् उत्सव के साथ, नगर में प्रवेश किया। सहर के प्रसिद्ध प्रसिद्ध मुहल्लों और बाजारोंमें घूमता हुआ संघ, साधु क्षीमसिंहके बनाये हुए शान्तिनाथ-देव के मंदिर के सिंहद्वार पर पहुंचा। 'निसीही निसीही नमो जिणार्ण' इस वाक्य को तीन बार बोलता हुआ जिनालयमें जाँ कर, खरतरगच्छक

आचार्य श्रीजिनेश्वरसुरिकी प्रतिष्ठित की हुई शान्तिजिनकी प्रतिमा का दर्शन किया। तीन बार प्रदक्षिणा दे कर, नाना प्रकारके स्तुति-स्तोत्रों द्वारा अत्यंत आनन्दपूर्वक प्रभुकी पर्यपासना की। इस प्रकार संवत् १४८३ वर्षके ज्येष्ठ सुदि पंचमी के दिन, अपनी चिरकाल की दर्शनीकण्ठाकी पूर्ण कर करीदपुरका संघ कृतकृत्य हुआ। शान्तिजिन के दर्शन कर संघ फिर नरेन्द्र रूपचन्द्र के बनाये हुए मंदिर में गया और उस में विराजित सुवर्णमय श्रीमहावीरजिन विष्णुकी पूर्ववत् घन्दन-नमन कर, देवल के दिखाये हुए मार्गसे युगादिजिनके तीसरे मंदिर में गया। इस मंदिरमें भी उसी तरह परमात्माकी उपासना-स्तवना कर निज जन्म की सफल किया।

(विज्ञप्तिविबोधि, प्रस्तावना, पृ. ३७-३९)

इस प्रकार और भी अनेक ग्रन्थोंमें अनेक संघोंका वर्णन मिलता है। इस लेखमें हमारा उद्देश्य सारे संघोंका इतिहास लिखनेका नहीं है, परंतु संघ किस तरहसे निकाले जाते हैं उसका स्वरूप बतलानेका है। इस लिये नमूनेके तौर इतने वर्णन दे कर इस विषयकी समाप्त किया जाता है। संघोंका क्रमवार इतिहास हम कभी भविष्यमें लिखना चाहते हैं।

जेसलमेरके पटवोंके संघका वर्णन ।

ऊपर हमने 'तीर्थयात्राके लिये निकलनेवाले संघोंका वर्णन' दिया है। इस प्रकारका एक बड़ा भारी संघ गत शताब्दीके अंतमें, मारवाडके जेसलमेर नगरमें रहनेवाले पटवा नामसे प्रसिद्ध कुटुंबवाले ओसवालोंने निकाला था। इस संघका वर्णन, उसी कुटुंबका बनाया हुआ, जेसलमेरके पास अमरसागर नामक स्थानमें जो जैन मंदिर है उसमें एक शिला पर, उसी समयका लिखा हुआ है। यह शिलालेख मारवाडी भाषामें और देवनागरी लिपिमें लिखा गया है। नीचे इस लेखकी

ज्यों कि त्यों नकल दी जाती है। इस लेख की एक काफी प्रवर्तक श्रीकान्तिविजयजी महाराजके शास्त्रसंग्रहमेंसे मिली है; जो उन्होंने किसी मारवाडी लहियेके पास लिखवाई है और दूसरी नकल, बड़ोदाके राजकीय पुस्तकालयके सस्त्रत विभागके सद्गत-अध्यक्ष श्रीयुत चिमनलाल डाह्यामाई दलाल एम. ए. के पाससे मिली है जो उन्होंने मेरे लिये जेसलमेरके किसी यात्रिके पाससे लिख मंगवाई थी।

॥ ओं नमः ॥

। दूहा ।

रिपमादिक चउवीस जिन पुण्डरीक गणधार ।

मन वच काया एक कर प्रणमु वारंवार ॥ १

विषन हरण संपतिकरण श्रीजिनदत्तसुरिंद ।

कुशल करण कुशलेश गुरु बन्दु खरतर इंद ॥ २

जाके नाम प्रभावतै प्रगटे जय २ कार ।

सानिषकारी परम गुरु सदा रहो निरधार ॥ ३

संवत् १८९१ रा मिति आषाढ सुदि ५ दिने श्रीजेसलमेरु नगरे महाराजाधिराज महारावलजी श्री १०८ श्रीगजसिंघजी राणावत श्रीरूपजी बापजी विजयराजे वृहत्खरतर भट्टारकगच्छे जंगमयुगप्रधान भट्टारक श्रीजिनहर्षसुरिमिः पट्टप्रभाकर जं । यु । म । श्री १०८ श्री जिनमहेन्द्रसुरि उपदेशात् श्रीवाफणागोत्रे देवराजजी तत्पुत्र गुमानचंदजी—भार्या जेतां । तत्पुत्र ५—(१) बहादरमल्लजी—भार्या चतुरां । (२) सवाईरामजी—भार्या जीवां । (३) मगनीरामजी—भार्या परतापा । (४) जोरावरमल्लजी—भार्या चौथां । (५) प्रतापचंदजी—भार्या मानां । एवं बहादरमल्लजी तत्पुत्र (१) दानमल्लजी (२) सवाईरामजी तत्पुत्र सामसिंघ, माणकचंद । सामसिंहपुत्र रत्नलाल । (३) मगनीरामजी तत्पुत्र बसूतसिंघजी । तत्पुत्र २ पूनमचंद दीपचंद । (४) जोरावरमल्लजी तत्पुत्र २ सुरतानमल चंनणमल । सुरतानमल पुत्र २ गंभीरचंद्र इंदचंद्र । (५) प्रताप चंदजी पुत्र ३ हिमतराम—जैठमल—नथमल । हिमतरामपुत्र जीवण । जैठमल पुत्र मूलो । गुमानचंदजी पुत्र्या २ सखू-बीजू । सवाई रामजी पुत्र्यां ३ सिरदारी-सिणगारी-नानुडी । मगनीरामजी तत्पुत्र्यां २ हरकवर-इस्तू । सपरिवार सहितेन सिद्धाचलजीरो संघ काढ्यो । जिणरी विगत—

जेशलमेर उदैपुर कोटैसुं कुंकुमपत्र्यां सर्व देसावरामे दीनी । च्यार २ जमण कीया नालेर दीया पछै संघ पाली भेलो ह्वो । उठे जीमण ४ कीया । संघतिलक करायो । मिति महासुदि १३ दिने भ । श्रीजिनमहेन्द्रसुरिजी श्रीचतुर्विधसंघसमसे दीयो । पछै संघ प्रयाण कीयो । मार्गमें देशना सुणतां पूजा पडिकमणादि करतां साते क्षेत्रांमें द्रव्य लगावतां जायगा २ सामेला होतां रथजात्रा प्रमुख महोच्छव करतां । श्रीपंचतीर्थीजी वामणवाडजी आबूजी जीरावलेजी तारंगेजी संलेश्वरजी पंचासरजी गिरनारजी तथा भारगमाहे सहारां गामांरा सर्व देहरा जुहारया । इणमांत सर्व ठीकाणें मंदिर २ दीठ चढापो कीयो । मुगट कुंडल हार कंठी भुजबंध कडा श्रीफल नगदी चंद्रवा पुठीया इत्यादिक मोटा तीर्थमाथे चढापो घणो हुयो । गहणो सर्व जडाउ हो सर्व ठीकाणें लांहण जामण कीया सहसावनरा पगथीया कराया । उठेसु सात कोष ठेरे—गामसुं श्रीसिद्धगिरिजी मोत्यांसुं बघायनें पाली-साणें बडा हगामसुं गाजावाजता तलेटीरो मंदिर जुहार देरां दाखल हवा । दुजे दिन मिति

वेशाख सुदी १४ दिने सात्तिक पुष्टिक हुतां श्रीसिद्धगिरीजी पर्वतपर चढ्या, श्रीमुलना-
यक चोमुखोजी खरतरवशीरा त्या दुजी वर्यां सर्व जुहारी मास सवा रया। उठे चढापो घणो
हुवो। अढाइ लाख आत्री मेला हुवा। पुरव, मगरवाड, मेवाड, गुजरात, दुदाड, हाडोती,
कछमुज, मालवो, दक्षण, सिंध, पंजाब प्रमुख देशारा। उठे लांण रू० १ सेर १ मिथी
घर दीठ दीवी जीमण ५ संघव्या मोटा कीया जीमण १ बाई बीजु कीयो ओर जीमण
पण घणा हुवा। श्रीचोमुखाजीरे वारणें आलामे गोमुख यक्ष चक्रेधरीरी प्रतिष्ठा करायनें
पधराइ चोमुखाजीरो सिलर सुधरायो एक नवो मंदिर करावण वास्ते नौव भराई। जुना
मंदिरारा जीर्णोद्धार कराया जन्म सफल कीयो। गुरुभाक्ती इण मुखम कीवी। इग्यारे श्री-
पूज्यजी था २१०० साधु साध्वी प्रमुख चोरासी गछारा। तिहा, प्रथम रवगठरा श्रीपूज्य-
जीरी भक्ति साचवी। हजार ५ रो नगद माल दीयो दूजो खरच भर दीयो पळे अनुक्रमें
सारा दुजा श्रीपुजारी साधु साध्वीयांरी भक्ति साचवी। आहार पाणी गाडीयांरो भाडो
तंबु चौवरो ठाणें दीठ रू ४१ दीया नगद। दुशाला घालांनं दुशाला दीया। सेवग ५००
हा। जिणानें जणें दीठ रू० २१ दीया। रोटी खरच अलग। पहेरणारा नोजा ओपघ
खरची सारू रुयीया चाहीज्या जिणानें दीया। पळे। म। श्रीजिनमहेंद्रसुरिजी पास्ये सिंधव्या
३१ संघमाला पढरी जिणमं माला २ गुमास्ते सालगराम महेश्वरीनें पढराइ। पळे बडा
आडंबरसुं तलेटीरो मंदिर जुहार डेरा दाखिल हुवा। जाचकानें दान दीना। पळे जीमण
१ कीयो। साधव्यानें सिरपाव दीया। राजा डेरे आयो। जिणानें हाथी सिरपावमें
दीयो। दुजा मार्गमें राजवी नवाव प्रमुख आया डेरे, जिणानें, राजमुजब सिरपाव दीया।
श्रीमुलनायकजीरे भंडारे ताला ३ गुजरातीयांरा था सु चोथो तालो संघव्या आपरो
दियो। सदावर्त सुरू हेईज। ईसा. २ मोटा काम करचा पळे संघ कुशलक्षेमसुं अनुक्रमें
राधणपुर आयो। जेठ अंगरेज श्रीगोडीजीरा दर्शन करणें आयो। उठे पार्णी नही
थो सुं गेवाड नवी नौसरी। श्रीगोडीजीनें हाथीरे होदे विराजमान कर संपनं वरक्षण दिन
७ इकलग करायो चढापेरा साढा तीन लाख रूपीया आया सवा महीना रया, जीमण
घणा हुवा। श्रीगोडीजीरे विराजणनें बडो चोतडो पको करायो ऊपर छतरी बणाई।
घणो द्रव्य खर्च्यो बडो जश आयो अक्षत नाम कीयो। साथे गुमास्तो महेश्वरी शालग-
राम हो जिणानें जैनरा शिवरा सर्व तीर्थे करायो। पळे अनुक्रमें संघ पाली आयो।
जीमण १ करनं दानमलजी फोटे गया पळे भाइ ४ जेसलमेर आयो। डेरा दरवाजे बाहर
कीया पळे सामेलो बडा ठाठसुं हुवो। श्रीरावलजी सामा पधान्या। हाथीरे होदे, सघ-
वानें श्रीरावलजी आपरे पुटे बेपाणनें सारा शहिरमें हुय देहरा जुहार ऊपाधये आय
हवेत्या दाखल हुवा। पळे सर्व महेश्वरी बगैरे छत्तीस पानने लुगाया समेत पाच पकवान-
सुं जीमाया। ब्राक्षणानें जणे दीठ रू० १ दक्षणारो दीयो पळे श्रीरावलजी जनानें
सहित संघव्यारे हवेली पधान्या। रूपीयांसु चोतरो कीयो। सिरपेच कंठी मोत्यांकी कडा
जडाउ दुशालां नगदी हाथी घोडा पालली निजर कीया। पाळा श्रीरावलजी इण
मुज न हीज शिरपाव दीयो। एक लोद्वोजी गाम तवापत्रा पडे दीयो इतो इजारो कीयो।

अगे पिण इणारी हवेली—उदैपुर राणाजी, कोटेरा महारावजी, बीकानेररा किपनगढरा बुदीरा राजाजी इन्डोररा हुलकरजी प्रमुख सर्व देशरा राजजी जनानें समेन इणारे घरे पधान्या देणो लेणो हजारो कीयो । दिछिरे पातसाहरी अंगरेजारे पातसाहरी दीयोडी सेठ पदवी हे सो विक्षातही न हे । पछे सघरी लाहण न्यातमें दीवी पुतली १ सोनेकी वाली १ मीश्री सेर १ घर दीठ दीवी । जीमण कीया पछे सेरमें ठावाठावानें सीरपाव दीया । गढमाहिंला मंदिरा छोटवे कपाश्रये घडो चढापो कीयो इण मुजबही न उश्यपर कोटि देणो लेणो कीयो । संघमें देहरासररो रथ हो जणरा इकावन सो लगा । ब्रगडा सोनें रूपेरा २ जिणरा दश हजार लगा मंदिररा सोनें रूपेरी बासणारा १५ हजार लगा । दुजा फुटकर सराजामरा लाख १ रू० लगा ।

हवे संघमें जायतो हो जिणरी बीगत—तोफा ४, पलटनरा लोग ४०००, अशवार १५००, नगारे नीमाण समेत । उदैपुर राणाजीरा असवार ५०० नगारे निमाणे समेत । कोटेरा महारावजीरा अशवार १०० नगारे निमाण समेत । जोधपुरे राजाजीरा असवार ५० नगारे निमाण समेत । पायदल १०० जेमलमेररा रावलजीरा, असवार २०० टुकरे नशावरा, असवार ४०० फुटकर असवार २०० घर ओर अंगरेजी जायतो, चपडासी तिलगा सोनेरी रूपेरी घोटवाला जायगा २ परवाना बोलावा एवं पालरूया ७ हाथी ४ न्याना ५१ रथ १००, गाढ्या ४००, उंठ १५००, इतरातो सवव्यारा घर । संघरी, गाढ्या उंठ प्रमुख न्यारा, सर्व खरचरा, ९३०००००, तेवीसलाख रू० लगा ॥

इति सघरी संक्षिप प्रशस्ती लिखी ।

ओर—पण ठीकाणे २ धर्मरा काम करचा सो संक्षेपे लिखिये छै—श्री धुलेवजीर बारणें नाथत खानो करायो गहणो चढायो, लाख १ लगा । मक्षीजीर मदिरेरा जीर्णोद्वार करायो । उदैपुरमें मदिर, दादासाहिबरी छतरी, धर्मशाला कराइ । कोटमें मंदिर धर्मशाला दादासाहिबरी छतरी कराइ । जेमलमेरमें अमरसागरमें बाग करायो जिणमें मंदिर करायो जयवतीरो उपाश्रय करायो छोटवेमें धर्मशाला कराइ, गढमाथे जमी मदिरेके लिये लीवी बीकानेरमें दादासाहिबरी छतरी कराई इत्यादिक ठीकाणें २ धर्मरा अहीठाण कराया श्रीपुण्यजीरा चोमासा जायगा २ कराया पुस्तकारा भंडार कराया भगवतिजी प्रमुख सुण्या प्रश्न दीठ २ मोती धन्या । कोटामें दोयलाख रूप्यादेकर धदीखानो छेडायो बीज पाचम आठम इमारत चउदशरा उजमणा कीना इत्यादिक काम धरमरा कीया ओर कर रयाहे । इत्यलम् ॥

सवइयो ३१ सो—

शोमनीक जे साणमें बाफणा गुमानचंद तकें सुत पाच पाडव समान हे ।

संपदामें अचल बुद्धिमें प्रबल रावराणाही मानें जाकी कान हे ।

देवगुरु धर्मरागी पुन्यवत घडभागी जगत सहु वात मानें प्रमान हे ।

देशहु विदेशमाह कीरत प्रकाश कीयो सेठ सठ हेठ कवि कर्त बलानहे ॥ १ ॥

दुहा—

अठारसे छत्रुवे जेठमास सुदि दोय ।
 लेख लिख्यो अति चुपचुप भावियण वांचो जोय ॥ १ ॥
 सकल सुरि शिर मुगटमणि श्रीजिनमहेन्द्रसुरिंद ।
 चरणकमल तिनके सदा सेवे भिवेयण वृंद ॥ २ ॥
 फीनो आप्रहृयकी जेसलमेर चोमास ।
 संघ सहु मक्ति करे चढते चित उल्लास ॥ ३ ॥
 ताकी आज्ञा पाय करि धरि दिलमें आणंद ।
 जुयं थी त्पु रचना रची मुनि केसरीचंद ॥ ५ ॥
 भुलो जो परमादमें अक्षर घटही बाध ।
 लिखत खेट आइ हुवे, सो खमीयो अघराध ॥ ५ ॥
 ॥ इति प्रशस्ति सम्पूर्णम् ॥

इस संघके निकालनेवालेके पंशज आज भी मौजूद हैं और मालवाके रतलाम वगैरह शहरोंमें उनकी बड़ी बड़ी दुकानें चलती हैं । इस संघके जैसा बड़ा संघ, इसके बाद जैन समाजमेंसे फिर कोई नहीं निकला और शायद अब कोई निकाले वैसी आशा भी नहीं है ।

इस कुरुवने संवत् १९२८ में, जेसलमेरमें जो एक बड़ा भारी प्रतिष्ठामहोत्सव किया था उसका लेख भी उपर्युक्त लेखवाले मंदिरमें लगा हुआ है । यह लेख कुछ संस्कृत और कुछ मारवाडी भाषामें है । संग्रहकी दृष्टिसे इस लेखकी भी यहांपर प्रकट कर दिया जाता है ।

“स्वस्ति श्रीविक्रमादित्यराज्यात् सम्वत् १९२८ शालीवाहनकृत शाके १७९३ प्रवर्तमाने मासोत्तमासे माघमासे षष्ठपक्षे त्रयोदश्यां तिथौ गुरुवासे महाराजाधिराज महाशयलजी श्री श्री १००८ श्री वैरीशालजी विजयराउये श्रीमज्जेसलमेरवास्तव्य ओस-वंशे वाफना गोत्रीय संघवी सेठ गुमानचंदजी तत्पुत्र प्रतापचन्द्रजी तत्पुत्र हिमतरामजी जेठमलजी नथमलजी सागरमलजी उमेदमलजी तत्परिवार मूलचंद सगतमल केसरीमल रिपमदास भागीदास भगवानदास भीखचंद चितामणदास लुणकिरण मनालाल कन्नैयालाल सपरिवार-युक्तेन आत्मपरकल्याणार्थं श्रीसं षष्ठोद्दीपनार्थं च श्री जेसलमेरनगरसक अमरसागरसमीपवर्तिनि समीचीनाऽऽरामस्थाने श्रीरिपमदेवजिनमंदिरं नवीनं कारापितं तत्र श्री आदिनाथ विंध्य प्रचीन वृहत्स्वरतरगणनाथेन प्रतिष्ठितं तत् श्रीजिनमहेन्द्रसूरि पदपंकजसेविना वृहत्स्वरतरगणनाथधरेण चतुर्दिपसंघसहितेन श्रीजिनमुक्तसूरीणां विधिपूर्वमहता महोत्सवेन शो-भनरूपे श्रीमूलनायकचैत्ये स्थापितं । पुनः अनेक विधानामंजनशिलाका कारिता । पुनर्दत्तायभुमिपासादे स्वप्रतिष्ठित श्री पार्श्वनाथविंध्य मूलनायकस्थापितं पुनर्वांश विहरमान प्रतिष्ठा कृतं मंदिरस्य दक्षिणपार्थे दादासाहिव कुशलसूरि गुरुमूर्ते स्थापनकृता । तथाच जिनदत्तसूरि कुशलसूरि चरणपादुका पुनरपि श्रीजिनहर्षसूरि महेन्द्रसूरि चरणपादुका स्थापिता ।

माई सवाईरामजीके घरका आया । रतलाममें चि० सोभागमल चांदमल सोभागमलकी माजी वगेरे आया । उदेपुरमें चि० सिरदारमल तथा इपारी माजी वगेरे आया । और

पण घणे देशावरांसु संघ आयो । स्वामीवच्छल प्रमुखकरी ३ श्रीसंघकी भाक्ति करी । त्या पांच शिष्याने श्रीपूज्यजी महाराजके हाथसँ दीक्षा देराइ । दिन १५ तक बढो ठाठ रचव नित्य नवीन पूजा प्रभावना हुइ । श्रीदरवार साहिव पचाऱ्या । तोफांका फेर हुवा । सेठाके पगमें सेनो बपसीयो । फेर श्रीसंघसमेत जेसलमेर आया उजमणा प्रमुख कीना । श्री-पूज्यजी महाराजकी पधरावणी २ कीनी जिणमें हजारो रुथीयाको माल असवाव भेट कीनो । उपाध्याय वंगेरे ठावा ठावा ठाणानें रोकडा शालजोडी इ यादि यथायोग्य दीना । उपाध्याय साहिवचंदजी गणि । पं. । प्र. । भेरजी गणि पं. प्र. अमरचंदजी गणि प्रमुख ठाणा ४१ था । ठाणें दीठ रू. १० दश रोकडा थान प्रत्येके दीना । परगच्छिय यति-यांको सतकार अछीतरे कीनो । श्रीसरकारकी पधरामणी कीनी । घोडा लगामो नजर कीनो । मुसद्दी वंगेरे सर्वेमें यथायोग्य शिरोपाव दीना ॥

श्रीजिनभद्रसूरि श.खाया पं. प्र. श्रीमयाचंदजी गणि तत्शिष्य पं. सरूपचंदजी मुनि जेसलमेर आदेशिना इयं प्रशस्ति रचिता ।

शिलावट विरामके हाथसँ श्रीमंदिरजी वणिवा जिणके परिवारने सेनेकी कंठियां त्या कडीकी जोडियां मंदील डुगडा थान वंगेरे शिरपाव दीना ॥

श्रीमंदिरके मूल गुंभारेमें आसेपासे दक्षणी तर्फ परतापचंदजीकी खडी मूर्ति छे । उत्तरकी परतापचंदजीकी भार्याकी खडी मूर्ति छे । निजमंदिरके सामने पूर्वकी तर्फ पश्चिममुखी चोतरो कराय जिण ऊपर परतापचंदजीकी त्या भार्यासहित सपरिवार सही-तकी मुरतीयां स्थापित कीनी ।

सन्वत् १९४५ मिति मार्गसिर सुदी २ वार बुध । दशकत सगतमल जेठमलार्णी बाफनाका । शुभं ।

हुहा—अष्टकर्म वन दाहके भये सिद्धजिनचंद ।

ता सम जो अप्पा गिणे तार्कु बंदे चंद ॥

कर्मरोग ओपवसमी ग्यानसुधारस वृष्टि ।

शिवसुख अष्टत बेलडी जय जय सम्यक्दृष्टि ॥

एहीज सदगुरु सीख छे एहीज शिवपुर माग ।

छेजो निज ग्यानावि गुण करजो परगुण भाग ॥

भेद ग्यान श्रवण भयो समरस-निरमलनीर ।

अन्तर घोबी आतमा धोवे निजगुण चीर ॥

फर दुःख अंगुरी नेनदुःख तन दुःख सहज समान ।

लिख्यो जात है कठणसु शठ मानत आशान ॥

॥ इत्यलम् ॥

शोक समाचार ।

[१]

जैन साहित्य सशोधक के पाठकोंको यह समाचार देते हुए हमें बड़ा दुःख होता है कि, कलकत्ता नगर के प्रसिद्ध विद्वान् महामहोपाध्याय डॉ. सतीश-चन्द्र विद्याभूषणजीका गत तारीख २५ अप्रैलको असमयहीमें स्वर्गवास हो गया । विद्याभूषणजी भारतवर्षके नामी विद्वानोंमेंसे एक थे । आप अंग्रेजी भाषाके तो आचार्य (एम् ए) थे ही, साथमें संस्कृत प्राकृत, पाली, तिब्बती आदि भाषाओंके भी उत्तम ज्ञाता थे । ब्राह्मण, बौद्ध और जैन धर्मके दर्शन शास्त्रोंमें आपकी उल्लेख योग्य गति थी और पुरातत्त्व शास्त्रके आप अच्छे पण्डित थे । आप स्वभावके बड़े सरल और हृदयसे पूरे निष्पक्षपात थे । ज्ञानार्जन करना ही आपका परम ध्येय था । आपका विद्याभ्यासग आश्चर्यजनक था । अंग्रेजीकी एम्. ए परीक्षाके पास करनेके पहले ही संस्कृत भाषामें आपने इतनी व्युत्पत्ति कर ली थी कि जिससे नवद्वीप-विबुध-जन्त-सभाने प्रसन्न होकर आपको ' विद्याभूषण ' की पट्टी प्रदान की थी । एम् ए पास करनेके बाद कुछ काल तक आप कृष्णनगर कालेजमें संस्कृतके प्रोफेसर रहे । इसी समयके मध्यमें आपने कान्य और न्यायशास्त्रका अभ्यास भी आगे बढ़ाया, और साथमें तिब्बती भाषाका ज्ञान भी संपादन किया । आपकी इस योग्यताको देखकर बंगालकी सरकारने आपका तिब्बती भाषाका अनुवादक नियत किया और साथमें उसका एक शब्दकोष बनानेका काम दिया । यह काम आपने बड़ी योग्यताके साथ समाप्त किया । इससे सरकारने आपको फिर कलकत्ता-संस्कृतकालेजके अध्यापकके पदपर नियुक्त किया । वहां आपने अध्यापकी करते हुए पाली भाषाके अध्ययनका प्रारंभ किया और सन् १९०१ में उसकी एम् ए की परीक्षा देकर उसमें प्रथम श्रेणिमें प्रथम नम्बर प्राप्त किया । आपके इन परीक्षापत्रोंकी जांच कर नेवाला उस समयमें भारतमें बैसा कोई विद्वान् नहीं था इस लिये वे पत्र लन्दनविश्वविद्यालयके

पालीभाषा और बौद्ध साहित्यके प्रधानाध्यापक महाशय रीज डेवर्डिके पास भेजे गये थे । इन परीक्षक महाशयने सतीश चन्द्रजीके वे परीक्षापत्र पढ़कर कलकत्ता युनिवर्सिटीके रजिस्ट्रारको लिखा कि—इतना पाली भाषाका ज्ञान सर्वोत्तम दर्जेका है । इसके बाद आपको वहांसे बदली हुई और फिर आप प्रेसीडेन्सी कालेजके सिनियर प्रोफेसर बनाये गये ।

सन् १९०५ में जब बौद्ध तीर्थोंकी यात्रा करनेके लिये घो-सी-लामा हिन्दुस्थानमें आये तब भारत सरकारने आपको लामा महोदयके साथ घूम कर उन्हें भारतके बौद्ध तीर्थोंका ऐतिहासिक महत्त्व समझानेका काम दिया । आपने यह काम इतनी उत्तमताके साथ किया कि जिससे लामा महोदयने रुप होकर, प्रेमोपहारके रूपमें आपको एक रेशमी चादर—जिसे वे लोग ' खाताग ' करते हैं—समर्पित की । आपकी इस प्रकारकी सब विषयोंमें निपुणता देखकर भारत सरकारने आपको महामहोपाध्यायकी उत्तम पाण्डित्य और सम्मान-सूचक पट्टी प्रदान की ।

इसी अरसेमें आपने 'मिडियल स्कूल आफ दि इन्डियन लॉजिक' नामक जैन न्याय और बौद्ध न्यायके इतिहास विषयकी प्रसिद्ध पुस्तक लिखी जिसके कारण कलकत्ता युनिवर्सिटीने आपको 'डाक्टर आफ फिलॉसफी की प्रधान उपाधिसे सम्मानित किया ।

सन् १९०९ में, बंगाल सरकारने आपको बौद्ध धर्मका सविशेष प्रत्यक्ष ज्ञान संपादन करनेके लिये लंका भेजा । वहां पर, सुमगल स्थिति—जो लंकाके प्रधान बौद्ध स्थवि और कोलंबोके विद्योदय कालेजके अध्यक्ष थे—के पास उस विषयका तलस्पर्शी ज्ञान संपादन किया । वहांसे फिर आप बनारस पहुंचे और वहां पर न्याय आदि दर्शन शास्त्रोंमें उत्तीर्णता प्राप्त की ।

फिर १९१० में आप कलकत्ता संस्कृत कालेजके प्रधानाध्यापक बनाये गये और तबसे आखिर तक आप इसी पद पर प्रतिष्ठित रहे । इसके सिवाय, साहित्य और शिक्षा विषयक अने सभा-सोसायटी-

योंके आप अध्यक्ष और सदस्य आदि समय समय पर नियुक्त किये गये थे ।

कलकत्तेमें, शास्त्रविशारद जैनाचार्य विजयधर्म-सूरिजीसे आपकी मुलाकात हो गई थी जिससे आपको जैनसाहित्यसे भी बहुत कुछ परिचय मिल गया था । आप उक्त जैनाचार्यजीके बड़े प्रशंसक थे और उनकी प्रेरणासे आपने कलकत्ता-विश्वविद्यालयके पठनक्रममें जैनसाहित्यको भी कुछ स्थान दिलाया था । जैन न्यायके इतिहास विषयक उपर्युक्त पुस्तकके सिवाय जैनसाहित्यके प्रथम तर्क ग्रन्थ न्यायायतारका आपने अंग्रेजीमें अनुवाद भी किया है । भारतके दर्शन शास्त्रोंके इतिहासमें आपकी बड़ा रस था और इस लिये इस विषयमें आपने अंग्रेजी और आपनी मातृभाषा बंगालामें अनेक छोटे बड़े निबन्ध लिखे हैं ।

जैन साहित्यविषयक आपका प्रेम देख जैन समाजने भी आपका यथोचित गौरव किया था । सन् १९१३ में बनारसमें जो अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महासभाका अधिवेशन हुआ था उसके आप अध्यक्ष बनाये गये थे और सभाने आपको 'जैनसिद्धान्त महोदधि की उपाधि समर्पित कर सन्मूक्त किया था । इसके अगले वर्ष जय जोधपुरमें जैनसाहित्य सम्मेलन हुआ तब भी आप उसके सभापति नियत किये गये थे ।

गतवर्ष जय यहां पर (पूनेमें) ' प्रथम प्राच्यविद्यापरिषद् ' हुई थी तब आप यहां पर भी आये थे और परिषद्के पालीभाषा और वीद्वत्साहित्य विषयक विभागके अध्यक्ष बनाये गये थे । उस समय हमारी भी आपसे भेंट हुई थी और परिषद्में जब हरिमद्रसूरिका समय निर्णय विषयक हमारा लेख पढ़ा गया तब प्लास तौरसे उसे सुननेके लिये आप यहां पर उपस्थित हुए थे । हरिमद्रसूरिके समयके विषयमें आपका और हमारा मतभेद था । इस लिये इस विषयमें खास चर्चा करनेके लिये उक्त परिषद्की समाप्तिके दिन आप उत्कंडापूर्वक हमारे स्थानपर भी आये थे, और बहुतसी बातचीत कर बड़े प्रसन्न हुए थे । चलते समय आप हमसे आप्रार्थ कर गये थे कि, जब हमारा उक्त निबन्ध

छपकर प्रकाशित हो जाय तो तुरन्त उसकी एक प्रति आपके पास भेज दी जाय, कि, जिससे आप आपनी जैन न्यायके इतिहास विषयक उपर्युक्त पुस्तककी दूसरी आवृत्तिमें, जो वर्तमानमें छप रही है, हरिमद्र सूरिके समयवाला लेख ठीक संशोधित कर दिया जा सके । परन्तु सद् है कि, हमारे उस निबन्धके प्रकाशित होनेके पहले ही, गत २५ अप्रैलको आप इस क्षणमंगुर संसारको छोड़कर स्वर्गमें जा गये ।

आपकी इस अकालमृत्युसे भारतवर्षके विद्या-व्यसनी विद्वानोंमेंसे एक बड़ी भारी व्यक्ति अदृश्य हो गई और जैन साहित्यका एक प्रतिष्ठित और प्रामाणिक पण्डित लुप्त हो गया ।

[२]

हमें इन पक्तियोंके लिखते हुए अत्यन्त दुःख होता है कि, इस पत्रके प्रथम अंकमें, जिन प्रो० सी० धी राजवाडेका 'जैनधर्मका अध्ययन' शीर्षक लेख प्रकट हुआ है और जिनका संक्षिप्त परिचय हमने उसी अंकके 'सम्पादकीयविचार' वाले एक नोटमें दिया है, वे आज इस संसारमें नहीं हैं । गत ८ मईको नाशिकमें जहां, पर आरोग्यप्राप्तिके लिये पिछले कुछ महीनोंसे आर विभ्रान्ति ले रहे थे, आपका शरीरपात हो गया जैन साहित्यसंशोधकके गतांकमें प्रकाशित उक्त लेख और हमारे नोटको आप देख भी नहीं पाये । यह किसको कल्पना थी कि इस प्रस्तुत अंकमें हमें अपने पाठकोंको आपका कोई विद्वत् लेख भेंट करनेके बदले आपकी मृत्युके लिये दुःखोद्गार भेंट करने पड़ेंगे । कालस्य कुटिला गति ।

राजवाडेजी बड़े बुद्धिशाली और एक होनहार विद्वान् थे । आपको प्रेस्युएट हुए अभी पूरे १० वर्ष भी नहीं हुए थे । सन् १९१२ में यहां (पूना) के फर्ग्युसन कालेजमें अध्ययन समाप्त कर आपने बी एस् सी० की डिग्री प्राप्त की और १९१४ में पाली और अंग्रेजीकी एम्. ए. परीक्षा पास की । इसके बाद तुरन्त ही आर वरोडा कालेजमें पाली और अंग्रेजीके प्रोफेसर नियुक्त हुए । वहां आपने अपने अध्यापन कार्यके सिवाय पालीसाहित्यके

प्रकाशनका कार्य भी शुरू किया। आपकी यह बड़ी उत्कट इच्छा थी कि समग्र पाली साहित्य देवनागरी लिपिमें छपाकर प्रकट किया जाय, ताकि जिससे भारतवासी,—जो आज पिछले डेढ़ हजार वर्षसे इस अनन्यतुल्य साहित्यका परिचय भुले हुए हैं—पुनः परिचय प्राप्त कर सकें और उसके द्वारा सभ्यसंस्कृत भगवान् गौतम बुद्धके अमूल्य उपदेशोंका भास्वादन कर सकें। इससे आपने सबसे पहले 'हृथवनगहविहारवंस' नामकी एक छोटीसी पाली पुरितका छपाई और उसके बाद 'मज्झिमनिकाय' का एक भाग प्रकट किया। इसी बीचमें आपने विविध परिशिष्ट और उपयुक्त टिप्पणियोंके साथ 'दीर्घनिकाय' का समग्र अनुवाद भी अपनी मातृभाषा मराठीमें किया। इसका एक भाग बड़ीदा राज्याकी औरसे प्रकाशित होनेवाली ग्रन्थमालामें प्रकट भी हो चुका है। आप शीघ्र ही, अपने सहोदर्यायी और सहकारी प्रो० बापट (फर्ग्युसनकालेज, पूना) और प्रो० भागवत (सेंट थोमस कालेज बम्बई)के संयुक्त परिश्रमसे प्रसिद्ध बौद्धग्रन्थ तिस्र-द्विगमगी एक सर्वोत्तम देवनागरी आवृत्ति प्रकट करनेकी तैयारी कर रहे थे।

आपका विद्याभ्यास बड़ा उत्कट था। अंग्रेजीके आप आचार्य थे ही, साथमें आप जर्मन और फ्रेंच भाषाओंका भी अपेक्षित ज्ञान रखते थे। भारतीय भाषाओंमें संस्कृत, पाली, प्रकृत जैसी प्राचीन और शास्त्रीय भाषाओंका यथेष्ट अध्ययन कर आपने बंगाली, गुजराती, हिन्दी जैसी वर्तमान देशभाषाओंमें भी आवश्यकीय प्रवेश कर लिया था।

जबसे आपका हमारे साथ परिचय हुआ तबसे जैनसाहित्यका विविध अध्ययन करनेकी भी आपकी तीव्र लालसा हो गई थी। जैनसाहित्यसंशोधकके लिये आपने जैन और बौद्ध साहित्य विषयक तुलनात्मक लेखमालाके लिखनेका सोसाइटी स्वीकार किया था। जैन ग्रन्थोंके प्राप्त करनेकी आप कितनी उत्कट आकांक्षा रखते थे इसका परिचय तो पाठकोंकी हमने गतांकमें जो नोट दिया है उसीसे मिल सकेगा। भावनगरसे हमारे एक सज्जन (श्रीयुत हीरालाल अमृतलाल शाह) ने कुछ जैन ग्रन्थ जब

आपके पास नाशिक भेजे, तब आप अधिक असस्थ होनेके कारण आपके सम्बन्धियोंने उन ग्रन्थोंका आपसे जिकर न करके ज्यों के त्यों एक किनारे रख दिये। पीछेसे जब आपको उसकी खबर लगी तब आप बहुत अधीर हो उठे और बिना उन ग्रन्थोंके दर्शन किये ओर पत्रे उलट-पुलट किये आपको चेन नहीं पड़ा। उन ग्रन्थोंको देखते ही आपने हमको, वैसी अवस्थतामें भी एक पत्र लिखा और पुस्तकोंकी प्राप्ति के लिये प्रसन्नता प्रकट की। इसीका नाम तथा विषयव्यासंग है।

दूर कालने इस प्रकार असमयहीमें आपको ऊठा ले जा कर भारतवर्षके एक तेजस्वी विद्वत्-रक्तो उदित होनेके पहले ही अस्तंगत कर दिया। आपकी अमर आत्माको अक्षय शांति मिले यही हमारी आपके लिये अन्तिम प्रार्थना है।

[३]

गत जुलाई मासकी अंतिमरात्रि भारतवर्षके इतिहासमें बड़ी दुःख और खेदजनक रात्रि मानी जायगी। क्योंकि कि उस कालात्रिके दुःखोत्पादक अधम घातावरणने भारतके आद्वितीय प्रतापवान् और प्रकाशपूर्ण प्रदीपको सदाके लिये निर्वाणवस्थामें पहुँचा दिया। हमारे शब्द अपने लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक महोदयकी मृत्युको लक्ष्य कर कह रहे हैं। लोकमान्यका अधिक परिचय देनेकी कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि भारतमें ऐसा कोई अभागा प्राणि नहीं है जो लोकमान्यको थोड़ा बहुत नहीं जानता हो। और वाकी यों आपका पूर्ण परिचय देनेकी शक्ति सी किसमें है। चाहे सितना भी लंबा परिचय लिखा जाय तो भी वह हमेशा अपूर्ण ही रहेगा।

आपमें जिन अनेकानेक उत्तमोत्तम शक्तियोंने आकर निवास किया था, उनमेंसे एक एक शक्ति ही मनुष्यको संसारमें पूज्य और मान्य बना सकती है, तो फिर ऐसी अनेक शक्तियोंके केन्द्रभूत धने हुए आपके महान् व्यक्तित्वकी पूज्यता और मान्यताका तो माप ही कैसे किया जाय। आप क्या नहीं थे? आप प्रकण्ठ-प्रतिभाशाली थे, उत्कृष्ट सद्वाचारी थे, परम परोपकारी थे, अगाध

धैर्यवान् थे, आदर्श कर्तव्यवान् थे, असाधारण ज्ञानवान् थे, महान् देशभक्त थे, अनुपम लोकप्रिय थे, सर्वोच्च राष्ट्रसूत्रधार थे, गंभीर राजनीतिज्ञ थे, संपूर्ण स्मार्थत्यागी थे, निष्काम कर्मयोगी थे, धुरंधर साहित्य सेवी थे, उत्तम लेखक और निपुण वक्ता थे; सब कुछ थे और संपूर्ण रीति-रिवाज थे।

जैन साहित्य संशोधकके कार्य क्षेत्रकी विशिष्टताको लक्ष्य कर, हम यहां पर आपकी अनेकानेक शक्तियोंमेंसे केवल उस एक ही शक्तिका संक्षिप्त उल्लेख करते हैं जिसके कारण आप संसारमें एक श्रेष्ठ विद्वान् माने गये। यह शक्ति आपकी अत्यंत सूक्ष्म संशोधक बुद्धि-गहन गवेषणा शक्ति थी। आपकी इस संशोधक बुद्धिका जर्मनी, इंग्लैंड और अमेरिकीके विद्वानों तकने गौरव किया है। विद्वानोंको आपकी इस शक्तिका प्रथम परिचय सन् १८९२ में मिला था। उस वर्ष लण्डन नगरमें होनेवाली 'प्राच्य विद्वानोंकी आंतरराष्ट्रीय परिषद्' (The International Congress of Orientalist) में वेदोंकी प्राचीनताके विषयमें आपने एक गहन गवेषणा और अत्यंत अनुसन्धानपूर्ण मौलिक निबन्ध भेजा था जो फिर अगले वर्ष (सन् १८९३) 'ओरायन (ORION)' के नामसे पुस्तकरूपमें प्रकाशित किया गया था। इस पुस्तकमें आपने ज्योतिष शास्त्रके नियमानुसार नक्षत्रोंकी गति ऊपरसे यह बतलाया है कि, ऋग्वेदमें जो 'ओरायन' = आराहायण नक्षत्र संबंधी ऋचायें मिलती हैं उनसे उनका रचना समय कमसे कम ई. स. से ४००० वर्ष पूर्व होना सिद्ध होता है। आपकी इस गवेषणाको पढ़ कर प्रो. मेक्षमुलर, विटनी, वेबर, गुलहर और व्लुमफील्ड जैसे प्रख्यात संशोधक विद्वानोंने आपकी शोधक बुद्धिकी उत्तम प्रशंसा की थी। डॉ. व्लुमफील्डने तो आपकी इस गवेषणाको "विज्ञान और संस्कृतके जगत्में एक हलचल मचा देनेवाली घटना" बतलाई थी और कहा था कि "निस्सन्देह, इस पुस्तकसे साहित्य संसारके आगामी वर्षमें सृष्ट सनसनी फैल जायेगी। इस वर्ष, इतिहासको तिलककी खोजके फल-फूसी में सारा समय लगा देना होगा।"

तिलक महाशयके इस सिद्धान्तकी, जर्मनीके विद्वान् डॉ. जेकोबीके सिद्धान्तसे अचिन्त्य समानता हो गई थी। क्योंकि कि डॉ. जेकोबी भी अपनी स्वतंत्र गवेषणाद्वारा वेदोंका रचना समय लगभग वही स्थिर कर सके जो तिलक महाशयने किया। इससे पुरा तत्त्वज्ञानमें आज यह सिद्धान्त तिलक-जेकोबी (Tilak-Jacobi theory) के संयुक्त नामसे व्यवहृत होने लगा है।

ऐसा ही अनुसन्धानात्मक दूसरा ग्रन्थ आपका 'वेदोंमें आर्योंका उत्तर ध्रुवनिवास (The Aryan Home in the Vedas)' है। यह ग्रन्थ सन् १८९७ में जब आपकी दूसरी बार कारागृहवास मिला था तब लिखा गया था। वेद, ब्राह्मण आदि संस्कृत ग्रंथ, पारसियोंके जिन्द्-अवेस्ता ग्रन्थ और पश्चिमीय विद्वानोंके लिखे हुए भूगर्भविद्या सम्बन्धी नवीन ग्रन्थोंका सूक्ष्म अध्ययन और मनन कर आपने इस ग्रन्थकी रचना की है। इस ग्रन्थमें आपने वेद, ब्राह्मण, पुराण, अवेस्ता इत्यादि शास्त्रोंके अनेकानेक प्रमाण देकर, यह प्रतिपादित किया है कि वेदकालीन आर्यलोग उत्तर ध्रुवके प्रदेशमें निवास करते थे। कारागृहमें बैठे बैठे, इस ग्रन्थके लिखनेके लिये अपेक्षित साधनोंके अध्ययन-प्रश्नकी अनुमति सरकारने आपको प्रो. मेक्षमुलरके अनुरोधसे दी थी। पीटैले उन्हीं प्रोफेसर महोदयके विशेष परिश्रम और प्रयत्नसे सरकारने आपको असमय ही में बन्धनमुक्त भी कर दिया था। कारागृहमेंसे निकले बाद आपने उक्त प्रो. को एक कृतज्ञतापूर्ण पत्र लिखा जिसमें अपने किये हुए इस नवीन अनुसन्धानका कितनाएक उपयुक्त सार भी लिख भेजा। इस सारको पढ़ कर प्रोफेसर महाशयने तिलक महोदयको लिखा था कि "कितनीएक वैदिक ऋचाओंका अर्थ आपके बतलाए मुताबिक ठीक हो सकता है; परंतु कदाचित् उनके आधारपरसे निकाला हुआ सिद्धान्त भूतत्त्व शास्त्रके सिद्धान्तके साथ मेल नहीं खायेगा, ऐसी सुझे शंका है।" खेद है कि तिलक महाशयके इस ग्रन्थके प्रकाशित होनेके पहले ही-यह ग्रंथ सन् १९०३ में प्रकाशित हुआ-प्रो. मेक्षमुलरका देहान्त

होगया, जिससे उनके अधिकारयुक्त अभिप्रायसे आपका यह ग्रन्थ वञ्चित रहा। परंतु, दूसरे विद्वानोंने आपकी इस कृतिका भी खूब सत्कार किया। बोस्टन विश्वविद्यालयके अध्यक्ष डॉ. वारिनने इस पुस्तकके विषयमें कहा था कि "इन्डो इरानी विद्वानोंने जितनी पुस्तकें इस विषयपर आजतक लिखी हैं उन सबमें यह पुस्तक अधिक निश्चयात्मक है। जो कोई स्वर्गिय मि. नील की 'देव रात्रि' (The night of Gods) का और इस पुस्तकका पारायण कर लेगा वह संभवतः फिर कभी यह न पूछेगा कि आपोंका आदिम निवासस्थान कहाँ है।"

आपको जय सन् १९०८ में तीसरी बार जेलयात्राका हुक्म हुआ तब संबालेके एकान्तवासमें बैठ कर आपने यह गीतारहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र

लिखा, जो आज भारतके प्रत्येक धर्मज्ञानसुजनके घरमें विराजमान हो रहा है तथा प्रत्येक विद्वान् और विद्यार्थीके लिये एक अत्यावश्यक पाठ्य ग्रंथ बन रहा है। इस ग्रन्थमें आपने अपने जीवनके समग्र विचार स्रोतोंको एकत्र कर शास्त्ररूप महासरोवरके रूपमें बद्ध कर दिया है। पूर्वोक्त और पाश्चात्य तत्त्वज्ञानकी सभी मृत्यु मुद्य विचार-श्रेणियोंका गंभीर मन्थन कर आपने इस अमूल्य ग्रन्थरत्नको प्रकट किया है। आपके नामको अजरामर बनानेवाला केवल यही एक ग्रन्थरत्न पर्याप्त है।

आपके देह विलयसे संसारका एक श्रेष्ठ और प्रखर ज्योतिःपूर्ण ज्ञानस्वरूप महानक्षत्र अस्त हो गया।



चित्र-परिचय ।



१—गत अंक्रमें जो दर्शनीय चित्र दिये गये हैं उनमें पहला रंगीन चित्र पावापुरीके जलमंदिरका है। पावापुरी पटना जिलेकी सुबे विहार तहसीलका एक छोटासा गांव है। जैन समाजकी मान्यता अनुसार श्रमण भगवान् श्रीमहावीरदेवकी निर्वाण-भूमि यही पावापुरी है। इस लिये जैनियोंका यह एक परम पवित्र तीर्थस्थल है। इस गांवके पास एक कमलसरोवर नामका अच्छा तालाब है। इस तालाबमें हमेशा असंख्य कमलपत्र खिले रहते हैं इसलिये इसका नाम भी कमलसरोवर पड़ गया है। इस सरोवरके मध्यमें एक भव्य मंदिर बना हुआ है, जिसमें संगमरमरके घन हुए भगवान् महावीर स्वामीके पूजनीय चरणोंकी स्थापना की हुई है। मंदिर बड़ा सुवस्त्र और दर्शनीय है। भाषुक मनुष्योंके हृदयमें वहां पर जानेसे बड़ी भक्ति उत्पन्न होती है और कुछ काल तक वहां पर बैठ कर ध्यान धरनेसे अपूर्व शक्ति प्राप्त होती है।

इसी मंदिरका वह सुन्दर चित्र है। चित्रमें मंदिर, सरोवर, आसपासके किनारों पर लगे हुए वृक्ष, इत्यादि सभीका मनोहर दृश्य दिखाई दे रहा है। आरा निवासी उत्साही जैन युवक श्रीपुत कुमार देवेन्द्र प्रसादजीने अपनी ओरसेही वह चित्र जैनसाहित्यसंशोधकके पाठकोंको भेंट किया है। तदर्थ आप साधुवादके पात्र हैं।

२—गतांशका दूसरा हाफटोन चित्र, भारत-प्रसिद्ध पीरभूमि चितोड़ नगरीके समीपमें रहा हुआ इतिहास प्रसिद्ध चितोड़गढ़ (किला) मेंके एक अति प्राचीन जैन कीर्तिस्तंभ (Jain Tower.) का है। चितोड़के किलेमें दो कीर्तिस्तंभ हैं जिनमें एक जो अधिक ऊंचा और विशेष प्रसिद्ध है वह १५ वीं शताब्दीमें सुप्रसिद्ध राणा कुंभा द्वारा बनाया गया है और इससे उसका असली नाम

‘कुंभमेख’ है। दूसरा स्तंभ यह जैन कीर्तिस्तंभ है। ‘कुंभमेख’ की अवस्था यह जैन कीर्तिस्तंभ बहुत प्राचीन है और पुरातत्त्वज्ञोंने ११ वीं या १२ वीं शताब्दीमें इसके बननेका अनुमान किया है। यह किसी दिगम्बर जैनका बनाया हुआ है। क्यों-कि इसमें जो जिनमूर्तिमां लगी हुई हैं वे दिगम्बर हैं।

यह स्तंभ ८० फीट ऊंचा है। समुद्रकी सतहसे इसकी ऊंचाई १०,०० फीट और नीचेकी जमीनसे ६०० फीट है। यह किलेकी सबसे ऊंची भूमिपर बना हुआ होनेसे इसका शिखर किलेमेंके सभी मकानोंसे ऊंचा दिखाई देता है। इसके शिखरका जीर्णोद्धार हाल हीमें-दस बारह वर्ष पहले-सरकारने बड़ा खर्च करके करवाया है। सारे हिंदु-स्थानमें जैनियोंका यही एक मात्र महत्त्वका पुरातन कीर्तिस्तंभ मौजूद है। इसका समग्र ऐतिहासिक वर्णन आगेके किसी अंक्रमें, एक स्वतंत्र लेख द्वारा पाठकोंको सुनायेंगे।

चित्रमें जो दो जुदा जुदा प्लाक हैं उनमें बाहिरी तरफवाला प्लाक स्तंभकी उस अवस्थाका दर्शन करा रहा है जब उसके शिखरका जीर्णोद्धार नहीं किया गया था। बाईं तरफका दृश्य जीर्णोद्धारके अनन्तरका है।

३—इस अंक्रमें करहेडाके पार्श्वनाथ जैन मंदिरका चित्र दिया जाता है। यह गांव उदयपुर (मेवाड़) राज्यमें आया हुआ है और चितोड़-उदयपुर रेलवे लाईनके बीचमें पड़ता है। गांव बिल्कुल छोटासा मामूली है। गांवसे बहार, कुछ फासले पर यह मन्दिर बना हुआ है। मन्दिर ५२ जिनालय है और बड़ा भव्य है। मन्दिरमें पार्श्वनाथ तीर्थंकर की मनोहर मूर्ति प्रतिष्ठित है। पुराने लेखोंमें इस गांवका नाम ‘करहेटक’ ऐसा लिखा हुआ मिलता है। यह मन्दिर १४ वीं शताब्दीके लगभगका बना हुआ अनुमान किया जाता है। ऐतिहासिक वर्णन फिर कभी दिया जायगा।



जैन साहित्य संशोधक



महामहोपाध्याय डॉ. सतीशचंद्र विद्याभूषण, एम ए पी एच् डी।

जैन साहित्य मंशोधक



स्वर्गीय श्रीमान् बाल गंगाधर तिलक ।

નમોત્તુ જ્ઞં સમણસ્સ મગવથો મહાવીરસ્સ ।

જૈન સાહિત્ય સંશોધક

ભાગ ૧]

ગુજરાતી લેખ વિભાગ

[અંક ૨

સોમપ્રભાચાર્ય વિરચિત કુમારપાલ પ્રતિબોધ ।

(ગ્રંથ પરિચય)

[ઘડોદરાના વિદ્યાધિલાસી નૃપતિ શ્રીસયાઝીરાવ ગાયકવાડ સરકાર તરફથી, ' ગાયકવાડ સ્ ઓરિયન્ટલ સીરીઝ ' નામે ૫-૬ વર્ષથી એક ગ્રંથમાલા પ્રકટ થવા લાગી છે જેની અંદર સંસ્કૃત, પ્રાકૃત, અપભ્રંશ આદિ ભાષાઓમાં લખાણો પ્રાચીન અને દુર્લભ્ય ગ્રંથો પ્રકાશિત થાય છે. ૫ ગ્રંથમાલાના મૂળ ઉત્પાદક અને મુખ્ય સંપાદક સ્વર્ગસ્થ વિદ્વાન્ શ્રાવક શ્રીયુત ચિમનલાલ ડાહ્યાભાઈ દલાલે પાટણ અને જેસલમેર (રાજપૂતાના) ના જુના જૈન પુસ્તક મંડારોતું સૂક્ષ્મ નિરીક્ષણ કરી તેમાંથી કેટલાક ઉત્તમ અને ધલભ્ય-દુર્લભ્ય જૈન ગ્રંથો, ઉપત સીરીઝમાં પ્રકટ કરવા માટે ખાસ ઘુંટી કાઢ્યા હતા. ૫ ગ્રંથોમાં સોમપ્રભાચાર્યવિરચિત કુમારપાલ પ્રતિબોધ નામનો પણ એક પ્રાકૃત માયામય મોટો ગ્રંથ છે જેનું સંપાદન કાર્ય સ્વર્ગસ્થ ભાઈ દલાલે ઘણા આગ્રહપૂર્વક અને સોષ્યું હતું. ૫ ગ્રંથ હવે છપાઈને તૈયાર થયો છે. એની પ્રસ્તાવના જે મારા તરફથી લખવામાં આવી છે, તે જૈન સાહિત્ય સંશોધકના શાસ્ત્રકોને ખાસ ધ્યાન લાયક હોવાથી, અન્ન પ્રકટ કરવામાં આવે છે. મૂળ પુસ્તકમાં આ પ્રસ્તાવનાનો હિંદી અનુવાદ તથા સંસ્કૃતસાર આપવામાં આવ્યો છે.—મુનિ જિનવિજય ।]

સ્તુમશ્વિસન્ધ્યં પ્રશુદ્ધેમસૂરેરનન્યતુલ્યાણુપદેશશક્તિમ્ ।

અતીન્દ્રિયજ્ઞાનવિવર્જિતોઽપિ યઃ શોષિભર્તુર્વ્યધિત પ્રવોધમ્ ॥

સત્ત્વાનુકમ્પા ન મહીશ્વજાં સ્યાદિત્યેપ વલ્પ્તો વિતથઃ પ્રવાદઃ ।

જિનેન્દ્રધર્મ પ્રતિપથ્યેન, શ્લઘ્યઃ સ કેપાં ન કુમારપાલઃ ॥

—સોમપ્રભાચાર્ય ।

ગુજરાતના ચૌહાલકવચંશના પ્રસિદ્ધ નૃપતિ કુમારપાલને જૈનાચાર્ય હેમચંદ્રસૂરિય સમય સમય ઉપર જે રીતે જૈનધર્મના સિદ્ધાન્તોનો, વિવિધકથા—આલ્યાનો દ્વારા બોધ આપ્યો હતો; અને તે યોગ્યું શ્રવણ

કરી જે રીતે કુમારપાલે જૈનધર્મનો સંપૂર્ણ સ્વીકાર કર્યો હતો તેનું સામાન્ય ધર્મન આ પ્રથમાં આપવામાં આવ્યું છે. પ્રંથકારે આ પ્રંથનું નામ 'જિનધર્મ-પ્રતિયોધ' એવું રાખ્યું છે; પરંતુ, પ્રત્યયના અંતે, પુષ્પિકાલેખમાં 'કુમારપાલ-પ્રતિયોધ' એવું નામ લખેલું મઢવાથી, તેમ જ પ્રંથગત વિષયનો નામમાત્રના નિર્દેશથી પણ વાચકોને વ્યાલ આવી શકે તેવા હેતુથી, મેં આ પુસ્તક ઉપર એ જ નામ અંકિત કરવું ઘણું યોગ્ય ઠાવ્યું છે.

આ પ્રંથની પ્રસ્તુત આવૃત્તિ, ગુજરાતની પ્રાચીન રાજધાની પાટણ શહેર (જે વર્તમાનમાં ઘડોદરા-રાજ્યના કડીપ્રાંતમાં એક સાધારણ તાલુકાનું સ્થાન મોગવે છે) માંના જૈન પુસ્તક માંડાગારમાંથી મળી આવેલા તાડપત્રાત્મક પુસ્તક ઉપરથી તૈયાર કરવામાં આવી છે. એ તાડપત્રના એકંદર ૨૫૫ પાનાં છે. પ્રત્યેક પાનું ૨ ફીટ ૭ ઇંચ લાંબું અને માત્ર ૨ ઇંચ પહોળું છે, એ પાનાના પ્રત્યેક પૃષ્ઠ (એક યાજુ) ઉપર ઘણી પાંચ પંક્તિઓ, ફાલી શાહીથી લેખનાગરી લિપિમાં લખેલી છે દરેક પંક્તિમાં લગભગ ૧૪૦ થી ૧૫૦ જેટલા અક્ષરો આવેલા છે. પ્રત્યેક પંક્તિ ઘણા વિભાગોમાં વહેંચાણી છે, અને દરેક વિભાગની વચ્ચે એક એક ઇંચ જેટલી છાલી જગ્યા રાખવામાં આવી છે. એ છાલી રાખેલી જગ્યામાં, યાજા પુસ્તકનાં ઘણાં પાનાંઓ ભેગાં ઘાંધી લેવા માટે એક છિદ્ર પાડી તેમાં સંલગ્ન દોરી પડેલી છે. આ પુસ્તક સવત્ર ૧૪૫૮ માં લંબાતમાં લખાવેલું છે આ સમય પછી લખાવેલું થાંજું કોઈ તાડપત્ર જૈન મંડારોમાં મારા જોવામાં આવ્યું નથી. આ ઉપરથી હું એમ અનુમાન કરું છું કે, ગુજરાતમાં—અને સાધારણ રીતે પશ્ચિમ અને ઉત્તર હિંદુસ્થાનમાં પણ—તાડપત્ર ઉપર પુસ્તક લખવાના ઇતિહાસમાં આ પુસ્તક સૌથી અંતિમ સ્થાન મોગવે છે. જૈનોનાં ઇતિહાસિક સાધનો ઉપરથી જણાય છે કે ઈસવીની ૧૪ મી શતાબ્દિના પ્રારંભમાં જ તાડપત્રો ઉપર પ્રંથો લખવાનો પરીવાટ કરી થવા માંડ્યો હતો અને તાડપત્રોનું સ્થાન કાગળો લેવા માંડ્યું હતું. તે વખત દરમ્યાન પાટણ, લંબાત, જેસલમેર (રાજપૂતાના) આદિ—જૈન પુસ્તક માંડાગારો માટે પ્રસિદ્ધ થયેલા—જૂના શહેરોમાં તાડપત્ર ઉપર લખેલા જે વિશાળ પુસ્તકસંગ્રહો હતા તે ઘણાના એની સાથે અને ઘણી જાડપથી કાગળો ઉપર ઉતારાઓ થવા લાગ્યા હતા. વર્તમાનમાં કાગળ ઉપર લખેલાં જૂનામાં જૂનાં જે પુસ્તકો ઉપલબ્ધ થાય છે, તે ઘણાં તે જ વખતનાં લખેલાં છે. તેમ જ તાડપત્ર ઉપર અર્વાચીનમાં અર્વાચીન જે પુસ્તકો છે તે પણ તે જ વખતનાં છે તે પછી લખેલાં તાડપત્રો મળતાં નથી. આ ઉપરથી એમ માર્ગી શકાય કે એ પ્રદેશોમાં કાગળનો પ્રવેશ તે જ વખતે થયેલો હોયો જોઈએ. પ્રકૃત તાડપત્રના લેખન કાલમાં તાડપત્ર ઉપર લખવાનો પ્રચાર ઘણું જ વિરલ થઈ ગયેલો હોયો જોઈએ. અને લહિયાઓ તાડપત્ર ઉપર લખવાના અભ્યાસ અને શાહીની વળાવટ વિમેરેની કલાને મળી જવાથી તૈયારીમાં હોવા જોઈએ. કારણ કે પ્રકૃત તાડપત્ર ઉપરનું લખાણ જૂનાં તાડપત્રો કરતાં ઘણાં જ હલકા પ્રકારનું દૃષ્ટિગોચર થાય છે. ૧૨ મા ૧૩ મા સૈકાનાં તાડપત્રોની લિપિ જેટલી સુંદર અને શાહી જેટલી ઉત્તમ હોય છે તેટલી આમાં દેખાતી નથી. આ તાડપત્રની શાહી ઘણી જ પોળી અને અનેક સ્થલેથી તો તે અત્યાર આગમચ સરી પડી—મુંસાઈ ગઈ છે કોઈ કોઈ પૃષ્ઠમાં તો પંક્તિઓની પંક્તિઓ તેવી રીતે અદૃશ્ય થઈ ગઈ છે અને તેના લીધે લખાણ ઘાંચવું પણ યહ કટણ થઈ પડે છે ત્યારે આના કરતાં ૨૦૦-૩૦૦ વર્ષ જૂનાં તાડપત્રોની શાહી જોઈએ છીએ તો આજે પણ તેવીની તેવી ચલકતી અને ફાલી દેખાઈ આવે છે. જૂનાં તાડપત્રોની જેટલી લેખન-શુદ્ધિ પણ આ પુસ્તકમાં જલ્પાણી જણાતી નથી. આનું કારણ એ છે કે પ્રાચીનકાલમાં લહિયાઓ સાધારણ રીતે સંસ્કૃત—પ્રાકૃત ભાષાનું સામાન્ય જ્ઞાન ધરાવનારા થતા હતા. તેમ જ ઘણાક વિદ્વાનો તે વખતે જાતે જ પુસ્તકો લખતા હતા. તેથી તે વખતનાં પુસ્તકોમાં સાધારણ રીતે અશુદ્ધિઓ ઘણી અલ્પ પ્રમાણમાં મળી આવે છે. પરંતુ પ્રકૃત તાડપત્રના લેખનસમયમાં, તાડપત્ર ઉપરથી કાગળો ઉપર પ્રંથો ઉતારાવાનું કામ ઘણા વિશાળ પ્રમાણમાં શરૂ થયેલું હોવાથી, તેટલા કામને પહોંચી વળે પડેલા, માપાજ્ઞાનસપ્ત લહિયાઓના અભાવને લીધે, માત્ર અક્ષરાકૃતિ સમ-

જ્યા પુરતું જ્ઞાન ધરાવનારા અને મશ્કિમ્મસ્થાને માહિકા ચિતરનારા લહિઆઓ પાસેથી એ કાર્ય કરાવવામાં આવતું હતું તેથી જૂના પ્રયોગી નક્કો કરતાં એ વખતે લહિઆઓના હાથે ઘણી અશુદ્ધિઓ તે પ્રયોગમાં દાખલ થઈ ગઈ હતી. આ જ કારણને લઈને કુમારપાલ પ્રતિવંધના પ્રકૃત આદર્શમાં પણ લેખન-અશુદ્ધિઓ ઘણા મોટા પ્રમાણમાં પ્રવિષ્ટ થઈ ગયલી જોવાય છે. આ પુસ્તકની નકલ કરનાર કાયસ્થ પેતાનું ભાષાજ્ઞાન કેવું હશે તેનું અનુમાન, પુસ્તકના અંતમાં તેણે જે સંવત્ વિગેરેના ઉલ્લેખ વાળો પુષ્પિકાલેખ લખ્યો છે, તે ઉપરથી થઈ શકે તેમ છે.

ઉલ્લિખિત તાડપત્ર સિવાય એક થીડું પણ તાડપત્ર પ્રસ્તુત ગ્રંથનું મને મળ્યું છે, જે પાટણના સંઘ-ધીના પાડાના નામે ઓલ્લાતા પુસ્તકમંડારની માલિકીનું છે. એ તાડપત્ર, ઉક્ત તાડપત્ર કરતાં ઘણા જૂનું અને વિશેષ શુદ્ધરિતે લખાયેલું છે. પરંતુ એ ઘણું જ અપૂર્ણ—ઝડિત છે. એમાં ૫૧ થી તે ૩૦૫ નંબર સુધીનાં પાનાં છે. આ ગ્રંથના ચતુર્થ પ્રસ્તાવમાં દેશાયકાસિક વ્રતોપરિ જે પવનંજયની કથા આપેલી છે તેના મધ્યભાગથી જ એ તાડપત્ર ઝડિત થઈ ગયું છે. એની સાઈઝ ૨'૭"×૨" લાંબી-પહોળી છે. પ્રત્યેક પૃષ્ઠમાં ૩ થી ૫ લાઈનો આવેલી છે, અને દરેક લાઈનમાં ૧૦૫ થી ૧૨૦ સુધી અક્ષરો લખેલા છે.

આથી રીતે પ્રસ્તુત પુસ્તકનો અલંબ એવો એક જ ઉપર્યુક્ત આદર્શ મને મળવાથી (અને જ્યાં સુધી હું જાણી શક્યો છું, ધીજો સંપૂર્ણ પ્રાચીન આદર્શ અન્યથા ક્યાંયે છે પણ નહિ) અને તે પણ વિશેષ અશુદ્ધ હોવાથી, આ ગ્રંથના સંશોધનનું કામ મારા માટે ઘણું જ કઠણ થઈ પડ્યું હતું.

સોમપ્રભાચાર્ય

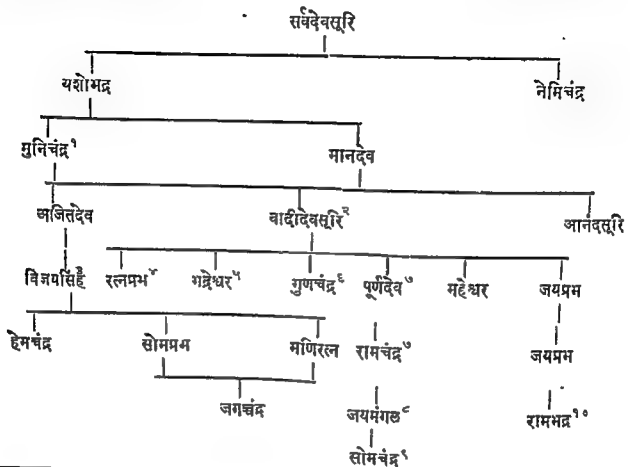
પ્રથમકાર સોમપ્રભાચાર્ય એક સુપ્રસિદ્ધ અને સુજ્ઞાત જૈન વિદ્વાન્ છે. તેમણે પ્રસ્તુત ગ્રંથ બિનમ સઘ-ત્ ૧૨૪૧ માં, પટલે કુમારપાલ રાજાના મૃત્યુ પછી માત્ર ૧૧ વર્ષે વનાવ્યો હતો. આ ઉપરથી તેઓ રાજા કુમારપાલ અને આચાર્ય હેમચંદ્રના સમકાલીન હતા એ સ્વતઃ સિદ્ધ છે. તેમણે આ ગ્રંથ, નેમિનાગના પુત્ર શ્રેષ્ઠી અમયકુમારના હરિશ્ચંદ્રાદિ પુત્ર અને શ્રીદેવી આદિ પુત્રિઓની પ્રીત્યર્થે, પ્રાગ્વાદજાતીય કવિચક્રવર્તી શ્રી-શ્રીપાલના પુત્ર કવિ સિદ્ધપાલની વસતિ (જેન મંદિર યા જેન ઝળાશ્રય) માં રહીને રચ્યો છે; તથા પુત્ર હેમચંદ્રાચાર્યના મહેન્દ્રમુનિ^૧, વર્ધમાન^૨ અને ગુણચંદ્રે નામે વિદ્વાન્ શિષ્યોએ તેને અધધી તે હિતિ સુધી સાંમળ્યો છે. અમયકુમાર શ્રેષ્ઠી, આ જ ગ્રંથમાં જણાવ્યા પ્રમાણે, કુમારપાલ રાજાએ અનાય અને અસમર્થ જનોના ભરણ પોષણ માટે થોલેલા સત્રાગાર આદિ ધર્મોદાય જ્ઞાતાઓનો ઉપરી હતો. (જુઓ પૃષ્ઠ ૨૧૯-૨૦). કવિચક્રવર્તી શ્રી-શ્રીપાલ ગુજરાતનો એક સર્વશ્રેષ્ઠ કવિ અને સિદ્ધરાજ જયસિંહનો ઘણો માનીતો તેમ જ સ્વીકૃત શ્રાવ્યો હતા. તેનો પુત્ર સિદ્ધપાલ પણ ઉત્તમ કોટિનો કવિ હોઈ કુમારપાલ રાજાનો પ્રીતિપાત્ર અને પ્રદેય સહદ હતો. આ કવિકુળના સંબંધમાં મેં અન્ય સવિસ્તર લખ્યું છે, (—જુઓ દ્રૌપદી સ્વયંવર નામે સિદ્ધપાલ પુત્ર કવિ વિજયપાલ રચિત નાટકની મારી પ્રસ્તાવના.) તેથી અહીં પુનઃ-રાવૃત્તિ કરતો નથી. શ્રીપાલ કવિ, સોમપ્રભાચાર્યના પૂર્વાચાર્ય દેવસુરિનો ચરણોપાસક હતાં નેથી એ કવિ-કુટુંબનો, તેમના શિષ્યસમુદાય ઉપર સવિશેષ અનુરાગ હોય તથા તે સાધુ-સમૂહનો પણ એ કુટુંબ ઉપર વિશેષ આદરભાવ હોય તે સ્વાભાવિક છે. સોમપ્રભાચાર્યના ગુરુઓ તથા અન્ય સાધુઓ અળદિ-લપુરમાં ઘણું કરીને એ કવિકુટુંબના મકાનોમાં જ નિવાસ કરતા હતા. સોમપ્રભાચાર્ય પોતાનો ધીજો બૃહદ્રથ નામે સુમતિનાથચરિત્ર પણ એ કુટુંબનો વસતિમાં જ વસીને વનાવ્યો હતો.

૧ આ મહેન્દ્રમુનિએ હેમચંદ્રાચાર્યરચિત અનેકાર્યનામસંપ્રદાય નામક કોષ ઉપર અનેકાર્યકૈવસાકરવૈમુદી નામે ટીકા લખી છે, —જુઓ, પાંટસન રિપોર્ટ ૧, પૃ. ૫૩.

૨ વર્ધમાનગણિએ કુમારવિહારપ્રશસ્તિ વનાવી છે. —જુઓ, ષોટસન રિપોર્ટ ૩, પૃ. ૩૧૬.

૩ ગુણચંદ્રગણિએ, પ્રમથસતકર્તૃ મહાકવિ રામચંદ્રને નાટ્યદર્શન નામક ગ્રંથ લખવામાં સહાયતા કરી હતી.

કુમારપાલ પ્રતિયોધની પ્રશસ્તિ તથા ચીજા પ્રથોક્ત ઉલ્લેખો ઉપરથી સોમપ્રમાચાર્યની ગુરુપરંપરા-
વિનો બંધાવૃક્ષ નીચે પ્રમાણે થાય છે:—



૧. ઉપદેશપદ, અને કાન્તજયપતાકા, લલિતવિસ્તરા, યોગબંદુ આદિ શ્રીમદ્વાચાર્યરચિત ગ્રંથો ઉપર ટીકા-ટિપ્પણ-
દિના પ્રસિદ્ધ લેખક.^૧

૨. સ્વાધ્યાદરત્નાકર નામક મહાનુ જૈનતર્કવ્યવહાર પ્રણેતા,
૩. ધર્મસાગરગણિય પોતાની પદ્યવર્ણનો આ વિજયસિંહને, ચાલુક્યવંશીય વિશેષકમઝરીશ્રુતિના સંશોધક ('શ્રીશિ-
જયસિંહસૂરિ:—વિશેષકમઝરીશ્રુતિ: ૧') લખ્યા છે પરંતુ તે ખૂલ છે. તે શ્રુતિના સંશોધક આ વિજયસિંહ નથી, પરંતુ
નાગેશ ગચ્છના વિજયસેનસૂરિ છે. જુઓ પોટકેનનો ૩ જો રીપોર્ટ પૃ. ૧૦૩. આ વિજયસિંહનો એક શિલાલેખ આરાધના
જૈનમંદિરમાંથી મળી આવ્યો છે, જે સંવત્ ૧૨૦૬ ની સાલનો છે. જુઓ માંડ પ્રાચીન જૈનલેખસંગ્રહ નામનું પુસ્તક, સેત
નંબર ૨૮૯.

૪. રત્નપ્રભે રત્નાકરાવતારિકા નામે સુજ્ઞાત તર્કવ્યવહાર બનાવ્યો છે. ઉપદેશમાલાશ્રુતિ આદિ વીજા પળ એમના કેટલાક
પ્રસિદ્ધ ગ્રંથો સ્પષ્ટ છે.

૫. મગ્ધેશ્વરે વાદી દેવસૂરિને સ્વાધ્યાદરત્નાકર ગ્રંથ રચવામાં મુખ્ય યથાચાર્ય કરી હતી. તથા પોતાના ગુરુના અવસાન
પછી તેમની ગાદીના મુખ્ય આચાર્ય એ પોતેજ નીમાણે હતા.

૬. ગુણચંદ્રે હેમચિત્રનામ વ્યાકરણવિષયક એક છપ્પ ગ્રંથ બનાવ્યો છે.

૭. જાલોરના એક શિલાલેખમાં આ ગ્રંથે ગુરુ-શિષ્યનો સંલેખ કરેલો છે.

૮. સુધાટેકરી (મારવાડ) ઉપર આવેલી ચાચિગદેવની પ્રશસ્તિના કવિ.

૯. શ્રુતરત્નાકરની શ્રુતિરત્નાકર.

૧૦. મનુશ્રોતિગ્રંથ નાટકના રચનાર,

આ ઘંટાવૃક્ષમાં આપેલી વ્યક્તિઓ જૈનસાહિત્ય અને જૈનઇતિહાસમાં સુપ્રસિદ્ધ છે. એ સાધુઓમાંના કેટલાક તો ઘણા મોટા પ્રંથકારો છે અને તેમની ચનાવેલી અનેક કૃતિઓ આજે પણ જૈનસાહિત્યની શોભા વધારી રહી છે. આ ઉપરથી પ્રસ્તુત પ્રંથકારનો સમુદાય કેટલો બધો વિદ્વાન્, પ્રતિષ્ઠિત, અને સાહિત્યોપાસક હતો તેનો ધ્યાલ આવી શકે છે. સોમપ્રમાચાર્યના એક મુદ્રણાતા નામે હેમચંદ્રે નામેયને-મિ નામનું દ્વિસંધાન કાવ્ય ચનાવ્યું છે જેનું સંશોધન શ્રદ્ધ કવિચક્રવર્તી શ્રીપાલે કર્યું હતું.^૧ સોમપ્રમાચાર્યની ગાદી ઉપર સુપ્રસિદ્ધ જગધંદ્રસૂરિ આજ્યા હતા જેઓ તપાગચ્છના નામે ઓઢલાતા સુવિસ્તૃત સાધુસમુદાયના મૂલ પુરુષ મનાય છે. પટ્ટાવલિઓ પ્રમાણે, સોમપ્રમાચાર્યનો મહાચોરની પદ પરંપરામાં ૪૩ મો નંબર છે.

સોમપ્રમાચાર્યના વિચમાન ગ્રંથો

કુમારપાલ પ્રતિબોધ સિવાય સોમપ્રમાચાર્યના ચીજા જળ ગ્રંથો ઉપલબ્ધ થાય છે. જેમાં એક તો સુમતિનાથચરિત્ર છે. એ પ્રથમાં જૈનધર્મના પાંચમા તિર્થંકર સુમતિનાથનું ચરિત્ર વર્ણવામાં આવ્યું છે. તે ચરિત્ર પણ કુમારપાલ પ્રતિબોધની માફક મુરચ કરીને પ્રાકૃત માપામાં જ રચેલું છે; અને તેમાં પણ જૈનધર્મના સિદ્ધાન્તોનો બોધ આપતી પુરાણકથાઓ કલ્પિત છે. તેની શ્લોકસંખ્યા લગભગ સાઠા નવ હજાર ઉપર છે. પાટણના જૈન મંઠારોમાં એ ચરિત્રના હસ્તલેખો મારા જોવામાં આવ્યા છે.^૨ ચીજો ગ્રંથ સૂક્તિમુક્તાવલી નામે પ્રસિદ્ધ ૧૦૦ પદવાળો એક પ્રકીર્ણ પ્રવંધ છે. એ પ્રવંધનું પ્રથમ પદ 'સિન્દુરપ્રકર' પણ વાક્યથી શરૂ થતું

૧ આ કાવ્યની ઐતની પ્રકાશિતના કેટલાક શ્લોકો નીચે પ્રમાણે છે:—

મક્ક: ધીમુનિચંદ્રસૂરિણુરોઃ ધીમાનંદવસ્ય ચ ધીમાન્ સોઽજિતદેવસૂરિભવત્ પદત્કંદુરધામ્ભુઃ ।

સચ: સંસ્કૃતગયપચલહરીપૂજ્ય વસ્ય પ્રભોઽસિષ્ઠા વાદિપરપરા તૂણતુર્ણી ઘત્તે સ્મ દૂરીકતા ॥

ધીમાનમ્ભૂત વિજયસૂરિમુખ્ય શિષ્યો યેન X X X સ્વરસ્ય શરાન્ શૃદ્ધિતા ।

પલ્લત્તે ચતુર્ભિરનયં શરયન્ત્રમયે વિશ્વં તદેકશિશિલેન વશં ચ વિન્યે ॥

ધીદેમચંદ્રસૂરિર્વિભૂત શિષ્યસ્તથાપરસ્તસ્ય । અવહતયે તેન રુતો દ્વિસંધાનપ્રબન્ધોઽયમ્ ॥

एकाहनिपलमहाप्रबन्धः श्रीसिद्धराजप्रतिपन्नबन्धुः । श्रीपालनामा कविचक्रवर्ती सुधीरिर्म शोधितवान् प्रबन्धम् ॥

૨ એ ચરિત્રની ઐતની પ્રકાશિત પણ ઘણા અંશે કુમારપાલ-પ્રતિબોધના જેવી જ છે, અને તે નીચે પ્રમાણે છે:—

ચન્દ્રાકોં ગુરુવૃદ્ધનમ્મઃ કર્ણાવત્ઠૌ ક્ષિતેર્ધૈર્થો ધર્મરપસ્ય સર્વજગતસ્તત્સાવલોકે દશૌ ।

નિર્તાળાવસથમ્ય તોરણમહાસ્તમ્ભાવમ્ભૂતામુભાવેકઃ શ્રીમુનિચંદ્રસૂરિરપરઃ ધીમાનંદેવપ્રભુઃ ॥

શિષ્યન્તયોરજિતદેવ ઇતિ પ્રસિદ્ધઃ સૂરિઃ સમગ્રગુણરત્નભિર્વિભૂત ।

પ્રીતિં યદ્દિપ્રક્રમલે સુભિશ્વરગિરાસ્વાદિતશ્રુતરસા તરસા બબન્ધ ॥

શ્રીદેવસૂરિવમુશા યમુરુન્યેઽપિ તરગદપયોજર્હસઃ । ચેપામવાધારનિતસ્થિતીનાં શાલીકૈમશ્રીમુદમાનમાન ॥

વિશારદશિરોમણે રવિતદેવસૂત્રિમોર્વિન્યેનિલકોઽમવદ્ વિજયસિંહસૂરિરુઃ ।

જગત્રયવિજેતુર્ભિર્વિમલશાંલવર્માઢિત વ્યભેદિ ન કદાચન સ્મરશૈર્યદોર્ય મનઃ ॥

ગુરોસ્તસ્ય પદામ્ભોજપ્રસાદાન્યન્દ્યદોષાપિ ધીમાન્ સોમપ્રમાચાર્યચરિત્રં સુમતેર્વ્યધાત્ ॥

પ્રાગ્વાટાન્વયસાગેન્દુરસમગ્રજ્ઞઃ કૃતજ્ઞઃ ક્ષમી વાગ્મી સૂનિતસંધાનિધાનમજાનિ ધીપાલનામા પુમાન્ ।

યં લોકોત્તરકાન્યરઙ્ગિજતમાતિઃ સાહિત્યનિષારતિઃ શ્રીસિદ્ધાનિષતિઃ કલ્પોન્દ્ર ઇતિ ચ ઐતિતિ ચ વ્યાહરત્ ॥

સુસુસ્તસ્ય કુમારપાલનૃપતિપ્રીતિઃ પદં ધીમતામુત્તંધઃ કવિચક્રમસ્તકમાર્ણિઃ શ્રીસિદ્ધપાલોઽમ્ભવત્ ।

યં વ્યાલોક્ય પરોપકારકલ્પાસીજન્યસત્યક્ષમાદાશિષ્યેઃ કલિતં કલૌ કૃતયુગારમ્ભો જનો મન્યતે ॥

તસ્ય વૌપવશાલ્યાયં પુરેઽળહિલપાટકં । નિષાત્યૂહમિદં પ્રોક પરાર્થાન્તં (?) ॥

અનામોગાત્ કિઞ્ચિત્ કિમપિ મતિર્વૈકલ્યવસાતઃ કિમશ્ચૌત્સુન્યેન સ્મૃતિવિરહદોષેન કિમાપિ ।

મયોત્સૂં શાસ્ત્રે યદિહ કિમપિ પ્રોકમસ્તિલ ક્ષમન્તાં ધીમન્તસ્તદસમદયાપૂર્ણદયાઃ ॥

હોવાથી તે 'સિદુરપ્રકર' ના નામે; તથા સોમપ્રમાચાર્ય રચિત હોઈ તેમાં ૧૦૦ પદ્યોનો સંગ્રહ હોવાથી 'સોમશતક' ના નામે પણ ઘણીક વખતે લખાય—ઓલખાય છે. ૫ પ્રવંધ જૈનસમાજમાં ઘણોજ પ્રસિદ્ધ છે અને અનેક સ્ત્રીપુરુષોના મુખે કંટસ્થ હોય છે. ૫ પ્રવંધ મર્ત્યુરિના નીતિશતકની શૈલીમાં લખાઈલો છે; અને અહિંસા, સત્ય, અસ્તેય, શીલ, સૌજન્ય આદિ વિષયો ઉપર સંક્ષિપ્ત પરંતુ હૃદયંગમરીતે તેમાં વિવેચન કરેલું છે. ૫ની રચના યહુજ સરલ, સરસ અને સુયોગ્ય છે. ૫માંનાં કંટલક્ષ પદ્યો આ પ્રસ્તુત ગ્રંથમાં—કુમારપાલ પ્રતિબોધમાં પણ ગ્રથિત થઈલાં નજરે પડે છે.

ગ્રીકો ગ્રંથ 'શતાર્થ કાવ્ય' નામે છે. ૫ ગ્રંથ સોમપ્રમાચાર્યના સંસ્કૃત માપાજ્ઞાનવિષયક અનુસાર પાંડિત્યને પ્રકટ કરે છે. ૫ ગ્રંથ માત્ર એક વસંતતિલકા છંદ રૂપે છે^૧, જેના જુદા જુદા સો અર્થો કલામાં આપ્યા છે. આ કૃતિના લીધે વિદ્વાનો તરફથી તેમને શતાર્થિકનું ક્ષાસ પાંડિત્યસૂચક ઉપનામ પ્રાપ્ત થયું હતું અને તેથી પાછળના ઘણાક ગ્રંથકારો તેમને ૫ ઉપનામ સાથે જ ઉલ્લેખે છે.^૨ ૫ એક વૃત્તાત્મક ગ્રંથના ભિન્ન ભિન્ન સો અર્થો તેમણે જાતે જ ટાંકા કરીને યથાધ્યા છે. ટીકાના પ્રારંભમાં પાંચ ઋષીઓ લઈ શ્રી સ્વાધિક્ષિત સોપ અર્થોની અનુક્રમણિકા આપી છે. પ્રારંભમાં જૈનધર્મના ૨૪ તીર્થંકરોના અર્થો લઈ; વધે બ્રહ્મા, નારદ, વિષ્ણુ આદિ વૈદિક દેવો વિગેરેના અર્થો પણ આલેખ્યા છે. અને છેવટે પોતાના સમકાલીન પદા, ઘાવી દેવસૂરિ અને હેમચંદ્રાચાર્ય જેવા જૈનધર્મના મહાદ્ધર્મગુરુઓના; જયસિંહ દેવ, કુમારપાલ, અજયદેવ અને મૂલરાજ જેવા ગુજરાતના કામિક ૩ ચૌલુક્ય રાજાઓના; કવિ સિદ્ધપાલ જેવા સર્વશ્રેષ્ઠ નાગરિકના; અને અજિતદેવ તથા વિજયસિંહ નામે પોતાના વંશે ગુરુઓના અર્થો પણ અવતાર્યા છે. સર્વોત્તે સ્વકીય અર્થ પણ વેસાર્યો છે અને સમાપ્તિમાં કોઈ શિષ્યના મુખેથી આત્મપ્રશંસાપર પદી પાંચ પદ્યોવાળી સંક્ષિપ્ત પ્રશસ્તિ પણ કહેવરાવી છે.

આ પ્રશસ્તિમાં જણાવ્યા પ્રમાણે સોમપ્રમ શૃદ્ધસ્થાવસ્થામાં પ્રાગ્વાટ (પોરવાડ) જાતિના વૈદ્ય હતા. તેમના પિતાનું નામ સર્વદેવ, અને પિતામહનું નામ જિનદેવ હતું. જિનદેવ કોઈક રાજાનો મંત્રી હતા અને તે પોતાના સમયમાં ઘડી પ્રતિષ્ઠિત પુરુષ હતા. સોમપ્રમે કુમારપદ્ધતિમાં જ જૈનદીક્ષા લઈ લીધી હતી, અને તીવ્રબુદ્ધિના પ્રભાવે સમસ્ત શાસ્ત્રોનો તલસ્પર્શી અભ્યાસ કરી આચાર્યપદવી પ્રાપ્ત કરી હતી. તેમની તર્કશાસ્ત્રમાં અદ્ભુત પદ્ધતિ હતી, કાવ્યવિષયમાં ઘણી સ્થિતિતા હતી અને વ્યાખ્યાન આપવામાં ઘડી કુશલતા હતી.

કુમારપાલપ્રતિબોધ સાથે ઉક્તાનુસાર સોમપ્રમાચાર્યની ઘર્તમાનમાં ૪ કૃતિઓ ઉપલબ્ધ થાય છે. આ કૃતિઓમાં કાલાનુક્રમથી પ્રથમ કૃતિ તેમની સુમતિનાથ ચરિત્ર અને ધીજી સુકિમુકાવલી હોય તેમ જણાય છે. બુદ્ધિષ્પિનિકા નામે એક પ્રાચીન જૈનગ્રંથસૂચિમાં સુમતિનાથચરિત્રની રચના કુમારપાલના રાજ્યમાં થઈ હતી એવો ઉલ્લેખ કરેલો છે. શતાર્થવૃત્તની વૃત્તિના અંતે પણ તે ચરિત્રનું નામ આવેલું હોવાથી, તે વૃત્તિની પહેલાં ૫ની રચના થઈ હતી એમ તો સ્વતઃસિદ્ધ થાય છે. શતાર્થવૃત્તની રચના ૬૦ સ. ૧૧૭૭ થી ૧૧૭૯ ની વચ્ચે થઈ હોય, એમ માની શકાય. કારણકે ૫ની અંદર અજયદેવની પછી ગુજરાતની ગાદિપર આવેલા મૂલરાજનો ઉલ્લેખ છે. આ મૂલરાજ ઇતિહાસમાં ચાલ મૂલરાજના નામે પ્રસિદ્ધ છે. અને તેણે માત્ર વેજ વર્ષ—ઈ. સ. ૧૧૭૭ થી ૧૧૭૯ સુધી—રાજ્ય કર્યું હતું. કુમારપાલ પ્રતિબોધ તેમની છેલ્લી કૃતિ હોય તેમ લાગે છે.

૧ ગુહો—પૃષ્ઠ ૧૪૫, ૧૧૧. ૪૨૨. ઇત્યાદિ ઉપર આપેલા સંસ્કૃતપદ્યો.

૨ મૂલ વૃત્ત શા પ્રમાણે છે—

પદ્યાનુસાર સમિતાનહેરુમોહ । કાન્તારવારણસમાનજયાદેવ ।

ધર્મધર્મકામદમહોદયધીરધીર । સોમપ્રમાવપરમાગમચિદ્ધસૂરે ॥

૩ ' સોમપ્રમો મુનિપતિર્વિદિતઃ સંતાર્થી ।' મુનિમુંદરસૂરિકૃત સુબાવલી ।

' તતઃ સંતાર્થિકઃ ક્ષ્યાતઃ ધીસોમપ્રમસૂરિદ્ ।' —ગુણરત્નસૂરિકૃત કિયારત્નસમુચય ।

આ કૃતિઓ સિવાય યીજી પળ તેમની કોઈ કૃતિ હોય તેમ અનુમાન થાય છે કારણ કે શતાર્થ વૃત્તની વૃત્તિમાં કુમારપાલ રાજા સયધી અર્થ કરતાં 'યદ્યોચામ' કરીને ચે પયો ટાંચ્યા છે જે ઉપ લબ્ધ કૃતિઓમાં મઝી આવતો નથી.

કુમારપાલ પ્રતિબોધની રચના પ્રથમકારે મુરયકરીને પ્રાકૃતભાષામાં કરી છે હેનરના પ્રસ્તાવમાં કેટલીક કથાઓ સંસ્કૃતમાં આપી છે તથા થોડોક ભાગ અપભ્રંશ ભાષામાં પળ મુથેલો છે આ ઉપરથી લેખક પ્રાકૃત, સંસ્કૃત અને અપભ્રંશ પમ ગ્રણે ભાષાઓના પડિત હતા તે સ્પષ્ટ જણાઈ આવે છે પ્રંથની રચના બહુ જ સરલ અને ભાષા તદ્દન સાદી—આડવર વિનાની છે કર્તા જોકે, જેમ ઉપર વતાવવામાં આવ્યું છે, એક ઉત્તમ કોટિના ધિદ્ધાન અને પ્રથકાર છે પરંતુ તેમની વિદ્વત્તાની કોઈ વિશિષ્ટતા આપણને આ પ્રથમા મઝી આવતી નથી.

કુમારપાલ પ્રવચના કર્તા જિનમડનગણિ પોતાના પ્રવંધમાં અનેક સ્થલે, આ પ્રથમાંના પૈતિહાસિક ભાષાનાં અવતરણો ટાંચ્યા છે અને જયાર્સિંહ સૂરિય પોતાના સંસ્કૃત કુમારપાલચરિત્રમાં આ પ્રથની રચના શેલીનુ આવાદ અનુકરણ કર્યું છે તે ઉપરથી જણાઈ આવે છે કે પાછળના પ્રથકારો પ્રસ્તુત પ્રથ-થી સારી પેઢે અવગત હોવા જાઈએ.

કુમારપાલપ્રતિબોધની પૈતિહાસિક ઉપયોગિતા

આ પ્રથનુ મહત્ પરિમાણ અને રચના-સમય તરફ દષ્ટિ કરતા, પૈતિહાસ રસિય જિજ્ઞાસુઓને, આ પ્રથમાંથી કુમારપાલ અને હેમચદ્રાચાર્યના જીવનવૃત્તાન્ત સયધી અજ્ઞાત અને અન્યથ અનુપલબ્ધ પવી નવી નવી આવતો જાણવાની વિશેષ જિજ્ઞાસા રહે, એ સ્વાભાવિક છે અને હું પણ પ્રથમ પવી જ લાલસાથી આ પ્રથના સપાદન ભારને વહન કરવા સ્નાન્દ તત્પર થયો હતો પરંતુ પ્રથનુ સાચત અવલોકન કર્યો પછી મારે ઉદાસ મને જણાયતું પડે છે કે તેવી કોઈ નવીન વાયસ, આ આટલા મોટા પ્રથમાંથી મઝી આવતી નથી, પડતું જ નહીં પરંતુ પ્રમાયકચરિત્રાતર્ગત હેમચદ્રપ્રથય, પ્રથયચિન્તામણિગત કુમારપાલપ્રવધાદિ જેવા, પ્રસ્તુત પ્રથ કરતાં શક્તિ અને કાલકૃત અર્થોચીન પ્રથોમાં જેટલી હકીકત, ઉત્કર્ષ અને વ્યક્તિઓના સવધમા મઝી આવે છે, તે કરતાં પણ ઘણી જ અરપ હકીકત આ પ્રથમાં આલેખેલી છે આથી પૈતિહાસિક દષ્ટિયે તો આપણને આ પ્રથની કોઈ પણ પ્રકારની વિશેષ ઉપયોગિતા જણાતો નથી, એમ જો કહીએ તો તે અયુક્ત નથી. અલયત પ્રાકૃત ભાષાના સાહિત્ય-પ્રકાશનની અપેક્ષા આની ઉપયોગિતા અવધ્ય સ્વીકારવા લાયક છે કારણ કે એક તો પ્રાકૃતસાહિત્ય અત્યારસુધીમાં ઘણા જ અલગ પ્રમાણમાં પ્રકાશિત થયું છે, અને બીજું હવે મુયર્ક યુનિયાર્સિટીય પોતાના પઠનક્રમમાં પાલીભાષાની માત્રક પ્રાકૃતભાષાને પણ જ્ઞાસ સ્થાન આપેલું હોવાથી એ ભાષાના સાહિત્યના પ્રકટીકરણની ઘણી જ આવધ્યકતા પ્રતીત થઈ રહી છે તેવા પ્રસંગે પ્રાકૃત ભાષાના આ એક મહત્ પ્રથનુ પ્રકાશન એ ભાષાના અભ્યાસિઓને અવધ્ય આવકાર ધાયક થઈ પડશે એમાં સંશય નથી.

૪ એ પયો નીચે પ્રમાણે છે —

ચેડુક્યે દ્રેણ નૈત્યે કુચકલ્પનિકેરેવેધુરા. સિ ધુરલ્લોસ્કન્ધાલ્લા વિધાતુ જિનજનનમદે સૂતિકર્મપ્રપન્ચમ્ ।

પટ્ટપ્રજ્ઞાશત્તમીરપ્રમુલ્લનિજાને પાચાર્ચાતુર્થવર્ધાર્પુર્જનપ્રાણિન્યહેમાધરણક્વાન્તિત્થાકિરે દિનકુમાર્ય ॥

દ્વાન્નિશત્તિદશાધિપા નૃપગૃહાત્તૈ ચૈલે દ્વિપાધ્યાસિતા કલ્યાણમરણાશિરામયપુષ્પ કલ્યાણકપુરુષદે ।

આત્ર કત્તેમમલ્લેશોલશિરાધે સ્વર્ગાદિવાખ્યાયુસ્તન્મધ્યે ચ કુમારપાલનૃગતિર્મંજુસુતેન્દ્રધિયમ્ ॥

૧ ઝુઓ મુનિ શ્રીચતુરવિજયજી સપાદિત કુમારપાલપ્રવચ—પૃ ૧૦, ૧૭, ૫૮, ૮૦, ૯૦, ૯૪, ૯૫, ૧૫, ૧૦૬,

ઉત્કરિતે આ પ્રથમાં પૈતિહાસિક વૃત્તાન્ત વિશેષ ન મળવાથી અલયત આપણને અસંતોષ થાય. સ્વાભાવિક છે, પરંતુ તે વિષયમાં ગ્રંથકાર કોઈ પણ પ્રકારના ઉપાલંભને પાત્ર નથી. કારણ કે ગ્રંથના પ્રારંભમાં જ તે પોતે હેમચંદ્ર અને કુમારપાલની સમગ્ર જીવન-વાર્તા લખવાના ઉદ્દેશ્યનો સ્પષ્ટ અસ્વીકાર કો છે. આ ગ્રંથ લખવામાં લેખકનો ઉદ્દેશ્ય, કુમારપાલાદિનો ઇતિહાસ લખવાનો નથી. પરંતુ તે વ્યક્તિઓને લક્ષીને ધર્મોપદેશ આપતો એક કથા-ગ્રંથ ગ્રંથવાનો છે. તેઓ લખે છે કે—“યદાપિ કુમારપાલ અને હેમચંદ્રાચાર્યનું જીવન ચરિત્ર યાંજી રીતિપણ ઘણું પમનોહર છે. તો પણ હું આ પ્રથમાં જૈન ધર્મના પ્રતિયોગ સંબંધે જ કાર્શિક કથેદા રીંછું છું. હું અનેક પ્રકારની યાચ વસ્તુઓથી અપૂર રસવતીમાંથી પોતાની રૂચ્છાનું સાર માત્ર કોઈ એક વસ્તુનું જ મક્ષણ કરનાર પુરુષ કોઈની નિન્દાને પાત્ર થઈ શકે છે ? ” ધસ્તુ.

કુમારપાલ પ્રતિવોધનો પૈતિહાસિક સાર

આ સંપૂર્ણ ગ્રંથમાં જેટલો ભાગ ઇતિહાસ સાથે સંબંધ ધરાવે છે તે વાચકોના સૌકાર્યાર્ય “કુમારપાલ પ્રતિવોધ-સંક્ષેપ” પવા શિરોલેખ નીચે પરિશિષ્ટ રૂપે સુવો આપ્યો છે. એ પરિશિષ્ટાત્મક ગ્રંથમાગ વાંચી જવાથી આવા ગ્રંથનો સંકલિત સાર સ્પષ્ટરિતે સમજાઈ જશે.

સંક્ષિપ્ત પૈતિહાસિકસાર આ પ્રમાણે છે:—

અણહિલપુર પાટણમાં, પ્રથમ ચૌહાન્યકુલમૃગાંક પવો મૂલ નામે રાજા થયો. તેના પછી ચામુંડપાલ અને તેના પછી ‘જગજ્ઞપણ’ એવું ઉપનામ પ્રાપ્ત કરનાર ચહમરાજ થયો. તેના પછી અનુક્રમે દુર્લભ-રાજ, ભીમરાજ, કર્ણદેવ અને જયસિંહદેવ રાજા થયો. પૂર્વે થઈ ગયેલા ભીમદેવનો ક્ષેમરાજ કરીને એક પુત્ર હતો, તેનો પુત્ર દેવપ્રસાદ, તેનો પુત્ર ત્રિભુવનપાલ અને તેનો પુત્ર કુમારપાલ થયો. એ કુમારપાલ વહુ દૂર, વીર, ધીર, ત્યાગી, વૃક્ષ અને પરીપકારાદિ ગુણવાળો હતો. તેથી જયસિંહદેવનું મૃત્યુ થયા પછી પ્રધાનપુરુષોએ પરસ્પર વિચાર કરીને તેની ગાત્રી ઉપર કુમારપાલને બેસાડ્યો. તેણે ચારે દિશા-ઓમાં ચતુરંગ સૈન્ય સાથે વિગ્વિજય કરી પ્રજાને સંતોષકારક થાય તેવી રીતે રાજ્યનું પાલન કરવા માંડ્યું.

એક દિવસે તેણે કેટલાક વિદ્વાન્ અને વૃદ્ધ બ્રાહ્મણોને પોતાની પાસે બોલાવીને કહ્યું કે—‘જેના આચરણથી મનુષ્ય જન્મનું સાર્થક થાય તેવો સત્ય ધર્મ માર્ગ થતાવો. ’ બ્રાહ્મણોએ વેદાદિશાસ્ત્ર વિહિત યજ્ઞયાગ સ્વરૂપ ધર્મ થતાવ્યો. પરંતુ તે ધર્મમાં વહુ-પ્રાણી આદિનો વધ વિહિત હોવાથી તેવો હિંસામય ધર્મ રાજાને રહ્યો નહીં. તે મનમાં વિચાર કરવા લાગ્યો કે—‘ જો પ્રાણીઓનો વધ કરવાથી પણ મનુષ્ય-ધર્મ પ્રાપ્તિ થતી હોય તો પછી અધર્મ કયું કર્તવ્ય કરવાથી થાય છે ? હું બ્રાહ્મણો ધર્મનું સત્ત્વ સ્વરૂપ જાણતા નથી ? અથવા તો જાણતા છતાં પણ મારી વિપ્રતારણા કરે છે ? ’ આવી રીતે આ સંગ્રંથમાં તે વિશેષ ચિંતન કરવા લાગ્યો અને તેના યોગે રાવિના સમયે તે નિદ્રા પણ પૂરી પ્રાપ્ત કરી શકતો નહીં. એક સમયે વાહડ નામના અમાત્યે આવીને રાજાને નમન કર્યું અને કહ્યું કે—‘ રાજન્ ! તમને જો ધર્માધર્મ ના સ્વરૂપને જાણવાની જિજ્ઞાસા હોય તો હું કહું તે સાંભલો. ’ એમ કહી વાહડ મંત્રીએ જૈનાચાર્ય હેમચંદ્ર સૂરિનો સંક્ષિપ્ત-પરિચય આપ્યો.

મંત્રિએ જણાવ્યું કે—પૂર્વે, પૂર્ણતલ્લનામના ગચ્છમાં શ્રીદત્તસૂરિ નામે એક આચાર્ય થઈ ગયા. તેઓ પરિવ્રમણ કરતા એક વચ્ચે વાગડદેશના ‘રયણપુર’ નામના ગામમાં ગયા. ત્યાં તે વચ્ચે યશોભદ્ર વત્તસૂરિ ત્યાં કેટલોક સમય રહી અન્યત્ર ચાલ્યા ગયા. પાછલથી તે રાજાને સંસાર ઉપર વિરક્તિ થઈ આવી અને તેથી તે વધે રાજ્યમાર લોહી વત્તસૂરિપાસે દીક્ષા લેવા નિકળી પડ્યો. સૂરિ તે સમયે

‡ જદ વિ કરિયં હમાણ મળોહરં અતિથિ બહુયમથં પિ । તહાપિ ત્રિણયમ્મ-પડિશાહે-વંધુરં કિ પિ બંપેમિ ॥
વહુ મયસ-જુવાઈ વિ રથવૈદેય મજ્ઞાઓ કિચિ શુજંતો । નિય-રૂચ્છા-અણુરૂચં પુરિષો કિ હોદે વયગિજ્જો ॥

‘હિંદુઆળાપુર’ માં રહેતા હતા તેથી રાજા ત્યાં ગયો. તેની પાસે એક યદુમૂલ્ય મુક્તાહાર હતો. તેને વેંધા તેના ટ્રવ્યથી ત્યાં એક ‘ચઢવીસજિણાલય’ નામે મોટું જૈનમંદિર વંધાવ્યું^૧ અને પછી સાધુ-પણું લઈ વ્રતસૂરિનો શિષ્ય થયો. સાધુમત લઈને તેણે અનેક પ્રકારનાં તપશ્ચરણાં કર્યાં અને ઝંડેા શાસ્ત્રાભ્યાસ કરી યશોમદ્રસૂરિ નામે આચાર્યપદ પ્રાપ્ત કર્યું. આચાર્ય થયા પછી તેમણે લોકોને ધર્મોપદેશ આપવા જુદા જુદા સ્થલોમાં પરિભ્રમણ કર્યું. જ્યારે મૃદાવસ્થાના યોગે શરીર વધુ શિથિલ અને શ્રીણપ્રાય થયું ત્યારે ઉચ્ચત્રયં (ગિરનાર) તીર્થ ઉપર જઈ તેમણે અનશનવ્રત અગીકાર કર્યું અને સમાધિપૂર્વક સ્વર્ગસ્થ થયા તેમના શિષ્ય પ્રયુમ્નસૂરિ કરીને થયા જેમણે ‘ઢાળયપગરણ (સ્થાન-કપ્રકરણ)’ નામે ગ્રંથ યનાવ્યો તેમના શિષ્ય ગુણસેનસૂરિ અને તેમના શિષ્ય દેવચંદ્રસૂરિ થયા. દેવ-ચંદ્રસૂરિ પ્રયુમ્નસૂરિરચિત ‘ઢાળયપગરણ’ ઉપર ટીકા યનાવી છે તથા ‘શાન્તિજિનચરિત્ર’ લખ્યું છે.

દેવચંદ્રસૂરિ ફરતા ફરતા એક વસંતે ધંધુકા નામે ગામમાં ગયા. ત્યાં ચઢ્ચ અને ચાહિણી નામે મોઢ જાતીય ષણિગંધપતીનો ચંગદેવ નામે એક પ્રતિમાગચ્ચ ચાલક તેમની પાસે આવવા લાગ્યો અને નિરન્તર તેમનો ધર્મબોધ સાંભાલવા લાગ્યો. તેમના ઉપદેશથી પ્રસૂત થઈ ચાલક ચંગદેવ તેમનો શિષ્ય થયા તૈયાર થયો, અને તેમની સાથેજ તે રહેવા-ફરવા લાગ્યો. ફરતા ફરતા દેવચંદ્રસૂરિ ચંભાતમાં આવ્યા, અને ત્યાં, તે ચાલકના મામા નામે નેમિ દ્વારા ચઢ્ચ અને ચાહિણીને સમજાવી-મુદ્દાવી, તેને વીક્ષા આપી અને ચંગદેવના ઘડલે સોમચંદ્ર નામ સ્થાપ્યું. અલૌકિક શુદ્ધિશાલી ચાલક સાધુ સોમચંદ્ર થોડાજ સમયમાં સકલ શાસ્ત્રોનો અભ્યાસ કરી સમર્થ વિદ્વાન્ થયો અને ગુરુ તેની પૂર્ણ યોગ્યતા જોઈ હેમચંદ્ર એવા નવીન નામની સાથે તેને આચાર્યપદ પ્રદાન કર્યું. હેમચંદ્રાચાર્યની ચિત્રતાથી મુગ્ધ થઈ સિદ્ધરાજ જયસિંહ દેવ તેમના ઉપર યદુ ભક્તિભાવ ધરાવતો હતો, અને ઘરેલુ શાલીય ધાવતના તેમની પાસે શુભાસા મેલવી સંતુષ્ટ થતો હતો. તેમના ઉપદેશથી સિદ્ધરાજની જૈનધર્મ ઉપર પ્રીતિ થઈ હતી, અને તેના ઉપલક્ષ્યમાં તેણે ‘રાયવિહાર’ નામે એક જૈનમંદિર પાટણમાં, અને ‘સિદ્ધવિહાર’ નામે એક મંદિર સિદ્ધપુરમાં વંધાવ્યું હતું. સિદ્ધરાજના કથનથી હેમચંદ્રાચાર્યે ‘સિદ્ધહેમવ્યાકરણ’ નામે સર્વાંગપૂર્ણ શબ્દશાસ્ત્ર યનાવ્યું હતું. હેમચંદ્રાચાર્યનો અમૃતોપમ ઉપદેશ સાંભળ્યા વિના સિદ્ધરાજને જરા પણ બેન પડતું ન હતું.

આથી રીતે હેમચંદ્રસૂરિનો પરિચય આપી અમાત્ય બાહડે કુમારપાલ રાજાને કહ્યું કે- ‘મહારાજ ! તમને પણ જો ધર્મના યથાર્થે સ્વરૂપને જાણવાની ઇચ્છા હોય તો ભક્તિપૂર્વક આ આચાર્યની પાસે જઈ, આ સંબંધમાં પૃચ્છા કરો.’ મંત્રીનું આ કથન સાંભળી રાજા હમેશાં હેમચંદ્રાચાર્ય પાસે જઈ ધર્મબોધ સાંભળવા લાગ્યો.

આચાર્યજીવે પ્રથમ તો વિવિધ દૃષ્ટાંતો અને આલ્પાનો દ્વારા રાજાને યથાવસર પ્રાણિર્હંસા, શૂત્રમ-પા, માંસમક્ષણ, મચપાન, વૈદ્યાગમન અને ધનાપહરણ इत्यादि દુરાચરણોથી મનુષ્ય અને મનુષ્યસમાજની કેવી અધોગતિ થાય છે, તે ચારંવાર સમજાવી, તેની પાસેથી, આજ્ઞા રાજ્યમાં તેવાં દુરાચરણોનો, રાજાજ્ઞાના રૂપમાં સર્વથા નિષેધ કરાવ્યો. તદ્વંતર, તેમણે કુમારપાલને જૈનધર્મપ્રતિપાદિત દેવ, ગુરુ-અને ધર્મ તત્ત્વોનો વિશિષ્ટ બોધ આપવા માંડ્યો સદ્દેવ, સદ્ગુરુ, અને સદ્ધર્મની ઉપાસનાથી આત્માની કેવી પ્રગતિ થાય છે અને અસદ્દેવ, ગુરુ, અને ધર્મની ઉપાસનાથી કેવી અવગતિ થાય છે, તેની, વિવિધ કથાનકો દ્વારા સ્પષ્ટ સમજણ આપવા માંડી સૂરિના આ બોધથી કુમારપાલની જૈનધર્મ તરફ પ્રીતિ વધતી ગઈ અને ક્રમે ક્રમે તે આ ધર્મ ઉપર અધિકાધિક અનુરક્ત થતો ગયો, જૈનધર્મ ઉપરના પોતાના અનુરાગના

૧ મંચકાર સોમનથાચાર્ય આ ઠેકાણે જણાવે છે કે-તે ‘ચઢવીસજિણાલય’ મંદિર આજે પણ ત્યાં (હિંદુઆળા પુરમાં) વિચ્છાન છે.

ઉપલક્ષ્યમાં પ્રથમ તો તેણે ઠેકાણે ઠેકાણે જૈન મંદિરો વંધાવવા માંડ્યાં. સૌથી પ્રથમ તેણે પાટણમાં, શ્રીમા-
લવંશીય મંત્રી ઉદયનના પુત્ર મંત્રી બાહડ અને વાયડવંશીય ગંગેસઠના પુત્રો નામે સર્વદેવ અને સાંચસે-
ઠની દેશરેખ નીચે 'કુમારવિહાર' નામે ચતુર્થશતિ જિનાલય યુક્ત મહાન અને ભવ્ય જૈનમંદિર વંધાવ્યું.
૫ વિહારના મુખ્ય મંદિરમાં, સ્ફટિકાનિર્મિત પાર્શ્વનાથ તીર્થંકરની મનોહર મૂર્તિ પ્રતિષ્ઠિત કરી; તેની
આગુવાગુના યીજા ૨૪ જિનાલયોમાં સુવર્ણ, રત્ન અને પિત્તલ આદિ ધાતુઓની ઘનેલી હુદા હુદા
તીર્થંકરોની પ્રતિમાઓ સ્થાપન કરવામાં આવી. તેના પછી કુમારપાલે, 'ત્રિભુવનવિહાર' નામે અત્યુચ્ચ
અને અતિમન્ય મંદિર વંધાવ્યું. ૫ મંદિર ૭૨ જિનાલયોથી પરિવેષિત હતું. ૫નો વિશાલ આમલસાર અને
તે ઉપરના કલશો સુવર્ણમય બનાવવામાં આગ્યા હતા. મૂલ મંદિરમાં નીલરત્નનિર્મિત મહત્ત્વમાળ એવી
નોમિનાથ તીર્થંકરની પ્રતિમા, અને આસપાસના ૭૨ જિનાલયોમાં, ભૂત, ભવિષ્ય અને ઘટમાનફાલના
૫મ ૭૨ તીર્થંકરોની પિત્તલમય પ્રતિમાઓ પ્રતિષ્ઠિત કરવામાં આવી. ૫ સિવાય, ૨૪ તીર્થંકરના, ૨૪
હુદા હુદા મંદિરો, તેમજ 'ત્રિવિહાર' પ્રમુખ યીજા પણ ઘણા વિહારો તેણે ફકલા પાટણ શહેરમાંજ
કરાવ્યા હતા. પાટણ સિવાય યીજા નગરો અને ગામોમાં તેણે જૈન મંદિરો વંધાવ્યાં છે તેની તો સંખ્યા પણ
કોઈ જાણતો નથી. ૫ મંદિરોમાં, જસદેવના પુત્ર દંડાધિપ અમળની દેશરેખ નીચે તારંગપર્વત ઉપર
વંધાવેલું અજિતનાથનું મહાન મંદિર શાસ ઉદ્દેશ કરવા યોગ્ય છે.

આવી રીતે માત્ર જિનમંદિરો વંધાવીને જ કુમારપાલ પોતાની જૈનધર્મ પ્રત્યેની શ્રદ્ધા વગાવી અટકી
ગયો ન હતો; પરંતુ એક પરમ શ્રદ્ધાળુ આવકની માફક તે હમેશાં જિનમંદિરમાં જઈ જિનમૂર્તિની ભાવ-
પૂર્વક પૂજા પણ કરતો હતો અને જૈનધર્મનો મહિમા પ્રકટ કરવા માટે અગ્રાહિનકા મહોત્સવ વિશેરે જૈન
ઉત્સવો પણ ઘણા ટાઢથી ઉજવતો હતો. ૫ મહોત્સવો પ્રતિવર્ષ, શ્રેષ્ઠ અને આશ્વિન માસના શુક્ર પક્ષનો
છેલ્લો ઠાઢ દિવસોમાં, પાટણના મુખ્ય અને પ્રસિદ્ધ મંદિર નામે 'કુમારવિહાર' માં કરવામાં આવતા
રથયાત્રાનો વરઘોડો નિકળતો. દ્વાપિપ જોડેલા રથની અંદર પાર્શ્વનાથની મૂર્તિ સ્થાપવામાં આવતી.
રથ પ્રથમ 'કુમારવિહાર' માંથી નિકળતો અને અનેક સામંત, મંત્રી, વ્યાપારી આદિના સમૂહથી
વિટલાપલો તે રાજમંદિરમાં જતો. ત્યાં રાજા જાતે વચ્ચ અને આભૂષણોથી રથસ્થ પ્રતિમાની પૂજા
કરતો. અન્ય જનો તે ઘણે વિવિધમાધવ્યંજક અને સ્તવનાસૂચક નૃત્ય અને ગાનાદિ કરતા. તે
યદાર, તેના માટે શાસ ઉમા કરેલા મંડપમાં લઈ જવામાં આવતો. રાજા પણ ત્યાં સાથે જતો, અને
સકલ જનસમૂહની સમક્ષ, રથસ્થ જિનપ્રતિમાની સૌથી પ્રથમ સ્વયમેષ આરતી ઉતારતો. પૂજા વિશેરે
મળ કરતો કરતો અને ઠેકાણે ઠેકાણે વાંધેલા મંડપો નીચે ઉમો રહેતો રહેતો, ઘણા આડંબરપૂર્વક રથ
તાવામાંના યીજા માંડલિક રાજાઓ પાસે પણ તેથી રીતે કવવતો. તેના હુકમથી વધા માંડલિક
રાજાઓ પોતપોતાના નગરોમાં કુમારવિહારો વંધાવ્યા હતા, અને તેમની અંદર આવા મહોત્સવો પણ
હમેશાં કરતા-કરાવતા હતા.

એક દિવસે કુમારવિહારમાં થેસીને કુમારપાલ હેમચંદ્રાચાર્ય પાસે ધર્મોપદેશ સાંભળતો હતો તે
વખતે કેટલાક વિદેશી ધનાઢ્ય જૈન યાત્રિઓ આવીને આચાર્યને અને રાજાને પ્રણામ કર્યા. તે યાત્રિઓ
સૌરાષ્ટ્ર (કાઠિયાવાડ) દેશમાં આવેલાં જૈન તીર્થોની યાત્રા કરવા નિકળ્યા હતા; અને રસ્તામાં
પાટણ શહેર આપવાથી, ત્યાંના મંદિરોની યાત્રા કરવા તથા આચાર્ય હેમચંદ્ર અને રાજા કુમારપાલ જેવા

जैनधर्मना महान् एम्पूनां दर्शन करवा तेओ त्यां रोकाया हता. ते यात्रिओने जोईने कुमारपालना मनमां पण नीयेयात्रा करवानो इच्छा थई, अने हेमचन्द्राचार्येने पूछी यात्रानी नेयारी करवा मांडी. ज्योतिपिण प्रतावेला शुभ मुहूर्तमां, हेमचन्द्रसरिना प्रमुखपणानीचे तेणे पोताना चतुरंग सेन्य अने चतुर्विध सघ-साधु, साऱ्ही, आजक, धाविना रूप जैन जनसमूह-साथे सोराष्ट्र देश तरफ प्रयाण करुं मार्गमां थायतां ग्राम अने नगरोनां जिनमंदिरांनो पूजा-उपासना करता कुमारपालना ए महान् सधे रयेन (गिरनार) पर्यंतनी नीचे आवेला गिरिनगर (जुनागढ) नी पास जई पडाव नांरयो.

गिरनार पर्यंतनो चढाव सह विपन्न होवाथी (ते वखते उपर चढवा माटे पगधिआं बांधिलां न हांतां) राजा उपर चढी नहीं शक्यो, तेथी प्रधान एम्पूना हाथे पूजा आदिनी सामग्री मोकली दई पोतानी अशक्तता माटे खेड करतो ते त्यां नीचेज येसी रहो बाकी बीजा यथा यात्रिओ पर्यंत उपर गया अने जिनपूजा भादि तीर्थेक्य करी यथावसरे पाछा नीचे आऱ्या त्याथी ए सघ शत्रुजय तीर्थनी यात्रा करवा गयो त्यां यथा यात्रिओनां साथे राजा पण पर्यंत उपर चढयो अने तीर्थनाथक ऋषभदेवनी भक्तिपूर्वक पूजा-सेवा करी आनंदित थयो. शत्रुजयना ए पवित्र जिनमंदिरां जीर्णोद्धार कुमारपालनी आज्ञाथी बाह्य मंत्रिय थोडा ज समय पईलां करान्यो हतो, तेथो ते मंदिर जोई राजा बहु खुशी थयो आची रीते गिरनार अने शत्रुजय नामना सोराष्ट्रना बने प्रसिद्ध जैनतीर्थीनी डाढ साथे यात्रा करी राजा पाछां पोतानी राजधानीमां आऱ्यो.

गिरनार पर्यंतनो चढावने विपन्नताता कारणे राजा ते उपर जे चढी नहीं शक्यो हतो अने तेना छींथे तीर्थपति नेमिनाथनी जे पूजा-अर्चा करी नहीं शक्यो हतो, तेथी तेने यहू खेद धर्यां करतो हतो. एक दिवसे पोतानी राजसमामां प्रसन्नोपात घात निकलतां राजाए, पुछसु के गिरनार उपर लोकोने चढवा माटे सुगम एवो रस्तो बधावी आपे एवो कोई पुरुष छे? ते वखते कविकवज्जती श्री श्रीपालना पुत्र कवि सिद्धपाले ते कार्य माटे राणिमन पुत्र आन्ननु नाम सूच-यु. राजाए कविनी सूचनानुसार आन्नने सौराष्ट्रनो दंडनायक (भुवेंदार) नीमी गिरनार मोकल्यो अने त्यां पर्यंत उपर पगधिआं बांधयानो हुकम कर्यो.

तदनंतर, कुमारपाले अनाथ अने असमर्थ श्रावक भादि जनोना भरण पोषण अर्थे एक सत्रागार बधाऱ्यो जेनी अद्वर विविध जातनां भोजनो अने चलादि तेना अर्थिओने आपचामां आयतां हतां तेमज ते सत्रागारनी पासेज एक पोषधशाला बधावी के जेनी अद्वर रहिने धर्मार्थी जनो धर्मत्याग करता पोतानुं जीवन शांतरीते व्यतीत करी शके सत्रागार अने पोषधशालानो कारभार चलाववा माटे श्रीमालचंडशीय नेमिनागना पुत्र श्रेष्ठी अमय कुमारनी योजना करी हती ते श्रेष्ठी बहुज सत्यवत, दयाशील, सरलस्वभाव अने परेपकारपरायण हतो तेनी आज्ञा एण्यदायक कार्य उपर थपली योग्य नियुक्तिने जोई कावे सिद्धपाल राजानी योग्य प्रशंसा करो हती.

त्यार वाद आचार्य हेमचंद्रे कुमारपालने श्रावक धर्ममां पालवा योग्य १२ व्रतानो विस्तार साथे बोध कर्यो. प्राचीन कालमां आनंद अने कामदेवादि परम जैन गृहस्थोए जे रीते श्रावकधर्मनु पालन करुं हतु, तथा प्रत्यक्षमां पण, सुद पाटण निवासो छड्डुज नामना महान् धनाढ्य आवके जे रीते पोतानी पास श्रावकना १२ व्रतानो स्वीकार कर्यो हतो, तेनां उदाहरणो आपी हेमचन्द्रसरिण कुमारपालनी श्रावक-धर्म-जंगीकरण तरफ सुरुचि उत्पन्न करी. राजाए तेमना बोधानुसार एक राजार्पिने शोभे तेथी रीते श्रावकव्रतनो धर्मा पूर्वक स्वीकार कर्यो, अने आची रीते अते कुमारपाले जैनधर्मनो पूर्ण स्वीकार करी ने एक परमारत जैन राजा थयो.

जैन थया पछी कुमारपालनी नित्यनी दिनचर्या आ प्रमाणे यथावचामां आची छे —ते प्रति दिवस

પ્રાતઃકાલમાં બેઠો ઉઠતો અને મૌઠી પ્રથમ, જૈનધર્મમાં સુપ્રસિદ્ધ એવા પંચનમસ્કારમંત્રનું સ્મરણ કરતો. ત્યાર બાદ પોતાના દૃષ્ટ દેવ-ગુરુનું ધ્યાન કરતો. પછી કાચગુરુ વિગેરે કરી, રાજમાંદિરમાં જ આવેલા જિનમાંદિરમાં જઈ જિનપ્રતિમાનો પુણ્ય, નૈવેદ્ય વિગેરેથી પૂજા કરી પંચાંગ પ્રણિપાત કરતો; તથા યથાશક્તિ નમોદારસી વિગેરે તપનું પ્રત્યાશ્વાન કરતો હતો. ત્યાર બાદ, અવસર થઈ, હાથીનાં હોદે બેસી, અનેક સામંત, મંત્રી આદિ સાથે 'કુમાર વિહાર' માં જતો, અને ત્યાં અષ્ટપ્રકારી પૂજા કરી ભાવપૂર્વક પ્રમુદ્રાર્થના કરનો. ત્યાંથી પછી તે હેમચંદ્રાચાર્ય પાને જતો અને ચંદન, કમ્પુર તથા સુવર્ણકમલવિથી તેમની ચરણપૂજા કરતો હતો તદનંતર તેમની આગળ બેસીને ધર્મોપદેશ સાંભળતો અને ઉપદેશની સમાપ્તિ થઈ યથાશક્તિ કાર્દિક તપસ્યાનું પ્રત્યાશ્વાન કરી લગભગ મધ્યાહન સમયે પાછો રાજમુવનમાં આવતો હતો. રાજમાંદિરમાં આવી યાચક વિગેરે લોકોને ઉન્નિત વૃત્તિનું ર્વિતરણ કરી, પુનઃ નૈવેદ્ય વિગેરેના ધાલો મરી ગૃહસ્થની પૂજા કરતો અને પછી પોતે પવિત્ર ભોજનનું સેવન કરતો હતો.

ભોજન કર્યા બાદ તે સમામાં જઈને બેસતો અને ત્યાં જુદા જુદા વિદ્વાનો સાથે ધર્મશાસ્ત્ર અને તત્ત્વવિચારની ઘાતો કરતો તથા તેમની પાસેથી સાંભળતો આ વિદ્વાનોમાં કાવિ સિદ્ધપાલ મુખ્ય હતો. તે હમેશાં રાજાની આગળ વિવિધ પ્રકારની કથાચારીઓ કરી તેના મનને શાંત અને સતુષ્ટ રાખતો હતો.

દિવસના ચતુર્થ પ્રહરમાં (પડેલે લગભગ ત્રણ વાગ્યા પછી) કુમારપાલ રાજસભામાં સિંહાસન ઉપર જઈને બેસતો, અને ત્યાં આગળ સામંત, મંત્રી, માંડલિક અને સેઠ સાહુકાર આદિ રાજકીય અને પ્રજાવર્ગીય પુરુષો સાથે રાજ્યકારભાર સંબંધી વિચાર-વિનિમય ચલાવતો તથા લોકોની શિક્ષિતો (કર્ણાદો)સાંભળતો અને તેનો ઉચિત નિકાલ કરતો. રાજાનો ધર્મ છે એમ જાગી ન્યારે ન્યારે, મહાવિગેરેની કુસ્તીઓ કે હાથી વિગેરેની નાટમારી જેવી રમતો પણ અલિપ્તમને તે જોતો હતો.

આથી રીતે રાજ્યકાર્ય કર્યા પછી, જો અષ્ટમી યા ચતુર્દશીનો દિવસ ન હોય તો, બે ઘડી દિવસ રહેતે સાયંકાલનું ભોજન કરતો—અષ્ટમી અને ચતુર્દશીના દિવસે તે એક જ વાર ભોજન લેતો હતો. ભોજન કર્યા બાદ પુણ્ય આદિથી ગૃહસ્થની સાયકાલિકી પૂજા કરતો અને વારવધૂઓ પાસે આરતી-મંગલાદિ કરાવતો. ત્યાર બાદ રાત્રિના કેટલાક સમય સુધી, ચારણ અને ગાયક આદિ જનો તેની આગળ બેસીને જે ગુણગાન તથા ગાયન-વાદન આદિ કરતા તે સાંભળતો અને યારે નિદ્રાનો સમય થતો ત્યારે મનમાં ધૈરાગ્ય અને પ્રહ્લચર્યના વિચારોનું ચિંતન કરતો શય્યાપાત્ર થતો હતો.

તે જૈનધર્મપ્રસિદ્ધ નમસ્કારમંત્રનું સતત સ્મરણ કરતો રહેતો હતો. ૫ મંત્ર ઉપર તેની બહુજ શ્રદ્ધા હતી. તે કદમાં કરતો હતો કે, જે કાર્યો, વિપુલ સૈન્ય સાથે વિગ્યાંત્રા કરતી ઘસતે પણ મારાથી સિદ્ધ ન હોતાં થયાં, તથા જે શત્રુઓ મારી જાતની ચઢાઈથી પણ વશ ન હોતા થયા, તે કાર્યો આ નમસ્કાર મંત્રના પ્રભાવથી વિના યત્ને સિદ્ધ થાય છે, તથા તે શત્રુઓ અગ્રહ જેવા ધનિષ્ઠ દેશોથી પણ વશ થઈ રહ્યા છે અત્યારે, આ નમસ્કાર મંત્રના પ્રભાવથી મારા રાજ્યમાં કોઈ પણ સ્વચક્રને કે પરચક્રનો ભય નથી તેમજ હુમિશ્વાદિનું પણ કયાંપ નામ સુધાં સંભળાતું નથી. इत्यादि.

આથી રીતે આ પ્રથમાં, સંક્ષેપમાં કુમારપાલના જૈન ધાર્મિક જીવનને સાર આપવામાં આવ્યો છે. કુમારપાલ અને તત્કાલીન અન્યાન્ય પ્રસિદ્ધ પુરુષો, કે જેમનો ઉલ્લેખ પ્રસંગોપાત્ત આ પ્રથમાં કરવામાં આવ્યો છે, તેમના સંવંધમાં વિશેષ હકીકતો પ્રભાવકચરિત્ર, પ્રવંધચિન્નામાણિ, જયસિંહસૂરિરુત-કુમાર પાલચરિત્ર, ચારિત્રસુંદર રચિત-કુમારપાલચરિત્ર, જિનમંડન રુત-કુમારપાલપ્રવચ; इत्यादि પ્રાચીન પ્રંથોમાં, તેમજ ફાર્બસરુત રાસમાલા અને ચૌમ્મેગેગ્રેટીઅર આદિ અર્થોચીન ઐતિહાસિક પ્રંથોમાં યથાજ્ઞાત પ્રકટ થયેલી છે, તેથી તે સંબંધમાં અહીં કોઈ લાંબું લખવું અનુપયુક્ત છે.

યથાપિ ઉક્તરીતે આ પ્રથમાં ઐતિહાસિક વૃત્તાંત બહુજ અલ્પપ્રમાણમાં આપવામાં આવ્યો છે. તો પણ,

જે આપ્યું છે તે સંપૂર્ણ વિશ્વસ્ત અને પ્રામાણિક છે, એમ આપણે સ્પષ્ટ કરવું જોઈએ. કારણ કે ગ્રંથકાર શુદ્ધ કુમારપાલના સમકાલીનજ નહીં પરંતુ તેના અંતરગ જીવનથી સવિશેષ પરિચિત પણ હતા, એમ આપણે ઉપર આપેલા તેમના પરિચયથી નિશ્ચિત રૂપે સમજી શકીએ છીએ.

કુમારપાલના ધાર્મિક જીવનના સવધર્માં તેના સમકાલીન એવા ગ્રંથ લેખકોના લેખેલાં વર્ણનો મળી આવે છે. ૫ લેખકોમાં ૫૧૬ તો શુદ્ધ તેના ધર્મગુરુ યાચાર્ય હેમચંદ્ર પોતેજ છે. તેમણે કુમારપાલ ચરિત્ર (પ્રાકૃતદૃશ્યાશ્રય) માં અને મહાવીરચરિત્રમાં તેના સંવધર્માં કેટલોક સક્ષિત વર્ણન આપ્યું છે. કુમારપાલચરિત્રમાં આ રહેલું વર્ણન અને પ્રસ્તુત ગ્રંથમાં આપેલું વર્ણન-તેમાં ૫૧૬ ધ્યાન કરીને તેની દિનચર્યા સંયંધી વર્ણન તો-તારવળી કરતાં લગભગ અર્ધશ સંપૂર્ણ મળતું આવે છે. યીજો લેખક કવિ યશ પાલ છે. જેણે કુમારપાલના આધ્યાત્મિક જીવનને અનુલક્ષીને મોહરાજપરાજય નામનું નાટક રચ્યું છે. આ કવિ પોતાને અજયદેવ ચક્રવર્તી (કે જે કુમારપાલનો ઉત્તરાધિકારી હતો) નો ચરણસેવી થતાયે છે. તેથી ૫૧૬ પણ કુમારપાલનો સમકાલીન જ હતો, એ અર્થાત્ સિદ્ધ છે. 'મોહરાજપરાજય' માં, કુમારપાલે પોતાના રાજ્યમાંથી પ્રાણિદંડિયા, માંસનશ્વણ, યુત્તરમણ, વેદ્યાગમન આદિ પાપ વ્યસનોનો જે સર્વથા વધિક્કાર કરાવ્યો હતો તેનું યજ્ઞ મનોહર અને હૃદયગમ વર્ણન કરેલું છે. શ્રીજા લેખક આ પ્રસ્તુતગ્રંથ પ્રણેતા સોમ પ્રભાચાર્ય છે. આ ગ્રંથે લેખકો જણાવ્યા અને પ્રમાણભૂત હોવાથી તેમના કથનમાં કોઈ પણ પ્રકારના સંદેહને અવકાશ નથી. આ લેખકોના ચોક્કસ કથન ઉપરથી જણાય છે કે કુમારપાલ એક પરમધાર્મિક જૈન રાજા હતો. જૈન ધર્મે ઉપર તેનો પૂર્ણ શ્રદ્ધા હતો અને એ ધર્મપ્રતિપાદિત જાચાર-વિચારોનું પાલન કરવા તેણે સંપૂર્ણ કોશીશ કરી હતી; જૈન ધર્મનો પ્રસાર કરવા તેણે ચત્રતા પ્રયત્નો કર્યા હતા, અને તેનો પ્રભાવ સ્થાપના તેણે પોતાને તન્મય થનારો હતો. તે સ્ત્રમાયથી સરલ અને વિચારથી ઉદાર હતો. જૈન ધર્મે ઉપર તેનો પૂર્ણ અનુરાગ હોવા છતાં પણ અન્યધર્મો ઉપર તેણે ત્યારે પણ પોતાનો અભાવ પ્રકટ કર્યો ન હતો. એક પ્રજાપાલક રાજા તરીકે તે દરેક ધર્મે ઉપર સમાન ભાવેજ આદર રાખતો હતો. તે જાતે સદાચારી અને સદ્ગુણાનુરાગી હતો. તેના રાજ્યથી લોકો પૂર્ણ સુખી અને સતુષ્ટ હતા. દિવ્યલમ

કુમારપાલ પ્રતિબોધની બંનની પ્રશસ્તિ નીચે પ્રમાણે છે —

સૂર્યાચન્દ્રમસૌ કુતકૃતમસઃ કર્ણાવતસો ક્ષિતિર્ધૃતિર્ધર્મરસસ્ય સર્વજગતસ્તત્સાવલોકે દસો ।
નિર્વાણાવસથસ્ય તોરણમહાસ્તમ્ભાવમૂતામુભાવેક શ્રીમુનિચન્દ્રમૂરિરપર શ્રીમાનેશ્વરપ્રભુઃ ॥
તયોર્નિર્ભૂવાજિતદેવસૂરિઃ સિધ્ધોઃ વૃહદ્રચ્છામ સજ્જાક્ષુઃ । જિનેન્દ્રધર્મામ્બુનિધિ પ્રવેદ્યનોદક શ્દ્ધાતમતીશ ચસ્માન્ ॥
શ્રીદેવસિરપ્રમુખા મધુસુત્યેડપિ તત્વાદપયોજહસા । ચેપામવાચારાવિતસ્થિતોના નાલીકમૈત્રી સુદમતાતાન ॥

વિશારદશિરોમળેરાજિતદેવસૂરેમૂલકમામ્બુપમધુન્તો વિજયસિદ્ધિશ્રી પ્રભુ ।

મિતોપકરણક્રિયાકચિરનિલ્સવાસી ચ ચધિરન્તનમુનિત્રતઃ વ્યથિત દુ પમાયામપિ ॥

તાપટૂંવાંદ્રિસહ્યરારેમ. સોમપ્રમાચાર્યે દત્તિ પ્રસિદ્ધ । થીદેમપૂરેશ કુમારપાલદેવસ્ય ચદ ન્યગદ્વચીરનમ્ ॥

સુકલિરિતિ ન કીર્તિ નાર્યેલામ ન પૂજામહમથિલપમાણઃ પ્રાવૃત્ત વચ્ચુમેતત્ ॥

કિમુત રુતમુખામ્યા દુષ્કરં દુ પમાયાં જિનમતમતુલ તત્કોત્તેનાપુણ્યનિષ્ઠુઃ ॥

ધર્મે નિર્મલતામવેમુમુલ્લાં આદેમચન્દ્રપ્રભૌ મનિત વ્યજિતુમમુલ્લાં મણિતિપુ દ્રુદ પરામૌચીતીમ્ ।

થોડુ ચિત્રસ્થાધમત્કલિરુતઃ કાવ્ય ચ લોકોત્તર કર્તુ વામયસે યદિ સ્ફુટપુણ તદ્ગ્રન્થમતં યજ્ઞુ ॥

પ્રાગ્વાટાન્વયસાગેર-દુરસમપ્રજઃ રુતઃ ક્ષમી વાગ્મી સૂક્ષ્મુવાનિચાનમનનિ ધ્યાપાલવાસા પુમાન્ ।

ય લોકોત્તરકાવ્યરચિતમતિઃ સાહિત્યવિચારતિ થીયેદ્યાધિપતિ કલોન્દ દિતિ ચ પ્રાતેતિ ચ વ્યાહરન્ ॥

પુનસ્તસ્ય કુમારપાલનૃપતિપ્રીતે પદ ધીમતામુચસ કવિચત્રમસ્ત્રકમણિ થીયેદ્યાપાલોડમવન્ ।

ક્લમ્ સત્રસતાવિદ કિમપિ ચન્દ્રચાચુસ્તમુક મયા તયુષ્માનિદિહોચ્યતામિનિ મુષા વ પ્રાજ્ઞલે પ્રાર્થયે ॥

देमसुरिपदपद्म जहंसेः धीमहेन्द्रमुनिपैः श्रुतमेतत् । वदंमान गुणचन्द्र गणिभ्यां साकमाकलितशास्त्ररहस्यः ॥
वाचत्रिहतागिलसन्तमसौ नमसि बवास्तो रनिचन्द्रमसौ । तावत् हेमकुमारचरित्रं साधुजनो वाचयतु पवित्रम् ॥

विमलमसिसुधारिर्नेमिनाणाद्गजन्माऽभवदभयकृद्धारः श्रावकः श्रेष्ठिमुन्यः ।

अथ निजस्वरपदाप्तप्रमार्थैषया विजितस्वरपदा सत्य पद्योनि पत्नी ॥

तत्पुत्रा गुणिनोऽभवत् गुवि हरिधन्वाद्यो विधुताः श्रद्धेयाप्रमृताश्च धर्मधिषणापात्राणि तत्पुत्रिकाः ।

तत्प्रीत्यर्थमिदं व्यधायि तदुपहरामच्छात्रमभि (?) - भयिष्ठानि च पुस्तकानि तांऽलेखयन् ॥

शशिनलसिर्मुखं गुचिमासे त्विदिने सिद्धयाम् । जिनपद्मप्रतिषेधः वृत्रमोऽयं गुन्नेरेन्द्रपुरे ॥

प्रसारपञ्चकेऽप्यप्राप्ते सहस्रांशुशुभाम् । एकेमास्त्रसंन्याताऽन्यधिकान्पठयतिः शनैः ॥

संवत् १४५८ वर्षे द्वितीयभाद्रपदवृद्धि ४ तिथौ शुक्लदिने श्रुतिगतसौं वृद्ध (वृद्ध) पौषपक्षालाया भट्ट • प्राञ्चय-
तिलकसूरीणां उपदेशेन धीकुमारपालप्रतिषेधपुस्तकं किमिदमिदं ॥ वायस्य शातीयमहं मंडलिकपुत्र पेटालिगितं ॥ चिरं
नंदतु ॥ ८ ॥ ३० श्रीजयप्रमगणिस्य (सित्य) ३० श्रीजयमंदिरगणि स्य (सित्य) भट्टा • श्रीज्याणरतनमूरिगुण्यो
नमः ५० य (वि) चारत्तगणि ।

सोमप्रभाचार्य रचित शतार्थवृत्तकाव्यनी टीकाना प्रारम्भमां नीचे प्रमाणं ५, श्लोको व्याख्यामां आ-
ध्या छे जेमां १०० अर्थोनी अनुक्रमणिका व्याख्यामां आया छे.

अथ स्तुताश्चतुर्विंशतिजिनाः सिद्ध-सूर्य उग्राध्यायाः । मुनि-पुण्डरीक-गौतम-सुख-पञ्चमनी-समयाः ॥
ध्रुतदेवी-पुरुषार्थ-विधि-भारद-देव-विष्णु-बलभद्रा । श्रीः प्रमुन्नश्चक शूद्र-शिव-गिरिमुना-स्कन्दाः ॥
हेरम्बः केलाक्षी प्रह-देवगला जयन्त-घन-मंदिराः । कनका-ऽद्वि-सिंह-हय-करि-सरोज-भुजगाः शुक्रोऽरव्यम् ॥
मानसरो-ऽल-वैद्या-ऽनिलसुत-पत्नी-महा गुरुचतुष्कम् । जयसिंह-कुमारनृपाः जयदेवो मूलराजश्च ॥
श्रीसिद्धपाङ्कजादे रजितदेवमूरि गुणार्थजयसिंहः । तच्छिष्यः रामप्रमसूरिश्च शानार्थवृत्तकविः ॥

शतार्थवृत्तनी वृत्तिना अंतमां सोमप्रभाचार्यना पिताविगेरेना उल्लेखयाला जे श्लोको व्याख्या छे
ते नीचे प्रमाणे छे.—

य एव शिष्यः स्वहस्तैः बहिर्यैर्गुरोर्गिरिणा जितकाञ्चनाद्रेः । गृहस्थमाया-ऽन्वयकीर्तनेन व्यनक्ति भक्तिं पुनश्चतमेताम् ॥
प्राग्वाञ्छान्वयनीराशिजिनाजीर्णनिर्मावीर. संजातो जिनदेव इत्यभिपया चूडामणिर्मन्त्रिणाम् ।

यस्यैश्वर्य-विवेक-विभ्रम-दय-दाक्षिण्य-पुण्यैर्गुणैः । सामर्थ्यं लघुमहासैन्यं जगद्विप क्रिद्वयत्र विभ्रामयति ॥

तत्त्वाऽऽत्मजः सुजनमण्डलमौलिरत्नमुज्ज्वलितेन्द्रियजयोऽजानि सर्वदेवः ।

प्रकृत्यसर्वगुणनिर्मितकीर्तुकं धात्रा कृतोऽयमिति यः प्रथितः पृथिव्याम् ॥

सुनुरतस्य प्रथमकमलादुपेण पुण्यकर्मः कौमारोऽपि स्मरमद्वजयी जैनदीक्षो प्रपन्नः ।

विधेस्याऽपि श्रुतजलनिधे. पारमासाय जज्ञे धीमान् गोमप्रभ इति लसत्कीर्तिराचार्यवर्यः ॥

यो गृह्णाति समभुज ववोति यस्तत्कीर्तुद पाठवं काव्य यस्त्वरितं करोति तनुते यः पावनी देशनाम् ।

योऽवप्यान् सुमतेश्वरिण + + मठाः सुविपदिक्वतपरो श्रीसोमप्रभमूरिरेव वृत्ते शतार्थं व्यधात् ॥

ડૉ. હર્મન જેકોબીની જૈન સૂત્રોની પ્રસ્તાવના

(પ્રથમ ભાગ.)

[અનુવાદક—શાહ અંબાલાલ ચતુરભાઈ, बी. ए.]

[પ્રથમ અક્ષરમાં ડૉ. હર્મન જેકોબીની કલ્પસૂત્રની પ્રસ્તાવનાનો અનુવાદ આપવામાં આવ્યો છે. આજ આ ત્રિવે, ' પૂર્વના પવિત્ર પુસ્તકો (Sacred Books of the East) ' નામની સુપ્રસિદ્ધ ગ્રંથમાલામાં ' જૈન સૂત્રો ' નામે તેમનાં જે બે પુસ્તકો પ્રસિદ્ધ થયાં છે, તેમાના પહેલો પુસ્તકની (નં. ૨૨) પ્રસ્તાવનાનો અનુવાદ ઉપસ્થિત કરવામાં આવે છે. ૫ પુસ્તકમાં આચારાંગ અને કલ્પસૂત્ર, ૫મ વે જૈન સૂત્રોના ભાગાંતરે પ્રકટ કરવામાં આવ્યાં છે—સંપાદક.]

જૈન ધર્મની ઉત્પત્તિ તથા ઉત્ક્રાંતિના સંબંધમાં વિવેચન કરતી વખતે, કેટલાંક વિદ્વાનો હર્જી પળ, જે શંકાશીલ કથન કરતું રીતસર સમજી રહ્યા છે, તે આ વિષયના સમગ્ર પ્રશ્નની વર્તમાન પરિસ્થિતિ જોતાં ચિલ્કુલ યોગ્ય હોય તેમ જણાતું નથી. કારણ કે હવે જૈન ધર્મનું સાહિત્ય મોટા પ્રમાણમાં ઉપલબ્ધ થઈ ગયું છે અને તેથી જે કોઈ વિદ્વાનને ૫ ધર્મના પ્રાચીન ઇતિહાસનાં સાધનોને સંગૃહીત કરવાની રૂચા હોય તેને તેમાંથી તેવાં ઉપકલ્પ સાધનો મળી શકે તેમ છે. અને ઘણી આ સાધનો પણ પૂર્વા નથી કે જેથી તેમાં આપણને અશ્રદ્ધા રાખવાનું કારણ મળે આપણે જાણીએ છીએ કે જૈનોના પવિત્ર પુસ્તકો—અર્થાત્ આગમો—પ્રાચીન છે—જેને આપણે સચ્ચત કાલતું સાહિત્ય (Classical literature) કહીએ છીએ તે કરતાં સ્પષ્ટ રીતે ઘણાં પ્રાચીન છે. ૫ આગમોની પ્રાચીનતાના સંબંધમાં કહેવું જોઈએ કે તેમાંના ઘણાક ગ્રંથો, ઉચ્ચતરીય બૌદ્ધોના સૌથી પ્રાચીન ગ્રંથોની સાથે તુલનામાં આથી શકે તેવા છે. હવે બૌદ્ધોના ૫ ગ્રંથો જો ચુક અને બૌદ્ધધર્મનો ઇતિહાસ તૈયાર કરવામાં આચારાંગના સ્વીકારાયાં છે તો તેજ કોટિનાં જૈનોનાં પવિત્ર પુસ્તકો તેમના ઇતિહાસનાં પ્રામાણિક સાધન તરીકે શા માટે ન સ્વીકારી શકાય, તે સમજી શકાતું નથી જો આ ગ્રંથો (જૈન

આગમો) પરસ્પર વિરુદ્ધ કથનોથી ભરેલા હોત અથવા તો તેમાં આવેલી તારીખોથી પરસ્પર વિરોધી અનુમાનો ઉભા થતાં હોત તો આવાં સાધનોના આધારે ઉત્પન્ન થયેલા યથા સિદ્ધાંતોને શકાશીલમને જોવાનું આપણા માટે ન્યાય્ય ગણાત પરંતુ જૈનસાહિત્યનું સ્વરૂપ આ વાચકમાં બૌદ્ધ સાહિત્યથી પણ ઘડતુ અલગથી જુદું પડે છે,—સાત કરીને ઉચ્ચતરીય બૌદ્ધ સાહિત્યથી. તો પછી શા માટે, આટલા ઘણા લેખકો, જૈનસાહિત્યમાંથી મળે આવતી તે ધર્મની ઉત્પત્તિ અને સ્થિતિથી, મિત્ર પ્રકારનાં અનુમાનો કરતા હશે ? આનું કારણ સ્પષ્ટ છે, અને તે યુરોપીય વિદ્વાનોએ જૈનધર્મ અને બૌદ્ધ ધર્મમાં પરસ્પર વાસ્તવિક ભગર આભાસાત્મક જે સામ્ય સોઝી કાઢ્યું છે, તેજ છે. ૫ વિદ્વાનોનું એવું માનવું છે કે આ વચ્ચે ધર્મોમાં જે ભાદરું ઘડતુ સામ્ય દૃષ્ટિગોચર થાય છે તેથી, તે પરસ્પર સ્વતંત્ર નહીં હોવા જોઈએ, પરંતુ એક બીજામાંથી ઉત્પન્ન થયેલા અથવા તો એક બીજાની શાલા રૂપે પ્રવર્તેલા હોવા જોઈએ. આ પ્રકારના, કારણ ઉપરથી કરાત-કાર્યના અનુમાનાત્મક અભિપ્રાયથી, ઘણા વિવેચકો—સમાલોચકોની દૃષ્ટિ કલુષિત થઈ ગઈ છે, અને અત્યારે પણ તેમ થતી જોવામાં આવે છે. આપણી પૃષ્ઠોમાં હું ૫ મિષ્ટાન્નાતિને દૂર પ્રયત્ન કરીશ અને જૈનાગમો જે

કતા અને પ્રતિષ્ઠાને પાત્ર છે તે પુરવાર કરી આપીશ. આપણે આપણી ચર્ચાનો પ્રારંભ મહાવીર વિષયક ઉદ્ધાપોદ્યથી કરીશું કે જેઓ જૈનધર્મના સંસ્થાપક, નિદાન તેના અંતિમ તીર્થંકર હતા. અહીં મારે જણાવી દેવું જોઈએ કે, મહાવીરે એક અર્વાચીન સંપ્રદાય દ્વારા ઊભો કરેલો અથવા કલ્પી લીધેલો માત્ર સાંકેતિક પુરુષ છે, કે જે સંપ્રદાય પોતાના કલ્પિત સંસ્થાપકના મિથ્યાકાલ પછી ત્રણી શતાબ્દિઓ બાદ ઉત્પન્ન થયો હતો, એ જાણના મુદ્દાને દૂર કરવા માટે પુરતું સાહિત્ય મળી ચૂંસ્યું છે.

શ્વેતાંશ્વર તેમજ દિગંધર—એ બંને જૈન સંપ્રદાયો જણાવે છે કે મહાવીર કુણ્ડપુર અથવા કુણ્ડગ્રામના રાજા સિદ્ધાર્થના પુત્ર હતા. જૈનોની એવી માન્યતા છે કે આ કુણ્ડગ્રામ તે એક મોટું નગર હતું તથા સિદ્ધાર્થ તે એક ત્યાંનો પ્રતાપી રાજા હતો. પરંતુ કપિલવસ્તુ અને શુદ્ધોદનના સંબંધમાં યૌડોના કથનની માફક, જૈનોનું પણ આ સ્તરી ધમ્મુસ્થિતિનું અતિશયોક્તિ દ્વારા કારણે એક મિથ્યા કથન છે. કુણ્ડગ્રામને આચારાંગસૂત્રમાં એક સંનિવેશ તરીકે જણાવેલું છે કે જેનો અર્થ ટીકાકારે 'યાત્રિઓ અથવા સાર્થવાહોનું વિગ્રામસ્થાન' એમ કરેલો છે. આ ઉપરથી જણાય છે કે તે (કુણ્ડગ્રામ) એક નજીનું સ્થાન હશે. તેના સંબંધમાં માત્ર પટલોજ સંપ્રદાય મઠી આવે છે કે તે વિદેહમાં આવેલું હતું (આચારાંગ સૂત્ર ૨, ૧૫૬. ૧૭) શ્રીદ્ધ તેમજ જૈન ગ્રંથોમાં પ્રસંગે પ્રસંગે મઠી આવતા ઉલ્લેખો ઉપરથી મહાવીરની જન્મભૂમિના સ્થાનનો આપણે યોગ્ય નિર્ણય કરી શકીએ તેમ છીએ. યૌડોના મહાવગ્ગસૂત્રમાં આપણે યોગ્યે જીએ કે શુદ્ધ ગ્વારે કોટિગામમાં વસતા હતા ત્યારે તેમને, તે સ્થાનની પાસે આવેલી ધંશાલીનામે રાજધાનીમાંથી લિચ્છવિઓ તથા અમ્બાપાલી નામની વેદ્યા મઠવા આવી હતી કોટિગામથી શુદ્ધ જ્યાં જાતિકો રહેતા હતા ત્યાં ગયા હતા, અને ત્યાં તેઓ જાતિ-

કોના દષ્ટિકામ્યમાં ઉતર્યા હતાં. આ સ્થાનની નજીકમાંજ અમ્બાપાલી વેદ્યાનું અમ્બાપાલિકન નામનું ઉદ્યાન હતું, જે તેણે શુદ્ધ અને તેમના સંબંધે સમર્પિત કર્યું હતું. ત્યાંથી તેઓ ઘેસાલી ગયા, અને ત્યાં લિચ્છવિઓના સેનાપતિને, જે નિર્વ્રીપો નો એક આવક હતો, પોતાના ધર્મનો અનુયાયી બનાવ્યો. આ ઉપરથી યૌડોનું કોટિગામ અને જૈનોનું કુણ્ડગ્રામ એ બંને એકજ હોય તેમ ઘણજ સંભવિત લાગે છે. નામના સામ્ય ઉપરાંત જાતિકોનો ઉલ્લેખ—કે જે જાતિકો સ્પષ્ટરૂપે મહાવીરની જન્મજાતિવાળા શ્રાત ક્ષત્રિયો જ છે—તથા સીદ્ધ નામના જૈનોનો ઉલ્લેખ પણ એકજ વાચત તરફ અગુલી નિર્દેશ કરે છે.

આ ઉપરથી ઘણ કરીને કુણ્ડગ્રામ એ વિદેહની રાજધાની ઘેસાલીનું એક માત્ર પંક્તિ હતું. આ અનુમાનને, સૂત્રકૃતાશ્વ ૧, ૩ માં મહાવીરને જે 'ઘેસા' અર્થના વિષયમાં ટીકાકારો તથા અર્વાચીન ભાષાંતરકારોની શ્રેષ્ઠમંજુતી થઈ હોય તેમ જાણે છે. મહાપરિનિવ્વાન મુદ્દાના માધાન્ટરમાં (S. B. E. Vol. XI) રાહમ દેવિદ્દેશ, પૃ. ૨૪ ની નોટમાં, આ પ્રમાણે લખે છે:—પ્રથમ 'નાદિક' શબ્દ એ વાર મહુવચનમાં વપરાયો છે—'પરંતુ રથાર પછી લોજો વાર—એટલે છેના અચાનક વાક્યમાં તે એક વચનમાં વપરાયો છે. આનો સુભાવો મુદ્ધાપો આમ કરે છે—'એ નામના જલાશયના કાંઠા ઉપર એજ નામનો એ નામની હતા. ' પરંતુ મારા ધારવા પ્રમાણે મહુવચનમાં પ્રયુક્ત થયેલો વાકિયા શબ્દ તો ક્ષોત્રયોનો વાચક છે, અને એકવચની શબ્દ 'મિઝ્જકાવસથ' નું વિશેષણ છે, જે મહાપરિનિવ્વાન મુદ્દામાં પ્રથમ સ્થાન નિર્દેશ વચ્ચે, તથા મહાવગ્ગ ૬, ૨૦, ૫ માં, આવે છે. આથી મહાપરિનિવ્વાનમાં જે એ શબ્દે નાદિક શબ્દ એકવચનાન્ત હોય ત્યાં ત્યાં તેના 'મિઝ્જકા વસથ' વિશેષણને અધ્યાહત માન્યું જોઈએ મારા મત પ્રમાણે 'નાદિક' એક સ્વરૂપ છે અને મહાપરિનિવ્વાનનું 'યાતિક' રૂપ સ્વરૂપ છે. મિ. રાહમ દેવિદ્દેશ પણ ભાષાંતરની અનુક્ર માણેશમાં 'નાદિક એ પટના પાસે છે' એમ જે જણાવ્યું છે તે ભૂલ્યેલું છે. કારણ કે મહાવગ્ગની કથા ઉપરથી સ્પષ્ટ જણાય છે કે આ સ્થાન તથા કોટિગામ એ બંને એકી વેષાલિની નજીકમાં હતા.

૧ જુઓ—વેવર, Indische Studien, XVI, p. 262.

૧ જુઓ શોરડનબર્ગની આગૃતિ પૃ. ૨૨૧, ૨૨૨; ગાપાતર (ધાંજો ભાગ) પૃ. ૧૦૪. Sacred Books of the East, Vol. XVII.

૨ જે સૂત્રમાં 'વાતિકા' શબ્દ આવેલો છે તે સૂત્રના

લિપિ 'પટલે વૈશાલિક પટું નામ આપેલું છે. તેથી પણ પુષ્ટિ મળે છે. તે સ્થળે, ટીકાકારે આ શબ્દનો અર્થ વે મિત્ર મિત્ર રીતિપ્રે સમજાવ્યો છે; અને ઘીજે એક સ્થળે યીજો અર્થ પણ આપેલો છે. આ પ્રમાણે મઠી આવતો અર્થવિરોધ, એમ સ્પષ્ટ કરે છે કે વૈશાલિકનો સ્વરો અર્થ શી કરવો તે સંબંધી સ્પષ્ટ સંપ્રદાય નહીં મઠી આવ્યો હશે; અને તેથી, અર્વાચીન જૈન વિદ્વાનોનાં કૃત્રિમ અર્થબોધનો તરફ આપણે ધૃતિશ્વર આપણે યતિત છે વૈશાલિક શબ્દનો સ્પષ્ટાર્થ 'વૈશાલી નિવાસી' એવો થાય છે અને કુણ્ડગ્રામ વૈશાલીનું પદ હોવાથી મહાધીરહતું તે નામ સાસ્ત્રિક ગણી શકાય છે.—જેમ ટર્નહામગ્રીનનો રહેવાશી લંડનર (Londoner) તરીકે ઓલંચાય છે તેમ. જ્યારે આ પ્રમાણે કુણ્ડગ્રામ વૈશાલીનું એક પદ માત્ર હતું, ત્યારે ય પણ સ્પષ્ટ છે કે તે ગામનો રાજા પણ વધારેમાં વધારે એક નાનો સરદારજ હોયો જોઈએ. જો કે જૈનો પોતાના અનુયાયકિ-કર્મને લઈને, સિદ્ધાર્થ એક શરેશ્વર પ્રચલ રાજા હતો એમ કલ્પી તેની રાજલક્ષ્મીનો ઘર્ણાંજ કેવીવ્યમાન અને આદર્શભૂત ઘર્ણોમાં ચિતાર આપે છે સરા,પરંતુ તેમનાં ઘર્ણોમાંથી અલંકારોનાં આમરણો ઉતારી લીધાં પડ્યાં. એ સત્ય સહેલાઈથી પ્રકટ થઈ જાય છે કે સિદ્ધાર્થ એક મોટો રાજા નહીં પણ માત્ર અમીર હતો અને તે આ પ્રમાણે:—સિદ્ધાર્થને અનેક સ્થળે માત્ર ક્ષત્રિયજ કહેલો છે, તથા તેની પત્ની જેનું નામ ત્રિશલા હતું, તેને પણ હમેશાં ક્ષત્રિયાણી તરીકેજ ઘર્ણવેલી છે. ય્યાં સુધી મને સ્મરણ છે, તેને દેવી તરીકે ધ્યાન લખી નથી. તેમજ ક્ષાત્રિક ક્ષત્રિયો પણ દરેક સ્થળે તેઓ સિદ્ધાર્થના સમાન પદવાલા હોય તેવી રીતે ઘર્ણવામાં આવ્યા છે નહીં કે તેના (સિદ્ધાર્થના) સામંતો અથવા તાવેશરો તરીકે. આ હકીકતો ઉપરથી એમ માલુમ પડે છે, કે સિદ્ધાર્થ રાજા ન હતો, તેમ તે પોતાની જાતિનો નેતા પણ ન હતો, પરંતુ, પૂર્ણ વેદોમાંના જમીનદારો અને તેમાં પણ સાસ કરીને વેશના પ્રતિષ્ઠિત ઉમરાવો જેટલી સત્તા મેળવે છે તેટલી સત્તા ધરાવનારો તે એક ક્ષત્રિય હતો. છતાં પણ તે તેની સાથેના અન્ય સર-દારો કરતાં વધારે લાગવગવાલો હતો, એમ કહી

શકાય છે આમ કહેવાનું કારણ એ છે કે, તે પોતાના લગ્ન સંબંધના લીધે મોટા મોટા માણસો સાથે સંબંધ ધરાવતો હતો, તેવા ઉલ્લેખો મઠી આવે છે તેની સ્ત્રી ત્રિશલા તે વૈશાલીના રાજા ચેટકની યદેન હતી અને આ વિદેહના રાજવંશમાં ઉત્પન્ન થવાથીજ તે વેદેહી અથવા વિદેહદત્તા કહેવાતી હતી.

મારા યત્નકિત્તુ જાણવા પ્રમાણે યૌદ્ધ પ્રધોમાં વૈશાલીના રાજા ચેટકનો ઉલ્લેખ થયેલો નથી. પરંતુ તે પ્રધોમાં એવી હકીકત તો યાંચવામાં આવે છે કે વૈશાલીનું રાજ્યશાસન એક અમીર મંડલને સોંપવામાં આવ્યું હતું અને તે મંડલનો અધ્યક્ષ એક રાજા હતો. રાજ્યમાં અન્ય સત્તાધારી તરીકે માત્ર એક રાજપ્રતિનિધિ (Viceroy) અને ધીજો સેનાપતિ હતા. લિચ્છવિઓના આ અજાયબી અરેલા રાજ્યતંત્રનો શાંખી જૈન પ્રધોમાં પણ આપણને ધર્મ શકે છે. નિરવાચલી સૂત્રમાં એક ઘર્ણન છે કે—જ્યારે ચમ્પાના રાજા કૃષ્ણિકે લઈ અજાતશત્રુપ ચેટક રાજા ઉપર મોટી સેના લઈ હુમલો કરવાની તૈયારી કરી, ત્યારે ચેટક રાજાએ કાશી, કોશલ, લિચ્છવિઓ અને મલ્લકિઓના ૧૬ સંયુક્ત રાજાઓને એકત્ર કરી, તેમને પૂછ્યું કે તમારો અભિપ્રાય કૃષ્ણિકની માગણીઓને પૂરી કરવાનો છે કે તેની સાથે યુદ્ધ કરવાનો છે? આ સિવાય એક એવો પણ ઉલ્લેખ મઠી આવે છે કે, મહાધીરના નિર્વાણ વચ્ચે, આ ૧૬ રાજાઓએ તે પ્રસંગની યાદગીરી માટે એક ઉત્સવ ઉજવવાનો ઠરાવ કર્યો હતો. પરંતુ, આ ટેકાણે ચેટકનો, કે જેને ય સર્વે રાજાઓનો મહા રાજા તરીકે યતાવવામાં આવે છે તેનો, પૃથક્ નામનિર્દેશ થયેલો નથી. આથી સંભવિત છે કે ચેટક

૧ જુઓ કલ્પસૂત્ર, મારી આશ્રિત, પૃ. ૧૧૨. અહીં ચેટકને મહાધીરના મામા તરીકે જણાવેલો છે.

૨ જુઓ કલ્પસૂત્ર, જિનચરિત્ર, § ૧૧૦, આચાર્ય ૨, ૧૫, § ૧૫.

૩ Turnour in the Journal of the Royal Asiatic Society of Bengal, VII, p. ૭૭૨.

૪ Ld. Warren, p. ૨૭.

૫ જુઓ કલ્પસૂત્ર, જિનચરિત્ર.

પણ અન્ય બદાર સંયુક્ત રાજાઓ જેઓ માત્ર એક ભાગીદાર રાજા હતા અને તેમના જેટલીજ તે સત્તા ધરાવતો હતો તથા, તે ઉપરાંત તેની સત્તા વૈશાલીના રાજ્યશાસનથી નિયંત્રિત હતી. આથી આપણે સમજી શકીએ છીએ કે પ્રથમ તો ચેટકનો પ્રભાવે પાંડે વિશેષ નહીં હતો, અને થીજું તેનો પણ ઉપયોગ માત્ર યૌદ્ધોના પ્રતિસ્પર્ધી યવા જૈનોના પક્ષમાંજ થયો હતો, તેથી યૌદ્ધોએ તેનો ઉત્તેજ કર્યો નહીં હોયો જોઈએ. જૈનોએ તેની સ્મૃતિ કાયમ રાખી, તેનું કારણ એ છે કે, તે એક તો પોતાના તીર્થંકર મહાધીરની મામો થતો હતો અને થીજું એ ધર્મનો તે આશ્રયદાતા પણ હતો આ ચેટક રાજાની લાગચાને લઈનેજ વૈશાલી જૈન ધર્મનું એક સંરક્ષણ સ્થાન ધન્યું હતું અને તેથીજ યૌદ્ધોએ તેને પાંડડી-ઓના એક મઠ તરીકે જાણવું છે

મહાવીરના કૌટુંબિક સંબંધનું આ નિરૂપણ કરવામાં આવે છે તે કાર્ય કુતુહલરૂપ નથી, જો સમ હોત તો તો હું આ સ્થળે તે સંબંધી સઘળી ઇતિહાસિક હકીકત—પછી તે ગમે તેટલી નજીવી હોત, મેળી કરત. પરંતુ કૌટુંબિક સંબંધ વિષયક આ માહિતી અપવાનું જાણ કારણ એ છે કે તે દ્વારા આપણે મહાધીરની સફલતાની પ્રાપ્તિનું રહસ્ય શોધી શકીએ છીએ.

મહાધીર તથા યુદ્ધ એ બન્ને કુળસંબંધી દત્તકથાઓમાં ઘર્ષભેલા યાવંચો જેવા તથા ઘર્તમાનકાલીન રજપૂતો જેવા એક જાતના જાગીરદાર સામંત મહલમાં જન્મ્યા હતા. આથી જાતના જાગીરદાર સામંત મહલોમાં કૌટુંબિક સંબંધો ઘણા મજબૂત અને ચિરસ્મરણીય હોય છે.

આપણે સ્પષ્ટ જાણીએ છીએ કે યુદ્ધ મુરચ્ચે કસીને અમીર ઘર્મનિજ પોતાનો ઉપદેશ આપતા હતા તેમ જૈનો પણ પ્રારંભમાં પ્રાણી કરતાં કાચિયોને ઝુચા માનતા હતા. પોતાના માર્ગનો પ્રસાર કરવામાં,

૧ જૈનો મહાવીરના સગાઓનાં નામો તથા ગોત્રો લખાવવામાં માત્ર ચોક્કસ જણાય છે તેઓ તેમના સંબંધી થીજું પાંડે વિશેષ લખતા નથી. કલ્પદૂત, જિનચરિત્રો § ૧૦૯.

૨ જુઓ કલ્પમુદ્ર, જિનચરિત્રો § ૧૭ અને ૧૮.

મહાધીર તથા યુદ્ધ-બન્ને પ્રકટરીતે પોતપોતાના કુટુંબની સહાયતા અને લાગચાનો ઉપયોગ કર્યો હતો. તેમના વીજા પ્રતિસ્પર્ધીઓની અપેક્ષા તેમનો અધિક ઉત્કર્ષ યવામાં કેટલેક અંશે દેશના પ્રતિષ્ઠિત કુટુંબ સાથે તેમનો જે વિદિષ્ટ સંબંધ હતો, તે પણ એક મુખ્ય કારણ છે.

પોતાના માતૃપક્ષધારા મહાધીર, મગધના રાજ્યશાસક પણ સગવળ ધરાવતા હતા, કારણ કે ચેટકની વેલ્હનાં નામની પુત્રીનું લગ્ન, રાજગૃહમાં ઘસતા, મગધના રાજા સેળિય-વિમ્મિસાર અથવા વિમ્મિસારની સાથે થયું હતું. જૈનો અને યૌદ્ધો બન્ને આ રાજાની, મહાધીર અને યુદ્ધના મિત્ર તથા આશ્રયદાતા તરીકે સ્તુતિ કરી છે. પરંતુ સેળિયનો પુત્ર કુળિક અથવા તો યૌદ્ધોના કહેવા પ્રમાણે અજાતશત્રુ—જે વૈદેહી રાણી વેલ્હનાના પેટે અત્યંત હોતો, તેણે પોતાના રાજ્યના પ્રારંભકાલમાં યૌદ્ધો તરફ કાર્ય પણ સહાનુભૂતિ યતાથી ન હતી, પરંતુ જ્યારે યુદ્ધના નિર્વાળના આઠ ઘર્ષ યાકી રહ્યા હતાં ત્યારે તે યુદ્ધનો આશ્રયદાતા ધન્યો હતો. તે ઘસતે પેણ તે સન્નિવૃત્તિ યુદ્ધધર્મોત્સાહી થયો હતો તેમ તો આપણે માની શકતા નથી. કારણ એ છે કે જે માણસ રુદ્ધીરીતે પોતાના પિતાનું સૂત

૧ જુઓ, વૉરનની નિર્યાવલી સૂત્રની આરુતિ પૃ. ૨૧ થીડો વેલ્હનાને વૈદેહીના નામે ઓલ્લે છે. તિવેટના યુદ્ધ ચરિત્રમાં તેનું નામ શ્રીમદ્રા આવેલું છે કે જે આપણે ચેટકની સ્ત્રી સુમદાના નામનું સ્વરણ કરાવે છે. See Schiefelner in *Me'mones de l'Acade'mie Imperiale de St. Petersbourg*, tome IV, p 258

૨ ઘર્ષ કરીને તે માત્ર સેળિય અથવા શ્રેણિકના નામેજ ઓલ્લેાય છે; તેનું પૂરુ નામ દશાશુનસ્કન્ધમાં આવેલું છે જુઓ વેવર, *Ind Stud.* XVI, p 469

૩ આ અને નામો એકજ વ્યક્તિવાચક હોય તેમ લાગે છે. કારણ કે થીડ અને જૈન ધર્મકારોના કથનાનુસાર તે ડકાચિન અથવા ઉદ્ધિમદ્ક—જે જૈન અને પ્રાણ્ય પ્રયોમાં જાણ્યા પ્રમાણે પાટલિપુત્રનો વસાવનાર હતો તેનો—પિત હતા.

૪ થીડો પણ એ હકીકતવાળી વિસ્તારયુક્ત કથા આવે

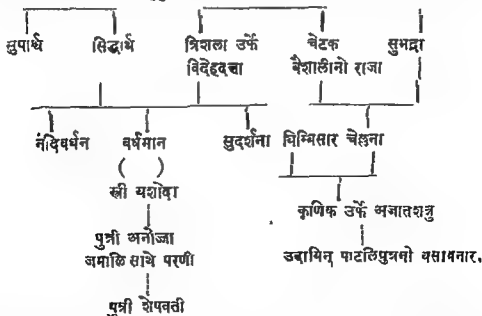
करनारी होय तथा मातामह साथे लडाई लडनारी होय तेवा माणस अध्यात्मज्ञानने माटे बहुत उत्सुक यने ते असंभविता लागे छे धर्मपरिवर्तन करवामां तेनो वास्तविक शो उद्देश हरो तेनुं आपणे सहे-लाईथी अनुमान करी शकिए छीए तेनो उद्देश्य बीजो कोई नहीं पण जेम तेना पिताए पोताना राज्यमां (मगधमां) अंगदेशनो उमेरो कर्यो हतो तेम तेने पोताना तावाना मुलफोमां विदेहने उमे-रवानो हनो. आ कारणथी तेणे प्रथम विदेहनी वृजि जातिने ताये करवामाटे-काढी मुकवा माटे नहीं-पाटलिग्राममां एरु किल्लो बधाव्यो हतो अने आखरे पोताना मातामह वैशालीना राजा साथे

डे, जुभेर, Kern, Der Buddhismus und sein Geschichte in Indien, I, p 219 [p 195 of the original], अने तेज प्रमाणे जैनों पण निरवायलीमां ए हकीकत आपेली छे.

१ जुभो उपर.

२ महापरिनिध्वान सुत्त १, २६, अने महावग्ग ६, २८,

नीचे कोष्टकमां महावीर-अथवा तो अख्यारे आपणे तेमने जैनोना तीर्थंकर तरीके नहीं संबोधता होवाथी, कहैयुं जोईए के वर्धमान या शातपुत्रे-ना सगाओनो पारस्परिक संबंध बताववामां आवे छे.



अहाँ मारो इरादो महावीरसुं सपूर्ण जीवन-चरित्र आपधानो नथी परंतु मात्र केटकीक एषी विगतो

१ पाटलि तथा प्राकृतमा नातपुत्त. बीजो तेमने निग-
ठनातपुत्त अर्थात् निर्गन्ध वृत्त कहे छे

એકત્રિત કરવાનો છે, કે જે દ્વારા તે એક સ્વતંત્ર પૈતૃશાસિક પુરુષ તરીકે તથા ઘણીક મહત્ત્વની યાચતોમાં યુદ્ધથી ને એક મિત્ર પુરુષરૂપે સિદ્ધ કરી શકાય.

વર્ધમાન પોતાના પિતાની માફક એક કાદ્યપ (કાદ્યપ ગોત્રના) હતા. વઢી તેઓ, પોતાના માતાપિતાના મરણસુધી તથા તેનો પછી પણ પોતાના મોટા ભાઈ નંદિવર્ધનને પૈતૃકસંસ્થાનનો ઉત્તરાધિકારી થતાં સુધી, ગૃહસ્થાવસ્થામાં રહ્યા હતા. સ્વાર વાદ અઢ્ઢાવીશ વર્ષનો ઉમરે, સર્વે સત્તાધારી-ઓની અનુમતી હઈ તેમણે દ્વિશ્વા પ્રહણ કરી હતી. રોમન કેથોલિક દેશોમાં જેવી રીતે નાના પુત્રોની મહત્ત્વાકાંક્ષાનું ક્ષેત્ર દેવાલય યન્યું હતું તેવાંજ રીતે હિંદુસ્થાનના નાના પુત્રોનું ધ્યાન આધ્યાત્મિક પ્રવૃત્તિય જ્યન્યું હતું.

સાતર છોડ્યા પછી મહાવીરે ચાર વર્ષ સુધી તપસ્યો જીવન ગાળ્યું હતું અને તે દરમ્યાન તેમણે રાઠા નામના દેશની જંગલી જાતોમાં પણ પરિ-ક્ષમ કર્યું હતું. તેમના આ જીવનનું પ્રથમ વર્ષ પૂર્ણ થયા વાદ તેઓ અચેલકૈ થયા હતા. આવી રીતે સિદ્ધિસાધન અર્થે ચારવર્ષ પર્યંત કરેલા આત્મદમનને અંતે વર્ધમાનને કેવલજ્ઞાન ઉત્પન્ન થયું હતું. સ્વાર વાદ તેઓ સર્વશ્રેષ્ઠ તીર્થંકર તરીકે ઓલ્લાયા લાગ્યા અને તે ઉપરાંત જિન, મહાવીર વિગેરેના ચિરુદોથી પણ સંયોધાયા લાગ્યા કે જે શાસ્ત્રમુનિને પણ લગાડ્યામાં આવે છે. જાંદગીનાં છેલ્લાં ત્રીશ વર્ષો તેમજે પોતાના ધર્મનો ઉપદેશ આપવામાં તથા યતિમાર્ગની વ્યવસ્થા કરવામાં ગાળ્યાં હતાં. આ કાર્યમાં, આપણે ઉપર જોઈ ગયા તેમ, તેમને, વિદેહ મગધ, અને અંગદેશના સેટક, ધેનિક અને કૂળિક નામના રાજાઓ કે જેમની સાથે તેઓ પોતાના માતૃપદ્ધારા સગપણનો સંવંધ ધરાવતા હતા, તેમના તરફથી ખાસ સહાયતા તેમજ પુષ્ટિ મળી હતી એ દેશમાં આવેલાં નગરોમાં તેઓએ પોતાની આધ્યાત્મિક જીવનની કારકી-

ર્થીના લગભગ સઘળા ચાતુર્માસો તેમણે એ પ્રદેશોમાં આવેલાં નગરોમાંજ ગાળ્યા હતાં. કેટલીક યજ્ઞને આ દેશોની પશ્ચિમમાં આવેલી સુધી અને ઉત્તરમાં હિમાલયની તલેટી લગી પણ તેઓ પોતાનું પરિભ્રમણ લંબાવતા હતા. તેમના જે મુખ્ય ૧૧ શિષ્યો ગણધરે તરીકે ઓલ્લાયા છે અને જેમનાં નામો કલ્પસુત્રની સ્થિરાવલિ (§ ૧) માં આવેલાં છે તે શ્વેતામ્બર તેમજ દિગમ્બર નામના યજ્ઞે જૈન સંપ્રદાયોને સમાન માન્ય છે. આ યાચતો ઉપરાંત, મહાવીરના જીવનસંવંધી જે હકીકતો જૈન સુત્રોમાં મળી આવેછે તે ઉપર, તેમજ મક્ષાલપુત્ર ગોસાલની સાથે ચાલેલી તેમની સ્પર્ધા અને તેમાં થયેલા તેમના વિજય વાલી હકીકત ઉપર, અને અંતે તેમના નિર્વાણ સ્થાન તરીકે જે પાપા નામની નાની નગરી પ્રસિદ્ધ થયેલી છે તે યાચત ઉપર આપણે વિચાર કરવાની જરૂરત છે. આ યજ્ઞો યાચતો ઉપર વિચાર કરવામાં આપણે માત્ર જિનોનીજ પરંપરાઓ ઉપર આધાર રાખવાનો છે, એમ નથી. આમાંની કેટલીક યાચતોના સંવંધમાં બૌદ્ધ પ્રંથોમાંથી પણ ઉલ્લેખો મળી આવે છે. તેથી તે પ્રમાણેને પણ લક્ષ્યમાં રાખવાની જરૂરત છે બૌદ્ધ પ્રંથોમાં મહાવીરને તેમના સુપ્રસિદ્ધ નામ 'નાતપુત્ર' થી ઉલ્લેખેલા છે અને તેમને નિગગળ્હો (જૈન યતિઓ) ના નાયક તરીકે તથા યુદ્ધના એક પ્રતિસ્પર્ધી તરીકે જણાવેલા છે. એ પ્રંથોમાં તેમના વિષયમાં જો કોઈ મૂલ થયેલી હોય તો તે ફક્ત તેમના ગોત્રના સંવંધમાં છે. તેમના ગોત્રનું નામ, બૌદ્ધ પ્રંથોમાં અમિત્તેવદાયન આવેલું છે, જે ઘાસ્તવિકમાં મહાવીરના સુધર્મ નામે શિષ્યનું ગોત્ર હતું. બૌદ્ધ પ્રંથકારોએ મૂલથી અથવા ઘ્રાંતિથી શિષ્યના ગોત્રને ગુરુનું ગોત્ર લખ્યું છે મહાવીરનિર્વાણ વાદ તેમના ગણધરોમાંથી માત્ર આ સુધર્મ ગણધર જ એકલા વિચિત્ર રહ્યા હતા

૧ તેમના જીવનના આ વિભાગના સંવંધમાં લખાણું એક પ્રકરણ આચાર્ય મુદ્દમાં આવેલું છે. જુઓ આચાર્ય (૧, ૮).

૧ જુઓ કલ્પસુત્ર, જિનચરિત્રો, § ૧૨૨; ચમ્પા, ૨; વૈશાલી, ૧૨; મિથિલા, ૬; રાજગૃહ, ૧૪, મલિકા, ૩; આલમિકા, ૧; પાણિતમૂર્તિ, ૧; આવસ્તી, ૧; વાપા, ૧; પાણિતમૂર્તિ, આવસ્તી અને કદાચ આલમિકા આ ત્રણ શિષ્ય ઉપરનાં સપ્ત સ્થળો, ઉપર નિર્દિષ્ટ થયેલ ત્રણ રાજ્યોની સરહદોની અંદર આવેલાં હતાં.

अने तेथो तेमना पछी युगप्रधान बन्ध्या हता. महावीर बुद्धना समकालीन हता, अने तेथी, विभिन्नसार, तेना अभयकुमार अने अजातशत्रुनामो वे पुजो, लिच्छविओ अने मल्लो, तथा मम्बल्लिपुत्र गोसाळ आदि, ते बंधेना समकालीन पुरुषो पण एकज हता कारण के आ नामो बन्धे धर्मनां पुस्तकोमां आपणने मळी आवे छे आपणे उपर जे ऊहापोह करी गया छीए ते उपरथी सिद्ध थयु छे के वैशालीमां महावीरना अनुयायिओ घणीज मोटी सखामां रहेता हता, तेवा उल्लेखो थोड पिटकोमांथी, मळी आवे छे आ याजु जैनग्रंथोमांथी पण एकां प्रमाणो मळी आवे छे के महावीरनु जन्म स्थान वैशालीना समीपमांज हतु, तथा ते राजधानीना मुख्य अधिष्ठाता साथे तेमनो ग्वास सयध हतो आ बन्धे हकीकतोने परस्पर मेलजतां ते एक बीजी साथे सुसंगत थई रहे छे एम स्पष्ट जणाई आवे छे. आ उपरांत बीजोए जणावेला निगण्टोना केटलाक सिद्धान्तो, दाखला तरीके फिरियावाद अने पाणीमां जीव होवानी मान्यता विगेरे—जैनग्रंथोमां पण तेवाज रूपमां मळी आवे छे अने अवे, नातपुस्तना निर्वाणना स्थळ तरीके, बौद्ध ग्रंथोमां जणावेली पापापूरी पण जैन ग्रंथोना उल्लेखानुसार यथार्थ ठरे छे.

महावीरना जीवननी आ रूपरेखाने बुद्धना जीवनी रूपरेखा साथे सरसाम्यता, एमां एक पण गवी बाबत नथी जणाई आयती के जेना विषयमां एयां शका उत्पन्न थई शके के ए बाबत बुद्धना अनुकरण रूपे पाछलथी उपजावी काढवामां आवी हरो आम होवा छतां पण आ बन्धे महापुरुषोना जीवनमां जे केटलुक साधारण साहस्य जोवामां आवे छे तेनु कारण तो बन्धेनु त्यागी जीवन छे एयां जीवनोमां केटलीक साधारण समानताओ मळी आवे ते घणुज स्वाभाविक छे अने आवी समानता एक प्राचीन हिंदु कर्तां अर्वाचीन युरोपीय इतिहासवेत्ताने घणी महत्त्ववाळी बाबत भासे तेमां पण आश्चर्य पामचा जेजु नथी महावीरनां केटलाक सगानां नामो पण बुद्धना सगानां नामो साथ समानता धरावे छे उदाहरण तरीके—महावीरनी

पत्नीनु नाम यशोदा हतु अने बुद्धनी पत्नीनु नाम यशोधरा हतु. आ बन्धे नामो लगभग स्वरूपां ज छे महावीरना मोटाभाईनु नाम नन्दिब्रज्ज हतु अने बुद्धना ओरमान भाईनु नाम नन्द एतु बुद्धनु कुमारावस्थानु नाम सिद्धार्थ हतु अने महावीरना पितानु नाम पण तेज हतु परंतु आ जातना नामसाहस्यथी जो कोई पण बाबत सिद्ध धनी होय तो ते एटलीज छे के क्षत्रिय जानिमां जेम हमशां वपराय छे तेम ते वखते पण आवा प्रकाशनां नामो मोटा प्रमाणमां वपरातां हरो 'वल्ली बीजी पण एक बाबत छे, के आ बन्धे क्षत्रियोए पाताना सप्रदायो ब्राह्मण सत्ताना विरोधीरूपे अथवा तेना तिरस्काररूपे जो स्थाप्या होय तो तेमां पण कोई असभय जेनु नथी कारण के हु जागळ उपर जणावीश ते प्रमाणे ब्राह्मणो जेमने 'वैषधरिओ' (untrue) कहे तेवा त्यागी थवानो क्षत्रियो मांटे घणो वधारि समभव हतो

बुद्ध अने महावीरना जीवननो भेद पतायचा मांटे हवे आपणे, ते बन्धे पुरुषोना जीवननी मुख्य मुख्य बीनाओने साथे साथे सूकी विचार करीए बुद्धनो जन्म कपिलवस्तुमा थयो हतो अने महावीर वैशालीनी पासं आयेल्ल एक गाममां जन्म्या हता. ज्यारे बुद्धनी माता तेमना जन्म पछी तरतज मरण पामी हती त्यारे महावीरना मातापिना महावीरनी पुत उमर थतां सुधो वियमान हता. बुद्ध पोताना पितानी हयातीमां अने तेमनी मरजी विद्वत्त्व त्य गी बन्ध्या हता, परंतु महावीरे पोताना मातापितानु मरण थया पछी पण अधिकारी पुरुषोणी समति लई दीक्षा स्वीकारी हती बुद्ध छ धरं सुधी तपश्चर्या करी हती अने महावीरे बार बरे लग्गी करी हती बुद्ध तपश्चर्यामां बीतेला पोताना कालने पञ्चलथी वृथा (फोगट) गयलो मान्यो हतो, तथा पोताना ध्येयनी प्राप्तिमां आवी जातनी तपश्चर्यानी कोई उपयोगिता नथी, एम पण जाहेर कर्तु एतु परंतु महावीरे पोतानी तपश्चर्योने ध्येयप्राप्तिमांटे अत्यावश्यक मानी हती, एटलुज नहीं परंतु तीर्थ-

१ See Petersburg Dictionary, 88, 89

२. तपश्चर्यामा गळएला आ बार वर्षा, हमशा, सिद्ध-

કર થયા પછી પણ તેમણે તેથી કેટલીક તપસ્યાઓનું અનુમ્મળ ચાલુ રાખ્યું હતું મફત્વલિપુત્ર મોસાલ જેટલી મોટી વિરુદ્ધતા મહાધીરના સંયધમાં ધરાવે છે તેટલી યુદ્ધના સંયધમાં ધરાવતો જોવામાં આવતો નથી. જૈનધર્મમાં પ્રથમ મતમેદ ઉત્પન્ન કરનાર જમાલિતું નામ યુદ્ધના વિરોધિઓની નાનાવલીમાં આવતું નથી. યુદ્ધના સઘળા શિષ્યોનાં નામો મહાધીરના શિષ્યોથી જુદા પ્રકારનાં છે. આ મિત્રતાના ઉદાહરણોમાં ઉપસહાર તરીકે અંતિમ ઉદાહરણ પણ આપી શકાય છે કે યુદ્ધ ય્યાર કુલિનગરમાં નિર્ધાન પામ્યા હતા, ત્યારે મહાધીર નિશ્ચિતરૂપે યુદ્ધની પહેલાં, અને પાપમાં નિર્ધાન પામ્યા હતા.

મહાધીરના જીવન સંયધમાં અહીં સુધી કરેલી ચર્ચા વરદ્યાન જે જે હર્ષાકતો યાચકો સમક્ષ મુકવામાં આવી છે. તેના આધારે, જૈનધર્મની ઉત્પત્તિ યૌદ્ધધર્મને આશ્રિત છે, અથવા નહીં, તે પ્રદનનું સહેલાઈથી નિરાકરણ કરી શકાશે જો કે ઘણા સ્વરા વિદ્વાનો પટલી યાચતો તો અસ્વીકાર નથી કરતા કે યુદ્ધ અને મહાધીર એ ઘણે ભિન્ન મિત્ર વ્યક્તિઓ ન હતી, પરંતુ, તેઓ, તે ઉપરથી ઉપરોક્ત પ્રદનનું યજું નિરાકરણ થઈ જતું હોય તેમ સ્વીકારવા તૈયાર નથી. પ્રો. વેવરની 'જૈનોના આગમો' ઉપરના પોતાના વિદ્વત્તા ભરેલા નિયધમાં લખે છે કે—'જૈનો માત્ર યૌદ્ધધર્મના એક સાંધી જના સપ્રદાયરૂપે છે.' અને ઘણી જગ્યાએ છે કે 'મારા મત પ્રમાણે શાક્ય-સુનિ યુદ્ધથી મિત્ર પવા એક મહાપુરુષ-કે જેનો યૌદ્ધ પ્રયોગો યુદ્ધના એક સપ્રકાલીન વિરોધી તરીકે ઉદ્ભવ કરવામાં આવ્યો છે-તે દ્વારા જૈનધર્મની સ્થાપના થઈ હતી, યથા અર્થવાલી પરપરાગત માન્યતાથી પણ મારા સિદ્ધાન્તને વાધ આવતો નથી. પરંતુ આ યાચત, મને તો આથી ઉલટું, એમ સૂચવતી હોય તેમ જણાય છે કે જૈનોએ દ્વારદા

પૂર્વક યુદ્ધનો અસ્વીકાર કર્યો છે. અને એમ કરવામાં તેમને કાળના માત્ર સાંપ્રદાયિક વિરોધ છે. આ સિદ્ધાન્તની સત્યતાના પ્રમાણ તરીકે, આ વધે સપ્રદાયોના સંસ્થાપકોની કથાઓમાં જે મહત્વની સદશતાઓ ઉપલબ્ધ થાય છે, તે સ્પષ્ટ કરી શકાય તેમ છે.'

પ્રો. વેવરની આ મુખ્ય દલીલ કે જેના ઉપર તેમનો આગ્યો સિદ્ધાન્ત ઉભો થયેલો છે, તેનું નિષ્કરણ મારા ધારવા પ્રમાણે, ઉપરની ચર્ચાથી સંપૂર્ણ રીતે થઈ ગયું છે. આ સિદ્ધાન્તને તો સંભાવનાની કાંટિમાં પણ સ્થાન આપવા માટે ઘણા મજબૂત પ્રમાણો ની આવદયકતા રહે છે સામાન્ય રીતે એમજોવામાં આવે છે કે દરેક વિરોધી સંપ્રદાય પોતાના સંસ્થાપકના ઉપદેશો અને સિદ્ધાન્તોને શુદ્ધ અને પ્રમાણિક રીતે સમજાવવાનો ધાયો કરતો હોય છે પરંતુ ય્યારે કોઈ સંપ્રદાય પોતાના મુખ્યધર્મના મૂલ્ય સંસ્થાપકના સિવાય અન્યપુરુષને પ્રમાણરૂપ માનતો થાય છે, ત્યારે તે યા તો કોઈ એક અન્ય વિદ્યમાન સંપ્રદાયનો સ્વીકાર કરે છે અથવા તો તે એક નયોજ સંપ્રદાય પ્રત્યે છે. આ વિચારાનુસાર ચાલુ ચર્ચામાં આ યેમાંનો જો પ્રથમ પક્ષ સ્વીકારીય તો આપણે એમજ માનવું પડશે કે જૈનધર્મ કોઈ પણ રૂપમાં યૌદ્ધધર્મની પૂર્વે અવદય હયાતો ધરાવતોજ હતો. અને જો યીજો પક્ષ સ્વીકારીશું તો આપણે આમ કલ્પના કરવી પડશે કે, યુદ્ધના વિચારોથી વિમનસ્ક થયેલા, આ જૈન ઘનેલા યૌદ્ધો પોતાના મૂલ્ય શાસ્ત્રોમાંથી યુદ્ધના એકાદ વિરોધીને. શોધી કાઢી તેમાં પોતાના પાંધડો સિદ્ધાન્તોનું આરોપણ કર્યું હતું. પરંતુ આ પદ્ધતિનું યીજા કોઈ યૌદ્ધ સંપ્રદાયે અનુકરણ કર્યું હોય તેમ અચાપિ જણાયું નથી. ચર્ચાની સ્વાતર ક્ષણમર આપણે માની લઈએ કે, જે જાતનો આરોપ આ લોકો ઉપર મુકવામાં આવે છે, વાસ્તવિકમાં તેમણે તેમજ કર્યું હતું, તો માનવું પડશે કે તેમને આ કાર્ય ઘણીજ દક્ષતાપૂર્વક કર્યું હશે તેમ કરવામાં તેમને પોતાના પ્રાચીન ધર્મગ્રંથોમાં કેટલેક ઢેકાણે મળી આવતા 'નિગળ્ઠો' અને 'નાતપુત' સંબંધી કેટલાક ઉદ્દેશોનો ઉપયોગ કરી, તેમાં ફેરફારો કરવા

ની પ્રાપ્તિ માટે અસાધ્યક મનાતાં હતાં, અને અત્યારે પણ જે કોઈ યાધુ, સાંભારિક ઓળખનો ત્યાગ કરા કોઈ એક સ્વર્ગ યા મોક્ષની અભિલાષા ધરાવતો હોય છે, તેને માટે પણ આ વાર વર્ષના તપધરણનું વિધાન કરેલું છે.

પડ્યા દુઃશે, કેટલીક નવી હકોંકતો ઉપજાવી કાઢવી પડી દુઃશે, અને તેમ કરી તેમણે પોતાના વિરોધીઓના જોવાજ સર્વને પ્રામાણિક લાગે તેવાં લેંઓ ચનાવ્યા દુઃશે પરંતુ આ ઘડી અયુક્ત કલ્પનાઓ છે મહાવીરના સંયંધમાં તથા તત્કાલીન પરિસ્થિતિ અને લોકોના વિષયમાં ઉપલબ્ધ થતી જૈન તેમજ બૌદ્ધ પરંપરાઓ, પરસ્પર જે આટલી યુંદરરીતે મળતી હોઈ, એક યીજીને સુધારનારી અને પૂર્ણ કરનારી લેખાય છે, તે ઘડી યાચતોનો ચરો સુલાસો અમે લેવાયેલી ઉપયુક્ત રીતેજ થઈ શકે છે, અને તે માત્ર એજ કે એ ઘણે ધર્મોની પરંપરાઓ, મુશ્કેલીતે એક યીજાયા સ્વતંત્ર છે અને જે લખતે એ પરંપરાઓનું સ્વરૂપ નિશ્ચિત થયું હતું તે લખતે મનાતાં ऐतिहासिक સત્યોજ તેમાં નોંધાયાં છે.

હવે આપણે, જૈનધર્મના વિષયમાં લખનારા બિહ્વાનોને, એ ધર્મ અને બૌદ્ધધર્મ વચ્ચે જનારૂં આવેલા સાદ્દયોને વિચાર કરીએ કે જે સાદ્દયોએ એ વિહ્વાનોના, આ લખે ધર્મોના પારસ્પરિક સંબંધ વિષયક અભિપ્રાય ઉપર ઘણી મોટી અસર કરી છે.

પ્રો. લેસને, એ લખે ધર્મોની એકરૂપતાના હેતુમાં ચાર મુદ્દાઓ રજૂ કરેલા છે અને તે દ્વારા તેમણે જૈનધર્મ એ બૌદ્ધ ધર્મની એક શાખા છે એમ સાબીત કરવાનો પ્રયત્ન કર્યો છે. અહીં આપણે તે ચારે મુદ્દાઓનો અનુક્રમે વિચાર કરીશું.

પ્રો. લેસનની પહેલી વ્હાલ એ છે કે ઘણે ધર્મોના પ્રવર્તકોને જિન, અર્હત મહાવીર, સર્વજ્ઞ, સુગત, તથાગત, સિદ્ધ, શુદ્ધ, સમુદ્ધ, પરિનિર્વૃત, મુક્ત, સ્વ્યાદિ પ્રકારનાં એકજ સરનાં ચિહ્નો યા વિશેષો લગાડેલાં જોવામાં આવે છે તેથી મૂલમાં તે ઘણે એકજ હોવા જોઈએ સ્વ્યાદિ

આ ઘડા શબ્દો અલ્પ યા અધિક પ્રમાણમાં લખે ધર્મોના પ્રથોમાં જોવામાં આવે છે, એમાં સંશય નથી. પરંતુ તેમાંજ જાણ ધ્યાન લેવા લાયક તપાસત રહેલી છે, અને તે એ છે કે જિન અને કદાચિત્ અમળ એ શે શબ્દો શબ્દ કરતાં જ્યારે એક ધર્મ અમુક ચિહ્નોનો વિશેષ ઉપયોગ કરે છે ત્યારે તેનો પ્રતિસ્પર્ધી(ધીજો)

ધર્મ યીજા ચિહ્નોનો પ્રયોગ લખારે પસંદ કરે છે ઉદાહરણ તરીકે, સાધારણ રીતે જ્યારે શુદ્ધ, તથાગત, સુગત અને સમુદ્ધ આ વિશેષોનો શાક્યમુનિને હમેશાં લગાડવામાં આવેલાં હોય છે, ત્યારે મહાવીર માટે તેમનો પ્રયોગ ક્વાચિત્ જ થયેલો હોય છે વર્ધમાનનાં ચિહ્નો તરીકે વીર અને મહાવીર શબ્દો જ હમેશાં પ્રયોગ કરવામાં આવ્યા છે આ કરતાં પણ અધિક ભેદ સૂચક એક વિશેષણ તીર્થ-કર છે આ શબ્દોનો અર્થ જૈન પ્રથોમાં 'ધર્મપ્રવર્તક' એવો થાય છે. પરંતુ બૌદ્ધ પ્રથોમાં તે શબ્દ પાશ્વડામતના સંસ્થાપકના અર્થમાં લેવાયેલો છે આ પ્રમાણે, આ લખે સપ્રદાયોએ ઉક્ત વિશેષણસંપ્રદાયોનાં અમુક અમુક વિશેષણોને જે જાણ રીતે પસંદ કરી લીધેલાં જોવામાં આવે છે તે ઉપરથી જાણ થાય છે કે આપણે કયું અનુમાન કરવાનું કારણ મળે છે ? શું આપણે એમ માનવું કે જૈનોએ આ શબ્દો ચિહ્નો પાસેથી લીધા છે ? હા એમ નથી માની શકાતો. કારણ એ છે કે જો આ શબ્દો એક લખત અમુક ચિહ્નરૂપેજ નહીં થઈ શક્યા હોય અથવા તેની સ્વયંપણે ઉપરથી નિકળતા અર્થ કરતાં કોઈ જાણ અર્થમાં રૂઢ થઈ ગયા હોય તો તે શબ્દોનો યા તો તેજ રીતે સ્વીકાર થઈ શકે અગર તો અસ્વીકાર થઈ શકે પરંતુ જે શબ્દ એક લખત અમુક જાણ અર્થ સૂચક બની ગયો હોય, તેને, બૌદ્ધો પાસેથી લેનારા જૈનોએ, કરી તેના અસલ અર્થમાં વાપર્યો હતો એમ માનવું તદ્દન અશક્ય છે આ યાચતોનાં સ્વાભાવિક જુલાસો તો એજ થઈ શકે કે લૂંકે કાલમાં અમુક માનસૂચક વિશેષણો તથા નામો પ્રચલિત હોય છે અને તે વિશેષ ગુણધારી પુણ્યોને લગાડવામાં આવે છે. આમાં વિશેષણો તથા ગુણધારકનાં નામો તે લખતે પણ પ્રચલિત હતાં આ શબ્દોનો ઘડા સપ્રદાયો તેના મૂલ અર્થમાં, વિશેષણરૂપે પ્રયોગ કરતા હતા આ શબ્દોમાંના કેટલાક શબ્દોને, તેમા રહેલી નર્થ શક્તિ અનુસાર ઘડા સપ્રદાયોએ પોતાના ધર્મપ્રવર્તકો માટે પસંદ કર્યા હતા અને આ પસંદગીમાં તેઓ શબ્દની અર્થશક્તિ તરફ તો જોતાજ હતા, પરંતુ સાથે સાથે તેઓ એ લખત તરફ પણ જોતા હતા કે કયા શબ્દને પોતાના કયા પ્રતિસ્પર્ધી મત

પાઠાઓએ તેમની સર્વોચ્છ વ્યાપ્તિ માટે પસંદ કર્યો છે. ઉદાહરણ તરીકે, તીર્થંકરશબ્દનો વ્યુત્પત્ત્યર્થ ધર્મનો સ્થાપનાર પડેલે ધર્મપ્રવર્તક એવો થાય છે. અને તદનુસાર જૈન તથા અન્ય સંપ્રદાયોએ તેજ અર્થમાં તેનો પ્રયોગ કરેલો છે; પરંતુ બૌદ્ધોએ તેને તે અર્થમાં ન વાપરતાં પ્રતિસ્પર્ધી યા પામ્બડી મતના આચાર્યના અર્થમાં વાપર્યો છે, અને તેમ કરી તેમણે, જેઓ તે શબ્દને માનસૂચક અર્થમાં વાપરતા હતા તેમના તરફ પોતાનો દ્વેષ વ્યક્ત કર્યો છે. આવી રીતે યાજ્ઞા દામ્બલામાં, શુદ્ધ શબ્દ સામાન્ય રીતે, મુક્ત અર્થોત્ત્વ ધંધરહિત થયેલા આત્માના અર્થમાં વપરાય છે, અને એના અર્થમાં જૈન ગ્રંથોમાં તે શબ્દનો પ્રયોગ થતો અથવાપિ દૃષ્ટિગોચર થાય છે. પરંતુ બૌદ્ધ ગ્રંથોમાં એ શબ્દ જાણે તેમના ધર્મપ્રવર્તકના ચિહ્નરૂપે રૂઢ થયેલો છે. આ હકીકત ઉપરથી એ અનુમાન સહજ થઈ શકે છે કે જે સમયમાં બૌદ્ધોની સાંપ્રદાયિક પરિભાષા નિર્ણાત થઈ તે વખતે તેઓ પ્રમુદ્ધરૂપે જૈનોના પ્રતિપક્ષીઓ લેખાતા હોવા જોઈએ. સાથી ઉલટું, પડેલે જૈનોએ જે વખતે પોતાની પરિભાષા સ્થિર કરી તે વખતે તેઓ બૌદ્ધોના પ્રતિપક્ષીરૂપે પ્રસિદ્ધ નહીં થયેલા હોવા જોઈએ.

શુદ્ધધર્મની પૂર્વકાલિકતાના પક્ષમાં, પ્રો. લેસન ધી-લી દલીલ દર્શાવે છે કે, એ વસ્તુ ધર્મોમાં મૃત્યુશીલ મનુષ્યોની અર્થાત્ મનુષ્યરૂપ ધર્મપ્રવર્તકોની દેવ તરીકે ઉપાસના કરવામાં આવે છે, તથા તેમની સૂતિઓને મંદિરોમાં પૂજવામાં આવે છે, इत्यादि.

બૌદ્ધધર્મ અને જૈનધર્મ સિવાય એવો અન્ય કોઈ પણ સંપ્રદાય, કે જેનો સંસ્થાપક, મહાવીર અને શુદ્ધની માફક, પોતાને સર્વદા અને સર્વથા કૃતકૃત્ય કહેવડાવતો હતો, આપણી પ્રત્યક્ષ જાણમાં આવી શકે તેટલા સમય સુધી ટકી શક્યો નથી. તેથી આપણને એ વસ્તુ ધર્મો સિવાય આ વાતચતું ગ્રંથિ પ્રતક્ષ ઉદાહરણ મળી શકે તેમ નથી. તો પણ, જે યોગ્ય જુના સંપ્રદાયોના વિષયમાં આપણને જે કાંઈ માન મળેલું છે તે ઉપરથી એમ અનુમાન કરી શકાય છે કે ઘણા ભાગે તે સઘળા સંપ્રદાયો, અને તેમ નહીં તો છેવટે તેમાંના કેટલાક તો અવધ્યમેષ, બૌદ્ધો અને જૈનોની માફક પોતાના તીર્થંકરો—

ધર્મપ્રવર્તકોને દેવરૂપે માનતા-પૂજા હોવા જોઈએ આથી નિશ્ચિતરૂપે એમ કેમ કહી શકાય કે જૈનોએ પોતાની આ વાચત વિષયક આચાર-વિચારો બૌદ્ધો પાસેથી જ લીધા હતા પણ યાજ્ઞા પામેથી નહીં? આથી ચિરદ્ધ એમ તો કહેવાને કારણ છે કે શુદ્ધના ઉપદેશમાં એવું કાંઈ પણ તત્ત્વ જોવામાં આવતું નથી જેથી તેમના અનુયાયીઓને શુદ્ધના મંદિરો યાંધવા માટે અગર તેમની મૂર્તિઓ સ્થાપિત કરવા માટે પ્રોત્સાહન મળી શકે તેમના ઉપદેશોમાં એવી તો ઘણીક વાતો અવધ્ય નજરે પડે છે કે જે આવા પ્રકારની ભક્તિ-પૂજા-અર્ચનાની (અર્થાત્ મૂર્તિ પૂજાની) પદ્ધતિ તરફ ચિરદ્ધતા યતાવતી હોય છે. પરંતુ જૈનોના વિષયમાં આદ્ય કાંઈ કારણ યતાવી શકાય તેમ નથી. તેઓ જા પોતાના તીર્થંકર મહાવીરને દેવસ્વરૂપે પૂજે તો તેમાં તેઓ પોતાના સિદ્ધાન્ત ચિરદ્ધ વર્તન કરે છે, એમ કહી શકાય તેમ નથી. ચરી રીતે આ વિષયમાં મારું પોતાનું સ્વતંત્ર માનવું તો એવું છે કે અસલી બૌદ્ધધર્મ યા જૈનધર્મને મૂર્તિપૂજા સાથે કાંઈ સંબંધ નહીં હોયો જોઈએ. કારણ કે મૂર્તિપૂજાની ઉત્પત્તિ નિર્ઘ્ન્યો દ્વારા નહીં પણ ગૃહસ્થો દ્વારા થયેલા છે. તેની ઉત્પત્તિનું કારણ પણ એ લાગે છે કે જ્યારે ભારતના ધર્મવિષયક વિકાસક્રમમાં ભક્તિ એક મોક્ષના મુખ્ય સાધન તરીકે મનાવા લાગી ત્યારે લોકોને પોતાના પ્રાર્ચન અગ્રધદ (જંગલી) દેવી-દેવતાઓની પ્રચલિત પૂજાથી અસંતોષ રહેવા લાગ્યો અને તેથી તેમણે કેટલાક ઉચ્ચ પ્રતિના ઉપાસ્યોની પૂજા કરવાની પ્રથા શરૂ કરી. ચરી ઘસ્તુસ્થિતિ આવી હોવાથી વૈશ્વસ્થાપન તથા મૂર્તિ-પૂજામાં બૌદ્ધોને પરોગામી અને જૈનોને તેમના અનુ-કર્તાઓ ન માનતાં, મારા વિચાર પ્રમાણે, આ વસ્તુ સંપ્રદાયોએ સ્વતંત્ર રીતેજ હિંદુ લોકોના ધાર્મિક વિકાસના શાશ્વત અને અનિવાર્ય પ્રમાણે વશ થઈ આ પ્રથા સ્વીકારી હતી, એમ માનવું જોઈએ.

આ બન્ને સંપ્રદાયો વચ્ચેની સમાનતાની ગ્રંથી દલીલ, એ બન્નેમાં સરચી રીતે મળી આવતા અર્થ-સાના સિદ્ધાન્ત વિષયની છે. આ દલીલની ચર્ચા આગલ ઉપર કરવામાં આવશે તેથી અહીં હું પ્રો.

લેસનની ચોથી દલીલ ઉપર આનું હું. તે દલીલ એ છે કે યૌદ્ધો તેમજ જૈનો વન્ને જગતના ઇતિહાસનું પરિમાણ થતાથવામાં પટલી મોટી કાઠસંખ્યાઓ વાપરે છે કે જે સમર્થમાં સમર્થ કલ્પનાશક્તિને પળ આંજી નાણે છે અને વસ્તુ કરી દે છે. ઇત્યાદિ. અલથત, એ વાત તો જરૂરી છે કે આ વિષયમાં જૈનો યૌદ્ધોને પળ પાછલ પાડી દે છે. પરંતુ, આ પ્રકારની કાલગણનામાં જૈનો માત્ર યૌદ્ધોનેજ મઝતા આવે છે એમ કાંઈ કહી શકાય નહીં. બ્રાહ્મણોનાં પળ આ વાચકમાં તેવાંજ ઘણોનો આપણને મઝી આવે છે. જૈનોની કાલગણનાત્મક પદ્ધતિનાં પરિમાણો, બ્રાહ્મણો તેમજ યૌદ્ધો વન્નેથી સરખી રીતે સુધાં પડે છે. જૈનોના ઉત્સર્પિણી અને અવસર્પિણી-રૂપ કાલચક્રની તથા તે દરેકના છંદ આરાઓની કલ્પના જેટલે અંશે યૌદ્ધોના ચાર મહાકલ્પો નથા ૮૦ નાના કલ્પો કે જે વિશ્વના ક્રમથી થતા સર્ગ અને પ્રલયરૂપી નાટકના અંકો તથા દૃશ્યો જેવા સામે છે, તેમની-કલ્પનાથી ભિન્ન છે, તેટલેજ અંશે તે બ્રાહ્મણોની યુગો અને કલ્પોની કલ્પનાથી પણ ભિન્ન છે. મારો એવો મત છે કે યૌદ્ધોની કલ્પના તે બ્રાહ્મણોની યુગપદ્ધતિનું સંસ્કારિત રૂપ છે અને જૈનોના ઉત્સર્પિણી અને અવસર્પિણીરૂપ કાલચક્રની-કલ્પના બ્રાહ્મણો દિવસ અને રાત્રિની કલ્પનાને આધારે રૂપેય થયેલી છે

પ્રો. લેસનની ત્રીજી દલીલની ચર્ચા ઉપર મુલ-તથી રાજવાનું કારણ પટલુજ હતું કે તે દલીલ આર્હેસાના સિદ્ધાન્ત વિષયક હોવાથી તેને, એ બન્ને ધર્મોના અન્ય નીતિવિષયક વિચારો સાથે વધારે સારી રીતે ચર્ચવાની આવશ્યકતા છે. પ્રો. વેવરે જૈનોના પંચમહાવતો અને યૌદ્ધોના પાંચ મુખ્ય પાપો અને શીલોની વચ્ચે સાસ નિરુપવર્તી સંબંધ બતાવ્યો છે; અને પ્રો. વિન્ડિશ (Windisch) જૈનોના પંચ મહાવતોની, યૌદ્ધોનાં દશ શીલો (દસશીલ) સાથે સરસામણી કરી છે

૧. Fragment der Bhagavati, II, pp. 175, 185

૨. Z. D. M. G. XXVIII, p. 222, note.

યૌદ્ધ મિશુના દશ શીલો નીચે મુજબ છે:—

- ૧ હું પ્રાણીની હિંસા ન કરવાનું વ્રત લઉં છું.
- ૨ હું ચોરી ન કરવાનું વ્રત લઉં છું.
- ૩ હું અબ્રહ્મ—અપવિત્રતાથી વિરમવાનું વ્રત લઉં છું.
- ૪ હું અસત્ય ન બોલવાનું વ્રત લઉં છું.
- ૫ હું પ્રગતિ અને સદાચારનું પ્રતિચ્છેદન પશું મધપાન ન કરવાનું વ્રત લઉં છું.
- ૬ હું નિષિદ્ધ કાલે ભોજન ન કરવાનું વ્રત લઉં છું.
- ૭ હું નૃત્ય, ગાન, સંગીત અને નાટકોથી વિરક્ત થવાનું વ્રત લઉં છું.
- ૮ હું હાર, સુંગંધી લેપન તથા અલંકારો ન વાપરવાનું વ્રત લઉં છું.
- ૯ હું ઝૂંઘી અગર પહોળી પથારીનો ઉપયોગ નહીં કરવાનું વ્રત લઉં છું.
- ૧૦ હું મુશળ તથા ચાંદીનો પરિગ્રહ ન કરવાનું વ્રત કર્મીકાર કરું છું.

આ ઉપરાંત યૌદ્ધધર્મમાં અષ્ટાંગ શીલો (અટ્ટગ-સીલ) માનેલાં છે. તેમાંનાં પહેલાં પાંચ દરેક યૌદ્ધ આચરવાનાં છે, પરંતુ છેલ્લાં ત્રણ જાસ કરીને ધર્મિષ્ઠ ગૃહસ્થોને તો અવશ્ય પાલવા માટે મહા-મળ કરેલી છે. એ અષ્ટાંગ શીલ આ પ્રમાણે છે—

- ૧ હિંસા ન કરવી.
- ૨ ચોરી ન કરવી.
- ૩ અસત્ય ભાષણ ન કરવું.
- ૪ મધપાન ન કરવું.
- ૫ પ્રત્યર્થ પાલવું—(અધર્મ્ય એવો પરજીસગ ન કરવો.)
- ૬ નમ્રવાચેકદ રાત્રિએ ભોજન ન કરવું.
- ૭ હાર, ચંદન આદિ સુંગંધી પદાર્થો ધારણ ન કરવા.

૮ કર્મીન ઉપર માત્ર સાદુ પાથરોને સ્વ. યૌદ્ધોનાં પાંચ વ્રતો, નીચે આપેલાં જનયતિઓનાં પાંચ મહાવતો સાથે લગભગ મઝતાં આવે છે—

૧. આર્હેસા-પ્રાણીની હિંસા ન કરવી.
૨. સૂત્ર-જુરું ન બોલવું.
૩. અસ્તેય-નહીં આપેલું ન લેવું.

૧. Rhys Davids, Buddhism, p. 160.

૨. Rhys Davids, Buddhism, pp. 139.

૪. પ્રત્યચર્ય-સ્ત્રીસંયોગથી નિરમયું.

૫. અપરિગ્રહ-દુનિયાદારીની ધીજોમાં આસક્તિ ન કરવી. સ્વાન કરીને મમત્વભાવનો ત્યાગ કરવો.

જૈનોનું પાંચમું વ્રત, યૌદ્ધોના પાંચમા શીલ વ્રતનાં ચતારે વ્યાપક છે. પરંતુ વાકાનાં વ્રતો મહેજ ક્રમ મેઘ સિવાય (જેમકે યૌદ્ધોનાં ન (૧-૪) સરસાંજ છે આ ઘનને ધર્મોનાં વ્રતોની નચવતુ સ્વાસ્થ્ય નર-હર પરતુ ઘણું અદ્ભુત છે, કે સામાન્ય રીતે એમ સહજે અનુમાન થઈ જાય છે કે, આ ધર્મોથી એક ધર્મ-પાઠાણ યીજા ધર્મમાંથી પોતાનાં વ્રતો લીધાં હોવાં જોઈએ પરંતુ તેમ છતાં પણ એ પ્રશ્ન તો ઉભોજ રહે છે કે અસલમાં આ વ્રતો જૈનોએ યૌદ્ધો પાસેથી લીધેલાં કે યીદ્ધોએ જૈનો પાસેથી ? વાસ્તવિક રીતે વિચાર કરતાં જણાય છે, કે આ વાચતમાં જૈનો અથવા યૌદ્ધો-એ ધર્મોથી કોઈ પણ એક સંપ્રદાય મૌલિકતાનો દાવો કરી શકે તેમ નથી કારણ કે આ ઘનને ધર્મોને પ્રાચીન બ્રાહ્મણ ધર્મના સંન્યાસિઓનાં જે પાંચ વ્રતો હતાં તેનોજ સ્વીકાર કરેલી છે. બ્રાહ્મણ સંન્યાસિનાં પાંચ વ્રતો નીચે પ્રમાણે છે:-

૧. અર્હિસા.

૨. સત્ય.

૩. અસ્તેય.

૪. પ્રત્યચર્ય.

૫. ત્યાગ.

અને પાંચ ગૌણ વ્રતો :-

૬. ક્રોધ ન કરવો.

૭. ગુસ્સો આજ્ઞામાં રંદવું.

૮. અર્નૈદ્વલ્ય.

૯. શૌચ.

૧૦. આહારશુદ્ધિ.

સંન્યાસિનાં ઉપર્યુક પાંચ મોટાં વ્રતોમાંનાં પહેલાં ચાર વ્રતો જૈન મિશુનાં ચાર વ્રતોને મળતાં આવે છે અને ક્રમ પછી સરસો છે. આથી સંમ-વિત છે કે જૈનોને પોતાનાં વ્રતો બ્રાહ્મણો પાસેથી

લીધાં હોવાં જોઈએ; નહીં કે યૌદ્ધો પાસેથી. એમ માનવાનું થાંતું પણ એક કારણ છે, અને તે એ કે, યૌદ્ધોએ સત્યવ્રતને થીતું સ્થાન ન આપતાં થીતું અગર ચોથું સ્થાન આપ્યું છે, અને તેમ કરી તેમને વ્રતોના ગુણનને ક્રમને તદ્દલ્યો છે. વળી, જૈનો ચર્યો કરતાં ઘણાજ પ્રાચીન અને અધિક પ્રતિષ્ઠિત પણ બ્રાહ્મણોના સંન્યાસાચરણને મુઠી યૌદ્ધોના આચરણનું અનુકરણ કરે એ માન્યું પણ અસમર્થિત લાગે છે.

આ સ્થલે જાણવું જોઈએ કે, આ વ્રતો ધર્મોમાં પાંચમું વ્રત, પોતપોતાના આચારને સ્વાસ અનુલ-ક્ષીને યનાવવામાં આવ્યું છે જેમ કે બ્રાહ્મણ સંન્યાસિનું પાંચમું ત્યાગ (ઉદારતા) વ્રત વર્તુ છે કે જૈન અગર યીદ્ધ મિશુના આચારો તરફ જોતાં, સ્વાભાવિક રીતેજ તે તેમના માટે વિહિન થઈ શકે તેવું લાગતું નથી. મહાવીરની પૂર્વે જૈનધર્મમાં ચાર મહાવ્રતો પાલવામાં આવતાં હતાં, અને હાલતું ચોથું વ્રત તે વ્રતે પાંચમા વ્રતમાં અન્તર્ગત થતું હતું. પરંતુ મહાવીરે ફરીથી આ ચાર વ્રતનાં પાંચ વ્રત યનાવ્યાં હતાં યીજી તરફ યૌદ્ધો પણ પાંચ શીલો માને છે. તે ઉપરથી એમ જણાય છે કે પૂર્વે આ પાંચનો સંસ્થાને સ્વાસ રીતે પવિત્ર માનવામાં આવતી હતી.

ઉપર્યુક ચર્ચાના પરિણામે આપણે એ સ્પષ્ટ સમ-જી શકીએ છીએ કે જૈનો તથા યૌદ્ધોના મિશુસંપ્ર-દાયનો મૂલ આદર્શ કોણ હતો ? એ આદર્શ બ્રાહ્મણ ધર્મનો સંન્યાસી-સંપ્રદાય હતો અને એમાંથીજ તે-ઓએ પોત પોતાના યતિજીવન માટે ઘણાક મહત્વના આચારો તથા નિયમો લીધા હતા. આ પ્રકારનું મારું અનુમાન કોઈ સ્વાસ નહીન નથી. પ્રો. મેક્સ મૂલરે અત્યાર આગમચ પોતાના Hibbert Lect-ures (પૃ. ૩૧૧) માં એવો વિચાર પ્રદર્શિત કર્યો છે અને તેજ પ્રમાણે પ્રો. ચુહલરે, પોતાના યૌદ્ધાચન સૂત્રના અનુવાદમાં; તથા પ્રો. કેર્ને પોતાના ભારતીય બૌદ્ધ ધર્મના ઇતિહાસ (History of Buddhism in India) માં પણ તેવોજ અભિપ્રાય આપેલો છે. હવે હું જૈન સાધુનું જીવન કેટલે અંશે બ્રાહ્મણધર્મ-ના સંન્યાસી-જીવનના અનુકરણરૂપે છે તે ચતાવવા

માટે ગૌતમ અને વૌધાયન ધર્મસૂત્રમાં ' આપેલા સંન્યાસીના નિયમોને જૈન યતિઓના નિયમો સાથે સરખાવી ચિત્તાવા ઇચ્છું છે. ઘણીગણી વાચતોમાં બોલો પળ એમ નિયમોને અનુસરે છે તથાપિ તેનો પળ યથાવસ્તર સંસેપમાં સ્વચના કરવામાં આવશે

૧૧. ' સંન્યાસીએ કોઈ પળ પ્રકારનો સંગ્રહ કરવો જોઈએ નહીં. ' (ગૌતમ ધર્મસૂત્ર) જૈન તેમજ બૌદ્ધ મિશ્રુઓને પળ એવી કોઈ પળ ઘસ્ટુ રાણવાનો નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે કે જેના માટે તેને ' આ ઘસ્ટુ મારી છે ' એમ કહેવાનો પ્રસંગ આવે - જુઓ જૈનોનું પાંચમું (અપરિગ્રહ) વ્રત. જૈન મિશ્રુ વસ્ત્ર, પાત્ર, રત્નોહરણ આદિ જે કેટલીક વસ્તુઓ પોતાની પાસે હમેશાં રાખે છે તેને પળ તેઓ પોતાની મિલકતતત્વે રાખતા નથી. પરંતુ ફક્ત ધર્મક્રિયાના આશ્રય માટે આવશ્યક સાધનો (ધર્મોપકરણો) માની તેનો વ્યવહાર કરે છે

૧૨. ' બ્રહ્મચર્ય (તું તેણે પાલન કરવું જોઈએ) ' વૌધાયનની માફક જૈનોનું પગ આ ચોથું મહાવ્રત છે. બૌદ્ધો અને પાંચમું વ્રત માને છે

મહાવીર ગામમાં એક રાત અને નગરમાં પાંચ રાતથી વધારે ક્યારે પણ રહ્યા ન હતા.

૧૫. ' તેણે મોઢેથી (લંકાએ ભોજન કરી લોધાં પછો), મિશ્રા માટે જવું જોઈએ, તથા વંડી વાર જવું ન જોઈએ '. જૈન સાધુઓ સવારે અગર વપોરે મિશ્રા અર્થે ઝમળ કરે છે તેમ કરવામાં કટાચ તેમનો હેતુ પોતાના પ્રતિસ્પર્ધી મિશ્રાઓના સમાગમના પ્રસંગને દૂર રાખવાનો હેતુ. રાસ કરાંને તો તેઓ વિવસમાં એકજ વાર મિશ્રા માટે જાય છે પરંતુ એકથી વધારે ઉપવાસ કરેલા સાધુનું વિધિસમાં થે વચ્ચત પળ જગતી ઝુટ આપેલી છે.

૧૬. ' (મિટાણ માટે) સર્વે લિપ્સાઓનો તેણે ત્યાગ કરવો જોઈએ. ' આજ વાચત જૈનોના પાંચમા મહાવ્રતના ચોથા પેટા વાક્યમાં પળ વિહિન કરવામાં આવેલી છે. તે ઉપરાંત, મિશ્રામાં ગ્રહણ અને અગ્રહણની વાચતના જે નિયમો છે તે ઉપરથી પણ આજ આશય તારવી રહ્યાય છે

તત્પર ણવા જિનંકલ્પી સાધુઓ પણ નમ્રજ ગદ્દેના હતા એમ છતાં, તેઓને પણ નમ્રતા ઢાંચવાની છૂટ હતી.^૧

૧૧. 'કેટલાક (એમ જણાવે છે કે તેણે) જીર્ણ-વસ્ત્ર ધોરિને (પહેર્યું જોરિય)' યોધાયનમાં જણાવ્યું છે કે, 'તેણે ઘસ્ટને પાંત-રત્ન ઘણંથાં રંગીને પહેર્યું જોરિય' આ નિયમ જૈનોના કરતાં ઘોઢાના નિયમ સાથે ઘણું મળતો આવે છે. કારણ કે જૈન યતિઓને તો ઘસ્ટને ધોવાનો અગર રંગવાનો નિયંધ કરેલો છે તેમણે તો જે સ્થિતિમાં જે વસ્ત્ર મળ્યું હોય તેજ સ્થિતિમાં તેને પહેરવાનું છે તેમ છતાં પણ કહેવું જોરિય કે જૈનો બ્રાહ્મણોના નિયમના--કે જૈનો ભાવાર્થ માત્ર પટલોજ છે કે સન્યાસિઓનો વેશ યના શકે તેટલો સાદો અને ક્ષુદ્ર હોયો જોરિય, તેના-મુલઆસયને પરાકાષ્ઠાના સમાપ્ત ઘસડી ગયા છે જૈનો પોત ના આચારનો કઠોરતાના વિષયમાં બ્રાહ્મણ પ્રતિસ્પર્ધિઓને પાછલ પાઠી દેવામાં એક પ્રકારનું ગૌરવ સમજતા હોય તેમ દેખાય છે અને તેથી તેઓ મલિનતા અને કુત્સિતતાને યતિજીવનનું પરમ શૂંપણ માનવાની મૂલ કરે છે. આથી વિરુદ્ધ ઘોઢાં હમેશાં પોતાના આચારને જૈમ યને તેમ માનવ-સમાજના વધારણને અતુલ યનાવવા પ્રયત્નશીલ રહ્યા છે.

૨૦ 'તેણે વૃક્ષો અથવા છોડવાઓના માગોને લેવા નહીં પરંતુ જો તે (પોતાની મેલે) કુદા થઈ ગયા હોય તો તે લેવામાં બાધ નથી.' જૈનોનો પણ સેવોજ નિયમ છે પરંતુ તેઓ આથી પણ ખાગલ વધીને પોતાના યતિઓ માટે ફક્ત તદ્દન અચિત્ત ઘનસ્પતિ અને ફલ હત્યાદિનેજ મિશ્રમાં લેવાની છૂટ આપે છે.

૨૧. 'વપ્રક્રિતુ સિચાય તેણે (એકજ) ગામમાં બેરાત રહેવું નહીં' આપણે ઉપર જોઈ ગયાં છીએ તેમ મહાવીરે તો આજ નિયમ પલ્લો હતાં પછી અન્ય સાધુઓએ ગમે તે રીતે તેનું આચરણ કર્યું હોય

૧ આચારીય સૂત્ર ૧, ૭, ૭, ૧.

૨ L. C. § ૨૧

૩ આચારીય સૂત્ર ૨, ૫, ૨, ૧, અને ૧, ૭, ૫, ૨.

૪ સરલાઓ, આચારીય સૂત્ર. ૨, ૨, ૨, ૧

૫ આચારીય ૨, ૧, ૭, ૬, અને ૬ મુ અધ્યયન.

૨૨. 'તેણે યા તો ડિગ મુઢાવયું જોરિય અગર એક દિવસ માત્ર રામચંદ્રી જોરિય' જૈનોએ આ નિયમને સુધારી પોતાના સાધુઓ માટે માત્ર ખાતું મસ્તક મુઢાવવાનોજ વિધિ કરેલો છે યોધા-યનનો અનુસાર સંન્યાસી ઘનતો ઘસ્ટને બ્રાહ્મણે 'પોતાના માથાના, ઘાઠીના તથા શરીરના ઘાઠ કઢાવવા જોરિય તથા નહ પણ ઉતગાવવા જોરિય' જૈનો પણ કીકા લેતી ઘસ્ટને ઘાઠ કપાવવાના આ આચારનું અવશ્ય પાલન કરે છે અને આથીજ 'મુઢ ઘનીને (અગર પોતાના ઘાઠ ઉઘેડી નાહીને) અગર છોડી અનગર સ્થિતિમાં પ્રવેશ કર્યો' આવા ઉલ્લેખ તર્યં થપલો છે.

૨૩. 'તેણે ઘોઢાંનો નાશ નહીં કરવો જોરિય' યાંચનાર આચારાંગના ઘીજા દ્વધના ઘણા સત્રોમાં જોઈ શકાય કે અડ, ઝીંધ, ઘીજ અકુરાદિને હાનિ ન થઈ જાય, તે માટે જૈન મિથુને કેટલો ઘડો સાચવેત રહેવાનો ભલામણ કરવામાં આવ્યું છે એમ જણાય છે કે જૈનોએ ઉપર્યુક્ત નિયમને ઘનસ્પતિ અને પ્રાણિવર્ગના સુધઢા સૂક્ષ્મજીવોને લાગુ પડે તેવો એક વ્યાપક નિયમ ઘનાવ્યો છે.

૨૪ 'તેણે સચઢા (જીવો) પ્રત્યે ઉઢાસીનતા રાખવી જોરિય પછી તે જીવો ગમે તો તેના પ્રતિ માયાલુપણ ધરાવતા હોય કે દુરપણ.'

૨૫ 'તેણે મેહિક અગર પારલૈકિક કલ્યાણ માટે કોઈ પણ પ્રવૃત્તિ કરવી જોરિય નહીં.'

છેલ્લા બે નિયમો તો જૈનોના કોઈ પણ આગમ માંથી અક્ષરશ યતાવો શકાય તેવા છે કારણ કે તે જૈનધર્મના તત્ત્વના મૂલભૂત છે મહાવીરે આ નિયમોનું યથાર્થરીને પરિપાલન કર્યું હતું આના પ્રમાણમાં નીચેના ઉલ્લેખો તસ થયો. 'તેમના (મહા-વીરના) શરીર ઉપર ચાર માસ કરતાં વધીક સમય પર્યંત અનેક પ્રકારના પ્રાણિઓનો ઢઢ જામ્યો હતો; તેઓ, તે ઉપર હસ્તા કરતા હતા અને વિવિધ ક્લેશો માપતા હતાં' 'તેમણે હમેશાં ત્રિગુણિપૃથક વૃણ,શીત, આગ્ર,માઘી,મશક આદિથી જાનિત અનેક

૧ યોધાયન ૨, ૧૦, ૧૭, ૧૦.

૨ 'મુઢે મવેતા અગરાઓ અગારિય ૫૦૬૫'

૩ આચારીય સૂત્ર ૧, ૮, ૧, ૨.

પ્રકારનાં 'કષ્ટો સહન કર્યાં હતાં' 'તેમણે દેવ, મનુષ્ય અને તિર્યચ જનિત અનેક અનુકૂલ તેમજ પ્રતિકૂલ પનાયો સમતાથી સહન કર્યો, સમ્યા તથા અન્મ-વ્યા હતાં' 'ઇત્યાદિ. જૈનયતિના સંવંધમાં એમ પણ વારંવાર કહેવામાં આવે છે કે તે પાતાના આધ્યાત્મિક જીવનનો ચરમ અવસ્થામાં 'મરણ' થા જીવિત એ વસ્ત્રમાં નિરાકાંક્ષી હોય છે.^૧

વાંચાયને આપેલા ચીજા કષ્ટત્યાગ નિયમો પણ જૈનોના આત્મ.રો સાથે ઘણાજ મળતા આવે છે જેમકે:— 'તેણે ઘચન, ચિચાર અને કર્મ એ ત્રણે પ્રકારનાં કષ્ટદાયક સાધનો દ્વારા કોઈ પણ સર્જિત જીવની હિંસા કરવો જોઈએ નહીં' આ નિયમ જૈનોના પ્રથમ મહાવ્રત (જુઓ ઉપર) નું એક સ્પષ્ટીકરણ માત્ર છે આ 'કષ્ટદાયક સાધનોને' જૈનો શત્રુ કહે છે.

'તેણે ઝાંચાદિ કર્મ માટે અપેક્ષિત જન્મને મળ્યા સાચ વસ્ત્ર-રાશ્યંતું જોઈએ' 'તેણે (આવશ્યક) ડાંચાદિ (કુચા અગર તલ્લાડમાંથી) કાઢેલા અને ગલેલા પાળીથી કરવો જોઈએ.'^૨ આ નિયમોનું જૈન સાધુઓ યથાર્થ પાલન કરે છે તેઓ પાળી મળવા માટે ત્યાસ વસ્ત્ર રાખે છે ટીકાકાર ગોવિન્દ, આ પવિત્ર, પડેલ પાળી મળવાના વસ્ત્રખંડનો અર્થ 'માર્ગ ઉપરથી જંતુઓને દૂર કરવા માટે રાખેલો કુદા જાતના તૂળનો એક શુદ્ધ,' એમ કરે છે.^૩ ગોવિન્દનો વતાવેલો આ અર્થ જો યથાર્થ હોય અને તેના પ્રમાણમાં જો કાંઈ સાર્વિક અને પ્રાચીન પરંપરા રહેલી હોય-અને તે મારા માનવા પ્રમાણે તો અવશ્ય હોવાજાં જોઈએ- તો જૈન સાધુઓ માર્ગમાં ચાલતાં વચ્ચે વચ્ચે આવતા તથા ચેસતાં વચન નીચે આવતા જીવજંતુઓને દૂર કરવા માટે જે રજોહરણ અથવા પાદમોઝ્ડન રાખે છે, તેનું પ્રતિરૂપ બ્રાહ્મણ

પ્રથોમાં પણ મઠી આવે છે. એમ આપણે અહીં જણાવી શકીશું.

બ્રાહ્મણ સંન્યાસીજીવનનાં ઉપકરણો તરીકે 'વળ્લો (ચણિકાઓ), રજ્જુ, પાળી મળવામાટે વસ્ત્ર ખંડ, જલપાત્ર અને ભિક્ષાપાત્ર છે.' જૈન સાધુઓ પણ વળ્લો રાખે છે-અત્યારે તો અવશ્ય રાખે છે પરંતુ થોડો તરફ દૃષ્ટિ કરતાં. પિટ્રકોમાં એવો એક પણ ઉલ્લેખ મારા જોવામાં આવ્યો નથી કે જેમાં ચણિકા રાખવા માટે સ્પષ્ટ વિધાન કરવામાં આવ્યું હોય.

જૈન સાધુઓ પણ બ્રાહ્મણ સંન્યાસીઓની માફક ભિક્ષાપાત્ર અને તેને યાંચવાની એક ઘોરી તથા જલપાત્ર રાખે છે, પાળી મળવા માટે વસ્ત્રખંડ અને રજોહરણ આ એ વસ્તુઓ રાખવા સંબંધી ઉલ્લેખ તો યાની પહેલાં જ આપણે કરી ગયા હતા જૈન સાધુનું જો કોઈ પણ એવું ત્યાસ ઉપકરણ હોય કે જે અન્ય સંન્યાસીઓ પાસે નહીં લેખાતું હોય, તે તેમની એક માત્ર મુલચલિકા (મુહપત્રી) છે. આ ઘણી હકીકત ઉપરથી જણાશે કે જૈનોનાં ઘણાં ચર્યાં ઉપકરણો, તેમના માટે આદર્શરૂપ થયેલા એવા બ્રાહ્મણ સંન્યાસીઓ અગર સિંધુભોનાં જેવાં જ છે.

'તેણે તેજ અન્ન લેવું જોઈએ કે જે વિના માથે મળેલું હોય, જેના સંવંધમાં પહેલાં કાંઈ વ્યવસ્થા થયેલી ન હોય, જે અક્ષમાત્રજ મઠી થયું હોય, અને જે ફક્ત પોતાના જીવિતને ટકાવવા પૂરતું જ હોય.'^૪

જૈનધર્મના 'ભિક્ષાચર્યાના નિયમો' વાંચવાથી સ્પષ્ટ જણાઈ આવે તેમ છે, કે, બ્રાહ્મણ સંન્યાસીઓ માટે અન્નપ્રવ્રણ કરવા સંબંધી જે જાતના નિયમોનું વાંચાયને ઉપર પ્રમાણે વિધાન કર્યું છે, તેજ પ્રકારના નિયમો પ્રમાણે મળેલા આહારને જૈનોએ પણ 'શુદ્ધ અને પ્રાણ' માન્યો છે થોડો આ વિષયમાં આટલા યથા સક્ત નથી. તેઓ તો ત્યાસ કરીને

૧. આચારાગ સૂત્ર ૧, ૮, ૨, ૧.

૨. કર્મસૂત્ર, જિનચરિત્ર, § ૧૧૭, અતિમભગ. ૧.

૩. ઉદાહરણ તરીકે કલ્પસૂત્ર સામાચાર્ય § ૫૧.

૪. વાંચન ૨, ૮, ૧૧, ૨૩.

૫. આચારાગ સૂત્ર, પૃ ૧, નોટ ૨

૬. વાંચન ૨, ૬, ૧૧, ૨૩.

૭. જુઓ પ્રો હુલ્હરનું સાર્વાતર પૃ. ૨૬૦, ટિપ્પણ

૧. વાંચન ૨, ૧૦, ૧૭, ૧૧.

૨. જો કે ભિક્ષાપાત્ર ઉપરાંત સાધુને જલપાત્ર રાખવાની પણ છૂટ થ પેલી છે સરી તથાપિ એકજ પાત્ર રાખવું અધિક અરુઢ મનાય છે.

૩. વાંચન ૨, ૧૦. ૧૬, ૧૨

તેમના માટેજ તૈયાર કરવામાં આવેલા મોઝનના આમંત્રણ સુચનાં સ્વીકાર કરે છે.

બ્રાહ્મણ સંન્યાસી અને જૈન યતિ માટે વિહિત કરેલા નિયમોનાં જે તુલના આપણે ઉપર કરી છે, તે ઉપરથી એ સ્પષ્ટ જણાય છે કે જૈનોના નિયમો તે બ્રાહ્મણોની નફલ માત્ર છે. પરંતુ અહીં એ પ્રશ્ન ધાય છે કે 'નિર્મથ' એ શીથી રીતે (સાક્ષાત્) જ સંન્યાસીની નફલ છે કે ધરપરાપૂર્વક? કેમ કે પશો પણ તર્ક થઈ શકે તેમ છે કે બ્રાહ્મણ સંન્યાસિની પ્રથમ ઘોડોળ નફલ કરી હશે અને શુદ્ધભિક્ષુની, પાછળથી નિર્મથોળ પરંતુ હુ જેમ ઉપર સૂચવી ગયા હું તેમ એ તર્ક પ્રમાણગ્રસ્ત છે. કારણ કે ઘણે પ્રાચીન અને પ્રમાણમૂલ આદર્શને છોડી, જૈનો અલગ પ્રતિષ્ઠિત અને નફલો પણ પોતાના પ્રતિસ્પર્ધી ઘોડોળું અનુકરણ કરે એ અસંભવિત છે. આથી પણ કદાચ ઘણે યોગ્ય જણાય છે કે તેમણે સીધી રીતેજ બ્રાહ્મણોનું અનુકરણ કર્યું હતું. આ મુખ્ય દલીલ ઉપરાંત, પ્રસ્તુત પ્રદન વિરુદ્ધ ધીજી પણ એક દલીલ છે કે—ઉપર જણાવ્યા પ્રમાણે જે કેટલાક બ્રાહ્મણ આચાર્યોનું જ્યારે એનો એ અનુકરણ કર્યું છે ત્યારે ઘોડોળ તેમ કર્યું જણાતું નથી તેથી એમ સાબીત થાય છે કે ઘોડો જૈનોના આદર્શમૂલ વિરુદ્ધ હતા નહીં.

અહીં એક પણ વિકર્ન ઉઠવાનો સમ્ભવ રહે છે કે બ્રાહ્મણ સંન્યાસીજ જૈન નિર્મથ અથવા ઘોડ ભિક્ષુની નફલરૂપે કેમ જા હોય? પરંતુ આ વિકર્ન તદ્દન પ્રમાણવિરુદ્ધ છે. સંન્યાસમાર્ગી બ્રાહ્મણોની આશ્રમ વ્યવસ્થાનું એક શાસ્ત્ર અંગ છે. અને આ આશ્રમ વ્યવસ્થાને કદાચિત્ બ્રાહ્મણ ધર્મ જેટલી પ્રાચીન ન માનીએ તો પણ જૈન તથા ઘોડ ધર્મથી તો તેને અદ્વંદ્ય પ્રાચીન માનવા પડે તેમ છે. ઘોડી બ્રાહ્મણ સંન્યાસિઓ જ્યારે આશા ભારતવર્ષમાં પ્રસરેલા હતા, ત્યારે ઘોડો તેમના સઘની સ્થાપના થયા પછી, નિદાન પ્રથમની ઘે શતાબ્દીઓમાં તો, તેઓ માત્ર દેશના એક અમુક ભાગ જેવા સંકુચિત પ્રદેશમાંજ રહેતા હતા તેથી આશા દેશના સંન્યાસિઓ માટે તેઓ આદર્શમૂલ વન્યા હોય એમ માનવું સર્વથા પ્રમાણ ગ્રસ્ત છે. ધીજી વાવત વળી એ છે કે—બ્રાહ્મણ ધર્મશાસ્ત્રના કર્તા ગૌતમ નિશ્ચિતરૂપે

ઘોડ ધર્મની ઉત્પત્તિની પૂર્વે થઈ ગયા છે કારણ કે, ઘો, ઘુલ્હરના મન પ્રમાણે આપમ્નમ્ય મૂલની રચનાનો કાલ મોડામાં મોડો છે. સ. પૂર્વે પાંચમી અગર ચોથી શતાબ્દીમાં મૂલનો જોડાઈ ઘોધાયન તે આપમ્નમ્યની પૂર્વે થયેલો છે. અને ઘો, ઘુલ્હરના^૧ કહેવા પ્રમાણે તે ઘણે વચ્ચેના ઘણાં અંતર દ્વારથી નહીં પરંતુ શતકથી માપવા જેટલું છે. ગૌતમ એ ઘોધાયનથી પણ પૂર્વકાલીન છે આ હિસાબે ગૌતમ, અને ઘણું કરીને ઘોધાયન પણ, ઘોધર્મની ઉત્પત્તિની પૂર્વે થઈ ગયેલા નિશ્ચિત ધાય છે. હવે ઉપર ઘણેલેલા બ્રાહ્મણ સંન્યાસમાર્ગના સઘલા નિયમો તો તાસ ગૌતમ દ્વારાજ ઘાંધવામાં આવેલા છે તેથી તે માર્ગને ઘોડોની નફલરૂપે માનવા એ પ્રત્યક્ષ મૂલ છે. ધારો કે ઉક્ત ધર્મશાસ્ત્રોની રચનાના સમયના વિષયમાં ઘો, ઘુલ્હરે કરેલું કથન કદાચિત્ ખોટું ટરે, તો પણ તે ધર્મશાસ્ત્રો ઘોધર્મની ઉત્પત્તિ પછી લેવા-ઓ ઘોડાં વાદ રચાયાં હતાં, એમ તો કોઈ પણ રીતે સિદ્ધ કરી શકાય તેમ છેજ નહીં. તથાપિ માનો કે, કદાચિત્ તેમ પણ સિદ્ધ કરી શકાય—જો કે તેમ થયું તો સર્વથા અસંભવિતજ છે—તો પણ આ સ્મૃતિકાર બ્રાહ્મણો પોતે જેમને આધુનિક કાલમાં ઉત્પન્ન થયેલા માનતા હોય તથા જેમને મિધ્યામતિ ઓ મારી તિસ્કારના હોય તેવા ઘોડો પાસેથી મોટા પ્રમાણમાં પોતાના આચાર-નિયમો પ્રહણ કરે, તે સર્વથા અશક્ય વાવત છે તેમજ નાસ્તિકો પાસેથી પોતે લીધેલા નિયમોને બ્રાહ્મણો પટલા ઘણા પવિત્ર માને એ પણ નહીં માનવા જેવી વાવત છે. પરંતુ, આથી ઉલટું, ઘોડોળજ બ્રાહ્મણોના નિયમોનું અનુકરણ કર્યું હતું, એમ માનવું યુક્તિયુક્ત અને પ્રમાણસંગત લાગે છે. કારણ કે બ્રાહ્મણોની શુદ્ધિ-વિષયક અને નીતિવિષયક ઉત્કૃષ્ટતાને માટે ઘોડો હમેશાં ઝંઘો અભિપ્રાય ધરાવતા અને તે ઘડલ ઘડુ-માન કરતા હતા. પણ કારણ છે કે જૈનો તેમજ ઘોડોળ બ્રાહ્મણ એ શબ્દને એક માનસૂચક વિષય

૧. Sacred Laws of the Aryas, part I, introduction, p. XLIII.

૨. L. c. p. XXII.

૩ L. c. p. 49.

તરીકે સ્વીકારેલો છે, અને બ્રાહ્મણેતર જાતિના પુરુષોને માટે પણ તેમણે તેનો પ્રયોગ કરેલો છે.

આ સ્થૂળે જળાવલું જોઈએ કે જેનો તેમજ બૌદ્ધોનો મિશ્રમાર્ગ, બ્રાહ્મણોના સંન્યાસમાર્ગના અનુકરણ રૂપ હોવા છતાં, તે મૂલ્યમાં તથા મુત્યરીતે ક્ષત્રિયો માટેજ યોજાયેલો હતો. પ્રો. બોલ્ડન-રગ્ના દર્શાવ્યા મુજબ વૃદ્ધે પ્રથમ પક્ષિમાં ઉમરાવ અને અમીર લોકોનેજ સ્થાન આપ્યું હતું. કારણ કે, યનારસમાં આપેલા પોતાના પ્રથમ ઉપદેશમાં, વૃદ્ધે પોતાના ધર્મના સંબંધમાં કહ્યું હતું કે 'યસસ્યાય કુલપુત્રા સમ્પદેવ અગારસ્મા અનગારિયં પદ્મજન્તિ'—જેને માટે કુલીન જાતિના પુત્રો ઘર છોડીને અનગારતા સ્વીકારે છે.^૧

જેનો પણ બ્રાહ્મણો કરતાં ક્ષત્રિયોને ઉચ્ચકોટિના માનતા હતા, એ વાચત, મહાવીરના ગર્ભસંક્રમના સંબંધમાં જે એક આશ્ચર્યભરેલી પુરાણ કથા પ્રસિદ્ધ છે તે ઉપરથી સાધીત થાય છે. તે દંતકથા એવી છે કે-મહાવીરનો ગર્ભ વૈશાંત્રદા બ્રાહ્મણીની કુક્ષિમાંથી ત્રિશલા ક્ષત્રિયાણીની કુક્ષિમાં ફેરવવામાં આવ્યો હતો અને તેમ કરવાનું કારણ માત્ર પટલજ યતાયવામાં આવ્યું છે કે બ્રાહ્મણી અગર અન્ય કોઈ નીચ જાતિની સ્ત્રીના ઉદરથી તીર્થંકરની જન્મ થઈ શકે નહીં.^૨

૧ Buddha, sein Leben, &c, p 157 seq.

૨. મહાવગ્ગ ૧, ૬, ૧૨

૩. શિવશ્રી આ દંતકથાને યુક્તિનૂય કહી, એનો નરસીકાર કરે છે પરંતુ શ્વેતાશ્રી તેને દટતાપૂર્વક સાચા જણાવે છે. આ દંતકથા સાચાચારામાં તથા કમ્પ્યૂન આદિ ઘણા પ્રયોગ મૂકી આવે છે, તેથી તેના પ્રાચીનતા માં તે આપણને શકા રહેતી નથી. પરંતુ એ કાંઈ સ્પષ્ટ સમજાણ નથી કે કયા કારણથી આ યુક્તિનૂય દત્તકથા રચન થઈ લોકમા પ્રચાર પામી હશે? આ અધ્યયનપ્રસન્ન પ્રશ્ન ઉપર મને જો અભિપ્રાય આપવાની છૂટ હોય તો, માફ તો એવું માનવું છે કે શિક્ષાર્થને બ્રાહ્મણો વૈશાંત્રદા-જે મહાવીરની ગાંધી માતા હતા તે-અને સ્ત્રીવાણી ત્રિશલા એ બે સ્ત્રીઓ હતી. પહેલી સ્ત્રીના પતિ તરીકે યતાયવામાં આવતું ક્ષત્રમદંતનું નામ પળુ પ્રાચીન હોય તેમ લાગતું નથી. કારણ કે જા તે પ્રાચીન હોય તો તેનું પ્રાચીન રૂપ 'ઉચ્ચદંત' થવાને વડેલા પ્રા. 'ઉચ્ચદંતિ' એવું

ચીજી વાણુએ જોતાં બ્રાહ્મણ સંન્યાસિઓ પૃથ્વી પોતાના જવાબ પરમ આસ્તિક બ્રાહ્મણેતર જાતીય સંન્યાસિઓને સ્વસમાન ઉચ્ચ કોટિના ન હોતા માનતા. કારણ કે પાછલના સમયમાં એવી મત પ્રચલિત થયેલો રૂપ દેખાય છે કે બ્રાહ્મણ સિવાય અન્ય કોઈ વર્ણને જનુર્ય આશ્રમનો અધિકાર હતો નહીં આમનના પ્રમાણમાં, પ્રો. બોલ્ડનના જણાવવા પ્રમાણે, યનુનો ૬, ૭૭ મો શ્લોક યતાયવામાં આવે છે પરંતુ મિશ્ર મિશ્ર ટીકાકારોના અભિપ્રાય તરફ દર્શાવત કરતાં, આ શ્લોકના અર્થના સ્વયં ધર્મમાં વધા ટીકાકારો એક મત થતા જમાતા નથી. તેથી આ ચિવાદપ્રસ્ત ઉલ્લેખને ધ્યાનુ મૂકીએ તો

થયુ જોઈએ વિશેષમાં, આ ન મ પણ એક જનને છાવે તેનું છે, જાણ્યને છાવે તેવું નથી તેથી માર્ગ તો એમ ચાંકસ માનવુ થાય છે કે ક્ષત્રમદંત એ કક્ષ જૈનોએ વૈશાંત્રદાના ધર્મા પતિ તરીકે એક કલ્પના કાઢેલી પુણ છે આપણે જાણાવે છીએ કે સિદ્ધાર્થ પોતાના ત્રિશલા સાથેના જન્મદ્વારા અનેક કલ્પી પદ્ધતિવાલા અને મોટા પ્રભાવવાળા પુરુષો સાથે રૂપ ધરાવતો હતો. તેથી કદાચિત્ત એવી વિચાર તેનું ઉત્પન્ન થયો હોય, તે તે સમયેત છે કે મહાવીરને ત્રિશલાના સ્વભાવનુત તરીકે પ્રસિદ્ધ કરવાને વડેલે ઔરસ પુત્ર તરીકે જો જ હર કરવાના આવે તા વચરે લાભશાયક માવત વનશ. કારણ કે તેમ કરવાથી, મહાવીર ત્રિશલાનાં પ્રભાવશાલી સંગાઓના આશ્રયનો હક્કાર વની શક્તે. આ દત્તકથા ઓકોમા વિશ્વા-સપાન વળ ઘણાજ સદેહાદી મનદે ગઈ હશે. કારણ કે મહાવીર તીર્થંકર તરીકે પ્રસિદ્ધિમાં આવ્યા તેનો પહેલા પળો થયા અગત્ય તેનનાં માતાપિતા પુત્રરી ગયાં હતાં પરંતુ સ્ત્રી થયુંસ્થિતિ લોકોની સ્થિતિમાંથી ધર્મનાં લુપ્ત નહીં થઈ હોય તેથી પાછલથી ગર્ભસંક્રમની વાં કથા ઉપજાગી કાઢવામાં આવી હશે આ કલ્પનાનાં મૂલ્ય ઉત્પાદક જૈન મતો. તેમણે તો માત્ર દેવચીની કુક્ષિમાંથી રોહિણીની કુક્ષિમાં ચરલા રૂપના ગર્ભસંક્રમની પોરાણિક કથાનું દરર રીતે અનુકરણ કર્યું છે આ ઉપરથી એમ પણ જાણ્ય છે કે જૈનધર્મના ચિકા સની પ્રથમની સદીઓમાં રૂપનાં ઉપાધના લંઘનિય થઈ રહી હતી. કારણ કે જૈનોએ પોતાના વાર્ષિકમાં તીર્થંકર અરિ-છનેયે જે પણ પ્રચિન ચાંદક હતા, તેમનું ચરિત્ર લલવામાં કેટલાક પેરકાર મિલાય રૂપનું આવું રૂપન વધારી રીં આરેલી હોતું છે.

પણ પટલું તો સપટ દેશાય છે કે પાછળના સમયમાં
 એ વિચાર તો ચાલ સ્તંભ થઈ ગયો હતો કે ચારે
 આશ્રમનો અધિકારી એક માત્ર બ્રાહ્મણ ધર્મજ હોઈ
 શકે છે. ક્ષત્રિયો માટે વ્રણ, વૈદ્યો માટે વે અને
 શૂદ્ર માટે ફક્ત એકજ આશ્રમનો અધિકાર જણાવ-
 વામાં આવ્યો છે^૧

આ સઘળી ઈકીકતો ઉપરથી એ વિચાર તો
 નિશ્ચિત લાગે છે, કે પ્રાચીન કાળમાં પણ બ્રાહ્મણેતર
 સંન્યાસિઓ, બ્રાહ્મણ સંન્યાસિઓથી એક જુદા જગના
 તથા પૃથક્ષત મનાતા હતા અને તેથી આપણે જમ
 માનવાનું કારણ મળે છે કે બ્રાહ્મણેતર સંન્યાસિઓની
 આ પ્રકારની અવસ્થાને લઈને પણ સંપ્રદાયોનો
 જન્મ થયો હતો કે જેમણે બ્રાહ્મણધર્મ સામે પોતાનો
 પ્રકટ વિરોધ જાહેર કર્યો હતો. આગળ કારણને
 લઈને વેદાધારિઓ - પાંચેડિઓ ઉત્પન્ન થયા હતા
 એવો માધ વશિષ્ઠના કથન ઉપરથી પણ તારવી
 શકાય છે ત્યાં એમ જણાવેલું છે કે કેટલાક સં-
 ન્યાસિઓએ ધાર્મિક ક્રિયાઓ (વિધિઓ) કરવી
 છોડી દીધી હતી અને ઘણી કેટલાકે તો આથી પણ
 આગળ વધી વેદમંત્રોચ્ચારણ પણ છોડી દીધું હતું.
 આ પ્રકારે ક્રિયામાર્ગનું ઉલ્લંઘન કરનારાઓને હજે-
 રાને વશિષ્ઠમાં નીચે પ્રમાણેનું કથન કરેલું છે, કે
 'મહે તોઈ મનુષ્ય સઘળી ધાર્મિક વિધિઓનું અનુ-
 ઘાન છોડી દે પરંતુ વેદમંત્રોચ્ચારણ તો તેણે કદા-
 પિ ન છોડવું જોઈએ. કારણ કે વેદની ઉપેક્ષા કર-
 વાથી શૂદ્ર થવાય છે તેટલા માટે તેણે તેમ કરવું
 નહીં.' આટલા યથા મારપૂર્વક કરેલા પ્રતિબંધ
 ઉપરથી સહજ અનુમાન થાય છે કે આવું ક્રિયા-
 નુષ્ઠાન એક વચ્ચે રાસેસર બંધ થયુંજ
 હશે. ઘણી આ ઉપરથી જો આપણે
 પટલું અનુમાન કરી શકતા હોઈએ કે કેટલાક
 સંન્યાસિઓએ આવી રીતે વેદોચ્ચારણ—વેદાભ્યાસ
 કરવો પણ છોડી દીધો હશે, તો આપણે તેવું અનુમાન
 પણ કરી શકીએ, કે યીજાઓએ, વેદને રૂઝવણીત
 તથા સ્વતઃ પ્રમાણભૂત તરીકે માનવાનો ફકાર

પણ કર્યો હશે. આ વિચાર ઉપરથી એ કલ્પના
 સહજ કરી શકાય તેવા છે કે આ માર્ગ સ્વીકાર-
 નાર તેજ પુરવો હતા જેઓ એક પ્રકારના પૃથક્ષત
 અને બ્રાહ્મણેતર સંન્યાસિઓ મનાતા હતા. આ રીતે
 પ્રસ્તુત વિવેચન ઉપરથી એક તો આપણે એ વાચન
 જોઈ શકીએ છીએ કે જન અને વૈદ્ય જેવા વિરોધી
 સંપ્રદાયોના મતમેદનું ચીજ ચતુર્થ આશ્રમની સં-
 સ્થામાં રહેલું હતું. અને ચીજ એ પણ આપણે જોઈ
 શકીએ છીએ કે મતાન્તર ધારિઓએ ચતુર્થ આશ્ર-
 મનું અનુસરણ કર્યું હતું. આ ઉપરથી આપણે માનવું
 પડે કે જેનધર્મ ધર્મ શુદ્ધધર્મ એ બ્રાહ્મણધર્મમાંથી
 ઉત્પન્ન થયેલા એક આકાસ્મિક સુધારા સ્વરૂપ મતો
 નથી પરંતુ લાંબા વચ્ચતથી ચાલતા આવતા એક
 ધાર્મિક આંદોલનના ક્રમિક પરિણામ સ્વરૂપ છે.

આપણે ડાર જોઈ ગયા તેમ, જનોની તેમના છેલ્લા
 તીર્થંકર સંબંધી પરંપરાગત કથાઓ, અથવા જન
 સાધુઓ માટે વિહિત કરવામાં આવેલા આચારો
 અગર તે ધર્મના ધજાલુ ગૃહસ્થો માટે યોગાપલી
 ધાર્મિક ક્રિયાઓ ઉપરથી એવું કોઈ પણ સિદ્ધ થતું
 નથી કે જેથી આપણને એમ માનવાનું કારણ મળે
 કે જેનધર્મ એ વૈદ્યધર્મમાંથી નિકળ્યો હતો. એ
 ઉપરાંત વચ્ચે ધર્મોના મુખ્ય સિદ્ધાન્તોમાં પણ પર-
 સ્પર પડલો યથો ભેદ રહેલો છે કે જેથી આ વચ્ચે
 ધર્મોનું મૂલ ઉત્પત્તિ સ્થાન એક હશે એમ પણ માની
 શકાય તેમ નથી વુઝે નિર્વાણની અવસ્થાના સંપ-
 ધમાં ગમે તેમ વિચાર્યું અગર ઉપદેશ્ય હોય—અર્થાત્
 તે અવસ્થાને યા તો સર્વથા અભાવાત્મક યતાયી
 હોય કે પછી તેને એક અગમ્ય અને અચિન્ત્ય તત્ત્વ
 ઘણી કલ્પી હોય; પરંતુ પટલું તો નિ સદેવ
 છે કે તેમણે બ્રાહ્મણધર્મના આત્મવાદનો, કે જે
 વાદમાં વિશ્વદેવતાવાદિઓ તથા અણુવાદિઓના
 મત પ્રમાણે આત્મા સ્વતંત્ર અને નિસ્સ માનવામાં
 આવ્યો છે તેનો, સ્પષ્ટ વિરોધ કર્યો હતો અને તે
 વિરોધજ એ વૈદ્યધર્મની એક શાસ વિશિષ્ટતા
 છે પરંતુ આ વિષયનો યારે જેનોનો સિદ્ધાન્ત
 તપાસીએ છીએ, તે સંપૂર્ણરીતે બ્રાહ્મણમતને મળતો
 આવે છે જે ભેદ છે તે માત્ર પટલો છે કે જેનો
 યારે આત્માને મર્યાદિત આકાશવાયી માને છે,
 યારે સાંક્ય, ન્યાય અને વેશેષિક દર્શન જેવા પ્રા-

૧. Macmuller, 'The Hibbert Lectures',
 p. ૩૪૩.

૨ Chapter X, ૧. Buhler's 'Translation.

હાણ સંપ્રદાયો આત્માને સર્વ વિશ્વવ્યાપી માને છે; વહ્ની, જેવી રીતે ઘીદોનો અસંખ્ય ઉપવિભાગાત્મક પચ્ચસ્કન્ધવાદ જૈનોના અધ્યાત્મશાસ્ત્રમાં વિલકુલ જણાતો નથી, તેવી રીતે જૈનોનો અતિવિસ્તૃત ચેતનવાદ (Hylozoistic theory) જેવો સિદ્ધાન્ત પણ ઘીદોના તત્ત્વજ્ઞાનમાં દૃષ્ટિગોચર થતો નથી. જૈનોનો એ સિદ્ધાન્ત તેમના સંપૂર્ણ તત્ત્વજ્ઞાન અને આધ્યારશાસ્ત્રમાં ઓતપ્રોત થયેલો જોવામાં આવે છે, અને એ સિદ્ધાન્તાનુસાર પ્રાણી અને વનસ્પતિ ઉપરાન્ત પૃથ્વી, જલ, તેજ અને વાયુ જેવાં તત્ત્વોનાં સૂક્ષ્મમાં સૂક્ષ્મ અણુઓ સુદ્ધાને ચેતનાયુક્ત માનવામાં આવે છે. ભારતવર્ષના સઘઠા તત્ત્વજ્ઞાનિઓએ સર્વશતા સુધીની જ્ઞાનની જુદી જુદી તરતમતાઓ-પાયરોઓ ને એક અતિ મહત્ત્વનો વિષય માન્યો છે. તદ્દનુસાર જૈનો પણ આ વિષયમાં પોતાનો એક સ્વતંત્ર મત ધરાવે છે અને એ વિષયની તેમની પરિમાણ પણ બ્રાહ્મણ અને યોદ્ધાધી તદ્દન જુદાજ પ્રકારની છે તે ઓછા જ્ઞાનના નીચે પ્રમાણેના પાંચ પ્રકારો માનેલા છે — (૧) મતિ-સમ્યગ્ અવયોધ, (૨) ધ્રુત-મતિ વાદ થયેલું સ્પષ્ટ જ્ઞાન, (૩) અવધિ-એક જ્ઞાતનુ અતીન્દ્રિય જ્ઞાન, (૪) મનઃ પર્યાય-પરકીય ત્રિચારોનું વિશદ જ્ઞાન, (૫) કેવલ-સર્વોત્કૃષ્ટ પ્રકારનું અથવા સંપૂર્ણ જ્ઞાન જૈનોનો આ એક મૌલિક આધ્યાત્મિક સિદ્ધાન્ત છે, અને એ સિદ્ધાન્ત તીર્થંકરોનાં ચરિત્રો લક્ષતી વચ્ચે લેબકોના પ્રગજમાં દર્શાવેલા પ્રધાન પાને રમી રહે છે આ પ્રકારનો સિદ્ધાન્ત ઘીદગ્રંથોમાં ધીલકુલ જોવામાં આવતો નથી. એ સિદ્ધાન્ત ઘીદ સંપ્રદાયોના મુદ્દા સિદ્ધાન્તો વચ્ચે ઘીજા પણ ઘવા ઘના મેદો ઘતાવી શકાય તેમ છે. પરંતુ તે ઘધાતું ઘર્ણન ઘાંચતાં કઢાચ ઘાચ-ઘને કઢાલો આવે તેવા મયથી ઘમે આટલેથી જ વિરમીપ છીપ

જૈનોના જે કેટલાક સિદ્ધાન્તો ઘીદ સિદ્ધાન્તો સાથે મઢતા આવે છે તે તો બ્રાહ્મણધર્મમાં પણ સમાન છે — ઉદાહરણ તરીકે પુનર્જન્મનો સિદ્ધાન્ત અર્થાત્ મરણ પછી ફરીથી જન્મ ધારણ કરવો તે, કર્મનો સિદ્ધાન્ત — અર્થાત્ પૂર્વરૂત કર્મોના ધર્મ-ધર્મરૂપી પરિણામો આ મારમાં અગર બાગામી

જન્મમાં જીવાત્માને મોગવઘાં પડે છે તે, તેમજ સપૂર્ણ જ્ઞાન અને ઉત્તમચારિત્ર — કે જેથી મનુષ્ય મયચક્રપરિભ્રમણને અન્ત લાવી શકે છે તે, — શ્યાદિ સિદ્ધાન્તો હઈ શકીએ ઘીજો પણ જૈનો અને ઘીદોનો એક સમાન વિચાર છે, જેની અનુસાર એમ માનવામાં આવે છે કે બનાદિ કાઢથી તીર્થંકરો અને ઘુદ્ધો એકજ પ્રકારના સિદ્ધાન્તો પ્રકૃપતા આગ્યા છે તથા નપ્ર ઘતા મર્મને પુનર્જીવિત કરતા આગ્યા છે એ વિચાર પણ બ્રાહ્મણોના વિષ્ણુના અવતારોવાઢા વિચાર સાથે મઢતો આવે છે. પરંતુ, તે ઉપરાંત, જૈન અને ઘીદ એ વચ્ચે ધર્મતા એક અત્યાવશ્યક પ્રયોજનરૂપે પણ આ વિચારની ઉત્પત્તિ ઘણી સમજાય છે કારણ એ છે કે ઘુદ્ધ અગર મહાર્થરે જે કાંઈ પ્રતિપાદન કર્યું હતું તેને તેમના અનુયાયિઓ નચ્ચ — એકમાત્ર સત્ય માનતા હતા એવે આ સત્યને પણ બ્રાહ્મણોના વેદની મોફક બનાદિ કાઢથીજ અસ્તિત્વ ધરાવતું માનવું જોઈએ. કારણ કે જો એમ ન માનવામાં આવે તો પ્રશ્ન ઘશે કે શું આ સત્ય તીર્થંકરોના અવતારની પૂર્વે વ્યતીત થઈ ગયેલા અન્ત કાઢ સુધી માત્ર અંશોતજ રહ્યું હતું ? આ પ્રશ્નના ઉત્તરમાં વરેક બ્રહ્માલ્લ જૈન અગર ઘીદ એમજ કહેશે કે નહીં એમ થતયુ તો તદ્દન અશક્ય છે તે તો એમજ કહેશે કે આ સત્યધર્મનો ઉપદેશ મિત્ર મિત્ર કાઢમાં ઉપદ્ર થયેલા એવા અમચ્ય તીર્થંકરો તથા ઘુદ્ધો દ્વારા હમેશાં અપાતો આધ્યો છે અને મવિધ્યમાં પણ તેવી જ રીતે અપાતો રહેશે. આ પ્રમાણે શ્વતકાલમાં અનેક ધર્મેપ્રવર્તેકો થઈ ગયાનો આ ઘીદે ધર્મોનો વિચાર — સિદ્ધાન્ત ન્યાયશાસ્ત્રાનુસાર એક અત્યાવશ્યક પ્રયોજનરૂપે છે.

ઘહો જૈનોના આ વિચાર-સિદ્ધાન્તને પ્રમાણશ્વ ન્ય ઉઠાવી શકાય તેમ પણ નથી. કારણ કે ઘીદ પ્રયોમાં કોઈ પણ સ્થલે નિર્મથ્યોને એક નવીન ઉત્પન્ન થયેલા સંપ્રદાય તરીકે અથવા તો નાતપુત્રને તેના સચ્ચાપક તરીકે વર્ણવામાં આગ્યા નથી. તેથી ઘુદ્ધના સમયમાં નિર્મથ્યોનો સંપ્રદાય, તે પ્રાય. એક પ્રાચીન સંપ્રદાયજ મનાતો હતો, એમ સિદ્ધ થાય છે તેમજ નાતપુત્ર તે, ઘણુ કરીને પાર્શ્વ નામે તે-વીશતા તીર્થંકર દ્વારા સ્થાપિત થયેલા

એક માત્ર સુધારક સમગ્રતા હતા. પરંતુ આમાં આશ્ચર્ય ઉત્પન્ન કરવાવાળો વાચક એ છે કે જૈનો તેમજ યૌદ્ધો વચ્ચે વર્તમાન યુગના ધર્મપ્રવર્તકોની સંખ્યા લગભગ સરખીજ માને છે—પટ્ટલેકે જૈનો ૨૪ તીર્થંકરો માને છે; અને યૌદ્ધો ૨૫ યુદ્ધો માને છે. આ માન્યતાના ધિપયમાં હું એ વાતની ના નથી પાડી શકતો, કે, આમાં એક સંપ્રદાયની ઘીજા સંપ્રદાય ઉપર અસર નહીં થઈ હોય. પરંતુ હું પટ્ટલું તો દૃઢતા-પૂર્વક કહી શકું છું કે આ વચ્ચેમાંના કયા ધર્મે પ્રથમ આ માન્યતા શોધી કાઢી હતી, અગર તો સૌથી પ્રથમ કોણે બ્રાહ્મણો પાસેથી તેનો સ્વીકાર કર્યો હતો; તેનો નિર્ણય કરવો કઠણ છે. કારણકે યૌદ્ધોમાં જેમ, યુદ્ધ-નિર્વાણ પછીની પ્રારંભની જ શતાબ્દિઓમાં પશ્ચિમ યુદ્ધોની ઉપાસના લાગુ પડી હતી, તેમ ચોવીસ તીર્થંકરોની માન્યતા પણ, મહાવીર નિર્વાણ બાદ ઘણું કરીને ઘીજી જ શતાબ્દિમાં સુદા પડેલા વિગમ્યર તથા શ્વેતામ્બર એ બન્ને સંપ્રદાયોને સરખી રીતે માન્ય હોવાથી, તે પણ તેટલી જ જુની છે. પરંતુ આ પ્રશ્નનું નિરાકરણ કાઢવું તે અહીં કોઈ મહત્ત્વનો વિષય નથી. કારણ કે પૂર્વકૃત વિવેચન દ્વારા જે નિર્ણયો ઉપર આપણે આવ્યા છીએ તે ઉપર તેની વિલકુલ અસર થતી નથી. તે નિર્ણયો એ જ છે કે—(૧) જૈનધર્મ, એ યૌદ્ધધર્મથી તદ્દન સ્વતંત્ર રીતે ઉત્પન્ન થયેલો એક પ્રાચીન ધર્મ છે; તેનો વિકાસ પણ તેટલીજ સ્વતંત્ર રીતે થયેલો છે; તેમજ તેમાં યૌદ્ધ ધર્મમાંથી વિશેષ કોઈ લેવામાં આવ્યું નથી. તથા (૨) જૈનો તેમજ યૌદ્ધો એ બન્નેના તત્ત્વજ્ઞાન, આચાર, નીતિશાસ્ત્ર, અને જગદુત્પત્તિશાસ્ત્રનું મૂલ્ય બ્રાહ્મણો—ખાસ કરીને સંન્યાસિઓને આ-ભારી છે.

અત્યાર સુધીની આપણી સઘળી ચર્ચા જૈનોના પવિત્ર ગ્રંથોમાંથી ઉપલબ્ધ થતી પરંપરાગત કથાઓની પ્રામાણિકતા ઉપર જ ચાલેલી છે. પરંતુ એક અતિશય વિશાળ જ્ઞાનવાળા અને કુશલ વિચારક વિદ્વાને એ પ્રામાણિકતાના સંશ્લેષમાં જ શંકા કરેલી છે. એ વિદ્વાન તે મી. બાર્થ (Barth) છે. તે પોતાના *Revue de l'Histoire des Religions*, Vol. III, p. 90. માં નાતુત્ત નામની એક ઐતિહાસિક વ્યક્તિનો સ્વીકાર કરે છે સરો, પરંતુ જૈનોના પવિ-

ત્ર ગ્રંથો, જેનું ૬૦૦ સંખ્યા પાંચમી શદીમાં,—પટ્ટલેકે એ સંપ્રદાયની સ્થાપના થયા પછી લગભગ એક હજાર જેટલાં વર્ષો વ્યતીત થયાં બાદ, લખાયા હોવાથી તેના આધાર કોઈ પણ સચ્ચ અનુમાન કરી શકવાના સંશ્લેષમાં તે મોટી શંકા ધરાવે છે. જૈન-ધર્મના સંશ્લેષમાં તેનો પયો અભિપ્રાય છે કે એ સંપ્રદાયના, તે પ્રાચીન કાળથી લઈ પુસ્તકો લખાતા સુધીના સમય સુધીના, સ્વસંવેદિત અને સતત એવા અસ્તિત્વનો—અર્થાત્ તેના ખાસ ખાસ સિદ્ધાન્તો અને નોંધોની નિરંતર પરપરાનો—હજી સુધી નિર્ણયાત્મક રીતે નિકાલ થયો નથી. ઘડી તે જણાવે છે કે ‘ઘણી શદીઓ સુધી તો જૈનો, તેમના જેવા ઘીજા અનેક સંન્યાસિયોનાં કે જે કપત્ત અપ્રસિદ્ધ અને અસ્થિરરૂપે પોતાનું જીવન ગાળતા હતા તેઓથી ભિન્નરૂપે ઓળખાયાજ ન હોતા.’ તેથી મિ. બાર્થના અભિપ્રાય મુજબ જૈનોની સાંપ્રદાયિક પરંપરાઓ તે માત્ર યૌદ્ધ પરંપરાઓના અનુકરણરૂપે, તેમણે પોતાનાં અસ્પષ્ટ અને ધાનિશ્ચિત સ્મરણોમાંથી ઉપજાવી કાઢેલી છે.

મિ. બાર્થનો આ મત એવા અનુમાન ઉપર સ્થિર થયેલો માલુમ પડે છે કે જૈનો પોતાનું પવિત્ર જ્ઞાન એક વેદિથી ઘીજી વેદિને આપવામાં વળાજ બેદર-કાર રહ્યા હતા; અને તેમ રહેવામાં કારણ એ છે કે તે ઘણી શદીઓ સુધી માત્ર એક નાનો અને અનુપયોગી સંપ્રદાય હતો મિ. બાર્થની આ દલીલમાં હું કોઈ પ્રકારનું ઘડન જોઈ શકતો નથી. હું અહીં એ પ્રશ્ન પૂછું છું કે—જે ધર્મ પોતાના થોડાક અનુયાયિઓ વડે એક મોટા પ્રદેશ ઉપર પથરાયેલો હોય તે ધર્મ પોતાના મૌલિક સિદ્ધાન્તો અને પરંપરાઓને વધારે સુરક્ષિત રાખી શકે છે, કે જે ધર્મને એક મોટા જનસમૂહની ધાર્મિક જરૂરિયાતો પૂરી પાડવાની હોય છે તે? આ એવાની કઈ વાચક વધારે સંમતિ છે? જો કે એકંદર રીતે આ પ્રકારની હેતુ-ભાસાત્મક તર્કપદ્ધતિથી આવા પ્રશ્નનો નિર્ણય થયો તો અશ્વનય જ છે. ઉપર્યુકત બે પક્ષોના પ્રથમ પક્ષમાં યાદુવી તથા પારસીઓનું ઉદાહરણ રજુ કરી શકાય છે અને બીજા પક્ષમાં રોમનકેથોલિક ધર્મનો લાક્ષણિક આપી શકાય છે. પરંતુ જૈનો સંશ્લેષી પ્રસ્તુત પ્રદનના વાદવિવાદનો નિર્ણય કરવામાં આવી

જાતના સામાન્ય સિદ્ધાન્તો ઉપર આધાર રાખવાની કોઈ આવશ્યકતા નથી. કારણ કે તેઓને (જૈનોને) પોતાના સિદ્ધાન્તોનું પટલું થઈ સ્પષ્ટ જ્ઞાન હવું કે તેઓએ ઘણીજ નજીવી વાચતમાં મતભેદ ધરાવનાર પુરુષોને પણ નિહ્વરૂપે જાહેર કરી, પોતાના અશ્વ-લુઓના વિગ્રાલ સમુદાયમાંથી તેમને જુદા કરી દીધા હતા. આ કથનની સત્યતાના પ્રમાણ તરીકે ડૉ. લ્યુમને (Dr. Leumann) પ્રકટ કરેલી શ્વેતાશ્વર સંપ્રદાયની સાત નિન્દવો વિષેની પરપરા^૧ છે. તથા વિગમ્મરો, જે શ્વેતાશ્વરોથી મહાશ્વર નિર્વાણ પછી પ્રાયઃ યીજી અથવા વીજી જાતશ્વિમાં, જુદા પડ્યા હતા, તેઓ કોઈ તેમના પ્રતિસ્પર્ધિઓ (શ્વેતાશ્વરો) થી તાર્કિક સિદ્ધાન્તોમાં મોટો મતભેદ ધરાવતા નથી છતાં પણ આચારવિષયક તેમના કેટલાક મિત્ર નિષ્મોન લીધે, શ્વેતાશ્વરોએ તેમને પાણ્ડિઓના નામે ઘમોડ્યા છે.

આ સપછી હકીકતો ઉપગ્રંથી આ વાચત રૂપ રીતે સિદ્ધ થાય છે કે જૈન આગમો [તુંહાલનું સ્વરૂપ] નક્કી થયાં પહેલાં પણ જૈનધર્મ એવા અન્યથ-સ્થિત અથવા અનિર્વિણ્ણ સ્વરૂપમાં વિद्यમાન ન હતો, કે જેથી, તેનાથી અત્યંત મિત્ર એવા અન્યધર્મો (દર્શનો) ના સિદ્ધાન્તો દ્વારા તેનું અસલ સ્વરૂપ પરિણતિત અગર કલુપિત થયું હતું, એમ માનવાને આવ પાળે. એમ તો સિદ્ધ કરી આવે છે. સર્ગ કે તેમની સૂત્રમાં સૂઝ માન્યતા પણ સુનિશ્ચિત સ્વરૂપવાળી હતી.

જેવી રીતે જૈનોના ધાર્મિકસિદ્ધાન્તોની વાચતો આ રૂપે સિદ્ધ થઈ શકે છે તેવીજ રીતે તેમની પૈતિ-હાસિક પરંપરાવિષયક વાચતો પણ સિદ્ધ થઈ શકે તેવી છે. વંશપરંપરાથી ચાલતી આવતી જે વિવિધ ગચ્છોની વિસ્તારયુક્ત ગુરવિલીઓ મઠી આવે છે તથા જૈન આગમપ્રયોમાં જે સ્થવિરાવલીઓ ઉપલ-બ્ધ થાય છે તે સ્પષ્ટ યતાવી આવે છે કે જૈનો પોતાના ધર્મનો ઇતિહાસ રાજવામાં કેટલો ઘણો રસ ધરાવતા હતા હું એમ કોઈ ચોક્કસ

નથી કહેતાં કે આવી સુર્યાવલીઓ પાછ-લ્લથી પણ જોડી કઢાતી નથી કે અપૂર્ણ પટ્ટા-વલીઓને પૂર્ણ, પટલે હિંદુઓના શન્દમાં કહીએ તો 'પક્ષી' બનાવી શકાતી નથી. કારણ કે દરેક સં-પ્રદાયને, પોતાનો સંપ્રદાય એક પ્રતિષ્ઠિત આત્મપુષ્પ-થી પ્રામાણિકરીતે ઉતરી આવેલી છે, એમ યતાવવા જાતર પોતાનાં મુશ્કરંપરના નામો ઉપજાવી કાઢ-વાની સ્વાભાવિક રીતેજ જરૂર પડે છે પરંતુ કલ્પ-સૂત્રમાં જે એક, સ્થવિરો, ગણી અને શાસ્ત્રાગોની વિસ્ત-ત નામાવલી આપેલી છે તેને કલ્પી કાઢવામાં જૈનોને કોઈ પણ પ્રકારનું પ્રયોજન હોય તેમજ માર્ગી શકતો નથી કલ્પસૂત્રમાં જેટલી ધિગતો આપેલી છે તેટલી પણ ધિગતાનું જ્ઞાન ત્યાર પછીના જૈનોને રહ્યું ન હતું. તેમ તેથી અધિક જાણવાનો તેઓએ ક્યારે ડોઢ પણ કર્યો ન હતો મુશ્કરંપરાનો નોંધવોગ્ય ઘણો અ-વહાર ચલાવ્યા માટે કલ્પસૂત્રમાં આપેલી સંક્ષિપ્ત સ્થવિરાવલી પર્યાપ્તજ હતી તેમ છતાં પણ તેમાં આવેલી વિસ્તૃત સ્થવિરાવલી—કે જેમાં પણ કેટ-લાંક તો એકલાં નામોજ જોવામાં આવે છે—તે એ પ્રા-વત સ્પષ્ટરીતે જણાવે છે કે જૈનો પોતાના પ્રાચીન ધર્માચાર્યો-સ્થવિરોની શાદગિરી રાજવામાં કેટલો ઘણો રસ ધરાવતા હતા. તે સ્થવિરાવલીમાં આલે-સેલા યુગો તથા યતાઓની યથાર્થ માહિતી તેના પછી થોડોક જ શદ્દોમાં નહ થઈ गई હતી.

પરંતુ, માત્ર આટલું સિદ્ધ કરી યતાવવાથી કે જૈનો તેમના આગમોનું સ્વરૂપ નક્કી થયા પહેલાં પણ પોતાના ધર્મ તથા સંપ્રદાયને સતત ચાહુ રા-વવા માટે, તેમ જ અન્યદર્શનોથી સિદ્ધાન્તોના સં-મિશ્રણયોગે ઉત્પદ્ય થતાં ભ્રષ્ટતાથી તેને ધવાચી સુર-ક્ષિત રાખવા માટે યોગ્ય મુશ્કરંપર હતા; આપણે આ વિષયમાં કૃતકાર્ય થઈ શકતા નથી. આપણે એ પણ યતાવી દેવું જરૂરનું છે કે તેઓમાં જે જે વાચત કરી શકવાનું સામર્થ્ય હતું તે સપછી તેમણે સંપૂર્ણ-રીતે કર્યું હતું. આ ચર્ચા ઉપરથી આપણે સ્વાભા-વિકરીતે જ વર્તમાન જૈનસાહિત્યના કાલની ચર્ચા ઉપર આવી જઈએ છીએ. આ વિષયમાં જો આપણે આટલું સિદ્ધ કરી શકીએ કે જૈન સાહિત્ય અથવા તો છેવટે તે પૈકી જે કેટલાક સીધી પ્રાચીન પ્રયો

^૧ See Indische Studien, XVI.

© See Dr. Klatt, Ind Ant. Val. XI.

છે, તે જૈન પુસ્તકારાહણના સમયથી ઘણી શદ્દોથી પહેલાં રચાઈ હતા, તો તે દ્વારા આપણે જૈનોના (અંતિમ) તીર્થંકર અને પ્રાચીનમાં પ્રાચીન યંથો પ વચ્ચે વચ્ચેના ગાઢાને, જો કે સર્વથા દૂર નહીં કરી શકીએ તો પણ ઘણે અંશે ઓળખ કરી આપવા સમર્થ થઈ શકીશું.

સર્વસંમત સંપ્રદાયની અનુસાર જૈનસિદ્ધાન્ત ઘલ-ભિન્ની સભામાં દેવધર્મગણીના અધ્યક્ષપણાનાં, નિ-શ્ચિત કરવામાં આવ્યો હતો આ યનાય ધાર નિર્ણય પછી ૫૮૦ (અથવા ૯૯૩) માં વર્ષે પટલે ૬૦ સં ૪૫૪ (અગર ૪૬૭) માં વર્ષો હતા, એમ કલ્પસૂત્ર [§ ૧૪૮] ઉપરથી જણાય છે સંપ્રદાય વચ્ચે છે કે ઉચારે દેવધર્મગણી સિદ્ધાન્તને નષ્ટ થઈ જવાના જો-ખમમાં જોયો ત્યારે તેમણે તેને પુસ્તકાધિકૃત કરા-વ્યો તેની પહેલાં, આચાર્યો ઘણાકોને નિઃશ્ચિન્ત શીલ્પવર્તી યજ્ઞતે લિખિત પ્રથોના ઘિલકુલ ઉપયોગ કરતાં ન હતા દેવધર્મગણીના સમય પછી જ લિખિ-ત પુસ્તકોનો ઉપયોગ શરૂ થયો. આ હકીકત તદ્દન સાચી છે કારણ કે પ્રાચીન સમયમાં પુસ્તકોનો ઘિલકુલ ઉપયોગ થતો ન હતો એમ આપણને યીજી હકીકતો ઉપરથી પણ જણાઈ આવે છે ગ્રાહ્યો તો લિખિત પુસ્તક કરતાં પોતાની સ્મરણશક્તિ ઉપર જ વિશેષ આધાર રાખતા હતા અને નિ સંવેહરિતે જૈનોએ તેમજ થોડોએ તેમની જ આ પ્રથાનું, અનુકરણ કર્યું હતું પરંતુ અન્યારે જૈનયતિઓ પો-તાના શિષ્યોને શાસ્ત્ર શીલ્પવર્તી યજ્ઞતે લિખિત પુસ્તકોનો ઉપયોગ અવશ્ય કરે છે આ ઉપરથી આપણે માન્ય પડે છે કે શિક્ષણ પદ્ધતિમાં થયેલો આ ફેરફાર દેવધર્મગણીને આભારી છે, એમ થતાય નારો ઘુઘુ સંપ્રદાય તદ્દન સાચો છે કારણ કે આ યનાય ઘણું મહત્વનો હોવાથી સુલી શકાય તેમ નથી પ્રત્યેક આચાર્યને અથવા તો છેવટે પ્રત્યેક ઉપાશ્રયને આ પવિત્ર આગમોની નકલો પૂરી પાડવા માટે દેવધર્મગણીને સિદ્ધાન્તના પુસ્તકોની સંરેખર

૧ સમાવિત ન લાગતું હોવા છતાં એ જાણ્યું છે કે સિદ્ધા-ન્તનિર્ણયના સમય આ કરતાં ૬૦ વર્ષ પછી પટલે ૬ સ. ૫૧૪ (અથવા ૫૨૭) હોવો જોઈએ જુઓ ૪૪૫૫૫, ડો-વ્યાત પ ૧૭.

ઘણી મોટી સંખ્યા તૈયાર કરાવવી પડી હશે હવે દેવધર્મગણી સિદ્ધાન્તને પુસ્તકાન્ત કરાવ્યો એવો જે લેખી સંપ્રદાય મળે છે તેનો ભાવાર્થ પ્રાય-ઉપર પ્રમાણેનો જ હોવો જોઈએ કારણ કે પતો ભાગ્યે જ માની શકાય તેવું છે કે તેની પહેલાં જૈન સાધુઓ જે કાંઈ કંઠસ્થ કરતા હશે તેને સર્વથા નજ લખ્યત: હોય. ગ્રાહ્યો વેદનું અધ્યયન કરાવ-વામાં લિખિત પુસ્તકોનો ઉપયોગ કરતા નથી છતાં પણ તેમની પાસે તેમાં પુસ્તકો તો જરૂર જોવામાં આવે છે તેઓ (ગ્રાહ્યો) આ પુસ્તકોને જ્ઞાની ઉપયોગ માટે પટલે કે મુરતી સ્મરણશક્તિને મદત કરવા માટે રાખે છે. મારું દૃઢ માન્ય છે કે જૈનો પણ આ જ પદ્ધતિને અનુસરતા હશે ઘલ્લે તેઓ ગ્રાહ્યોથી પણ વધારે આ પદ્ધતિનું અનુસરણ કર-તા હશે, કેમકે ગ્રાહ્યોની માફક તેઓનું એવું માન્યુ વો હતું જ નહીં કે લિખિત પુસ્તકો અવિશ્વ-સ્ય છે. તેઓ તો માત્ર જે એક પ્રચલિત રિવાજ હતો, કે આગમન જ્ઞાન મૌખિકરિતે જ એક પેઢી દ્વારા યીજી પેઢીને અપાયું જોઈએ, તેને લઈને જ લિ-ખિત પ્રયોનો વિશેષ ઉપયોગ કરવામાં સંકોચાતા હતા. હું અહીં એમ પ્રતિપાદન કરવા ઇચ્છતો નથી કે જૈનોના પવિત્ર આગમો અસલથી જ હુદ્દા છવાયા પણ આવી રીતે, પુસ્તકોમાં લખેલા જ હતા અને એમ ન કહેવાનું વાસ્તવ કારણ યીજી કાંઈ નહીં, પરંતુ બૌદ્ધ ભિક્ષુઓ પાસે લિખિત પુસ્તકો ન હતાં એમ જે કહેવાય છે તેજ છે બૌદ્ધ ભિક્ષુઓ પાસે આવાં પુસ્તકો નહતાં તેના પ્રમાણ તરીકે એવું કહેવામાં આવે છે કે તેમનાં સૂત્રોમાં, ઉચારે પ્રત્યેક જગમવસ્તુ થી લઈને નાનામાં નાની અને હુદ્દમાં હુદ્દ પર્વો ઘરમાં વાપરવા લાયક વાસણો જેવી વીજોનો પણ કોઈ ને કોઈ રીતે પહેલ થયેલો અવશ્ય જડે છે ત્યારે લિખિત પુસ્તકોને કયાં પ-પણ ઘિલકુલ ઉદ્દેશ થયેલો જોવામાં આવતો નથી આ કથન, મારા મા-નના પ્રમાણે, જ્યાં સુધી જૈન યતિઓ, ધ્રમણશીલ જીવન ગુજારતા હતા ત્યાં સુધી તેમને પણ લાગુ પડે તેવું છે પરંતુ વ્યારથી તેઓ પોતાના તાવાના

अथवा पोताना माटे बनावेला उपाश्रयोमां रहेवा लाग्या त्पारथी तेओ पोतानां हस्तलिखित पुस्तको पण अत्यारनां माफक, राखया लाग्या हता.

आ दृष्टि, जोंतां, देवधिगणीनो जैन आगमसाहित्यसाधेनो संबध, साधारणरीते जेम मनाय छे, तेनाथी कोई विलक्षण प्रकारनो होय तेम जणाय छे तेमणे वस्तुतः तेमनी पहेलां अस्तित्वधरायता हस्तलिखित ग्रंथाने सिद्धान्तना आकारमां गोठवी दीधा हता. अने तेम करती वखते जे जे सूत्रो-आगमोना हस्तलिखित ग्रंथो उपलब्ध थया न होता, ते सधला तेमणे विद्वान् भ्रमांचायोना मुखेची लागी लीधा हता

पछी, आयी राते 'पारमिक शिक्षणपद्धतिमां शास्त्र थपला आ नवा फेरफारने लीधे पुस्तको एक अत्यावश्यक साधनरूप थई पडेलां होधाथी प्रत्येक उपाश्रयने ए आगमग्रंथोनी नकलो पूरी पाड्या माटे तेनां धनी नकलो करावचामां आयी हशे आ राते जोंतां देवधिगणीनी सिद्धान्तनी आवृत्ति ते, तेमनी पहेलां अस्तित्व धरायता पवित्र सिद्धान्तग्रंथोनोलगभग प्राचीन ज आकारमां निर्णीत करेले एक नवो पाठमात्र छे आ आवृत्तिकारे, समथ छे के, प्राचीन सिद्धान्तमां कोईक कोईक उमेरा कर्या हशे परंतु साटला उपरथी सपूर्ण सिद्धान्त नवो बनावचामां आव्यो छे एम तो खरेबर नज कही शक्य. आ अ-निम आवृत्तिमां निर्णीत थपला पाठनी पूर्वोनो सिद्धां पाठ पण केवल यतिओनी स्मरणशक्तिना आधारे ज लज्जवामां अवता पाठ जेवो अध्ययस्थित न हतो परंतु ते पाठ हस्तलिखित प्रतिओ साथे मेलवेलो हतो

साटलुं विवेचन कर्या बाद हवे आपणे जैनोना पवित्र आगमोनी रचनानो समयावपयक विचार करीए. सपूर्ण आगमशास्त्र प्रथम तीर्थंकरनु ज प्ररूपेल छे ए जातना जैनोना विचारनुं तो निराकरण करवा खातरज हु अहाँ सूचन करू छ सिद्धान्तना मुख्य ग्रंथोनो समय नको करवा माटे आपणे आना करतां वधारे सारां प्रमाणो-पुरावावो एकर करवा जोईए. छूटक अने असबद्ध सूत्रालांको गमे त्पारे आगमग्रंथोमां दाखल थई गया होय तथा देवधिगणीए पण भले तेने पोतानी आ

वृत्तिमां स्वीकारी लीधा होय. पण तेडला उपरथी आपणे कोई प्रकारनुं सवल अनुमान काडी शक्तीए नहीं. हुं म्लेच्छ अथवा अनार्य जातिओनी^१ जे यादीओ ए सूत्रोमां मली आवे छे ते उपर वधारे वजन मुकी शकतो नथी. तेमज साते निहनुओ, के जेमांनो छेलो धीरनिर्वाण पछी ५८४ वर्षे धयो^२ हतो. तेना उल्लेख उपरथी पण कोई अनुमान काडी शक्य नहीं आवा प्रजापती विगतोना संबधमां जो एम मानचामां आवे के जे आचार्यो पोतानी शिष्यपरंपराने पेढी दरपेदीए लिखित या कथित रूपे सिद्धान्तपाठ सोंपता गया हता, तेओए ते (विगतो) ने सिद्धान्तनी दीका टिप्पणी-रूपे अगर तो मुळ सुडामां पण दाखल करी दीधी हती तो नेमां कोई अस्वाभाविकता जेवु नथी. परंतु सिद्धान्तमां एक महत्त्ववाळी बाबत ए जणाय छे के तेमां कोई पण स्थले प्रीक लोकोना जगो-ल्लाखनी गंध सरली जोवामां आवती नथी कारण के जैन ज्योतिषशास्त्र ते, वास्तविकमां, एक अर्थरहित अने अर्थदेय कल्पना मात्र छे तेथी आपणे एम अनुमान करी शक्तीए छीए छे के जैन ज्योतिषशास्त्रकारोने प्रीक जातिना जगोळ शास्त्रनी स्वेज पण माहोती होत तो तेवु असम्भव तेओ जरूर न लखत. हिन्दुस्थानमां प्रीसनुं आ शास्त्र ई.स नी बीजी अगर बोथी शताब्दिमां दाखल थयु हतुं एम मनाय छे आ उपरथी आपणे ए रहस्य काडी शक्तीए छीए के जैनोना पवित्र आगमो सि समयनी पहेलां रचायां हतां.

जैन आगमोनी रचनाना समयानिर्णयमाटे धीउं प्रमाण ते तेनी भाषा विषयक छे. परंतु, कमनसीधे हजी सुधी ए प्रश्ननु स्पष्ट निराकरण थयुं नथी के जैनोना, जे भाषामां अत्यारे आपणने उपलब्ध थाय छे ते ज तेनी मूलभाषा छे

१ अनार्य जातिओमांनो 'आरव' शब्द ते, नेबरना पारवा प्रमाणे, कदाच 'आरभ' वाचन बने, परंतु मारा मानवा प्रमाणे ते शब्द 'तामिलो' नो वाचक छे. कारण के तामिलोनी भाषाने द्रविडीयन लोको अरबमु कहे छे

२. See Weber Indische Studien, XVI, P. 237.

અર્થાત્ તે ભાષામાં સૌથી પ્રથમ તેની સંકલ્પતા થઈ હતી તેજ ભાષામાં અત્યારે આપણને ઉપલબ્ધ થાય છે, કે પાછલથી, પેઢાં દરપેઢાંએ ને તે કાલ્પની સ્થિતિ (પ્રચલિત) આપાનસાર તેમાં ઉચ્ચારણ-પરિવર્તન થતાં થતાં છેક દેવધિગણીના નર્વાન સંસ્કરણ વખતની ચાલુ ભાષાના ઉચ્ચારણ પર્યંતની ભાષાથી મિશ્રિત થયેલા આજે મળે છે? આ વ્યવહારુપણાંને મને તો થોડો જ વિકલ્પ સ્વીકરણીય લાગે છે. કારણ કે એ આગમોની પ્રાચીન ભાષાને ચાલુ ભાષાની રૂઢિમાં ફેરવવાનો ઘટીવડ છેક દેવધિગણી સુધી ચાલુ રહ્યો હતો અને એ દેવધિગણીના સંસ્કરણ જ તે ઘટીવડનો અંત આણ્યો હતો, એમ માનવાને આપણને કારણો મળે છે. જૈન પ્રાકૃત ભાષામાં સ્વરૂપસંગત ઘર્ણવિન્યાસનો જે અભાવ દૃષ્ટિગોચર થાય છે તેનું પ્રાર્ણ, જે લોકભાષામાં (Vernacular Language) તે યવિત્ર આગમો હમેશાં ઉચ્ચારાઈ રહ્યા હતા, તે ભાષામાં નિરતર થતું રહેલુ ક્રમિક પરિવર્તન જ છે. જૈન-સૂત્રોની સઘળી પ્રતિઓમાં એક શબ્દ એકજ રીતે લખેલો જોવામાં આવતો નથી. આ ઘર્ણવિન્યાસ-વિષયક વિમિશ્રતાનાં મુખ્ય કારણોમાંનું એક કારણ તો એ સ્વરો વચ્ચે ધાર્ધતા અસંયુક્ત ધ્વજનનો પ્રકૃતિભાવ (તદ્વસ્થ રાક્ષસારૂપ), હોપ, કે મૃદુકરણ ધવારૂપ છે; અને ધીનું કારણ એ સંયુક્ત ધ્વજનોનાં પૂર્વેના વ અને ઓ ને તદ્વસ્થ પડેલે કાયમ રાક્ષસારૂપ અથવા તેને ક્રમથી ઇ અને ઊ ના રૂપમાં પરિવર્તિત કરવા (હયુકરણ) રૂપ છે એ તો અશક્ય જ છે કે એકજ શબ્દના એકજ સમયમાં એકથી વધારે શુદ્ધ ગણાવા લાયક ઉચ્ચારો હોઈ શકે. ઉદાહરણ તરીકે-મૂન, મૂય, ઉદય, ઉદય અને અબય; લોમ, લોહ, હ્ય્યાદિ. આપણે આ પ્રકારની જુદી જુદી છે. જન પદ્ધતિઓને પૈતિહાસિક લેખનપદ્ધતિઓ માનવી જોડે પડેલે કે દેવધિગણીવાડા સિદ્ધાન્તસંસ્કર-

૧ હું એમ નથી કહેતો કે કોઈ પણ શબ્દનાં એક કાલમાં એ રૂપો જ ન હોઈ શકે અને રૂપોવાડા ઘણાં શબ્દો યથા હશે. પરંતુ પ્રાયઃ પ્રત્યેક શબ્દના ચલ્લે પ્રણ પ્રણ રૂપો એક સાથે પ્રચલિત રહેવાની વાતમાં મને જરૂર શંકા રહે છે.

રણમાં સાદાચર્યમૂત ચનેલી વધી હસ્તલિખિત પ્રતિઓમાં જે જે મિશ્ર મિશ્ર લેખનપદ્ધતિઓ મળી આવતી હતી તે વધી પ્રામાણિક માનવામાં આવે હતી અને તેથી તે સઘળી પદ્ધતિઓને એ સૂત્રનો નકલોમાં રાચથી રાક્ષસારૂપમાં આવી હતી. આ વિચાર જે યુક્તિયુક્ત જણાતો હોય તો, આપણે, સૌથી પ્રાચીન અને રૂઢિવદિપ્ત લેખનપદ્ધતિને આગમરચનાના આદિ સમયની અથવા તો તેના નિકટ સમયની ઉચ્ચારસૂચક માની શકીએ અને સૌથી અર્વાચીત લેખનશૈલીને સિદ્ધાન્તના અંતિમ સંસ્કરણના સમયની અગર તેની નજીકના સમયની ઉચ્ચારશ્દ્યક માની શકીએ. વળી સૌથી પ્રાચીનરૂપમાં ઉપલબ્ધ થતી જૈન પ્રાકૃત ભાષાને, પાલી તથા હાલ, સેતુચન્ધ વિંગેરેની (પાછલા સમયની) પ્રાકૃત સાથે જો આપણે સરખાવીશું તો આપણને સ્પષ્ટ જણાશે કે જૈન પ્રાકૃત એ પાછલની પ્રાકૃત કરતાં પાછોને ઘણે મળતી આવે છે. આ ઉપરથી આપણે એવા નિર્ણય ઉપર આવી શકીએ છીએ કે કાલગણનાની દૃષ્ટિએ પણ જૈનોના આગમો, ત્યાર પછીના સમયમાં થયેલા પ્રાકૃત પ્રંથકારોના પ્રંથો કરતાં દક્ષિણના શૌરસુત્રો [ના રચના સમય] સાથે ઘણે સમીપતા ધરાવે છે.

પરંતુ, આપણે જૈન આગમોની રચનાના સમયની મર્યાદા, તેમાં પ્રયોજાયા છંદોની મદદથી, આથી પણ ઘણે નિશ્ચિતરોતે આંકી શકીએ તેમ છીએ. હું

૧. કોઈ અહીં એવી દલીલ કરી શકે છે કે આવી આર્થ પડેલે સ્થિતિ હેતુત લેખનપદ્ધતિના અસ્તિત્વનું કાળ માત્ર સંસ્કૃત ભાષાનો અસર છે. પરંતુ જૈનોનું પ્રાકૃત-મ વર્ણુ માત્ર હમેશાં એટલું ચર્ણુ સંગીન રહ્યું હતું કે એથી તેમને પોતાના આગમોને સમજવા માટે સંસ્કૃતની સહાયતા લેવી જ પડતી નહોતી કે એથી તેની તેના ઉપર ઘણું પડે. પરંતુ આથી ઉલટું, જૈનોના સંસ્કૃત પ્રંથોની પ્રતિઓમાં પ્રાકૃત શબ્દો જેવા લસેલા ઘણા શબ્દો મળી આવે છે. ઉપર પ્રમાણે યાત્રાતો પણ કેટલીક જોડણીઓ તો એવી મળી આવે છે કે જેને સંસ્કૃતીકરણની દૃષ્ટિએ પણ સમજાવી શકાય તેમ નથી. - ઉ ત. દારયને વડેલે મળતું દારગ એવું રૂપ હશે. આ શબ્દનું સંસ્કૃત પ્રતિરૂપ 'દારક' થાય છે પરંતુ 'દારગ' એવું થતું નથી.

આચારાંગ અને સૂત્રરૂતાંગ સૂત્રના પ્રથમ સ્કંધોને, સિદ્ધાન્તના સૌથી પ્રાચીન ભાગ તરીકે માનું છું. અને મારા આ અનુમાનના પ્રમાણ તરીકે હું આ ચે પ્રંધોની (સ્કંધોની) શૈલી વતાવીશ. સૂત્રરૂતાંગ સૂત્રનું આનું પ્રથમ અધ્યયન, વૈતાલીય વૃત્તમાં રચા-પણું છે આ વૃત્ત ધમ્મપદ આદિ દક્ષિણના અન્ય બૌદ્ધ ગ્રંથોમાં પણ વપરાયેલો જોવામાં આવે છે પરંતુ પાલીસૂત્રોનાં પયોમાં પ્રયોજાયેલો વૈતાલીય વૃત્ત, તે, સૂત્રરૂતાંગ સૂત્રના પયોમાં મઠ્ઠી આવતા વૈતાલીય વૃત્તની દૃષ્ટિ જોતાં, વૃત્તના વિકાસ ક્રમના પ્રાચીન સ્વરૂપનો થોડક છે આ વાવતમાં હું અહીં વધારે ન લખતાં. થોડાજ સમયમાં જર્મન ઓરિઅંટલ સોસાઈટીના જર્નલમાં, ' વેદની પછીના કાલના છવો ' (' Post-Vedic Metres ') એ મથાલ્લા નીચે પ્રકટ થનારા મારા લેખમાં વિસ્તૃતરી-તે ચર્ચવા હતું છે. સંસ્કૃત સાહિત્યના સામાન્ય વૈતાલીય [વૃત્તના] શ્લોકો, કે જેમાંના કેટલાક લલિતવિસ્તરામાં પણ મઠ્ઠી આવે છે, તેની સાથે મુકાબલો કરી જોતાં, સૂત્રરૂતાંગનો વૈતાલીય વૃત્ત તેથી વધારે પ્રાચીન રૂપનો જણાય છે વઠી એ થાવત પણ અહીં લક્ષ્યમાં લેવા લાયક છે કે પ્રાચી-ન પાલીસાહિત્યમાં આર્યાવૃત્તમાં ગુથેલાં પયો મઠ્ઠી આવતાં નથી; ધમ્મપદમાં તો તે સર્વથા નથી જ. તેમ અન્ય બૌદ્ધ ગ્રંથોમાં પણ તેવાં પયો મારા જોવા-માં આવ્યાં નથી. પરંતુ, આચારાંગ અને સૂત્રરૂતાંગ સૂત્રોમાં તો એક એક સંપૂર્ણ અધ્યયન આર્યાવૃત્તમાં લખેલું મઠ્ઠી આવે છે. આ આર્યાવૃત્ત, સામાન્ય [રીતે ઓલખાતા] આર્યાવૃત્તથી સ્પષ્ટ રીતે પ્રાચીન તથા તેનો જનક સ્વરૂપ દેખાય છે સામાન્ય આ-ર્યાવૃત્ત તે, સિદ્ધાન્તના ચારે અર્વાચીન ભાગોમાં, તથા પ્રાકૃત અને સંસ્કૃત માપાના બ્રાહ્મણ ગ્રંથોમાં અને લલિતવિસ્તરાદિ જેવા ઉત્તરના બૌદ્ધ ગ્રંથોમાં પણ નજરે પડે છે પ્રાચીન જૈનગ્રંથોમાં પ્રયોજાયેલો ત્રિષ્પુ શ્દ પણ પાલી ગ્રંથોમાં મઠ્ઠી આવતા તે હંદ કરતાં અર્વાચીન રૂપનો અને લલિ-તવિસ્તરામાં કરતાં પ્રાચીનરૂપનો છે. અંતે, લ-લિતવિસ્તરાદિ ગ્રંથોમાં જોવામાં આવતા આ સિવા-યાના ધીજા અનેક પ્રકારના કૃત્રિમ વૃત્તો—જેમાંનો એક પણ વૃત્ત જૈનસિદ્ધાન્તમાં જડી આવતો નથી—

ઉપરથી એમ સિદ્ધ થતું હોય તેમ જણાય છે કે આ પ્રકારના અર્વાચીન ગ્રંથોની રચનાના સમય પૂર્વે જૈનોની સાહિત્ય વિષયક અભિદ્ષિ નિશ્ચિત થયેલી હતી. આ સઘટી વાવતો ઉપરથી આપણે એવો નિર્ણય કરી શકીએ છીએ કે, જૈનોના સૌથી પ્રાચીન સાહિત્યની સમયમર્યાદા પાલી સાહિત્ય અને લલિતવિસ્તરા એ ઉભયના રચનાકાલની વચ્ચે નિશ્ચિત થાય છે. પાલી પિટકોનું પુસ્તકાધિરોહણ (અર્થાત્ પુસ્તકરૂપે લખાણ) વટ્ટમામણિ-જેને ઈ. સ. પૂર્વે ૮૮ વર્ષે પોતાનું રાજ્યશાસન શરૂ કર્યું હતું તેના સમયમાં થયું હતું. જો કે આ સમયથી કેટલી-ક શદ્ધો પૂર્વે પણ તે પિટકો અસ્તિત્વે તો ધરાવતાં હતાં જ. આ વિષયની ચર્ચા કરતાં છેડેડે પ્રો મેક્સ-મૂલરે નીચે પ્રમાણેના વિચારો જણાવ્યા છે ' લે-ટલા માટે, મારા વિચાર પ્રમાણે, અત્યારે તો આપણે બૌદ્ધ સૂત્રોના અર્વાચીનમાં અર્વાચીન રચના-સમય તરીકે ઈ. સ. પૂર્વે ૩૭૭ માં ધર્મને, નિર્ણાત કરી, સંતોષ માનવો જોઈએ, કે જે સમયે દ્વિતીય સંશિ-તિ મઠ્ઠી હતી ' ત્યાર બાદ પણ એ પાલી સૂત્રોમાં ડમેરા તથા ફેરફારો થયા હોય એ અસભવિત નથી. પરંતુ આપણી પ્રસ્તુત વ્હીલ ધમ્મપદના કોઈ એકાદ ફકરાકે ભાગને આધારે ડમી થયેલી ન હોઈ, તેમાં તથા અન્ય પાલીગ્રંથોમાં મઠ્ઠી આવતા વિ-વિધ હંદો ઉપરથી તારવી કઢાતા શ્દ:શાસ્ત્રના નિયમોના પાયા ઉપર સ્થાપિત કરવામાં આવે હી છે તેથી, એ ગ્રંથોમાં શાકલ થયેલા ડમેરા થા ફેરફારોથી, અમારા એ નિર્ણયને-કે સમસ્ત જૈન સિદ્ધાન્ત સાહિત્ય ઈ. સ. પૂર્વે ત્રીજી શતાબ્દિ વાદ રચાયેલું છે,—તેને કોઈ પણ પ્રકારની હાગિ પહોંચી શકતી નથી.

આપણે ઉપર જોઈ ગયા કે જૈનસિદ્ધાન્તનો સૌથી પ્રાચીન વિભાગ લલિતવિસ્તરાની ગાદાશ્રોથી અધિક જૂનો છે. આ ગ્રંથ (લલિતવિસ્તરા) ના વિષયમાં પહેલું કહેવાય છે કે તેનો ઈ. સ. ૬૫ માં ચીની ભાષામાં અનુવાદ થયો હતો. આ ઉપરથી વર્તમાન જૈન સાહિત્યની ઉત્પત્તિનો સમય ઈ. સ.

ની શરૂઆત પહેલાં માનવો જોઈએ. ઘડી દક્ષિણ અને ઉત્તરના પચાત્મક યૌદ્ધ પ્રયોગોની છન્દ્ર અને મા-પાશૈલી વિષયક વિશિષ્ટતાઓના પ્રાચીનતમ પચાત્મક જૈન સિદ્ધાન્તોમાં મઢી આવતા અલ્પ યા અધિકાંશ સામ્યદ્વારા, આપણે જો, આ વે સીમાઓ વચ્ચે આવેલા પ્રસ્તુત વિવાદાસ્પદ સમયના કાલવિષયક અંતરનો ચિત્તાર કરીએ છીએ તો જૈન સાહિત્યની શરૂઆતનો સમય, ઉત્તરના યૌદ્ધ સાહિત્યના સમય કરતાં પાછો સાહિત્યના સમયની અધિક સમીપ હશે છે.

ઘડી આ પ્રકારનાં અનુમાનને શ્વેતામ્બર સંપ્રદાયની એક પરંપરાગત કથાદ્વારા સમર્થન પણ મળે છે. પરંપરાં પૈથી છે કે જે ઘણે ભદ્રયાહુ યુગપ્રધાન હતા તે ઘણે ચાર વર્ષનો એક દીર્ઘ દુષ્કાલ પડ્યો હતો તે દુષ્કાલના અંતે પાટલીપુત્રમાં સંઘ મેળો થયો હતો અને તેણે સઘઠાં અંગો એકત્ર કર્યાં હતાં. આ ભદ્રયાહુના અવસાનની તારીખ શ્વેતામ્બરોના કથન પ્રમાણે ધીર પછી ૧૬૦ વર્ષે છે, અને દિગમ્બરોના કથન પ્રમાણે તે ૧૬૨ વર્ષે છે. આ ઉપરથી તેઓ ચંદ્રગુપ્ત, કે જે શ્વેતામ્બરોના હજીઆનુસાર વી નિ. પછી ૧૫૫ મા વર્ષે ગઢીએ આવ્યો હતો, તેના સમયમાં યથા હતા પ્રો મેન્સમુલરે ચંદ્રગુપ્તનો સમય ई. સ. પૂર્વે ૩૧૫-૨૯૧ જણાવેલો છે તથા વેસ્ટરગાર્ડ (Westergaard) અને કેર્ન (Kern) વધારે સમાવેત રીતે તે સમય ई. સ. પૂર્વે ૨૦ જણાવે છે. આ વચ્ચે ઘણે જ અલ્પ તફાવત છે તે મહત્ત્વનો નથી. લગભગ આ હિસાબે જૈન સિદ્ધાન્તનો રચના સમય ई. સ. પૂર્વે ચોથી શતાબ્દના અંતમાં ધગર તો ત્રીજી શતાબ્દની શરૂઆતમાં આવે છે સાથે સાથે એ પણ લક્ષ્યમાં રાખવાનું છે કે ઉપરોક્ત સંપ્રદાય-પરંપરાનો માર્ગાર્થ એ છે કે પાટલિપુત્રના સંઘે, ભદ્રયાહુની સાહાય્ય સિવાય જ અગીઆર અંગો એકઠાં કર્યાં હતાં. ભદ્રયાહુને દિગમ્બરો અને શ્વેતામ્બરો વચ્ચે સરસી રીતે પોતાના આચાર્ય માને છે તેમ છતાં શ્વેતામ્બરો પોતાના સ્થવિરોની યાદીને ભદ્રયા-

હુના નામથી આગળ નહીં ચલાવતાં, તેમના સમજાની સ્થવિર સંભૂતિ વિજયના નામથી આગળ લંચાવે છે. એ ઉપરથી એમ ફલિત થાય છે કે પાટલિપુત્રના સંઘે એકત્ર કરેલાં અંગો માત્ર શ્વેતાં વરોના જ સિદ્ધાન્તો મનાયા હશે, પણ આવી જૈન સમાજના નહીં આવી વસ્તુસ્થિતિ હોવાથી, આપણે સિદ્ધાંત રચનાના કાલને જો યુગપ્રધાન શ્રીસ્થુ લખદ્રના સમયમાં પડેલે ई. સ. પૂર્વે ત્રીજી શતાબ્દના પ્રથમ ભાગમાં સ્થિર કરીએ તો તે સોઢું નહીં ગણાય.

આપણી ઉપરોક્ત તથાસનું પારિણામ જો પ્રામાણિકતાને પાત્ર થનતુ હોય, —અને તે થનચુજ જોઈએ કારણ કે તેના યાધક પ્રમાણોનો અમાથ છે—તો વર્તમાન જૈન સાહિત્યની ઉત્પત્તિનો સમય ई. સ. પૂર્વે લગભગ ૩૦૦ વર્ષ પહેલાં અથવા એ ધર્મની ઉત્પત્તિ પછી લગભગ એ શતાબ્દી પહેલાં સૂચી શકાય નહીં. પરંતુ આ ઉપરથી એમ તો જાસ કારી માની લેવાની જરૂર નથી જ કે જૈનો પાસે પોતાના અંતિમ તીર્થંકર અને સિદ્ધાન્તરચનાના આ સમય વચ્ચેના અન્તરાલમાં, એક અનિશ્ચિત અને અસંકલિત ધાર્મિક તથા પૌરાણિક પરંપરા ઉત્પાન જાસ આધાર રાખવા યોગ્ય યધારે સુદૃઢ ધર્મસાહિત્ય હતું જ નહીં. કારણ કે એમ જો માનવામાં આવે તો પછી જૈન પરંપરાની વિશ્વસનીયતાના વિષયમાં જે વિરોધદર્શક પ્રમાણો મી. થાર્થે રજુ ફેરેલાં છે તે વાસ્તવિકતામાં પાયા વિનાનાં છે. એમ કહી શકાય નહીં તથાવિ એક યાવન અહીં ધ્યાનનાં લેવા લાયક છે. અને તે એ છે કે શ્વેતામ્બરો અને દિગમ્બરો એ ઘણેનું એમ કેહેવું છે કે અંગો સિવાય પહેલાંના કાલમાં તેનાથી પણ વધારે પ્રાચીન પૈયાં જીદ પૂર્વે હતાં. અને તે પૂર્વોત્ત જ્ઞાન ક્રમથી નષ્ટ થતું થતું અંતે સર્વથા નષ્ટ થઈ ગયું હતું.

જીદ પૂર્વોના વિષયમાં શ્વેતામ્બરોની માન્યતા આ પ્રમાણે છે:—જીદ પૂર્વો એ દષ્ટિવાદ નામના ધારમા અંગમાં સમાઈલાં હતાં અને તે મહાવીર નિર્વાણ પછી ૧૦૦૦ વર્ષ વ્યતીત થયા પહેલાં નષ્ટ થયાં હતાં. જો કે આ કથન પ્રમાણે જીદ પૂર્વો તો સર્વથા નષ્ટ

૧ પત્રિકા ૧, ૫૫.

૨. Geschiedenis van het Buddhisme in Indie, II, p. 266 note

થઈ ગયાં છે, તો પણ દૃષ્ટિવાદ અને તેમાં અંતર્ગત થયેલાં ચોદ પૂર્વોના વિષયોની વિસ્તૃત સુચિ અચા-
યધિ સમવાયાંગ નામનાં ચોથા અંગમાં તથા નન્દી-
સૂત્રમાં આપેલી જોવામાં આવે છે^૧ આ દૃષ્ટિવાદ-
માં આવેલાં પૂર્વો તે જાસ મૂલ પૂર્વોજ હતાં કે, જેમ
હું માનું છું, તેના સારસ્વ હતાં. તેનો આપણે નિ-
શ્ચય કરી શકતા નથી. ગમે તેમ હો પરંતુ તેમાં
સમાવેલા વિષયોના સંબંધમાં એક ઘણી વિસ્તૃત
પરંપરા તો અવશ્ય જોવામાં આવે છે.

ચરેચર આપણે, 'નોંદે વળ નટ થઈ ગયેલા પવા અ
તિ પ્રાચીન પ્રથ' યા પ્રંથસમૂહના વિષયમાં મઢી
આવતી પરંપરાને સાચી માની લેવામાં ઘણીજ
સાવધાની રાખવાની જરૂર છે. કારણ કે આવા
પ્રકારની પ્રાચીન પરંપરા, ઘણીક વચ્ચે કેટલાક
મૃંથકાષ્ટોદ્ધારા પોતાના સિદ્ધાન્તોની પ્રામાણિકતાના
પૂરાવા રૂપે કલ્પી કાઢવામાં આવી હોય છે. પરંતુ
પ્રસ્તુત વાચકમાં, પૂર્વોના વિષયમાં મઢી આવતી
આટલી ઘણી સામાન્ય અને પ્રાચીન પરંપરાની સ-
ત્યતાના વિષયમાં શંકા કરવાને આપણને કોઈ
કારણ જણાતું નથી. કારણ કે અંગ્રેજીની પ્રામાણિક-
તા તે કોઈ પૂર્ણને લઈને માનવામાં આવતી નથી.
અંગ્રેજો તો જગતના નિર્માણના સમકાલીન (પટલે
અનાદિ જ) નમાય છે તેથી જો પૂર્વો સ્વઘી આ
પરંપરાને માત્ર એક કૂટલેસ રૂપેજ માનીએ તો તેનો
કોઈ પણ અર્થ થઈ શકે નહીં પરંતુ તેને જો સત્ય-
રૂપે માની લઈએ તો, જૈનસાહિત્યના વિકાસવિષ-
યક આપણા વિચારો સાર્થક તે ચતુર ચંદ્રસેતી
આવી જાય છે ' પૂર્વ ' એ નામજ એ વાતની પૂરેપૂરી
સાક્ષી આપે છે કે તેનું સ્થાન પાછલથી યીજા એક
નવા સિદ્ધાન્તે લીધું હતું અર્થાત્ પૂર્વનો અર્થ પહેલાનું
એવો થાય છે ' અને આ દૃષ્ટિએ જ્યારે આપણે વિચા-

૧ See 'Weber, Indische Studien, XVI
p. 311.

૨. ' પૂર્વ ' શબ્દનો અર્થ જૈનાચાર્યોએ નોંધે મુજબ સમ-
જાહેલો છે—તીર્થંકરે પોતેજ પ્રથમ પોતાના ગણધર નામે
પ્રાથિદ્ધિ નિશ્ચયે પૂર્વનું જ્ઞાન આપ્યું હતું ત્યાર પછી ગણધ-
રે એ અંગ્રેજી રચના કરી. આ કથન, પહેલાજ તીર્થંકરે અંગ્રેજો
મળેલાં છે એવા આશય સાથે જોડેલે અંગ્રેજી રચના થયેલી
નથી, તેટલું અને તે ચરેચર સ્વયં ગર્ભિત લેખાવા ચોચ છે.

રૂપે છીપે જ્યારે નિઃસંદેહરૂપે પ્રતીત થાય છે કે,
જે સમયે પાટલીપુત્રના સઘે અંગસાહિત્ય એકત્ર
કર્યું હતું, તેજ સમયથી પૂર્વનું જ્ઞાન વ્યુત્કિષ્ટ થતું
ચાલ્યું હતું, એવી જે હકિકત કહેવાય છે, તે તદ્દન
વાસ્તવિક છે. ઉદાહરણ તરીકે મટવાહુ પછી ચૌ-
દમાંથી દશજ પૂર્વોનું જ્ઞાન અવશિષ્ટ રહ્યું હતું, એવું
જે કથન છે તે આપી શકાય છે

આ ઉપરથી પાત્રી થશે કે ચોદ પૂર્વવિષયક પ્રચ-
લિત પરંપરાનો અમે જે એવો છુલાસો કરેલો છે કે
પૂર્વો તે સૌથી પ્રાચીન સિદ્ધાન્તમંથો હતા, અને તેના
પછી તેનું સ્થાન એક નવા સિદ્ધાન્તે લીધું હતું, તે
શુકિસંગત છે. પરંતુ આટલો છુલાસો આપ્યા વાદ
આ પ્રશ્ન ડમો થાય છે કે આપી રીતે પ્રાચીનસિ-
દ્ધાન્તનો સ્થાન કરવામાં તથા નવા સિદ્ધાન્તનું નિ-
રૂપણ કરવામાં શુ પ્રયોજન ઉપસ્થિત થયું હશે ?
આ વિષયમાં માત્ર કલ્પના સિવાય અન્ય કોઈ ગતિ
નથી. અને તદનુસાર મારો સ્વતંત્ર અભિપ્રાય આ
પ્રમાણે છે—આપણે જાણીએ છીએ કે દૃષ્ટિવાદ ના-
મના ચારમા અંગમાં ચૌદ પૂર્વો આવેલાં હતાં તથા તે
પૂર્વોમાં મુલ્યત્વે કરીને દૃષ્ટિએનું પટલે જૈન અને
જૈનેતર દર્શનોના તાત્વિક વિચારો—અભિપ્રાયોનું
વર્ણન કરેલું હતું. આ ઉપરથી આપણે એમ કલ્પી
શકીએ છીએ કે તેમાં મહાવીર અને તેમના પ્રતિસ્પર્ધી
ધર્મસંસ્થાપકોની વચ્ચે થયેલા વાદોનું વર્ણન આવે-
લું હશે મારા આ અનુમાનના સમર્થનમાં પ્રત્યેક
પૂર્વના નામના અંતે જે ' પ્રવાદ ' એ શબ્દ મૂકવામાં
આવ્યો છે તે આપી શકાય છે. આ ઉપરાંત એ પણ
એક વાત ધ્યાનમાં રાખવાની છે, કે મહાવીર કોઈ
એક નવા ધર્મના સંસ્થાપક ન હતા, પરંતુ, જેમ મેં
સિદ્ધ કરેલું છે, તેઓ એક પ્રાચીન ધર્મના સુધારક
માત્ર જ હતા. તેથી પણ એ ઘણુંજ સમર્થિત છે કે
મહાવીરને પોતાના પ્રતિપ્રશ્નોના અભિપ્રાયોનું
મજબુતરીતે સબન કરવું પડ્યું હશે. અને જાતે
સ્વીકારેલા અગર સુધારેલા એવા પોતાના સિદ્ધા-
ન્તોનું ઘણુંજ સમર્થન કરવું પડ્યું હશે. આમ કહે-
વાનું કારણ એ છે કે પ્રત્યેક ધર્મસંસ્થાપકને યથા-
ર્થમાં પોતાના નવા સિદ્ધાન્તોનું પ્રતિપાદન કરવા
પૂરતો જ પ્રયત્ન કરવાની જાનશ્યક્તા રહે છે. તેને

एक सुधारकना जेटलो प्रवादी घनी जवाना जोख मने उपाडवानी अवश्यकता रहेती नथी हवे वखत जतां ज्यारे महावीरना ते प्रतिस्पर्धिओ या जगत-मांथी बहदय थई गया हता, तथा तेओ द्वारा स्थापित थपला सप्रदायो पण नामशेष थई गया हता, त्यारे महावीरना ए प्रवादो, के जे तेमना गणधरोए स्मरणमां राख्या हता तथा तेओ द्वारा पाछ-छनी शिष्यपरपराने पण जे सोंपवामां आज्या हता, ते पाछछना लोकोंमां महज्जवाळा न मनाया होय ए स्वाभाविक छे ए कोण कही शके एम छे के जे एक जमानामां आ प्रकारना दार्शनिकोंना तत्त्वज्ञान विषयक विविध प्रवादो जने कलहो व्यावहारिक उपयोगितावाळा जणाया होय तेज प्रवादो अने कलहो, सर्वथा परिवर्तित थपला एया अन्य जमानामां पण तेवाज उपयोगी सिद्धान्तों तरीके मनाई शके ? आ ज विचारानुसार नया जमानाना जैनसमाजने पोतानी सामायिक परिस्थितिने अनुकूल आवे तेवा एक नया सिद्धान्तनी जरूर जणाई हसे अने तेने परिणामे, मारू मानवु छे के, नया सिद्धान्तनी रचना अने जना सिद्धान्तनी (पूर्वोना ज्ञाननी) उपेक्षा थवा पामो हसे

प्रो. वेयर^१ दृष्टिवाद अपने नष्ट थवामां एवु कारण जणावे छे के भेताम्यर समाज ज्यारे एक समये एवी अस्थाय आवी पहुँच्यो हुनो के जे वखते तेने पोताना (प्रचलित) विचारो अने ते ग्रन्थमां (दृष्टिवादमां) आलेखित विचारोनी वच्चे अत्यंत अनुपेक्षणीय अतर स्पष्ट देखावा लाग्य, त्यारे ए चौद पूर्वोवाळु दृष्टिवाद अग उपेक्षाने पात्र थयु हनु परन्तु, प्रो. वेयरनी आ कल्पनानी विरुद्ध, भेताम्यरोंनी माफक दिग्म्वरो पण, पोताना पूर्वो अने ते उपरांत अगो सुझाने व्युत्पन्न थपला जणावता होवाथी, हु तेमना मतने मल्लतो थई शकतो नथी तेमज निर्वाणनी तुरतज पठीनी ये शताब्दिमां जैन समाजे पटली यथी झडपधो प्रगति करी लीधी होय के जेथी ते समाजना यत्ने मुख्य सप्रदायोने पोताना पूर्व सिद्धान्तनो त्याग करवा जेटली आवश्यकता जणाई होय, एम पण मानी वेसवु तइन

असंभवित लागे छे बीजी ए पण वायत लक्ष्यमां राखवा योग्य छे के जैन धर्ममां ये सप्रदायो थया पछी तेना तत्त्वज्ञानमां वीलकूल फेरफार थयो न होतो—अर्थात् ते नहुन स्थिरज रह्यु हतु. आनु प्रमाण मात्र एज छे के आ यत्ने सप्रदायोना तत्त्व ज्ञानमां कोई विशेष उल्लेखयोग्य भेद नजरे पडतो नथी. आचारशास्त्रना विषयमां अलग्ग था यत्ने सप्रदायोमां केटलाक भिन्न भिन्न विचारो जोवामां आवे छे, परन्तु, अत्यारे पण त्यारे भेताम्यरोंमां लांबा समयथी, तेमना वर्तमान सिद्धान्तसमूहमां चिहित थपला वणाग आचारोनु पालन वष थपलु होवां छता पण तेथो तेना तरफ उपेक्षा धरावता नथी त्यारे तेवाज कारणने लईने ते वखते अस्तित्व भोगवता एया तेमना पृथग्विक सिद्धान्तसमूह ना विषयमां भेताम्यरोए तेडला यथा आवेशमां आवी जई पोताना पूर्व साहित्यनी सर्वाथा त्याग सुधां करी नांर्यो हतो एम मानवु युक्तिसंगत जणातुं नथी आ उपरांत नया सिद्धान्तनो जे समय आपणे उपर निर्णयित कर्पो छे, ते समय पछी पण लांबा वखत सुधी पूर्वो विद्यमान हतां एम माननांमां आवे छ परन्तु, आखरे ज्यारे पूर्वोना प्रवादमय साहित्य करतां नया सिद्धान्तद्वारा जैन तत्त्वो वधारे स्पष्टरीते प्रकाशित थता देखावा लाग्यो अने वधारे व्यवस्थासर लोको समक्ष भूकावा लाग्यो त्यारे पूर्वो स्वभाविक रीते ज, नहीं के तेमनी बुद्धिपूर्वक कराएली उपेक्षाने लीधे, अदृष्ट थयां हतां.

आपणी प्रस्तुत चर्चा जे आ स्थळे समाप्त थाय छे ते उपरथा, हु धारू छु के, आटली वायतो प्रकटरीते भिन्न थपली छे—जैनधर्मनी उत्क्रांति (प्रगति) कोई पण समये कोई पण अत्यंत ब्रसा धारण एवा थनाओथी, जबरदस्त अटकाव पामेली नथी बीजु ए के आपणे आ उत्क्रांतिनां शरआतनी अवस्था उपरांत तेनी सचली विविध अवस्थाओनी पत्तो मेळवा शकीए छीए, अने बीजु ए के जैनधर्म ए निर्विवादरीत स्वतंत्र भवता एवा कोई पण धर्मनी माफक स्वतंत्ररीते उत्पन्न थपला छे—परन्तु कोई अन्य धर्म अन खास करीने बोद्धधर्मनी शाखा रूपे

બિલકુલ પ્રવર્તેલો નથી. આ વિષયના વિશેષ વિચારોના સંશોધનનું કાર્ય માત્ર શોધકોલ્લેહ ઉપર નિર્ભર છે તેમ છતાં મને આશા છે કે, હું જૈનધર્મની સ્વતંત્રતાના સંવધમાં તથા તેના પવિત્રપ્રથં (શ્રાગમો) ને, તે ધર્મના પ્રાચીન ઇતિહાસને કટ કરવામાં

ક લેખી સાધનોરૂપે સ્વીકારવાના વિષયમાં, અત્યાર સુધી જે કેટલાક વિદ્વાનોના મનમાં અમુક સંદેહો સ્થાન પામી રહ્યા છે, તેને દૂર કરવા સફળ થયો છું.

સાહિત્ય-સમાલોચન.



૧

ધનપાલકૃત ભવિષ્યદત્ત કથા.

[ડૉ. હર્મન જેકોબી દ્વારા સંપાદિત અને જર્મનીમાં પ્રકાશિત.]

પ્રથમ જર્મન વિદ્વાન ડૉ. હર્મન જેકોબીનું નામ એક જૈન સ્કૉલર તરીકે જગતપ્રસિદ્ધ છે. તેમણે જૈનધર્મ અને જૈન સાહિત્યનો ઘણો ઝંડો અભ્યાસ કર્યો છે. જૈન ધર્મના કેટલાય સંસ્કૃત-પ્રાકૃત ગ્રંથોનું તેમણે સંશોધન અને સંપાદન કર્યું છે તેમજ કેટલાયનું જર્મન અને ફ્રેંચી ભાષામાં ભાષાંતર કર્યું છે. જૈન ધર્મ, જૈન ઇતિહાસ અને જૈન સાહિત્ય ઉપર તેમણે અનેક લેખો લખ્યા છે, અને ભાષણો આપ્યાં છે આજે અમે, આ નીચે, ડૉ. સાહેબે સંપાદન કરેલા એક જૈન પુસ્તકનું સંક્ષિપ્ત પરિચય આપવા ઇચ્છીએ છીએ જે હમણાંજ પ્રકટ થયું છે.

પ પુસ્તકનું નામ ભવિષ્યદત્ત કથા ('ભવિષ્ય-યત્ત કથા') છે અને તે ધનપાલ નામે એક ઘણું વિદ્વાનનું ઘનાયેલું છે. ધનપાલ નામે પ્રસિદ્ધ જૈન ગ્રાહણ પદિત, જે વિક્રમની ૧૧ મીં શતાબ્દીમાં, સંસ્કૃતસાહિત્યપ્રસિદ્ધ નૃપતિ મોજના નમયમાં થઈ ગયો છે અને જેણે તિલકમંજરી નામે એક શ્રેષ્ઠ જૈન આપ્યાયિકા યનાવી છે, તેનાથી આ ધનપાલ મિત્ર સમજવો જોઈએ તે ધનપાલ જાતે ગ્રાહણ હતો અને આ ધનપાલ ધક્કડવંશીય ધૈર્ય જાતિનો છે. પણ પિતાનું નામ મહેશ્વર અને માતાનું નામ ધનશ્રી હતું. પ ઉપરાંત, પ ક્યાંનો વતની હતો અને ક્યારે થઈ ગયો, તે જણાવું નથી. પની કતિની માપા ઉપરથી જે અનુમાન થાય છે તે પ્રમાણે પ વિક્રમની ૧૨ મી અગર ૧૩ મી શતાબ્દી થયો હોવો જોઈએ.

ભવિષ્યદત્ત કથા જૈન સમાજમાં જાણીતી છે અને સંસ્કૃત પ્રાકૃતમાં ઘનેલી પ નામની યાંત્રી પણ ઘણી કથાઓ ઉપલબ્ધ થાય છે. કથાની ઘનુમાં જ્ઞાન પંચ-મીનું માહાત્મ્ય ઘર્ણવામાં આવ્યું છે. ધનપાલની આ કથાનું સંપાદન કરવામાટે ડૉ. જેકોબીએ જે પરિશ્રમ ઉઠાવ્યો છે તે તેમાં રહેલી ઘનુની દૃષ્ટિ નહીં પરંતુ તેની માપાની દૃષ્ટિ છે. આ કથાની રચના અપભ્રંશ ભાષામાં થયેલી છે અપભ્રંશ ભાષા પ માર-તવપેની હિન્દી ગુજરાતી આદિ પ્રચલિત મુખ્ય માપાઓની અનંતર જનની છે. મૂળ સંસ્કૃતમાંથી પ્રાકૃત નિકળી, પ્રાકૃતમાંથી અપભ્રંશ જન્મી અને અને અપભ્રંશમાંથી આજની વેશભાષાઓ અતરી; પરંતુ માપાશાસ્ત્રનું કથન છે. અપભ્રંશ માપાનું ઘ્યાકરણ તો હેમચંદ્રસૂરિ પોતાના સિદ્ધહેમ ઘ્યાકરણના આઠ-મા અધ્યાયના ચોથા પાદમાં વિસ્તૃત રીતે આપેલું છે પરંતુ માપાશાસ્ત્રજ્ઞોને આજ સુધીમાં પ ઘાતની ઘવર ન હતી મઝી કે, કેટલાક છૂટા છવાયા વો-હાઓ કે તેવાજ યાંત્રા પયો સિવાય પ માપામાં પ-ચાપલા અલંકાર ગ્રંથો પણ જૈનોના ઘુના પુસ્તક મંડારોમાં પઢ્યા પઢ્યા સઢ્યા કરે છે. સન્ ૧૯૧૪ ની સાલમાં ઘ્યારે ડૉ. જેકોબી હિંદુસ્થાનની મુલા-ઘાતે આવ્યા ત્યારે તેમણે પ સંયંધમાં કેટલીક પૂછ-પરછ કરી, જેના પરિણામે અમદાવાદ નિવા-સી સાહિત્યરસિક આવક માર્દ શ્રીકેશવલાલ પ્રેમ-ચંદ મોદીના પ્રવચનથી પ્રસ્તુત કથાની એક પ્રતિ તેમના ઘોવામાં આવી. ડૉ. જેકોબી પ પ્રંથ જોઈ ઘહુ સુધી થયા અને તુરત તે આઘા પુસ્તકનો ફોટો-ગ્રાફ પઢાવી લઈ પોતાની સાથે જર્મની લઈ ગયા. પાછળથી તેમણે પ પ્રંથની યાંત્રી પ્રતો મેલઘવામાટે.

પણ પ્રયત્ન કર્યો અને તેના લીધે પાટણના મંડારમાં-
ધી તેનો એક જૂનો પ્રતિ કઢાવો પ્રવર્તક શ્રીકાંતિ-
વિજયર્જીવ ડૉં જેકોથી તરફ મોકલો આપી. પરંતુ
કમનસીબે તેજ ધરસામાં જર્મનોએ ઇંગ્લાંડ સાથે
મહાયુદ્ધ જાહેર કર્યો, તેથી તે પ્રતિ ડૉં જેકોથીને
ન મળતું થોડા મહિના પછી પાછો પાટણ આવ્યો.
ડૉં સાહેબને યુદ્ધના કારણે વીજી પ્રત મળવાની
આશા રહી નહીં અને યુદ્ધની સમાપ્તિ સુધી ઘાટ
જોઈને તેમનાથી વેશી શકાય નહીં, તેથી તેમણે એક
માથ તે ફોટોગ્રાફના આધારે જ મહાનું પરિશ્રમ
ઢાઢાથી આ પ્રથમી પ્રસ્તુત આવૃત્તિ, લઢાઈ
દરમ્યાન જ (સન્ ૧૯૧૮ માં) પ્રકટ કરી છે અને
તેમ કરી તેમણે ભાષાશાસ્ત્રિઓ માટે એક નવીન વિ-
ષયના ઉપયોગી અધ્યયનનું મહાદ્વાર સુલું કર્યું છે.
• એ સમગ્ર પુસ્તકમાં ડેમી ૪ પેજી જેથી પહોળો
સાદીશના એકદર ૩૨૦ લગભગ પાનાં છે, જેમાં મા-
રમનાં ૧૦૦ પાનાં પ્રસ્તાવના અને વિચરણમાં (જે
જર્મન ભાષામાં લખાયાં છે) રોકાયાં છે. વિચ-
રણમાં પ્રથમ પ્રથ, કર્તા, પ્રત્યક્ષ વસ્તુ આદિનો
પરિચય આપવામાં આવ્યો છે અને પછી, લંબાણથી
અપગ્રંથ ભાષા, તેનો ઇતિહાસ, તેનો વિકાસ, તેનું
વ્યાકરણ, તેનું છન્દશાસ્ત્ર, અન્યાન્ય ભાષાઓ સાથે
રહેલો તેનો સંબંધ, સાહિત્યમાં મળેલું તેને સ્થાન,
હ્યાદિ અનેક પ્રકારના શાત્રવ્ય વિષયો, ઘણી ઝંઙી
શોધસોલ સાથે, ચર્ચવામાં આવ્યા છે.

વિચરણ પછી મૂલ પ્રંથ આવ્યો છે જેણે ૧૨૦ પૃષ્ઠ
રોમ્યાં છે પ્રંથ રોમન લિપિમાં મુદ્રિત કરવામાં
આવ્યો છે. પ્રત્યક્ષ, પ્રત્યક્ષમાં આવેલા વધા શબ્દોનો
કોષ આવ્યો છે અને તે સાથે દરેક શબ્દનો સંસ્કૃત
પ્રતિશબ્દ પણ આવ્યો છે.

પોતાના દેશમાં ચાલી રહેલા મહાન્ યુદ્ધના અ-
યંકર અશાંતિકાલમાં ૫૫૫ જગતને એક તદ્દનનીવન
વિષયનું ઉપયોગી જ્ઞાન આપવા માટે, આટલી વૃદ્ધા-
વસ્થામાં ડાઢાવેલા અધાન પરિશ્રમ નિમિત્તે, વિદ્ધ-
ત્સમાજ તરફથી ડૉં. જેકોવી જરેરર શ્રદ્ધા બહુ ધ-
ન્યવાદને પાત્ર છે.

• આ અમૂલ્ય પુસ્તકના વિષયમાં અમને એ વાત
બહુ સટકે છે:- એક તો એની પ્રસ્તાવના તેમજ વિચરણ

જે જર્મન ભાષામાં લખવામાં આવ્યાં છે, તે ઇંગ્રેજીમાં
લખાયાં હોત તો વધારે ટીક થાત. કારણ કે ભાર-
તના અભ્યાસિયોમાં જર્મન ભાષા જાણનાર વિરલ જ
હોય છે. તેથી વધા જિજ્ઞાસુ અભ્યાસિયો એનો યથેષ્ટ
લાભ નહીં મેળવી શકે વીરું. મૂલ પ્રત્ય જે રોમ-
ન લિપિમાં છાપવામાં આવ્યો છે તે પણ ભારતીયો-
ની દ્રષ્ટિ નિરુપયોગી જેવો જ છે. ભારત ઘરના
મોટા મોટા સ્કૉલરો સુધાને રોમનલિપિમાં છાપેલા સં-
સ્કૃત-પ્રાકૃત પ્રંથો વાંચતા ઘણો પરિશ્રમ પડે છે;
તા પછી સાધારણ આભ્યાસિયોના માટે તો કહેવું
જ શું પરંતુ એ વિષયમાં તો અમને સંતોષપાત્રવારું
કારણ છે કે વડોદરા રાજ્ય તરફથી પ્રકટ થતી
ગાદકવાડ ઓરિએન્ટલ સીરીઝમાં પણ એ પ્રંથ છ-
પાય છે જેની લિપી દેવનાગરી (વાલઘોષ) જ છે.
જો કોઈ પણ વિદ્વાન્ આ પુસ્તકની યદુતદ્યપૂર્ણ
પ્રસ્તાવનાનો ઇંગ્રેજીમાં ક દેશ ભાષામાં જો અનુવાદ
કરી-કરાવી આપે તો ભાષાશાસ્ત્રની દ્રષ્ટિ બહુ
મોટો લાભ થવાનો સંભવ છે.

૨

સૂરીશ્વર અને સમ્રાટ

[કર્તા મુનિરાજ વિદ્યાવિજય. પ્રકાશક, યશો-
વિજય જૈન પ્રંથમાલા, ભાવનગર. પૃષ્ઠસંખ્યા, ૨૧-
૪૧૭. પાકું પૂંડું. કિં. રૂ. ૨-૮-૦]

જૈન સમાજ તરફથી, વાધુનિક ગુજરાતી ભાષા-
માં, જે બે ચાર મુનિઓ અગરશ્રાવકોના હાથે લખા-
યાં નાનાં મોટાં ૫-૧૦ પુસ્તકો પ્રકટ થયાં છે, તે
સૌમાં મુનિરાજ વિદ્યાવિજયજીનું લખેલું ' સૂરીશ્વર
અને સમ્રાટ ' નામનું પુસ્તક પ્રથમ સ્થાન ભોગવે
છે, એમ કહેવામાં જરાપ અતિશયોક્તિ જણાતી નથી.
મુનિજીની આ કૃતિપ કેવલ જૈન સાહિત્યમાં જ
નહિ પરંતુ સમગ્ર ગુજરાતી સાહિત્યમાં-જાસ કરી-
ને ઐતિહાસિક પુસ્તકોમાં-એક ઉપયોગી ઉમેરો
કાર્યો છે, એમ કહેતાં આમને આનંદ થાય છે.

જગદ્ગુરુ હીરવિજયસૂરિપ સુગલ સમ્રાટ અંકબ-
રના વાદશાહી દરવારમાં જઈ, ધર્મજિજ્ઞાસુ કહે

અથવા રાજ્યનીતિકુશલ કહો-ગમે તે કહો પરંતુ તે અસાધારણ વ્યક્તિત્વવાળા વાદશાહને જે રીતે એ લ્યાંગી જેનાચાર્ય પોતાના ધર્મનો પ્રમાવોત્પાદક યોધ આપ્યો હતો, અને તે યોધને સાંભળી જે રીતે તે દયાળુ વાદશાહે જૈનધર્મ પ્રતિ પોતાની સવિશેષ પ્રીતિ પ્રકટ કરી હતી, તેનો સક્ષિષ્ટ પણ સારમૂત इतिहासे अमे अमारा रूपारसकोप नामना पुस्तकनी लांबी प्रस्तावनामां (जे हिन्दी भाषामां लखाएली छे) आज थी ४-१ वर्ष अगाउ आप्यो हतो त प्रस्तावना लखेती वखते ज अमारा मनमां एवो संकल्प थयो हतो के प्रसंग मळे, हीरविजयसूरिना जीवन संवन्धमां मळी आवतां सधळां साधनौने एकत्र करी, ते उपरथी एक सविस्तर जीवन चरित्र ए महान् जैनयतिनु अउय तैयार करचु जोईए प्रस्तुत पुस्तक जोईने अमन आनन्द थाय छे के अमारो ए शुभ संकल्प, अमारा एक योग्य मुनि बंधुना साथे उत्तमरीते पूर्ण थयो छे

हीरविजयसूरिनु आसन जग धर्मगुरुओमां एक उच्च स्थान भोगवे छे अकर जेवा महायु ज्ञिवान् व्यवहारचतुर, गूढदृष्टी, सूक्ष्मदर्शी અને राजनीतिकुशल सम्राट्ना अत करणमां, तेना देश, जाति, धर्म, स्वभाव, અને ध्येयथी तइन विरुद्ध सरकारवाळा धर्मगुरुनो विरक्तिप्रबोधक धर्मबोध अनायासे उच्चस्थान मेंलवे ए एक जगत्तना इतिहासमां आश्चर्यजनक नोंध गणावी जोईए

ए प्रतापी सम्राट्ना, तेनी आसपासनी समग्र परि-स्थितिथी અને तेना खास शानुवांशिक जीवन सरकारी विरुद्ध जता अनेक विचारो અને आचारो मिश्र मिश्र इतिहासकारोए अनेक स्थळ नोंध्या छे, परंतु ते आचार विचारोन यथार्थ कारण कोई पण लेखके स्पष्टरीते आपेल न होवाची जाघुनिक इति-हासशोए-खास करीने यूरोपीय इतिहासज्ञोए-ए विषयमां अनेक तर्क-वितर्क चलाव्या छे અને हजी ए चलाव्ये जाय छे पण कहेंता खेद थाय छे के, जैन साहित्यमां, ए विषयनो खरो गुलासो आपना रा असंख्य पुरावाओ विद्यमान होवा छता, कोई पण विद्वाने आज सुधीमा ए पुरावाओनी तपास

सुधां करी नथी यूरोपना विद्वानो तो विदेशी होवाची कदाच ए वायातमां ओछा उपालंभने पात्र होई शके परंतु भारतना पुरातत्त्वज्ञोनी ए विषयक उपेक्षा तो खरेखर अक्षम्य ज गणी शकाय यूरोप-ना કેટલાક વિદ્વાનોને અકચરની વિવિધ અને પરસ્પર વિરુદ્ધ થયી જીવનવાર્તાઓમાં મિશ્રિયન ધર્મની અસરના સ્વપ્ન આવર્ણાં લાગ્યાં અને તેમનાં દષ-પ્રસ્મરણોને અમારા દેશવધુ વિદ્વાનો યથાર્થરૂપે પણ માન્યા અને જહવા લાગ્યા, પરંતુ કોઈના મનમાં એ વિચાર નથી આવ્યો કે જૈનોના સંકડાં લેખોમાં અકચરની જે આટલી થયી પ્રશંસા કરવામાં આવી છે તેનું શું કારણ છે, એ તરફ પણ જરા દ્રષ્ટિ તો નાંખી જોઈએ અમારા લેખોની આવીજ અનુકરણ-પ્રિયતા કે પ્રમાદશીલતાને જોઈને પરદેશી વિદ્વાનો જે અમને મૌલિકતાશૂન્ય અને ગમીરવિચારવિહી-નની હસ્તિત ઉપાધિઓથી સજોયા કરે છે તેમાં કેટલેક અંશે સત્ય અવદ્ય છે, એમ અનિચ્છાએ માનવાની ફરજ પડે છે

અકચરના પ્રધાન મત્રી શેષ અનુલ-ફજલે આઈન-એ-અકચરીમાં અકચરના સામ્રાજ્યમાની પ્રધાન પ્રધાન વ્યક્તિઓની જે લાંબી ટીપ આપી છે, તેમાં, પ્રથમ શ્રેણિમાં ગણાવેલા સર્વે શ્રેષ્ઠ મનુષ્યોમાં હીરવિજય સૂરિનું પણ નામ ડર્જે છુ, તેમજ પાંચમી શ્રેણિમાં મનુષ્યોની નામાવલીમાં એ સૂરિના પ્રધાન શિષ્ય વિજયસેનસૂરિ અને માતુચદ્ર ઉપાધ્યાયનાં નામો પણ આપેલા છે પરંતુ આજથી વ્દશ વર્ષ પહેલાં કોઈ પણ દેશી કે ખેડેશી વિદ્વાને અનુલ ફજલે નોંધેલા સર્વે શ્રેષ્ઠ મનુષ્યોમાંના એક એવા એ હીરવિજયસૂરિ, તેમજ પાંચમાં વર્ગમાં આપેલા વિજયસેનસૂરિ અને માતુચદ્ર નામના પુરુષો કોણ છે અને શા કારણથી તેમના નામો આઈન-એ-અકચરી જેવા મહાન ગ્રંથમાં નોંધવામાં આવ્યા છે તેની તપાસ કરવા માટે પરિશ્રમ થયેલ ન હતો. 'હીરવિજય સૂરિ' ના નામ કારણમાં કોઈ જુદા પ્રવાચની જોડ-ગોંધી લખવામાં આવ્યું હશે તેથી આઈન-એ-અકચરીના દ્વેષી અનુવાદ કરતાં મી ઈંગ્લેન્ડને તે નામ દ્વેષીમાં 'હારિજીવર (Harigi Sur) આવી રીતની જોડણી કરીને આપ્યું છે મી ઈંગ્લેન્ડને આઈન-એ-

અકબરીમાં આપેલી નામોની ઉક્ત લાંબી ટાંપમાંની ઘણીક વ્યક્તિઓની, યોજા યીજા इतिहासो उपरधी पण ओल्लछाण आपचा वायत महेगत लीधी छे; परंतु 'हरिजीसूर' नाम माटे तेणे कोई पण नोध करी नथी.

आईन-ए-अकबरीમાંનું આ નામ સુપ્રસિદ્ધ જૈનાચાર્ય હીરાવિજયસૂરિનું છે, પરંતુ જ્ઞાન કરાવવાનું માન અમારા સદ્ગત સ્રેષ્ઠ શ્રીયુત ચિમનલાલ ડાહ્યાભાઈ દલાલ, एम्. ए. ने घटे छे तेमणे वना-रसधी निरुल्लता 'जैनशासन' नामक एक साम. थिक पन्ना, धीर संवत् २४३९, ना दीयाळीना प्वास अंकमा 'हिराविजयसूरि अथवा अकबरना दरबारमा जैनो' (HIRAVIJAYASURI or THE JAINAS AT COURT OF AKBAR) एवा मथाला नोचे, 'C' एयो संक्षिप्त सही साथे, एक प्रामाणिक लेख इंग्रेजीमां प्रकट कराव्यो हतो. ते लेखमांज, भाई श्रीदलाले सौधी प्रथम पुरातत्वयोने ए अज्ञात वायतनी माहीती आपी हती के आईन-ए-अकबरीमां जे 'हरिजीसूर' एवुं नाम मळी आवे छे ते नाम बीजा कोईनु नथी पण जैन समाज अने जैन इतिहासमां प्रसिद्ध एवा आचार्य हिराविजयसूरिनु ज छे. अने तेनी साथे तेमणे संक्षेपमां हरीविजयसूरि अने अकबरना समागमनो सम्राण इतिहास पण आलेखी यताव्यो हतो.

भाई श्रीदलालनो ए मौलिक आविष्कार घांचीने ज प्रसिद्ध पुरातत्वज्ञ मि. विन्सेन्ट. ए. स्मीथ साथे 'अकबरना जैन गुरुओ' (THE JAIN TEACHERS OF AKBAR) ए नामनो एक महत्त्वनो इंग्रेजी नियन्ध 'मांडारकर स्मारक नियन्ध संग्रह' (R. G. Bhandarkar Commemoration Volume) मां प्रकाशित कराव्यो हतो, अने तेमां अकबरना जीवनमां हिराविजयसूरि ए भजवेलो भाग संक्षिप्त परंतु स्पष्ट रीते यताववामां आव्यो हतो. तेवीज रीते पोताना 'अकबर' नामना प्रसिद्ध पुस्तकमां पण ए साचा इतिहास-

१ ए लेख पाठवधी, बडोदराधी प्रकट यता 'लाईमेंटी मेसेलेनी' नामना त्रैमासिकमां पण प्रकाशित यथो हतो.

પ્રેમી વિદ્યાને, હીરાવિજયસૂરિને કેટલેક અંશે ઉચિત સ્થાન આપી, એ વાચતમાં इतिहासवेत्ताઓવી થતી આવતી મોટી ફાલનું કારક સંશોધન કર્યું છે.

સૂરીશ્વર અને સમ્રાટ્માં મુનિરાજ વિદ્યાવિજય-જીએ પણ વિષય અનેક પૈતિહાસિક પ્રમાણોના આધારે સંપૂર્ણરીતે આલેખ્યો છે અને સમ્રાટ અકબરના इतिहासમાં જગદ્ગુરુ હીરાવિજયસૂરિ કેવું મહત્ત્વનું સ્થાન ધરાવે છે તે સારી પેઢે સમજાવ્યું છે. પુસ્તકને પ્રામાણિક વનાવવામાટે મુનિજીએ યથેષ્ટ સંગ્રહ લીધો છે. પરિશિષ્ટમાં જે કેટલાક કારસી કરમાનો આવ્યા છે, તે આજ સુધીમાં જાળમાં નહિં આવેલા એવા છે અને તેથી પુસ્તકની મહત્તામાં ઉપયોગી ઝમેરો થયો છે. હીરાવિજયસૂરિ, અકબર અને અનુલ ફઝલ વિગેરેનાં ચિત્રોથી પુસ્તકની શોમા વધાર આકર્ષક થતી છે. પરંતુ, હીરાવિજયસૂરિની જે મૂર્તિનું ચિત્ર આપ્યું છે તે તેણું સુંદર અને આલેખાદક નથી, તેથી કોઈ યીજી વધારે સુસ્પષ્ટતા મૂર્તિનું ચિત્ર મેળવવામાં આવ્યું હોત તો વધાર ટોક લાગત.

અંતે, આનું ઉપયોગી, પ્રામાણિક અને મૂલ્યવાદ પુસ્તક લખવા માટે મુનિરાજ વિદ્યાવિજયજીનું પુનઃ એકવાર અભિનંદન કરી અમે અમારું ધનતત્વ સમાપ્ત કરીએ છીએ અને દરેક જૈન અને જૈનેતર વિદ્વાદ ને એક વાર આ પુસ્તક અવધ્ય જોઈ જવાની ઇલામળા કરીએ છીએ.

૩

તત્ત્વાર્થ પરિશિષ્ટ મૂલ અને ભાષાંતર.

['મૂલ કર્તા આગમોદ્ધારક આચાર્ય શ્રીસાગર નંદ સૂરીશ્વરજી, —ભાષાંતર કર્તા મુની (?) મા' નસાગરજી. પ્રસિદ્ધકર્તા માસ્તર ઉમદચંદ રાયચંદ. સુ. અમદાવાદ. મૂલ્ય જ્ઞાનાભ્યાસ. ' પૃ. ૧૮-૧૪૮,]

સમગ્ર જૈન સાહિત્યમાં એક તત્ત્વાર્થસુત્ર જ પવો પ્રંથ છે કે જૈના અધ્યયનથી જિજ્ઞાસુ મનુષ્ય સંક્ષેપમાં જૈન ધર્મનું સંપૂર્ણ સ્વરૂપ સમજી શકે છે. એ પ્રંથ જૈન ધર્મના શ્વેતાંવર અને દિગંથર-વક્ત્ર સંપ્રદાયોને સમાનમાથે પૂજ્ય અને માન્ય છે. અલપત, બંને

સંપ્રદાયોના સૂત્રપાઠમાં કેટલોક પાઠ-મેદ અવશ્ય રહેલો છે, પરંતુ તેથી તેની પૃથ્થતામાં કોઈ પણ પ્રકારનો મેદ નથી. એ સૂત્ર પર ચત્રે સંપ્રદાયોના સમર્થ પૂર્વાચાર્યોં ભાષ્ય ટીકા આદિ અનેક વ્યાખ્યાની કરેલાં છે અને તેનો સર્વત્ર પ્રચાર પણ છે. પણ સૂત્રના પરિશિષ્ટરૂપે સમાલોચિત પુસ્તકની રચના કરવામાં આવી છે. વાસ્તવિકમાં, તત્ત્વાર્થ-સૂત્રની રચનામાં ઈર્ષી કોઈ સાસ ન્યૂનતા નથી કે જેથી તેની પૂર્તિ કરવા માટે પરિશિષ્ટ યનાચવાની આવશ્યકતા પ્રતીત થાય. અને કદાચ તેથી આવશ્યકતા જણાય તો પણ તે કાર્ય પૂર્ણ અનુરૂપ તો થીજા ઉમાસ્વાતીથી જ થઈ શકે થીજાવ તેઓ પ્રયત્ન કરથી તે અમારા લઘુમત પ્રમાણે તો એક પ્રકારે અનધિકારચેદા જેવું જ ગણાય. પૂર્વના મહાન્ મહાન્ ધાવાર્ચોં કેટલાક શાસ્ત્રોની પૂર્તિ માટે ઈવા કેટલાક પ્રયત્નો કર્યા છે હરા પરંતુ તે ધાર્તિક કે માપ્યના રૂપમાં છે, સૂત્રના રૂપમાં તો નહિ જ. અસ્તુ.

મૂલ તત્ત્વાર્થશાસ્ત્રની સૂત્ર-સંખ્યા શ્વેતામ્બરીના પાઠ પ્રમાણે ૩૪૮ છે અને દિગ્મ્બરીના પાઠ પ્રમાણે ૩૫૭ છે. જો કે આમ સંખ્યાની દૃષ્ટિે જોતા થએ સંપ્રદાયોના પાઠમાં માત્ર ૧૩ જ સ્થાનો ફેર જણાય છે પરંતુ વાસ્તવિકમાં તેમ નથી કારણ કે શ્વેતામ્બરીય સૂત્રપાઠમાંના કેટલાંપ સૂત્રો દિગ્મ્બરીય સૂત્ર-પાઠમાં નથી અને તેથી જ રીતે દિગ્મ્બરીય સૂત્રપાઠનાં કેટલાંપ સૂત્રો શ્વેતામ્બરીય સૂત્ર પાઠમાં નથી. થીજા અધ્યાયમાં ય્યાં જંયુહાંપતું મીંગોલિક વર્ણન આવેલું છે ત્યાં એક સાથે શ્વેતામ્બરીય પાઠ કરત, દિગ્મ્બરીય પાઠમાં ૨૦—૨૧ સૂત્રો સર્વથા વધારે છે. સર્વથા વધારે પટલા માટે કે તે સૂત્રોમાં આપેલું વર્ણન શ્વેતામ્બરીય પાઠમાં બિલ્કુલ નથી. શ્વેતામ્બરીય સૂત્ર પાઠના સમર્થ ટીકાકાર આચાર્ય હરિમદ્રે દિગ્મ્બરીય પાઠના ૫ આધિક્ય માટે ટીકા પણ કરી છે અને જણાવ્યું છે કે આ સૂત્રો પાઠજઢયો કોઈપ યનાવી લીધાં છે અને સૂત્રકારના સક્ષેપ કરણાત્મક અભિપ્રાયની દૃષ્ટિે તેનું અસ્તિત્વ અયુક્ત છે. આશ્ચર્ય છે કે જે જાતનાં સૂત્રોને હરિમદ્રે સૂત્રકારની અવેક્ષાવ અયુક્ત જણાવે છે તેમ જાતનાં નવાં સૂત્રો રચી તત્ત્વાર્થના પરિશિષ્ટરૂપે સાગરાનંદ-સૂરિ પ્રકટ કરાવે છે.

આ પરિશિષ્ટાત્મક સૂત્રોની સંખ્યા ૧૩૦ જેટલી છે અને એ સૂત્રોમાં ઘણા ભાગે હગોલ અને મૂગો-લના વિષયનો જ પૂર્તિ કરવામાં આવી છે. જેન માન્યતા પ્રમાણેના હગોલ અને મૂગોલનું વર્ણન કેટલાક સૂત્રગ્રન્થો સિવાય મુલ્ય કરીને ક્ષેત્રસમાસ અને સંગ્રહી નામના પ્રકરણ ગ્રંથોમાં ધિસ્તુતરીતે વર્ણવામાં આવેલું છે. એ ગ્રંથો વધારે વિસ્તૃત હોવાથી સંક્ષેપમાં તેનું જ્ઞાન કરાવવામાટે આ પરિશિષ્ટની રચના સાગરાનંદસૂરિ કરી છે, એમ માપાંતરકાર જણાવે છે પરિશિષ્ટકાર આચાર્ય, આ વિષયક જેન સાહિત્યના શબ્દ-શરીરના સમર્થ જ્ઞાતા છે એમાં સંજય નથી. એ વિષયમાં તેમના જેટલું સૂક્ષ્મ જ્ઞાન માગ્યેજ થીજા કોઈ મુનિ ધરાવતા હશે. પરંતુ તેમની આ પ્રસ્તુત કૃતિ અમને તો અનુપયુક્ત અને અસંપદ્ધ જેવી લાગે છે. કારણ કે એક તો આ પરિશિષ્ટમાં આપેલાં સૂત્રોની રચનામાં કોઈ પણ ક્રમ ગોઠવવામાં આવ્યો નથી, અને થીડું સૂત્રોની સંકલના પણ ક્ષિપ્રાર્થ મરેલી છે. જો. આવા પ્રકારના પરિશિષ્ટની તેમને સાસ આવશ્યકતા જ ગણાઈ હતી તો જાતે નવીન સૂત્રકાર થવાની આકાંક્ષા કરતાં જુના ગ્રંથોમાંથી તેવાં સૂત્રો ચૂંટી કાઢી સંગ્રહકાર થવાનો દચ્છા વધારે પ્રશંસનીય ગણાઈ હોત. તત્ત્વાર્થ સૂત્રકારની જ કૃતિરૂપે મનાતા જંયુહીપસ-માસ નામના ગ્રંથમાંથી આ પરિશિષ્ટ પૂર્ણીતે સંગ્રહી શકાય તેમ છે. તેમજ દિગ્મ્બર સંપ્રદાયના સુપ્ર-સિદ્ધ ગ્રંથરત્ન તત્ત્વાર્થરાજવાર્તિકમાં આ જાતનાં એકથી એક ઉત્તમ અને અત્યુપયોગી વાર્તિકો મરેલાં છે, તેમાંથી પણ જો આ વિષયના વાર્તિકો ઉદ્ધૃત કરવાં હોય તો ગ્રંથો સારી રીતે કરી શકાય તેમ છે પ્રસ્તુત પરિશિષ્ટમાં પણ કેટલાંક સૂત્રો તો દિગ્મ્બરીય સૂત્ર પાઠમાંથી જ—શબ્દો ઉલટ પાલટ કરીને જેમનાં તેમ—લીધેલાં અમારા જોવામાં આવે છે. તેથી તેમ ન કરતાં તેના તેજ શ-શોમાં જો તે સૂત્રો ચાચ્યાં હોત તો, આમાં જે નિલદ્રાર્થતા નજરે પડે છે તે ન પડત.

મુનિ માનસાગરજીનું કરેલું માયાન્તર વહુજ સાચારણ પ્રતિનું છે અને કેટલેક ટેકાણે તો ઉલટો અર્થ-વિપર્યાસ કયયે તેવો છે. ઉદાહરણ, તરીકે

પ્રક દાસલો આવીશું. પાંચમાં પાનામાં નીચે પ્રમાણે સૂત્ર છે.—

‘ ઇદ્દુત્તથાકિહરિયુગર્ભાદિજ્જિનયતિદેશ-

સમ્યક્ત્વન્તઃ । ’

આ સૂત્રની રચનામાં જે સ્વામી છે તેનો તો અમે અહિં નિર્દેશ જ કરવા ઇચ્છતા નથી. માપાન્તરના વિષયમાં જ અમારે થોડુંક કહેવું છે. આ સૂત્રનો શબ્દાર્થ અને વિશેષાર્થ નીચે પ્રમાણે કરવામાં આવ્યો છે.

‘ શ્વરાર્થ—અનુક્રમે પહેલી નારકી આદીથી નીકળેલા ચક્રવર્તી, ઘટદેવ અને વાસુદેવ, અરિહંત કેચલી, સર્વવિરતિ, દેશવિરતિ અને સમ્યક્ત્વ વાલા થાય છે. ’

‘ વિ૦—પહેલી નારકીથી નીકળેલો ચક્રવર્તી થાય. ઘીઝી નારકીથી નીકળેલો જીવ વાસુદેવ અથવા ઘટદેવ થાય. ઘીઝી વાલુકા પ્રમાથી નીકળેલો જીવ તીર્થંકર થાય. ’ इत्यादि.

આ શબ્દાર્થ અને વિશેષાર્થની વાચ્યરચનાથી તો ઘચકતે પ્વોજ અર્થાવધોધ થાય કે પહેલી નરકમાંથી નીકળેલો પ્રાણી ચક્રવર્તીજ થાય, ઘીઝીમાંથી નીકળેલો વાસુદેવ અગર ઘટદેવજ થાય, ઘીઝીમાંથી નીકળેલો તીર્થંકર જ થાય. इत्यादि । પરંતુ યથાર્થમાં પરિશિષ્ટકારનો રુદ્ધનો કહેવાનો ભાવાર્થ પમ નહિ હશે. કારણ કે તેમ હોય તો તે તદ્દન અસંગત ગણાય. આ વિષયમાં શાસ્ત્રકારોનો અભિપ્રાય તો પ્વો છે કે નરકમાંથી નીકળેલો જીવ જો ચક્રવર્તી પદ પ્રાપ્ત કરવાને યોગ્ય હોય તો તે ફક્ત પહેલી નરકમાંથી જ નીકળેલો હોય છે. વાસુદેવ અગર ઘટદેવ પદની પ્રાપ્તિ પહેલી અને ઘીઝી પમ ઘટે નરકમાંથી નીકળેલા જીવોને હોઈ શકે છે અને તેવીજ રીતે તીર્થંકર પદની પ્રાપ્તિ પહેલી, ઘીઝી અને ઘીઝી નરકસુધીમાંથી નીકળેલા પ્રાણિયોને થઈ શકે છે इत्यादि. આવી રીતે ઘીઝી પમ ઘળાં સ્થલે અર્થ-કરણમાં મૂલ્યો થયેલી નર્કર પડે છે. આશા છે કે ઘીઝી આવૃત્તિમાં આ સંયંધમાં ઊચિત લક્ષ્ય આપવામાં આવશે. થાકી પંકંદ્ર રીતે પરિશિષ્ટમાં ૫ વિષયનો સારો સંગ્રહ થયો છે અને સાથે જ આરુણિયો વિગેરે આપી છે

તેથી ૫ વિષયના અભ્યાસીને સહેલાઈથી અર્થજ્ઞાન થઈ શકે તેમ છે

આહિ પ્રસંગથી પ્રક જરા કડવી પણ હિતકર વાત સૂચવવાનું મન થઈ આવે છે કે—સાગરાનન્દ-સુરિ જેવા વિદ્વાન્ અને પ્રતિભાશાળી મુનિષ્ઠ આજના ઝમાનામાં આવા અનાવદ્યક અને અનુપયોગી કા-માંમાં કાલદેવ કરવો ઊચિત નથી. સમય ઘળો ઘડલાઈ ગયો છે. સર્વસાધારણની અભિરુચિ કોઈ જુદા જ વિષયોના અભ્યાસ તરફ ઘઘટી જાય છે. વિદ્વાનોના અધ્યયન-મનનનુ સાહિત્ય ક્ષેત્ર-મિશ્ર પ્રકારનું થઈ રહ્યું છે. નવીન વાતાવરણમાં ઉછરતી અને કેન્દ્રવળી પામતી પ્રજાનો આવી જાતના લૂલા, નીરસ, અનુપસુન્ત, જૂના વિષયો તરફ અભિરુચિ ઘટે કે શ્રદ્ધા યેસે તેમ ઘિલ્કુલ નથી. ઘર્તમાન સમયમાં પ્રત્યક્ષ પ્રમાણથી નિશ્ચિત થયેલા જગોલ અને ભૂગોલના સિદ્ધાન્તો આગળ જગત્તા ઘરેક ધર્મના ૫ વિષયના જૂના વિચારો નિસ્તેજ અને અર્થહીન સાબિત થયા છે, અને પ્રત્યેક ધર્મના ઘટ-શ્રુત વિદ્વાન્ તે વિચારોને અધિકાંશ કલ્પના-પ્રવૃત્ત માને છે

તત્ત્વાર્થસૂત્ર મેં જાતે કૉલેજિયતો લેમઝ પ્રેમ્યુપદ-ઢલપ્રેમ્યુપદ જેવા ઉચ્ચ શિક્ષણ પામેલા અનેક જૈન—અર્જન અભ્યાસિયોને તુલનાત્મક પદ્ધતિ ૫ પળ શીખવ્યું અગર. ઘચાઈ છે તેમાં આવતો જગોલ-ભૂગોલ વિષયક ભાગ કેવલ વિનિર્વની સ્વાતર સમજાવતાં પળ મને ઘળો સકોચ થતો હતો અને શીખનાર તેમાં એકે એક સૂત્ર ઉપર સાદ-ર-ઉપહાસ વ્યક્ત કરતા હતાં. જો કે હું કેટલેક અશે તેનુ સમાધાન અમુક પદ્ધતિ ૫ કરી શકતો. પરતુ યથાર્થ સમર્થન તા મારાથી કોઈ પળ પ્રમા-ણથી ન જ થઈ શકતુ. મને ઘળાક વિદ્વાનો ૫ તો આવી જાસ સૂચનાઓ કરી છે કે તત્ત્વાર્થસૂત્રમાંથી આ વિષયને લગતો વિભાગ કાઢી નાંચી તેને સંક્ષિપ્ત ઘનાવવાની અવદ્યકતા છે કે જેથી નવી-ન શિક્ષિતોને આ વિષયની ગધ સુધાં ન આવે અને તેથી તેમના મનમાં, આપળા પૂર્વાચાર્યોની ઘીઝી અનનુપમેય કૃતિયોની પ્રામાણિકતાના સયધમાં કોઈ પળ પ્રકારના કૃત્તો કિંવા સમ્બંધો ઉત્પન્ન

થવા ન પામે. ત્યારે વીજી યાજ્ઞ સામરાનંદસૂત્રિ જેવા એક સારા વિદ્વાન્ આ વિષયના પરિશિષ્ટો રચવામાં મહત્ત્વ સમજી રહ્યા છે. જૈન વિદ્વાનોનું કર્તવ્ય છે કે તેઓ જગત્માં પ્રસાર પામતી મિત્ર મિત્ર જ્ઞાન શાસ્ત્રાઓનું વિશાલ અધ્યયન કરી, તત્ત્વ-જ્ઞાન ઇતિહાસ અને સાહિત્ય જેવા ગમીર વિષયો ઉપર ઘઘરે પ્રકાશ પાડે અને તેમ કરી જૈન ધર્મનું ગૌરવ પ્રકાશિત કરે. આ વિષયમાં અમારે જૈન વિદ્વાનોને ઘણુક કહેવાનું છે જે યથાવસરે કહેવામાં આવશે. આજે તો ફક્ત સૂચનારૂપે આ થે શબ્દો લખ્યા છે. આશા છે કે નમ્ર અને પ્રેમભાવે લક્ષા-પૂર્ણ આ ધામ્ન્યોત્તો સરલ જ અર્થ કરવામાં આવશે અને અધિષ્ઠિત સામરાનંદ સૂત્રિની કોઈ આદર્શ કૃતિની સ્મરણીય સમાલોચના કરવાનો ઉત્તમ અવ-સર અમને પ્રાપ્ત થશે.

મુંબઈ યુનિવર્સિટીનો એમ્. એ. ક્લાસનો અર્ધમાગધીના કોર્સ.

ગત અઢ્યમાં, મુંબઈ યુનિવર્સિટીય પોતાના અધ્યા-સક્રમમાં આ વર્ષથી જે અર્ધમાગધી (અથવા તો પ્રાકૃત) માગને દાખલ કરી છે તેનો બી. એ સુધી-નો કોર્સ આખી વેષામાં આધ્યો છે. સ્થલાભાવને લીધે એમ્. એ. નો કોર્સ અપવો રહી ગયો હતો તે આ નીચે આપવામાં આવે છે.

ઈ. સ. ૧૯૨૧ ના વર્ષમાં.

૧. ઉત્તરાધ્યયનસૂત્ર સંસ્કૃત ટીકા સાથે.

૨. (a) Comparative Philology—

(1) Relation between Sanskrit and Prakrit and between the Prakrits themselves, as in Bhandarkar's Wilson Philological Lectures.

(2) General Principles, as in Gupte's Introduction to Comparative Philology.

(b) History of Jain Literature —

(1) Buhler.—Indian Sect of the Jainas, translated by J. Burgess. Lazac & Co, London.

(2) Weber. Sacred Literature of Jainas.

(3) Warren.—Jainism.

૩. Jaina Philosophy:—

Pravachanasara of Kundakunda, With the Baudha, Sankhya and Arhata Darsana, from Saivadasa-nasamgraha (Anandasrama Series)

૪. Translation from and into Ardha-Magadhi.

ઈ. સ. ૧૯૨૨ ના વર્ષમાં.

૧. આવશ્યક સૂત્ર પૂર્વાર્ધ, હરિમદ્રસૂત્રિની ટીકા-સાથે, આગમોદય સમિતિય છપાવેલું.

૨. ઉપર પ્રમાણે.

૩. Jaina Philosophy:—

Syadvadamanjari of Mallisena, with Baudha, etc. Darsana as in 1921.

૪. Translation from and into Ardha-Magadhi.

એ સિવાય બી એ ક્લાસના પેન્ડિક વિષયમાં જે એક વેપર જૈન સાહિત્યનો રાખેલો છે તેમાં નીચે પ્રમાણેનાં પુસ્તકો પાઠ્યપુસ્તકો તરીકે નિયુક્ત કરેલાં છે.

૧૯૨૦.

૧. આચારંગ સૂત્ર (મૂલ માત્ર).

૨. હેમચન્દ્રાચાર્યચરિત્ર ત્રિપટિશાલાકા પુરુષ—ચરિત્ર, પર્વ ૧૦ (મહાચરિત્ર ચરિત્ર) માંના સર્ગ ૧—૮.

૧૯૨૧-૧૯૨૨.

૧. પ્રવચનસાર વીપિકા સાથે.

૨. વીજામાં ઉપર પ્રમાણે.

पंजाब-युनिवर्सिटिमें जैन साहित्यको स्थान ।

बंबई और कलकत्ता युनिवर्सिटिमें तो आज कई वर्ष हुए जैन साहित्यको कितना एक स्थान मिल चुका है । परंतु पंजाब-युनिवर्सिटिमें अभीतक उसे किञ्चित् भी अवकाश नहीं मिला था । उसमें कारण केवल पंजाबके जैन भाईयों-की अनभिज्ञता और उपेक्षा ही है । पंजाबके जैनियोंमें मामूली शिक्षाका भी बड़ा भारी अभाव है तो फिर ऊंची कक्षाकी शिक्षाके बारेमें तो कहना ही क्या । यही सबब है कि आजतक पंजाबमें, अन्य धर्माध्य संकेतों ही केजुएट संस्कृतके पारंगत विद्वान् हो गये हैं परंतु जैनियोंमें वैसा एक भी मनुष्य नहीं था । हमें यह जान कर प्रसन्नता हो रही है कि पंजाबके जैन समाजकी इस स्थितिकी पूर्ति करनेवाला एक पुत्र तैयार हो गया है और वह है लुधियाना निवासी धीरुत लाल बनारसी दास जैन । बनारसी दासजीने एम् ए, तककी ऊंची शिक्षा प्राप्त की है और संस्कृत-प्राकृतका अच्छा ज्ञान प्राप्त किया है । आपका एक ईंग्रजी लेख जे. सा. सं. के प्रथम अंकमें प्रकाशित हो चुका है । आप लखनऊके ओरिएण्टल कालेजमें प्रोफेसर हैं । आपने हालहीमें बहुत कुछ परिश्रम करके पंजाब युनिवर्सिटिकी एम् ए. की परीक्षामें जैन साहित्यको उचित स्थान दिलाया है और उसके शुभ समाचार जैन साहित्य संशोधकमें प्रकट करनेके लिये भेजे हैं जो आपहीके शब्दोंमें नीचे प्रकट किये जाते हैं:—

“ बड़े हर्ष की बात है कि पंजाब युनिवर्सिटिने अपनी (संस्कृत की) सब से उच्च परीक्षा अर्थात् एम० ए० (M. A.) में जैन किलोसफती तथा साहित्य को भी स्थान दे दिया है । इस वर्ष निम्न लिखित ग्रन्थ नियत हुए हैं:—

१ स्याद्धाद मन्जरी (संपूर्ण) ।

२ सूत्रकृतांग (प्रथम के ६ अध्ययन) ।

३ उत्तराध्ययन (प्रथम के दस अध्ययन) ।

४ जैन साहित्यका संक्षिप्त इतिहास (अंग्रेजी) ।

इसके लिये सारी जैन समाजकी श्रीयुत ए० सी० वूलनर (Captain A. C. Woolner)—लखनऊ के ओरिएण्टल कालेज के प्रिंसिपल—को धन्यवाद देना चाहिये जो कि इस देशमें जैन साहित्य के प्रचार का बड़ा प्रयत्न कर रहे हैं ।

आप स्वयं भी प्राकृत के अठ्ठीवीस विद्वान हैं, और जैन साहित्यसे दार्ढिक प्रम रमते हैं ।

चूं कि पंजाबमें संस्कृत पढ़नेवाले जैन विद्यार्थी बिरले हैं, इस लिये अन्य धर्मा विद्यार्थियों को जैन साहित्य की और लाने के लिये एक वजीफा (Scholarship) की आवश्यकता है जिस को स्थायी रूप देने के लिये रु० १०००० चाहिए । जो महाशय इस खाते में दान देना चाहें वे इसी पत्र द्वारा सूचना दें ताकि रुपया शास्त्र युनिवर्सिटिमें भेजने का प्रयत्न किया जावे ।”

रुक्मिणिके लिये जो सूचना बनारसी दासजीने इस विवेदनमें की है उसकी तरफ हम प्रत्येक विचारशील और उदारचित्त भाईका लक्ष्य रखा जाता है । खास कर पंजाबी जैन भाईयोंको इस विषयमें पूरा खयाल करना चाहिए और अपना कर्तव्य बजाना चाहिए ।

अशुद्ध-संशोधन.

गया अंकोंमें प्रकट धपला धीरुत हीरालाल अमृतलाल शाहना “हरिभद्रसूत्रिनी समयनिर्णय” शीर्षक लेखमें प्रमथी एक-बे ठेकाणे अशुद्ध पाठ छपाई गये छे, तां ते नीचे प्रमाणे सुधारी बांछ-वानी भलामण करवामां आवे छे.

पृष्ठ ४१, कालम २, पंक्ति १३-१४ मां नीचे प्रमाणे पाठ छे:—

‘ बा ५९८ ने वर्तमान गणतरीए गणाता गुप्त संवत् तरीके....’

तेना बदले नीचे प्रमाणे बांछचुं—

‘ बा ५९८ ने मारी गणतरी मुजबना मूळ गुप्त संवत् तरीके....’

तेवीज रीते, तेनी नीचे पंक्ति २४ मां नीचेप्रमाणे पाठ छे—

गुप्त संवत् ५९८....सिद्धार्थिण श्रीचन्द्रकेवली चरित्र रच्युं.

तेने नीचे प्रमाणे सुधारी बांछचुं—

‘ गुप्त संवत् ५९८....सिद्धार्थिण (श्रीचन्द्रकेवली चरित्रमां जणाव्या मुजब) ग्रन्थ रचना करी. ’

बृहद्विष्णुनिकानामप्राचीनजैनग्रंथसूची



एकादशाङ्गानि ।

१. श्रीआचारांगसूत्रं श्रीसुधर्मस्वामिकृतम्—२५२५ ।
(१) निर्युक्तिः श्रीमद्रघुलुता प्रत्याभम् ४५०. गाथा ३६२ ।
(२) चूर्णिः ८३०० ।
(३) वृत्तिः शीलाचार्याया ९३३ वार्षिका, १२००० ।
२. श्रीसूत्रकृतांगसूत्रम्—२१०० ।
(१) निर्युक्तिः २६५, गाथा २०८ ।
(२) चूर्णिः १०००० ।
(३) वृत्तिः शीलाचार्येण कृता, १२८५० ।
३. श्रीस्नानांगसूत्रम्—३६०० ।
(१) वृत्तिः श्रीअभयदेवीः ११२० वर्षे कृता, १४२५० ।
४. श्रीसमवायांगसूत्रम्—१६६० ।
(१) वृत्तिः ११२० वर्षे अभयदेवीया, ३५७४ ।
५. भगवतीसूत्रम्—एकवत्वारिंशत्-शतकमयम् १५७५२ ।
(१) चूर्णिः ३११४ ।
(२) अवचूर्णिः पत्तनसिक्तोऽस्ति ।
(३) वृत्तिः ११२८ वर्षे अभयदेवसूरिकृता १८६१६ ।
६. शान्धर्मकयासूत्रम्—५४०० ।
(१) वृत्तिः ११२० वर्षे कृता ३८०० ।
७. श्रीलपासकदशासूत्रम्—८१२ ।
८. श्रीअन्तरुदशासूत्रम्—८९९ ।
९. श्रीअनुत्तरौपपातिकदशासूत्रम्—१९२ ।
(१) उपासक-अन्तरुत्-अनुत्तौपपातिकवृत्तिः—
१३०० ।
१०. श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्रम्—१२५६ ।
(१) वृत्तिः ४६०० ।

११. श्रीविपाकसूत्रम्—१२१६ ।

(१) वृत्तिः ९०० ।

एकादशांगसूत्रसंख्या ३५३३९ ।

वृत्तिसंख्या ७४७९० ।

द्वादशोपाङ्गानि ।

१२. उववाह्यसूत्रम्—११६७ ।

(१) वृत्तिः ३१२५ अभयदेवीया ।

१३. राजप्रदीपसूत्रम्—२०७९, २१२० ।

(१) वृत्तिर्मलयगिरीया ३००० ।

१४. जीवाभियगसूत्रम्—४७०० ।

(१) चूर्णि—१५०० ।

(२) वृत्तिर्हारिमद्री प्रदेशवृत्तिनाम्नी ११९२ ।

(३) वृत्तिर्मलयगिरीया १४००० ।

१५. प्रज्ञापनासूत्रम्—षट्त्रिंशत्पदमयम् - ७७६७ ।

(१) लघुवृत्तिर्हारिमद्री—३७२८ ।

(२) वृत्तिर्मलयगिरीया—१६०००, १४५०० (?) ।

(३) प्रज्ञापनानुत्तरीयपदसहस्री श्रीअभयदेवसूरिकृता
गाथा १३३ । तदवचूर्नि-४३० ।

१६. श्रीचन्द्रप्रज्ञासूत्रम्—२०५४ ।

(१) वृत्तिर्मलयगिरीया ९५०० ।

१७. श्रीसूर्यप्रज्ञासूत्रम्—२२९६ ।

(१) वृत्तिर्मलयगिरीया ९००० ।

१८. जम्बूद्वीपप्रज्ञासूत्रम्—४४५४ ।

(१) चूर्णिः १८७९ ।

(२) वृत्तिर्मलयगिरीया ९५०० ।

१९-२३. निरयावलिङ्का—कल्पावर्तसिक्त-पुष्पिता-पुष्पसु

निका-दशा-(५) सूत्राणि-११०९ ।

(१) निर्यावलिकादीनां पंचानां वृत्तिः, १२२८ वर्षे ।

आवश्यक-मूल-च्छेद-सूत्र-वृत्त्यादीनि ।

२४. मूलावश्यकसूत्रसामाधिकादीनि, पद्म अध्ययनानि-१०० प्रमाणानि ।

(१) साधुप्रतिकमणसूत्रं तु १३० ।

(२) ललितविस्तरा चैत्यवन्दनावृत्तिर्हारीश्वरी १२७० ।

(३) ललितविस्तरादिपन्नकं देवसूरियुक्तमुनिचन्द्रायम् १८०० ।

(४) चैत्य-साधुवन्दन-आवकप्रतिकमणसूत्रवृत्तिः ९५६ वर्षे पार्श्वेण कृता १००० प्रमाणा ।

(५) ईश्वरपथिकी—चैत्यवन्दनावृत्तिः—वन्दनकानि ।

(६) ईश्वर १५० चैत्य ८४० वन्दन ७२७ पूर्ण-यः ११७४ वर्षे यशोदेवकृता ।

(७) प्रत्याख्यानस्वरूपं यशोदेवकृतम् गाथा—३६० ।

(८) प्रत्याख्यानवृत्तिः—५५० ।

(९) चैत्यवन्दनादिसूत्र-साधु-आवकप्रतिकमणसूत्रपद-पर्यायमंजयः—अकलंकदेवसूरीयाः ।

(१०) आद्यसामाधिक-प्रतिकमणसूत्रव्याख्याप्रकरणम्—११८३ वर्षे जैनदेवम् गाथा २९३ श्लोक ३६५ ।

(११) चैत्यवन्दनामाहाभाष्यं श्रीशान्तीयम्, सूत्रव्याख्याचरणादिष्वप्यम्—‘महामहर्षणमंत’ इत्यादिपदम् गाथा ९३२ ।

(१२) चैत्यवन्दनाभाष्यवृत्तिः ।

(१३) पञ्चावश्यकं चैत्यवन्दनादिसर्वसूत्रव्याख्यारूपम् तत्पार्श्वेदेवन्दनसूरिकृतम् २७२० ।

(१४) चैत्यवन्दनावृत्तिः कुलप्रदीपः २४५८ ।

(१५) चैत्यवन्दना-वन्दनकं-प्रत्याख्यानवृत्तयः श्रीतिलकीयाः ५५० ।

(१६) आद्यप्रतिकमणसूत्रलघुवृत्तिः श्रीतिलकीया ३०० ।

(१७) साधुप्रतिकमणसूत्रवृत्तिः श्रीतिलकीया २९६ ।

(१८) चैत्यवन्दनाटिका हरिभद्राया ४८२ ।

(१९) साधुप्रतिकमणसूत्रवृत्तिः आवश्यकमृद्वृत्तिगता ।

(२०) साधुप्रतिकमणसूत्रवृत्तिः १३६४ वर्षे जैनप्रभा ५४८ ।

(२१) आवकप्रतिकमणसूत्रवृत्तिः ११८३ वर्षे विजय-सिंहिया ४५९० ।

(२२) आवकप्रतिकमणसूत्रवृत्तिः १२२२ वर्षे श्रीच-द्विया १९५० ।

(२३) चैत्यवन्दनाविचारो ग.थावन्दनेन सूत्रव्याख्या-रूपः ।

(२४) चैत्यवन्दनकप्रत्याख्यानभाष्याणि श्रीणि तपा-श्रीदेवेश्वरसूरिकृतानि, गाथा ६३, ४१, ४८ ।

(२५) चैत्यवन्दनामाध्यवृत्तिः संघाचारानाम्नी तपा-श्रीधर्मचोपसूरिकृता ८५०० ।

(२६) बालावबोधो चैत्यवन्दनावृत्तिः स्मरतरतरणप्रम-सूरिभिः १३३१ वर्षे कृता ७००० ।

(२७) साधुप्रतिकमणादिपाद्विषयावश्यकसूत्रवृत्तिः नेमि-साधुना ११२३ वर्षे कृता १५५० ।

(२८) पंचपरमेष्विविधैरुप-प्राकृतगायामयं बह्वन्तरक-यम् ११६८ वर्षे मातिसागरम् गाथा २५० ।

(२९) आवश्यकनिर्युक्तिः ३१००, २५५० ।

(३०) आवश्यकचूर्णिः १३६००, १८४७४ ।

(३१) आवश्यकमृद्वृत्तिर्हारीश्वरी २२००० ।

(३२) ताद्विपन्नकं मलधारी-हेमचन्द्रायम् ४६४० ।

(३३) आवश्यकवृत्तिर्मलयगिरिया १८००० ।

(३४) लघुवृत्तिः श्रीतिलकीया १२९६वर्षे कृता १२३५ ।

(३५) आवश्यकवचूरिः ५० २२६ ।

(३६) विषोपावश्यकसूत्रं श्रीजिनभद्रागिरि ४००० ।

(३७) वृहद्वृत्तिर्मलयगिरि-हेमचन्द्राया २८००० ।

(३८) वृत्तिर्मलयगिरिया ९००० नास्ति ।

(३९) जीर्णा वृत्तिः १४०००, पत्तनं विना नास्ति ।

२५. ओपनिर्मुक्तिसूत्रम् ११६४ ।

(१) पूर्णनास्ति ।

(२) म.थम् ३००० नास्ति ।

(३) वृत्तिर्दोषाया ६८२५ ।

(४) वृत्तिर्मलयगिरिया मूलाभिन्ना ८८५० नास्ति ।

२६. दशवैकालिकसूत्रम् ७०० ।

(१) निर्युक्तिः गाथा ४४५, ४५२ ।

(२) चूर्णिः ७०००, ७९७० ।

(३) वृहद्वृत्तिर्हारीश्वरी ७५५० ।

(४) वृत्तिः श्रीतिलकीया नेमिचरित्रभागी ७००० ।

(५) लघु-वृहद्वृत्त्युद्धाररूपा युमतिसूरीया २६०० ।

२७. पाक्षिकसूत्रम् ३०० ।

(१) वृत्तिः यशोदेवकृता ११८० वर्षे २७०० ।

२८. पिण्डनिर्मुक्तिसूत्रम् ७०८ ।

(१) वृत्तिर्नास्ति ४००० ।

(२) लघुवृत्तिरप्या, तत्राद्यानि १३५० हारिभद्राणि,

शेषाणि तु १७५० देवाचार्यशिष्यवीरार्चार्थ-
तानि ३१०० ।

(३) वृत्तिर्मलयगिरिया सूत्रमिथा ७५०० ।

२९. उत्ताप्ययन पद्मिनाप्ययनमयं सूत्रम् २००० ।

(१) नियुक्ति ७००, गाथा ६०७ ।

(२) चूर्णगोवालियमहतरनिष्पकता ५९००, ५८५० ।

(३) लघुवृत्तिः ११२९ वर्षे देवेन्द्रगण्यपरानामश्रीनेमि
नन्दसूरीया समुद्रा १४००० ।

(४) शन्वाचार्याया बृहद्वर्णितः सूत्रमिथा ३८००० ।

३०. निशीथसूत्र विंशद्देशसम्यक् ८१२, ९५० ।

(१) बृहद्भाष्यम् १२००० ।

(२) भाष्यम् ७००० ।

(३) निशाम चूर्ण सूत्र भाष्याणि २८००० ।

(४) निशीथचूर्णविशोद्देशम्याहया ११७३ वर्षे पार्थ
देवगणिकता ११०० नास्ति ।

(५) निशीथविंशतमोद्देशवृत्तिः ११७३ वर्षे धीचन्द्री-
या ११०० ।

३१ कल्पक्षिरोपचूर्ण ३१००० ।

३२ कल्पचूर्णः १२७०० ।

३३ कल्पवृत्तिः सूत्रभाष्यगर्भा आद्यानि ४६०० मलयगि-
रीयाणि, शेषा तु १३३२ वर्षे तपाक्षेमकीर्ताया
४२००० ।

३४. व्यवहारसुत्र दशोद्देशकमयम् ३७३ ।

(१) भाष्यम् ६४०० ।

(२) चूर्ण ११००० ।

(३) व्यवहारशक्ति. सूत्र भाष्यगर्भा मलयगिरिया
३३६२५, ३४६२५ ।

३५ कल्पसूत्र पद्म-उद्देशमयम् ४७३ ।

(१) बृहद्भाष्यम् १२००० ।

(२) भाष्यम् ७६०० ।

(३) विशेषचूर्णः ११०० ।

३६. दशभूतस्मृतिसूत्रं दश ध्ययनमयम् २१०६, २२२५ ।

(१) नियुक्ति. १५४, २२० ।

(२) चूर्णः ४३२१ ।

३७. पर्युपगाकल्पसूत्रम् १२१६ ।

(१) नियुक्ति गाथा ६८ ।

(२) चूर्णः ७०० ।

(३) कल्पनिर्दिष्टटिप्पनक विनयचन्द्रसंस्कृतम् ११८ ।

(४) कल्पटिप्पनक पृथ्वीचन्द्रीयम् ६४० ।

(५) संदेहविषयविवृत्तिः १३६४ वर्षे जैनप्रती ।

३८. महानिशीथसूत्र लघु-मध्यम-महद्वाचनम् ३५००,
४२००, ८५४४ ।

३९. पचकश्चमयं ११३३ ।

(१) नियुक्तिनास्ति ।

(२) भाष्य संघदासगणिकृतम् गाथा २५७४, ३०३५ ।

(३) चूर्ण ३०००, ३१२६ ।

४०. जीतकल्पसूत्र जिनमदीयम् गाथा १०५ ।

(१) भाष्यम् ३१२५ नास्ति ।

(२) चूर्ण. छिद्रसेनीया १००० ।

(३) चूर्णटिप्पनक भृगु० यु० ३ विना न ।

(४) वृत्तिः १२२४ वर्षे श्रीतिलकीया १८०० ।

(५) जीतकल्पविवरण संक्षिप्तगमनिकाहूपम् 'सिरि-
वीरजिन नमिठं' इति ५४३ ।

(६) आद्विजितकल्पस्य सूत्र-वृत्ती श्रीतिलकीये गाथा
३० वृत्ति० ११५ ।

(७) यतिजीतकल्पस्य श्रीसोमप्रमसूरीयस्य वृत्ति छा-
धुरतनसूरीया ७७०० ।

(८) आद्विजितकल्पस्य तपाश्रमधौषसूरीयस्य वृत्ति
श्रीसोमनिष्कदसूरीया २६०० न ।

४१ नन्दासूत्रम् ७०० ।

(१) चूर्णः ७३३ वर्षे कृता, स्तम्भतीर्थे विना नास्ति ।

(२) लघुवृत्तिर्नास्ति २३०० प्रमाण ।

(३) नन्दीबृहद्वृत्तिर्मलयगिरिया ७७३२ ।

(४) टिप्पनक श्रीचन्द्रायमायावृत्तिस्तम्भ ३३०० ।

४२ अनुयोगहारसूत्रम् गाथा १६०४ ।

(१) चूर्णार्जितदासमहारीया २२६५ ।

(२) लघुवृत्तिर्नास्ति ।

(३) बृहद्वृत्तिर्मलधारिदेवचन्द्राया ५८०० ।

४३ आतुरप्रयास्यानम् गाथा ८४-१३४ ।

(१) आतुरप्रयास्यानम् वृत्तिराज्यलिकमुवनगुंगसुरिकृता
६३ ध्यानकनामयर्मा ४२० ।

४४. महापत्याख्यानसूत्रम् १४३ ।

४५. देवेन्द्रस्तवः गाथा ३०३ ।

४६. संदुलविचारिकम् ४०० ।

४७. सस्ताक गाथा १२१ ।

४८. भक्तपरिहा १७१ ।

४९. आराधनापताका, १०७८ वर्षे वीरभद्राचार्यकृता ९९३ ।

५०. गणविद्या गाथा ८५ ।

५१. अंगविया पट्टिअध्यायात्मिका ९००० ।
 ५२. चत्तरणम् गाथा ६४ ।
 (१) चत्तरणवृत्तिः आञ्जलिभुवनतुंगसूरीया ८०० ।
 ५३. द्वोपसागरप्रज्ञप्तः गाथा २२३ श्लोकाः २८० ।
 ५४. ज्योतिष्करणवृत्तिः समुद्रा मलयगिरिया सु० १८५० वृ० ५००० ।
 ५५. मरणसमाधिः गाथा ६५६ ।
 ५६. तीर्थोद्धारः गाथा १२३३ ।
 ५७. सिद्धप्राप्तसूत्र-वृत्ती, सूत्रम् १२०, वृत्तिः ८५० ।
 ५८. निरयविभक्तिः २०० नास्ति ।
 ५९. चन्द्रवैधकम् १७४ ।
 ६०. अजीवकल्पः गाथा ४४ ।
 ६१. गच्छाचारः गाथा १३८ ।
 ६२. वीरस्तवः गाथा ४३ ।
आगमेतर-चरणकरणानुयोगादिग्रन्थाः ।
 ६३. वसुदेवविंशतिप्रथमखण्डम् संघदासपाचककृतम् ११००० ।
 ६४. वसुदेवविंशतिद्वितीयखण्डम् अपराचार्यकृतम् ६६०० ।
 ६५. वसुदेवमध्यमखण्डम् सप्तसहस्रिका ९००० ।
 ६६. ऋषिभाषितानि ४५८५० ।
 ६७. खण्ड-पुद्गल-निगोद-वण-पञ्चविंशति-आवृत्तयो रत्नसिद्धसूत्रि-विस्तारिताः ।
 ६८. तत्त्वार्थसूत्रं औमात्वातं २२५ ।
 (१) भाष्य वृत्तिर्यं ।
 (२) टीका भास्वामिशिष्यासिद्धसेनीया भ.व्यव्याख्या-रुपा १८२८२, २२२८२ ।
 (३) तत्त्वार्थलघुवृत्तिः दिगम्बरी देव० विना नास्ति ।
 ६९. श्रावकप्रज्ञप्तिसूत्रं औमात्वातं ४०० ।
 (१) वृत्तिहारिमद्रो २३३० ।
 ७०. विशेषणवतीसूत्रं जिनभद्रसमाश्रमणकृतं गाथा ४३८ ।
 (१) विशेषण-वृत्तनास्ति ।
 ७१. प्रवचनसारोद्धारसूत्रं २७६ द्वारक्यं नेमिप्रन्दीयं श्लोकाः २००० गाथा १६०६ ।
 (१) वृत्तिः २००० मितसूत्रगर्मा, २७६ द्वार, १२४२ वर्षे सिद्धसेनसूरिकृता १८५००, १६५०० ।
 (२) विषमपदटीका भृश. विना न ।
 (३) धर्मसमरणीयवृत्तिर्मलयगिरिया, सूत्रमश्रा, ११०००, १०५०० प्रयन्तरे ।
 ७२. समयशारटीका. अमृतचन्द्रसूरीया भृश [पुरम्] देव [पत्तनं] वि [ना] न ।

७३. पञ्चास्त्रिकायसंग्रहऽभयसमयस्य वृत्तिः, अमृतचन्द्रसूरीया देव [पत्तनं] विना न ।
 ७४. प्रवचनसारस्य वृत्तिः, अमृतचन्द्रसूरीया देव० विना न ।
 ७५. पात्रसूत्रं प्राकृतमूलम्. गुप्ताणि २१० ।
 (१) वृत्तिय हारिभद्रा ८८० ।
 ७६. पञ्चस्तुक्तसूत्रं हारिभद्रम्, १६९४ ।
 (१) पञ्चस्तुटीका हारिभद्रा, ५०५० ।
 ७७. पञ्चाशक्तानि १९, हारिभद्राणि, ११८४ ।
 (१) पञ्चाशक्तवृत्तिः १९, नवाङ्गभयदेवैः ११२४ वर्षे कृता, ७४८० ।
 (२) आद्यपञ्चाशक्तवृत्तिः, ११७२ वर्षे यशोदेवीया सभावाच्या, ३२०० ।
 ७८. पोटशकसूत्रं हारिभद्रं, ३३० ।
 (१) पोटशकवृत्तिः, १५०० ।
 ७९. ३२ अष्टकवृत्तिः १०८० वर्षे जैनेश्वरी, ३३७४ ।
 ८०. धर्मसूत्राष्टक ३२ सूत्रे हारिभद्रं २७३, २५६ ।
 ८१. धर्म-चन्द्रवृत्तिर्मानिचन्द्रो, ३००० ।
 ८२. योगविन्दुसूत्रं हारिभद्रं, ५२० ।
 (१) योगविन्दुवृत्तिः ३६२० ।
 ८३. प्रथमरतिवृत्तिः ११८५ वर्षे हारिभद्राया, १८०० ।
 ८४. श्रावकमद्गकादि-विचार-गाथादिवृत्तिर्विजयदेवसूरि-कृता, ५५७ ।
 ८५. दर्शनसत्तरी हारिभद्रा, गाथा, १२० ।
 ८६. अविषयमासवृत्तिर्मलपारिहरेमचन्द्राया, ६६२७ ।
 ८७. नवतत्त्वगाथानां देवगुप्तीयानां भाष्यस्य नवाङ्ग-भयदेवैर्यस्य वृत्तिः ११७४ वर्षे यशोदेवी, २४०० ।
 ८८. “ एगविहै सम्मरुई ” इत्यादि सम्मत्तय गाथा-वृत्तिः, १०५ ।
 ८९. विचारसारप्रकरणं प्रद्यम्नसूरिकृतं सोपयोगि, बहुसंघर्षे गाथा, ८९७ ।
 ९०. पत्रयण संशोधः ।
 (१) पत्रयण संशोदवृत्तिः ।
 ९१. सिद्धिपञ्चाशिकासूत्र-वृत्ती तपाश्रीदेव-द्रसूरीये-७१० ।
 ९२. योनिगाथृतं वीरार् १०० धारसेनम् ।
 ९३. पिण्डविशुद्धिसूत्रं जे-वल्हमम्—गाथा-१०३ ।
 (१) वृत्तिः ११७६ वर्षे यशोदेवी-२८०० ।
 (२) दक्षिणा लघुट्टिहृत्-५५० ।
 (३) अमृतवृत्तिः ११६० वर्षे श्रीचन्द्रसूरीया ४४०० ।
 * प्रयन्तरे ‘ अनुवृत्तिः ११७१ वर्षे यशोदेवी-२८०० ।
 वृत्तिः ११८० वर्षे आचन्द्रसूरीया ४४०० ।’

१४. कर्मप्रकृतिसूत्रम्—गाथ—४७५ ।
 (१) टीका मलयगिरीया ससूत्रा—८००० ।
 (२) वेदनादि ८ करणशास्त्रा चूर्ण—७००० ।
 (३) कर्मप्रकृतिचूर्णटिप्पणकं मुनिचन्द्रायम् १९२० ।
१५. पञ्चसंमहस्य शतक—सप्ततिका—कथाप्रभुत्व—सत्कर्म—
 कर्मप्रकृति—संप्रदायकस्य वृत्तिः सूत्रकारचन्द्रार्थि
 कृता, पत्तनं विना न
 (१) पञ्चसंमहवृत्तिमलयगिरीया . . . ।
१६. दीपकप्रह्वृत्तिमलयदीपकम् (?), प्राक् तुल्य देग
 म्बाय्, भू० दे० विना न ।
१७. गृहकर्मविवाकवृत्तिः परमनन्दकृता—१९० ।
१८. गृहकर्मविवाकटिप्पणकम्—उदयप्रमसूरीयम् ४२० ।
१९. गृहकर्मस्तववृत्तिः श्रीगोविन्दाचार्यकृता १००९—
 १०९० ।
१००. गृहकर्मस्तवटिप्पण कृतिरूपम् उदयप्रमसूरीयम्
 १९२ ।
१०१. गृहकर्मस्तववृत्तिः ११७२ वर्षे हरिमद्राया—
 ५६० ।
१०२. वस्तुविचारसारासङ्गग्रहपदशोधितिकस्य जैनवल्लभस्य
 वृत्तिः प्राकृता रामदेवी ८०५ ।
१०३. आगमिकवस्तुविचारसाराऽपरनामकस्य जिनवल्लभी-
 यस्य गृहपदशोधितिकस्य श्रुतिमालयगिरी २१४० ।
१०४. गृहस्तोत्रवृत्तिमलयारि—हेमचन्द्राया ३७४० ।
१०५. जिनवल्लभीयस्य सार्धशतकस्य सूक्ष्मार्थविचारसारा
 पराख्यस्य वृत्तिः ११७२ वर्षे हरिमद्राया ८५० ।
१०६. सूक्ष्मार्थविचारसारापरनामक—जिनवल्लभीयसार्धशतक-
 वृत्तिः ११७१ वर्षे धनेश्वरीया ३७०० ।
१०७. शतकचूर्णः २३८० ।
१०८. शतकटिप्पणकम्—उदयप्रमसूरीयम् ९७४ ।
१०९. आगमिकवस्तुविचारसारास्य ' गृहपदशोधितिक '
 इति प्रसिद्ध नाम्नो जैनवल्लभस्य वृत्तिः—यसोदेवीभद्र-
 सूरीया (?)—३६३० ।
११०. सूक्ष्मार्थविचारसाराऽपरस्यसार्धशतककृते टिप्पण
 कम् १४०० ।
१११. सूक्ष्मार्थविचारसाराऽपरस्यसार्धशतकवृत्तिः प्रकृता ।
११२. आगमिकवस्तुविचारसारास्यपदशोधितिकवृत्तिः ११७३
 वर्षे हरिमद्राया ८५० ।
११३. नट्यकर्मविवाकशुचि—नट्यकर्मस्तववृत्ति—नट्यकर्म-
 स्वाभिराऽवचूर्ण—नट्यपदशोधितिकवृत्ति—नट्यसत—

कवृत्तयः ५ सूत्रका (तथाश्रीदेवेन्द्रसूरीया; १४८२,
 २३०, ३८५, २८००, ४२४० ।

११४. सचिचूर्णनिर्वाह ।
११५. सत्तरीटीका प्राकृता आनन्दगणितमहत्तरीया २३००,
 २२२८ ।
११६. कृत्तरिटिप्पणकम्, कृत्तरसमदेवगणितकृतम्, गाथा,
 ५४७ ।
११७. सत्तरीटीका मलयगिरीया ।
११८. सत्तरीमध्य नास्ति ।
११९. गृहसंमहणीसूर्य जिनभद्रगणितकृतम्, गाथा, ५३० ।
 (१) गृहसंमहणीवृत्तिः ११३९ वर्षे शास्त्रिभद्रा २८००—
 २५०० ।
 (२) गृहसंमहणीवृत्तिमालयगिरी ५००० ।
 (३) लघुसंमहणीवृत्ति, ' नामत अरिहताई ' ति,
 मलयारिदेवभद्राया ३५०० ।
१२०. गृहसंमहणीसूर्यवृत्तिमालयगिरी ७८८७ ।
१२१. गृहसंमहणीसूर्यवृत्तिः सिद्धिसूरीया ११९२ वर्षे,
 ३००० ।
१२२. गृहसंमहणीसूर्यवृत्तिः, १२३३ वर्षे देवभद्राया १०००,
 स्तम्भने ।
१२३. गृहसंमहणीसूर्यवृत्तिमालयगिरी ५१११ ।
१२४. लघुसंमहणीसूर्यवृत्तिहरिमद्राया ५१११ ।
१२५. हेनसम सत्तरी सत्तरीमालयगिरीवृत्तिवृत्तकृतम्, लघु-
 स्वाभिरावकृतम्..... ।
 (१) वृत्तिः, २८८० ।
१२६. जम्बूद्वीपसंमहणी वृत्तिः १५० ।
१२७. नीलरागस्तव ० ... २० ।
 (१) वृत्ति प्रमानन्दी २१२५ ।
१२८. धोमनस्तुतय. ९६ ।
 (१) वृत्ति प० धनपालकृता, ९५० ।
१२९. धनपालपञ्चाशिका ।
 (१) धनपालपञ्चाशिकावृत्ति. प्रमानन्दसूरीया ६४०,
 ११०० ।
१३०. ' निम्नलनहे वि ' इति वीरस्तवस्य प० धनपालकृत
 स्य वृत्ति सुभाचार्यकृता २२५ ।
१३१. अक्षनामस्तवदीपिका भृगुपुरं विना नास्ति ।
१३२. अक्षनामस्तववृत्ति गुणाकराचार्य १४२६ वर्ष
 कृता, १५७२ ।
१३३. ' जनेन येन ' स्तुतिवृत्तिः ३०५ ।

२२२. प्रस्तावनामालाभूतिः १४२९ वर्षे देवेन्द्रमूर्तिरुत्था।
 २२३. उद्देशनिकागणितः १८१६ वर्षे आभिलिखनप्रदाय-
 गृहिणा १२०२३।
 २२४. श्रीधारादिनाथचरित्रं प्रकृतम्, जयसिंहदेवराज्ये ११६०
 वर्षे यथेष्टमानसूरिचरित्रम्, ११०००, १२०००।
 २२५. श्रीधारादिनाथचरित्रं प्रकृतम् प्रसिद्धं न।
 २२६. श्रीधारादिनाथचरित्रं सं० न।
 २२७. श्रीधारादिनाथचरित्रं प्रकृतं न।
 २२८. श्रीधारादिनाथचरित्रं सं० न।
 २२९. श्रीधारादिनाथचरित्रं सं० न।
 २३०. श्रीधारादिनाथचरित्रं सं० न।
 २३१. सुमतिचरित्रं सं० न।
 २३२. सुमतिचरित्रं प्रा० सुमतिं संमप्रसिद्धं कुमावपावराज्ये
 कृतम् ९६२१।
 २३३. पद्मप्रमचरित्रं प्रकृतं न।
 २३४. सुप्रसिद्धं सं० न।
 २३५. सुप्रसिद्धं ११९९ वर्षे लक्ष्मणगणितम्, गाथा
 ८७०० श्लोकाः १०१३८-१०१८८।
 २३६. चन्द्रप्रमचरित्रम्, सं० १३०२ वर्षे सार्वभौमम्
 ६९५१।
 २३७. चन्द्रप्रमचरित्रं सं० प्रा० १२६४ वर्षे देवेन्द्रमूर्तिरुत्था
 ५३२५।
 २३८. चन्द्रप्रमचरित्रं प्रा० याज्ञिकदेवम् ६४००।
 २३९. चन्द्रप्रमचरित्रं प्रा० श्रीधारादिनाथराज्ये हारिमद्रम्
 ८०३२।
 २४०. सुविधिचरित्रं प्रा० न।
 २४१. सुविधिचरित्रं सं० न।
 २४२. शीतलचरित्रं सं० न।
 २४३. शीतलचरित्रं प्रा० न।
 २४४. श्रेयांसचरित्रं सं० १३३० वर्षे माननुगाचार्यः कृतम्,
 ५१२४, स्तम्भतीर्थ विना न।
 २४५. श्रेयांसचरित्रं प्रा० देवमद्राचम् ११०००, स्तम्भतीर्थ
 विना न।
 २४६. श्रेयांसचरित्रं प्रा० श्रीधारादिनाथराज्ये हरिमद्राचार्य-
 कृतम्, गाथा ६५८८, स्तम्भतीर्थ विना न।
 २४७. वासुपूज्यचरित्रं सं० ११९९ वर्षे यथेष्टमानसूरिचरित्रम्
 ५४९४।
 २४८. वासुपूज्यचरित्रं प्रा० चांद्रप्रमम्, हेममूर्गादिज्ञोपितम्
 ८०००, स्तम्भतीर्थ विना न।

२४९. विमलचरित्रं सं० न।
 २५०. विमलचरित्रं प्रा० न।
 २५१. अंतर्गतचरित्रम् प्रा० गाथाबद्धं १०१६ वर्षे श्रीधारादिनाथ-
 मूर्तिरुत्था गाथाः १२०००।
 २५२. धर्मचरित्रं सं० नैमिषिणीयं न।
 २५३. धर्मचरित्रं प्रा० न।
 २५४. धर्मचरित्रं सं० १३३२ वर्षे श्रीधारादिनाथम् ४८५१।
 २५५. धर्मचरित्रं सं० धर्मचरित्रमूर्तिरुत्था ५५५४।
 २५६. धर्मचरित्रं सं० धर्मचरित्रमूर्तिरुत्था १३१० वर्षे
 कृतम् ८९११।
 २५७. धर्मचरित्रं प्रा० गद्यपद्यम् ११६० वर्षे श्रीधारादिनाथ-
 मूर्तिरुत्था १३१००।
 २५८. धर्मचरित्रं सं० धर्मचरित्रमूर्तिरुत्था १४०२ वर्षे
 कृतम् ६२०२।
 २५९. धर्मचरित्रं सं० विष्णुधर्मचरित्रम् ५५५५।
 २६०. धर्मचरित्रं प्रा० न।
 २६१. अरचरित्रं प्रा० न।
 २६२. अरचरित्रं सं० न।
 २६३. धर्मचरित्रं प्रा० ११७५ वर्षे जैनधर्मम् ५५५५।
 २६४. धर्मचरित्रं सं० श्रीधारादिनाथम्।
 २६५. धर्मचरित्रं बहुप्रकृतं हरिमद्राचम् कुमावपावराज्ये क-
 र्तुं गाथाकाव्यमयं प्रस्तावम् १०००।
 २६६. धर्मचरित्रं सं० धर्मचरित्रमूर्तिरुत्था २० व्या-
 नकथाकथितम् ५१८५।
 २६७. धर्मचरित्रं प्रा० ११९३ वर्षे चंद्रमूर्तिरुत्था गाथा
 १०९९४।
 २६८. धर्मचरित्रं प्रा० धर्मचरित्रम् ११९३ वर्षे चंद्रमूर्तिरुत्था गाथा
 ५५५५।
 २६९. धर्मचरित्रं सं० न।
 २७०. धर्मचरित्रं प्रा० न।
 २७१. धर्मचरित्रं प्रा० १२१६ वर्षे हरिमद्राचार्यः कृतम्
 ८०३२।
 २७२. धर्मचरित्रं प्रा० भवभावावृत्तचरित्रमन्तरंगचरित्र-
 ताभिधम् ५१०२।
 २७३. धर्मचरित्रं प्रा० गद्यपद्यम् १२३२ वर्षे देवमूर्तिरुत्था-
 रचनम् १२६००।
 २७४. धर्मचरित्रं सं० संधानंदचरित्रम्।

२७५. पार्थचरित सं १२१८ वर्षे भाष्यदेवसुरिकृतम् ६७७४-
६४०० ।
२७६. पार्थचरितं सं. माणिक्यचन्द्रसुरिकृत १२७६ वर्षे
५७७८ ।
२७७. पार्थचरितं प्रा० ११६५ वर्षे नवांग-अममदे-प्रथमशि-
ष्यदेवभद्राचार्यैः कृतम् ९००० ।
२७८. पार्थचरितं प्रा० दशभववाच्यं गाथा २५६४ अंया-
प्रभु ३२०० ।
२७९. महावीरचरितं सं० न ।
२८०. वीरचरितं प्रा० ११३९ वर्षे गुणकन्दगणिकृतम्
१२००० ।
२८१. वीरचरितं प्रा० ११३९ वर्षे भेमिचन्द्रसुरिकृतम् १२००० ।
२८२. वीरचरितं प्रा० ११३९ वर्षे भेमिचन्द्रसुरिकृतम् २८१०-
२४०० ।
२८३. महापुरुषचरितं सु० प्रा० शालाकापुरुषवृत्तवाच्यं ९२५
वर्षे शालाचार्यैः कृतम् १०००० ।
२८४. महापुरुषचरित्र प्रा० ६३ शालाकापुरुषवृत्तवाच्यं आत्र-
कृतम् गाथा ८७९०, श्लोकाः १००५० ।
२८५. कथावलीप्रथमपरिच्छेदः, प्रा० सु० २४ जिन-१२
चक्रपादित्हरिभद्रसुरिपर्यंतस्तत्पुरुषचरित्रवाच्यो भाद्र-
श्वरः २३८०० ।
२८६. त्रिपष्टिः श्रीकृष्णमादि ६३ महापुरुषवृत्तप्रतिबद्धा श्री-
हेमसूरीया संपूर्णा ।
२८७. त्रिपष्टीयं श्रीआदिचरितं केवलं ५००० ।
२८८. त्रिपष्टीयं रामायणं पृथक् ३७१४ ।
२८९. त्रिपष्टीयं भेमिचरितं ४९६५ ।
२९०. त्रिपष्टीयं पार्थचरितं १६०० ।
२९१. त्रिपष्टीयं महावीरचरितं ३४९२ प्रसंगे ५१६१
देशगिरि ।
२९२. परिशिष्टपर्व जम्बूद्वीपमुखाऽऽर्यरक्षितान्तपुरुषवाच्यं
३४६० ।
२९३. त्रिपष्टिगतं नलचरित्रं ११७७ ।
२९४. पद्मानन्दमहाकाव्यं २४ जिनवृत्तरूपं पं०धरचन्द्र-
कविवृत्त १८ सर्गैश्च ८१९१ ।
२९५. श्रीगान्धर्व १० गणधरचरित्राणि प्रा० सुत्यानि ४३५० ।
२९६. अममजिनस्य भाषितेनश्वरिण मुनिरत्नसूरिभिः १२५२
वर्षे कृतम् ।
२९७. पुण्डरीकचरित्रं सं० १३७७ वर्षे कामरुप्रभं, कर्वाच-

- द् अनागमिकार्यं ३३०० ।
२९८. ११ गणधरचरित्रं सं० त्वरतर देवमत्स्यपापायीयं
६५०० ।
२९९. हरिवंशचरितं सं० नेम्यादिबहुपुत्रवाच्यमायनरहिं
श्लोकाः ९००० ।
३००. हरिवंशचरितं सु० चन्द्रिकचक्रिण पुराणभाषानिबद्धं
नेम्यादिवृत्तवाच्यं ९००० ।
३०१. पद्मचरितं प्रा० वीरसु ५३० वर्षेषु गतेषु विमल-
सूरिभिः कृतं मुरुषैवर श्वरसं १०५५० ।
३०२. सीताचरितं प्रा० ३१०० ।
३०३. सीताचरितं धर्मधर्मभाद्रगतं प्राकृतं ३४०० ।
३०४. प्रत्येकसूत्रचरितं १२६१ वर्षे श्रीतिलकीयं ६०५० ।
३०५. जम्बूद्वीपचरितं प्रा० ८७ (?) वर्षे गाथा १६४४ ।
३०६. जम्बूद्वीपचरितं प्रा० सत्यादिपद्ये १०१६ वर्षे ३०
सागरदत्तेन कृतं २६०० ।
- (१) तस्य टिप्पण ११०० ।
३०७. पृथ्वीचन्द्रचरितं प्रा० मुराध गाथादिभ्यं ११७१ वर्षे
शान्तिसूरिभिः कृतं ७५०० ।
- (१) पृथ्वी० टिप्पण १२२६ वर्षे कानकचन्द्रं ११०० ।
- (२) पृथ्वी० चरित्रसंकेतो विषमपदवाक्यादौ रत्न-
प्रसूरीकृतः ५९५ ।
३०८. समरादित्यचरित्रं प्रा० मूल हरिभद्रं गाथा ३००००
३०९. समरादित्यचरित्रं सं० १३२४ वर्षे प्रद्युम्नीयं ४८७४ ।
३१०. पाण्डवचरित्रं सं० मलधारि देवप्रभसूरीय ९८८४ ।
३११. प्रभावकचरितं सं० वज्रस्वामिप्रमुखप्रभावकाचार्यवृत्त-
वाच्यं १३३४ वर्षे प्रभावचरित्रं ५७७४ ।
३१२. कुमारपालप्रतिबोधः बहुधा० शतार्थसोमप्रभसूरिभिः
१२४३ वर्षे कृतः ८६०० ।
३१३. कुमारपालप्रतिबोधः सं० १५७५ ।
३१४. मुनिपतिचरित्रं प्रा० ११७२ वर्षे हारिभट्टीयं गाथा
१४४ श्लो० ८०५ ।
३१५. मुनिपतिचरित्रं सं० १००७ वर्षे जम्बूनागमुनिवृत्त
३२०० उद्भू० २७०० ।
३१६. महीपालचरित्रं स्तम्भतीर्थं विना न ।
३१७. उपमितमवप्रश्नोद्धारः सं० देवसूरिकृतः २३७० ।
३१८. उपमितप्रभवप्रश्नोद्धारः सं० मुच्यो वार्धमानः १४६० ।
३१९. उपमितकारोद्धारः सं० १०९८ वर्षे
न्दसूरीयः ५७३० ।

३६६. आत्ममीमांसाऽन्वेका नामाऽष्टप्रह्म्यातर्को विधानम्-
सूरियः ८००० ।
३६७. प्रमाणमीमांसासूत्र-वृत्ती हेमसूरीये भू०. पृ० ... ।
३६८. अनेछान्तवादप्रवेशो हारिमद्रः—७००—७३० ।
३६९. सर्वज्ञसिद्धिप्रकरणं हारिमद्रम् ३०० ।
३७०. द्रव्यालंकारस्तर्कः पं० रामचन्द्रयुगचन्द्ररुतः ४०० ।
३७१. प्रमाणसंग्रहप्रकरणं ९ प्रस्ताव जैन ७१२ ।
३७२. प्रमेयस्तकोदाः सर्वज्ञाधिष्ठादि २१ वादस्थलः चन्द्र-
प्रभसूरीयः ११८० ।
३७३. पट्टदशन दिव्यभाषिचारः ।
३७४. पट्टदशनसमुच्चयसूत्र-वृत्ती, सूत्र-८६, पृ. १२५२ ।
३७५. पणिगामिवस्तुव्यवस्थापनं १८० ।
३७६. वेदिकानिषधो वस्तुव्यवस्थापनरूपः ।
३७७. सर्वार्थप्रमाणभाष्य-दशमधिरासद्वयस्थानि ४, -३१० ।
३७८. केवलमुक्ति-वृत्तीमुक्तिप्रकरणं दशमधिरासनरुत-
शाकटायनरुतं, तत्संग्रहस्थानि १४, प्रत्यन्तरे १० ।
३७९. हारिमद्रो नन्दिवृत्त्याद्यनमरारसंबद्धसर्वज्ञाव्यवस्था-
पनायादः ।
३८०. सर्वज्ञव्यवस्थापनावाद्यो योऽपि सोऽपि बहुरूपो वा
३८१. अवशब्दनिराकरणं २१५ ।
३८२. मेदामेदोद्यनेकान्तव्यवस्थापनं च-२०० ।
३८३. स्याद्वादमञ्जरी मणिपेणाचार्यः १३४९ वर्षे कृता
३००० ।
३८४. समन्तभद्ररुत-श्रीवर्धमानस्तोत्रवृत्तिविमर्षाः ।
३८५. अपौरुषेयवेदनिराकरणम् ।
३८६. प्रत्यक्षानुमानाधिकप्रमाणनिराकरणं च यशोदेव-
साधुलतम् ।
- आथ तु त्रिवर्गपरिहारेण* । अर्गां पश्चाणि ११, प्रत्य-
न्तरे ५, १४ ।
३८७. श्वेताम्बादर्शनधिद्विः, प. १९ ।
३८८. लोकनस्वनिर्णयो हारिमद्रः-१७० ।
३८९. न्यायकुमुदचन्द्रसूत्र वृत्ती दिगम्बरीयमकलङ्कदेव-म-
भादन्द्ररुते सू० पृ. १६००० ।
३९०. प्रमेयस्तमाला परीक्षासुखपुवृत्तिरपरनाश्री, तत्सूत्रं
च-पृ. १५६७ सू. १४० ।
३९१. न्यायविनिश्चयवृत्तिः-अनन्तवीर्यरुता दिगम्बरी ।

३९२. व्यासपण्डितवृत्तिस्तत्त्वार्थसूत्राद्यलोकन्यायारूपा ।
३९३. पत्रपरीक्षा च पत्रव क्यप्रकारव्याख्या ।
३९४. प्रमेयकमलमार्तव्यो दिगम्बरीयप्रभाचन्द्रायः
११०० ।
३९५. अष्टाध्यायपरिहर्णाटीका दिगम्बरीयतर्ककथा ।
३९६. हेतुविन्दुटीका तर्ककथा ।
३९७. प्रमाणवार्तिकाऽऽद्यपरिच्छेदसूत्रं बौद्धीयम्,
(१) नद्वृत्तिश्च आद्यपत्र २-३ रहिता ।
३९८. तर्कभाषा टीका बौद्धमतवाच्या बालावयोध ३ परि-
च्छेदा ८४० ।
३९९. न्यायविन्दुसूत्रं बौद्धमतवाच्याम् ।
(१) स्वीका च धर्मान्तराचार्यरुता सू. टी. १४७७ ।
४००. न्यायप्रवेशरटीका च हारिमद्रो सू. टी. ५१७ ।
४०१. न्यायप्रवेशरटिप्पण ११६९ वर्षे श्रीचन्द्रायम् ।
४०२. तत्त्वसंग्रहः धरुतोऽन्यादिनिरासवाच्या बौद्धा-
३७६६ ।
४०३. न्यायकुसुमाञ्जलितर्कः ५०८६ मितः ।
४०४. न्यायवेदसूत्र (१) मध्य, (२) नार्तिक,
(३) तात्पर्यटीका, (४) तत्परिहृष्टि,
(५) न्यायालंकारवृत्ति, (६) पञ्चप्रस्थानन्यायतर्काणि
(कमलाः)-भस्पाद-वास्तव्यायन-भारद्वाज-वाचस्पति-उदयन-
श्रीकण्ड-अभयतिलकोपाध्यायकृतानि वृत्ति
५३००० ।
४०५. न्यायकलिकाटीका नैयायिकीय १६ पदार्थतत्त्ववा-
च्या ४०५ ।
४०६. सारसंग्रहो नैयायिकीय १६ पदार्थवाच्यः ।
४०७. न्यायभूषणसूत्रं न्यायसारपरनामकं ४०० ।
(१) न्यायसारटीका जायसिंहो २९०० ।
(२) न्यायसारटीका न्यायसारविचारारूपा ।
(३) न्यायसारविवेचना ।
४०८. मतमनोहरप्रत्यगतहेतुसाध्यगताशेषविरोधनिर्हणसूत्र-
व्याख्यारूप ७४० ।
४०९. पट्टदाधैयवैशंप्रकरणं वैदेषिकीयं-१५० ।
४१०. भास्करभूषण तृट्यादिवाच्यः ।
४११. किरणावली ।
४१२. न्यायनन्दरटीका वयःस्थायम् ।
४१३. किरणावलीटिप्पणकं द्रव्यपदार्थः २३७१ ।
४१४. कन्दली-किरणावलीः सुसम् ७७७ ।

* कवर्ग-चवर्ग-टवर्ग-इति वर्गत्रयगतव्यञ्जनानि परि-
हृत्यान्यैर्व्यञ्जनेरेतत् प्रकरणं रचितम् ।

५१३. नेमिदूतकार्यविक्रमकृतम् ।
 ५१४. कुट्टनोमतशब्दे १० दामोदरकृतं १२९० ।
 ५१५. विक्रमांगशुद्धयकव्यम् ।
 ५१६. बालभारते ४३ सर्गे अमरकविकृतं परसमयवाच्यं ६७७४ ।
 ५१७. अभिनन्दकाव्य रामचरितं वा ३६ सर्गम् ।
 ५१८. सोमशालविलासकाव्यम् ।
 ५१९. जलहणकविकृतपाव्यम् १००० ।
 ५२०. नरनारायणनन्दकाव्ये भग्निवस्तुपालकृतं १६०० ।
 ५२१. तिलकमञ्जरीकथा, धनपालकृता चम्पूरूपा वर्णन-
 मा ।
 (१) तिलकमञ्जरीटिप्पणकं शान्त्याचार्याय १२०० ।
 ५२२. तिलकमञ्जरीराशेद्वारा लघुयनपालकृता—१२०० ।
 ५२३. काव्यश्रीकथा बाणकविकृता पुलिन्द्रकृतसप्तमा ।
 ५२४. श्रीभारतमञ्जरीकथा सं० गद्यश्रवणायी, परतीर्थ सं० म-
 हेंद्रकृता ३१०० ।
 ५२५. वासवदत्तकथा सुबंशुकविकृता ।
 (१) वासवदत्ता० टीका नारायणकविकृता ।
 ५२६. चम्पूकथा ७ उल्लासः त्रिविक्रमभट्टकृता भगवन्तीक-
 थाऽपरताम्नी २५०० ।
 (१) चम्पूकथाटिप्पणकं चण्डपालकृतं १२०० ।
 ५२७. दातवाहनकृतगाथासप्तशती ।
 (१) टीका भुवनपालकृता ४५०० ।
 (२) शात० गाथावृत्तिः, श्रीआजमेर कृता ।
 (३) शात० गाथावृत्तिः, जलहणदेवकृता ।
 ५२८. रघुकार्यं १० सर्गं १५७२ ।
 ५२९. माघकाव्यं २० सर्गं २७०० ।
 (१) माघश्राव्यटीका वल्लभदेवकृता १२००० ।
 ५३०. कुमारसंभवकाव्यं ८ सर्गं ६१५ काव्यानि ।
 (१) कुमारसंभवकाव्यवृत्तिर्दिगम्बरीयधर्मकीर्तिकृता ।
 ५३१. मेघदूतकाव्यम् ।
 (१) मेघदूतवृत्तिः ।
 ५३२. किरातकार्यं १८ सर्गं भारविकविना वर्ण-
 कृतम् ।
 (१) किरातकाव्यस्य भरवीयस्य वृत्तिः प्रकाशवर्ण-
 कृता ।
 (२) किरातार्जुनीयकाव्यटीका लोकानन्दकृता ।
 ५३३. गोदधकाव्यं माधाः ११६८ ।

५३४. नैपथ्यहाकव्यं श्रीहर्षकविकृतं २२ सर्गं काव्यानि
 ४००९ ।

- (१) नैपथ्यटीका चाण्डर्षी ।
 (२) नैपथ्यटीका गादाधरी ।
 (३) नैपथ्यटीका विद्याधरी ।

५३५. दशरूपालोकम् ।
 ५३६. भारतशाव्यम् ।
 ५३७. धनुर्विद्या च ।

नाटकानि ।

५३८. रघुविलासनाटकं सं० रामचंद्रकृतम् ।
 ५३९. नलविलम्बनाटकं सं० रामचन्द्रकृतम् ।
 ५४०. बाणाक्षयनाटकम् ।
 ५४१. मोहपराजयनाटकं मन्त्रिप्रयाः पालकृतं श्रीकुमार-
 कव्यप्रतिबद्धं वायोऽनन्दव्याच्यं १३२० ।
 ५४२. मानमुद्राऽभञ्जननाटकं सनत्कुमारचार्कि-शिलासवती-
 संवत्प्रतिषर्द्धं देवचन्द्रगणिकृतं १८०० ।
 ५४३. प्रवृद्धगैहिंगेयं रामचन्द्राव्यं १००० ।
 ५४४. सुद्रितकुमुदचन्द्रनाटकं यशोधरकृतं ५३५ ।
 ५४५. प्रयोधचन्द्रोदयनाटकं १०१० ।
 ५४६. दूतांगनाटकम् ।
 ५४७. भोगारतिलकनाटकम् ।
 ५४८. मुरारिनाटकम् ।
 (१) मुरारिटिप्पणकं देवमरसुरिकृतं ७५०० ।
 (२) मुरारिटिप्पणकं सल० नारयणद्रव्यूयं २३५० ।
 ५४९. अनर्धरापवननाटकम् ।
 ५५०. सुदाराक्षसनाटकं चन्द्रगुप्त-बाणाक्षसंबद्धं विद्याभदेव-
 कृतं ।
 ५५१. मुकुलमण्डनं वस्तुनालसंबद्धम् ।
 ५५२. राधाशुद्धयनाटकं सं० नानन्दकृतं १० अंकम् ।
 ५५३. चन्द्रलस्तानवियननाटकम् ।
 ५५४. विक्रमांबेदीनाटकं कालिदासकृतं ७०० ।
 ५५५. कर्पूरमंजरी नाटकम् ।
 ५५६. रत्नावलीनाटिका हर्षदेवकृता ७३३ ।
 ५५७. चनमालानाटिका सं० भवचन्द्रकृता ।
 ज्योतिः—शकुन—योगाम्नाय—मन्त्र—कल्प—सा-
 मुद्रिक—शास्त्राणि ।
 ५५७. व्याख्यानतिलकसूत्र—पूतो योस्त्रिकृतं सू. गा. ७५० ।
 ५५८. व्याख्यानसूत्रः ३९५ । वृत्तिः १६०० ।

५५९. कुरपवंतः (?) ।
 ५६०. प्रदन्व्याकरण ज्योतिर्वृत्तिः ।
 ५६१. चूडामणिग्रन्थः २३०० ।
 ५६२. चूडामणिधारग्रन्थः ४१ प्रकरणे लक्षमणमष्टकतः ६७२ ।
 ५६३. त्रिशती धीधरीया ।
 ५६४. गणितशास्त्रम् ।
 ५६५. चन्द्रोन्मीलनचूडामणिधारशास्त्रम् ।
 ५६६. ज्ञानवृत्तरी ।
 ५६७. वस्तुसार १, ज्योतिषसार २, द्रव्यपरीक्षा ३, रत्न-
 परीक्षा ४, त्रिशती तद्वृत्तयः ६ ग्रन्थाः १३०२ वर्ष
 ठ. केकृताः ।
 ५६८. गणिततिलकग्रन्थवृत्तिः सिंहतिलकसूरीया ।
 ५६९. प्रदन्व्याकरणो नरचन्द्रमूरिकृतः २० प्रकाशाः ३६० ।
 ५७०. नरपतिजयचर्यो एकाशीतिकादि ८४ प्रका ।
 ५७१. नरपतिजयचर्यो गतग्रहा ।
 ५७२. नयनपूर्वकपञ्चदशनिधिविवरणं करणशेषवृत्तिनामकं
 १९० ।
 ५७३. वाग्वीर्यसिंहिता सूत्र-वृत्ति—४००० ।
 ५७४. भाद्रबाह्वीसंहिता सूत्रम्..... ।
 ५७५. सारावलीज्योतिष्कं २५०० ।
 ५७६. ज्ञानदर्शनज्योतिष्कं त्रैलोक्यप्रकाशं हेमप्रमसूरिकृतं
 ११४१ ।
 ५७७. भुवनदीपकः पाञ्चमसः १६७ ।
 (१) वृत्तिः सिंहतिलकीया १७०० ।
 ५७८. रत्नकोशज्योतिष्कम् ।
 ५७९. रत्नमालाज्योतिः ।
 ५८०. पट्टिर्षत्सरादिदेवग्रन्था अनेकविधा इह अनिर्दिष्ट-
 नामकाः ।
 ५८१. हर्षप्रकाशज्योतिष्क हर्षदेवगणिकृतम् ।
 ५८२. चन्द्रार्कमहाराज्योतिष्कम् ।
 ५८३. आशाधरीयरत्नतिः, यन्त्राणि च ।
 ५८४. चूडज्जातकं २५ अम्बामरुषं बरादमिहिरियम् ४०० ।
 ५८५. श्रीधरीयजातकपद्धतिटीका ।
 ५८६. पद्मचर्चाशिकावृत्तिः सप्तम्याया ५५० ।
 ५८७. प्रदन्व्यापञ्चदशतिः मष्टोपलकृता १८० ।
 ५८८. विद्वान्नयनमालप्रदन्व्यापञ्च १९ अम्बार्थं श्रीमोजी-
 यम् ।
 ५८९. पुस्तकेन्द्रग्रन्थः गा. ११५ ।

५९०. रुक्मानं पासावेवलीविशेषरूपं श्री. २१५ ।
 ५९१. मातृकाकेवलं ५० ।
 ५९२. देवतादि ११ द्वारः कालज्ञानम् ।
 ५९३. प्रारुतं पिपिलिकान्नम् ।
 ५९४. नाडीसंचारज्ञानं च ।
 ५९५. सिद्धाज्ञापद्धतिः ।
 ५९६. नाथपुस्तिका योगिनामाम्नायग्रन्थसत्का हरीमेललाज-
 नाथर्यकराज्जनसिद्धादियोगादियाद्या, खेलादि मा-
 न्दुयाकृता, गाया १३९७ ।
 ५९७. अर्षकाण्डं दुर्गदेवीयं ४० १०—१४७ ।
 ५९८. मन्त्रमहोदधिः या दिगम्बर श्रीदुर्गादेवतः, मं.
 गा. ३६ ।
 ५९९. भैरवप्रभाषतीकन. श्रीमाल्लियेणसूरिकृतः ४०० ।
 ६००. रुद्राक्षकल्पः ७५ ।
 ६०१. श्वेताक्षकल्पः ।
 ६०२. कामरूपपयाशिका निमित्त गच्छा तद्वृत्तिः मू. वृ. ८८
 गा. (३) ।
 ६०३. वसन्तराजो लावचर्मणः २३५० ।
 ६०४. शकुनसारोद्गारो माणिक्यसूरीयः १३३८ वार्षिकः
 ५०८ ।
 ६०५. शकुनशास्त्र प्रारुतं वार्तामयं ४. १४ ।
 ६०६. सामुद्रिकम् ६७ ।
 प्रकीर्णकग्रन्थाः ।
 ६०७. श्रीशान्तिनाथचरित दिगम्बरियं गा. २१९६ ।
 ६०८. यशोधरचरितं दिगम्बरियम् ।
 ६०९. यशोधर काव्यपिञ्जका ।
 ६१०. प्रतिकमणदीकामूर्धं दिगम्बरियम् ।
 ६११. आनन्दसमुच्चयः ।
 ६१२. अष्टात्मशास्त्रं बहुमकरणमयम् ।
 ६१३. पातञ्जलियोगशास्त्रवृत्ति सूत्रयुता श्रीभोजराज-
 कृता ।
 ६१४. आत्मावबोधो मलया. देवममसूरिकृतः ५५० ।
 ६१५. ज्ञानार्णवोऽप्यात्मनाथ्यः श्रीजमचन्द्रसूरीयः हेमयोग-
 शास्त्रनुव्याच्यो बहुवेत्तामयः ४००० ।
 ६१६. ज्ञानदीपिका विण्दस्यादिप्यानवाच्या ।
 ६१७. तत्त्वार्थसारायं मोक्षसाधनं अमृतचन्द्रमूरिकृतम् ।
 ६१८. संयोगद्वन्द्वलो विमलचार्ककृता, वारिका ५२ ।
 ६१९. ज्ञानार्णवशुद्धोपयोगिसूत्रम् ।

६२०. शानाद्भुशः वा. २८ ।

६२१. योगवल्पट्टम् ।

६२२. अमृताभिष्टिः ।

६२३. विरूपाक्षयोगशतं गा. १०१, अ. ६१ ।

६२४. साम्यज्ञान विजयतिर्द्वय १०४ ।

६२५. शमभावशतं अन्तरङ्गक्यावचर्थं श्रीवर्मोपसुरि-
तम् १०२ ।

६२६. गीता भारते भागवतधर्मता ७१६ ।

६२७. धर्मपरीक्षा परसमयाऽसंयद्भतात्राच्या दिगम्बरीयाऽ-
मितगानिहता ।

६२८. वज्रसूत्री विमज्जालादिनिरासयाच्या ।

६२९. भविष्योत्तरोद्धारः परसमयवहुस्वरूपवाच्यो जैनकृतः
परसमयज्ञानाय ।

६३०. द्विजवनचपेटा विप्रजालादिनिराकरणवाच्या ।

६३१. वनस्पतिस्तूरी (१)	} श्रीसुनिचन्द्रसारे - कृता (प्रत्येक) गा. ७०
६३२. वाक्षिकस्तूरी (२)	
६३३. अङ्गुलीध्वारा (३)	

६३४. साम्यव्यवस्वरूपं जिनचन्द्रगणिकृतं, गा. १०४ ।

६३५. जिनप्रतिष्ठा ।

६३६. यतिप्रतिष्ठास्थापनस्यलं जिनदेवसुरिकृतं, ११८५ वर्षे,
प. २६ ।

६३७. श्रीशान्तिवेण्णीया पर्वपक्षिका अपनविध्यादिवाच्या ।

६३८. श्रीलीलाचार्या धूषावल्यादिपुति ।

६३९. सुभाषव्यादिवाच्या समुद्राचार्यकृता २५० ।

६४०. ग्रहदोषप्रमाणवाच्याः (१)

दोषशान्तिकं जैन (२)

” लौकिकं (३) च

त्रयमपि सिद्धतिलकसुरिकृतं त्रयाणां मयापम् १२४
संख्या पक्ष ५ ।

६४१. आलोचनाविधान-आलोचनपदसमूहादयोऽनेके संप्रदाः ।

६४२. सूक्ष्मस्माकर-सुभाषितसमुद्रप्रमुखाः सुभाषितप्रत्या
अनेकविधाः सर्वे धर्मकुमारीयाः ।

६४३. शुभावली ।

६४४. दानादिप्रकरणं सं. सूत्रार्थस्तं सप्तवत्सः काव्यादि-
बन्ध प. ३४ ।

६४५. मुधाकलशाप्यसुभाषितकोः ५. रामचन्द्रहठः,
पत्र..... ।

६४६. दीपालीकरः १४४ ।

६४७. दीपोरमवक्त्रः, सं. १३८१ वर्षे विनयचन्द्रकृतः
२७४ ।

६४८. दृष्टान्तशत १०४ ।

६४९. तत्त्वविन्दुः ७१ ।

६५०. बोधप्रदीपिका ५२ ।

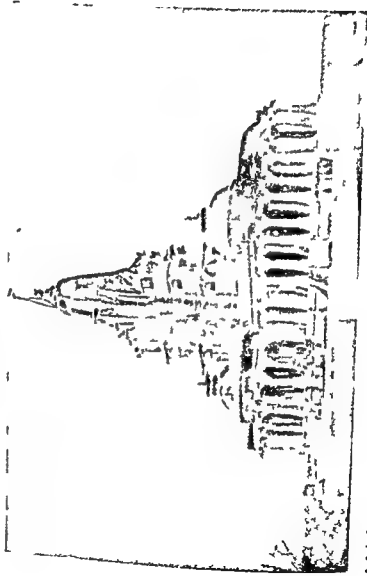
६५१. विन्दुरप्रकरः ९८ ।

६५२. इष्टोपदेशः ५१ ।

६५३. सर्वेऽपि सूक्तस्थाः-वन्मयापम् ३८५ ।



जैन साहित्य संशोधक



चतुर्थीय जैन मंदिर, कापरखा, जोधपुर (मात्वाट)

જેમો એકજ વ્યક્તિની આશાનુસાર પોતાની જીવનચર્યા પાલતા હોય તેવા યથા યતિયોના એક સમુદાયને જૈનસાહિત્યમાં ' ગચ્છ ' ના નામથી સંબોધાય છે. ' ગચ્છ ' નો જો નાયક હોય-જે વ્યક્તિની આજ્ઞામાં યથા યતિ સમુદાય વર્તતો હોય તેને આચાર્ય કહેવામાં આવે છે. આલંકારિક ભાષામાં કહીએ તો ગચ્છ-નો નાયક એ એક પ્રકારે રાજા ગણાય. જેમ રાજાની આજ્ઞાનુસાર તેનો યથો અધિકારી-ચર્ગ અને પ્રજા-ચર્ગ પોતાની જીવનચર્યા ચલાવે છે તેમ આચાર્યની આજ્ઞાનુસાર તેનો યથો યતિસમૂહ અને અનુયાયીગણ પોતાની ધર્મચર્યા ચલાવે છે. આ આલંકારિક કલ્પના મધ્યકાલમાં તો લગભગ યથાર્થરૂપ પણ ધારણ કરવા જેટલી પ્રચલિત થઈ ગઈ હતી. એ સમયમાં આચાર્ય સૂતિમન્ત રાજા જેવાજ રૂપમાં દેશવાના મોહમાં સપડાઈ ગયા હતા. રાજાની માફક આચાર્ય પણ છઠ્ઠીવાર, ચોપવાર, પાલખી, નગારો, નિશાન, ચમર આદિ રાજ્યચિન્હો ધારણ કરવા લાગ્યા હતા. અસ્તુ. જેમ રાજા પોતાના અધિકારીઓમાંથી અમુક વર્ષે અમુક અધિકારીને અમુક સ્થાનનો અધિકાર ચલાવવા મોકલે, તેમ એ આચાર્ય પણ પોતાના આશાનુચર્તા યતિયોને દર વર્ષે જુદા જુદા સ્પષ્ટોમાં ચાતુર્માસ કરવા માટે મોકલતા. આ માટે તેઓ ' મા વર્ષે અમુક યતિએ અમુક સ્થાનમાં ચાતુર્માસ રહેવું ' એવો આદેશ (હુકમ) દ્વરેક વર્ષે કાઢતા અને જેમ આજે ગયમંડના પ્રાદેશ સરસ્વતી દરેક અધિકારીને મોકલી દેવામાં આવે છે તેમ તે આદેશોની અનેક નકલો કરાવી સમુદાયના દરેક યતિપાસે પહોંચાડવામાં આવતી. આ પ્રકારના લગ્નાણવાલા આદેશ-પત્રને ' શ્વેત્રાદેશ પટ્ટક ' કહેવામાં આવે છે. શ્વેત્ર પટ્ટકે ચાતુર્માસ રહેવા માટેનું સ્થાન, અને તે સમ્બંધી આચાર્યના આદેશ પટ્ટકે હુકમ નો જે પટ્ટો તે ' શ્વેત્રાદેશ પટ્ટક ' આવા પટ્ટકો અર્થાત્ પટ્ટાઓ દરેક ગચ્છ અને સમુદાયના આચાર્યો કાઢતા. એ પટ્ટકોની લખવાની રીતમાં સાધારણરીતે પ્રારંભમાં સ્વર્ગસ્થ આચાર્યને નમસ્કાર કરેલું હોય છે. પછી જે વર્ષ માટે એ પટ્ટક કાઢવામાં આવ્યો હોય તેનો ઉલ્લેખ કરવામાં આવે છે. તદનન્તર વર્તમાન આચાર્ય કે જેના તરફથી એ પટ્ટક કાઢાય છે-તેનું નામ હોય છે અને તે પછી જે દેશના ક્ષેત્રો માટે એ આદેશ હોય છે તેનું નામ નોંધાય છે. પ્રારંભમાં અટકું મથાળું કર્યા પછી નીચે ક્રમવાર એકેક પંક્તિમાં, જે યતિને જે ગામે રહેવાનું હોય તેની સૂચિ આપવામાં આવે છે. તેની નીચે જો કોઈ યતિને કોઈ ગુન્હાચ્છદ સમુદાયમાંથી અલિપ્ત કરવામાં આવ્યો હોય છે તો તેની પણ સૂચના આપવામાં આવે છે અને છેવટે બે-ત્રણ પંક્તિઓમાં આચાર્ય તરફથી યથા યતિયોને સામાન્ય શિવામ્રણ અપાવેલી હોય છે. તેમાં લેખેલું હોય છે કે આ પટ્ટા પ્રમાણે દરેક યતિએ પોતપોતાના નિર્દિષ્ટ સ્થાને બેઠાસર જઈ રહેવું. સમુદાયની મર્યાદાનું જે વિધાનપત્ર કરેલું હોય તે પ્રમાણે વર્તવું. જે કોઈ અવિચારિતરીતે ઘર્ષણે તેને સજાત ઉપાલમ્ભ આપવામાં આવશે. જે સ્થાને રહેવું હોય ત્યાં આવકો સાથે લઘુમુદ્રા કરવી રહેવું. ક્યાદિ. આ પટ્ટકોના શિરોભાગે રાજમુદ્રા (મોહોર = શિક્ષા) ની માફક આચાર્ય પોતાના હાથે " સહી " અથવા " સહી છઠ્ઠી " એવા શબ્દો સીક્સ-લાઈન કે પર્સ લાઈન પાંચા કરતાં વધારે મોટા ફરમાનોમાં પણ જોવામાં આવે છે.

આ પ્રકારના ૧૦ પટ્ટકો અમને પ્ર૦ શ્રી કાન્તિવિજયજી મહારાજના શાસ્ત્રસંગ્રહમાંથી મળી આવ્યા છે જે ક્રમથી અહીં પ્રકટ કરવામાં આવે છે. આ દસે પટ્ટકો તપાગચ્છનો મુખ્ય સાધના છે. આ પટ્ટકો ઉપરથી કેટલીયે ઉપયોગી યાચનોની માહિતી મળી આવે છે. આજથી માત્ર ૧૦૦ વર્ષ પહેલાં જૈન યતિ-યોનું સામુદાયિક ધર્મધારણ કેવું વ્યવસ્થિત હતું, જૈનસમાજની કેટલી બહોલી સંખ્યા હતી, ત્યાગિયો પણ કેટલી મોટી સંખ્યામાં વિદ્યમાન હતા, તેમના ઉપર આચાર્યની કેવી સારી સત્તા હતી, સમાજમાં યતિ-યો કોઈ પણ પ્રકારનો વિચ્છેદ વધો ન કરી શકે તે માટે આચાર્યો કેવી કાઠજી રાખતા, ક્યાદિ અનેક સામાજિક યાચનો ઉપર આ પટ્ટકોથી જાણવા જેવો પ્રકાશ પડે છે. આ પટ્ટકો પ્રમાણે સો દોઢ

સો વર્ષે ઉપર જેટલાં ગામો જૈન યતિયોને ચાતુર્માસ રહેવા યોગ્ય સારી આવકસંસ્થાવાળા હતા, તેનાથી અર્ધા ગામો પણ આજે યતિ કે સાધુમટે એક રાત રહેવા પુરતી આવકની વસ્તીવાળા રહ્યા નથી. એ એકજ બાવત ઊપરથી જોઈ શકાય છે કે જૈન સમાજની સંસ્થા કેટલી બધી ફાડપથી ઘટી ગઈ છે તથા ઘટતી જાય છે. તેજ પ્રમાણે યતિયોની સંસ્થાની પણ જશરદસ્ત ઘટતી થઈ છે. કર્નલ ટોંકે પોતાના રાજસ્થાન નામક પ્રસિદ્ધ ઇતિહાસમાં એકલા રાજપૂતાનામાં જ માત્ર કરતર મચ્છતા ૧૧૦૦ યતિ લખ્યા છે. તેના વધલે આજે ૧૧૧ પણ વિદ્યમાન નથી. હોરવિજયસૂરિનો યતિસમુદાય લગભગ ૨૦૦૦ જેટલી સંસ્થાવાળો હતો તેના કેકાળે આજે ૬૦૦ નો પણ નથી. પણ રીતે જો અનેક કેકાળે સંકડો થઈ આવકોળ હતા ત્યાં આજે ૫-૧૦ પણ રહ્યા નથી. અસ્તુ.

પટ્ટક ૧.

—*—

હાઈ આપવામાં આવતા પટ્ટકોમાં, આ પટ્ટક સોથી જુનો છે એ વિક્રમસંવત્ ૧૭૭૪ નો સાલનો છે. તે વખતે તપાસચ્છનો મુખ્ય શાદો ઉપર આચાર્ય વિજયધમાસૂરિ હતા. આ પટ્ટક જાડા દેશી કાગળ ઉપર લખેલો છે. તેની લંબાઈ ૩૧ ફીટ અને પહોળાઈ ૩૧ ઇંચ છે. એકંદર ૧૪૬ પંક્તિઓ લખેલી છે. અક્ષર સુંદર દેવનાગરી જૈન શૈલીના છે. મૂલ નકાલ નીચ પ્રમાણે છે:—

સહી છઠ્ઠ.

ૐ નમઃ મે. શ્રીવિજયરત્નસૂરીશ્વરગુરુમ્યો નમઃ ।
સંવત્ ૧૭૭૪ થયે મ । શ્રીવિજયક્ષમાસૂરિમિજ્ઞેષ્ઠસ્તિત્યા-
વેશપટ્ટકો લિખ્યંતે । શ્રીગુર્જરદેશે ॥
૫ । ન્યાયવિજયસ્તપીરકરા મેઝાદેશે તથા મેનાતદેશે
તથા ગુર્જરદેશે ।

૩ । શ્રીવિમલવિજય ગે । સૂરતિ ૧
૪ । જિનવિજય ગ । વૃદ્ધશ્રીજીસત્ક સમો ૧
૫ । પ્રેમવિજય ગ । વૃદ્ધશ્રીજીસં । પાટણ ૧
૬ । પ્રહરિવિજય ગ । વૃદ્ધશ્રીજી સત્ક રાણપુર ૧ ઠાણ
૭ પાટણમધ્ય
૮ । લક્ષ્મિવિજય ગ । વૃદ્ધશ્રીજીસત્ક વઢોદર ૧
૯ । વૃદ્ધિવિજય ગ । પ । જ્ઞાનસત્ । અસ્મત્પાર્થે

૧ 'મ' । 'દ'લે મટ્ટાક = 'જપસ્થિતિ' ચાતુર્માસ. ૨ 'પ' ।
૩ 'અ'વા પન્નાસ. ૪ 'ઉ' આપ્ત્યાય. ૫ 'ગ' । ગળી. ૬ 'સા' =
કા = તેના શિષ્ય. ૭ આશ્વામી વર્ષ

૧ । રૂપાનન્દ ગ । રાયપુર ૧ ઠા. ૭ રાજનગરમધ્ય
૨ । ધનવિજય ગ । ૩ । શ્રીચિનીસત્ । ફલમપુર ૧
૩ । નિત્યવિજય ગ । શ્રીજીસત્ક લલુમકદેશે
૪ । ગગવિજય ગ । શ્રીજીસત્ક મેવાકદેશે
૫ । ગગવિજય ગ । ૫ । દેવસત્ક રાનેર ૧
૬ । માગવિજય ગ । શ્રીજીસત્ક અસ્મત્પાર્થે
૭ । સીરવિજય ગ । શ્રીજીસત્ક ફદલપુર ૧ ઠા. ૨
રાજનગરમધ્ય
૮ । જીવવિજય ગ । ૫ । જ્ઞાનસત્ક અસ્મત્પાર્થે
૯ । વિનવિજય ગ । વૃદ્ધશ્રીજીસત્ક બ્યારા ૧ બ્યાલોલ ૨
૧૦ । પ્રેમવિજય ગ । લલુવૃદ્ધશ્રીજીસત્ક ધોળોજ ૧ પાંચોટ ૨
૧૧ । મીમવિજય ગ । ૫ । સુલવિજય સ । સોરઠદેશે દીવ ૧
૧૨ । સિમાવિજય ગ । } ૩ । શ્રીરત્ન સ । રાજનગર ૧
૧૩ । સુમતિવિજય ગ । }
૧૪ । વૃદ્ધવિજય ગ । ૫ । સત્ય સ । ચીતલપુર ૧ ઠા.
૪ પાટણમધ્ય રત્નપુર ૨ દેવદપુર ૨

૧૫ । દીપવિજય ગ । ૧ । વનક સ । હસમપુર ૧ વાકેજ ૨
૧૬ । જિનવિજય ગ । ૫ । કોર્તિ સ । મદીયાદ ૧ પટોલ ૨
૧૭ । ગુણવિજય ગ । ૩ । શ્રીજીસત્ક સરોજ ૧
૧૮ । દાનાવિમલ ગ । ૫ । ચન્દ્રસત્ક ચન્દ્રદેશે મગનગર ૧
૧૯ । રૂપાવિમલ ગ । ૧ । કા. જિવિમલ સ । સોરઠદેશે
નવનગર ૧
૨૦ । દેવવિજય ગ । ૫ । નેમિવિજય સ । શ્રીજીસત્ક
મહિસાણો ૧ પાલેડ ૨
૨૧ । ગીનમસોમ ગ । અહમ્મદપુર ૧
૨૨ । ચીરચંદ્ર ગ । ૧ । વિશેષસત્ક ઝંઘોડ ૧ ધનરા ૨

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

पट्टक २

आ पट्टक संघत् १८२२ नी सालमां लम्बापलो
छे ते चलते आचार्य विजयधर्मसूरी गार्दी उपर
हता. ए पट्टकनी लंबाई ३ फीट २ इंच अने पही-
ल्लाई ६१ इंच छे. एकर १२३ पंक्तिओ छे.

सही

ॐ नमो भ । श्रीविजयदयासूरीभक्तगुरुभ्यो नमः ।

संवत् १८२२ वर्षे भ । श्री श्रीविजयधर्मसूरीभिर्य-
ष्टस्तित्यादेशपट्टको लिख्यते । श्रीगुरुदेशे ।

पं । हेमविजय ग । श्रीजीसपरिकराः वृद्धमरुदेशे ।

पं । शान्तिविजय ग । पं । लब्धि स । पादरो ? मुंज-
पुर २ मानपुर ३

पं । हितविजय ग । उ । श्रीशुभ स । नीसलनगर १
सिद्धपुर २ कडा ३ जासका ४ देणप ५

पं । राजविजय ग । पं । हर्ष स । } कच्छदेश
पं । इन्द्रविजय ग । पं । राज स }

पं । नेमविजय ग । पं । सिमा स । } पाठन १ कृष्णगर २
प । न्यायविजय ग । पं । नेम स }

पं । विनीतविजय ग । पं । प्रेम स । मालण १ गोला
२ वासणा ३

पं । रंगविजय ग । पं । उदय स । ईलोड १ वषतापुर २

पं । हर्षविजय ग । पं । विवेक स । मेसाणा १ सामेतरा २

पं । मोहनविजय ग । प । सुमति स । यावि १ मांडकुं २

पं । सामलचंद्र ग । पं । लाल स । कसु १ चागा २ मयादर ३

पं । मोहनविजय ग । पं । मताप स । उमता १

पं । लब्धिविजय ग । पं । लाम स । कोलीनी कंवाई १

पं । दर्शनविजय ग । पं । देव स । } ईबर १ पाल २

पं । कान्तिविजय ग । प । दर्शन स }

पं । रत्नविजय ग । उ । श्रीशुभ स । मगरवाडो १

वच्चगाम २

पं । भाणविजय ग । पं । प्रेम स । दक्षमदेशे

पं । भक्तिविजय ग । प । नय स । राभनपुर १ क-

मालपुर २

पं । विवेकविजय ग । पं । कृष्ण स । असाबुल नवोवास १

पं । पुशलविजय ग । पं । मान स । बीजापुर १ अ-
हम्मदनगर २ कडली ३

पं । अमृतविजय ग । पं । माण स । मोहनपुर १
रणासन २ पीपलदल ३ करवटिओ ४

पं । मोहनविजय ग । पं । हंस स । सोरठदेशे भावनगर १

पं । शान्तिविजय ग । पं । कृष्ण स । } राजनगर १
प । जसविजय ग । प । विवेक स } गोवावी २

पं । कान्तिविजय ग । प । लाल स } रायपुर ३

पं । गणेशकवि ग । पं । हीरस । अस्मत्पार्थ

पं । दीपविजय ग । पं । राज स ।

पं । जयविजय ग । पं । दीप स । दसाडी १ बजाणो २

पं । गजविजय ग । प । गग म । } वडवाण १ सी-

प । हंसविजय ग । प । गज स । } हाणी २ चूडा ३

पं । गुजानविजय ग । पं । शान्ति स । बडोदरो १

प । कृष्णविजय ग । } प । रंग स । शांतलपुर १ वहुआ २

प । जसविजय ग । }

पं । देवविजय ग । पं । विनीत स । मीयागाम १ ईषर
२ वलण ३

पं । शुभविजय ग । पं । मान स । } पिटलाद १

पं । कनकविजय ग । प । शुभ स । } आंतरोली २

पं । शान्तिविजय ग । पं । उदय स । आगलोड १

पं । जयविजय ग । पं । सुंदर स । द्रापरो १

पं । भक्तिविजय ग । पं । कान्ति स । } पाल्हुणपुर १

पं । कुशलविजय ग । पं । राज स । } वगदा २

पं । मोहनविजय ग । प । उत्तम स । बलासणो १

पं । जीतवर्धन ग । } पं । कल्याण स । वीरमगाम १

प । सक्लवर्धन ग । } भांडल २

पं । केसरसोम ग । पं । घन स । विहारा १ वालाल २

पं । उत्तमविजय ग । पं । जिन स । }

पं । गुजानविजय ग । प । प्रेम स । } सूरति १

पं । भाणविजय ग । पं । सुमति स । }

पं । उदयसागर ग । पं । न्याय स । } लीमडी १

पं । रत्नकुशल ग । प । विनीत स । } अचमालिउं २

पं । न्यायकुशल ग । पं । रत्न स । }

पं । नायकविजय ग । पं । गुण स । कोट १ गांगड २

पं । जीवविजय ग । पं । सुख स । देववाडी ? सेदा-
तपुरो २ छणियार ३

पं । मोहनविजय ग । पं । गुलाल स । सोवनगढ ?
हुहारी २ घुटाडिओ ३ पारणे हृष्ट आवतुः

पं । प्रेमविजय ग । पं । शुभ त । वडनगर १ गुजा २
उंझा ३

प । प्रमाणविजय ग । प । पुण्य स । नेसडा २ आंगण-
वाडो ३

पं । मानविजय ग । प । जिन स । मेवाडदेशे
पं । पुस्त्यालविजय ग । उदवपुरमध्ये

पं । भाणविजय ग । पं । राम स । लावणोज १ धौ-
बला २

पं । सुद्धिदिजय ग । पं । रूप स । हेम्बदपुर १
पं । पुस्त्यालचन्द्र ग । पं । भाग्य स । कूजर १

प । पुस्त्याल विजय ग । श्रीजी स । राहू २
पं । चतुरविजय ग । पं । मेघ स । खंभायत १ वटा-
दरो २ नानोदरो ३

पं । रत्नविजय ग । पं । पुण्य स । बेणप १ उच्चोत्तण
२ थिराद ३

पं । त्रिनितिविजय ग । पं । नेम स । समी १
प । भाणिक्यविजय ग । प । विनीत स । चद्र २

पं । दम्भतोम ग । पं । गीतम स । कुकुआव १
पं । मानविजय ग । उ । श्रीरूप स । इमोई १ कार-

वण २

पं । पुस्त्याल विजय ग । पं । नेम स । चाणसमो १
प । उभेद विजय ग । पं । वृद्धि स । रामपुरो २

पं । हस्तिविजय ग । प । रग स । भाया १ धनेरा २
त । प्रतापविजय ग । प । लक्ष्मी स । थिरा १

प । अमृतविजय ग । प । प्रताप स । काकर २
प । रत्नचन्द्र ग । प । गुगाल स । निलोरा १

प । न्यानविजय ग । प । प्रमोद स । कडो १ डागरखे २
बडसमु ३

प । कपूरविजय ग । प । अमर स । दागधरो १

पं । अमीत्रिजय ग । प । माणिक्य स । छठियाडो १
धीणोज २ छणवा ३

पं । अमरविजय ग । पं । सुख त । दक्षगदेशे
पं । उदयचन्द्र ग । पं । भक्ति स । डीसा १ हेरडा २

राजपुर ३

पं । नयविजय ग । पं । राम स । धोता १ सकलाणा २
मेता ३

पं । विवेकविजय ग । पं । क्रोद्धि स । मुडेज १
पं । ज्ञानविजय ग । प । लक्ष्मी स । साचोर १

पं । प्रतापचन्द्र ग । प । दान स । सावली १
प । भावचन्द्र ग । प । दौलत स । जामला २

पं । उत्तमविजय ग । पं । सुमति त । दक्षगदेशे
पं । भागविजय ग । कूजरविजय ग । प । गज स । इंदोला १ अनस्त

पं । धनविजय ग । पं । माणिक्य स । वाराही १ को-
प । क्षमाकवि ग । पं । गणेश स । रडा २ धोल-

कड्ड ३

पं । जीवणविजय ग । पं । लाल स । मातर १
पं । सोमागविजय ग । पं । अमृतविजय ग । चद्र स । पाटडी १

प । जयसागर ग । प । न्याय स । राजपुर १
पं । दुगरविजय ग । पं । मेघ स । वरण १

पं । अमृतविजय ग । पं । भाग स । वेदि १
पं । जिनविजय ग । पं । कल्याण स । पेढामली १

पं । माणिक्यविजय ग । प । जिन स । हणारु १ देल-
वाडो २

पं । हर्षविजय ग । पं । कृष्ण स । योहरा कठोर १
काबलेज २

पं । धीरसागर ग । प । न्याय स । ननसारी १
प । विवेकविजय ग । प । रत्न स । भदजन्व १

प । सिमाविजय ग । प । पुस्त्याल स । लीन १ नदा-
सण २

प । भीमविजय ग । प । रग स । रानेर कोलीनी १
पं । विवेकविजय ग । पं । न्यान त । गाम् १
प । सुद्धिदिजय ग । पं । मोहन स । वडागली १

पं । केसरविजय ग । पं । विनीत स । छणपूर १
 धीमाण २
 पं । कस्तूरविजय ग । पं । न्यानं स । आमोद १
 पं । विनयचंद्र ग । पं । भक्ति स । मावड १ गोठडा २
 पं । गुलालचंद्र ग । पं । सामल स । खेणल १
 पं । राजविजय ग । पं । सुंदर स । क्षिणोर १ सांसा-
 तोर २
 पं । माणिक्यविजय ग । पं । वृद्धि स । सोर्दगाम १
 भाभर २-तेरवाडो ३
 पं । जसविजय ग । पं । प्रताप स । रणोद भणोद २
 पं । प्रेमविजय ग । पं । रूप स । फेदरा १ पीपली २
 पं । हर्षचंद्र ग । पं । प्रमोद स । वडाली १ हापा २
 पं । महिमा विजय ग । पं । हित स । राणकपूर १
 भलगाम २
 पं । राववविजय ग । पं । लाल स । सांपरा १
 सांकरा २
 पं । दौलतविजय ग । पं । प्रेम स । पाषल १
 पं । मतिविजय ग । पं । गज स । वातिम १ फोरणा २
 पं । भाणविजय ग । पं । मेघ स । उवरी १
 पं । गुणविजय ग । पं । पुस्याल स । जामपुर १
 पं । माणिक्य विजय ग । पं । दीप स । धोलको १
 कडोसण २
 पं । जिनविजय ग । पं । दर्शन स । गणाद् बहिः ४
 पं । वृद्धिविजय ग । पं । विनय स । पानसणा १
 राणपूर २
 पं । मोहनचंद्र ग । पं । उदय स । सीहपूर १
 पं । लालविजय ग । पं । सावु स । गोलको १ अण-
 रपुरा २
 पं । अनोपचंद्र ग । पं । अमी स । चांगा १
 पं । केसरविजय ग । पं । लाल स । दांता १ वसही २
 पं । कान्तिविजय ग । पं । जीवण स । पेमेंत १ बुराल २
 डाभला ३
 पं । नायकविजय ग । पं । दीप स । सेनेय १ शशाम २

पं । विनीतविजय ग । पं । हित स । दक्षणदेशे जेसिचपूर १
 पं । कृष्णविजय ग । पं । पुस्याल स । पीपली १

चांदणसर २ दभाड ३

पं । पुस्यालविजय ग । पं । गज स । भवता १ सादडा २
 पं । गुलालविजय ग । पं । राम स । रानेर १ वस-
 राई २

पं । रूपविजय ग । पं । गीतम स । समउ १
 पं । जसविजय ग । पं । कान्ति स । वणोद १ पाडला २

पं । धर्मविजय ग । पं । यान स । पोसीणा १

पं । सहजगचि ग । पं । बल्लम स । सूरतिमध्यं

पं । रत्नविजय ग । पं । देव स । वासा १

अत्रोद्धरितसंज्ञादिसन्यापना अस्माभिर्विधियेति ॥

समस्त साधु समुदाय योग्य । अपरं । सतु पद्म प्रमाणई
 पीतापीतानद क्षेत्रादेशई पुंहुचयो । जे कोई पारका क्षेत्रमां-
 हिं रहस्यई तथा क्षेत्र आलटपालट करस्यई तथा कोई
 क्षेत्र कर्यविक्रय करस्यई तथा चोमासामांहिं कोई किहांई
 फिरस्यई हिरस्यई तथा कोई गृहस्थोसुं चढी बोलस्यई
 तो तेहनई आकरो उपालंभ आवस्यई । सर्वथा शुद्धरास्यई
 नही । शुद्धराज ज श्रीजीनी आण छई । एहुं जाणी
 अयांदामांहिं प्रवर्तवु इति श्रेयःश्रेणयः ।

पट्टक ३

आ पट्टक २ फुट ११ लांघो अर्ध ५३ इंच पहीळो
 छे. लीटीओ एकइंर १२३ लखेली छे.

सही

ॐ नत्वा भ । श्रीविजयदयासूरीश्वरगुरुभ्यो नमः ।

संवत् १८२३ वर्षे म । श्री श्रीविजयधर्मसूरीभि-
 ज्यैष्ठस्यत्यादेशपट्टको लिख्यते । श्रीगुरुदेवे ।

पं । हेमविजय ग । । श्रीजी सपरिकराः श्रीमरुदेशे
 उ । श्रीराजविजय ग । पं । हर्ष स । । सातलपुर १

पं । इंद्रविजय ग । उ । श्रीराजस । । बहुआ २

पं । शान्तिविजय ग । पं । लक्ष्मि स । पादरो १ मुंज-

पुर १

पं । नेमविजय ग । पं । धिमा स । } पाटण १	पं । गजविजय ग । पं । गंग स । } द्रांगवरो १
पं । न्यानविजय ग । पं । नेम स । } कूर्णगर २	पं । हंसविजय ग । पं । गज स । } चूडा २
पं । विनीतविजय ग । पं । प्रेम स । } इंदोल १	पं । मुजाणविजय । पं । शान्ति स । } वडोदरो १
पं । रंगविजय ग । पं । उदय स । } ईडर १ जामला २	पं । शुभविजय ग । पं । मान स । } राजनगर १
पं । हर्षविजय ग । पं । विवेक स । } वीजापुर १ लाडोल २	पं । कनकविजय ग । पं । शुभ स । } रायपुर २
पं । मोहनविजय ग । पं । सुमति स । } वावि १	पं । शातिविजय ग । पं । उदय स । } सेडि वडमानि १
पं । बुद्धिजय ग । पं । मोहन स । } माठकुं २	पं । जीतवर्धन ग । } पं । कन्याण स । } दसाडो १
पं । सामलचंद्र ग । पं । लाल स । } गोला १ चांगा २	पं । सखलवर्धन ग । } पं । जयविजय ग । } सुंदर स । } रानेर १ काबलेज
पं । खेराळ ३	२ कुंदियाणो ३
पं । मोहनविजय ग । पं । प्रताप स । } उंमता १	पं । कृष्णविजय ग । } पं । रंग स । } कच्छदेश
पं । लब्धविजय ग । पं । लाभ स । } सोईगाम १	पं । जसविजय ग । } पं । गीविजय । } सुख स । } कोठ १ गागड २
पं । दर्शनविजय ग । पं । देव स । } सावली १	नानोदरो ३
पं । कांतिविजय ग । पं । दर्शन स । } यधतापुर २	पं । भक्तिविजय ग । पं । कांति स । } रायनपुर १
पं । रत्नविजय ग । पं । श्रीशुभ स । } पीलूचो १ चांद- णसर २ डमाड ३	पं । कुशलविजय ग । पं । राज स । } कमालपुर २
पं । भाणविजय ग । पं । प्रेम स । } दक्षणदेश	अणवरपुरो ३
पं । प्रसिद्धविजय ग । पं । हित स । } पाहणपुर १	पं । केसरसोम ग । पं । धन स । } सोवनगड १
पं । पद्मविजय ग । पं । भाणिक्य स } बसु २	पं । रत्नकुशल ग । पं । विनीत स । } वडवाण १
वगदा ३ ।	पं । न्यानकुशल ग । पं । रत्न स । } सीहाणी २
पं । भक्तिविजय ग । पं । नय स । } यिरा १ चांगा २	पं । मोहनविजय ग । पं । उत्तम स । } पीपलदल १
पं । विवेकविजय ग । पं । कृष्ण स । } असाउल नवो वान	- करबटिओ २
पं । कुशलविजय ग । पं । मान स । } आगलोड १	पं । उत्तमविजय ग । पं । जिन स । } सुजाणविजय ग । पं । राम स । } सुरति १
कंडोली २	पं । हर्षविजय ग । पं । कृष्ण स । } सुबुद्धिजय ग । पं । सुजाण स । } आळना
पं । अमृतविजय ग । पं । भाण-स । } वडाली १ अह- म्मदनगर २ पेढामली ३	मांडवा १
पं । मोहनविजय ग । पं । हंस स । } सोरठदेश	पं । नायकविजय ग । पं । गुण स । } नदियाद १
पं । शान्तिविजय ग । पं । कृष्ण स । } वरिमगाम १	पं । भाणविजय ग । पं । सुजाण स । } यमुपेयज २
पं । जसविजय ग । पं । विवेक स । } मांडल २	पं । मोहनविजय ग । पं । शुद्ध ग । } रिहारा १
पं । कांतिविजय ग । पं । लाल स } मानपुर २	
पं । गणेश रुचि ग । पं । हरि स । } अरमत्पार्थे	
पं । दीपविजय ग । पं । राज स । } लीविडी १	
पं । जपविजय ग । पं । दीप स । } अंबेवालिउं २	
पं । देकविजय ग । पं । विनीत स । } मीयागाम १ ईश्वर २	
वटण ३	

प । पुस्त्यालविजय ग । प । जिन स । } आश्रमप्रमाणे
 प । कस्तुरविजय ग । प । पुस्त्याल स }
 प । भमविजय ग । प । शुभ स । उद्वनगर ? धानड २
 गुप्ता ३ उद्गा ४
 प । भाणविजय ग । प । राम स । धीणाज १ ध्वज २
 प । पुस्त्यालचंद्र ग । प । माय्य स । } गाराही १
 प । पुस्त्यालविजय ग । श्रीजी स } सानय २
 क्लाम ३
 प । सुबुद्धिविजय ग । प । रूप स । हवदपुर १
 प । चतुर विजय ग । प । मय स । घाटको १ चि-
 लोरा २ वटादर ३
 प । विनीतविजय ग । प । नेम स । } चाणसमो १
 प । माणिक्यविजय ग । प । विनीत स } कणोत्तण २
 रामपुरा ३
 प । रत्नविजय ग । प । पुण्य स । गोभको ? गङ्ग २
 प । पुस्त्यालविजय ग । प । नेम स । } समी १ चद्र २
 प । समेदविजय ग । प । वृद्धि स } दूधपा ३
 प । मानविजय ग । उ । श्री रूप स । वोहरा कठोर १
 वसराई २
 प । भनापविजय ग । प । लक्ष्मी स । } भामर १ वेणप
 प । अमृतविजय ग । प । प्रताप स } २ उच्चोत्तण ३
 प । हस्तिविजय ग । प । रग स । ध्वजपुर १
 प । हद्रसोम ग । प । गोतम स । } द्रापरी १ मह-
 प । पुस्त्यालविजय ग । प । गज स । } वासादबा २
 प । रत्नचंद्र ग । प । सुगाल स । गांधारी
 प । न्यायविजय ग । प । प्रमाद स । कडी १ सदात-
 पुगे २ लाघणोज ३
 प । कपूरविजय ग । प । अमर स । फदरा १ पीपली २
 प । अमीविजय ग । प । माणिक्य स । सिद्धपुर १
 सीहपुर २
 प । अमरविजय ग । प । सुख स । } दक्षणेदेशे
 प । दंविजय ग । प । अमर स }
 प । उदयचंद्र ग । प । भक्ति स । बीसा १ शेरडा २
 वरुण ३
 प । धनविजय ग । प । राम स । मावड १ गोडबा २

प । नयविजय ग । प । माणिक्य स । } पाटडी १
 प । क्षमाद्विजय ग । प । गणेश स । }
 प । विवेकविजय ग । प । रत्न स । भद्रजच्च १
 प । उत्तमविजय ग । } प । सुमति स । दक्षणेदेशे
 प । भागविजय ग । }
 प । शानविजय ग । प । लक्ष्मी स । साचार १ भिराद २
 प । प्रतापचंद्र ग । प । दान स । } बीसलनगर १
 प । भावचंद्र ग । प । दौग्न स । } वडा २ जासका ३
 देणपुर ४
 प । जयसागर ग । प । न्याय स । राजपुर १
 प । कुम्भरविजय ग । प । गज स । शिगोर ? सांसरोद २
 प । क्षामागविजय ग । प । श्रद्ध स । बारजा ?
 प । जीणविजय ग । प । लाल स । दफानाबा ?
 प । अमृतविजय ग । प । चंद्र स । गणाद ? पादगा २
 प । डुगरविजय ग । प । भैव स । जामपुर १ साकरा २
 प । अमृतविजय ग । प । भाण स । कोरबा ? धाटकुड २
 प । जीणविजय ग । प । कन्याण स । हापा १
 प । धीरसागर ग । प । न्याय स । नवसारी ?
 प । उदयसागर ग । प । न्याय स । वारेजा १
 प । विवेकविजय ग । प । कर्द्धि स । समउ १
 प । धिमाविजय ग । प । पुस्त्याल स । बागरडु १ वडसमु २
 प । रामसागर ग । प । दोलन स । आंतराली १
 प । भीमविजय ग । प । रग स । कोलीनी कवोई १
 प । विवेकविजय ग । प । न्याय स । गाम् १
 प । कशरविजय ग । प । विनीत स । सापरा १ वातिम
 २ फोरना ३
 प । कस्तुरविजय ग । प । न्याय स । सातर १
 प । विनयचंद्र ग । प । भक्ति स । मगरराडो १ वड
 गाम २ डामला ३
 प । राजविजय ग । प । सुदर स । ईटोलो १
 अनस्तू २
 प । माणिक्यविजय ग । प । वृद्धि स । भसाणा १
 छटियाबा २ समेतारा ३
 प । जसविजय ग । प । प्रताप स । वडागली १
 प । भेमविजय ग । प । रूप स । रमायत १

प । ह्यंचद्र ग । प । प्रमाद स । वलसाणो १
पाशाणा २

प । महिमावजय ग । प । हित स । रानेकोलानी १
घोमाणा २

प । रायवविजय ग । प । लाल स । रणाद १ मणाद २

प । दोलतविजय ग । प । प्रम स । } मुढा १
प । गुणविजय ग । प । युस्याल स । }

प । मतिविजय ग । प । गज स । काकर १

प । वृद्धिविजय ग । प । काति स । मालण १
वासणा २

प । भाणविजय ग । प । मळ स । वासा १ पापल २

प । भाणिक्यविजय ग । प । दाप स । पटलाद १

प । जिनविजय ग । प । दर्शन स । गणाद् बहि-

प । वृद्धिविजय ग । प । विनय स । राणपुर १

पानसणा २

प । माहनचद्र ग । प । उदय स । घोता १ सकलाणा
२ भेता ३ मयादर ४

प । लालविजय ग । प । साधु स । कूर १

प । भाणविजय स । प । सुमति स । बुहारा १

पुटाडिआ २

प । अनापचद्र ग । प । अमा स । नसडावे २

प । कसरविजय ग । प । लाल स । दाता १ वसही २

प । कातिविजय ग । प । जीवन स । धापा १

धनेरा २

प । नायकविजय ग । प । दीप स । } लीच १

प । भवानविजय ग । प । नायक स । }

नदासणा २

प । विनीतविजय ग । प । हित स । दक्षणेक्ष

प । कृष्णविजय ग । प । सुस्याल स । वाढ १

प । रूपविजय ग । प । गानम स । उवरी १ अरणी

वाढो २

प । जसविजय ग । प । कानि स । कुहुआवि १

उणियार २

प । धमविजय ग । प । धान स । हणाद १ देलवादा २

प । सहजकवि ग । प । वलम स । गूरतिमघ्न

प । रत्नविजय ग । ऋ । दव स । भलगाम १

अत्रोद्धारितक्षेत्रादिसत्यापना अस्माभिर्विधे
येति म० ॥

॥ समस्त साधु समुदाय याग्य । अपर । सह
पटा प्रमाणद पोतापोता नह क्षत्रादक्षत्र पुहचयाज कोई
पारका क्षेत्रमाहि रहस्यह तथा क्षत्र आलट पालट करस्यह
तथा कोई क्षेत्र क्रय विक्रय करस्यह तथा चोमासामाहि
काइ किहाइ फिरस्यह हिरस्यह तथा काई ग्रहस्था सु
चढी बोलस्यह तो तेहनह आकरो उपालम आवस्यह ।
समंथा गुदरास्यह नही गुदरवाज ५ जीमी आण छे । एहवु
जाणी मर्यादामे प्रवर्तवु ।

पट्टक ४

आ पट्टक ३ फुट २ इंच लांबो अने ६ १/२ पटोळो
छे पकि सरया १२६.

सही

॥ ॐ नत्वा म श्रीविजयदयासूरीधर गुरुभ्यो नम ॥

स १८२४ वर्ष म । श्री श्री विजयधम्मसूरीभिर्न्येष्ट-

स्थित्यादेशपट्टको लि ॥ आ गुजरदेशे ॥

प । हमविजय ग । आजीसपरिकरा आमवदस ।

उ । श्रीराजविजय ग । हष स । } कच्छदेश ।

ङ । इद्रविजय ग । उ । श्रा राज स । }

प । नेमविजय ग । प । पिमा स । } पाटण १ कृणगिर

प । ग्यानविजय ग । प । नम स । } २ आगलण्ड १

प । विनातविजय ग । प । प्रेम स । }

प । रगविजय ग । प । उदय स । वीसलनगर १ कडा

२ जासका ३ दणप ४

प । हषविजय ग । प । निवक स । सावली १ पीपन

दल करवन्डिआ ०

प । माहनविजय ग । प । सुमति स । } वाधि १

प । बुद्धिविजय ग । प । मोहन स । } माद्रु ०

प । सुजाणविजय ग । प । गान म । यरोन्ना १

द्रापरो २ मुजपुर ३

पं । लब्धिविजय ग । प । लाभ स । उच्चोत्तण १

प । सामलचद्र ग । प । छाल स । माठण १ गोला २

प । रत्नविजय ग । उ । श्री शुभ स । मगरशब्दो १

वदगाम २

पं । भाणविजय ग । प । प्रेम स । दक्षपदेशे

। प्रसिद्धविजय ग । प । हित स । } राधनपुर १

। पदमविजय ग । प । भाणिक्य स । } राफु २

। पदमविजय ग । प । भाणिक्य स । } क्रमालपू ३

पं । विवेकविजय ग । प । कृष्ण स । असाठल नवांवास १

पं । भाकिविजय ग । प । नय स । पान्हणपुर १ वगदा

१ मेता ३ मयादर ४

प । कुशलविजय ग । प । मान स । गीजापुर १ द्यावळ २

पं । अमृतविजय ग । प । भाण स । ईडर १

प । मोहनविजय ग । प । हस स । } राजनगर १ राय-

प । शुभ विजय ग । प । मान स । } पुर २ गोधावी ३

प । कनकविजय ग । प । शुभ स । }

पं । गणेशविजय ग । प । हरि स । जस्मत्पार्श्वे

पं । शातिविजय ग । प । कृष्ण स । }

प । जसविजय ग । प । विवेक स । } पाटडी १

प । कातिविजय ग । प । लल स । } बग्जाण २

प । देवविजय ग । प । विनीत स । डभोई १ काररण २

प । दीपविजय ग । प । राज स । } वीरमगाम १

प । जयविजय ग । प । दीप स । } भोग्जुआ २

पं । शातिविजय ग । प । उदय स । वडावली १

गाम्बू २

प । गजविजय ग । प । गग स । }

पं । हसविजय ग । प । गज स । } वदयाण १

पं । जयविजय ग । प । सुदर स । रानेर १ कांवल्लेज २

कुदियापो ३

प । जीतवर्धन ग । प । कल्याण स । उकुआव १

पं । सकलवर्धन ग । पं । कल्याण स । माहळ १

प । कृष्णविजय ग । प । जसविजय ग । प । रग स ।

कण्ठदेशे १

प । जीतविजय ग । पं । सुख स । कोट १ गांगड २

नानोदो ३

प । भक्तिविजय ग । प । काति स । } वाराही १ कोरडा

प । कुशलविजय ग । प । राज स । } २ धोलकड्ड ३

प । कसरसोम ग । प । धन स । विहारा १ कानपुरो २

प । रत्नकुशल ग । प । विनीत स । } लीबडी १

प । ग्यानकुशल ग । प । रत्न स । } अचेवालिड २

प । मोहनविजय ग । प । उत्तम स । जामला ३

प । सुबुद्धिविजय ग । प । सुजाण स । आनरोली १

लालना माहडा २

प । उत्तमविजय ग । प । सुस्थालविजय ग । }

प । जिन स । }

प । सुजाणविजय ग । प । प्रेम स । } सूरति १

प । सुजाणविजय ग । प । राम स । } हरिपुरो २

प । भाणविजय ग । प । गुण स । }

प । नायकविजय ग । } नडियाद १

प । मोहनविजय ग । प । गुलाल स । गणाद् बहिः

प । मानविजय ग । प । जिन स । }

प । राजविजय ग । प । सुदर स । } पादेरो १

प । प्रमाणविजय ग । प । पुण्य स । समउ १

प । प्रेमविजय ग । प । शुभ स । वडाली १ पेढामली २

प । भाणविजय ग । प । राम स । रणोद १ मनोद २

प । सुस्थालचद्र ग । भक्ति स । }

प । सुस्थालविजय ग । श्री जी स । } चाणसमो १

प । सुबुद्धिविजय ग । प । रूप स । हेन्वदपूर १

प । चतुरविजय ग । प । मेघ स । सभायत १ वटा-

दरो २

प । विनीतविजय ग । प । नेम स । }

प । भाणिक्यविजय ग । पं । विनीत स । } समी १ चद्र २

प । रत्नविजय ग । प । पुण्य स । वेडी १ अणवर-

पुरो २

पं । खुद्यालविजय ग । पं । नेम स । } मेसाणो १
 पं । उमेदविजय ग । पं । वृद्धि स } छटियाडो २
 सामेतरा ३
 पं । हस्तिविजय ग । पं । रंग स । नेसदावे १
 पं । मानविजय ग । पं । श्रीरूप स । तुहारी १ यसरार्ह २
 बुढादेओ ३
 पं । प्रतापविजय ग । पं । लक्ष्मी स । } सोईमाम १
 पं । अमृतविजय ग । पं । प्रताप स । } वेषप २
 पं । रत्नचंद्र ग । पं । सुमाल स । मातर १ वारेजो २
 पं । इद्रसोम ग । पं । गौतम म । } मीयागाम १
 पं । खुत्यालविजय ग । पं । गज स । } ईषर २ बलण ३
 पं । कपुरविजय ग । पं । अमर स । चूडा १ राज-
 पुर २
 पं । ग्यानविजय ग । पं । प्रमोद स । कडी १ छणी-
 यार २ कटोसण ३ लांणोज ४
 पं । अमीविजय ग । पं । माणिक्य स । यडनगर १ धो-
 ता सकलाणा २
 पं । अमरविजय ग । पं । गुल स । } दक्षजदेशे
 पं । देवव्रविजय ग । पं । अमर स । }
 पं । उदयचंद्र ग । पं । भक्ति स । डीसा १ खेरडा २
 राजपुर ३
 पं । नयविजय ग । पं । राम स । सीहपुर १
 पं । धनविजय ग । पं । माणिक्य स । ब्रांगधरो १
 पं । क्षमाद्वि ग । पं । गणेश ॥ कूअर १
 पं । विवेकविजय ग । पं । अद्रि स । रानेर कोलीनी १
 यातिम २ फोरणा ३
 पं । उत्तमविजय ग । पं । मुमति स ।
 पं । भावाविजय ग । पं । दसाणदेशे ।
 पं । मोहनविजय ग । पं । प्रताप स । उंमता १
 पं । ज्ञानविजय ग । पं । लक्ष्मी स । साचोर १ धिराद २
 पं । प्रतापचंद्र ग । पं । दान स । } सिद्धपुर १
 पं । भागचंद्र ग । पं । दालन स । } लालपुर २
 पं । जयसागर ग । पं । न्याय म । राजपुर १
 पं । कुंभविजय ग । पं । गज स । ईंदोली १ मंटेवा-
 सादका २ अनरूप ३

पं । अमृतविजय ग । पं । भाण स । सांपरा १ सांकरा २
 पं । हर्षविजय ग । पं । कृष्ण म । वोहरा कटोर १
 पं । सोमागविजय ग । पं । चंद्र स । नदासण १
 पं । जीवणविजय ग । पं । लाल स । सेदातपुरो १
 पं । हुंजरविजय ग । पं । मेव स । उवरी १ अरणी -
 वाढो २
 पं । अमृतविजय ग । पं । चंद्र स । देकापाडो १
 पं । धीरसागर ग । पं । न्याय स । धोलको १
 पं । विवेकविजय ग । पं । रत्न म । भरुअरुच १
 पं । गुलालचंद्र ग । पं । सामल स । खेतालु १
 पं । कांतिविजय ग । पं । दर्शन स । ईलोल १ हापा २
 पं । जीवणविजय ग । पं । कल्याण स । अहमदनगर १
 पं । लिमाविजय ग । पं । खुत्याल स । लीच १
 पं । रामसागर ग । पं । दोलन स । दसाढो १
 पं । भीमविजय ग । पं । रंग स । पिरा १
 पं । विवेकविजय ग । पं । ग्यान म । धीणोज १ दणवा २
 पं । केसरविजय ग । पं । विनीत स । वरण १
 पं । कस्तुरविजय ग । पं । ग्यान स । चिलोरा १
 पं । विनयचंद्र ग । पं । भक्ति म । पीडको १ चांदिण-
 सर २ कभाड ३
 पं । माणिक्यविजय ग । पं । वृद्धि स । भाभर १ जाम-
 पुर २ सेरवाडो ३
 पं । जसविजय ग । पं । प्रताप स । सेनेध १ झझाम २
 पं । प्रेमविजय ग । पं । रूप स । पेडलाद १
 पं । हर्षचंद्र ग । पं । प्रमोद स । वलतापुर १
 पं । महिमाविजय ग । पं । हित स । मुंढटा १
 पं । राववाविजय ग । पं । लाल स । गणरपुर १
 पं । दोलनविजय ग । पं । प्रेम स । } काकर १
 पं । खुत्यालविजय ग । पं । गुण स । } दीमाणा २
 पं । मतिविजय ग । पं । गज ग । याता १ पावल २
 पं । वृद्धिविजय ग । पं । कांति स । वसाड १ चाल २
 पं । मोहनचंद्र ग । पं । उदय म । मारड १
 पं । भागविजय ग । पं । मेव स । दणपुर १
 पं । माणिक्यविजय ग । पं । शीप म ।

प । जिनविजय ग । प । दर्शन स । गणाद् बहि
 प । वृद्धिविजय ग । प । विनय स । फदरा १ पीपरी २
 प । लालविजय ग । प । साधु स । गोमर्का १,
 प । भाणविजय ग । प । सुमति ॥ शिणोर १
 सासरोद २

पं । कस्तुरविजय ग । प । खुस्याल स । नवसारी १
 प । पुण्यसोम ग । प । केसर स । सावनगढ १
 प । मुक्तिविजय ग । प । हस्ति ॥ दक्षणदेश १
 प । अनोपचक्र ग । प । अमी स । मलगाम १
 प । कातिविजय ग । प । जीवण स । घाया १ भनेरा २
 प । नायकविजय ग । प । दीप स । } वणोद १
 प । भन्नाणविजय ग । प । नायक स । } पाडला २
 प । विनीतविजय ग । प । हित स । दक्षणदेश १
 पं । कृष्णविजय ग । प । खुस्याल स । दाता १ वसही २
 प । रूपविजय ग । प । गीतम स । कोलीनी कवोई १
 पं । जसविजय ग । प । काति स । डांगरु १
 बडसमु २

पं । धर्मविजय ग । प । भान स । हणाद १ पोतीणा २
 प । सहजकवि ग । प । बल्लभ स । सूरतिमध्ये १
 प । रत्नविजय ग । ॠ । देन स । चागा १
 प । रगचक्र ग । प । भक्ति स । वलासणो १

॥ अत्रोद्धरित क्षेत्रादि सत्यापना अस्माभिर्विधेयेति मगल ॥

॥ समस्त साधु समुदाय योग्य । अपर सह पट्टा
 प्रमाणह पोता पोतानह क्षेत्रादेशह पुहवयो । जे कोई
 पारका क्षेत्रमाहि रहस्यह तथा क्षेत्र आलट पालट करस्यह
 तथा कोई क्षेत्र मयविजय करस्यह तथा बोमासा
 माहह कोरं किहा फिरस्यह हिरस्यह तथा कोई गृहस्थोसु ।
 चर्दी बोलसह ता तहनह आकरो उपालभ आपस्यह ।
 सर्वथा गुदापास्यह नरी । शुबरनाम अम्हनह श्री श्री जी
 नी आणाछह । एहहु जाणी मर्यादामाहि प्रवर्तवु ॥

पट्टक ५.

आ पट्टक ३ पुट १ ईच लांबो अने ६३ पहेलो
 छं. पंक्तिओ १३७

सही

॥ ॐ नत्वा भ । श्रीविजयदयासूरीश्वरगुरुभ्यो नमः ॥
 सत्तु १८३७ वर्षे भ । श्री श्रीविजयधर्मतुरिभिर्म्ये-
 श्रुतित्यादेशपत्रको लिख्यत । श्रीगुर्जरदेश ।

प । देवविजय ग । प । श्रीजी सपरीकरा रादनपुर १
 ताराह २ मीलोड ३ कमालपुर ४

प । रामविजय ग । प । रग स । } चाणसमु १
 प । लक्ष्मीविजय ग । प । राम स । } बडावली २
 } कवोई सोलकीनी ३

प । नमविजय ग । प । हस स । राजनगरमध्ये
 प । शान्तिविजय ग । प । उदय स । बह १ राकू २
 प । रगविजय ग । प । शान स । } मेसाणा १
 प । शान्तिविजय ग । प । रग स । } धिणोज २
 प । हसविजय ग । प । मुजाण स । पाधरु १ अनस्तु २
 ईपर ३

प । शान्तिविजय ग । प । कृष्ण स । } राजनगर १
 प । हेमविजय ग । प । वपूर स । } रायपूर २

आसावल नवो वास १

प । न्यानविजय ग । प । नेम स । वीसलनगर १ बह-
 नगर २ गोठुआ ३

प । जयविजय ग । प । दीप ॥ वीरमगाम १ मोडुया २
 गोरीआ ३ केसरडी ४

प । भक्तिविजय ग । प । काति स । }
 प । कुशालविजय ग । प । कृष्णविजय ग । प । राज स । }
 पाहणपुर १ पीलुबु २ गावज ३ गोठडा ४
 वगदा ५

प । कल्याणविजय ग । प । प्रसिद्ध स । } पाटण १
 प । सिवसुंदर ग । प । उत्तम स । } कुणगर २
 प । जिनविजय ग । प । पदम स । } चिलाडु ३
 प । देवविजय ग । प । अमी स । } ठाणु ४
 अस्मत्पाथे

॥ मोहनविजय ग । प । नय स । }
 प । वृद्धिविजय ग । प । देन स । } दशाड्ड १
 प । पुण्यविजय ग । प । मजि स । } कल्याड्ड २
 प । उत्तमविजय ग । प । सुमति स । सूरति १ नवसारी २

पं । मोहनविजय ग । पं । उत्तम स । आगलौड १
 पं । सकलवर्धन ग । पं । कल्याण स । } वडवाण १
 पं । विवेकवर्धन ग । पं । मेव स । } सुढा २
 पं । मनरूपसागर ग । पं । अनन्त स । सावली ३
 पं । जिनविजय ग । प । कपूर स । दक्षपदेशे । गोधली १
 पं । रत्नकुशल ग । पं । विनीत स । } पाटडी १
 पं । न्यानकुशल ग । पं । रत्न स । } बणोद २
 पं । सुबुद्धिविजय ग । पं । सुजाण स । नवीयाद ३
 पं । कनकविजय ग । पं । सुभ ग । मीयां १ वलण २
 पं । मानविजय ग । पं । जिन स । राजनगरमध्ये
 पं । घूत्यालविजय ग । पं । जिन स । आमोद १
 पं । पदमविजय ग । पं । उत्तम स । पाटणमध्ये
 पं । भाणविजय ग । पं । राम स । छठिआहं १ छुंणवा २
 सामेतरा ३ सदातपुं ४ वडसमुं ५ कडी ६
 छणीयार ७
 पं । लालविजय ग । पं । रत्न स । लीवडी १ अंचेवा-
 लीउ २ पादसणा ३ उतेलीउ ४
 पं । कुशलविजय ग । पं । देव स । वसवावी १ ।
 पं । हस्तिविजय ग । पं । कुशल स । गणाद् बहिः ।
 पं । सुबुद्धिविजय ग । पं । रुप स । हेवदपुर १
 पं । घूत्यालविजय ग । पं । श्रीजी स । } वाराही १
 पं । कल्याणचन्द्र ग । पं । घूत्याल स । } धोलकड्डु २
 पं । विनीतविजय ग । पं । नेम स । } समी १
 पं । माणिक्यविजय ग । पं । विनीत स । } दूधवा २
 पं । चतुरविजय ग । प । मेव स । पेटलाद १ वटादरू २
 वसु ३ पेयग ४
 प । मोहनविजय ग । पं । गुलाल स । गणाद्बहिः १
 पं । अमीशविजय ग । पं । सुख स । यउद १ गेल २
 पं । हंसविजय ग । पं । गज स । सिधपुर १ सीपुर २

पं । जिनविजय ग । पं । जय स । सोबनाद १ दमण २
 आगासी ३
 पं । उमेदविजय ग । पं । वृद्धि स । बीजापुर १ लाडोल २
 पं । पदमविजय ग । प । उमेद स । मोहनपुर १ रणासण २
 पं । हस्तिविजय ग । पं । रम स । जामपुर १ कसरा २
 पं । हर्षविजय ग । पं । मोहन स । जासका १ उंमता २
 देणप ३
 पं । मुक्तिविजय ग । पं । श्रीजी स । } डमोई १
 पं । डुंगरविजय ग । प । मुक्ति स । } कारवण २
 पं । प्रतापविजय ग । पं । लक्ष्मी स । } वेंणप १
 पं । अमृतविजय ग । पं । प्रताप स । } कोरबा २
 प । गोविन्दविजय ग । प । हेम स । }
 पं । अमीविजय ग । पं । रत्न स । } गोत्रहं १
 पं । भाणविजय ग । पं । हंस स । } ससाम २
 पं । सुबुद्धिविजय ग । पं । जीव स । द्रागदवं १
 सायला २ शिष्य मेधविजय गाणाद्बहि
 पं । घूत्यालविजय ग । पं । अरुद्धि स । दीकर १ धोटीछेर
 पं । मानविजय ग । पं । दीप स । कच्छदेशे
 पं । वृद्धिविजय ग । पं । सुजाण स । द्रापरो १ पाध-
 रीओ २
 पं । कपूरविजय ग । पं । अमर स । कोठ १
 पं । नयविजय ग । पं । राम स । मेता १ मयादर २
 वसु ३
 पं । कस्तूरविजय ग । पं । मान स । बोरा कडोर १
 कुदीआणुं २
 पं । धनविजय ग । पं । माणिक्य स । सोईगाम १ भरहुड २
 पं । रत्नविजय ग । पं । न्यान स । लीच १
 प । दर्शनविजय ग । प । न्यान स । गणाद्बहि
 पं । माणिक्यविजय ग । पं । मोहन स । पाटणमध्ये
 प । मुद्धिविजय ग । पं । मोहन स । } पाधि १
 पं । मेघविजय ग । प । अस्मत् स । } माडकुं २
 पं । विवेकविजय ग । प । अरुद्धि स । मुईदु १ लुणपुर २
 छत्राला ३
 पं । शानविजय ग । पं । लक्ष्मी स । साचोर १

प । प्रतापचन्द्र ग । प । दान स । } गणाद्वय
 प । भावचन्द्र ग । प । दोलत स । }
 प । जसविजय ग । प । कान्ति स । कटोसण १ वातिम ०
 फोरणा २
 प । कुअरविजय ग । प । गज ॥ 'यासद' १
 प । हीराचन्द्र ग । प । गुलाल स । } ईंटर १
 प । धीरजचन्द्र ग । प । हीरा ॥ } येराळु ०
 प । अमृतविजय ग । प । भाण स । चंदूर १
 प । हुगरविजय ग । } प । मेघ स । उवरी १
 प । भाणविजय ग । } काकर २
 प । नायकविजय ग । प । विनय स । वषतापुर १
 जामला ०
 प । इन्द्रविजय ग । प । अमृत स । वडाली १
 प । चन्द्रविजय ग । प । उत्तम स । राजनगरमये
 प । हर्षविजय ग । प । जस स । धोलकु १
 प । सोमाग्यविजय ग । प । चंद्र स । डागरु १
 प । प्रेमविजय ग । प । भाण स । नानांदरु १
 प । अमृतविजय ग । प । चंद्र स । नदासण १ लख
 णाज २
 प । माणिक्यविजय ग । प । सुबुद्धि स । आतरोली १
 प । जीवनविजय ग । प । लाल स । फेदरा १ पीप-
 लीड ०
 प । प्रेमविजय ग । प । दर्शन स । वागडदेश
 प । कान्तिविजय ग । प । दर्शन स । वागडदेश
 प । अमृतविजय ग । प । विक्रम ॥ भूकअन्य १
 प । विभावजय ग । प । पुस्ताल । कुकुआनि १
 देकाथाडु २
 प । रूपसागर ग । प । राम स । लालना माडवा १
 कटोदरु २
 प । विनयचंद्र ग । प । भक्ति स । वरण १ शीवाल २
 प्राणा ३ भनेरा ४
 प । नाकविजय ग । प । गुलाल स । छावड १
 प । उत्तमविजय ग । प । भाग्य स । मातर १
 प । माणिक्यविजय ग । प । वृद्धि स । मेरवाडु १
 उन्वोसण २ सौनेध १

प । प्रतापविजय ग । प । वृद्धि स । पचार १
 प । रत्नविजय ग । प । प्रेम स । पभायन १
 प । महिमाविजय ग । प । हित स । रानेर १ नेसडा २
 प । राजविजय ग । प । सुंदर स । वडोदर १
 ईंगोल ॥
 प । जीवनविजय ग । प । नायक ॥ अम्मदमगर १
 प । पुस्तालविजय ग । प । प्रेम स । ईंलो १ कानडा २
 प । यशविजय ग । प । प्रताप स । अणनरपुर १
 प । सामाग्यविजय ग । प । क्षिमा स । मोमासादडा १
 प । रतिविजय ग । प । निर्मात स । समड १ धीमाणा २
 प । दालतविजय ग । प । प्रम स । } पिरा १
 प । गुणविजय ग । प । पुस्ताल स । } गोलीवाडु २
 प । ज्योतिर्विजय ग । प । रत्न स । दक्षिणदेश
 प । भाणविजय ग । प । कसर स । कुअर १
 प । वृद्धिविजय ग । प । कान्ति स । मालण १ गोला २
 वडगांम ३
 प । यशविजय ग । प । कनक ॥ सोर्गितरा १
 प । रूपविजय ग । प । पुस्ताल स । मुजपुर १
 प । हसविजय ग । प । जीवन स । वेडवहमानी १
 प । पुन्यसोम ग । प । केसर ॥ व्यारा १ कानधुरा २
 प । देविद्विजय ग । प । हर्ष स । बुहारी १ पुटाहीआ २
 प । मतिविजय ग । प । गज ॥ गणाद्वय
 प । मोहनचंद्र ग । प । उदय स । मगरवाडु १
 प । पानाचंद्र ग । प । उदय स । डीता १ हरडा २
 राजपुर १
 प । माणिक्यविजय ग । प । दीप स । गागड १
 देवाडभो २
 प । जिनविजय ग । प । दर्शन स । हरसोर १
 प । लालविजय ग । प । माणिक्य स । गामु १
 प । वृद्धिविजय ग । प । विनय स । गोधारी १
 प । भाणविजय ग । प । सुमति स । इतीनेर १
 प । भवानविजय ग । प । न्यायक स । मणोद १
 प । रामविजय ग । प । विनीत स । रानेर १ वालेल २
 प । गुणविजय ग । प । प्रेम स । सापरा १

પ । કૃષ્ણવિજય ગ । પ । પૃથ્વાલ સ । ધોતાસકલાણા ૧
 પ । રૂપવિજય ગ । પ । ગૌતમ સ । કવોદં કોલીની ૧
 પ । રવિવિજય ગ । } પં । કેસર સ
 પ । પ્રેમવિજય ગ । } મામેર ૧
 પ । વસન્તવિજય ગ । પ । દેવ સ । સાકરા ૧
 પ । માનવિજય ગ । પ । રત્ન સ । પીપલદલ ૧ કર-
 બટીડ ૨
 પ । રત્નવિજય ગ । શ્રુ । દેવ સ । તેરવાડુ ૧
 પ । મોહનસોભાગ્ય ગ । પ । ભાગ્ય સ । આગળવાડુ ૧
 પ । શિમાલુવિ ગ । પ । ગણેશ સ । માઢલ ૧
 પ । ભાગ્યવિજય ગ । પ । યસ સ । વજાણુ ૧
 પ । મણિવિજય ગ । પ । માન સ । રણેજ ૧
 પ । સહજરુચિ ગ । પ । વલ્લભ સ । સૂરતમધ્યે
 પ । રામવિજય ગ । પ । સેઝ સ । સીંહાણી ૧
 પ । જાનસાગર ગ । પ । ઉદય સ । માલવ ૧
 પ । હેમવિજય ગ । પ । મીમ સ । ટાકણપુર ૧ મલ-
 ગામ ૨ ચાગા ૩

અત્રોદ્ધરિતક્ષેત્રાદેશત્યાપના અસ્માભિરિધેયતિ મદ્ગલમ્ ।
 ॥ સમસ્ત સાધુ સમુદાય યાગ્ય અપર સહુ પદ્મા પ્રમાણે
 પોતા પોતાને ક્ષેત્રાદેશે જઈ માહચર્યો । જે કોઈ પારકાક્ષેત્ર
 માહે રહસ્યે તથા સ્વન આલટપાલટ કરસ્યે તથા કોઈ
 ચોમાસામાહિ ફરસ્યે હરસ્ય નથા કોઈ ગૃહસ્થોત્સુ ચઢી
 બાલ્સ્ય તથા ગચ્ઠનં કામે એકઠા નહિ થાઈ તા આકરો
 ડપાલભ આવસ્યે । ગુદરાસ્યે નહીં । સર્વથા જ ગુદરાજ
 શ્રી શ્રીજીની આળ ઠે । યહુ જાણિ સર્વ મર્યાદામાહિં
 પ્રવર્તબુજ ॥

પટ્ટક ૬.

આની લંબાઈ ૩ ફુટ અને પહોળાઈ ૭ ૧/૨ છે પં-
 ક્તિઓ ૧૬૬૮ ૧૨૯.

સહી

ૐ નમઃ ॥ મ શ્રી શ્રીવિજય ધર્મમૂર્તિશ્ચ ગુરુમ્યો
 નમઃ । મ । ૧૮૬૬ ૧થે ।

મ । શ્રી શ્રીવિજય જિનેદ્ર સૂત્રાભિર્યેષ્ઠાસ્થિત્યાદેશ-
 પટ્ટક લિ । શ્રી ગુર્જરદેશે ॥

પ । દાનવિજય ગ । શ્રીજી સપરિકર . । ભાવનગર ૧
 વસ્તેજ ૨ ઢાઠા ૩

પ । સુસાલવિજય ગ । વૃદ્ધશ્રીજી સ । પ । નાયક વિજય ગ
 ડ । શ્રી સુસ્થાલસ । ધિરા ૧ જ્ઞાલમોલ ૨ કુસાલપરો
 ૩ તેરવાઘા ૩ ચાગા ૫

પ । મોહનવિજય ગ । પ । નય સ । પ । રૂપધિજય
 ગ । પ । રાજ સ । રાચનપુર ૧ રમાલપુર ૨ મીનોદ
 ધાવલ માઢની ૩

પ । ઉત્તમવિજય ગ । પ । સુમતિ જા । પ । લાધોચત્ર
 ગ । પ । રગ સ । મુમર ૧ અગાસી ૨ વાહિરકો ૩

પ । કૃષ્ણવિજય ગ । પ । રાજ સ । પ । મનવિજય ગ ।
 પ । મતિ સ । સમી ૧ ચંદ્ર ૨ દૂધા ધવાણા ૩

પ । વલ્લભવિજય ગ । પ । હિત સ । પ । ભાવવિજય
 ગ । પ । હસ સ । મદ્યા ૧ વઢોદરો ૨ હટોલ ૩

પ । હેમવિજય ગ । શ્રી જી જા । વઢાલી ૪ વધતાપુર ૨
 પ । રાજવર્ધન ગ । પ । સકલ સ । પ । વીરવર્ધન ગ ।

પ । જીત સ । પ । સુસ્થાલવર્ધન ગ । પ । ધર્મ
 સ । વદધાણ ૧, વૃદ્ધા ૨ રાણપુર ૩ સાહેલા ૪

૥ । લલિતવિજય ગ । પ । ચતુર્વિજય ગ । પં । મોતી-
 વિજય ગ । પ । ગ્યાન જા । વિસલનગર ૧ કઢા ૨

જાંસકા ૩ સીવાલા ૪ ગોટરા ૫ માલક ૬ ગુમા
 ૭ દેણપ ૮ ઘરોઢામગરોઢા ૯

પ । માણિક્યવિજય ગ । પ । વિનીત સ । પં । જ્ઞાન-
 વિજય ગ । પ । માણિક્ય સ । ઘેઢ ૧ રાજુ ૨

પ । હુમરવિજય ગ । પ । મુતિ સ । પ । ત્રિએકવિજય
 ગ । પ । હુમર સ । સુરતિ ૧ નવસારી ૨

પ । રૂપવિજય ગ । પ । પદ્મ સ । સારઠદેશે નગેનગર ૧
 પ । રાવિજય ગ । પ । અમૃત સ । મરઝડ ૧ દેઝ-
 વારો ૨

પ । તત્ત્વવિજય ગ । પ । જય સ । પાદરો ૧ ગયસદ ૨
 ઓઢપાઢ ૩
 ૥ । પ્રતાપવિજય ગ । પ । ઝનમ સ । રમણ ૧ વાગોળ ૨

प । दशविजय ग । प । अमी स । प । कनकविजय
ग । प । कपूर स । भसाणा १ उद्वाह २ लाधणोज
३ छटीयाडा ४ नदासण ५ डागरओ ६ विला-
दग ७

प । दशाजय ग । प । दीप स । प । मानविजय ग ।
प । हित स । राजनगर १ हिरदपुर २ असापल
३ नरापास ४ फदरा ५ रायपुर ६ पराह्तीयो ७
हर्षजीना मुआडा ८

प । नायविजय ग । प । कन्याण स । प । भयभ
विजय ग । प । जिन स । पाटण १ कुणगर २
वायड ३ अबाया ४

प । माणिक्यविजय ग । प । मोहन स । आगलोड १
प । उत्तमचद्र ग । प । उदय स । पालणपुर १ बगदा
२ दातापसी ३ सेरगढ ३

प । कातिविजय ग । प । न्यान स । प । दशविजय
ग । प । काति स । बिजापुर १ लाडेल २ हापु
३ भाडु ४

प । न्यानविजय ग । प । गग स । वाटही १ धोल-
कडो २ अगावाणो ३

प । हस्तिविजय ग । कुशल स । प । मणिक्यविजय
ग । प । हस्ति स । गणाव्हि

प । हम्पविजय ग । प । कपुर स । प । चतुर्विजय ग । प ।
शाति स । गोनको १ नवोपरो २

प । कल्याणविजय ग । प । जय स । दसाडो १ कलाडा
२ सत्तधर ३

प । नायकविजय ग । प । कशरविजय ग । प । जय
स । विरमगाम १ गरीया २ योजुवा ३

प । भाग्यविजय ग । श्री जी स । वजाणो १

प । गुमानविजय ग । प । नयक स । लीवडी १
जन्मपालयो २

प । सुस्थालविजय ग । प । राज स । लछि १

प । हिरविजय ग । प । भाण स । गड १ मडाणा २

प । गोवल्विजय ग । प । वृद्धि स । मगरवाडो १

प । दीपविजय ग । प । प्रम स । प । उमेदविजय

ग । दीप स । पीपलदल १ करपनीया २

प । रश्मिजय ग । प । मेरु स । प । कशरविजय ग ।
प । रश्मि स । माडल १ उणावार २

प । भाणविजय ग । प । केशर स । प । माहन-
विजय ग । प । भाण स । उणाद १ कुआरद
२ सपलपुर ३

प । रूपविजय ग । प । कशर स । गणाव्हि

प । रश्मिजय ग । प । विनीत स । चाणसमो १
कचार्द २ वडापली ३ कथरासी ४ पसा ५ सडर
६ उणास ७ मुन्दा ८ बाभेलगा ९ *

प । शास्त्रविजय ग । प । बुद्धि स । वार १ माडका २

प । विनयविजय ग । प । राय स । डीशा १ डाआ
२ समजोर वायाणा ३

प । अमृतविजय ग । प । प्रताप स । सोरगाम १
असास २

प । कशरविजय ग । प । मेव स । अस्मत् पार्श्व

प । प्रतापविजय ग । प । विर स । राणकपुर १
मलगाम २

प । हेमविजय ग । प । भीम स । जामपुर १ आम-
छणा २

प । बलभविजय ग । प । गुणविजय ग । प । वि-
मल स । कुअर १ अपोरपुरा २ लामाडा ३

प । मुक्तिविजय ग । प । हस स । डडर १ लावा
दरा २

प । राजश्रविजय ग । अस्मत् स । धावरा १

प । कातिविजय ग । अस्मत् स । सरीयद १

प । रत्नविजय ग । प । हम् स । प्रातज १

प । सुज्ञानविजय ग । उ । श्री सोभाग्य स । मणाद १

प । शात्तिकुशल ग । प । विवेक स । हरीपुरो १ छापरी
याओल २ बोराकटार ३

प । नरविजय ग । प । जिन स । वसु १

प । भक्तिविजय ग । प । दय स । गणाव्हि ॥

प । हम्पविजय ग । प । गोतम स । पावडी १ कशरडी
२ नानोदरो ३

प । ज्ञानविजय ग । प । राजेन्द्र स । जवूसर १
 प । राजविजय ग । प । रूप स । साबली १ बला-
 सणो २
 प । रुपविजय ग । प । मोहन स । मावड गोठडा १
 उवगी २
 प । भीमविजय ग । प । लाल स । रानेर १
 प । धनविजय ग । प । फते स । मातर १
 प । जातविजय ग । प । माणिक्यविजय ग । प ।
 लाल स । डभोह १ कारवण ३ लीलाड ३
 प । लालविजय ग । प । उमद स । जामला १
 प । मुक्तिचंद्र ग । प । भय स । सीपूर १
 प । हमचंद्र ग । प । गिराय स । मालण १
 प । प्रमचंद्र ग । प । जगिण स । झेरडा १ वरण २
 प । हर्षविजय ग । प । रत्न स । गोषावी १
 प । हर्षविजय ग । प । धर्म स । मोमासादडा १
 मुजपुर २
 प । कातिविजय ग । प । नायक स । वारेजो १
 प । धम्मविजय ग । प । पुय स । घोतासकलाणा १
 प । प्रतापविजय ग । प । फते स । मेता १
 प । निवेकविजय ग । प । गोविंद स । अनस्तु १
 प । वसतविजय ग । प । भाग्य स । सरपज १
 प । उतमविजय ग । प । मय स । अस्मत् पार्थे
 प । तेजविजय ग । प । माणिक्य स । केठ १
 गागड २

प । लक्ष्मीविजय ग । प । तज स । उडनगर १ उमता १
 प । भवानविजय ग । प । प्रमाद स । झाणा १
 प । रूपविजय ग । उ । सीमाय स । सारठदश
 प । तजविजय ग । प । रत्न स । साकरा १
 प । नायक विजय ग । प । इद्र स । धाणाज १ वा
 २ दानागडा ३
 प । हर्ष विजय ग । प । खुस्याल स । कडा १ दकागडो १
 प । हर्षविजय ग । प । पदम स । खड १ ब्रमाना २
 प । मानविजय ग । प । गिनय स । राजपुर १
 प । सद्रपचंद्र ग । प । हार स । खराउ १ अहमदनगर १
 प । धीरविजय ग । प । हप स । थिराद १
 प । मुक्तिविजय ग । प । मय स । मुडठा १ रामपुरा १
 प । दापविजय ग । प । हस्ति स । पीपली १
 प । भाग्यविजय ग । प । अमृत स । पीटुवो १
 प । रगविजय ग । प । प्रेम स । नवीयाद १
 प । ज्ञानविजय ग । प । जीत स । आतरोली १
 प । शातिविजय ग । प । रूप स । गणाद्वहि
 ग । विद्याविजय ग । प । रूप स । द्यावड १
 प । लालविजय ग । प । किलर स । पन्नाद १
 प । वसतविजय ग । प । डव स । रगौद १
 प । रुपविजय ग । प । मय स । डव १
 प । सुजाणविजय ग । प । दिन स । विरगडा १
 बदरका २

प । हृषविजय ग । प । तन्त्र स । } पमायत
 प । पुसाविजय ग । प । प्राप्ती स । } विंदर
 प । चतुरविजय ग । प । हीत स । अक्ववरपुर
 प । नायकविजय ग । उ । लक्ष्मा स । रानर । सरस ।
 बुद्धिभाणु । भगवा डाडा ।
 प । नायकविजय ग । प । सौभाग्य स । हरापर । टाप
 रीत्याओ ।
 प । रत्नविजय ग । प । अमृत स । गराहु । वडसमु ।
 कादराम । मगाल ।
 प । नयविजय ग । वृद्ध श्रीश स । चादणसह ।
 सराहु ।

वारजु । महियज ।
 लाल । चासर ।
 असन्ना । जत
 लपर । गारमता ।
 टावा । नगाम ।
 महिजहु । डाडा ।
 कानरा । पावलज ।
 जगत्पुर । नाज ।
 नाहज । नायक ।
 वारजडी । पाराणु ।
 वसाह । वाडज ।
 ठाणु । आमाद
 मध्य । टाणु मर
 अक्चमध्य

प । रत्नविजय ग । प । मुक्ति स । गाधरा ।
 प । प्रमावजय ग । प । माणास्य स । पुणानयर,
 दक्षणदश ।
 प । माहनविजय ग । प । मुपति स । वापगाम ।
 प । सभाचद्र ग । प । सप्तचद्र स । पाज ।
 प । भगवानविजय ग । प । हित स । कावला ।
 प । कपूरविजय ग । प । कसर स । गणदवा । बीली
 मार । आगद । वारडाग ।
 प । माहनविजय ग । प । विनात स । मालपुर । रणा
 याश्व ।
 प । शास्त्रिजय ग । प । विनात स । नन्तरवार । इसर

वाडा । पापलनार । मागायातुगाया ।
 प । पञ्चविजय ग । प । रूप स । वहरा ।
 प । दयाविजय ग । प । दन स । पादरा । ठाणु ।
 वडादरामध्य
 प । रामविजय ग । प । कस्तुर स ।
 प । बलमविजय ग । } प । श्रावर स । वडादर ।
 प । लक्ष्माविजय } आत । साम ।
 प । उत्तमविजय ग । प । ताव स । काकराष्ट्र ।
 परगाम ।
 प । रगविजय ग । प । जस स । कडा राजपर । रामपुर ।
 भकाडु ।
 प । रावविजय ग । प । चारित स । व्यारा ।
 वानपुरा ।
 प । दयाविजय ग । प । दाप स । कपडवाणाज ।
 प । नत्यविजय ग । प । प्रमाद स । मसाणा ।
 शाठाणा ।
 प । रगविजय ग । प । गुगल स । फकरनाड । आय
 घल । दरहु ।
 प । भक्तिविजय ग । वृद्ध श्राजा स । कालवणु ।
 प । पुसाविजय ग । प । देवेद्र स । चापानयर ।
 बजलपर ।
 प । कपूरविमठ ग । प । सुमति स । कसरडा ।
 प । दापविजय ग । प । रत्न स । गणाद् बाहर ।
 प । हस्तिवजय ग । प । मुनद्र स । दत्तणदश सत्तगाम ।
 प । हसविजय ग । प । हप स । गुनर ।
 प । भाजचद्र ग । प । भक्तिचद्र स । आतरसमु ।
 प । हषविजय ग । प । श्राधर स । बाला । पालडी ।
 प । प्रमावजय ग । प । धरणन्द्र स । माठदश ।
 प । चतुरावजय ग । प । लक्ष्मा स । ठाणु । व्यारामध्य ।
 प । सौभाग्यरत्न ग । प । भवानरत्न स । आमाद ।
 सरमाण । मायागाम ।
 प । रत्नावजय ग । प । मान स । वाडाण ।
 मु । रगविजय ग । प । प्रमाद स । भगपुरमध्य
 प । शीतचद्र ग । पाभाठ ।

पं । नेमाविजय ग । पं । माणीस्य स । पूर्वदेशे
 पं । नेमाविजय ग । पं । प्रेम स । चिणापुरपट्टण ।
 अस्मत्त ठाणु ४ श्री सुरतमन्ये ॥

॥ इत्यादि क्षेत्र सत्यापना ॥ ॥ अस्माभिर्भिनि शैयाः ॥
 तथा समस्त साधु समुदाय योग्यं । पातपोतना
 लप्सा क्षेत्रादेश प्रमाणे साचवना । तथा जे कोई नही
 साचवे तथा जे कोई अदला बदली करस्ये, तथा जे
 क्रय विक्रय करते । तथा जे कोद ग्रस्यादि सवाते विरुधपणे
 प्रवर्तते । तेहने आवने पट्टे आकरो उपाख्य देवासे ।
 गुदरासे नहिः ॥ मांटे एवु जाणी गच्छपूजादा गुरु पर-
 पराई प्रवर्तवुं ॥ सहि ॥ एवच, पालणपुर । मालण
 । मगरवाडु । वडगाम । रुपाठ । मेमाल । विसलनगर
 । वडनगर । कदतुपर । महुपर । गुजा । गोटुना ।
 कडा । धिणोज । शोटाणा । कटोतण । माणीरुपुर । हापा ।
 ताजपर । मांगसा । पीणापर । वासणा । विराडाली ।
 बोददं । उनाउआ । बालुआ । गोधावी । सेला । भुमा ।
 वसहि । वरानपुर । नांगाराद । ठिंगाडु । गादली
 । पीपलनार । नलधर । महुआ । सरमाण । वणेसा ।
 सवणे । बलसाड । टिका परगणुं । वसरावी । मांढवी ।
 कालीयावा । महमार्ह । विदर । वसहि विदर । इस-
 नपुर । मगोधी । वडवाण । निवडी । पाणेडा । गुदि ।
 उठेलीयु (?) सोझतरा । वसो । मातर । फनेपर ।
 देवाण । बारीयु । चारोकी । सोनगड । बालोल
 नीझराल । ओटाणा । दुआणा । हंदरासाद । पैलीयड ।
 पोरज ।

॥ इत्यादि क्षेत्र श्री सरकार पालसे छे. ॥ सहिः ॥

पट्टक ८

श्री

आनी लंपाई ३ फुट ३ इंच, पोलोआई ३ इंच. वंक्ति
 संख्या १२८.

॥ ॐ नत्वा । भ । श्री श्रीविजय धर्मसुश्रितपर-
 मगुरुभ्यो नमः स १८८० वर्षे । भ । श्री श्रीविजयजिने-
 न्द्रगुरिभिर्पट्टित्वादेश पट्टक लि। श्री गुरुदेसे ।

पं । मणिक्यविजय ग । श्रीजीमपरिका । पाठगपुर १
 वगदा २ दांता ३ लुंगपुर ४ पांनडा ५ भनाली ६
 मेरियो ७ चंडस ८ गोरियल ९

पं । पूस्थालविजय ग । पं । देर स । पं । मानविजय
 ग । पं । हित स । राजनगर १ सरेर २ हं-
 दपुर ३ आसावद । ४ मेरियो ५ रायपुर ६
 नयो वात ७

प । विवेशविजय ग । पं । प्रेमविजय ग । पं । डुंगर स
 । दमण १ पालडी २ बोरकाटोर ३

प । नायकविजय ग । पं । पदमविजय ग । पं । श्री
 पुस्थाल स । पं । धर्मवन्द्र ग । पं । कथाग स ।
 सुरन १ हरीपुरा २ नरसारी ३ छापरिया
 ओल ४

पं । सुसुद्धिगिय ग । पं । बल्लन स । पं । लक्ष्मी-
 विजय ग । पं । सुसुद्धि स । वडोदो १ ब्रपरो
 २ राहुपुरो ३

पं । पुन्यविजय ग । पं । दीपविजय ग । पं । कृष्ण स ।
 पाट्टण १ कुणगर २ कंढोई कोलिनी ३
 भलगार ४

पं । विनयविजय ग । पं । कथाण स । पं । अरम-
 विजय ग । पं । जिन स । मीया १ अनसू २
 लीलोड ३ कतेपुर ४ बल्ल ४

पं । शुभविजय ग । पं । जाविजय ग । पं । विरेक
 स । बीजापुर १ लाडोल २ हासोर ३ समो ४
 पं । रूपविजय ग । पं । पदम स । गगाई बहि

पं । वीरविजय ग । पं । शुभ स । राजनगर-ये ।
 पं । नायकविजय ग । पं । केसाविजय ग । पं । अय
 स । गिरमगाव १ गोरिया २

पं । मुक्तिविजय ग । पं । हस स ।
 पं । कनकाविजय ग । पं । कूर स ।
 पं । लक्ष्मीविजय ग । पं । मुक्ति स ।

पं । शिवचन्द्र ग । पं । उत्तर स । मुपई १ वसी २
 अमासी ३

पं । रूपविजय ग । पं । राज स । पं । वल्लविजय ग ।

आगशेड १
 वरणापुर २

प । धर्मविजय ग । प । पुन्य स । वडगाम ?
 प । पद्मविजय ग । प । भाग्य स । पेटलाद् ? वेज
 लमा २ पावली ३
 प । कातिविजय ग । अस्मत्स । टेवाबुदी ?
 प । क्षम विजय ग । अस्मत्स । मगरवाडो ?
 प । रत्नविजय ग । अस्मत्स । चागा ?
 प । कातिविजय ग । प । क्षालति स । सरीयद् ? गायड २
 प । केशरचन्द्र ग । प । कल्याण स । चदुर ?
 प । तजविजय ग । प । रत्न स । पापल ?
 प । मुक्तिविजय ग । प । मनाप स । धोता ? सकलाणा २
 प । नमविजय ग । प । भाण स । खभायत ? घटादरो ?
 प । जीवणविजय ग । प । कुअर स । अस्मत्पार्थे
 प । कुअरविजय ग । प । हेम स । वजाणा ?
 प । चतुरविजय ग । प । नल स । वडनगर ? लुणगा
 २ ओढाई ?
 प । हरविजय ग । प । लाल स । अमनगर ?
 प । रत्नविजय ग । प । पूस्याल स । रुपाल ? सडा २
 प । हर्षविजय ग । प । तुजाण स । केशरडी ?
 प । धनविजय ग । प । पूस्याल स । गोधाडी ?
 प । नेमविजय ग । प । रूप स । पीलुचो ?
 प । दीपविजय ग । प । वीनय स । गढ ? वडावल २
 प । मानविजय ग । प । वीनय स । धानरा ? केरडा
 २ नरगलभाल ?
 प । नायकविजय ग । प । इत्र स । धीणोज ? रणोज २
 प । लक्ष्मीविजय ग । प । पूस्याल स । चोलोडो ?
 बदरको २ धवलको ३
 प । धनविजय ग । प । भुयण स । मोरवाडो ?
 प । हितविजय ग । प । मव स । कोठ ? गगढ २
 प । जयविजय ग । प । हर्ष स । पारकरनगर ?
 प । नेमविजय ग । प । राम स । उडीयारडा ?
 प । कपूरविजय ग । प । वीनय स । डीसा ? राजपूर २
 आहडा ३
 प । जीतकुसल ग । प । दीप स । प । नद्धिकुसल
 ग । प । कान्तुर म । राम ?

प । पत्तेविजय ग । प । भाण स । साकरा ? रासा २
 रानर ?
 प । गाविद्विजय ग । प । भवान स । ईपर ?
 प । रगविजय ग । प । प्रेम स । नदीयाद ?
 प । कीस्तुरविजय ग । प । गोकल स । मढाणा ?
 प । दचीचन्द्र ग । प । दुलि स । हुगरपुर ? वासवालो
 २ माहणपुर ?
 प । विद्याविजय ग । प । रूप स । प । उत्तमविजय
 ग । प । पिद्या स । पराट ? चादनसाल ?
 प । ऊत्तमविजय ग । प । वीनीत स । गोधको ? गाजदी
 पूरा ?
 प । नद्धिविजय ग । प । जान स । मुजेपर ?
 प । रूपविजय ग । प । भाण स । सोननगढ ?
 प । हितविजय ग । प । भिन स । बालोल ?
 प । गुमानविजय ग । प । रूप स । लिठ ? अवातण २
 प । सुखविजय ग । प । प्रमाण स । नदातण ?
 प । नीत्यविजय ग । प । हर्ष स । कडी ? कुडुआन २
 प । दयासोम ग । प । जीत स । इटोल ?
 प । प्रेमविजय ग । प । अमर स । जामपर ? कसरा २
 प । वियेकविजय ग । प । हर्ष स । बोरसद ?
 प । हितविजय ग । प । हस स । सयेसर ?
 प । सुदरचन्द्र ग । प । दुलि स । सीपर ?
 प । हेमविजय ग । प । सुख स । गणाद्वदि
 प । उत्तमविजय ग । प । राजेंद्र स । मोभासादडा ?
 प । मोतीविजय ग । प । मुक्ति स । सिरदारपुर ?
 प । नद्धिविजय ग । प । लक्ष्मी स । पचासर ? पाड
 ला २ सोईगाम ?

अत्रोद्धरीतक्षत्राश सत्यापना अस्माभिर्विधेया इति मगलम्।

समस्त साधु समुदाय योग्यं । अपर सहु पत्राप्रमाणे
 पोता पोताने क्षत्रादक्षे जई पोहचन्थो । जे काई पारका
 क्षैत्रमाहि रहस्य । त । क्षत्र आलटपालट करस्ये । तथा
 क्यविक्रय करस्ये । त । कोई चामास माहि फिरस्य
 हिरस्ये । तथा ग्रहस्य थकी चडी वोनस्ये । तो तेहने
 आकरो उपागम आस्ये । सर्वा गदगस्ये नही । गद-

राज श्री श्री मानी आण छर्दै । एहु आणी मयादामाहि
प्रवर्तु । इति श्री ॥

पट्टक ९

३ फट ३ इंच लांबो ६ इंच पहीळो. १३३पंक्ति.

सही ॥

॥ ३५ नत्वा भ । श्री श्री विजयधर्मसूरीधर
परमशुल्भ्या नम ।
स । १८८२ नयं भ श्री श्री विजयजिनेन्द्रसूरिभिर्यष्ट-
स्मिर्यदिशपट्टकलिख्यते ॥ गुजर देश ॥
प । माणक्य विजय ग । श्री जी सपरिकरा । उदेपुर मराठ
देश । गुजर देश ।
प । सूत्यालविजय ग । प । देव स । प । मानविजयग ।
प । हिन स । राजनगर १ सरखेद २ आगळ
३ हेरदपुर ४ रायपुर ५ मोरीयो ६
प । विवेकविजय ग । प । प्रेमविजय ग । प । दुगर
॥ मृत १ नवसारी २ हरीपुरा ३ जपरीया ओल ४
प । नायकविजय ग । प । मोहनविजय ग । उ । श्री
सूत्याल स । प । धर्मचंद्र ग । प । कल्याण ॥ ।
पाठन १ दुणगर २ कबोड कोलीनी ३
प । पदमविजय ग । उ । श्री सूत्याल स । मणोद १
प । सुबुद्धि विजय ग । प । उत्तम स । लक्ष्मीविजय
ग । सुबुद्धि स । बमोड १ वडोदरो २ राहुपुरे ३
काराग ४ नीलोड ५
प । पुन्यविजय ग । प । दीपविजय ग । प । कृष्ण स ।
राजापुर १ भीलोड २ कमालपुर ३ वाराही ४
ऊण ५ वेड ६ ।
प । विनयविजय ग । प । कल्याण स । प । स्वभविजय
ग । प । जिन स । रामायत १ जवूमर २
भारसद ३
प । गुलाबविजय ग । प । जयविजय ग । प । विवेक
स । विजापुर १ पीपलदरकपटीयो २ लाडाल ३
प । रूपविजय ग । प । पदम स । राजागमटन १

प । गीरविजय ग । प । शुभ ॥ । राजनगरमध्य १
प । नायकविजय ग । प । जय ॥ । प । शुभविजय ग ।
प । कल्याण स । परमगाम १ माडल २ मोरीया ३
प । मुक्तिविजय ग । प । हस स । प । लक्ष्मीविजय ग ।
प । मुक्ति स । ईलोड १ सरदारपुर २ .
प । तेजविजय ग । प । हेम स । धानेरा १ आहेडा
२ खेरडा ३
प । कनकविजय ग । प । कपुर स । सावली १
प । शिवचंद्र ग । प । उत्तम स । ममोद १ रती २
नागायागो ३
प । दीपविजय ग । प । भाव स । प । भक्तिविजय
ग । प । विपक स । झीणोर १
प । स्वविजय ग । प । राज स । प । वलभविजय
ग । प । मोहन स । बीसलनगर १ कडा २ जासका
३ मोठरा ४ भालक ५ सेगाला ६
प । केसरविजय ग । प । उत्तमविजय ग । प । मेव
स । भावनगर १ बाळकर २ वरतेज ३ भडारीयो ४
प । मुक्तिविजय ग । प । मेव स । प । मोहनविजय
ग । प । मुक्ति स । सिद्धपुर १ मैता २ छणना ३
कलाणी ४ नादोतरो ५
प । राजविजय ग । प । रूप स । प । मनरूपविजय ग ।
प । मया स । आगळोल १ समउ २ हरसोर ३
रणातण ४ वलातणो ५
प । जनिजय ग । प । शांति स । प । हीरविजय
ग । प । तत स । समी १ चदूर २ दुदया ३
प । मानविजय ग । प । दर्शन स । चाणसमो १
वडावरी २ कवाई सोलकीनी ३ कथरावी ४
प । सुबुद्धिविजय ग । प । रग स । मन्त्रज १
दजगाय २
प । भक्तिविजय ग । प । कीरपुर स । सावनगड १
॥ नीतिविजय ग । प । गूमान स । बुडा १
प । स्वविजय ग । प । मोहन स । पाठनपुर १ दंड
२ दाता ३ लणपुर ४ पाचडा ५ ननाडी ६
७ चम्तर ८ जालोडी ९

- प । चतुर्विजय ग । प । ग्यान स । भीमोज १
- प । लक्ष्मीकुशल ग । प । रुद्धि स । दमण २
पालडी ०
- प । जयविजय ग । प । हर्ष स । थरा १ जामपुर ०
- प । क्षमाविजय ग । प । मणि म । सार्दगाम १ मारवाडो
२ मारम ३
- प । राजद्रविजय ग । अस्मत्स । पादरो १
- प । दनविजय ग । प । काति स । प । शुभविजय ग ।
प । लज्जित स । उडनगर ३ डामरा २ उडाद ३
- प । मणिस्वविजय ग । प । हाति स । इडर १
वषतापुर ०
- प । चतुर्विजय ग । प । शाति स । प । राजविजय ग ।
प । हेम स । दसाडो १ कठाडो २
- प । पूस्यालवर्जन ग । प । धर्म स । प । गणेशव
र्जन ग । प । राज स । वटगण १ धोलेरा २ राज
कपुर ३ साहला ४ पीरभडीयाद ५
- प । हमाविजय ग । प । गालम स । गणाद्वही ।
- प । ज्ञानविजय ग । प । माणिक्य स । सलखर
- प । विनयसार ग । प । उभेद स । गणाद्वही
- प । प्रतापविजय ग । प । विनेक स । } मजादर १
- प । खेमविजय ग । प । प्रताप स । }
प । जितविजय ग । प । जिन स । } बुहरी १
- प । कल्याणविजय ग । प । र्जित स । } बालोल २
- प । रामविजय ग । प । नेम स । } पाटडी १ पचा-
प । रूपविजय ग । प । उभेद स । } सर २ कुअर ३
- प । माणिक्यविजय ग । प । गुठाल स । मीया १
इंटाडा १
- प । गुग्यानविजय ग । उ । श्री सोभाग्य स । डोडीयाल १
- प । चतुर्विजय ग । उ । भक्ति स । पीउचा १ टीकाबुडी २
- प । प्रतापविजय ग । प । भगन स । मुजपुर १
- प । विवेकविजय ग । प । हस स । घराटु १
- प । गालमविजय ग । प । शात स । माठवी १
- प । भीमविजय ग । प । एम स । आपगली १
- प । माणिक्यविजय ग । प । राज स । बल्य १
- प । ग्यानविजय ग । प । रीति ग । चागा १
- प । मनसागर ग । प । पा स । पन्नाद १
- प । दीपविजय ग । प । हर्षी स । नडीयाद १
- प । हर्षविजय ग । प । गलाल स । सीपुर १ चाणसोल ०
- प । उत्तमविजय ग । } नीवडी १ सिंहाणी
- प । लज्जितविजय ग । प । पलनग । } ० अवेवादीयो ३
- प । मोनीविजय ग । प । ग्यात स । मुदरा १
- प । हस्तिविजय ग । प । माणिक्य स । उडाडा १
- प । भाग्यविजय ग । प । अमृत म । जीव १ नदासन
२ गवणज ३ कडा ४ अदासन ५
- प । धम्मविजय ग । प । पुन्य स । उडगाम १
- प । पद्मविजय ग । प । भाग्य स । मातर १
- प । कातिविजय ग । अस्मत्स । रणाद १
- प । क्षमाविजय ग । अस्मत्स । अस्मत्पाथे
- प । रत्नविजय ग । अस्मत्स । अस्मत्पाथे
- प । कातिविजय ग । प । दालत स । सरीयद १ कहरा २
- प । कसरचद्र ग । प । कल्याण स । जुआरप १
- प । तजविजय ग । प । रत्न स । नासा १
- प । गुमानविजय ग । प । रूप स । चीलाडा १ बदरका ०
- प । लक्ष्मीविजय ग । प । भाण स । वार १ थराद २
उचोसन ३ देणप ४
- प । मुक्तिविजय ग । प । प्रताप स । मालण १
- प । नेमविजय ग । प । भाण स । रानेर १ वोर कठोर १
- प । कुअरविजय ग । प । हम स । नानोदरा १
- प । चतुर्विजय ग । प । नवल स । मेसाणो १
- प । हृषिजय ग । प । लाल स । अमदनगर १
- प । रत्नविजय ग । प । खुस्याल स । रुपाल १ समो १
- प । हर्षविजय ग । प । गुजाण स । केसरडी १
- प । धनविजय ग । प । सुखण स । मणवरपुरो १
- प । हेतविजय ग । प । मग स । कोठगाम १ वडादरो २
- प । नेमविजय ग । प । राम स । गामु १
- प । धनविजय ग । प । खुशाल स । छणीयार १ देका
पाडा ०, कुडाडा ३
- प । नेमविजय ग । प । रूप स । गाला १

पं । दीपविजय ग । पं । विनय स । गडमंडाणा १
 पं । मानविजय ग । पं । विनय स । वसु १
 पं । नायकविजय ग । पं । इन्द्र स । छठीयारडो १
 पं । लक्ष्मीविजय ग । पं । खुस्थाल स । गोधानी १
 पं । कपूरविजय ग । पं । विनय स । बीसा १ वडावल
 २ वरणझनाल ३

पं । जितकुशल ग । पं । दीप स । } व्याहारा १
 पं । रुद्रिकुशल ग । पं । कीस्तुर स । }
 पं । फतेविजय ग । पं । भाण स । उंदरा १ रानेर २
 घायड ३

पं । गोविंदविजय ग । पं । भगान स । ईश्वर १
 पं । रंगविजय ग । पं । प्रेम स । पोथली १
 पं । कीस्तुरविजय ग । पं । गोकल स । मगरवाडो १
 पं । देवचंद्र ग । पं । दुलि स । मोहनपुर १
 पं । विद्याविजय ग । पं । रूप स । } भावडगोठडा १
 पं । उत्तमविजय ग । पं । विद्या स । } उंबरी २ सध-
 लाणा ३

पं । उत्तमविजय ग । पं । विनीत स । गोत्रको १ गाजर्दी-
 पूरो २

पं । मानविजय ग । पं । विवेक स । अगासी १
 पं । रुद्रिकुशल ग । पं । ज्ञान स । मोमासादडा १
 पं । जशविजय ग । पं । नेम स । ध्रापरा १
 पं । रूपविजय ग । पं । भाण स । ओडपाड १
 पं । सुखविजय ग । पं । प्रमाण स । धकाणा १
 पं । नित्यविजय ग । पं । हर्ष स । पीपली १
 पं । दयासोम ग । पं । जित स । हंटीलो १
 पं । प्रेमविजय ग । पं । अमर स । साकरा १ घायल २
 पं । त्रिवेदविजय ग । पं । हर्ष स । वसरावी १
 पं । हेतुविजय ग । पं । हंस स । वजाणा १
 पं । सुंदरचंद्र ग । पं । दुष्टि स । कृमता १ देणप २
 पं । उत्तमविजय ग । पं । राजेन्द्र स । देवाडमो १
 पं । मोतीविजय ग । पं । मुक्ति स । जामना १
 पं । रुद्रिकुशल ग । पं । लक्ष्मी स । पं । मुक्तिविजय
 ग । पं । भिम स । रणोद १ पामना २

पं । मोतीविजय ग । पं । तेज स । रायपुर १
 अत्रोदरीत क्षेत्रादी सत्यापना अस्माभिर्विधेयति मंगलम् ।
 समस्त साधु समुदाय योग्यं । अपर सह पट्टाप्रमाणे
 क्षेत्रादेश पोतारने जट पोहचम्यो । तथा जे काई पारका
 क्षेत्रमाहि रहस्ये तथा क्षेत्र आलटपालट करस्ये तथा जे
 काई चामासामाहि फिरस्ये तथा जे काई गृहसोमु चट्टी
 बोलस्ये तो आकरो उपालंभ आवस्ये । सर्वथा गृहरास्ये
 नही । गृहरवा तो श्री श्रीजीनी गाण छहं । एहहु जाणी
 मर्यादा प्रमाणे प्रवर्तनू ।

पट्टक १०

आ पट्टकनी लंबाई २ फुट ५ इंच. पहोलाई ७
 इंच. पंक्ति संख्या ११६.

सही ।

ॐ नत्वा ॥ भ । श्री श्री विजयजिनेत्र सूर्यश्वरपरम
 गुरुभ्यो नमः ॥

स । १९०३ वर्षे विजयदेवेन्द्र सूर्यभिर्येष्टस्यत्याहेन
 पट्टक लिख्यते ॥ श्रीगुर्जरदेशे ॥

ॐपं । ...विजय ग । श्री जी सपरिकराः । श्रीलघुमरदेशे ।
 मनीमाल १ राजपर २

पं । ...धर्मविजय ग । पं । हुंहर स । पं । नरोत्तम-
 विजय ग । उ । श्रीविवेक स । पं । अमरविजय
 ग । पं । प्रेम स । रानेर १ ओडपाड २

पं । पद्मविजय ग । पं । मोहनविजय ग । उ । श्रीवि-
 वेक स । धीणोज १

पं । धर्मचंद्र ग । पं । कल्याण स । पं । रूपचंद्र ग ।
 पं । धर्म स । मुषे १ बाहिरकोट २ वसी ३ आ-
 गासी ४ नागुयाणो ५ माम ६

पं । क्षमाविजय ग । श्रीजी स । माटण १
 पं । गुमानविजय ग । उ । श्रीमाणिस्य स । अम्म-
 पार्थे ।

क्षुआ पट्टकनी उम्मी चामने मारमने कटलोस भाग
 सतराई गयलो छे तेरी कटलक नामो जता रवां छे.

- प । मानविजय ग । प । दर्शन स । पाटण १ डागा २
 वडाण ३ अहिडा ४ कर्माईसालीनी ५ भावड-
 भाटडा ६ उवरी ७ सथलासणा ८ भाडुसणो ९
 वान १०
- प । योगविजय ग । प । शुभ स । राजनगरमध्ये १
 प । माणकविजय ग । प । जय स । वीरमगाम १ गो-
 रिंगो २
- प । गुलाबविजय ग । प । जयविजय ग । प । रिबे स ।
 बीजापुर १ पिंपलदलकरपट्टीयो २
- प । माणिक्यविजय ग । प । खेम स । माडवी १
 पं । ...चंद्र ग । प । शिर स । प । प्रथवीचंद्र ग । प ।
 अमी स । सोरठदश गाथा १
- प ।ल ग । प । रुचिर स । प । विनयकुशल ग ।
 प । कुंजर स । प । चतुर कुशल ग । प । दालतकुशल
 ग । प । लक्ष्मी स । सुरत १ हरापुरा २ कठार ३
 छापरीयाओल ४
- प । रगविजय ग । प । केशर स । बुहारी १ पालडी २
 बगवाडा ३
- पं । शांतिविजय ग । प । केशर स । प । राजविजय ग ।
 प । उत्तम स । दमण १
- प । खुदयालविजय ग । प । देव स । राजनगरमध्ये १
 प । मोहनसागर ग । प । शिव स । पालणपुर १ बगदा २
 बाडायाल ३ बित्रोडी ४ सलिमकौट ५ पाचडा ६
 धनाली ७ मोरिओ ८
- प । रूपविजय ग । प । पद्म स । राजनगरमध्ये १
 प । राजविजय ग । प । रूप स । प । जीतविजय ग ।
 प । उमेद स । इहोल १
- प । देवविजय ग । प । काति स । प । जीतविजय ग ।
 प । शुभ स । आगलोड १ सिरदारपुर २
- प । मनरूपविजय ग । पं । मया स । सावली १ खेड-
 ब्रह्मानी २
- प । उत्तमविजय ग । प । वह्म स । प । सुस्तविजय ग ।
 प । अमृत स । राधनपुर १ अणरपुरा २ गाश-
 दीपुरो ३
- प । विनयविजय ग । प । कव्याण स । प । स्थभविजय
 ग । प । पिन स । सोया १ अनस्तु २
- प । पुन्यविजय ग । प । दीपविजय ग । प । कृष्ण स ।
 गीसतनगर १ डाभला २ कडा ३ गुडा ४
- प । मोनीविजय ग । प । मुक्ति स । रगतपुर १ तामला २
 ग । नीतीविजय ग । प । तेज स । थिरा १ जामप २
 कसदा ३ उदरा ४
- प । ननकविजय ग । प । कपुर स । हाफु १ हरसार २
 प । लालचंद्र ग । प । प्रम स । सारठदेगे वलय १
- प । लक्ष्मीविजय ग । प । सुबुद्धि स । वडाहरा १
 डभार्ड २
- प । रूपविजय ग । प । गज स । सिद्धपुर १ पापल २
 धराणा ३ भीलोड ४ कमालपुर ५ राकु ६
- प । दीपविजय ग । प । भाव स । प । भक्तिविजय
 ग । प । रिबेक ग । झीणोर १ घावरा २ ;
- प । फनविजय ग । प । जेत स । वान १ कुआला २
 थिराद ३
- प । शुभविजय ग । प । कल्याण स । सलेसर १ पचा-
 सर २
- प । सुबुद्धिविजय ग । प । रग स । भद्रजच १ देज-
 वारो २
- प । भक्तिविजय ग । प । किस्तुर स । दक्षणेदेस ।
 प । रपविजय ग । प । मोहन स । चानसमो १
 वडावल २ गासु ३
- प । चतुरविजय ग । प । न्याय स । गट १ मथा २
 मडाणा ३
- प । जयविजय ग । प । हर्ष स । मयानगर १ रत्नेज २
 प । किस्तुरविजय ग । प । मोहन स । धोलो १
 पिपली २
- प । नायकविजय ग । प । मुक्तिविजय ग । प । भीम
 स । गणोद १ पाटडी २ माडन ३
- प । शैमविजय ग । प । मणि स । भाभर १ मोरवाडा २
 प । नायकविजय ग । प । दीप स । प । लक्ष्मिविजय ग ।

प । लान्गण स । समी १ सानलपुर ~ दूषा ३
 २८ ४

प । माणिक्यविजय ग । प । हस्ति स । रणासण १

प । मोहनविजय ग । प । चतुर स । प । कजरविजय ग ।
 प । हम स । दिक्पाडा १ ३ आरद २

प । खुस्यान्धर्मेन ग । प । धर्म स । उदराण १
 ब्राह्मण २

प । रामविजय ग । प नम स । लिवा १ राणपुर २
 साआणा ३

प । हीरसाग ग । प । चतुर स । जुवा १

प । मुक्तिविजय ग । प । गुण स । प । अमाविजय
 ग । प । मुक्ति स । वसु १ सासम २

प । पद्मविजय ग । प । रवि स । दशाणा १ कजर २
 वलाडा ३

प । तन्विजय ग । प । त्रि स । २५गाम १

प । विद्याविजय ग । उ । श्री सामान्य स । भुनडा १
 चागा २

प । प्रमविजय ग । प । चतुर स । मसाणा १ नदी २
 ७८५२८३ मणाद ४

प । प्रतापविजय ग । प । भगान स । घटादरो १ जनु
 सर २

प । विवविजय ग । प । हम स । इडर १

प । गात्मविजय ग । प । ग्यन स । विहार १ सावन
 गढ ३

प । भीमविजय ग । प । हम स । लाणगा १ नदासण २

प । भ्यानविजय ग । प । रवि स । धाता १ सन्तलाणा २

प । धनसागर ग । प । फते स । गोवा १

प । जयविजय ग । प । दीप स । मतर १

प । हृषविजय ग । प । गुला स । } उडगम १
 प । भाणविजय ग । प । हृष स । } भास्क २

प । रविजय ग । प । दया विजय ग । प । रूप
 स । गोवरा १ वासही २

प । स्वद्विजय ग । प । गुण स । चतुर १

प । भाग्य विजय ग । प । अमन स । वडाली १ घडन
 गर ~ ली २

प । भीमविजय ग । प । सुमति स । अवासण १ कुं
 आव ~ पाचला ३ नसरडी ४

प । धर्मविजय ग । प । पुन्य स । चाणसाठ १

प । पद्मविजय ग । प । भाग्य स । आतरा १

प । कातिविजय ग । प । दालत स । सरायद १

प । गुमानविजय ग । प । रूप स । चित्राडा १ बदरको २

प । मुक्तिविजय ग । प । प्रताप स । गोला १

प । कजरविजय ग । प । २५मी स । सामान्य १
 बणप २ उवासण ३

प । महिमाविजय ग । प । नम स । खभात १ पाधली २

प । जसविजय ग । प । उत्तम स । वजाणा १

प । चतुरविजय ग । प । नव स । सराट १ ऊमता २

प । क्षमाविजय ग । प । प्रताप स । मजादर १

प । हीरविजय ग । प । २८ स । अमनगर १

प । रत्नविजय ग । प । खुस्या स । र्पा १

प । हृषविजय ग । प । सुजाण स । नानादरा १

प । हीरविजय ग । प । मय स । गणाद्वदि
 द । दापविजय ग । प । विनय स । भीटुचा १ नादातरा २

प । मानविजय ग । प । विनय स । धानरा १ हुआ ~
 सरडा २

प । २५मविजय ग । प । सुसाठ स । काठ १ गाग २

प । पत कुश १ ग । प । जीत स । दणदरा

प । पत्तविजय ग । प । भाण स । सानरा १ रानर ~
 वायड २ नासा ४

प । अमनविजय ग । प । रण स । नदीयाद १

प । किस्तुविजय ग । प । गाग स । मगरवाडा १

प । दनचद्र ग । प । दुति स । भागनूर १

प । विद्याविजय ग । प । रूप स । प । जयविजय ग ।
 प । विद्या स । २५मदरा १

प । हिनविजय ग । प । हस स । २५मदरा १ धानपुर १

प । राधविजय ग । प । भ्यान स । मुजपर १

प । यशविजय ग । प । नेम स । पादरा १ भोभा
 साददा २ नयसारी ३
 प । मुक्तिविजय ग । प । नेम स । नोरसद १
 प । सुखविजय ग । प । प्रमाण स । पालीताणामध्य १
 प । नित्यविजय ग । प । हर्ष स । पेटलाद १
 प । दयासोम ग । प । जीत ३ । ईटालो १
 प । सुदरचद्र ग । प । दुक्ति स । डायठाणा १
 प । उत्तमविजय ग । प । राजेद्रस । देवाडभा १
 प । मार्तण्डविजय ग । प । घन स । सोपर १
 प । यशविजय ग । प । हम स । भगया १

प । व्याज विजय ग । प । विस्तुग स । तात्रोल १
 अत्राद्धरितक्षत्रादिसत्यापता अरमाभिर्भिभयति मग ॥
 समस्तसाधु समुदाय याग । अपर सहु पत्राममाण पोना
 २ ने क्षेत्रादक्ष जर्द पाहचर्यो । ज बोई पाखा क्षेत्र
 माहि रेहस्ये तथा क्षेत्र आलडपात्र करस्ये । त । नेत्र
 मय विजय करस्ये । त । चामासा माहि कोई फिरस्ये
 हिरस्ये । त । फाई ग्रहस्था थकी चडी बालर्ये ता तहने
 आकरा उपालत्र आनस्ये । सर्पथा गुदपास्यई नहीं गुद-
 रवाज श्री श्रीजीनी आणउद । एहबु जाणि मयादा माहि
 प्ररत्तु ॥ ॥ श्री ॥ श्री ॥



सद्यवत्स सावलिंगानी जैन कथा.

(सद्गत श्रीयुत चिमनलाल डा. दलाल. एम्. ए.)

[सद्गत विद्वान् श्रावक श्रीयुत चिमनलाल ढाढ्यामाई दलाल एम्. ए. जैन साहित्यने लगता जे छुटा छवाया बे चार लेखो लख्या हता ते वधा एकज सग्रहमां प्रक-
याई रहे तेवा उद्देशापी तेमना ए लेखोने जैन साहित्य-
संशोधकमा क्रमपी प्रगट करवानो विचार राख्यो छे अने
तेमानो आ प्रथम लेख छे. आ लेख तेमणे ' वसन्त '
पत्रना संभन् १९७२ ना चैत्रना अंकमा प्रकट कराव्यो
हतां.—मुनिजिनविजय]

सद्यवत्स सावलिंगानी कथा गुजरातमां आवालवृद्ध
जाणीतो छे. तेना आठ भगना नेह तथा विजोगनी वातां
छीओ पण प्रेमपी याचे छे. आ कथा हमणांज नही
पण जूना वलतमा पण हिदुस्ताननी जुदी जूदी माथा-
ओमा लोकप्रिय हती. अने तेपी करीन कविओए पो-
तानी कविरसक्ति सूदानी पराक्रमी तथा सूदा-साव-
लिगानी अल्लुत प्रेम वर्णवयामां बतावेली छे आ कथा
जेठली लोकप्रिय छे तेठलीज जूदा जूदा रूपमा मळी
आये छे. [१] सस्कृतमा रत्नशेखरना शिष्य हर्षवर्ध-
ननी सद्यवत्सकथा (गद्यमा) : आ कथा सं. १५१०
—३० ना अरसामा रचयेली लागे छे. [२] प्राचीन
गुजरातमां भीम कविने सद्यवत्स थीरप्रवच उर्फ सद्य-
वत्सवीरचरित्र. [३] कर्ताना नाम वगरनी (पण
करीने जैन) सद्यवत्स सावलिंगी चउपड़. [४] सवत्

सस्कृतमा सद्यवत्स, प्राकृतमा सुदयवत्स, सुदयवत्स
तथा सुद; गुजरातमा सूदो, सद्यवत्स अने सदेवत, मा-
रवाडीना तथा हिंदीमा सूदो तथा सदेवत्स एना नामो
छे. सावलिंगाने केठलाक ठेकाणे सावलिंगी पण
कही छे.

१५९७ मा रचयेली कीर्तिवर्धननी सद्यवत्स सावलिंगा
चउपड़. [५] मारवाडी भाषामा स. १ ९७ मां
लखोयेली सदेवत्स सावलिंगानी बात दूहा साथे.

[६] आ उपरांत गुजरातमा नित्यलाम नामना जैन
साधुए सद्यवत्स सावलिंगा चउपड़ तथा हिंदीमा सदे-
वत्स सावलयाका दूहा पण जणायला छे.

लोककथाना सागर रूप, कथासंरिस्तागरमां सद्यव-
त्सनी कथा जणती नथी; परछु उज्जयिनी, हरसिद्धिमाता,
प्रतिष्ठान तथा शालिगाहन, बावन, वीर खापरीओ चोर,

२ श्रीरत्नशेखरगुरुप्रवरप्रसादाद्

हर्षादिवर्धनपणी सुरैसकमात्रम् ।

चमे कथा सद्यवत्सकुमारसनां

सत्पात्रदानविमलामयदानरम्याम् ॥

३ श्रीखरतरगच्छमगनविणद प्रतये श्रीजिनहरषसूरीं ।
शिष्य तास बहुविद् विचार दीपति दयारत्न दिणकार ४९
मुनि वीरतिरवचन शिष्य तास बधवजनराषण रंगरास ।
गुरुअनुमति निगमनि अछास ए कहीयो मै प्रथम अभ्यास
पार्थ नर पदमणि सुविलस पदमाणि पामे सुखचरणास ।
भगतां लाभ वछितभोग मुणता प्रीतमतनो सयोग ॥५१॥
बालभ प्रीयुतणी पदमणी जहना जली परदेसैं घणी ।
रतिगच्छि जे मुणसी सदा ते पामे पग पग सपदा ॥५२॥
सतत मुनि निधि रस ससी विजयदसमी रविवार ।

चतुरचर्हि रची चोपड़ मुनिकेंसव हितकार ॥ ५३ ॥

वैधक जे वाचै मुणै वछित पूजै (रे) हाम ।

जिम सावलिंगा मुष ल्हो सुदयवत्स सुखठाम ॥५४॥

मै रचना आहोज रची कविजन परमकृपाल ।

मुणि कै जि न हासी करो करिजयो दया दयाल ॥५५॥

तथा सदयवत्तना अष्टेन पगाक्रमो उपर्या भारी शक्या
छ के आ कथानी उत्पत्ति पण रिमरनी कथाओं जेवी ज
छ अने तेदली ज जूनी छे.

मे तपासली पान बड़ी बड़ी कथाओमां आपली
वार्ताओ ण विभागमा येंची शक्या छे.

उज्जयिनीना राजा प्रमुवत्तने महालक्ष्मी राणीथी सद-
यवत्त नाम्ना पुत्र हमा. ते युतेने विषे वणो आमक
हता. प्रतिष्ठानना राजा शालिवाहननी पुथी सायल्लिगाना
स्वयंवरमा सदयवत्तने आमंघण आय्यु. राजाए मंत्रिनी
साथे सदयवत्तने मोक्यो. मंत्री कृपण होवाथी कुमारने
जोदता पेसा आप नहीं. स्वयंवरमा कुमार सावल्लिगाने
पोताना गुणोथी आकर्षनि परण्यो. उज्जयिनीमां महादेव
नामने एक दरिद्री ज्योतिषी रहतो हता. पोतानी
स्त्रीनी प्रेरणाथी राजमभामा प्रमुवरस राजा पास आय्यो.
राजाए तेने पुछ्यु के ॥ कीया शास्त्रमा प्रीणि हू.
तेणे कीयुं के नष्टलाभ, भत, भविष्य, वर्तमान, यंगर स
हु जाय्यु हू. राजा आ दर्पवाळा वाक्यथी कोय्यो अने
पासे रहेला जयमगळ हस्तिछं आय्युय्य पुछ्यु. महादेवे
कीयुं के काले वे पहारे ते मर्यो. राजा आथी गुस्ते
थ्यो, अने तेने बंदीखानामां नाल्यो. तेनी रक्षार्थ
मुकेला जना हसवा लाय्या के श्रुओ आण हस्तिछं मृत्यु
जाय्यु पण पोताछं कारागृहपतन न जाय्यु.

गगने राणयति गणकश्चंद्रेण सभागमं विशाखायाः ।

अन्यास्तत्तां गृहिणीं कथमपि मूढो न जानाति ॥

राजाए बालोनेला वेंचाए कीयु के हाणीन कई पण
रोग नहीं मारि तेने खानपानथी संनैपण. राजाए
हाथिने चार तरकथी बघाज्यो. अने रक्षाथं पुक्यो मुझ्या.
बीजे दिवसे बंधारे हाथी मद्योन्मत्त बर्हने आलाजस्तंभ
तोडीने नाठे. चौंटामां सांगंधिक, दोसी, नेस्तिक,
चीआ, तेली, तंबोली, वधेरेने माल, दोली पोंडीने आगळ
दोख्यो. ब्राह्मणी स्त्रीनी अवरणीना उत्सवने वरयोडो
तेना पीयरथी सासरे जता हता त्या हस्ति आय्यो. लोकां
नाठा परंतु ब्राह्मणी आभूषण तथा गर्भना भारथी नासी
शकी नहीं. हस्तिए तेणीने पकडी, तेणीना पातिए

वुम पाडी अने तेणीने वचादि तेने हाए यंगर इनाम आप-
वानु कय्यु. सदयवत्तने हस्तिने मारिने ब्राह्मणीने छोडावी.
राजा शुशी थयो अने कुमारने युवराजत आय्यु. मंत्रीने
चिंता थई के तेने कुमार मे तेने लग्न समंय पेसा
आय्या न हता तेथी मारा उपर वेग रागरो अने मने
नहीं सत्ताव कर्यो. वारण के हंय भाग दिवस दया
छे.

दीहा छटा तं कण्ड ज वटरी न करंति ।

दीह पाट्टट राबणह पथर नीर तगति ॥

आथी तेने कुमारने कदावचानां उपाय चिंतय्यो
अद्वयित लाह स्थाल उपर कृपण दुकूल आच्छादीने
राजाने भेट मांक्यो.

राजाए कारण पूछ्यु. मंत्रीए कीयुं के एक स्त्रीना
कारणथी जेण सकलमंगलने कारण जयमंगल हाथी
हय्यो तेने तमा यौवराज्य आपो छो. राजा काचा कानने
हाथी पुत्रन राय्यमांधी जता रहेवाना हुकम कय्यो.

दुश्चलरुता वंकमुहा अंधगला सरांस ।

जेता गुण दुर्गमह तेता माणयवेस ॥

कुमार देश छोडवानो निश्चय कय्यो, कारण के ज
देशमां मान तथा प्रतिष्ठा न होय, ते देशमां सजन पुर्वे
रहेवुं उचित नहीं.

माण पणट्टर जप्पावणु ता देसडउ चइअ ।

मा दुज्जणकपएण्ये दंसिअं न भमिअ ॥

मातरण वार्यो पण ख्यो नहीं. सावलिगा पण साथे
नीकली. मार्गमा मोदं रण आय्यु सावलिगा तृषात्तर थई.
तेणी समझामां बोली.

सामि कुरंग रणथले जलविणु किमु जीवत ।
सदये कट्युं-हियउ सरोवर मेमजल नयणदं नीर पोयत ॥

सदयवत्त समझ्यो के तेणी तृषात्तर थई छे. तेथी
पाणी शोधना चाय्यो. एक प्रयापालिका देसारे. तेणीए
कीयुं के आ हसिदि, मानानी प्रिया छे अने जेट्ट पाणी
तेछु छभिर आपो ते नेमांथी पाणी अपाय. तेणे कय्यु
कीयु कारण के प्रेममां रुंद अक्षय नहीं.

फारि ममुदतरण पदसिज्ज हृषिकेशंमि जालाण ।

एवं लज्जित मरण किं दुल्लह अजसिणेहस्म ॥

बुद्धा तनी साथे गईं अन सावलिगान पाणी पायु
अने हथिर मायु कुमार शिरःछेद कवान उद्युक्त थया,
हरसिद्धि माता प्रत्यक्ष थईं अन कयु के भे तरा घरी
क्षाने मांटे आ अरुण्य गंगर विकुर्वेडु तापा अवल
साहस्यी हु प्रसन्न थईं दु. दु अवतीं अन प्रतिष्ठान
नगरानी अधिपानी दरी हु मां वर माग कुमार छत
तथा सुधाममा जय माय्या. दवीण सायांदि द्युत्तने वारंन
ने पासा, कपदेव द्युत्तन वारने कपदिंल तथा सुधाममा
जयन वारते लोहभुरिका आधी आगळ चाल्नां एक
कुमारिकाने लीओना समूहनी यच्चे ध्यान भरती दीडी.
सावलिगा अदर गईं अन तेणीना उतात पड्या. कुमा
रिकाण कह्यु अहीथी पांच गाड उपर आवळी क्षातव
तीना राजा भरवीरनी ली भारिणीनी बुद्धिथी उत्पन्न
थयेली हु लीलावती नामनी राजकन्या हु बदिजनना
मुलथी सदयवत्सना गुण सामळयाथी आ काभितप्रद
तीर्थना तेने मेळवडाना हेडुथी उ मरीनथी हु ध्यान धईं
हु काले हने काष्ठ भक्षण करवानी दु. सावलिगाए
सदयवत्स सुवर्धी हकीकत कही. सर्वे नगरमा आया.
सदयवत्स जोड लीलावतीनु लग्न कर्तुं. ए अरसामां
त्या धर्मयोग नामना आचार्य आख्या. तेमणे योगे वण
धर्म मनुगे करवा ते उपर मूर्गाकनी कथा करी. सद-
यवत्स श्रावक धर्म पाय्या. लीलावतीने पितृगृहज राखीन
सदयवत्स सावलिगा साथ आगळ नाय्या. रस्तामा
पर्वतसीव उपर शिलथी आगडिदित एक कदरा दीडी.
वने अदर पेठा. कदरामा पांच चौर हता. तमणे विचार्युं
के आ पुत्रवध मारीन तेनी सुन्यवती 'खी लईं लईं
चौरोए द्युत्त रमवने आच्छान कर्तुं ज हारे ते पोतानु
शिर मुके एवी शरत करवामा आवी सदयवत्स जित्यो
पण चौरोनी शिरःछेद क्यों नही चारो प्रसन्न थया
अने कह्यु के अमारी पास अण्णजन, सजीवनी, रस-
सिद्धि, वंगर प्रियाआ छे त तमने आधीए सदयवत्स
ना पाडी. एक चोरे छानेमान तना उत्तरीये पसिनी

पन्न वणिन लक्ष भूलना कचुक थाया चौरोए कीतु क
सकन्मा अमार स्मरण करता तमारी मददे अन आवीशु
कुमार आगळ चारता एक निजेन नगरमा आव्या.
राजभजनमा आउता पास एक स्त्रीनु रुदन साभळीन
तेणीनी पास भयो. तणीए कीतु क हु नदीराजानी लक्ष्मी
हु निर्नाथ होवथी हु रुदन क हु मां हु मारा पति
था नगरनी निर्जनता विषे पूडना लक्ष्मीए कीतु क
आ वीरपुर नगरमा एक तापस आख्या हता ते स्त्रीथी
काल गिरन् उ एम वनागान काईं स्त्रीना स्पर्श थाय
तो वनाज गुस्स यतेर एकदा नगरनी यथा तने अडकी
राजा पास करीयाद जना वध्याए कीतु क ए केवल
डोंगी छे राजाए परीक्षा करवा मां तेन पाताना
आरासमा आख्या अन राणी साथ मटारासमा आउ एरी
गोटरण करी राणीन जार्न तापस कामाहू थया अन
भागनी प्रार्थना करी राणीण वृम पाडयाथी राजा
आव्यो अन तापसन तण हण्या. त तापस मरीन राक्षस
थया अन पूर्वभवना घेरथी नगरनी आधी स्थिति करी.
प्रत काले लक्ष्मीए धनना ढगला वताव्या सदयवत्स
सावलिगान कष्ट के आ सर्व आपणे आगळ उपर
बलिविधान करीने ग्रहण करीशु त्याथी चालता अत्रकमे
तओ प्रतिष्ठान नजीक आवी पहाच्या पासना गाममा
मटने घेर स्थिति करी सावलिगाने कह्यु के हु तारा
वास्त प्रतिष्ठानमाथी तारा पिताना नगरमा प्रवेश वास्ते
उचित रथ आभूषण घेरे लईं आउ. सावलिगाए
कह्यु क पान दिवसमा नही आउ ता हु काष्ठभक्षण
करीश. सदयन प्रतिष्ठानमा प्रवेश करवा एक दूदक
मय्या अपसकुन मानी सदय पाठा कथा. दूदकने
खोटु लगयाथी फीथी पुष्प साध गंगे मांगलिक वस्तु-
आ स्थालमा मरीन लाव्यो. दूदक बीधु क हु सिंहलना
राजानो मुरुदर नामनो पुत्र हु. मीदुनथी हु ७००
हार्थी तथा मोड सानेया माथ आ नगर जोवा आये
हता. परछु त सगळु हु धनमा हारी गया
द्युत्तकाए माग टप्पनातीदिक पण कापी
व वड छ थोरे त धन मा ७ उ

देवह कटह बाद कई गिनु चला दह ।

केद वसाधर पाठरह कइ रमाहर भुअ ॥

बन जणा नगरमा पठा. रस्तामा सूर्यमासादमा गिना दना कलह सामन्या. राजानी मानीती वामसना नामनी वेश्याए दताकना पुन सोमदत्त श्रेष्ठिण तर्णीन घर आवीने तर्णी साथे सभोग कयों एबु स्वप्नु दीष्ट आथी तेगीए सोमदत्त पास ते सभोगना नपसुद्रमा लगा पातानी अझाने मोकली. अझाए लावणो करी पण सोमदत्त पाई पण आपी नही. आने गिराद सूर्यमासादमा चालतो हतो. तने आज श्रीजा दिउस हता कुमारन तेने नानेयकता नीम्या कुमार श्रष्टिन कीनु क राज-मान्यनी विरोध करवाथी दत्तिलमल्लनी माफक दु रा पाम छे माह तेणीने पसा आप श्रष्टि पास कुमार धन मगा व्यु अने वेश्यान कीनु क अर्थ धन ल नशीए ना पाडी छेबन कुमार एक आदस मगावान तनी माम सखल धन मूस्यु. वेश्यान कीनु क आमाछ प्रतिबिंबित मन छे, प्रत्यक्ष छे ते नही कारण के स्वप्न अन प्रति-बिम्ब ए सरसी अवस्था छे, वेश्या मिलक्षण थईने घेर गई. कामसेना आ वृत्तात सामझीने नृत्य करवाना मिध सूर्यमासादमा आनी कुमारने देखीने तणी कामध्वरपी-हित थई. कुमारने पोताने घर तेडाव्या दूटके निवेध कयों. तेणे कुमारने समजाव्यो के वेश्याओ घुई होय छे. कारण के

आलह रमद मनद हसउ जन आणइ एसी ।

पिन ते मारइ पुगिसनइ ज कछु करारत ॥

कुमार रायो उता वेश्याने घर गया. आग्रहथी पाच दिनस त्या रक्षा, नगरमा छत रमवा जता घणु स्वर्ण मेरुव्यु, थोडाँक भाग दूटकने सावलिगा वारते आमूष णादिक खरीदरा आप्यो. बीजो बधो वेश्याने बक्षीस आप्यो. पाचमे दिनस कुमार रजा भागता वेश्याए रह-वानो घणो आमह करता तेनु उत्तरीय खेच्यु तमाथी एक वष्टन भोग उपर पड्यु. वेश्याए ते छोदी जाता रत्नमय कनुक दीडा अने ते कुमार पास माग्या. कुमार कबुक आप्या अने त पहरीने राजसभामा अना

मार्गमा एक श्रष्टिण तर्णीन नीतागिन पाताने चारायला कचुन वेश्याए पद्या छे ते सारी करी लिथि. महाजन लाक आ सबही राजा पास परीयाद लईन गय. राजाए पठ्यु क तमाए शु चोराय छे. उत्तर मन्या के चारा यणी चाज वेश्याना छर स्थलनु मदन छे राजाए पद्या ने पूजू वेश्याए कीनु क अमारे त्या अनेक नटबिद-चौरादिक आये उ अन जो अम आम नाम दईए ता अमारा राजगार तूरी जाय. राजाए विचार्यु क गमे तटछ बहु मान करा ता पण वेश्या पोतानी थती नथी. कारण क

पासा रसा अगि जल ठग ठनकुर सानार ।

ए दस हाद न अप्पणा मरुइ बहुअ बिडाल ॥

राजाए वेश्यान शूलि उपर आगपताना दुरुम कया. कुमारन तवर थता त शूलिस्थान गया अन तलारक्षकने गीनु ह हु चार दु माह वश्यने डाह. तलारक्षके ना मानता कुमार बलात्कारे वश्यने डाबावा. तलारक्षक सामा थयो कुमारने तनी नासिका छेदी. राजाए सेना मावली तने पण कुमार हरायी. पाचमो दिनस होवाथी एक दिवसने माटे सामदत्तने प्रतिभू तगीके मूकीने कुमारने काष्ठमक्षण करवा तत्पर थयेली सावलिगान ब-चायी. प्रतिज्ञा प्रमाणे कुमार त्याथी पाठो शूलिस्थाने आव्यो. राजाए वाचन वीर भेकक्या तेवामा युद्ध गो-वाने अनेक विबासिद्ध युद्धकाहुकी अभिनवनारद एक पुरुष आव्यो. तेण कुमारनी अवस्था आगछना पांच चारान जईन कही चारो तरत मदद आव्या वाचन वीर पण हाथी राजाए कुमारनु नाम पूठ्यु कुमार उत्तर आप्या नही तथी वेश्याने पूज्य. वेश्याए कुमारनु खडग रज वस्यु. कुमार कीनु के ए खडग मे सदयवत्स पासथी द्यूतमा जीतीने मळेरु छे राजाए कुमारने आत-रवने गजवटा बोलानी परछु कुमारने सिंहनाथी नसाडी मूकी. राजा पगे लागतो सामे आव्यो. कुमार विनय-थी भेटयो अन तेणे सबडा वृत्तात कइ राजाए कीनु देवनी गति विचित्र छ. कारण के—

उयण गुणघमण अत्यमण तह य गगदिवसीम ।

सुररम वि तिभि दसा का गणणा न्यरलोगस्त ॥

राजाण पोताना पुत्र शक्तिहितन मोक्षीन सावर्णिगाने तेडावी लीली. वज्रण केउलोक काल प्रसिष्ठानमा रहीन आनदमा गाल्ये. सदयवत्स गणिक, क्षत्रिय तथा ब्राह्मण एम ग्रण मित्रा रयां एवामा एक ईदक्षिक आन्या कुमारे तने पठय क तम काई कंतुक दीद ? तेणे कहु के तुववन नगरमा धनपति श्रेष्ठिना मृत पिता वर्णा वस्त वाट्या ठा राते सर्वाजन थईन घर आवे छे. कुमार आ साभर्णिग मित्रोसाथे ते नगर तरक चाल्यो. तुववन नगरमा प्रवेश करता एक ब्राह्मणनी पुत्रीन सीकोसरी रगमी हनी तान छाडीगीन ब्राह्मण मित्रन ते कन्या परणायी. व्यवहारीने घर नईन तना पितानु शत्रु श्मशानमा लाव सगरे गाव एम नदी करीन बाराफरती सने एकर पहोर जागता रद्या प्रथम गणिकनी चोकीमा एक खाना ददनपर सभळायी वणिक शब्दे पातानी पीठ बांधीने स्त्रीपासे गया. स्त्रीण कीपु के आ मारा पतिने शूत्र उपर आराध्या छे तने सारावेरास्ते घाल लागी दु धन क्षुलि उची हाथीया मारयां पहीचातु नयां वणिककुमार तेणीन उची करी. ते स्त्री उची चढीन शूलारापित पुरुषत मासमक्षण करता लागी. मासनी एह पडग्यां वणिककुमार ते स्त्रीने पठाडी. नासता नामती त स्त्रीने उकणगळो हाथ वणिके कापी लीधा अने रतमा दाग दीधो. बीजा पहोर ब्राह्मणकुमार एन राक्षसने राजकुमारीन लईने आल्लो दीदत राजकुमारी साथे भाग्यप्रार्थना करता ते राक्षसन ब्राह्मणे पाछळ रहीन माया श्रीत्रे पहार क्षत्रियनो बारा आख्या ते शब्द वाटवान देरता लग्न आगळ गयो त्यां भूतेने खीचडी पडावता दीदत तमनी आगळ सात पुरुषो खीचडीमा शक तरीन सारा बायेलो हता क्षत्रियकुमारे भूताने बीरदायन नगाड्या अने पायाणगी खीचडीतु भाजन भागी नाल्यु बांधेला सात पुरुषा राजकुमारा हता. चाय पहोर सदयवत्स उक्ता. आ समय शत्रु बाल्यु के मारा साथ घन रम लवमा रहेल वेताल पाताना वाहु प्रसारीन रात्रमहलमाथो सोमना बाजी आणी, ज हार त पातानु मरक मुक तनु पण थयु

वेताल हारता कुमारे तेनु मस्तक ठेगु अने शब्दे बाळी नाल्यु. प्रभाते श्रेष्ठी पास गया अने कुबुल्ले धन तथा कन्या मागी श्रेष्ठीण कीपु के हु काल बराबर स्त्री करीने आर्पाश कुमार राजा पसे फरीयाद लईने गयो. राजान राखिनो सर्ग व्यतिकर कयो. राजाए पुरावो माया, बापेलेो हस्त वतावता त राखिनो नीकल्यो. राजानी स्त्री सीकोसरी सावीत थई. राजकुमारे तथा राजकुमारीन पण रज्जु कयां मंत्रिण स्त्रीचरित्र उपर एक दृष्टात कहु जे व्यतरो हाथ ठे त मरता नथी ते तो एक " ले गुण सिद्धि गाढी " ना म्हातमा जम कौतक प्रियज्ञ हाथ छे. परंतु ज मनुष्यो राक्षस विधानी उपा सना करीन मासलोल्लो राक्षसनी माफक आचरे छे तेओनज मुल्य गाय छे. श्रेष्ठिण तापण बीज दिवसेज स्त्री करीन धन आप्यु गणिकपुत्रने ते श्रेष्ठीनी कुमारी परणायी अने क्षत्रियने राजकन्या परणायी. सदयवत्स रयां प्रथम कहुला निगनपुरमा आल्यो. त्यां राक्षसने आराधीन बीरकाठ नगमु नगर वसावु सदयवत्सने लीलावती तथा सावर्णिगाथी घनवीर तथा बीर भातु नामना व पुत्रो थया. सदयवत्स कालिकाचार्य बंधु र्थीनी सवत्सरी करनार पसे पोते वसावेला नगरमा बीर जिनेश्वरना मंदिरमा प्रतिष्ठा करावी. एवामा उज्जयिनीची आयेला एक भाटना मुखगी सांभल्यु के उज्जयिनीने स्त्री माडाना राजाआण उ मासगी घेरो घालेलो उ शत्रुने हरावदान सुदयवत्सना पुत्रो गया. पाठळपी सदयवत्स पण गया शत्रुओने हराव्या, मनुवत्स सदयव तने राग्य आप्यु बीरकोटतु राग्य कुमारने आप्यु. कोदक समर्थ अवतीमा कालिकाचार्य पचार्यो तिमण सदयवत्सने पूर्व-भव कयो पिच्यचलनी पहलीमा गात्रक नामना नगरमा व्याघ्र राजने भारहदवीनी दुक्षिणी गुणसुंदर नामनो मंत्रकपरिणामी पुत्र हतो श्यामार्थ शुरु पसे जीवदया तथा अभयदाननो उपदेश पाय्या अने सम्यक्तरमूल बार व्रत अंगीकार कयां गुणसुंदर अन्नपानगी मुनिओन पति लाभता तथा जीवदया तथा अभयदान आपवामा तत्पर रहता, उद्यानमा क्रीडा करता चार पुरुषा तने मल्या,

તેઓણ કહ્યું કે અમને ચેતાલપુર નગરમાં દેવીના શાલિ-
દાન માટે પકડ્યા હતા ત્યાંથી અમે નાસાં આવેલા છીએ.
તે નગરના લોકો હિંસાલુ છે અને જ્ઞાણિતપ્રિયા નામની
તેમની દેવી થોડા કાચની સિદ્ધિને માટે મહિષનો અને
વધારે ખારે માટે સિદ્ધિ મનુષ્યનો બલિ માગે છે. ગુણગંધર્વ ત્યાં
ગયો અને બાલ આપતા લોકોને નસાડીને માણસને બ-
ચાવ્યો. કુમારે પછી દેવી સમક્ષ પોતાના કંટે લદગ થયું.
દેવીએ તેનો હાથ પકડ્યો. દેવીને પ્રતિવોધીને જીવહિંસા

વંદ કરાવી. અંતે આરાધનાથી મૃત્યુ પામ્યો. કાલિકાચાર્યે
કહ્યું કે હું જીવદયા તથા અમયદાનથી આ જન્મમાં
પરાક્રમ, તથા મુનિને દાન આપવાથી ભાગ પામ્યો છું.
સદયવત્સને જાતિસ્મરણ થયું. સદયવત્સ શ્રાવક ધર્મ
આરાધીને સ્વર્ગે ગયો. આવતી ઉત્સર્પિણીમાં મોક્ષે જશે.
આ કથા રત્નદ્રોષરના શિષ્ય હર્ષવર્ધનમણિયે રચેલી છે.
રચ્યા સંવત્ આપલી નર્મી પળ સં. ૧૫૧૦-૧૦ ના
અરસામાં રચાયેલી દોઢી જાંઘ.

ડૉ. હર્મન જેકોવીની જૈન સૂત્રોની પ્રસ્તાવના.

(પ્રથમ ભાગ- ચાલ.)

અનુવાદક—શ્રીયુત. અંબાલલ ચતુરભાઈ શાહા, ધો. ૫.

[પ્રથમ ભાગ (અંક ૨) ના પૃષ્ઠ ૧૭ ઉપર અપૂર્ણ
રહેલી પ્રસ્તાવનાનો આ અવશેષ ભાગ છે. એકરીતે આ તે
પ્રસ્તાવનાનું પરિશિષ્ટ છે. કારણ કે પના મૂલ લેણકે
એને તેજ રૂપે લણ્યું છે. આમાં આચારાંગ અને કમ્પસૂત્ર
પ્રથમ કે જૈન સૂત્રોની રચનાશૈલી વિગેરેનું વર્ણન કરવામાં
આવ્યું છે. —સંપાદક.]

હવે આ પુસ્તકમાં જે જે સૂત્રોનું ભાષાંતર કરવામાં
આવેલું છે તેના વિષયમાં જે શબ્દો લખવા જેટલું માંદ
કર્તવ્ય વાકી રહ્યું છે.

પ્રથમ સૂત્રનું નામ આચારાંગ સૂત્ર છે જે કેટલીક
વસ્તુને સામાયિકના નામે ઓળખાય છે. એ સૂત્ર ૧૧
અંગો પૈકીનું પ્રથમ અંગ છે. જે ચાર અનુયોગો અર્થાત્
વિષયોમાં સર્વ સિદ્ધાન્તો વિષત્ત થયલા છે તેમાંના ચોથા
અનુયોગના વિષયમૂલ ગણાતા આચારાંગ આ સૂત્રમાં વર્ણ-
ન કરેલું છે. ચાર અનુયોગોનાં નામ આ પ્રમાણે:—ધર્મ-
કર્યનુયોગ, ગણિતાનુયોગ, દ્રવ્યાનુયોગ અને ચરણકરણ-
નુયોગ. આ સૂત્રના કે શ્રુતસ્કન્ધો છે જે વરરૂપ ભાષાશૈલી

તથા વર્ણનપદ્ધતિમાં એક ટીકાથી ઘણાજ ભિન્ન પડે છે.
ટીકા શ્રુતસ્કન્ધના પેટા-વિભાગોને ચૂલાઓ અર્થાત પરિ-
શિષ્ટો કહેલા છે. આ ઉપરાંત પ્રથમ શ્રુતસ્કન્ધ 'જ વાસ્ત-
વિક પ્રાચીન સૂત્ર હોય તેમ જણાય છે. આયોજ મત પ્રા-
ચીન સમયમાં પણ પ્રચલિત હતો, તેના પુરાવા આ સૂત્ર-
ની વિષેમાન એવી સૌથી પ્રાચીન ટીકામાં કરેલી સૂચના
ઉપરાંતી રાષ્ટ્ર મળી આવે છે. સામાન્ય રીવાજ પ્રમાણે
દરેક ગ્રંથમાં આદિ, મધ્ય અને અંત એમ ત્રણ પ્રકારનાં
મંગલ—કથનો માનવામાં આવે છે, તે અનુસારે શાંતિકા-
ચાર્યે પોતાની ટીકામાં આ સૂચના પણ ત્રણ મંગલનો
ઉલ્લેખ કરેલો છે. તેમાં આદિ મંગલ તરીકે તે પ્રથમ
શ્રુતસ્કન્ધના પ્રથમ અધ્યયનના પહેલા ઉદ્દેશકના પ્રારંભિક
વાક્યને, મધ્ય મંગલ તરીકે પાંચમાં અધ્યયનના
પાંચમા ઉદ્દેશકના પ્રથમ વાક્યને અને અંત મંગલ સોલ્મી

૧ આ ટીકા કાઈ પહેલીજ ટીકા છે એમ નથી. કારણ કે
શાંતિકાચાર્યે પણ પોતાની ટીકામાં ગેપહસ્તિની ટીકાનો ઉલ્લેખ
કરેલો છે

गाथाना उत्तरादिने टाक्युं छे. आ उपरणी एम स्पष्ट सम-
जाय छे के टीकाकार आचार्य सूत्रनी समाप्ति प्रथम
श्रुतस्कन्धना आठमा अध्ययनना चोया उद्देशकनी सोळ-
मी गाथा—के जे ए श्रुतस्कन्धनी उपान्त्य गाथा छे—
साधे थपरी माने छे. आधी ए सिद्ध थाय छे के
आचार्य सूत्रो सार्था प्राचीन भाग ते तेनो प्रथम
श्रुतस्कन्ध छे. राकीनो भाग पाण्डुरथी उमेरवामा आश्वी
छे. आ (प्रथम) श्रुतस्कन्ध पोताना विषयमा परिपूर्ण छे.
तेमा श्रद्धाशील आत्माओमाटे मोक्षपर्यंतना मार्गउ गूढ
भाषामा वर्णन करेछ छे. एतु अतिम अध्ययन के जे
तीर्थकरे सहला कीर्तिकर परिबहोनु लोकार्थक वर्णन
आपणु एक विनयगीत जेनु छे, ते प्रायः पाण्डुलना
समयमा उमेरवामा आवेलुं छे, तो पण जे स्वरूपमा ते
अत्यरे उपलब्ध भाय छे ते रूप एक सात्वा योगीश्व-
रमु उच्च आदर्श दर्शक होई थुं महत्त्व छे. आ सूत्रो मेरो
भाग एक अत्यन्त ब्रत दवा गद्यरूपमा लखाएलो
छे. तेमां घणा ठेकाणे वाक्याशो नजरे पडे छु तथा
केटलाक स्पष्टीए तो एवा पण वाक्यो मळी आवे छे
जेना कोई अर्थ बेसी शक्तो नथी. आ शैली जोई आप-
णने ब्राह्मणोना सूत्र-प्रथीनु स्मरण यई आवे छे लक्ष;
परतु ए बेमा वधे एक मोटो भेद ए छे के ब्राह्मण
ग्रंथामा एकाकी जणाता सूत्रो, ते विचारोनी तार्किक
श्रृंखलाना आवश्यक अंकाडा—अवयवो रूप छे, पण
आ सूत्रमा नजरे पडता असबद वाक्या या वाक्याशो
कोई एक मुख्य विचारना स्पष्टीकरण करवा अर्थ
एक बीजा साधे सबध धरावता होय तेम जणातु
नथी. तेने वाची जथाथी आपणने ते कोई तर्क समुक्त
वर्चीनो बोध करावनार कोई समत शास्त्र होय एम
नथी जणातु, परतु ते वलतमा विद्यमान केटलाक पवित
ग्रंथोमाना अवतरणानो बनेलो एक उपदेशक वचन-
संग्रह होय तेम जणाय छे. मारा आ अनुमाननी
सत्यता, ए सूत्रना गद्य भागमा अही नहीं रेगणली जे
गाथाओ अथवा गाथाशो मळी आवे छे, तेनाथी सिद्ध
थाय छे. कारण के आमना अनेक गाथाशो ते सूत्र-

कृतांग, उत्तराध्ययन अने दशवैकालिक सूत्रोमा जडा
आवती गाथाओ अथवा गाथाना पादोने घणा मळता
आवे छे. आ उपरणी ए वचन पादो या पद्योने ते
वलतमा प्रमाणमुत्त गणाता ग्रंथोना अवतरणो हप्
मानवा जोईए. आज निर्णय केटलाक गद्य वाक्योने—
अने तेमां स्थास करीने जे जे वाक्यो स्वय अपरांत
छे तेमने, पण लघु पाठवे जोईए. आ अवतरणोनी
पण वधारे समजुती आपथा मांटे अगर तो तेमनी अर्थ-
पूर्ति करवा मांटे बीजा पण तेमां वाक्यो अगर पद्यो
उमेरेला छे, जेमाना केटलाक नमुना नीचे प्रमाणे छे:—
१, ४, १, ३, मा आवेल 'अहो य राजो गतमाणे धीरे'
आ त्रिष्टुम छंदनो एक पादमात्र होई स्पष्टरीते अवतरण
जणाय छे. एनी पद्यी आवेल 'सया आगयपन्नाण'
ए वाक्याश, ए अवतरणनु अर्थ बोधन करे छे, जेम के
'अहा य राजो=सया' अने 'गतमाणे धीरे=आगय-
पन्नाण' आ पद्योना वाक्याश 'पमतं बहिया पास' छे.
जे समक्षरीते एक श्लोकनो पाद छे. आ पद्यीनु
वाक्य 'अप्पमत्ते सया परक्केजा' ए छे, अने ते
उपरना वाक्यनु नैतिक तारण छे. आ उपरणी आनी अनु-
वाद आपणे आ प्रमाणे करीए:—'रातने दिवस
प्रयत्न करतो अने धीर' अर्थात् सदा तत्पर ज्ञान-
वाळा 'जो प्रामादियो बहार उभा रहे छे' (तेदवा
मांटे) अप्रमत्तरिते सदा प्रवृत्त थनु जोईए. टीका-
कार अवतरण अने तेना टिप्पणने खुदा माइता नथी
परतु ते तो आ वचन पदेने एक वाक्यना अवयवो
समने छे, अने तेनो अर्थ मारा अनुवादना मूळमा
(पु. १७) जेम लखेलो छे तेज प्रमाणे ते
आपि छे.

अनी माफक बीजा पण घणा ठेकाणे, शीलाके पो-
तानी टीकामा जेगो अर्थ कर्यो छे तेवो ज अर्थ मे मारा
अनुवादमा आपणे उचित धार्यो छे कारणके केटलीक
वलत अवतरण अने ते पद्योना मूळ ग्रंथ-प्रमाणे अलग
तारवी कादवाउ काम अत्यन्त असक्य होय तेम जणाथुं
छे. तेथी सिद्ध करी जताथी शक्य तेग रवाशोने छोडी

શાકીના અતરણેને સ્વલ્પ પાઠ્યાનુ સાતમ મે સ્ત્રીકાર્યુ નથી. આ કારણથી મારે ઉપગાહિતિત એક શ્રોવના પાદ જગા અન્ય પાદેન, તમના તરફ લક્ષ્ય સંખ્યા સિચાય જતા કરવા પડ્યા છે. ચાત્ર એ ક જ પ્રત્યક્ ગદ્યાત્મક પ્રથમા આવા શ્લોક પાદો નજરે પડ્યા તર છે કે જેમને પદ્યરૂપે ગણવાના આશયથી નથી જ ઉદ્ધૃત કરવામા આવ્યા ! આ કારણથી આપણા આ પ્રથમા પળ તેમાંના, ઘણા સ્ત્રા શાકાસ્થદ હોવા ઠરાઈ, કાચિતજ શ્લોકના પાદો જવા દેલાય ન સ્વાભાવિક છે. આ કરતા પળ મોળામાં માટી મુસ્કેલી તા ગદ્યાત્મક અમરણા શાલી—તારંગી રાઢવામાં પડે છે. આવી જાતના શાસ્ત્રિય અતરણા પળ આ પ્રમાણે મળેલા છે—૧, ૩, ૧, ૧ મા આગળ ‘મુક્તા અમુળી, મુળિણો સતત જાગરતિ’ આ શાક્યાની માયા, અન્ય ગદ્યાત્મક ભાગથી સ્પષ્ટ ભિન્ન પદ છે. ઠરાઈ પળ આ અતરણો અને મૂલ ગ્રથ—ભાગ વશ લીટી દારી ચતાવ્યાનુ કામ અશક્ય ઠ ઉપર જ કાંઈ કહેવામા આવ્યું છે તે ઉપર થી ન સ્પષ્ટ સમજી શકાશ કે પ્રાથમિક અનુવાદ સમય આચારાગના પ્રથમ શ્રુતસ્કથ જેવા ગ્રથન યોગ્ય ન્યાય આપવાનુ કામ કેટલુ મુસ્કેલી મળ્યું છે. તેથી ઘણાક સ્થલોમા તો, મૂલ સૂત્રનો અર્થ, જગે ટીકાકારે આપેલો છે તેનો જ મેં આપેલો છે. ઇટલા માટે ટીકાકારોના સપદાયદારા સરક્ષિત અર્થાવવાજ કરતા આગળ વધી મૂલ સૂત્રકારના અસલી આશયને અનુસરના અર્થનુ ઉદ્ઘાટન કરવાનુ કાર્ય હુ મારિ સંશોધકો ઉપર છોઢી દરુ છુ.

પર્વકાલમા પ્રથમ શ્રુતસ્કથમા હાલના આઠ અધ્યયનો ઉપરાત એક મહાપરિણા નામનુ નવમુ અધ્યયન હતુ, જ અત્યારે નદ્ર થળુ છે સમગ્રાયાગ, નન્દી, આર ક્ષક—નિર્ચુતિ અને વિધિપ્રમામાના ઉલ્લેખા અનુસાર ત નવમુ હતુ, પરંતુ આચારાગસૂત્રની નિર્ચુતિ કે જમા આચારાગસૂત્રના પ્રથેક અધ્યયન તથા ઉદ્દેશકમાં આવેલા વિષયોની વ્યવસ્થિત યાદી આપલી છે, તેના, તથા શીલાગાદિ ટીકાકારોના મતાનુસાર તે અધ્યયન આઠમુ હતુ. તમા સાત ઉદ્દેશકો હતા અને મિથુ જાગરના

• જુઆ નજરના આરુતિ ૧ છ ૧૬૦

સપ્તમા કેટલુક વિસ્તૃત વર્ણન આપેલુ હતુ. કદાચ, આજ વિષયનું વિસ્તૃત દર્શીકત પુનઃ શીજા શ્રુતસ્કથમા આવતી હોવાથી તે મહાપરિણા વધારે પડતુ થવાને લીધે નદ્ર થયુ હોય તો તે સમજિત છે.

શીજા શ્રુતસ્કથમા ચાર ચૂલ ઓ ઇટલે પરિશિષ્ટ રૂપ ચાર વિમાનો છે. અસલમા તેની પાચ ચૂલાઓ ગણાતી હતી પરંતુ નિર્સાદિશ્લયણ નામની પાચમી ચૂલા હાલમાં એક જુદી રચતવ મુત્ર તરિકે મનાય છે. પહેલી અને શીજી ચૂલામાં આચારીયયક નિયમા આપેલા છે. તે બની રચનાશીલી પ્રથમ શ્રુતસ્કથથી ઘણીજ જુદી જાતની છે ન તદન કટાળા મરલી ઠ ઇટલુજ નહીં પરંતુ સૂત્રને પળ સાચ્ય નથી આ માગના અનુવાદ કરવામા તેમા આવતા અનગાનેક પારિભાષિક શબ્દોને લાંબે ઘળી મુસ્કેલી પડી છે. આમાના કેટલાક શબ્દો તો એવા છે કે જે ટીકાકારે કરલા સ્વર્ણીકરણ છતાં પણ સમજી શકાતા નથી. શીજા કેટલાક શબ્દોનુ ટીકાકારે માત્ર સસ્કૃત રૂપજ આપલુ છે અને અર્ગાંચીન જેનેને તે સમજામાં વ્યાખ્યાની જરુર ન હોય તવા દેલાય છે. પળ આવા શબ્દોના સવધમા અમારી સ્થિતિ જુદી જ છે. કારણ કે આ શબ્દોને જ્યારે કોઈ પણ યતિ સદ્જ સમજાવી શકે છે ત્યાર ત માટ અમારે સાત કમ્પનાથી કામ લેતુ પડે છે. ઇટલા માટે હુ આશા રાહુ છુ કે ભારતવર્ષીય વિદ્વાનો જેઓ યતિયો પાસેથી આવી કાવતોના સહેલાઈથી સુલાસાઓ મેલવી શકે ઠ, તેઓ આ વિષયમા પોતાનુ લક્ષ્ય આપશે અને જે કેટલાક પારિભાષિક શબ્દોના અર્થો યુરોપીય વિદ્વાનુ જન ગ્રથોની સહાયતાથી કરી શકતો નથી તેના તેઓ યથાર્થ અને પ્રમાણમુત સુલાસા મેળવશે.

શીજી અને ચોથી ચૂલા, તે પરિશિષ્ટ પર્વના નવવા સર્ગમા જળ્પવ્યા પ્રમાણ, પૂર્વ વિદેહનામાના એક પૌરાણિક મૂલકમા વસતા એવા સીમધર સ્વામિય સ્થાલિમદ્રની મોટી બહેનને કરી હતી. આ પરપરાગત કથન મણુત્ત વિલક્ષણ માલમ પડે છે, કે જે આચારાગ સૂત્રના ઉલ્લાખ નેપરકરણે, બેની રચનાશીલીના સમયના વિષયમા આપણા શબ્દોમા

कहिए त, तत्राज विषयना वर्णन करवाशला कल्पसत्रना रचना समयना समकालीन ठायीं दे उ

श्रीजी चूला त सरस्वर त्रणीज महत्त्वनी उ अन आनु कारण त तेमा महावीरना जीवन चरित्र मान मळी आवती हकिकतो उ के—ज हकिकनो न आधार कल्पसूत्रमात्र महावीर चरित्र लवण्य छ आचाराग सूत्रना घणा गद्य भाग बहुत भाडा फरफार साथे कल्पसूत्र मा नजर पडे छ तमा, ए उपरात ऐतिहासिक दृष्टि ए महत्त्व धरावती एवी कोई वाचतनो माथेज काई उमरा थयेलो जेव मा आव उ जे मात्र उमरवामा आव्यु छे ते एक साधारण वनल, तमज नवी परिस्थितिन अनुरूप थएला जन ग्रथामा पण अनेक स्थल जायमा आवत, तेनु वर्णन मात्र छे आ भद्य भागो उपरात आचाराग सूत्रमा एरी केन्लीक गाथाभा आवली उ जेना कल्पसूत्रमा अभाज उ आ गाथाआन प्रथम श्रुत स्कधना आठमा अध्ययनमा आपली गाथाभा जोड जा आपण सरलावीए छीए तो आचाराग सूत्रना बे श्रुतस्त्व धो वध केटलो मोटी तफावत रहेलो छे त आपण सहज समजी शकीए छीए आ वन्न श्रुतस्त्वधोना चर्चित विषयना अग बाईज भेद नथी, तेमज वर्णन पण वन्नमा आया गाथामा करवामा आवल उ परतु भाषाशाली तथा धृत्प्रयागन अग दृष्टिगोचर यता भेद एटया मोटी जणाय उ क तेना कारण तरीक त वन्न श्रुतस्त्व धानी रचना उखे एक माटु कागतर मानवु ज पडे छ

हीजी चूलाना उतरार्धमा पच महाव्रत तथा एना पक्षीश अत्रातर भद्राश्रुज घणन आपलु होशायी तेना स्वधमा काई विवेचन करवाना जरूर नथी तमज चोथी चूलानी बार गाथाआना स्वधमा पण एटलुज कहवा याय उ के ते समवित रित प्राचीन उ अन तन आ स्थले मुकराउ कारण पण एटलुज छ क तने माटे आनाथी बीनु अधिक सुंदर स्थान मळ्यु नहीं होय

आचाराग सूत्रनो मार' आ अनुवाद, मे, पाणिनिस्त सासायमीमा प्रकट थएला मारी पोतानी आवृत्तिन आधार करत उ न उपगन मे आचाराग सूत्रनी क

कृतानी आवृत्तिमा प्रकाशित थएला टीकाओंना उप याग करेला उ जमना नामा नीच प्रमाण उ —

१ शीलाक क जनु बीनु नाम तत्वादित्य उ तनी टीका आ गीकानी रचना सव सन् ७९८ अर्थात् इ० स० ८७६ मा वाहरी साधुनी सहायताथी समाप्त थई हती

२ बृहत् सरतर गठना आचार्य नाम जिनहस सुत्रिनी दीपिका आ दीपिका त शब्द शब्द टीका उप रयी उपजावी काटेली छ जा के एमा लव्यु उ क त शीलाकना गीकाना संक्षेप मान उ परतु आ संक्षेप एवा प्रकारना थया उ क तमां निर्युक्तिना गाथाभा उपरनी शीलाकनी दीपणी सर्वथा उडावी दनामा आर्य उ—क ज गाथाआन शीलाक प्रयक अध्ययन तथा उद्देश कनी पहला पाताना उपादात रुप मूक उ

३ पार्थक्य कृत बालाववाध अथग पुनराता भाष्य बीजा श्रुतस्त्वधना ज कल्लक भाग प्राचीन टीकाकारी द्वारा समजाववामा नया आव्या, तमना विषयमा मे आज भाष्यनी मदद लीधली उ आ भाष्य सामान्य रित ता प्राचीन टीकाकाराना सुल्लानेज अनुसरे उ उता पण तना वधार संक्षेप दीपिका साथे हाय तम जणाय उ

कल्प सूत्रना विषयमा मे लवाणथी, त ग्रथना मारी आवृत्तिनी प्रस्तावनामा कहेलुज त तथी त विषयनी विशेष माहिता मळ्यथा मान वाचकन त पुस्तक जाइ लग सूचु उ तना प्रकाशन समय पत्री प्रा० बर पोताना “ जेनाना पवित्र पुस्तका ” उपरना निवधमा आ विषयनी चर्चा करी उ अन तेमां तेमणे मारी कन्ताक भूला पण सुवासी त तमण एवा निश्चय प्रगट कर्यो उ क आधु कल्पमूत्र, दशश्रुतस्त्व ज चाधु त्त्व सूत्र मनाय त तना आठमा अध्ययन तरीक लगत त मार आ अभिप्राय सभ प्रा० बर एकमत धराव उ क “ समाचार ” एत' यतिआना आचार-

नियमां ते मद्राहुनी कृति मानी शकाय ॥ तथा स्य-
त्रिावली ते समगित रंत सिद्धान्तना मपादक देवाधि-
गणीनां ज करेले उमेरा कही शकाय. आ उपरात
मा. वेवर जे सूचवे छे के महानारनु चरित पण दवाधि-
गणिनु ज रंचेल छे ते वात मने मान्य थदं शक्ती नथी.
कारण के आ ग्रथ आ आटला बवा प्रसिद्ध पुरुषना रंचेले
होय तो पछी समुदाय आ वाकतने बिलकुल विस्मृत
थबा दे ते तहन अशक्य छ

स्वर्धाराजलीना सक्थमा नान्वा वाकत छ कारण क तेने
चार अगर पाच भिन्न भिन्न यादीओ उपरथी सक्कलि
कनि ग्रन्थना सपादक जिनचरितोनी पाचळ माह
मूकी दीधेली छे. जिनचरिलोनी मापासली उप-
रथी आपण तर्क करी नथी शकता क तेनो कयो
भाग समाचारीथी पछीना हश, कारण क ग्रिथयनी
भिन्नतामे लईन तबी जातना शालीभद्र ता आचारम सूननी
पहेली के चूला अने बीजी चूलामा पण नजरे पडे छे ज
तेमज जिनचरितोनी प्राचीनताना विरुद्धमा दलील रूपे
आपणे वर्ण्य वस्तुना अस्पत्वेन पण बतावी
शकीए नहीं. कारण के आटली हकिकती
आपवानो हेतु एक जीवन चरित्र लखवानो न होई मात्र
मक्ति मार्ग पण होई शके आम कहंगारु कारण ए छे के

* “समाचारी” महावीर पछी छ घेटीओ बीबी बाद रबा
ई बहो ते वाकत १८ द्वारा स्प जगाय छे वण ते आमाची
पण बदाय बर्बाचीन हाय ता ते पण असमयित नथी कारण
के ई बी गणधरेना शिष्योनी हुत पछी आबनार स्वर्धारेन,
‘आ समयना समय निग्रन्थी विरुद्ध अगर निरक्षणता गळ
अणोबला छे, छता वण आग्रन्थ—माग बधारे अर्वाचीन होय
तेम ता नज मनाय कारण क १८—१० भा जगाय छे क
जेम पाछळमा समयमा वगळु हतु तेम जिनग्रन्थना व्यवहार
रबा सुधी हुत थबा न होतो

देरामरामा तीर्थंकरानी मूर्तिनी पूजा करती वखत ज
मृत्ति अगर स्तवना बोलगामा आपे छे, तेरी एक स्त-
वनामा (चित्य वदनमा) सर्व कस्याणकोतु वर्णन करेल छे.
जिनचरित्रोना मुख्य सवध पण आ कस्याणकोनी सायज
होय एम स्पष्ट जगाय छे. अने आ वाकत एम सार्वात
करे छे के तीर्थंकरोनी मन्तिमा कस्याणकोतु वर्णन कर-
गानी प्रथा धणीज प्राचीन छे. आम जो न मानगामा
आपे तो एनो निर्णय करवा अशक्य यई पडश के कस्य
सूनमा वर्णवेल आ शुष्क ग्रिथयनु आटलु लातु वर्णन
करवानु लेखकने कम मन थयु हशे.

कस्यसूनना भिन्न भिन्न भाषा गमे त समयमा रबाया
होय परतु एटलु ना वाकत छे के आ ग्रथ एक हजार
करता पण बभार वर्धाथी जेनोमा अत्यंत सम्मान पात्र
बनेला छे. आटला माटे पूर्वना पवित्र पुस्तकोना अनुवाद-
सग्रहमा आ ग्रथन स्थान मळहु उचित छे. एना सब
धमा मारी इच्छा तो एटलीज होय के जे ग्रथावलीमा
ते प्रकाशित थवानो छे ते ग्रथावलीने योग्य मारो अनु-
वाद पण सुदर बने. परतु आ कतव्यमा केटलेक अंश
जोहु निष्फळ निवड्यो जगाउ तो वाचको आ वाकत
ध्यानमा लेश के गमे तेटला तेने लेखवान प्रयत्नो थया
छता पण जे साहित्य हर्षो सुवी आपणे मने एक अ-
क्षत मूमि हुन्य ज छे तेश (साहित्य) ना ग्रयोत
परकीय भाषामा अनुवाद कवानो मारो आ प्रयत्न छे,
अने तेथी क्षमा मळशे एरी मने आशा छे.

समाप्त.

१ ‘चतुर्विंशति तीर्थंकराणा पूजा’ नामनी एक डेहन को-
जनी हस्तलिखित अर्वाचीन प्रातमा इमा ग्रिथिनु वर्णन तेमज
आषा केटलाक स्तोत्र, या चित्य वदन पण आप्या छे



A

COMPARATIVE STUDY

OF

उत्तराध्ययनसूत्र

With

PALI CANONICAL BOOKS.

by Prof P. V. BAPAT, M. A. Ferguson College, Poona

It is now admitted by all that Utharvir or Uddhishman who is commonly called Niguntha Nataputta in Bhddhistic works was a contemporary of Gotama Buddha. In Pali Literature of the Buddhist we actually get references to six philosophical teachers who were contemporaries of Gotama of whom Niguntha Nataputta is one (see Digh 2, 29-30). It is no wonder then that they should be influenced by one another their philosophical conceptions religious doctrines and ideals of conduct as well as by the manner and method of their expression. In this short essay we mean to trace out such similarities of thought and expression in Pali ut books of Jains and Buddhist. As for the former we shall restrict ourselves to the first Nalukita of the Jains—the Uttaradyayana.

We shall consider these parallels from two points of view--that of matter and manner.

I. As for the first we may say that there are striking similarities in the Jain and Buddhist descriptions of a monk's behaviour his attitude towards women conception of a Brahmin importance of self control, and

their expression of several common thoughts. We shall illustrate one by one—

(1) A MONK'S UNLAWFUL CONDUCT

He should be patient and should return no evil words even when he is spoken in harsh words--

अवाप्तिम परा भिक्षु न तात पडित्तल ।

सखिस्त हां रागण तम्हा भिक्षु न सज्जल ॥

(उत्तरा० II 21)

सामाण फलता मामा दाण्णा नामकम्मा ।

सुसिणाआ उवहमा न ताआ मणसाका ॥

(ibid II, 25)

हआ न सज्ज भिक्षु मण पि न पआसए ।

नितिसस परम त्था भिक्षु रम्म विविनए ॥

समण सज्ज द्रत हतेता वा पि क ण ।

पि जादसस मत्तानि णव पत्त मण ॥

(ibid II 26-27)

We find a similar idea expressed in the following--

पडाससो ना निव्वज्जि इत्ताणमो तादि सुव्वता ।

एत्तासव अपतकम्मा समाया न भवति ताप्पिा ॥

(धम्मपद 9)

ताता परम तपो नितिकप्ता नि वाज परम उदति बुदा ।

न हि पञ्चजिता परुषपाती समणां हन्ति परविहेयना ॥
(ष० 181)

सुत्वा स्तिता बहु व च समणान् पुथुरचनान् ।
फरुसन् ने न पटिञ्जा । न हि सत्ता पणिसनिकपाति ॥
(सु० नि० 932)

न ब्राह्मणस्त पहेरय्य नास्त मुच्य च ब्राह्मणो ।
भी ब्राह्मणस्त हन्तार ततो धी यस्य मुच्यति ॥
(ष० 389)

Here in this stanza the word नाद्यग is not used in the sense of one who is so simply by birth but one who is the best man and deserves honour and respect at the hands of all

It is said that a monk should not wish for honour and respect

णा सकिञ्जमिच्छइ न पूज (उत्तर० XV, 5)

अञ्ज रयण च वदण पूजण तथा ।

इड्ढीसक्कारसम्मान मणसा वि न पयए ॥

(उ० XXXV, 18)

असत् भारनमि०ऽय्य पुरस्कार च भिक्षुसु ।
आयासेसु च हस्तरिय पूजा परकुलसु च ॥
ममेव कतमञ्जन्तु गिही पञ्चजिता उमा ।
ममव अतिवसा अस्तु किञ्चाकिञ्चसु किरिम च ॥
इति बालस्त सकम्पो इच्छा मानो च बहुति

(ष० 73-74)

We are told that a monk should not be hampered by any of his possessions that may be with him but he should be free to move like a bird

पक्षी पत्त समादाय निरिउस्रो परिणय ।

(उ० VI 16)

सयथा पि महाराज पक्षी सकुणो यन यनव देति सपत्तभारा व डति, एवमेव सो महाराज भिक्षु सन्दुडो हाति वायपरिहारकेन चीरन कुण्डिणी हारिकन पिण्ड पापन, मा येन येनेव पक्षमति समादायव पक्षमति ।

(Digh II, 66)

A monk is not allowed to practise in medicine or maintain himself by inter

preting the signs of body, sounds or the earth and in air, dreams cries of birds and beasts or in any way enjoying himself in love arts

तगिच्छ नाभिणदिमा (उत्तर० II 33)

ज लस्सण च सुणिण च अगविन च पउजति ।

न हु त समणा बुच्चन्ति एव आयरिणहिं अस्साय ॥

(उ० XIII, 13)

ठिउ सर भोममन्ति लस्स सुणिण लस्सणदण्डकयुविद्ध ।
अगरिआर सरस्स विजय जा विआहिं न नीव सभिसु ।

(उ० XV, 14)

ओ लस्सण सुणिण पउजमाण निमित्तकाड्हत्तपगाड ।
कुण्डविआसपदारजीवी न मच्छर सरा तम्मि का ॥

(उ० XV, 45)

अयञ्जण सुणिन लस्सण । ना विदइ अथा पि नक्कत ।

विस्त च गमकरण । तिकिच्छ मामका न सवय ।

(सु० नि० 927)

यथा वा पनक भान्ता समणब्राह्मणा तिरच्छान-
विआय मिच्छाजीवन जीरिक कप्पेन्ति सेय्यधीद एव
विपाका चन्दगाहो भविस्सति, एव विपाका सुरियगाहो
भविस्सति, एव विपाको उक्कापातो भविस्सति,
एव विपाको दिसादाहा भविस्सति, एव विपाको मूमि
चालो भविस्सति . सुभिक्ष भविस्सति, दुभिक्ष
भविस्सति ।

or others such as—आवाहन, विवाहन,

सुभगकरण, दुभगकरण, विरुद्ध भकरण, जिह्दानित्य
दन आदासपण्ड, कुमारीपण्ड सन्तिकम्म वत्थु
कम्म । (Digh II, 59-62)

A monk is to be content whether he gets or not his food—

लदे पिण्ड अलदे वा नायुतपिज सजए (उ० II, 80)

अलत्थ यदिद साधु नालत्थ कुसलामिनि ।

उभयेनेव सा तादि रुक्खडव उपापाननि ॥

(सु० नि० 712)

He is not allowed to store food—

सविहिं च न कुपिञ्जा लमायाइ सजए (उ० VI 16)

यथा वा पनेके भोन्तो समणवाहणा...सन्निधि
कारपरिभोग अनुयुता विहरन्ति—सेख्यथाद अन्नसन्निधिं
पानसन्निधिं.....आभिससन्निधिं इति वा, इति एव-
रूपा सन्निधिकारपरिभोगा पटिविस्तो होति, इदं पिस्स
होति सीलसिं ।

He should take recourse to the bor-
ders forests—

पत्त सयणासन भइता । (उ० XV, 4)

पन्त च सयनासन . . एत बुद्धान सासन ।

(ध० 185).

(11) A MONK'S ATTITUDE TO- WARDS WOMAN.

He is always to avoid the company
of women considering them to be dan-
gerous—

सगो एत्त मयुस्साण जाओ लोगमि इत्थीओ ।

जस्स एजा परिणयाया सुकड तस्स सामञ्ज॥

(उ० II, 16)

एअमादाय मेहारी पक्कूआड इत्थीओ ।

नो ताहि पिणिहणेआ चरेज्जत्तगवेसण ॥

(उ० II, 17)

Ananda the favourite disciple of
Gotama Buddha asked the Buddha
while he was on his death-bed how all
monks should be have towards women
the answer was "You should shun their
grace" If that is not possible "you
must watch yourself "

" कथं मय भन्त मातुगम पटिपज्जासि । अइस्सन्
आनन्दाति । दस्सन् भगवा सति कथं पटिपज्जितञ्च ।
अनालापा आनदाति । आलपणेन मन्ते कथं पटिपाज्जि-
तम्बति । सति आनन्द उपट्ठपितञ्चा ति ।

(Digh 16, 59)

Also we find the following—

ना निगमे इत्थीण कुट्टतरसि वा दूसतरसि वा भित्ति-
तरसि वा बुइअसद वा, रुइअसद वा, गीअसद वा,
इसिअसद वा, यणिअसद वा, कदिअसद वा, विलविअ-

सद वा सुणिता हवई से निगय । त कहमिति च ?
आयरिआह—निगयस्स सल्ल इत्थीण कुट्टतरसि वा
जाव विलविअसद वा सुणमाणस्स वभयारिस्स बभचर
सका वा कखा वा...जाव.. केवलपण्णताआ वा
धम्माओ भसिजा तम्हा सल्ल निगमे नो इत्थीण कुट्ट-
तरसि...जाव सुणमाणा विहरेजा

(उ० XVI, 8)

अपि च खो मातुगमस्स सद सुणाति, तिरोकुट्टा
वा तिरोपाकारा वा हसन्ति या वा भणन्ति या वा गाय-
न्ति या वा रोदन्ति या वा... सो तदस्सादति, तन्निका-
मेति तेन च वित्ति आपज्जति, इदं पि खो ब्राह्मण ब्रह्म-
चरियस्स सल्ल पि छिदं पि वा सबल पि कम्मास पि,
अयं बुद्धि ब्राह्मणा अपरिसुद्ध ब्रह्मचरिय चरति सयुतो
मेयुनेन सयोगेन न परिमुचति जाति या जरामरणेन सो-
केहि परिदेवेहि दुक्खेहि... न परिमुचति दुक्खस्समि
वदामि ।

(Ang. VII 3th Vagga.)

(111) That a Brahmin is made not by
mere birth but by his actions--

कम्मुणा बभणो होइ, कम्मुणा होइ सत्तिओ ।

कम्मुणा वइसो होइ सुदो हवइ कम्मुणा ॥

(उ० XXV, 32)

न जच्चा वसलो होति न जच्चा होति ब्राह्मणो ।

कम्मना वसलो होति कम्मना हाति ब्राह्मणो ॥

(सु० नि० 136 of 650-651)

न चाह ब्राह्मण भूमि योनिज मत्तिभव । (ध० 396)

If he has got mental defilements
or if he is a man of bad conduct
then he is no Brahmin and will not
be saved from perdition on account of
his birth in a Brahmin family

कोहो अ माणो अ वहो अ जत्तिं

मास अदत्त च परिगट्ठा अ ।

त माहणा जातिविमोहिणा

ताइ इ सित्ताइ सुपावगाइ ॥ (उ० XII, 14)

तेच पापसु कम्पेसु अभिष्टमपदिस्सर ।

दिष्टेऽयं वम्म गग्गहा सपराय च दुग्गति ।

न त जाति निगारति दुग्गहा गग्गहा य (सु० १०॥११)

If he is free from all lusts and passions then he is a Brahmin

अहा पडमज्ज जाय नोगत्तिप्पट्ठ गारिणा ।

एव अल्लि वामहि न उय वम माहण ॥

(उ० १५, २)

वारि पेत्तकएत्तेय आरग्गएय सत्तया ।

यो न लिप्पति वामसु तमह वमि माहण ॥

(ध० १११)

(iv) IMPORTANCE OF SELF-CONTROL

To subdue oneself is far better than conquering others, one is the architect of one's own fortune. Therefore, one should always make supreme efforts to discipline oneself as self control is a very difficult thing

जा सहस्स सहस्सन संगम इच्छए जिण ।

एग जिणिअ अप्पाण एस मे परमो नआ ॥

(उ० IX, ३१)

यो सहस्स सहस्सन संगम मानुसे जिण ।

एव च जय्यमत्तान स ते संगमअुत्तमो ॥

(व० १०३)

अप्पा चव दमअंरा अप्पा हि खलु दुहमा ।

अप्पा दत्ता सुटी हाद अग्गि गण परहि च ॥

(उ० I, १५)

अधणा अणत्ता सन्तो वट म नाहो मविस्ससि ।

(उ० XV, १३)

अत्तान च तथा कयिआ यथन्ममत्तुसासति ।

मुद ता तत दम्मम अत्ता हि किर दुहमा ॥

अत्ताहि अत्तना नाया वाहि नाया परो सिआ ।

अत्तनाऽयं मुदन्तन नाय लभाति दह म ॥

(ध० १५९-१६०)

अप्पा दत्ता पिक्का य दुहाण य सुहाण य ।

अप्पा मित्तममित्त च दुपट्ठिअ सुपट्ठिआ ॥

(उ० XX, ३७)

न त अग्गि वट्ठउत्ता करोति अ ज करे अप्पणिआ दुह्मा ॥

(उ० XX, ३८)

The same idea is expressed in the following—

दिसो दिस य न तयिण तरी ना पन परिण ।

मिच्छा पणिहित चित्त पापियान तता कर ॥

न त मातापिता कयिण अज्जे वा पि च जातका ।

सम्मा पणिहित चित्त सय्यसा न तता कर ॥

(ध० ४२-४३)

अत्ता हि अत्तना नाथो अत्ता हि अत्तना गति ।

(ध० ३८०)

(v) MISCELLANEOUS

Besides these, we find several other miscellaneous illustrations of parallel thoughts—

माणुस्स खु मुदुल्ल (उ० XX, ११)

किच्छा मनुस्स पटिलाभा (ध० १८२)

अरइएस्सहा पहीणसथन विण आयहिण पहाण ।

परमद्वएहि चिट्ठई उिउत्तोए तममे अविचणे ॥

(उ० XXI, २१)

नारती सहती धीर नारति धीरसहति ।

धीरो च अरति सहति धीरो हि अरति सहा ॥

(Ang IV, १२)

मास मास उजो बाला दुसग्गण तु मुजण ।

न सा सुअम्माअधम्मरा कअ अग्गति साउत्ति ॥

(उ० IV, ११)

मासे मासे दुसग्गण बाला सुज्जथ भाजन ।

न सो सखतवम्मान कल अग्गति साउत्ति । (ध० ७०)

फेण्डुअसग्गिमे [सरीरमि] (उ० IV, १३)

फण्णम कायमिम विदित्वा मरीचिधम्म अभिसत्तुधाना

(ध० ४६)

लाभालाभ सुहे दुक्ख जीविण मरण तथा ।

समो निदापससासु समो मागावमाणओ ।।

(उ० XIX, 90)

शेला यथा एकघनो वातेन न समीरति ।

एवं निन्दापससासु न समिञ्जन्ति पण्डिता (ध० 81)

सद्यत्थे वे सप्पुरिसा चजन्ति न कामकामा लपयन्ति अन्तो।

मुखेन कुट्टा अथवा दुखेन उच्चावचं पण्डिता दस्तयन्ति ॥

(ध० 83)

Compassion for all animals—

जगनिस्मिपहिं मूषहिं तसनामहि थावेरहि च।

नो तेस्तिमारंभे दण्ड मणसा नयसा कायसा चैव॥

(उ० VIII, 10)

सद्ये तसन्ति दण्डस्त सद्ये भायन्ति मधुनो ।

अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न पातये। (ध० 109)

cf मेताय फसे तस थायराणि (सु० नि० 967)

सद्येसु भूतेषु निधाय दण्ड (ध० 142)

II. Even when we come to the manner of expression, we do find some peculiarities common to both the literatures—

(i) Even in Jain Sutras we find sometimes सुभं भे आरुषं corresponding to Pali एवं न सुत्तं coming at the beginning of almost every Buddhistic Sutta.

(ii) As in Pali, we find in Jain literature several technical points denoted by fixed numerals; as 8 मरा; 9 kinds of वंसयुति, 25 Bhavnas, 23 परिसहा and so on like Buddhistic Eight-fold path, five Nēvaras, four knots, six Ayatanas, 38 Bodhipakkhiya dhammas. This peculiarity common to both these literatures was necessary in those condition to help the memory

(iii) We find the Anuswar is very often dropped as एण्ण for एणान्, as बुदान् for बुदानं.

(iv) We find very often the same idea expressed in similar words, phrases or word-clusters, similes and metaphors—

(a) words—अपकुक्कुप—अपकुक्कुच; उक्कु-

हुआं—उक्कुटिको; गृह—खल; परीसहा—परिस्तया; मिल-
खुआ—मिलखुका, मागण्ण—मतज्जू, अञ्चट्ठि—अति-
च्छति (cf अतिच्छय भन्ते); अञ्चट्ठि—अञ्चन्ति;
सहेह—सहस्र; तससु थावरसु च.

(b) phrases and word-clusters—धमणिस्-
तप-धमणिसंघत; अहाकरेणुपरिक्खणे कुंजरं सद्विहायणे
(उ० XI 16) संयथाऽपि नाम कुंजरो सद्विहायनो
गभीरं पान्तराणि ओगांहेता (म० नि० 353)
धोरहसील (ध० 208) धोरजसीला (XIV 35)
नाहदूरमणासभे—नातिदूर न अधासभे ।

(c) similes and metaphors.

मासच्छा इवगिणो (उ० XXV 18)

भस्मच्छो व पावको (ध० 71)

मेरुव वाएण अकपमाणे (उ० XXI 19)

सेलोयथा एकघनो वातेन न समीरति (ध० 81)

शुचिन्द सिनेहमत्तनो कुमुद सारदिअ व पाणिअ ।

(उ० X, 28)

उचिन्द सिनेहमत्तनो कुमुद सारदिअ व पाणिना ।

(ध० 285)

(N. B.—It is worth testing what must have been the real original reading. The Buddhistic reading means 'You root out affection from your heart just as you easily pluck out a lotus growing in the Sarat Season,' while the Jain reading means "Just as a lotus growing in the Sarat Season leaves the water and comes above the surface of the water, so you leave affection.")

घुत्ते वा कटिणा जिप (उ० V, 13)

अत्तनो पन छदेति कलि वा कित्वा सरो (ध० 252)

We here by no means pretend to give an exhaustive list of all such parallelisms. But we may be confident that if we make a close and thorough study of Jain Prakrit works especially the Angas and Upangas, we shall find much food for reflection much that will

make us pause and consider the causes of close proximity of thought and expression in Jain and Buddhist literature.

Here we may take the opportunity of thanking the authorities of the University of Bombay for having made it possible, according to a new regulation, to make a comparative study of Jain and Buddhist Prakrit Literatures even at the stage of B. A. examination. We hope Jain students will not lose this opportunity and take up Pali and Ardha

magadhi languages for their B. A. examination.

But some rich men must come to the help of poor Jain students who cannot pursue the study of their Sacred Literature for want of encouragement. Will it be too much to expect rich Jain merchants to come forward with hand some donations to educational institutions in places like Poona, Bombay, Ahmedabad and Surat for making provision of teaching the Jain Sacred Literature ?.

RATNAKARA PANCHAVIMSHATIKA.

Translated from Sanskrit by

K. P. MODI, B. A. LL. B., AHMEDABAD.

1. May He ever be victorious who is blessed pleasure house of spiritual wealth before whose lotus feet prostrate even the lords of gods and men, who is omniscient, who is best because of his superhuman qualities and who is the store house of knowledge and art.

2. Oh, a support of the three worlds, Mercy incarnate, physician to remove the malady of worldly existence, not easy to be surmounted, free from all attachment, all knowing Lord! I with child like simplicity, beg to lay the following before you.

3. Does not a child, impelled by his child-nature prattle something before his father without (any idea of what he has to say) previous thought? In the same way Oh Lord! I full of repentance truly put my ideas before you.

4. No charity is done by me, no good life has been led by me, no chastity has been observed by me, no austerity has been performed by me, no good thoughts have been thought by me in this life. Oh Lord! fruitless is my journey in this life.

5. I am burnt by fire of anger, stung by a wicked snake of avarice, swallowed by a cobra of pride, and bound by a snare of deceit. How can I worship Thee?

6. Oh Lord of the world! Oh best of Jains! no good deed has been performed by me in previous life, and I find no happiness in this life. Persons like me are born simply to add up the number of lives

7. Oh Lord of amiable conduct! I feel my heart to be harder than a stone

because it was not moved with feelings of deep bliss, even though it had the good fortune to see your moon-like face.

8 Oh Lord! after wandering in many lives I obtained through you the three jewels, difficult to obtain even with great pains and even those jewels I lost through sleep of carelessness.

9. I liked asceticism simply to deceive others, I preached religion simply to please the people, I acquired knowledge to combat with others, Oh Lord! how much should I describe my ridiculous life?

10. I have sullied my mouth by slandering others, my eyes by looking on wives of others to lust after them, my mind by thinking harm to others, Oh Lord, what shall be my fate?

11. Oh Lord, what I, being blind by passion, have endured under the influence of pain caused by the force of cupid, I lay before you through shame. You, being Omniscient know all that.

12. Oh Lord, it was due to my mental delusion that I allowed *Pravachati-Mantra* (obaisance to the liberated souls, Tirthankars, pontiffs, teachers and good men) to be eclipsed by other Mantras; again literature to be ignored by false scriptures and that I was inclined to do wrong acts under the influence of bad gods.

13. I, a fool, having left you who had come within the range of my eye, pondered on the numerous pastimes of beautiful women as regards their glances, breasts, deep navel, loins etc.

14. Oh Saviour! How is it that a particle of mental attachment that

stuck to me by gazing at the faces of rolling eyed women, is not gone, though washed in the ocean of pure sacred literature.

15. I am neither beautiful in person, nor do I possess a collection of virtues. I have no pure grace of arts. I do not possess any power of resplendent lustre, still, I am troubled by egoism.

16. Life soon draws near the end, but not my inclination to sin; I grow old, but not my desire for sense-enjoyments; I made efforts for preparing medicines, but not for leading a religious life, Oh Lord! there is no limit to my self-delusion.

17. Oh Lord! lie upon me that I listened to the evil speech of the worldly persons that there is no soul, no merit, no future life and no sin, though you, the sun of absolute knowledge were shining clearly.

18. Although I have reached human stage my life is like crying in the wilderness because I did not worship God, did not revere worthy persons and I did neither observe layman's nor ascetic's religious duties.

19. Oh Lord of Jinās! look at my folly. I ran after imaginary things like the wish-fulfilling cow, wish-fulfilling tree and the wish-fulfilling jewel, but did not run after Jain religion which bestows real happiness.

20. I, a base one always thought of pleasures of enjoying good things, but did not view them as the womb of dis-

cases; I thought of the increasing of wealth and not that of death; I thought only of a woman, but did not consider her as the cause of hell-bondage.

21. I could find no room in the heart of the good by pure conduct, I did not get fame by doing benevolent actions, I did not acquire religious merit by propagating religion etc.; Alas! my life is really wasted.

22. No feeling of dispassion arose in me by hearing the preachings of my preceptors. I could not keep my peace by hearing the words of wicked men. Oh Lord! I have not a particle of spiritual knowledge. How can I, then, cross this ocean of worldly existence?

23. In my previous life I earned no religious merit. I shall not do it in future life. If I am such, then Oh Lord! all the three lives—the past, the present and the future are ruined.

24. Oh Venerable One! Oh Lord! What is the use of narrating my life in detail before you in vain. As you know the nature of the three worlds, what is my life to you?

25. Oh Best of the Jinās! There is no leader like Thee to save the poor, and there is no man more worthy of compassion other than I among the people. Still Oh Venerable One! I do not ask for worldly wealth, but oh ocean of spiritual wealth! Abode of auspicious things! I pray for the jewel of true faith, that is beneficial and leading to Salvation.



॥ जैन साहित्य संग्रोधक-ग्रंथमाला-प्रथांक १ ॥

अहम्

वी र वं शा व लि

अथवा

त पा ग च्छ वृ ङ्ग प ट्टा व लि

(जैन साहित्य संग्रोधक, खण्ड १ अंक ३-परिशिष्ट)

संपादक—

मुनिराज श्रीजिनविजयजी

प्रकाशक—जैन साहित्य संग्रोधक कार्यालय,
डि. भारत जैन विद्यालय—पूना सीटी.

પ્રેસ્તાવના ।



આ વીરવંશાવલિ અથવા તપાગચ વૃદ્ધપટ્ટાવલિની હસ્તલિખિત પ્રતિ, આહિલ્યપ્રેમી શ્રીયુત્ત કેશવલાલ પ્રેમચંદ મોદી બી. એ. એલ.એલ્.બી. (અમદાવાદ) એ મોકલી હતી જે તેમને પં. શ્રી ગુલાબવિજયજીના પુસ્તકલેખરમાંથી મળી આવી હતી. એ પ્રતિ, જેમ છેવટે જણાયેલું છે, સંવત્ ૧૬૬૨ માં લખાયેલી છે—એટલે નવીજ છે. મૂળ કંઈ પ્રતિ જીપરથી એ નકલ કરવામાં આવી છે તે જણવામાં આવ્યું નથી. એ પ્રતિની પત્રસંખ્યા ૧૧૨ છે તેમાં ૩૭-૩૮ નો આંક ભેગો એકજ પાનાજીપર આવેલો હોવાથી એકદર પાનાં ૧૧૧ છે. પાનાની દરેક બાજુએ ૧૨-૧૨ પંક્તિઓ લખેલી છે અને દરેક પંક્તિમાં ૨૫ થી ૩૦ અક્ષરો આવેલા છે. અમે આ આવૃત્તિમાં હાલની નવી પદ્ધતિ પ્રમાણે દરેક પાનની બંને બાજુની સમાપ્તિ સૂચવનારા અંકો ક્રમથી () આવા કૌશમાં આપ્યા છે.

આ પટ્ટાવલિનો કર્તા કોણ છે તે કાંઈ આદિ અંતમાં લખ્યું નથી. તેમજ બીજા પણ કોઈ સાધ નથી તે જણી શકાયું નથી. પટ્ટાવલિની પૂર્ણાહુતિ સંવત્ ૧૮૦૬ માં થયેલા વિજયઋદ્ધિસૂરિના સ્વર્ગ-વામસાથે થાય છે તેથી એમ અનુમાન કરી શકાય કે એ જ સમય દરમિયાન એની સંકલના થયેલી હોવી જોઈએ. નહિ તો વિજયઋદ્ધિસૂરિની પાટ જીપર આવનાર આચાર્યનો ઉલ્લેખ એમાં અવશ્ય કરવામાં આવ્યો હોત. પટ્ટાવલિનો કર્તા કોઈ આણંદસૂર ગચ્છાનુયાયી યતિ હોવો જોઈએ. કારણ કે એમાં વિજયસેનસૂરિ પછીની જે પરંપરા આપી છે તે તેજ પક્ષની છે અને વિજયદેવસૂરિ જેવા પ્રસિદ્ધ આચાર્ય અને તેમના સમુદાયમાંથી કિયા ઉદ્ધાર કરી સંવેગ પક્ષ સ્થાપનાર મત્યવિજય પંન્યાસ આદિનો એમાં જરાએ ઉલ્લેખ નથી.

ખીલ પણ આવી અનેક ભૂલો એમાં થઈ ગઈ નજરે પડે છે. તો પણ એકદર એ પટ્ટાવણિ બહુ ઉપયોગી છે એમાં જરાએ મંદેહ નથી.

આની ભાષા જેવી હસ્તલિખિત પ્રતિમાં મળી આવી છે તેવીજ અમે કાયમ રાખી છે. તેમાં માત્રાનોએ ફેરફાર કર્યો નથી. જે કે લખનારની ભાષાજ્ઞાનસંગ્રહી ન્યૂનતાના લીધે એની ભાષા વ્યાકરણબદ્ધ કે એકરૂપ જરાએ નથી; તો પણ અજ્ઞાન લેખકની ભાષાના એક નમૂનારૂપે પ્રસિદ્ધ કરવાની ઇચ્છાથી અમે તેમાં જરા પણ પરિવર્તન કરવું ઉચિત ધાર્યું નથી. આના લીધે કદાચ કેટલાક વાચકોને તે સમજતાં જરા કઠિણ પડ્યો ખરી, પરંતુ જે વિશેષ ધ્યાનપૂર્વક અને એક જે વાર ઉલટાવીને વાંચવામાં આવશે તો એકંદરે હકીકત બધી સ્પષ્ટ સમજી શકાય તેવી અવશ્ય છે.

આ પટ્ટાવણિનો સગભગ અરધા ઉપર જેટલો ભાગ, 'જૈન ગ્રંથનામ્યર કાન્કરન્ન હેરફડ' ના સન ૧૯૧૫ ના લુલાર્ધ-આકટોબરના મંચુક્ત એકમાં. તેના પિઠાન સંપાદક શ્રીયુત મોહનલાલ દક્ષીચંદ દેશાઈ, ખી. એ. એલ્એલ. ખી. એ પ્રકટ કર્યો હતો; જે તેમણે જૈન એસોસીએશન ઓફ ઇન્ડિયાના હસ્તલેખોમાંની એક પ્રતિ ઉપરથી ઉતારી લીધો હતો. તે પ્રતિ અધુરી હોવાથી તેમને તેટલોજ ભાગ મળી શક્યો હતો. તેમજ તે ઉતારા તેમણે મુધારીને હાલની ભાષામાં કર્યો હતો. એટલે સંપૂર્ણતાની અને મૂળ ભાષાની દૃષ્ટિએ આ પ્રસ્તુત આવૃત્તિ વિઠાનોને અવશ્ય આદરણીય થશે એમ સમજીને આર્દી એને પુનઃ સમગ્ર રીતે પ્રકાશિત કરવામાં આવી છે. આશા છે કે વિદ્યાર્જનો એનો યથેષ્ટ લાભ લેશે. તથાસ્તુ.

ભારત જૈન વિદ્યાલય, પૂના;
વૈશાખ કૃં ૫, વિક્રમ સંવત્ ૧૯૭૭.

}

—મુનિ જિનવિજય ।



वी र वं शा व लि

अथ वा

त पा ग च्छ वृद्ध पट्टा व लि ।

॥ ॐ ॥ अथ वृद्ध पट्टावलि लप्यते ।

श्रीआदिदेवादिजिनाश्च सर्वान्
सीमंभरादीनिह वर्तमानान् ।
श्रीजैनदेवीश्च सुगुह्यं प्रणम्य
श्रीनीरवशावलिकां लिखामि ॥

अथ शिवललनालीलाविलासदासुश्रीपर्वमाहारम्यकथ-
मानन्तरं श्रीनीरशिष्यपरम्परा कथयति । तत्राद्यां वर्तमान-
तीर्थाधिराजनमस्कारमाह ।

प्रकटितजगदानन्द
सुरतमणिसुरामिमहिमरमणीय ।
प्रणते हितमणेत
शासननता जयति जिनवीर । ॥

पुनः स वीर किदृशः ?

श्रीशासनापीश्वरवर्धमानो
गुणैरन्तैरातिवर्धमानः ।
यदीयतीर्थं स्वसाहचरैर्नैव-
र्धवाणि यागद्विजयि प्रसिद्धम् ॥

इति मुख्य स्वामी ।

सद्भासमुष्टिद्वयमुत्तमोगे
प्रक्षिप्य सिद्धार्थीजनो त्रयस्य (?) ।
सस्थापयामास पदे स्वकीय
स्वामी सुधर्मा जयताश्चिर सः ॥
सद्धर्मवंत पितर स्वकीय
स्वकीयपरनैरथ मातर निजम् ।

संवोच्य राज्ञो प्रभरादिचोरान्
दीक्षा लब्धौ प्राप पदं च जवूः ॥
श्रीमान् प्रभरस्वामी
गणनाथो गुणमणिसलिलनाथः ।
हाय्यंभ (१-२) वंऽपि सूरि—

मंणकपिता समन्निष्ठ ततः ॥
निजगानिनिर्जित भद्र—
कृतभद्रः श्रीगणियज्ञोभद्रः ।
तत्पदे.....

..... ॥

अथ नव गणधर वीर विद्यमान धर्मा वैभारगिरि—
पर्वतोपरि मासभक्त सलेशणाकरी मोक्षगता ॥

श्रीनीरमोक्षे गया पट्टी वारे वरसे गोतम मुक्त । गोत्रं
गोतम । मगध देशे गौरा नगरे वसुमृति निमग्नं प्रथि-
वी स्त्री सुत । इन्द्रमृति नाम । पचास वर्षं गृहवास । श्रीस
वर्षं वीरसेना । बारवर्षं केवल पर्याय पाली । सर्वं आयु
बाणु वर्षं भोगवी श्रीवीरपी वारे वर्षं मोक्ष गया ।

१ सुधर्मा स्वामी ।

पट्टी श्रीवीरपाटे पाचमा गणधर श्रीसुवर्मा स्वामी
पट्टेले पाटे गया । तथाहि ।

कोळाम सन्निवेशे धमिन्न नामा विप तेहनी स्त्री भ-
दिल नाम । ने हरिदायण गोत्रयो उपनी । तेहनी पुत्र ।
उत्तरा फान्गुनी नक्षत्रे जन्म हुआ । सुधर्मा नाम दीपु ।
अनुक्रमे योवनागस्थाय वसुसमोत्रधर्यो उपनी एक

કન્યા પરણાવી । તેહસ્યું સંસારિક સુખ ભોગવતાં એક પુત્રી હુદ । તે સુખમાં ચાર વેદ સાંગોપાંગનો પાઠી છે । તેહને પાસે પાંચસોં વિદ્યાયે વાઢવસુત વિદ્યામ્યાસ (૨-૧) કરે છે । પિણ તે સુખમના ચિત્તને વિષે એક મહા સંદેહ છે । તે કિસ્યો ? જે જેહયો તે તેહયો । તે સંદેહ શ્રીવીરવચને નિઃસંદેહ હુઓ । તિવારે પાંચસય છાત્ર યુવત વર્ષ પંચાસ ગૃહસ્થપણુ ભોગવી, સંસયદેવક શ્રીવીરહસ્ત દીક્ષા લીધી । વર્ષ વહિતાલીસ સિષ્યવળે શ્રીવીરનો વિનય કિષો । એતથો (૧) વર્ષ વાણુ છદ્મસ્થાપદ ભોગવી । પુનઃ વર્ષ આઠ કેનલી પદ ભોગવી । એવ સર્વ આયુ વર્ષ સોનો સંપૂર્ણ । માસ એક જડનિહાર અણસણ । પાંચમે આરે । પશ્ચિમદિશિ । શ્રીવીરને મુક્તિ હુઆ પછી ત્રીસે વર્ષે શ્રીગિરનારપર્વનોપરિ શ્રીસુધર્મા નામે શ્રીવીરના પહેલા પટો-ચરને મુક્તિ હુદ ।

શ્રીવીરનાોત્પત્તેઃચઉદ વર્ષે જમાલી પ્રથમ નિન્હવ । સોલે વર્ષે તિષ્યગુસ દ્વિતીય નિહ્વ । પ્રથમ નામ ત્રિવંધી । શ્રીવીરને પ્રથમપાઠે સુધર્મા સ્વામી જાણના ॥ ૧ ॥

૨ તત્પટ્ટે શ્રીજંતૂસ્વામી ।

હવે તે જંતૂ કુમારની ઉત્પત્તિ કહે છે । પૂર્વદિશિ મગધદેશ વછ મૂમિયે રાજગૃહ નગરે કાસ્યપગોત્રી શ્રેષ્ઠ સ્વભદત । તેહની સ્ત્રી ધારણિનામે । તેહની કૂપે પાંચમા મલ્લદેવલોકથી આયુ સંપૂર્ણ [યથે] દેવતાનો ઝીવ (૨-૨) જડી આવી બેઠાવળે ઉપનો । તિવારે ભારણીઈ મધ્યરત્રિ સૂતાં થકાં સુદૃષે સફલંત જંતૂનાં જ્ઞાઢ દીટો । તેહને અહિનાળે જંતૂ કુમાર નામ દીધું । અત્રકમે વર્ષ સોલનો હુઓ । એહે અવસરે શ્રીસુધર્મા કેવલી વિચરતા આવ્યા । તેહને મુખે ઉપદેસ સાંભલી લઘુકર્મીં જીવ જંતૂ કુમારે ચોયુ વર્ત આદરયું । સુધર્મા કેવલીયે વિહાર કીષો । ભોગ સમય જાણી વાર ૨ માતાપિતા સંસારની વાર્તા કહે । તીહિ પિણ જંતુ પાણિયજ્ઞ ન વાંછે । માતાપિ-તાયે ર્પ પૂરણમાટે વળા આગ્રહી ઉત્તમ વ્યવહારિયા-નિ બેવી આટસ્યું પરણાવ્યો । પિણ તેહસ્યું જ્ઞેહ દટી જોહે મહી । સંસારીકનાં મુદુવચન કોલે નહી । યતઃ

દુષ્પો મુતાવિકારઃ સ્થાત્ માષો ચિત્તસમુદ્ભવઃ ।

વિલાસો નેત્રજો જ્ઞેયો વિપ્રમાં મુસમુદ્ભવઃ ॥ - ૩ -
 ઇહી ૨ કામ વેષ્ટા કરી અંગ દેખાડે । પણ જંતુ તે સ્ત્રી સાંભલી દટી જોહે નહી, એહે વળા મનુષ્યને મુક્તિ જંતુને ઘરે નવાણુ કોઢી સુવર્ણ દ્રવ્ય આવ્યો સાંભરી પ્રભવો નામે ચોર પાલથી ચ્યારમે નવાણુ ચોર મનુષ્ય લેદ રાત્રિં જંતુ ઘેર દ્રવ્ય લેયા (૩-૧) પડો । ઘરને છુટક ચાંક માઈ દ્રવ્યનો ટીંગ કીધો દેખી અવસ્થાપની વિદ્યાને પ્રકમે સફલ ઘરના મનુષ્ય પ્રતે નિંદ્રા લીધી । પછી તાલોદ્ઘાટની વિદ્યાઈ તાલો ડયાઢી ગૃહાર્થીસની પરે અવીહુ થકા દ્રવ્યની ગાંઠઢી વાંધી માથે મુકી । ચ્યારમે નવાણુ ચોર સહર્ષિત ચિત્તથકા સ્વપરે જાવા ઉઘમિ હુઆ । એતલે જંતુના સીલભર્મે મહિમાયકી જ્ઞાસન દેવ્યાઈ ધાંભા-નિ પરે નિશ્ચલ થંમ્યા । અને જંતુ તત્ત્વ મોક્ષગામિ છે તે માટે અસ્થાપનિ નીંદ્રા ન આવી । એતલે પ્રમથો મેઢીયે વચ્ચો । દેયે સો રંગસાલાયે જંતુ નવોદા સ્ત્રિયોને ઉપદેશ રૂપ પ્રતિવોષ કરી દુષ્ટાંતે સમજાવિ છે । તે જંતુ વચન સાંભલી સ્ત્રી પળ પાછો પહુતરૂપ દુષ્ટાંત કરે છે । પિણ સંસાર ચિત્ત થકા, દ્રવ્યના ડિંગ ચોર લિયે છે તે સાંહમુ જોતા નથી । એ મોટા અચરિજ દેખી લઘુકર્મીં જીવ પ્રભવો જંતુ કથક દુષ્ટાંત સાંભલી મનનું ચિચારે છે । જે થન્ય એ જંતુ કુમારને । નવાણુ કોઢિ કનક અને તૂત પરણી નવોદા નવ કન્યા થકી વેગલો છે । પિણ મુજને જે હું રાજપૂત વહાઢ છું । મી (૩-૨) લસંગ રહી ઘળા જીવને દૂઢવધને તથા દૂઢ પ્રહાર કરી ત્રાસિ મહાદુષ આપુ છું । તો મુજને કુળ ગતિ હુસ્યે । હસ્યું વિચારિ પ્રતિવોષપામી ચ્યારસેનવાણુ પરિકરસહિત પ્રભવો આવી જંતુને નમ્યો । એતલે જ્ઞાસનદેવ્યાઈ તે સફલને વ્રત લે-વાનો આસય જાણી વંચન થકી મુક્યા । જંતુયે પળ નવ સ્ત્રીઓને પ્રતિવોષી પ્રમાતે રતમાતાપિતા અને ૮ પ્રિયાનાં માતાપિતા-એવં પાંચસોં સત્યાવીસ મનુષ્ય યુત । પુનઃ નવાણુ કોઢી સુવર્ણ ઉપરિ મૂલ્યાં તજી નીલેંભિતા ને..... પાણિયજ્ઞને અથસરે સિલ્લેકે દીધા કોઢી સત્યાવીસ પર-નો મૂલગો દ્રવ્ય-એવં નવાણુ કોઢિ સંખ્યાયે જાણવો । તે તજી વર્ષસોલ ગૃહસ્થપણે રહી । શ્રીસુધર્મા હસ્તે દીધ્ય

लीधी । वर्ष वीस श्रीसुधर्मानो विनय शिष्यपणे कोथो ।
वर्ष चउमालीस युग प्रधान पदे केउली पद भोगवी ।
छेहला केवली विरद धरावी । श्रीवीर स्वमुखें श्रेणिकने
कट्यु जे मेहला देवलोका थकी आवी इणि सूर्याभदेव ना-
टिक कीभू ते देवना जीर छेहला जवूनामे केउली होसे ।
ए वचनने अनुसारे जाणव्यो । सव (४-१) लो
आउयो वर्ष ऐसीना भोगी सपूर्ण । प्रभवाने स्वपाटि
धापि श्रीवीरमुक्ति हुआ पछी वर्ष चोसठें श्रीजबू मोक्ष
हुआ । तत्र—

बार वरतेहि गोयमो मिद्धो वीराओ वीसहि सुहमो ।
चउसठ्ठी ए जवू बुच्छिवा तस्य दस ठाणा ॥
ते जवू मोक्ष हुया ते सांय उत्तम बोल दस विच्छेद
हुया ते कहें छे । यतः—

मणपरमोहि पूलाए आहारग सवग उवसमे कप्ये ।
सयमतिथ केवल सिञ्जनाय जवूमि बुच्छिवा ॥
एतले मुक्तिना कपाट देता गया । अत्र जवू उपमा—
लोकोत्तर हि सौभाग्य जवूत्वामिमहामुने ।
अद्यापि य पति प्राप्य शिवश्रो नान्यनिच्छति ॥

श्लोकः—

चित्त न नीतं यनिता निकरै—
विंश न नीतं चतुरैश्च चोरेः ।
यदेहेहाद् द्वितीय निशेधे
जबूकुमाराय नमोऽस्तु तस्मै ॥
इति अंशु सवध । द्वितीय पाट ।

१ तस्यै श्री प्रभवस्वामी ।

तेहना कादक स्वरूप कहे छे । वंघ्याचल परंतने विषे
तलहटीई जयपूर नगरे कात्यायण गोत्रि जयसेन राजा ।
तेहने प्रभवनामे १ विजयचरनामे २ विह पुत्र छे । तं
मारिं पिता युगे जेठ जाणी कनिष्ठ जे लघु पूजने राज
(४-२) दीवू । एतले प्रभवो कोथे वरथकी नीकली भी-
लनी पाले पछिपति पासि जद रह्यो । तिणे राजपुत्रजाणी
आदर देइ पाचसे चोरनो स्वामी कीथो । चारसो नवांशु
चोर लेई दूष्टात्मा अति क्रूरपणायी घणा मनुष्य प्रति
उपद्रव उपगवे पण बांइ वारवा समरण नहीं । एहवे जवूने

घरे द्रव्यना समुह आव्या जनमुखर्था जाणो, प्रभमो पो-
ताना समुदायने लेंइ रात्रि जवूने घरे द्रव्य हरताने पेटो ।
बीजा चोर सवला द्रव्ये विलगा छे । एतले प्रभमो मा-
लीये चळ्यो, देवेतो रंगमोहले जवूहस्ते नव परणात वकण
वांघ्यो छे । ससारने विषे सर्प आनन्य पणु छांअने
कहे छे । ते उपदेस साभलो जवू सांय प्रभम वर्ष ताम
संसारिकपणो भोगा, श्रोसुधर्मा केउली ह्मने दोक्षा
लीधी । वर्ष चोमाठिस श्रांजवूना संग, शिष्यपणे कोथो
अने वर्ष इय्यार जुग प्रधान पद भोगव्यु । एकदा श्रीप्रभमे
पोताने पाटे थापकाने अयें श्रुतबले करा स्वसवन विषे
उपीयोग देखने जांयु । पिण पाटयाय काइ न दांठो ।
तिवारे पर सासने उपीयोग देवे धके पूर्व दिसे (५-१)
मगत्र देसे राजगृही नगरे वक्षगोत्रि यजुर्वेदांय यशारम
करना शिष्यभर बाबव वेदकुम दांठो । निहा स्वशिष्य
मोऊली यतकुनो सेटी हेउं श्रांश्यातेविष दसने करी
प्रतिबोध पायो, श्रोपभव पास दोक्षा लीयो । हरे प्रभम
स्वामी सर्वांयु वर्ष पचासीउ सपूर्ण पालो श्रांश्यामुक्ति
हुआ पछी वर्ष पंचोत्तरे श्रांप्रभवस्वामी स्वर्ग हुआ । इति
त्रिजो पाट ॥ ३ ॥

हवे श्री पार्षनाथना प्रथम गणधर श्री सुभय नाम ।
तस्य शिष्याचार्य श्री हरिदत्त । तस्य शिष्याचार्य श्री
समुद्र स्वामी । तस्य शिष्याचार्य श्री केसा । श्री वीरगरे
केसा स्वामी । तस्य शिष्याचार्य श्री स्वयंप्रभसुर । तस्य
शिष्याचार्य श्री रत्नपभसुर प्रगट हुआ । तेहने श्री वार-
मुक्ति पछो वर्ष वारन आचार्य पद हुआ । श्री वारमुक्ति
गया पछो वर्ष पच्योत्तरे ओहसा नगरि चामुडा प्रवि-
बोधी घणा जीवने अमय दान देई सार्वज्य नाम दावु ।
पुनः तेहोज नगरनो स्वामी परमार श्री उपर दंव प्रति
धर्मोपदेस देई एक लगने नवांशु हाजार गोत्रो (५-२)
स्यु प्रतिनेध्या । तिणे श्री पार्षनाथ प्रासाद थाप्यो ।
एहिज सूरीये प्रांतप्रयो । निहांथो उपकेस साति वी-
वांणो । श्री रत्नप्रभमूर्तिने उपकृत मण्ड लाफ ग्यो ।
तिहा पादकरणा भोजन हुआ । इति चोथो पाट ॥ ४ ॥

४ तत्पट्टे श्रीशय्यमव स्वाभी ।

६ तत्पट्टे श्री संभूति विजय मूर्ति ।

तेहनों उक्तम गोत्र । तिणें सगर्मां, यज्ञारभने पिणें, स्त्रीने चरें सुदी श्री प्रभर स्वाभी पाम दीक्षा लीवी छे । यज्ञ करता शिष्यभरने प्रभवा स्वाभीह मगाइ करी, यज्ञ स्वभरी श्री शान्तिनाथजीने प्रनीमा देवादीने प्रतिबोधी दीक्षा दीधी । तवारें नेह ते स्त्रीने मनक नामें पुत्र हुआ । ते बेटे पण लघुपणें पीता श्री शय्यमव पास दीक्षा लीधी । पुत्रना स्नेह धकी साजुना आचार शिष्यवा उपगारने हेंने श्री दशरीकालक पहरे नामें गुप्त दस अध्यन निपजाव्या । ते बाल साधुनी उमामनी आयु स्थिति धर्का सुत्र नीपजाव्यो उमासे ण सिद्धान भण्या । अत्रकमे ते बालक साधु मरण पाव्यो । तिवारें अन्य साधुपे पोतानो पुत्र जाण्यो । गुरुय नत्र आसु पात थाता जाणी (६-१) साधोय वेराभ्य वचन करी समझाव्या । निर्मोह दशमा चेतना आणी समता भाये हुआ ।

हनि श्री शय्यमर स्वाभीय वष अटारीस गृहस्थ पद भोग्यु । अने वर्ष इत्या श्री प्रभरनी भरा शिष्यपणें कीवी । पुन र्प त्रेरिसताइ युगप्रधान पद भागवी सर्व आयु (र्प) वासठ सपूर्ण पाली श्रीवीर मुनि गया पडी वर्ष अटावुय श्री शय्यमर सुरि स्वर्ग हुआ ॥ ५ ॥

पण — कृण त्रिकालेभ्यः दशअध्ययनमभिर्नम ।

उशर्वकालिकमिति नाम्ना शास्त्र वमूर तत ॥ १ ॥

अत पर भविष्यनि प्राणिना ह्यस्मभस ।

कृणार्थास्ते मनवत् भवतु त्वत्प्रसादत ॥ २ ॥

श्रुताभोजस्य किञ्चनमिद सवोपराप्तत ।

महाफत्समायाती न सत्रे महात्ममि ॥ ३ ॥

५ तत्पट्टे श्री यशोभद्र स्वाभी ।

तेहनों तुमीजायन गोत्र । तिणें वर्ष वाविसताइ ससारीयु भोगी श्री सय्यमर गृहस्थे दीक्षा लिधि, अने वर्ष चउद श्री सिधमर स्वाभीनी सेरा शिष्यपणें कीवी । पुन वर्ष पचास युगप्रधान पद भागनी सर्व आयु र्प जा (६-२) सी सप्त पाली, श्रीवीर मुनि हुआ पडी, वर्ष एकता बहतालीस रितें श्रुतकेरली श्रीयशोभद्र स्वाभी स्वर्गे हुआ । इति पंचम पाठ ॥ ५ ॥

श्री भद्रबाहु स्वाभी । २ । ण वट गुप्त भाद जाणया । माहि श्री संभूति विजय मूर्ति ण पटभर जाणया अने भद्रबाहु स्वाभी ते गच्छनी मार समारिना वरनहा जाणया । ते माटे विहूना नाम जोडे लप्यो छे । तिया प्रथम बडा गुप्ताभाद श्री संभूति विजय स्वाभी । तेहनों मादर गोत्र छे । अने बीजा लघु गुरु भाद श्री भद्रबाहु स्वाभी । तेहनों प्राचीन गोत्र छ । हिवें श्रीसंभूति विजय स्वाभीये र्प उहतालीस गुहस्याश्रम भोगवी श्री गुप्त यशामत्र पास दीक्षा लीधी । अत वर्ष चयालीस श्री यशामत्र स्वाभीनी सेरा शिष्य पण बांधी । पुन. वर्ष आठ युगप्रधान पद भागवी सर्वायु वर्ष ९० सपूर्ण । श्रीवीर मुक्ति हुआ पडी वर्ष १५६ रीति श्री संभूति विजय स्वाभी स्वर्गे पहुता ॥ १ ॥ हवे बीजा लघु गुप्ताभाद भद्रबाहु स्वामि तेहनुं बाहव स्वल्प (७-१) कहें छे ।

दक्षिण दिशि प्रतिष्ठानपूर नगरं प्राचिनं गोत्रिया कराहमार । १ । अने लघु वषा भद्रबाहु १० । नामें बाढव रहें छे । तिणें श्री यशोभद्र गुरूनी वाणी साभली गुरुहस्ते दीक्षा लीधी । ते बेटे बचव घणें दिने विद्याभ्यास करता पद दर्शनना मतना बाछ तेहना जाण हुआ । एकदा गुरु यशोभद्र चित्तने विधे चितवे जे ए बडो भाद योग्य छे, पिण अहंरारि छे । तेहथी पद योग्य नरी । अनि नाहो भाद भद्रबाहु तेहनि समता-युक्त श्रुतसमुद्र जानी गुरवे सूरि कीधो । एतले ते बाराहमिहर बडो भाद गुरु तथा भद्रबाहु—ए विह उपर घणें कुपे यती वेध लोपी पुनरपि ससारी हुइने आजीवीका हेति पोताना नामनी बाराही सहिता नामें योगिपनो साछ नीपजावी मनुष्यनि निमित्त शास्त्रे प्रश्न करें । एकदा राजसभायें जावी बाराहमीहर मूर दु-टाउ करी कहें, जे आज यकी पाचमें दिने पूर्व दिसि यकी बीजा महरने अते इणि रुडार्तमये अन्न मार्ग यनी देव योगे वावन (७-२) पल्लो मछ पडतें । ते साभली राजा श्रीमद्रवाहने कहें, ए किम । तिवारें भद्रबाहु कहें, जे मेह पूर्व दिसी धकी कथो ते मेह

इशान कुणें थकी आवतें । भाकतो दिन घडी उ पाछ
लो रहेत्ये तिवारे । पण छटो दिन पाचममो भलवानो
मुख्य घडीये, ते मस्य कडाला वाडिरे किनारे पडस्य ।
साडा एकावन पलनो तोलमान होसी । ता तिमही
हो । राजाये भद्रबाहुने प्रससा अने वाराहमिहर्णे
निम्रट्टीओ । राजा कहे प मूढ ते किम ? जे
तिहायी आगता पवमने जोरे मस्त शोषाणो तहनी
मालीम रही नहीं । एतली बुद्धि न्यून एहनी जाणगी ।

पुन केतलेक दिने राजसदने राणीह पत्र जनम्यो ।
तेतले रराहमेहर कहे, पहना दास वर्ष आयु ठे । एतले
राजाये भद्रबाहुने पुठयो । तिवारे भद्रबाहु कहे एहने
आज थकी सांगेने दिने विलापी मुखयी मोक्षय मरण
छ । ते सामली राजाये नगर थकी सर्व मजारी कटारी ।
सातमि दिन दासी ते बालकने उच्छेय लह निखे ठे ।
एहने भाविने २ (८-१) से अकस्मात् मात्र गिने आकारे
भागल खेदीह थकी पटी मस्तकचात हू । मरण
पाम्यो । श्री भद्रबाहुनो उचन साचो जाणी घणी आदर
कीर्ति हूह । राजा रराहमिहर्णु वचन असत्य जाणी
देश बहार कीरा । ते पिण अणादर थनी जोधे मरण
लही व्यतर हूओ । पहेला मनो बैर समारी शुल्ना
सघने मारिना उपद्रव्य करे । तिवारे गुह्ये श्रतना ठपी
योग दीधो । रराह जीव जाणी उपसंगर स्तोत्र नीप
जाव्यो । जिणि जल मत्री ज्ञाटणी थकी ते व्यतर नाडो ।
श्री सत्र समारी हई । श्री भद्रबाहु स्वामीद नमो पूर
हती कल्पसूत्र उभरीने रचना कीची । ते भद्रबाहु स्वामीय
उपे पस्तालीस सत्तरी पद भागरी पत्र श्री यशोमद्र
गुरी हस्ते दीक्षा लीवी अन उपे सत्तर ताद श्री यशोमद्र
स्वामीनी सवा शिष्य पणे कीची । पुन वर्ष चउद युग
प्रधान पद भागरी श्री स्थलीमद्रने अतियोग्य विद्याभिन्न
जाणि पोताने पाट थापी, सरीयु वर्ष उहोतरतु सपूर्ण ।
श्री वीर मुक्ति हआ पत्री १० (८-२) एकसो सितर
श्री भद्रबाहु सतिता कारक, पुन आवश्यक नियुक्ती । १ ।
पक्षपाण नियुक्ति । २ । जोर नियुक्ति । ३ । पिछ नियुक्ति । ४ ।
उत्ताप्ययन नियुक्ति ॥ ५ ॥ आचारण नियुक्ति । ६ ।

सुगढाग नियुक्ति । ७ । दशविजालक नियुक्ति । ८ ।
विजहार नियुक्ति । ९ । दशकल्प नियुक्ति । १० । ए
दश नियुक्ति कारक, अने उपसंगरहर स्तान करी महामारी
निवारक पचम धृत केजली त्रिरुद भारक श्री भद्रबाहु
स्वर्ग हुआ । इति भद्रबाहु सवध । पाट । ६ ।

७ तत्तरे श्रीस्थुलिभद्र स्वामी ।

तेहनु स्वरूप काइक काहिए जीए । पूर्वदिशि पावली-
पूर नगरे नमो नद राज्य कर छे । तेहने नागरशाति गोतम
गोत्री शकडाल नामे मनी छे । तहन लक्ष्मीनामे स्त्री
छे । तेहने थलीभद्र १ अन सिरिओ २ [बेह पुन छे]
जसा १ जलदिशा २ भूया ३ भूयदिता ४ सगर ५
वेणा ६ रेणा ७ सात थुलिभद्रनी बरेनी जाणगी ।
हवे ते स्थुलिभद्रनि नीशाल मणी वेश्याघरे सनारीकना सुय
विषयासत्र शिलसालि नायका घरे मूक्यो । पूर (९-१)
कर्मानुयोगे तेहस्यु सग हुआ । भागी भ्रमर एका तिहाज
रग्या । पिता सुप्रण्य कहने । रिलसता द्रव्य मोकले ।
हम रिलसता बार काटि स्वर्ण थाथा । एहने बार वरसने
अने राजाने दरबारे कोइक वरदाचिनाम राज्ञण पडन
आव्या । राजानी कीर्ति कीची । द्रव्य दरगव्यो । तहने
सकडाले द्रव्य न दीधो । पठे तिण पडते प्रपच करी
राजान पोकार्यो । तेहरी, अकस्मात् लघुमार्ह सिरिओ
तहन हाथे पीतातु मरण जाणी, प्रत्यक्षपणे सत्तारतु स्वरूप
असार दीधो, वर्ष तीस ग्रहस्य पर्ण रही, वताय्य वार्मति
चीतथकी श्रीसमुतिविजय स्वामी हस्ते दीक्षा लीवी ।
राज कह ए कित्स्व कीच । तिवारे श्रीस्थुलिभद्र राजा
प्रति कहे, यम —

हस्त मुद्रा मुख मुद्रा मुद्रा स्वात्पादयो ह्या ।

तत्पश्चात् गृहे मुद्रा व्यापार पच मुद्रिकम् । १ ॥

पुन श्री स्थुलिभद्र स्वामी चउद पुर्व सुने मण्या,
अन दश पुर्व अर्थे मण्या । उपे चोरिम श्रीसमुतिविजय
स्वामीनी मद्रा विनदपणे कीची । अन उपे पस्तालीस
युगप्रधान पद भागरी, सत्र आयु उपे नराणुत सपूर्ण ।
(९-२) श्रीवीरगुप्ति हुआ पत्री बते पनरे उपे, कारा
नामे नायरा प्रविवाधक, शुद्ध श्री समुतिविज

कथक त्व भय २, इद वड वतरक्षक, विरद मारक, श्री
स्थूलिभद्र स्वामी स्वर्गे गृह्णात ।

ते सघात पहिछ यन्नप्रत्यक्ष नारा च मघयण १ अने
पहिछ तम चउरस नाम सस्यान २ पुन पूर्णुयाग ३
ए चिह्न यस्तु विच्छद हृद् । एहवे श्रीवीर मुक्ति हुआ
पत्नी वस चउद वय गइ थके अव्यक्त नामा त्रिजा
निन्हव प्रगट हुआ । यत उक्तम्—

केवली बरमो जरूस्वाम्यथ प्रभय प्रभु ।

शम्यभयो यशोभद्र सभूतिविजयस्तथा ॥

भद्रबाहु स्थूलिभद्र श्रुतकवन्तिना हि पद ।

ए छ श्रुत केवली जाणवा । अत्र महारुपि श्री—

स्थूलिभद्र वर्णन काव्य—

रह्या रागवती सदा तदनुगा पत्नी रतभाजन
शुभ्र धाम मनाहरवपुरहा नयो वय समे ।
कागय जलदाविलस्तदपि य काम जिगीयादरात
त उव सुरताप्रवापडुशाल श्रीस्थूलिभद्र मुनिम् । १ ।

श्रीशातिनाथदपरो न दानी

दशार्ण (१०-१) भद्रादपरो न मानी ।

श्रीशालिभद्रादपरा न भोगी ।

श्रीस्थूलभद्रादपरा न यागी ॥ २ ॥

ए श्री स्थूलभद्रना सक्थ अन्य चरित्रे विस्तार छ । ते
माट जन विस्तार कन्या नहीं ।

पुन श्री वीर माक्ष हुआ पत्नी वसे अने वीस वय
गइ हति बोध मत प्रकट हुआ । इति धुलिभद्र सक्थ ।
पाट ७ ।

८ तत्पट्टे श्रीआर्य महागिरि ।

श्रीआर्य सुरस्ति सुगि ।

ए बैहू गुरुमाइ जाणवा । ते माहि प्रथम वडा गुम्माइ
श्रीमहागिरि, तहो गोत्र एलापत्य नामे छे । अने बीजा
लघु गुरुमाइ श्री आर्य सुरस्ति सुरी तेहो गोत्र यामिछ
छे । ते माहि प्रथम श्री आर्य महागिरि सुरि ने पटोवर
जाणवा अने श्री आर्य सुरस्ति सुरि ते गठनी सार सभा-
लिना करणहार जाणवा । ते माटे बिहूना नाम जोडे
लप्या छे । तिहा प्रथम वडा गुरुमाइ श्री आर्य महा-

गिरि सुरि यथ वीस ससारीक पद भागरी आ स्थूलभद्र
स्वामीपास दीक्षा लीगे । अन यथ च्यागमनाइ गुरु
श्री स्थूलभद्र स्वामीनी सथा क्षिप्यणे रीभा । यथ ग्रास युग
प्रमान पद भागरी सगांयु (१०-३०) एत जन यथ मपुण ।
लघु श्रीआर्य सुरस्ति सुरीने गठ भगरी आ आर्य मता
गिरि सुरीइ जिन कर्णानी तज्जा करे । श्री गीग निवांणि
हुआ पगे वसे पसतालीस यथ जान श्री आर्य महामारा
सुरी स्वर्गे हुआ ॥ १ ॥

ए हरे श्रीवीर मुक्ति हुआ पत्नी वसे अटारीम यथे
गम नामा पाचमो निन्हव प्रगट हुआ ।

हरे आ आर्य सुरस्ति सुरि भय जीवन परमापकारी
थना निचस्ता मालव दस उजैणी नगर भद्रा नामे सार्थ
वाही पामे वाचनशाला याची बीमागु रद्या छे । तिहा
निसि सज्जाय ध्यान करे उ, एतले सात भूमि भद्रापुत्र
अगति सुकुमाल नामे वर्तसि स्त्रीओं साथे सुप विलास
करता, गुरु कथक अध्ययन मपुर स्वर एक चित्त धकी
सामली, जानि स्मरण पामी, पूर्व भव नलनो गुम्म विमा
ननो दवसुप दीठो । स्त्रीओनो सुप विलास भूरी
उतावलो मदी धकी उतरी गुम्मे नमी कहे, साधुजी
ए तुम कही एहरी ज नलनी गुम्म विमान सुप देवसाहि
वीनी यात ते तुम अत्र रद्या किम जाणा छे ? श्री आ
चार्य कटि—श्रीभिनरचनानुसारि । श्रेष्ठि (११-१)
पूय कह, पूय । एतले ए सुप भोगवी अत्र उपनो अने
पुनरपि ते देवसुप ह किम पासु ? श्रीगुरु कह, व्रत
लियो तो ते सुप लहो । तिवारे तिणे भद्रा मातानी
आशा लही, वनीस कन्या कोटी द्रव्य तजी, श्री गुरुहन्ति
दीक्षा लीधी । गुम्मे कहे ए कटीण दीक्षा म घणा दिन
ताई न सचराय त माटे अणसण कर । सामली कह
तमारा जीगनि जिम सुषनो हतु हुइ तिम करो । गुरुवचन
तहति कही जिहां समसानि कथेरी बनने विसे काउस
गा रही अणसण कथि । मारमि जाता कोमल पणायकी
निहु पगे कथेरना काग खुचने करी लाहीना टवका पक्यो
छ । तेहनी गमे रात्रिने विषे मसूता सीयालणी पोताना
परिवारस्तु जिहां अगति सुकुमाल साधु देहनी मुर्ता तजी

काउसर्गो रघ्या उं तिहा आवी । त्रिहु पगथी माडी स-
बलो सरार भक्षण रूप उपसर्ग कीधा । पिण ते मुनि
दृढचित्त थकी ध्यान न चल्थो । आयू सपूर्ण उदारिक
देह तजी सौभर्म राजध्यानीइ नलनीगुल्म विमाने
देवनी साहीवीये उपनो (१-२) एतले माताये पूत्र
आयु पूर्ण, पिण भगुर देह जाणी एक सगर्भा बहुने घरे
मुकी । एकत्रीस बहु युक्त भद्रा दीक्षा आराधी देखलेक
गया । घरे सगर्भान पूत्र जन्म्या तिणे पीता दग्ध स्थानके
प्रासाद नीपजावी श्रीअवति नामे श्रीपार्श्वनाथनो विंव
थापा ते सद्रतिनो मजनार हुयो ।

ह्ये सीयालणीनो सव्व कहें छे—अवनि सूकुमाल
पाहिला त्रिजे भन्न माछिनो अवतार हुआ । तिहा विं
स्त्री हुति । ते माछिये साधुनो उपदेश साभली श्रीचर्म
आराधी मरण पामी नलनी गुल्म विमाने देवपणे उपनो ।
तिहाथी चवी कोटीध्वज विनहारीयाने घरे अवति सूकुमाल
नामे पूत्र पणे उपना । अने वडी स्त्री विमव वणीकपूत्री
हुइ । पुन नाहनी स्त्री मरीने अपमानी हती, ते वाढवी
हुइ । तिहा थकी मरण पामी सीयालजी हुइ । ते घरे
भक्षण रूप महा उपसर्ग साचव्यो । ते पार्श्व विंव आज
दिनसाइ सप्रभाव उज्जेणी नगरीइ छे । इति अवति सूकु-
माल सव्व छे ॥ १ ॥

दश पूर्ववारक श्री आर्य सुहृस्तीसुरी पुन (१०-१)
जेह्नो नर दीक्षित भिक्षुक जीव तहने उपगारी पणे हुआ
। श्री वीर मोक्षे गया पछी वसे पचासी वर्ष सम्रति इसइ
नामे राजा हुआ । तेह्नो सव्व कहें छे । एकदा श्री
आर्य सुहृस्ती सुरी विहार करता कासवी नगरीइ बने
वाटिकाइ रघ्या । शिष्य गुरू आज्ञा लही नगरमाही
आहारने उद्यमे गया छ । तिहा दुर्भिक्ष योगे अन्न न
भावे भिक्षुक घणा हुआ छे । पण साधुने पण पणे
आदरे सरस आहार आपता देयी एक रक् भिक्षुकते साधु
साथे हुया । आटाइ लेइ माषु रागिनाइ आव्या । गुरू
जाग्ये पाहार आगाइ छे एतले रक् पण दाहि आनी
उमो । साधुने कहें छे मुजने ए आहार आपो । गुरू कहे
साधुनो आहार साधुने कन्ये, बीजा गृहस्थ न कन्ये । साभली

कहें, मुजने शिष्य करो । पिण आहार आपो । ह घणा
क्षुभार्ति हु । तिकारें गुरू दशपूर्वजाण छे । तिणे भूत
उपीयोग दीधो । शासन उद्योत कारक जाणी दिहा
आपीने आहार पण दीधो । घणा दीन थकी तिने सरस
जाणीने आहार विशेषे लीये (१२-२) । निर्बल सरार
थका वेह रक्ने निसुचिका हुइ । घणा असाता उपनी ।
उदर पीडा थकी वेदे । पहला ज गृहस्थ भिक्षुक पणे, ज
आहार न देता घणा तिरस्कार करता ते गृहस्थ नगर सेड
जहवा आवी, नव दीक्षितने साधु वष उदय आव्यो जाण
बहुमूल्य ओषधादिके विशाष भक्ति वेयावच साचये । त
दयी रक् साधु मन चितवे ज ए घण्य ए चारित्रने, धन्य
ए वेधने, जेना महिमा थकी एक कोटीध्वज लखेसरी
व्यवहारीया बहुमाने करी मुक्त भक्ति साचवे छे । एहवा
शुभ चारीरनी अनुमोदनाइ काल पामी उज्जेणी नगरीइ
श्रेणिकने आठमे पाटे कुणाल राजा, ते ओरमान माताना-
कपट थकी वर्ष तरनो चक्षू हीण यया छे, तहन घर बडा
पणि उपनो । केतलेक दिने तेह्नो जन्म थयो एतने अक
स्मात पेडगूल रोग पीडा थकी पीतानो नास हुआ । दुरत
ते बालकने लबी पाट तणते बेसारया । ते माट एहवु नाम
सम्रति राजा कहौइ । अजकमे यानन अवस्था पाव्या ।
एहव कालेक दिन श्री आर्यसुहृस्ति सुरी (१३-१)
उज्जेणीइ चामासु आला । तिहा दीगलीइ गृहार मडारे
दिने श्री गोतम केण्ठोउइ महिमाइ श्री वीरचये रथ
जागाइ समस्त सव्वयुक्त महामह राजरथे जाना गवाक्षे
वातायनि बडा थका सम्रतिइ श्री गुरुने देयी, जातिस्मरण
पूर्व भन्न दीठा । मनसू चितवे, ए गुरि पाहिला रक्ने
भवे मुजने महा उपकार, दीक्षा दइने, दीधो छे । एहवा
वीचारी मोक्ष थकी उतरी गुरुन वारी, कहे मुजने तुम
ओलपो छो ? । गुरू कहे, मालवाधीस प्रवन् पुन्यने जगन
आत्स । ते साभली सम्रति कहे इणहीज नगरना हुक्षवी
रक नव दीक्षित बेने तुमारो, त माये दूदि कृपा करी
मुनने धर्म उपदेश कहे । तिकारें सम्रतिने गुरू कहे
अथ श्लोक—

दिने दिने मंगलमंगुलाली

गुप्तपरा माल्यपरपरा च ।

इष्टार्थसिद्धिः बहुला च बुद्धिः

सर्वत्र सिद्धिः सृजता सुभगम् ॥ १ ॥

अतः वारणाव संपन्न चन्द्र बल सारा बल ग्रह बल दृग्-
बल बाहु बलादिभ्यो बलवत्तर भग्मं बलं विलोक्यते ॥२॥

बीजैर्नैव भवेद्बीजं (१३-२) प्रतीपेन प्रदीपकम् ।

द्रव्यैर्नैव भवेद् द्रव्यं भवेन्नैव भवोत्तरम् ॥ ३ ॥

एह्यो उपदेश श्री गुरु मुपनो सामंली; संपत्ति कहें, हे
कृपानिधी ! उत्तम गतिना जाणहार रुडा जीव, तेहना
कुण आचार हूह । गुरु कहें हे संपत्ति ! हे माहामनिना
स्थामी, सामल । उत्तम प्राणीना एह आचार हूह ।
सोक—

अथः क्षिपति कृपणा जित तन्नयियासवः ।

संतस्तु शुचैत्यादां तदुच्चैः पदकाभिणः ॥ १ ॥

एह्यो वचन उपगारी गुरुना मुपधा सामंली समक्रिण
छही सकृत् करतो हुआ, संपत्ति नृप, जिन प्रसाद मङ्गित
मपयी शोभावतो हुआ । तेहनी संख्या—सत्ता लाख नानन
प्रसाद निपजायतो हुआ । तेहने वारणें बें हजार धर्म-
शाला निपजावी । सवाकोटी श्री जीनविच कीथा । ते
माहि पंचाणुं हजार भातुना विच । शेष विच उपलना
राता, पीला, साम, स्वत, जाणवा । इग्यार हजार वापिका
तथा कूंड नीपजाव्या । कोइ तेरा हजार पण कहें । छनीस
हजार गिणोंद्वार निपजाव्या । ते किम, दिन प्रते एक
प्रसाद जीणोंद्वार नीपजानी (१४-१) वधामणी
आवें, ते द्वारपालक बीज दीजें करे । एटले संपत्तिव
आयु वर्ष सोतुं जाणवू । अने सो वर्षना दिवस छनीस
हजार हूय । ए प्रमाणे जीणोंद्वार जाणावा । ते माहि मुख्य
जीणोंद्वार श्री समलीका बीहाम्नी नीपजाव्या ।

हंव ते श्री शह्नुनिका विहारनी उत्पत्ति कहे छे । श्री
नर्मदा उपकंठे भृगु क्षेति कोरंटक वने आम्ही वृक्षे एक
समन्ती पोताना बालक सहित रहे छे । ते निरंतर पोताना
बालकने पोसे । एटले घाटकी वीचारें जे ए ममली
चांचस्यू सवलो मस बिगाडे छे । एटले समली आवी
चांच पूंटे मांस खंड लेह वड वृक्ष साखायें बेंठी । तेतले

साटकीण बाण करी विभी । मारग विचमां ममीह पडी ।
एहं कोइक जैन गृहस्थे नमस्कार संभलारीओ । ते
समन्तीह सामन्थो । एतले पोताना बालक उपरें मोह न
आण्यो । नवकार मट्ठो । तेहना मणिमा थकी मरण
पांमी सीहल डीपना राजा श्रीचंद्र चेरें येटी उपनी । ते
वृववंती हूह । एकदा पिताने साथें ते कार्यायें भृगुकंठे
आगी (१४-२) । ए वजार् दांटे प्रदमदत्त द्यवहा-
रियाना मुपथकी नांकार सामंली जाती स्मरण पांमी
पाछिल्लो समली मज दींठा । ते पासे थकी नांकार शि-
ष्यो । जैन धर्मि श्रधावत हूह । जे टेकाणें बाणें विंधाणी
भूमीह पडी हूनि निणरिज टेरुणें विद्यमान शासन श्री
धीसमा तिर्यकरुनो जांणी बावन्न देवकुलिका महित
प्रसाद नीपजावी श्री मुनिगुप्त स्वामीनो दिव थाप्यो ।
ते प्रसाद माहिं वड वृक्षे समलीउत्त स्वरूप कीवु । ते
बालीका सील धर्म आराधी नांव तप तपी मरण पांमी
इजान बीजें देव लोकें देवता पणें उपनी । यठः

हरिवंशभूषणमणि

भृगुकंठ नर्मदासरे तीरे ।

श्री शकुनीकाविहार

मुनिगुप्तजिनवतिर्गयति ॥ १ ॥

इति शकुनीका विहार उत्पत्ति ॥

पुनः सप्तमिय उत्तर दिसे मरुधरि धंधाणि नगरि
श्री पद्मप्रभ स्वामीनो प्रसाद विंघ नीपजाव्यो । बीजा-
गीरी पासनो प्रसाद निपजाव्यो । ब्रह्मणी नगरी श्री
हमीर गर्दी श्रीपास प्रसाद विंघ नीपजाव्यो । इल्लार
गिरि सिधेरें श्री नेमी विंघ थाप्यो (१५-१) । ते दसण
दिसे जाणवो । पूर्व दिशि रोहितगीरें श्रीसूपासनो प्रसाद
विंघ नीपजाव्यो । पच्छिमें देवपत्तनं पूनः इदर गडें श्री
शान्तिनाथनो प्रसाद विंघ निपजाव्यो । पूनः पूनः
संपत्ति स्व प्राकमे त्रिषंडाधीना मंगल अंगी निमित्तें संदेव
सूर्योदये अष्टोदरी, एकनीस भेदी, सत्तर भेदी, अष्ट
भेदी, नवपदादी, मेन पवीयें श्री जिन मक्ति साचवें ।
पूनः श्री सिद्धगरी । १ । रेपतगरी । २ । श्री शंख-
स्वर । ३ । नंदीय । ४ । ब्राह्मण पाटक । ५ । रय

जात्रादि प्रमुख महातीर्थ जाणी वर्ष माहि वार च्यार संप्रति हूंद । जात्रांना लाभ कमावे । प्रचुर चित्त सत वेष्टे वित्त वावतो हुंओ, मार सध्द मुखे न कहे; कांने पण मार सध्द सांभलें नही । न्याय घंटा वाजे । एहवी रीते संप्रति न्याय धर्म राज्य करे छे । एहवे एक साधु मास धमणनो-चांवीहारी तप संपूर्ण काउसगंगारी गिरि-गुफा माहिणी नीकलो, उजेणी नगरे पारणाने वि आहार अर्थ आव्या । तिहां दुर्भिक्षने योगे भिक्षारी घणा हूआ । कोर तेहने अन्न न आपे । एहवे ते साधुने तपस्वी जाणीने (१५-२) गृहस्थे कमाउ उपाडी घरमाहि लीधा । साधुये पारणो करी पूनः अठाइ पचस्ती, आबी गुफाई निश्चल काउसग धांने रह्यो । एतले मयले-मिष्यारीहं मली चित्तयुं जे ए यती तरत आहार लेह गयो छे, तिहां भिक्षारीण आबी तेह तपसानी उदर विदारी अन्न पावो । नगरमां वात प्रसिद्ध थई । संप्रतिहं यतीघात जाण्यो । श्री कैयली तीर्थकर वचनाउसारें मस्मग्रहेने योगे दिन रहाणीनीं समय जांणी संप्रतिहं समग्र देशे श्री आर्य सुहस्ती प्रमुख साधु समुदायने पणे आप्रहं महा महो-त्सवे वेंसुकृत (१) धर्मशाळाई पधराव्या । कपाट हुआ छे नही । पूनः संप्रति राजाई पोताना दास तथा घरनी दासी तेहने साधु साधवीनीं वेष्ट देह अनारज देसे विहार कराव्यो । घणा गाढा मिष्यात्वीने समकीत पमाडी आर्य जैन कीधा । इत्यादि उराम सुकृतें करी इह परभव आत्मा कर्माणउ हेष्ट जाणी (१६-१) नीपजाबी, कौरव कुल मोरिय वंस सोभावी संप्रति नृप से वर्ष आठ संपूर्ण, सदगतिनो मज्जार हूओ ।

गाथा—कोसंबीए जेण दमगो पञ्चाविओ तओ जाओ ।

उजेणीए संपद्र राया से नंदओ सुहत्या ॥ ११ ॥

इति संप्रति नृप संचय ॥

ए श्री आर्य सुहस्ति सूरि लघु गुरुभाई ते गळना पडेभार हआ, अने वडा गुरु भाई आर्य महामिरे सूरि तेहणे जिन कपनी-सूलना कीधी । दाक्षिण पणे राज्य चिंज लीयो । ते माटे विहू गुरु भादने मांडली अहार पांणीनीं-व्यवहार उदो हूओ । श्री महानीरी सूरिहं

सम्मित शिषरनी यात्राने हेने पूर्वदेशे विहार कीधो । तेहनी च्यार पेडीने आंतरे श्री देवडी क्षमाश्रमण हूआ । हिंवें श्री आर्य सुहस्ती सूरिहं वर्ष त्रांस संसारी पद भोगवी श्री स्यूलीभद्र स्वामीने हस्ते दीक्षा लीधी, अने वर्ष चौबीस शिष्य पणे गुरुनी मेवा कीधी । पुनः वर्ष छहे-तालीस युगपधान पद भोगवी सन्याय वर्ष सोड संपूर्ण श्री वीर मुक्ति हूआ पछी वसेने एकांशु वसे श्री आर्य सु (१६-२) हस्ती सूरि स्वर्ग हूआ ॥ पाठ ८ ॥

९ तत्तट्टे श्री सुस्थित स्वामी ॥ १ ॥

लघु गुरु भाई श्री सुप्रति वृद्ध स्वामी ॥ २ ॥

ए विह गुरु भादनी व्याघ्रापत्य गोत्र छे । ते माहि श्री सुस्थित स्वामी ते पदभर जाणया अने लघु भाई श्री सुप्रतिवृद्ध स्वामी ते गळनी चित्ताना करणहार हूआ । ते माटे ए विह गुरुभाई नाम जोडे लख्यां छे । पूनः ए बेहू गुरु भादई आलीयखंडे काकंदी नगरीहं, महर्षि गौतम कथक जे सूरि मंत्र तेहने कोदिवार स्मरण कीधो । तिवारें नवना पाठ थकी कोदिक गछे पहने वीरना नाम प्रगट हूआ । ते पहिला श्री सुप्रभा स्वामी थकी मांडी आठ पाठ सुर्षा निर्ग्रंथ गळ पहवी नाम कहेवाता । तेहने सर्व आयु संपूर्ण श्री वीर मुक्ति हूआ पछी वर्ष त्रिणसे अने वहांतर वितके थके श्री सुस्थित स्वामी स्वर्ग हूओ । पूनः श्री वीर निर्वाण हूआ पछी त्रिणसे अने उगणासी वर्ष वीते, श्री भृगुकळ नगरे श्री आर्य खप-दाचार्य प्रगट हूआ । पाठ ९ मो ।

१० तत्तट्टे श्रीइंद्रदिन सूरि ।

अने लघु गुरु भाई वीज श्री मी (१७-१) यमर्थ सूरि । तिहां वृद्ध गुरु भाई श्री इंद्रदिन सूरि तेहने कौमिक गोत्र छे, लघु गुरु भाई यमर्थ सूरि तेहने कासप गोत्र छे, श्री इंद्रदीन सूरि विहरता मुदेरीहं पुहता । एहवे श्री वीर मुक्ति हूआ पछी च्यासें सीनर वर्ष गया हुंते मालव देशे उजेणी नगरे परमार वंस राजा श्री विक्रमादित्य प्रगट हूओ । तेह वर्षउ मान कहे छे । श्री वीर चिरं (१) पालक राज्य वर्ष साठ । नंद राज्य वर्ष १५५ । मोरिय राज्य वर्ष १०८ । पुष्कमित्र राज्य

उप ग्रीस । बलमित्र १ भावुमित्र २ श्रीकालिकाचार्याना
भाणज तहना राज्य उर्ष साठ । नरवाहन राज्य उर्ष
च्यारीस । गर्दभित्र राज्य वर्ष तेर । सारी राज्य वष
च्यार । श्री वीर मुक्ति हुआ पछी च्यारस छतु उर्ष गय
दक्षिण दिसें श्री गोदावरी नदीने काठ पडटाण भूजा
भीप सानीध थकी श्री शालिवाहनो साका प्रगट हुआ ।
एष उर्ष च्यारसेन सीतरना मंत्र हुआ ।

श्री वीर मुक्ति हुआ पछा ऋणसेन कीस उप गया
पछी माराय राजाने राज श्री आय सुहृत्नी सूरीन सगाडे
(१७-२) पहिला श्री कालिकाचार्य प्रगट हुआ ।
तिणे सौधम्मैत्र आगलें निगादना विचार रूप विवरा कछा ।
पुन श्री पत्रवणा उपाग सूतना कारक ए चाथा युग
मवान जाणवा । पुन बीजा कालिकाचार्य श्री वीर मुक्ति
गया पछी च्यारसेने बेंहपन वर्ष बीत बरुमित्र-भावुमित्र
राजाने राज्ये दक्षिण दिसें गोदावरी नदीने काठ
पडटाणे राजा श्री शालिवाहनना आग्रह यका एकनाऊस
जैनाचार्यनी शासिह, श्री पर्व आये हूत यक्षात्सर्वे श्री
पर्वनो अतराय जाणी भाद्रवा सुद पाचमथी कोय दीने
पर्वण पर्व कीधा । एहना विस्तार श्री कालिकाचार्यानि
कथा थकी जाणग्या ।

श्री वीर मुक्ति गया पछा च्यारसेने एकवीस वष गये
हूतें श्री इन्द्रदिन सूरी स्वग हुआ । हवें लघु शुभ भाह
श्री प्रियप्रथ सूरी श्री वीरसासनने प्रभावक हुआ ।
तहनों सबध कहें छे । अजयामर गदीनी तलहटीह हयं
पूर नगर बसे छे । एकदा तिहा विहार करना श्री प्राय
ग्रथ सूरी आव्या । पहवें छाने हौमवान सकल (१८-१)
मन्नना जाण जग करता उचमी हुआ छ । एतल जन
गृहस्थे गुहने जागना वार्ता नही । तिसरें श्री मुख्य सूरी
मत्रे पास मत्री श्रावकन देह, कया जे ए पास बोकदान
माथे टग्यो । जिम एहने अमयदान हूस अने शासन
पण उन्नत होस । श्रावके गुरुद कछा तिमज बीधु । एत
बोकदा देव अर्धाष्टत यकी आकाश जाइ उमो रह्यो ।
यागकृत नाडव प्रति मनुष्य भाषायें, अर विप्रा । सुष्टे
संभला, जतला पसूनी दर्हाये राम हाय ततन हजार

वरस सूरा पगुना घातना करणहारना जान नरक रखा
वदना वद । यत

महतामपि दानाना कारन क्षीयत फण्णम् ।

भीताभयप्रद नम्य क्षय एव न त्रियत ॥ १ ॥

ने प्रपना पट्या वचन साभरी सकल मनुष्यना वद
छाने पुई छे-ज तू कण छे ? जग कहे-हु याचक
दना तु । ए अत्र माहठ वाहन छ । त माने तुमै ए
धम बाग छ त सन मिथ्या छे । साचा धम्मनी परीक्षा
करा, तो श्री प्रायग्रथ सूरीने पूछा । तिण नाडव गुरुन
धम्म पूज्या तिसरें सूराह, यत गाथा—

धम्मा मवण्णु (१८-२) किठ अहिंसासज्जो तथा ।
दगानि त नमसति जस्स धम्मो सया मणा ॥ २ ॥

ए गाथाह कही । त सांभरी सब वाडव प्रतिबोध
पामा दया धर्म प्रत्य आपावता हुआ । श्रीगृह वाक
बाने अमयदानना दणहार जाणी कीनि हह । एतलें ए
प्रियग्रथ थिवीरने श्रीवीर सासन प्रभावक कछा ।

इति प्रियग्रथ सूरी मवध ।

एहने अवसरें प्रथम तिर्थकर श्री स्वम पुन नमि १
विनिमि २ तहनी शाषायें विद्याधर वशी श्री बृद्धवादी
सूरी तहना शिष्य श्री सिद्धसेन सूरी श्री काल्याण मंदिर
स्तोत्रना करणहार प्रगट हुआ । तिहा प्रथम बृद्धवादी
सूरीना सबध कहें छे । एकदा विद्याधर शाषाह आ० श्री
स्नद सूरी विहार करता गाह इस कासलपूर नगर
आव्या । तिहा मुकुंद नाम वाडवें बृद्धपण गुरु वाणी
सामली बूझ्या । चित्तवु विनिवे, ज शास्त्रन विवे पडित
कछा छे ।

यथा चतुर्भि कनकं परीक्षेन

निवषणच्छन्दनापपादन ।

तथाहि धर्मे सिद्धिा परीक्षत

श्रुतन शीलन तथा (१९-१) दयागुण ॥ १ ॥

शिव शासनन विवे ए च्यार आत्मशुद्धिना भू माहि
एक शुद्ध नयी, एक जैन विना । तारा अभिनिवेश मि
च्यारिना शास्त्र १ शीत २ तप ३ दया परिणाम ४
ए च्यार याना शुद्ध न कहिए । इस जन दशननी साची

वस्तु जाणी श्री स्कंदलान्नायं पासि मुकुंदे दीक्षा लीषी ।
 वृद्धावस्तर्हं पिण रात्रे गाढि स्वरे विद्यानो उद्यम करे ।
 तिवारे गुरू कहे, भो मरुतुभाव ! रात्रि मोटि शब्दे न
 भणीये । अनार्य मनुष्य जागे । लाडण पीसण आरंभे
 प्रवर्ते । तेहवे एक वृद्धा स्त्री ते रात्रु रात्रे मणतां घोष
 पाठ करता ते डोर्सा कहे—रे साधु ! तु घटपणे भर्णने
 स्युं मूल फूलावीस ? अमने नीद्रा करवा देतो नयी ।
 ते हेतुयी गाढि शब्दे अहेतु थाहे ।

यथा यतः

जागरिया भर्माणे अहमाणे तु तुत्तया सेह । .

वष्टाहिव भगोणीए अकहिसु जिणो जयं मिय ॥१॥

इति भगवत्पद्ये ।

एहणुं गुरुनु वचन सांमली रात्रि मणुं मूनी दिसेस
 घोष पाठ करे । तिवारे गृहस्थ तथा लघु शिष्यादिक
 (१९-२) ते पिण हास्य करी हसह । ते किम जे तुम्हे
 गरदपणे गाढि शब्दे भर्णने कियुं ते मुशल फूलावस्यो ?
 ते हास सांमली काश्मीर देश पंहतो सारदा मंदिरे उप-

कौशिक गौत्रे देवस्थी नामदं वाहन रहि छहं । तेहनी
 देवशिका नामे स्त्री छे । नेहनो पूत्र कुमुदचंद्र नामी महा
 पद् अंगनो जाण छहं । तिणे अन्य पंडितना मुख थकी
 वाग्देवी प्रसन्न थई श्री वृद्धनादीना वणो महिमा साभली
 अत्यंत गर्व घरी जे मुंजने विद्यावादे जीतस्ये तेहनो ह
 शिष्य थाइस । एहनी प्रतिष्ठा घारी जिहां मर्यादा श्री
 वृद्धवादी छहं तिहां आब्यो । एहवडं वृद्धवादी देह चिंताहं
 नगर बाहिर आब्या छे । तिहां बिहं एकटा मिथ्या ।
 वनर विषहं गौवर्लाया तथा पिडारा मो चारहं छहं ।
 कुमुदचांद्रे विद्यावादनो आसय जणाव्यो । तेह पिंडा-
 रानी शापोया करी विद्यावाद प्रारंभ्यो । तिहां प्रथम
 कुमुदचांद्रे संस्कृत वाणी कही । पिडारा न समजहं । ते
 कहे, ए विद्या काई नही । ब्रह्म तूं फोकट आरडे छे ।
 मूर्ख छहं । तिवारे वृद्धवादि सूरि अब (२०-२)
 सरना जाण हुई । कम्पक रजोहरण कटिवाची बंड उचो
 हाथि राखी प्रदक्षणा रुपी वेरणीह नाचता हुआ मुखि
 श्म मणिजे । अथ चान्ति—

गोवालीया उठ्वा गद् गद्दी, दृषित थका ताली देता सरी।
मलो एहीज डोरउड, नदी भणोंओ एहीज छेकरउ। १।
भट जे बोन्यो भूतप्रलाप, फोड्या कॉन विगोइओ आप।
जीत्यो ए दरयो तुं हहा, पाए त्यागी कइं ए गुर मला।

ते गोवालीयाना वचन साभरी कुमुदचत्र श्रीवृद्ध-
वादीने कहे हं प्रतिज्ञा सपूर्ण। विद्यावादे हारयो। ते
मांति मुन्नने शिष्य करो। किता थकी, तुम्हे समयना
जाण अनि हु समयनो जाण नहि। एतली माहरी बुद्धि
काची। गुरे दीक्षा देइ 'कुमुदचत्र' साधु नाम दीधु।
केनलेक निने गुरुसग थकी श्रुतबर ह्या। अतिगर्वित
थकी, एकदा श्रीगुरुने कहे, गणघर सुधीत जे प्राकृत
सिद्धांत छइ ते सयला संस्कृत कर। इम कही महा
उद्दाम विद्यापणइ 'नमो अरिहताण' ए सकल पच
पद प्राकृत छई, तेहिनि संस्कृत निपजावी गुरुने समझा-
व्यो "नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसत्त्वसाधु (२१-२)
म्यः" ते सांभली गुर कहे—सकल गुण सग्न श्रीदेवा-
धिदेव सर्वोत्तर संनिपात लम्बिना धणी गणघरादि हुआ।
अनि श्रुत केवली पिण आगि ह्या। पिण जे श्रीवीर
मुखि गणधरे त्रिपदी पामीनइ सुग्ध प्राणीनइ उपगार
नई हेतुई प्राकृत भाषाइ रचना कीथी। तेहु वचन
अन्यथा कइं ते अनंत ससारी हुई। ते मांति 'नमोऽ-
र्हत्सिद्धा' ए वचन तुम्हनइ बोटी आलोचणा आवी।
ते वृद्धादी गुरुनो वचन सांभली कुमुदचत्र गेलो गुरु
पासे वृद्ध वचन अन्य करायानी आलोचण मारई।
तिथारइ गुरु कहेई, गाढा मिथ्यात्वीने प्रतिबोधी समकित
पमाडी जैनपणु आदरावी गत तीर्थ पाछे वालइ सओ
श्रीसवि गच्छ माडइइ आइ। एहं गुरु ? सब २ नु
वचन माण करी एकाकी वीहार करता अवशुत वैशि,
वारमइ वर्षे, मालगंदेसि, उज्जैणी नगरइ, परमार श्री
वीरमार्क राज्ये शिप्रातटि श्रीमहाकालेश्वरनि प्रसादि
शिव लिंग उ (२२-१) परि मस्तक देइ सुतो।
बीजइ दिनि प्रात रामइ अर्चक सिगपूजक आव्यो।
एनले मोड सरीर, लंब मुजा, पिनाल अवयव, निःस्पृह,
अवीह, देपो अर्चक कहई—उ उठि उठि। ए शिव

भोले भस्मयोगी तेहने दूहरी किस्तुं मरण मागइ छे।
इम गाढइ रगि अर्चक वार वार कहइ तेनलइ मनुष्य
एकटा हुंआ। कहि उठि उठि। पिण किम हि न उठि।
तिथो भरटइ विक्रम पोकारयो। वीक्रम कहीरं, ताणी
घसरडी प्रासाद बाहि काडी नांख्यो। ते भरट राजाना
अनुचर लई मनुष्यना समुदाय माली उठाइवा त्याग।
पिण ते वज्र तुम्य। शिवनी आशातना जाणी पुनः
अर्चक विक्रम पोकारे। विक्रमे शिव मयांदा लोपी
जाणी राजणा दीधा। ते राजणा रांणीने प्राहार हुइ।
राणी आकर करे। ते सांभली वीरम चित्ते चितवइ,
जे ए महा कांडक सिद्ध पुरुष छे। णइसु प्राकम नही।
विक्रम आवी हाथ जोडी नमी कहे—हे कृपानिधी। मुज
अपराध खमी तुम्हे प्रसजि प्रत्यक्ष यावो। ते सामली
कुमुदचत्र तत्काल उठी कहे, रे अहो ! वि (२२-२)
कम, आ नगरइ तुज राग्गि किसी अन्याय वार्ता छई।
विनम कहेइ, ते अन्याय वार्ता कहो। तिवारइ श्रीकुमु-
दचंद्र पुरषकी विक्रमनइ अवति सुकुमालनो संबंध संभ-
लाव्यो। विक्रमनइ मनि सदेह हुआ। कहे ते परमेश्वर
श्रीपास अवतिनी तुम्हे कीर्ति कहो। तिवारे कुमुदचंद्र
श्रीपार्थनाथ त्रैवीसमा तीर्थकर तेहनी स्तुति रुपे श्रीकल्या-
णमंदिर स्तोत्र कहइ छइ। ते कहिना जेनलि एकादशम
काव्ये श्रीपार्थ परमेश्वरि पहिलाथी काम राग जीतो छई
ते स्तनइ। "यस्मिन् हरप० ११" ए काव्य कहिता
शिवलिंग थकी धूम्रशाला प्रगट हुई। पुनः कुमुदचत्रि
बारमा काव्यमा अद्भुत रसि करी श्रीपार्थदेवना मदिमा
वर्णवई छे। "स्वामिप्रत्यभि० १२" ए बारमा
काव्य कहिता शिवलिंगनो तेज हीण हुआ। पुनः श्रीकुमु-
दचत्र तेरमा काव्यमा वीर रसे करी श्रीपार्थनो धर्म वीर
पणु वर्णवई छई "कोषस्त्वया० १३" ए तेरमा काव्य
कहिता शिवलिंग स्फोट हुई। पिंडीर रिह हुआ। ते
माही थकी तत्काल (२३-१) श्रीभरणेद्र श्रीपद्मावतइ
संवीत, पुनः पार्थयकज्ञ ? वैराट्या देवीइ २ युक्त श्री-
अतिपासना बिब प्रगट हुआ। ते देखी वीक्रम वीरमय
पांयो। सकल मनुष्य युक्त श्रीपास प्रणमी बढो।

कुमुदचन्द्र वहे, रे वीरम् । किहा ए हरलिंग अनि विहा
राम द्वेष जजिन ए परमेश्वर । यत —

पापदावाग्निप्रलद सुरेंद्रगणसजित ।

गमस्तदापरहितो नि सग ऋषापह ॥ १ ॥

अस्य पूजानमस्कारप्रभायेर्धमिना विभोः ।

भवति सपदो वश्या मुक्तिश्चापि गुहागणे । २ ॥

सततमुच्चरित येन जिन इत्यक्षरद्वय ।

वद्ध परिकरस्तेन माक्षाय गमन प्रति ॥ ३ ॥

एहवा कुमुदचन्द्रकपक स्तुती सामन्ती मिथ्यात्व सत्य
टाली समकिन धर्म निश्चल हुआ । महामहोत्सर्व श्री-
अशतिपास थाप्या । गुरु वचने सवपति श्रीसिद्धाचलनो
हुओ । पुन महोत्र दानइ श्री स्वसवत्सर प्रवर्तारो
हुओ । निकट एक छत्र राख्य भोगनी, पात्र अपा-
ननी परीक्षा करी, एक शत अनि चापिस नूतन प्रासाद
नीपजा (२३-२) वी, सप्त शत जिणोद्धार करी, पर
हु ल डाठना जयेश्वरी हुई, महा परमोपगारि यको पर-
मार वश शिरामणि श्रीविभमादित्य सुकृतनो सचय करी
सद्विनो भाजन हुओ । श्रीकुमुदचन्द्र इणि परे गयु
तीर्थ पाठो राख्यो । गाढा मिथ्यात्वोने गाढो समजिती
कोयो । आवा बारे धैये श्रीवृद्धगदी गुरुने गदी आणा
धर्म लोप्यानी आलोयणा लेई, मिथ्या दुष्कृत देई, सप्त
शक्ति स्व गच्छ माइल लीधा । श्रीवृद्धगदी गुरुइ पोतानि
पाटि थापि श्रीसिद्धसेन सूरि नाम वीधु । सप्तमति ग्रथ
करता, अनुक्रमे निहार करता, दक्षिण दशे प्रतिष्ठान
पुरइ दिन इग्यार अणशणि, श्रीग्रीष्मणि हुआ पछी,
च्यारसइ अनः सितोतारि वर्षि पुन निम्न १८
वर्षि श्रीसिद्धसेन सूरि स्वर्ग हुओ । यत —

सप्त पभागा तेय जिण शासन सप्तधरिणा जओ ।

भवनरेण चिणजा ए ए भाषिया जिणमयमि । १ ।

इति सिद्धसेन मुरिमवष ॥

११ तत्पट्टे श्री दिन्न मरि ।

तेहनो गांतम गोत्र । ए सुयइ कर्णाटन देशि बिहार
की (२४-१) धो । एक भक्ति त्रिगयरहिन जाणवा ।
ए सूरि चउद उपगणना धरणहार हुआ । अत्र उपगर-

णनो विवरो । एहये अवसरि चदेरीनगरि साधु शवने
दग्ध स्थिति हुई । ते पहेला साधुनी देह जिनावरने उप-
गारि काम आवि एहवउ जाणी जल थलने विषई साधु
एकठा थई परठवता । ने वानी बुद्ध परपराइ गुरुमुष-
थी जाणव्यो ॥

१२ तत्पट्टे श्रीसिंहगिरि सूरि ।

तेहनो वौशिक गौल । एहवइ

श्रीशासितसूरि ॥ १ ॥

श्री सुधर्मसूरि ॥ २ ॥

श्रीआर्यनंदसूरि ॥ ३ ॥

श्री शाकिल्यसूरि ॥ ४ ॥

श्रीहीमवन सूरि ॥ ५ ॥

श्रीलोहानसूरि ॥ ६ ॥

श्रीरत्नाकर सूरि ॥ ७ ॥

ए सात युग प्रधान प्रगट हुआ । पुन श्री आर्य
महागिरिना शिष्य म्पियरि श्री आर्य रक्षित सूरि । तेहने
सधाडे लडि सपन्न श्रीदुर्बलाका पुष्पमित्र सूरि प्रगट
हुआ । तेहने भणायानइ घोष पाठ उद्यमइ करी सूर्यो-
दय सेर दस प्रत जटपात्रि जरतु । पुन नागाशुन सूरि ।
श्रीस्कादिल सूरि । २ । आपाशालित सूरि । ३ । ओष-
धीइ पादलेप करी आकासमामि उडी श्री (२४-२)
सिद्धाचल । १ । गिरिनार । २ । सम्मित शिवर । ३ ।
नदीय । ४ । ब्रह्माण वाटक । ५ । एव पच लोपनी यात्रा
करी पाक्षिक तपसु पारणु करता ह्या ।

श्रीनोरमुनि ह्या पछी पाचसओ अनि पचवीस वर्ष
श्री शत्रुवय उच्छेद हुआ ।

श्री वीर निर्वाण हुआ पछी पाचसओ अनइ बुमा-
लीस वर्षे गइ थकि छटो निन्दव रोहणुत नामि प्रगट
हुआ ।

श्रीवीर निर्वाण हुआ पछी पाचसओ अनि सवतालीस
वष, पुन वीरम् २६४ वर्षे, श्रीसिंहगिरि सूरि स्वर्ग ह्या ।

१३ तत्पट्टे श्रीवज्रस्वामी ।

हवि श्री वज्रस्वामीनो सवष कहे छइ । जवुदीप द-
क्षिणाऽर्ध मरने अगति डिशि त्वदन ग्रामि गातम

गौत्रइ श्रीधनगिरि रहइ छंद । तिणें सगभां सुनंदा छिनें
घरे मुकी आर्य समनी सात्था सहित वैगम्ये श्री सिंहगिरि
सूरीनो उपदेस सांभली दिक्षा लेईं गुरु साधि विहार
कीधो । केतलेक दिनें घरे सुनंदाने बेटो हूओ । सुनं-
दानी सहीयर स्त्री ॥ बालकने रमाइतां कहइ—नाहरइं
पिताइं दीक्षा लीधी न हुत तो (२५-१) जन्म ओ-
त्सव फल । एहवा वचन स्त्रीनां ते बालके काने सांभली
जाति स्मरणइं पूर्व भव दीटो । चित्तिं चित्तवें जे हूं पिण
चारित्र लेउं । एहवउ विचारो एकमनां थईं पणु
रदन करी । तेह थकी सुनंदा घणी आकुलो हईं । मनें
चित्तथीं जे एहने पिता ओये तउ तेहने आयु । इम
करतां यद् मासनउ हूओ । एहवि अवसरइं श्रीसिंहगिरि
सूरी शालाईं रखा । तिहां धनगिरि । १ । अनि आचार्य
समित । २ । ए विहूं साधु गुंनि आसा लही मुंघन
ग्राम माहिं आहारनीं गविषणाइ जाइ छे । एतले ज्ञान
उपयोगी शकुन विचारी गुरु कहइ—हे शिष्य ! तुम्हने
आज गांवरीईं जातां ताबित अचित जे मिले ते लेख्यो ।
गुरुवचन अंगी करी ते बेहु मुनि संसारिक यंदापवा सुनदा
घरे पुहुता । नगर मउप्यइं घर लोईं ओलली रुदन
करतो बालक तेणीं पीढाती एहवी जे स्त्री कहइं 'आ सुत
तुम्हारो तुम्हे लिओ ' इम कहों बेटो धनगिरिनइं दीधो ।
एतले नुरत रौतो रम्यो । ते बालक शैलोइं (२५-२)
लेईं गुरु वचन संभारी धर्मलाम देइ धनगिरि गुरु पासि
आव्या । घणे भारइं बाह नमती देवी वज्रसमान मार जाणी
गुरुइं वज्र कुमार नाम दीधु । साधवीनें उपाश्रये शिष्या-
तरी श्राद्धि सुश्रूषा सावथी । पालणइं पढाइइं । रात्रिने
विषयं साधवी इग्यार अंगनी सक्षाय करे । ते पालणे
सुंतां सांभलतां थका बालकने अंग इग्यार मुखि आव-
ख्यो । इम करतां ते वज्र बालक त्रिण वरसनी हूओ ।
एतले तेजयंत पूज सुनदा गुरु पासि मागइं—सुनइं मा-
हरो बेटो साधुजी आपो । गुरु कहै भरमलामइं विहराव्यो
बालक अम्हे पाछों न दीउं । इम करतां राजा समक्ष
विवाद हूओ । राजा कहै—बोलाव्यो जेहनइं पासि जाइं
तेहने ए बालक, एहवा राजानो वचन सांभली सुनदाइं

भाति २ नी सुलही मूकी; गुरि रजोहरण मुम्यो । एतइं
वज्र कुमार राजसभा समक्ष रजोहरण मस्तके लेईं
नाच्छो; सुपटी अनि माता साहसुं न जायुं । तिवारे ते
देखी सुनंदा विचारइं, जे भाईइं ? स्वामिइं २
(२६-१) अनइं बेटइं ३ पिण दीक्षा लीधी । हवि
संसारइं रम्यो मुननइं कुण आवार । एहवउ जांणनइं
श्री सिंहगिरिपासि सुनदाइं दीक्षा लीधी । वज्र कुमाइं भाउ
वर्यनइं दीक्षा लेईं दस पूर्व भण्या । एकदा श्रीसिंहगिरि
बहिसुमी गये हुतइं अन्य साधु नगर माहिं आहारनें अर्थ
गया छइं । एहवइं शालाइं यत्रकपाटि बाल लीलाइं साधुनीं
उपवि एकटी करी । विद्यार्थी ना भणइं । एहवइं इग्यार
अंगनी पांचना दीइ छइं । एतलेइं गुरु शालाने द्वारे
विवर थकी सुत पणइं रखा ते भवली व्यनिकर देषी,
जांय जांणी, श्री सिंहगिरि सूरीइं दस पूर्वभर धरने पो-
ताने पाटिं थाप्या । श्री सिंहगिरि सूरीनी आज्ञा लही
पांच शत मुनि साधि पूर्व दिशि थकी विहरता उत्तर
दिशि आव्या । श्री वज्र स्वामी तिहां दुर्मिसिधोगिं संघ
सिदातो जांणी पूर्व भव भित्र जुंभिक देवार्पित आकाश-
गामिनि विद्याइं श्री संघने वार योजन कल्पकनी विस्तार,
अइसठि कोटइं (२६-२) निपजाईं सुभिक्षइं महा-
नसी पुरइं मुक्या । पुनः श्री वज्र सूरी उत्तर दीशि थकी
विहरता दक्षिण पंथि सुंमिया नगरइं चोमासइं रखा ।
तिहां रस विकारना जांगथी श्लेष्म हूओ । शिष्य प्रति
श्री वज्र सूरी कहइं—जिवारइं आज तुम्हे आहारनें अर्थ
यहस्पने घरे जाओ तिवारे सुंठिनो खंड याचि लावजो ।
तिणे शिष्य निमज सुंठि लावि गुरु हस्ते दीधी । गुरि
कणें ते सुंठि थापि चित्त जे बाहार करी ए खंड वावरिमुं
आहारनें करवइं ते सुंठि खंड वावरवी वीसरी स्यांजेनीं
पडिलेहण करतां, मुख बलिका पडिलेहतां, कणें थकी सुंटी
खंड प्रयवीइं पच्चो । त देखी पोतानो प्रमाद तथा विस-
रण पणुं जांणी विचारइं, जे हूं दस पूर्वनां भारु तहनिं
ए किम वीसरी ? उपयोग दीधइं थकी पोतानुं आयु
गोइं जांणी पोताना शिष्य श्री वज्रसेन, तेहनि पोताने
पाटइं थापी, कहै तुम्हे सोपारक यत्ननइं विचरो । तिहां

बार वपेनइ अनाइ, दुर्मिनाह योगि, लक्ष द्रव्हे, एक
हारी खीरानी विष मिश्रि (२७-१) तथकि मरेणे,
श्रे० जिनदत्त, मा० ईश्वरी, पूश च्यार, उत्तम पात्र छइ,
तेहनइ अभयदान दीओ । इम कहौओ, जे बार हजार
जिहाज युगधरीना भरया चाहण आवस्ये । समुद्रधी
पर दिपपी आवसी । ए उपकार निहा जाई करे । एहवा
श्री गुरुनी आज्ञा लही श्री वज्रसेन गुरीइ विहार करता
हुवा । एहरी श्री वज्रसेननइ युगप्रधान पदवी हुइ । ते
समयइ बीजा उदय हुआ । वीर मुक्ति हुया पड़ी उसइ
सोले बर्षः ।

हवि श्री वीर निरांण हुआ पड़ी श्री वज्रगुर्दानी च्यार
सय अनि पचाणु बर्षे जन्म हुआ । बर्षे आठ गृहस्थ
पणइ रह्या । अनि बर्षे बुमालीस शिष्यपर्णी श्री सिंह
गिरि गुरुनि सेवा कीधी । बर्षे उन्नीस युगप्रधान पद
भोगवु । समुद्र आयु बर्षे अन्वपत्ति समुपनि । श्री वीर
नीवांण हुआ पड़ी पांचसि अनि चौपासी बर्षे गये हूतइ,
दक्षिण दिशि, मांगिया नामि पर्वतनइ विषइ शिलाउपरी
अणशणि, श्री वज्र स्वामी स्वर्ग हुआ ।

श्री वज्र स्वामी नामि वज्रि शाखा कहिवाणी । पुन
हणहिज बर्षे गोपामाहिह नामि सातमो निन्दव मण-
(२७-२) इ हुआ ।

जिम श्री जदु साथि दश बोलनी विच्छेद हुआ तिम
श्रीनर सायइ, चांधु अर्ध नाराच नामा सवयण । १ ।
अनि दश पूर्व २ ए विटु उत्तम बान्नी विच्छेद हुआ ।
महागिरि १ गुरुत्ती २ च गुरे श्री युगसुवर ३ ।
श्यामाचार्य ४ रूकिलचार्य ५ स्वामीमित्रसुरिपा ६
श्रीभम्म ७ मन्त्रगुप्त ८ श्र, श्रीगुप्ता ९ वज्रसुरिपा १० ।
युगप्रधानप्रवरा दसौते दश पूविण । २ ।
चन्द्रकुलसमुत्पत्तिपितामह महाविभु ।
दशपूर्वनिधि वर वज्रग्यामिगुणीभर ॥ १० ॥
अत्र श्री वज्र वर्णन । उक्त च—
किं रूप किमुपागसूत्रपठन शिष्येषु किं वाचना
किं प्रज्ञा किमु निरुहत्वमय किं सौभाग्यभग्यादिक ।
कं वा सचसुमन्नति सुरनति किं तस्य कि वर्णन ।

वज्रस्वामीविभो प्रभावबलधे रवेकमप्युद्धत ॥ १ ॥

ए वज्रस्वामी सवध अन्य चरित्रे विस्तार हे, माटे
लवलेश बढो ।

१४ तत्पट्टे श्रविमसंत मरी ।

तहव भारद्वाज गात्र । गुरु श्रीवज्र-
स्वामीने उचने विहार करता समुद्र तटे
सोपारक पुर पत्तने शालाइ (२८-१) रह्या ।
मध्याने सलहइ गोत्री श्रे० जिनदत्त, तेहनी स्त्री ईश्वरी,
तेहने वेदा च्यार नागिंद्र १ चत्र २ निवृत्ति ३ विद्याधर
४ ए नामि उर । तेहने बरे श्रीवज्रगुरुना बचनानुसारै
भिक्षाधे पुहुता । एतलइ स्त्री मरतार विष मिश्रित आ-
हार देनी साहमी दृष्टि सत्तान बहइ, श्रीगुरु । तुम्ह बो-
न्य निदांवि आहार नहि छइ । ते सामली श्रीवज्रसेन
कई, ए आहार भूमिकाइ शरण करो । गृहस्थ कही,
विषम समइ मर्यादारत गृहस्थनी मर्यादा किम रहइ ।
वज्रसेनजी कहइ प्रमानेनइ समयइ लाबीइ जिहाज युग-
धरी घानि भरी आवस्यइ । ते गुरु बचन सामली विष
होबी भू शरण बरी । व्यवहारीओ जिनदत्त, स्त्री ईश्वरी,
पुत्र च्यार युक्त हाथ जोडी श्री वज्रसेनने बहइ, तुम्ह
महामूनि निरुह जे । जेओ तुम्हाइ बचन सत्य हुस्ये
तओ अम्ह तुम पासै मन छेदसु । ए प्रतिज्ञा हेइ मरा
श्रद्धावत थया । श्री सुरि शालाइ आवी स्मरण करता
बार पहर सपूर्ण हुआ । समुद्री जिहाज युगधरी (२८-
२) इ भरया आव्या । घणो सुभिक्ष हुआ देवी श्री
अभयदानना दाता जाणी जिनदत्त, स्त्री ईश्वरी, नागिंद्र १
चत्र २ निवृत्ति ३ विद्याधर ४ ए च्यार वटा युक्त श्री
वज्रसेन सुरीपासे दीक्षा लीची । अनुक्रमि न च्यार जथा
कनलेख उणा दश पूर्वधर हुआ । ते निरुद्धे आचार्य पदि
कीधा । नागिंद्र १ चत्र २ निवृत्ति ३ विद्याधर ४ च्यारणी
ए च्यार शाखा प्रगट हुई । अनि तिणे चिह्नए विण
एकविस आचार्य कीधा । तेह थकी तेहने नामि बुरासी
गच्छ कहिवाणा । एतलइ श्रीवीर निरांण हुआ पड़ी
पांचसे ब्यासी बर्षे गयइ हूते ए च्यार शाखा प्रगट हुई ।
ए च्यार शाखा जाणवी ।

सीहां थकी श्री वज्रसेन गुरी केनेलक दीने विचरता श्रीसोस्ट देसि मधुमतिहं कपदी नामी वणकर वसेछे, तेहनी घरी आडी १ अर्ना कुहाडी २ नामी वे श्री छहं, पिण ते कपदी तेहनी अमभ १ अपेय २ ए बिहूने अणचार जाणी प्रहार रूपे शिक्षा दीहं छहं । एहवे श्रीवज्रसेन मूर्धन्ये सं वणकरनिं दूषीयो दे (२९-१) धी बहिर्भूमि जातो थकी श्रीगुरुहं कोमल वचने बोलाव्यां कही, २ कपदी ! तु अम्ह पासि आवी । ते कपदी पिण आवी हाथ जोडी उमो रहो । एहवहं श्री गुरुहं आगिम शान करी दृष्टि दीधी, सुलभ बोधी जाण्यो । यली तेहउं आयु घडी २ तुं जाणी गुरु श्रीवज्रसेन कहियो, अहां कोकिल । तुने महाकष्ट देखि छहं । तूं धमे करी पच-साणउ परमाण कर, जिम कष्ट मिटे । ते गुरुहं वचन सामली विनयवंत कपदी कहें, श्री गुरु । ते पचसाणनी मुशने कृपा करो । तिवारे गुरु श्री वज्रसेन कहें—' नमे अरिहंताण ' इत्यादि नमस्कार मुख थक उचारी, पछी कटी दोरानी गांठी छांदि एक टिकाणि बेठां भोजन १ अनि जल लेवूं २ । पछी सीमहीज कटी दोरानी गांठि बांधी । ने गुरु वचन कपदीं अंगि करी, ते धन उचर्युं । एहवहं तिण हिज दिने सपर्य गरल व्याम अमिस खेद तेहनां भोजन हुआ । तेहथी ते कपदीं मरण पांय्यो । पचसाण अंगी (२९-२) कन्याथी ते महिमाहं अणपत्री-पणपत्री मध्ये उपनो । अवधि शानहं णाय्यो, पोतानो पाछिलो भव । नमस्कार सहित पचसाण महिमा मोटो दीसि छे । ह्रीगुरुहं पचसाण शिष्ययो पहिले भोजने तुरंत मरण पांय्यो जाणी बिहं श्री मिलि राजाने पुकारिओ—जे इणि महाभारहं कांडक शिषवी मारीओ । राजाद श्री वज्रसेन गुप्ते राव लेया बेसाया । कहे, तुम्हे साधु थहं किम ए खीनो स्वांमो मान्यो ? एहवे कपदीं पोताने शाने करी छहं । एतले उपकारी गुरुने कष्ट जाणी गामप्रमाणे देव शक्ति पथर शिला निपजावी, आकाश रहयो, सकल लोकने कहें—ए भूख गुरु पर्ये खमारी प्रणमे ! नहि तो आ शिला गाम उपरहं पाहुं छुं । ए गुरु भूख प्रति महा

उपकारी छहं । तिणे राजाहं मरणना भय थकी श्रीवज्रसेनने प्रणमी शालाहं पचराज्या । एतलि कपदीहं मिला संहरी प्रसन थहं राजादि लोक समक्षि ए गाथा कहें—मांसासी मज्जाओ इच्छेण चंचं गंठिमहिण्ण । सोहं नंतुववाओ (३०-१) सुसाहवाओ सुरो जाओ ॥ श्री गुरुने वार्ता, कहहं, महं श्री भगवान ! किष्ठा कर्म कीधा, हम कही, ने तुमहं कृपावंत करुणासमुद्र हिन करी कहां । ते सामली गुरु कहहं—तं पूर्वं भवि मांटा पाप कीधा । पिण तेहनी पर्यावतानी हेतुहं सकल कर्म शालण्ड श्री मिद्ध क्षेत्र गिरिह श्री संवने साह्य्यना कारक थाओ । श्री व्यम परमेश्वरनी भक्तीमां रहओ । ते श्री वज्र गुरुना वचन सामली कपदीं यक्ष हल्यो । कहे, मुज जन्म कृतार्थ हुआ । जे ए महानिर्थनि भक्ति मुजने उदय आवी । ए तीर्थ किष्ठा छे—

यत्र बहुकोटिसंख्यासिद्धिसमुः पुंडरीकमुल्यजिनाः ।
नीर्यानामादिपद ग ययति सधुंजयगिरीशः ॥ १ ॥
एहथी बहुमानहं स्तुति करतो थको ते व्यंतर श्री सिद्धाचली कपदीं नामा यक्ष श्री संधने कृशल कारक हुआ । एतलि विरनि मान एकनाहं कीजहं तओ ओगणत्रीस उपवास कीधानो लाम हहं । काव्यं—
यः पूर्वं तदुवायः कृतः सुकृतलव्वदुरितः प्ररितो यत् (१)
प्रत्याख्यानप्रभावादमरमृगशू (३०-२) मात्तिप्ये यः प्रपेदे । सेवाहवाकशालिप्रथमजिनपदाभोजयोस्तीर्थ-
रक्षा—दक्षः श्री यक्षराजः स भवद्भवता विममदी कपदीः । १ ।

इति कपदीं संबंध ॥

एहवहं श्री वज्रसेन सुदीहं वर्षे नव गृहस्थ पणुं भोगवुं । वर्षे एक सो अनि सोल श्री वज्र स्वामी गुरुनी सेवा शिष्य पण कीधी । अनि वर्षे विण युगप्रभान पद भोगवुं । सर्वे आयु वर्षे एकमाओ अनि अष्टावीस संपूर्णो, श्री वीरमुक्ति ह्या पछी छसयं अनि वीस वर्षे, पुनः श्री विक्रमादित्य थकी एकसो अने आठि वर्षे श्री वज्रसेन सूरि स्वर्ग हुआ ।

एहवे श्रीवीर मुक्ति हुआ पछी पांचसे अनि सीतार

वर्षे श्री सिद्धि क्षेत्रि सा. जावडे तरमा उद्धार कीचो ।
 श्रीवीर मुक्ति हुआ पछी श्री वज्रसेन सूरी चिर राज्ये
 वर्ष छ सय अनि नव गये हूँते; पुनः वीरमर्था १३९वर्ष
 दक्षिण दिशि कर्णाटक देशी दिगंबर नामि सर्व विस्वादी
 सारमे बोलनी परुषण। थापि आठमो ए निन्द्व हुआ ।
 पुनः श्री योन्नीयांन पछी छ सतने वीसे वर्षे श्री
 (३१-१) गिरिनारे सा जावडे उद्धार कीचो ।

१५ तत्पट्टे श्री चंद्र सूरी

तेहनां सलहड गोत्रः श्री वज्रसेने चंद्र शापानो उदय
 जाणी च्यार गुरु भ्रातामध्ये श्री चंद्रसूरीनि पाट थापना
 कीची । अन्य तुण गुरु भाई शालाह रखा घणा गोत्र
 प्रतिबोध्या । श्रीचंद्र गछ एबु त्रीजु नाम कहिवाणु ।

पुनः विक्र० संव० ३७७ वर्षे निवृत्ति फुलि राज
 चैत्र गच्छायि आ० श्री घनेश्वर सूरी । सवालाल ग्रंथ श्री
 सिद्धाचल महार्थार्थो महिमा हूतो । तिवारे वलमी
 नगरे श्री शिलादित्य राजाहं अस्पायु अनि विकल्प घणा
 जाणि ते पूर्वग्रंथ सवालक्ष हुतो ते माहि थकी सार २
 संबंध दश हजारनहं संख्याहं उद्धरीने श्री सिद्धाचल
 महात्म कीचो ।

हविं ब्रह्म द्वीपीका शापानी उत्पति कहइ छइ ।
 आहिर देशी अचलपुर नगरे परिसरं कृष्णा अनि वेन्ना
 एहवे नामरं विहु नदीनी बीचली ब्रह्म नामी द्वीप छे ।
 तिहां च्यारसें अने निगणुं तापसनि परिवारे देवशर्मा
 नामि फुलपति रहे छे । ते मुख्य देवशर्मा आ (३१-२)
 पणो महिमा नभारवा सर्व तापसने विहु पगने पिधि
 उपधी लेप करि सकातिना पर्वना पारणानि दिने बना
 नदीना जल उपरी हिंदी अचलपुरे आवे । ते चमत्कार
 देवी मीप्यात्वी गृहस्थ भोजन देह प्रससा करे । तपस्वी
 महा तप सक्ति चमत्कारि छे । जैननी नीदा करि श्राद्धने
 कहें तुम्हारा जैन माहि कोई एहवा प्रभावक नथि ।
 एहवे तिहा विहार करता श्री वज्र स्वामीना मामा श्री
 आर्य समिति सूरी आख्या । तिवारे जैन गृहस्थे तापसने
 सर्व संबंध क्यो । ते गृहस्थ वचन सामली गुह विचारी
 जे कोइक आंखीना जोगधी कपड टडं पिय तपशाकि

नहि । सुरे श्रापकने तेडी कया ए तपासने रुडि परि
 वि पग घेद जीमाइयो । गृहस्थ तिमज कीचुं अमारो
 हर्ष छइ इम कहैं चयात्कारि देवशर्मा तापस ना २
 कहितां वि पग वणि प्रावमि करी धोया । भोजन देह
 बोलववा लोकवुंद सायइ हूया । पदलेप औंधी धोया
 थकी नदीमां अर्द्ध विचालड बूडवा लागो । तिया (३२-१)
 रे लोके कपड कही निग्रन्दीओ । मुख झापो हूओ ।
 तेहवरं तेहनी प्रतिबोधवाने श्री आर्य समिति सूरी तिहा
 नदी तटि आवी सकल लोक बूड देषता, चिपटी देई
 गुरु कहें—है वैते । अर्द्ध पेलइ पार जाना बाछु छुं ।
 तैतले नदीना बिहू कुल एकठा भिल्या । सकल लोक
 मनि निस्मय हूओ । तिवारि श्री आर्य समिति सूरी मनुष्य बूड
 सहित तापस स्थानि कनरं जाइनद भर्मापदेश देइने
 ने पाचसि तापस प्रतिबोधी दीक्षा दीवी । ते सयवा श्री
 आर्य समिती सुरीना शिष्य हुआ । तेहनी सवाते तेडी
 श्री गुरु संघ सहित शालाह आया । श्री जिनशासनो-
 जाति हुई । तिहां थकी ब्रह्माण गछ हूओ । श्रीवीर
 नीवाण हुआ पछी छसइ अनि इग्यार वर्ष गयइ हति
 ते तापस साधु थकी श्री ब्रह्म दीपिका शावा केहेवाणी ।

एवं पाट पञ्चर सुबी श्री चिरावली सुनि करि धविर
 कया; हवे तेहना शिष्य ते आचार्य केहे छइ ।

१६ तत्पट्टे श्री समंतभद्र सूरी ।

श्री चैताय्य निधी थका किनारह थाडीने विषइ रहइ,
 किवा (३२-२) रहं यक्षनड देहेरे वासो रहें । किनारह
 वनने विषइ रहें । इम जावजीव अलसी निःसृह पणइं
 सकल सूरी छत्रीस गुण संपूर्ण देवी लोकं वनवासी एहवुं
 विरुद दीवु । तिहा थकी चोखु नाम वनवासी गच्छ
 कहिवाणु ।

श्री वीरमुक्ति हुआ पछी आठसइं नरं वीयासी वषें
 चेत्यवासी हुआ ।

विक्र. स. ४२८ वर्षे श्री अनंगसेन त्तर थकी दीछो
 नगरीनी थापना हउ ।

१७ तत्पट्टे श्री वृद्धदेव सूरी ।

श्री वीर. म. ५९० वर्षे श्री माचोपा नगरे पण्डित

जैन छे, ते कहें—इणहींज नगरे जैनाचार्य श्री मानतुग सूरि महा आम्नायना धारक महा विद्यापार निगडी छह । ते सामंली वृद्ध भोजे श्रीमानतुगसूरिने कचेरीइ तेह्या । यारी करे, हे दर्शनी ! महापुरुष छे तुम्हे सासननो महिमा करो । तिवारे श्रीमानतुग वृद्ध भोजेने कहें पग थकी पठ छगे आठील अडतालीस ताला सहीत गाढी मुझ देही करो । राजाइ सहु कचेरीना मनुष्य देयता तिमज कीधु । पठी तिहा थकी उपाडे । ओरडा माहि घाली बारणे ताला देख रक्षक मुक्या । कह्यु, सज्जपणें रहीश्यौ । श्रीगुरु ओरडे बेठा । श्री स्वभ स्तुति तहुप श्रीमत्कामर स्तोत्र कहिता श्रीस्वभ देवनी कीकरी चक्रेश्वरी शक्ति आगी । एक २ काव्यह एक निगड एक तालओ उपाडे हम (३५-१) कहिता थका “ आपा-दकठमुखशूलबेधितगा० ४२ ” ए काव्य कहिता-लीसमु कहिता थका सरे लाठे छ भागी ओरटाना व पाठ बुन्या । श्री सूरि रक्षके पासें आवी उभा । सेकें जेह वृद्ध भोजेने जीनक्या । श्रीगुरु कचेरी आव्या देमी राजा नम्यो । आक्षय्य पामी कहह, धन्य ए धर्म ! धन्य ए दर्शन जैन ! जिहा एहग प्रभाविक महाम्नायना जाण, श्रीमानतुग जेहवा रत्न तयीना आराधक छह । महा निसृह निर्लोभी जाणी, परमार वृद्ध भोज श्रीसि-नः कहह, तुम्हे कीत्ये स्मरण कीधो । तिवारे श्रीगुरु कहे भक्तामर स्तोत्र रूपी श्रीस्वभदेवनी स्तुतीनो स्मरण कीधो । वृद्ध भोज कहै, ते गे । जे स्तोत्रि आठील उदा एहवा मनाम्नाय उ । निगरे श्रीसुरीइ स्वर पद अक्षर मत्र युक्त सभा समझइ प्रगटपणे श्रीमत्कामर स्तोत्र बढ्यो । ते सामंली वृद्ध भोज श्रीसूरिने महामहोजेने शा लाह पधराव्या । ते दिन थरी श्रीभक्तामर स्तोत्रनो महिमा भूमडलद लोकने भिषे विस्तारयो । श्रीजिन शा-सननी कीर्ति हूइ । इति मनामरनी उत्पत्ति जाण (३५ २) ती ।

२१ तत्पट्टे श्री वीर मूर्ति । श्री सुरीय दक्षिण देशी नागपुर नगरे श्री नमानाथ त्रिव प्रतिष्ठयो । एहइ समइ श्री वीरनीर्वाण हुआ पठी आदसय अनि पित्ता-

र्यस वर्षे पुन वि. स. ४२१ वर्षे पश्चिम दिशि छमी नगरनो भग हुआ ॥

२२ तत्पट्टे श्री जयदेव सूरि । इणी सुरीये रणत-भोरनइ गिरि शृगइ विक्र ५७० वर्षे पञ्चमम विरे प्रतिष्ठयो । पुन श्री पञ्चायनी मूर्तिं त्थापि । श्री गुरुद थलेची मरुपरदं विहार कर्यो । तिहा भाटी क्षत्रीयना प्रतिषाधक हया ।

२३ तत्पट्टे श्री देवानंद सूरि । श्री सुरीइ पश्चिम दिशि देवकइ पत्तनइ विक्र. ५८५ वर्षे श्री शो पा न्नाथ त्रिव थाप्यो । पुन पि० ५७१ वर्षि कच्छ देशी सुधरी ग्रामइ शिव अनि जैननइ वाद हुआ ॥

२४ तत्पट्टे श्री विक्रम सूरि । श्री गुरुने मारदा प्रसन हुइ । गुरुजर देशी सरस्वती नदीइ तट्टे एरसठो ग्रामने विषे विमासी चउडीहार तप कीधो । ते नपना महिमा थरी सारदाइ श्री गुरु नमी पीप शीने वृत्त मुकओ । हूओ ते (३६-१) नवपल्लव तीषा । श्री गुरु कीर्ति हूई । पुन श्री गुरु धान्यधार रणि गोला सरह घणा परमार क्षत्री प्रतिबोवी उपकेश कीया ।

२५ तत्पट्टे श्री नरसिंह सूरि । श्री सूरिइ उमगादि पुहकरना तत्पवने कंठ भादा प्रमुन नगरे नरगर्गय अधीमीनि दिनइ महिय बबना व्यतर राक्षस भोग लेता तेहने धर्मोपदेश देह महियना वन मुकाव्या ॥

२६ तत्पट्टे श्री समुद्र सूरि । मेराड देशी कुमल-मेरइ जाति खोमण क्षत्री । ससार असार जाणी गुरु श्री नरसिंह पाप्ति दिक्षा लीधी । श्री गुरुइ योग्य जाणी गच्छ नायक पद दीधु । श्री सुरीइ बाहइमेर कोटवा प्रमुख नगर चामुडा प्रतिबोधक हया । पुन अणहिल पत्तने (३) दिग्बर वाद जीनी वराट नगरे जय करयो । यत उक्त—

सामाणराजगुरुजोऽपि सुमद्रसूरि
गच्छे सशस्त्रस्य प्रण, प्रमाणी ।

जित्वा तदा क्षपणकान् स्वयं विनने
नागहरे गुह्यनाथमस्थती ॥ १ ॥

एहने पि० स० ५२५ वर्षी श्री जिनभद्र गणि

(३६-२) क्षमाश्रमण ध्यान शनकना करणहार मगट हुआ । पुनः एहो छ युगप्रधान मगट हुआ तेहना नाम करे छै—

नागरसि सूरि १

रोस्तासि सूरि २

ब्रह्मविष सूरि ३

नागार्जुन सूरि ४

भूतदिन सूरि ५

भारद्वाज श्रीमालि सूरि ६

एव धर युगप्रधान जाणीत । इर्णा काटिकाचार्य श्रीवीर निर्माण हुआ पट्टी ९९३ उप, कटला एव आचार्य कहै—नरसि अनि ऐसी वष हुआ पट्टी, पुन रिक् ० ५०० अनि त्रेयीस वष गय हूत चौराण कालना विरो कछो । ए पिण श्रीजा काल सूरि मगट जाणत ।

श्रीवीर निर्माण धया पछी एन हजार उपमाहि एकवीस वष ओछइ, पुन रिक् ० ५४५ वष याकिनी महतर तुत श्री हरिमत्र सूरि मगट हुआ । तेहना उत्पत्ति कहै छै—

मगव देसी कुमारीया ग्रामि हारिडायण गोले हारि-मत्र नामइ ब्राह्मण व्याकरण प्रमुख सत्र शास्त्रना वेत्ता रहै छै । घणु ब्रह्म प्रीयाइ करी कुशल छै पिण प्रति-ज्ञावत छै । जे कोई मुन्ह मश्र पठइ तेहना (३३८-१) अर्थ न उपजै तओ हु तेहना शिष्य थाउ । इम चितरी तीर्थ यात्राइ निकस्यो, भृगुक्षेत्रन पम्या । तिहा एकदा सध्याइ नगरमा राजेर जाता धर्मशालाइ सावधी प्रति-क्रमण सपूर्ण आनस्थर सुननी गाथा शुणे छइ ।

चर्फी दुग हरिपणम पणम चर्फी केसवो चर्फी

केसव चर्फी केसन दुचर्फी रसवो चर्फी ॥ १ ॥

ए गाथा उभ रहै हरिमत्रे सामली, शालाइ आनी बहइ—मेा साधरी जी मुह कीस्या आ चिगाचिगायमान शब्द कटो । ते सामली साधरी कह नबु शास्त्र लखइ तिवारे चिग २ शब्द हइ । एहनु साधरी कथक वचन

॥ इति लिखित प्रमाण ३७० ॥ बदले मूलभी ३८० ॥ आक लप्पाएला होनाथी ३७ मा पानानो आक आप्यो नथी.

सामली जे हरिमत्र चितने जे माली विद्याना प्रयास निपट हुओ । ए गाथा साधरी कथक तेहना अर्थ मुझ थकी न उपनो । साधरीने क—२ गाथाओ अर्थ बहो । साधरी बहै—नगरवाहिरे बाबा अछारा मुद रहै छै ते अर्थ रहैस्य । त्रिशं हारिमत्र गहमाहि जाइ मुद यदि, गाथा पठै, अर्थ सामली, प्रणिग सार्णि शिष्य हुआ । योग्य गीतार्थ जाणी श्रोगु आनार्थ पद (३८-३) दइ, श्री हरिमत्र नाम दोधु । श्री सूरिइ तिहां थकी विहार कोषा । श्री हारिमत्र भृगुक्षेत्र मात कान्य रक्षा । तिहां रहिना श्री हरिमत्र सूरिने हत १ अनि परमहस ~ नामि बिह सिष्य सिरामया शास्त्रना पाटी छै तिण गुरू रीनवा—अर्थ बांध भननी विद्याना उद्यम करत बौद्ध दसि आहु । मुह कहै ए नही । तो ही पीण कपट थकी ते बिह बौद्ध मत-नी विद्याना रहस्य लग बौद्ध देशा जाइ बौद्धाचार्य पासे बिह सिष्य विद्या भणत हुआ । एकदा पुस्तोकाइ शा-स्त्रना अक्षरने रिषे बौद्धाचार्यइ सखीना दोनी दोटी । चित्त निचारि जे कोइक जैन छै । ते बेहनी परीक्षा कर-वाने निश्रणानइ पावडीइ जिन प्रतिमानो स्वरूप सखीने पढ थकी आलेखो, मुह ज्ञाने भणावमानइ मेडोइ बैठा । एतले बौद्धना विद्यार्थि स्वरूप उपर पग मुकीने भणवा आन्या । तेहो पाठोले हस १ परमहस २ आव्या । जिन विव देपी सखीना सड थकी प्रतिमा उपरइ जनाइनो आकार (३९-१) करी, तेउपर पग थापी, आनी आचार्य पासे भावा बैठा । आचार्य जाण्यु जे ए जैन छै । अनि बिह सिष्ये जाण्यु जे आचा-र्ये आपणने जैन जाण्यो । मरणना भय थकी पुस्तोका लेइ नभमार्गे विद्यावली पाताना देशि निरक्या ; आचार्ये जाण्यु । बौद्ध राजाने कह्यु—ए जैन मालिम हुआ, आपण मतनी विद्याना रहस्यनी पुस्तिका लेइ जाइ छै । सामली राजाइ सेन चढाव्यु । विद्या मुद्ध करनी प्रथम हसने हण्यो । बीजा परमहस साधि विद्यावाद करता परमहस लडपडीआ आनो २ श्रीभगुजइ शकुनिका विहार तिण बौद्धनो पुस्तिका नाथो । पछी ते बीजा परमहसने

पिण हण्यो । ने बाद सेन आतकाज हुआ जाणी पावाने देसि वस्या । छवि प्रभाते गृहस्थ श्री मुनिमुत्रने दसनि आख्या । दव भदिसणाइ गृहस्थने रनेहरण ३ अनि चुपची २ लावा । ते श्रीहरिमन्त्रने दीधा । गुरु रजोहरण ओलख्यो । बांछ पुस्तीकानि चुपडी ते माही घगकर्णने मन्त्र या (१०-२) ख्यो । श्रीहरिमन्त्र विनियु जे मुन्न शिष्य विहू बाँछ दशी विद्या भणवा गय, तेहन बादे कड करी हण्वा दोम, उ । गियाना रहस्य लइ जाना जाणी हल्या । गुरुने मोष हुआ । शालान यम कपाट करी, तेलपरीत फडाइ खोहनी अग्री चढावी गुरु दत्त पूर आ म्नाय करी, जतल कडाइ करी नापड निगोर बाँछ तपरती चउदशत अनि घुमालीस मन्त्राकभित्त क्षुब्धनीमा स्वि कडाहिन प्रदिसणा दीये छै । तेहर जाकिनी नामि सा धवी, जेहना मुख पर्षी भाषा सामली सार्थीमा जाइ गुरुमुख, धवी गाथाय सामली सपूर्ण प्रतिज्ञाइ हरिमन्त्रे मत लीछु छै; एतले इहाँ याकिनी नामी साधवी ते श्री हरिमन्त्र सूरि ने उपकारीणी हुई । ते माटी या-किनीसुद्ध श्रीहरिमन्त्रसूरी पहराओ विरद कहिवाणू । त श्रीहरिमन्त्रनी गुरुबहिन याकिनी साधवीद उछु ओयु, एत लइ शङ्खनीमा स्वे बाँछाचार्य आवता दीटा । साधवीइ जाण्यु जे कोधना फन कडवा उइ । घणा जीरने असतोय (४०-१) उपना आणी आचार्यनि कोधनी सातिनद हति शिज्जानरी श्राविका सायड लेई साला द्वारि उर्भ रही गुरु प्रतिकह—एक पवित्री जीरना घात अगोण धकी हुआ तहनी आलोयण करो । निवारइ सालाद रद्या गुरु बहे—पच कन्याणक तप अनि उपवास दस चउविहार कया छै । पचल विहू उपवासो एक कन्या णन तप जाणवा । पच कल्याणन तपनी आत्रेयण तुम्ह ने आवी । ते सामली सार्थी बहे—अजाणपणनी एवही आत्रेयण कहा छै, निवारइ जाणपणाथनी घणा पचै द्रीय जीरना यधनी आलोयण कीसी हुइ ? न सामनी गुरु कहै—ते बहयु रयु । गुरुने काथनी साति हुइ । बोध सपला आकर्षी त जीबता मुन्त्रा । ए असार स सारे कुण गुरु नृण शिष्य इम जितवी रचवित थकी कृत

पाप शुद्धिनइ देतो आकषित बोधनी सल्याइ चउदशत अनि चउमालीस प्रवर्ण पूजापचाशक प्रमुख, एक २ पचाशक गाथा पचास = (४०-२) हुइ एहवा ५० पचाशक, नीस अष्टक, सोर गोदस, पुन आवश्यक वृद्ध-उर्नि वारन, विक० सं० ५६० वर्ष श्री हरिमन्त्र स्वर्ग हुआ । इणि परि श्री हरिमन्त्रसूरी हवा ।

पुन श्रीहरिमन्त्र सूरीना भाणज श्रीसिद्धि उपमिति भय प्रपचा १ श्रीचक्रकेरली चरित्र २ श्रीविजयचक्रकेरली चरित्र ३ ना करणहार स्वर्ग हुआ ।

इति हरिमन्त्र मन्थ ॥

२७ तत्तट्टे श्रीविजय प्रममरी ।

पहवइ श्रीवीरमुक्ति हुआ पड़ी एक हजार अने चउद रयं गयद हुतइ पुन रियम० ६०१ रयं गय हुतइ मालदेशी धारनगरइ श्री सम्मति धयना करणहार श्री मन्त्रादी सुरी मगद ह्या ।

पुन एहो अवसरि आचार्य श्री बप्पमन्त्रसूरी मगद ह्या तह

बप्पमन्त्र सूरीसवध

कहै छै । सुमारइ वैशि गोपाचलनी तलहडीद गोपनगर बसे छै । तिहां चहुआण श्री जाम राजा राज करइ छै । एहेवे अससरइ श्री भारद्वाज बसि प्रणवाहन कुल्ले हर्ष पुरी (४१-१) य गडि आचार्य बप्पमन्त्र सूरी विहार कर ता जाया । श्रीगुरु उपगारापणे धम्मकथा कहै । तिसारइ श्री आम सघ सहित गुरुप्रति वीनती करे, जा तुम्हे महा साधु छै । भव्य जीवन पवित्रनइ हेति जगम तीर्थ छै । १ मात्र इहा गोपनगरे चुमासे तुम्हे अरुदय रहिछु । गुरु कहइ जिहा लगण तुम्हारि सुदृष्टि हुसि तिहा लगण रहिस्यु । इम कहौ श्रीगुरु चोमार्त रद्या । आम प्रमुख सय श्रीगुरुनी बहु विविध मति साचवई । निरतर गुरु वादी गुरुमुखे धम्मव्याख्या सामन् । गुरुवाणी रजितथका परम जेन राजा हुआ । एकदा पूर्य तीर्थनद दिने आम राजानी स्त्री नीला वस्त्र सिणगार पहरी गुरु मुख आगली गृहलीद स्वास्तिक करइ छै । तिहा पगळे २ गार २ मुक्ति

मरकलडा धरद । तिरारद आम राजाद शुभ श्री वप्प
भट्टने पुत्र्यु—

वाल धमवतिण एण कणह कीम महमगा ।

तदा गुरु रह—

नून रमणापणस महय्या छरद महे भग ॥ १ ॥

(४१०)

ए वचन सामली राजा भग्न मुल हुआ । एण
श्री गुरुने मुक्ताकणि वधारतां नील वस्त्र देयी अवस्थाई
वस्त्रना तेजहीणने अंग नीलावस्त्र उपरि श्री मुद्रिनी तिहा
दृष्टि रही । तिहा आमनि पिण न्नि हू । वित्तस्यु सदह
हू । ज साधुनी इति नाणे सिंगमार उपरि रही ।
ध्याव्यान सामली घर आवा राजाद गुरुनी परिक्षा जा
दान अर्थि पाताना घरनी बडा दासानइ नाला सिंगमार
पहिराणि, रात्रि महर सभ गया पउ, शास्त्राद गुरु पासे
माकली । जिहा रात्रि वप्पभट्टि सवारा पारसी कही
सधारइ सथायो छ, तिहा आनी आचार्यना चरण स्पर्श्या ।
कामल हाथ जाणी गुरु कहइ—ए पुण श्री ? तिरारद त कहइ
हू राजानी रागा तहनी मुख्य दासी । राजानी आज्ञा धनी बहा
हुम्हारी भक्तिमा आनी उठ । गुरु नीरादरद निभन्नी
कादी । ते दासी भग्न मुल धइ आम पासि आग
सर्ज स्वरूप रह्यु । एव (४०-१) आ गुरुद उपयाग
वता थका धर्मवथाई नीला वस्त्रना उपयाग हुआ ।
आम मने सदह जाणी गुरुद्रिनी भक्तिमा पूर्ण हू ।
प्रभावना पडीकमणनी क्रिया साधनी गतुक मनी हूया ।
निहार करता थका खडीना पड थकी शास्त्रने कारण ए
गाथा लीयी—

दो तुवडाइ हत्ये जयणे भम्म अखराय चत्तारी ।
वीउल्ल मरहवास को अम पहुत्तण हरइ । १ ।

आम अनि अग राजाने माहो माहे विरोध छद,
तेहनइ नगरद आव्या । निणे आम गुरु आव्या
जाणी घणो आदर देई, बिहू हाथ जाडा कइ—ह
पूज्य । जिगरी आम अत्र तहमा आनि तिरारद
आमनगरद जाउ, नहीं तु नहीं । एहरी भक्तिमा करी
तिहा रया । एवइ ग्यान् नगरे गहल्य प्रातकात्रि दय

दर्शन करी शागद आया, गुरु नहीं । नगरद तारा हई
पतइ आम राजा पिण आया । शाग जाता वारणीए
ललीन गाथा देयी । आम राजाद रावी, दासी माक
ग्यानी वार्तां सामगी । मनस्यु (४०-२) पक्षानाए
रग हूआ—मुल उका अगना हई । कतय दिन गुरु
प्रति तीननी कहाई । तिरारद गुरु धम नद जाणा
कहिराड्यु, जे हुम्ह वय परिवर्तइ आरग्यो । तिरारे नाक
रूप आम राजा कापडीना उद धुसर मनीन हू,
मनके आम्ह पत्रना ओगआ धरी, बिहू कान ऊररी हू
अरी पत्र थापा, पुन बिहू हलर माहि बीयोगाना पत्र
झरी, सानु नगरी भिहा गुरु, तिरारा राजा सहित, सय
समक्ष, याव्यान रहइ उइ, तिहा उतायग आग उभा
रह्या । आचार्य आम आल्लयो । सहसु जा अ नर
द कहइ—“ आम । आरओ, आम । आरआ त
सामली—सक सभा महा धुमर रुप देयी, आमना
ज्ञा राजा ते श्री गुरुने पूरै—ए पुत्र्यन मन्त्रके क्रियु
तेवारद गुरु क —ए आल्ल । ते सामली तिरापी
राजा पुन पुठै—ए पुत्र्यने कानइ क्रियु ? तिरारद गुरु
कहइ—तु अरि । त सामगी तिरापी राजा गुरु
आमनद कइ (४३-१) विहरति ए समस्या गुरु
कथक सामगी शाला बाहिरद आम नीकनी कारण
सडीना पड थकी ए श्लोक लिप्या

मिर गोपपुरे रम्य प्रभे । तत्र पधार्यता ।

सभामये समागत्य, प्रतिज्ञा पूरिता मया ॥ १ ॥

सक लाक दलता ए श्लोक लिपि आम पालानइ
धरे आया । बीज दीने सय तथा राजा पासे गुरु
आज्ञा मागी । अहे गोप नगरद जात्यु । तिरारद
आमनो शत्रु राजा कहइ, अिरारद तूमनइ तेदग आम
आनद, ते तुझाए वचन । त सामगी गुरु कहइ ।
त ना का वान्णन माहि आपिन गया । तिरारद
विरोधी राजा करे हुम्ह मुचन कथो नहीं । गुरु कहै सय
समक्षइ मद्र कह्यु न । आम । आवा आम । आया ।
पुन हुम्ह पुत्र्यु ज ए पुत्र्य मरन क्रियु, तिरारद अम्ह
रह्यु जे ए आम्ह । पुन हुम्ह पृष्ठ्यु, ज काने स्यु,

अमे कह्यू जे तुअरी । पुन तुम्हे कह्यू जे पहना हाथ
माहि स्यु, गिरारे अम्हे कइयो, न ए बीजारा । एतजे
(४३-२) आघने नामि आम राजा जगिवा । पुन
तुअरि कहिता ताहरो ए शत्रु । पुन. बीजोरा कहिता
तुम्हे राजा ए पिण राजा । ए श्लोक पिण पूर्ण प्रतिज्ञाना
घारण्ड सकल लाक देवता लिख्यो छ । ते सामली आम
शत्रु विचारि, ज शत्रु साफेड आय्यो हुतो पिण तहना
पुन्य भरी कुशले गयो । प्रतिज्ञा सपूर्ण, सगज्ञा लेई गुरु
शालेर नगरे आय्यो । आम राजाद झाडा मद्दाले
पराय्या । महा हर्ष पासी श्री बापभद्र सूरिने मुष शर
न उचर्यो । एकदा गुनद आम कहद—गुह्म श्रीगु ।
मुझ उररि कृपा करी काइक ए जीव प्रये सुकृत कहो ।
गिराद गुरु कहद आ असार ससार तेहेने विषद दाय
रहित श्रीजिनसर, तेहनी भली, तेहिज सार, जेह यकी
माणिन सद्रिने हुई । यत.

०८ तत्पट्टे श्रीमानन्देन मरी ।

पोतानी दही अममानी पण्ड चित थकी श्री सूरिमत्र
वीसरि गयो । कतलेक दिने श्रीसरिनः समार्थी हुई ।
तिगारद श्री गुरि (४४ २) गिरिनार पर्वति आनी
बिमासी चउरीहार तप कीधओ । अवीका आनी कह—
ए किम ? निगम गुरि कह—मझ दही असमाधी सूरिमत्र
मुझ चित थकी गीमर्ष गयो । न सूरिवचन सामली
दयाद श्रीसुरिमत्र मभारी विमया देवीन पूरी श्रीगुरिन
मा रक्षो—

विद्यासमुद्गरिभद्रमुनीप्रमित्र
सुरिवर्मद पुनरव हि मानदव ।

माद्यान्प्रयानमपियानगऽसूरिमत्र

लेभेऽविकामुल्लगिरा तपसोऽभयन् ॥ १ ॥

०९ तत्पट्टे श्रीजयानन्द मरी ।

तुअरने दीर्घा थकी चट्याणे वाढ्या। पुन वि० स.
१५२ वर्षे श्री नांदोलनगरे श्रीनमि विंश सूरिइ प्रतिप्रथी।
एहनद अमरने दडनायक श्रीमिल प्रगट हूओ।

मिललनो संवेप कट्टं उड।

श्रीगुनंदसी वडीयार घडि पचासरा ग्राम थकी आर्वी
नई नारडो वनराज पि० स० १९५५ वर्षी वनोदनगर
वसावी रव्या। पिण चिहु दिशि भयकर वन देवी उदासी
हैं। तिवार (४१-२) इ श्रीगीर निराण हुआ पटी
बारसह अनह विरोतरी यं पि पुन वि० स० ८००० वर्षी
अणहिल्लवाडओ पाटण वसाय्यु।

तिवारइ मिललना वृद्ध पितानि ग्राम गाम् थकी
तेडी लावी श्री वनराजि पाटण मध्य वसाय्या।
तेहना वसामा मो० दो० वीरो तहनी माय्या वीरी कुंति पि०
स० १४५ वर्षे मिललनो जन्म हूओ। अनि वयं ८
थकी माई वर्षे ११ ताहं हाति व्यापार कीबु। यं
१३ मे श्री धर्मवोप सूरिनो उपदस साभली श्री पत्त
नाथीस श्री भीम राजाह बाण प्राकन जाणी प्रवान पद
दीयो। यं...४ देश साच्यो। इ दस म्हेछ छत्रोदालिक
सकल भूप चूडामीण विरुधभारक चत्राडलि आरासणि २
नगर थापक। पुन वि० स० १८८ वर्षी श्री धर्मवोप
सूरी नागिद्र १ चद्र २ निवृत्ति ३ विवाधर ४ प्रमुप
सकल आचार्य मिलि श्री अर्द्धदेववि नरीन प्रासादका
रु। तन्म ये श्री वागनाह क्षेत्रपाल दत्त श्री रुषम विव
स्थापक। पुन. आरासणी श्री नमि विव स्थापक
(४६-१) अन्य एकादश शत महाप्रासादकारक,
अर्द्ध हज्जार जीर्णोद्धारकारक, एहैं पि० स० १९१
वर्षी गीरीनारासत्री श्री जीर्णदुर्गाधिपति श्री राय त्रिगा
रना जन्म हूओ। पि० स० १८९ वर्षी पोर उणिक
प्रति द्रव्य देई मिललद द्वादश गोंत्र प्रति प्रागवाट कीचा।
पि० स० १९१ वर्षी सोमपुरा वाडवने विमले द्रव्य देई
शिलावट कीचा। वि० स० १९३ वर्षे दडनायक विरुध
धारक श्री मिलल स्वर्गा हूओ। यत.

नागिद्र चद्र निवृत्ति विवाधरप्रमुखसवेन।

अभुंदकृतप्रतिष्ठो युगादिजिनपुण्यो जयति। १।

मिणहिज मित्रा ए सकलाचार्य मिलि पाक्षि चउदसि
दिन थापी।

इति निमलंतपति।

३१ तत्पट्टे श्री यशोदेव सूरि।

त गुज्ज देसी वालिम नगरइ, नागर गाडन वाशिक
गोंत्रि, वि० स० १९५५ वर्षे जन्म हूओ। एहवइ
वि० स० १८२ वर्षी

श्री यशोभद्र सूरि

प्रगट हया। तेहना सबब कहैं छे।

श्री साबर गच्छे श्री ईश्वर सूरिइ पोतानइ पाटि पद
दवाने वद (४६-२) री देसी आराधी। ते आधी कहे
अर्द्धपासनि रोहार्धवे पंगसी गामी प्रा० नारायण गोत्रि
सापुनी भाय्यो गुणी तत्पुत्र सुधर्म वयं पावनो उड। ते हवणा
पोसालइ भणि उः। तिहा पुं कम्मना योगी कोइक गाडव
पुत्र स्वडीओ पाटी पत्तति स्वाभिके मुकी घरे जिमया गयो।
एतलइ सुधर्मइ तेहनो घडीओ लीवो। पाउं मुकता अफ-
लाणा, भागो सडइहुआ। एतलइ ते वाडव पुत्र आव्यो। बालके
कहा ताहरो घडीयो सुधर्मि पद २ कीचा। तिवारइ वाडव
पुत्र इहइ तेहिज घडिया लेउ। मनुष्ये घणुज वाच्यो
पिण न रही। गुज मरवकनी तूवडी ते मय्ये शालिना
नदूनन करवउ थाउ तओ हू वाडव। सुधर्म कहइ
हू भूओ तूजे मान तओ हू वणिक। विहू एहरी प्रतिशा
नी ही ३०। ते सुधर्म ताह्ण गउ पाटनो उदयकारी छे,
एहवउ कही वदरी देवी अलोप हइ। त नवी राणी
साभरी श्री ईश्वर सूरि रोहाइ लड्ड पावसी ग्रामे
आग्या। तिहा देसीने भेरणाइ (८७-१) सुधर्म गुह
राणी सामली दीक्षा लीवो। तिहा थकी श्री सुरी मडा
हडई नगर आव्या। पुन. वदरी देवी आराधी। देवी
कहे इहा सुधर्मनइ पदवी दीओ, हु तेने सहा-
यकारी छु। गुह देवी उचन थकी मुडाहडइ नगरइ
तिणहीज वडी ए पद देई आ० श्री यशोभद्र सूरि नाम
दीधु। तिणहिज घडीइ नित्ये आठ कवल आहारना
अभियह भारक श्री आ० हुआ। श्री वदरी देवी भक्ति
साने तिहा थकी मिहार करता गुह श्री ईश्वर सूरि।

श्री यशामत्र मुरी २ बीहू पाली नगर चाउमाम रखा ।
 निहां निरतर आ० उत्तर दिशि मयं देवनो मसाद
 छह नेलिज दिशि देह चिताइ जाई । महा तपसी जाणी
 श्री दीवाकर आचार्यनर प्रमत्र हुआ । आ० नर
 कहइ, कांठ वर मागी । तिसार आ० यशामत्र कच्छ
 मकल वांछिन द । मयं देव बलि, हस्यइ । गुन शिष्य
 निहां निर्मित्र रह छह । एतइ गुन श्री ईश्वरी मुरि
 मयं हुआ । चउमामइ सपूर्ण विहाण काना श्री य
 (४७०) शामत्र मुरी वलीभट्ट गुम्भाइ महिन मंररा
 नगर आया । निहां श्री सूरिना उपदेशी पासण
 गोत्र दौ० धनराज विक० सं० ९६९ वर्षि मासाइ नीप-
 जावी श्री श्रीयास विच थाप्यो । पुन इणहीज वर्षि
 मुद्राहइ नगरइ श्री सूरिना उपदेश थकी सिद्धीआ
 मासाइ हुआ । निहा साहमी गत्यर्थ साइरा नगरइ
 वीहं हइ रयां । दा० धनराज गुम्नइ धीननी तरइ
 जे घुत नही । श्री सूरिइ वीर विद्यानइ माभमि करी
 पाही थकी घुत अणावी साहमी प्रगल्ह, श्री गुरुनं
 कीर्ति हइ । पछी दिन प्रीति साइर थकी दौ० धनराज
 धीनीं द्रव्य लेइ पाली नगरइ आनी कहइ धीनो द्रव्य
 लीओ । ते कहइ धी कुण काम आय्यो । दौ० धनराज कहं
 मासाइनइ ओअइ साहमि यछनी काम आय्यो । त
 यहस्य हाटमा जाई धीना ठाम जूइ । धीना ठाम
 ठाली दीडा । एतलइ व्यवहारी बहे ए द्रव्य गुहं
 सुकून करी । इणि धनराज पालीमध्ये सुकून वीधु ।
 निहा थकी श्री सूरिइ आ (४८-१) हइ, लमणूर,
 कहेटन, कविलाण, भेमूर प्रमुष नगरं घणा भिष्याति
 प्रनिवाशि श्री नाइगई नगर चउमामसि आय्यो । एत-
 लइ निहा पुन कलहकारी प्रतीशाचारी पहिलानअं
 वालिमन दुसालइ अग्रना अमावसी कानफो-
 योगीनां शिष्य हुआ । मलीन बीद्या सील्यो । केतलेज
 दिहाइ पाछो घर पलासी गामइ आय्यो । रणिज पुत्री
 सोध काना जिहो नाइलई नगरइ शालाइ गुन व्याख्या-
 न कहइ छह तिहा आनी मस्तकनी जग उतारी सार्प
 बीधो । वास्यानना त्येक वीहता हया । ततलइ गुन

मुत्ताका री पुनला भित्र चित्ती उल्लग्या । एतले श्री
 गुरीइ नदरी देवी समरी, गुम्परी पाई तेहना खड
 खडइ नऊल प्रगट कीधा । नर थकी पत्रग नाठा ।
 योगी स्थान वदनर नाठा । पुन मासादनी राद हुआ ।
 गुन बानि नगरी थकी तया पहलापु थकी वाचन वीर
 नर प्राक्का श्री स्वभ मासाद आय्यो । योगीइ शम्भ
 मासाद आय्यो । नर मासाद थग्या । पडिल मार
 नर वसि मज योगि (४८-२) करि प्रतिमाना मुष
 गाका कीधा । मरे गुम्ने धीननी करी, देवदर्शनि
 कोई मनुष्य न आरइ । निगरि गुम्न अग्रतज जलकुभ
 मयी विचनर पपाइ कीस । विच मूत्र न्यो हया । पुन,
 मासादना थाभा तथा पात्र डगामग डगमगता जाणी
 गुम्न दन आमाय थकी पथगनइ पाटि मत्र लिची सकठ
 मासाद भिग रीधो । गुम्न शम्भ मासादनु इहु मत्र बलइ
 पाइयु । श्री जिन शासनना जय ० कार हुआ । श्री
 गुम्नी कीर्त हई । इम जटिलन अनक पादि जित्या ।
 जटिल देश नगरिमां फिरइ ।

मस्तकमा मणि छह । त गुम्न मरण हुआ पछी
 मस्तक माई उरही लेग्या । त पछी मुज दहनइ
 अग्निस्स्वार करग्यो । तिणर शिष्ये तथा सय तिम-
 टिज कीधु । केतलन दिन तिणें योगीइ गुन मरण
 जाणी पुन सकतइ आनी दुधपात्र भरी बगलो गुसइ
 रयो । गुरु कथक कम्पकना थहि उपरिं थदुओ
 कीधा । बदरी देवी बहि पडवाइइ प्रदिक्षणा दीये
 छह, एतलि निजे योगी वर्षा वायुनी उत्पत्ति किधी,
 जाण (४९) इ न मस्तकनी पोपरी लऊ । एतलि
 बदरी देवीइ वायुनई जाणि पोतानी शक्ति थकी योगि-
 नि उपाडी नहि माहि गुरु एकट नाथ्या । त मरण पांभी
 श्री साइर गउना रसत्रालओ यक्ष हुआ । थकी गुन
 चिताने नमी स्वस्थानिके मुद्राइइइ नगरइ भापी । श्री
 गुम्नी प्रतीक्षा बदरी देवीनी साहाय्य भयी भेष्य हई
 इणि परे वि० सं० ९७१ वर्षि श्री यशामत्र दं

हता हुआ ।

यन — हुआ १ दिग्गामी द

चउथा यशोमन्त्रसूर ४

ए त्रिहु कालि प्रणामता

दूरीय प्रणास इदुरि ॥ १ ॥

इति साडेर गठे आ० श्रीयशोमन्त्र सूरी सत्रध ।

३० तत्पट्टे श्री प्रद्युम्नसूरी ।

श्री सूरीना उपदेश थकी पूरं दिसि सतर प्रासाद
हया । ११ ज्ञानना भडार लिखाया । सात यात्रा श्री
समित गिरिनी श्रीसूरी कीधी ॥

३१ तत्पट्टे श्रीमानदेव सूरी ।

श्री सूरीह श्रावक श्राविकानह हेतुह उपधान वहि
वानि विद्या प्रगट कीधी । ए विहुनआ अल्प आयु
जाणियओ । (४९-२)

३४ तत्पट्टे श्रीमिलचद्र सूरी ।

तेहने श्रीप्रभावतीना साहाज्य थकी चिनकूट पर्वतह
स्वर्णसिद्धिनी प्राप्ति हूई ।

३५ तत्पट्टे श्री उद्योतन सूरी ।

पूरं दिसि श्री समेत गिरिनी यात्रा पाच करी । ए
तीर्थ कहेवआ उई । यत —

विशाल्यास्तित्यकरैरजितदिमिर्यत्र शिवपर प्राप्त ।

देवकृतस्तुपगण स जयति समेतगिरिराज ॥ १ ॥

पुन एतलह सामल्यु, ज अर्जुनाचल उपरि निमल
दडनायके श्री स्वभ विव थाप्पी, तीर्थ प्रगट कीधी
जाणीनाह श्रीसूरी मनिस्तु चितवह जे—

अष्टवष्टेपु तथैपु यत् पुण्य किल यात्रया

आदिनाथस्य देवस्य दर्शनेनापि तद्भवत् ॥ १ ॥

ते माटे आबू, नदिय, बभणवाड, दहिआणक
प्रमुष इणि नेत्रि न निहाल्या, एहवा हर्ष सहित श्रीगुरु
तिहा थकी विहार करता थका आवूनी तलहड्डि नली
नामह गाम, तहनी समिह, मोटी घणी साधा युक्त
बडवृक्षने विस्तार देपा, उष्ण कालह, शीतल छायाह
श्रीगुरि तिहां निश्राम्या । एतलह श्री सत्रावृत्ति यज्ञ
प्रगट हया । मसन्न प (५०-१) णि श्रीसूरीने वटह
आ शुभ घटिजा नद, त माटे मुम्हे छुल्ला सियने
आचार्य पद दीओ, तआ आ बड वृक्षनी परि अपड

शापाद करी विस्तार उदय हूह । तिवार श्री सूरीह
दण कयक थकी श्री वीर निर्माण हया पट्टी चउदसह
अनि चउसठि वर्षि, पुन नि० स० ९९४ र्षे श्रीसर्वदेव
सूरी, प्रमुष आठ आचार्य स्वराटि थाप्पा । तिवारह
तिहा थकी वडने अहिनाणि पाचमो उड गउ एहवो
नाम प्रसीद हूओ । पिण ते सवत्रा गुप्त माई शालाह
रखा । तिहा थकी महिमाग तीर्थनी यात्रा करी
अझारी नगर आया । तिहा सप्तति निर्मापित श्रीवीर
प्रासादि डोकरा शिष्यने योग्यजाणी सरपद देह श्रीवर्द्धमान
तीर्थकरना प्रासादनि अहिनाणि श्रीवर्द्धमानसूरी नाम दीतु ।
गुरु कृपा जाणी श्री सारदाह बालिका रूपे गुहलीये स्वस्तिक
कीधी । गुप्तमान हूह । मा० सा० राके पदात्सव कीधी ।
श्रीगुरे तहनी गूजरी विहार कीधानी आज्ञा दीधी । श्रीसूरी
नीत्य एक भुक्ति जाण (५००) वा श्री उद्योतन
सूरीना मेदपाटी धाउल नगरि स्वर्ग हूओ ॥

३६ तत्पट्टे श्री सर्वदेव सूरी ।

श्री सूरी पिचरता भरुअधि नगरि आव्या । तिहां
कान्हेडीओ योगी श्री गुरुन गुहस्थना बहुमान दधी
कोरि करी ८४ सापना करड लावी शालाह पाद
करवा आवी बंठो । तिवार श्री सूरीय ते देवता जिमणा
हाथना कनिष्ठागुलीह करी पोतानि बिहू पासह भूमडल
बलयाकारे जिण रेवा कीधी । एतल तिण ८४ सर्प
करबीह थकी वादी गुरु साहमा मुक्या । ते रेवा त्रिणताह
आवई पिण आगिले न आयइ । पाडा कडीह आवी
बईठा । पट्टी तिण जडिले कोधि करी वशनलिका
थकी वादी सिद्धीओ सर्प महा निपाकुल गुरु साहमा
मुक्या । त रेवा त्रिणसूधी जाट पाटो आया । एह
चउसठि यागिणि माहिली कुरुकुलानामि दनि त भर्म
शाला गहिर पियली वृक्षह रह उ । तिणे गुरुने उग्र
तपस्वी जाणी तिहा आवी सिद्ध सापनी दाडा बभ
करी । यांगीगुरुन नमी पोतानि स्था (५१-१) निबइ
गया । श्री गुरुनी कीर्ति हूह । पुन श्री गुरुना उपदेश
थकी नि० स० १००२ वर्षि सत्तारीस प्रासाद हूओ ।
मतिष्ठया ।

३७ तत्पदे श्रीदेव सूरि ।

श्री सूरिन हलारदेश स्वामी राजश्री कर्णसिंही
रूपश्री विरुद दीधु । पुन जेहना उपदेश थकी ओ०
कुर्कट गोत्रि स० गोपि नव प्रसाद कीधा । पुन चउ-
दशत एक श्री जिन विष धातु पट्टिकाइ भराव्या ।
दक्षिणे नासिक नगरे श्रीचंद्रम प्रसादे जीणाद्वार हूओ ।
पुन वि० स० १००४ वर्षे श्री रामसेन्य नगरइ श्रीर-
घम प्रसाद हूओ । पुन श्री सूरिये मालवदेसिं धणा-
पार गृहस्तने प्रतिबोधिने जैन प्राग्वाट कीधा । वि०
स० १००७ वर्षि शागनि स्थिति हुई ॥

३८ तत्पदे श्री अजितसिंह सूरि ।

श्री सूरिना उपदेश थकी मेवाळ देशी प्रा० दौ०
रगनाथी सत प्रसाद नीपजाव्या । पुन वि० स०
१०१० वर्षि श्री रामसेन्य नगरे श्री रूपम चैत्ये श्री
चंद्रम स्वामी विंव प्रतिष्ठा हुई । (५१०)

युक्त—चारित्र्यद्विधिविज्जिनगमा-

दिवाय मव्यानभित प्रवाधयन् ।

चकार जनधरशासनोन्नतिर्यं

शिष्य लब्धामिनवोषु गौतम (१) ॥ १ ॥

नृपादशाप्र (स १०१०) शरदासहस्रे ।

यो रामसेन्याहूप चकार ।

नामेयचत्पऽष्टमतीर्थराज—

विंवमतिष्ठा विविपत्तवद्रव्ये ॥ २ ॥

चद्रावतीमूपतिननरूप

श्रीभुक्तमत्रिणमुचरुद्धि ।

निर्मापितातुगविशान् चत्य

योऽदीक्षयत् शुद्धगिर प्रवाध्य ॥ ३ ॥

एहव वि स १०२८ वर्षि आचाराग सूत्र १ सुगढा
ग सूत्र २ नीकाना करणहण श्रीशीलाचार्य प्रग्न हूआ।पुन
तिणहीज वर्षि नीवृत्ति गटे अनरु अथकारक श्रीदा
णाचार्य प्रग्न हूया। पुन मालव देसिं उज्जोणि श्रीलुध
भाजरजाना राज्य हूआ । तहनइ वेनइ वीरनारायणि
वि स १०७७ वर्षि सिक्काणे गढ वसाज्यो । पुन
एहव वि० स० १०९४ वर्षि, श्रीवडगड श्रीनृमुभाजदत्त

वादीविताल विरुदधारक थिराद्रीह चहुआण क्ष (५२ १)
नी प्रतिबोधक श्रीज्ञाति सूरि प्रगट हूआ । श्री
सूरिये चक्रेश्वरी १ पन्नावती २ ना साहाज्य
थकी छवठण (१) पाणि वि० स० १०९१ वर्षि
सातसें श्रीमाली गौनन धुलिकोट पडतो कह्यो । एतलि
श्रीसध रक्षक, उत्तराध्ययननी वृद्ध टीका आदार
हजारना कारक, पुन जीविनचार प्रकरणना कारक,
कानोहडा नगरइ विरुम स० ११११ वर्षि श्री शाति
सूरिनी स्वर्ग हूआ । पहवइ वि० स० १११७ वर्ष
वडगडइ श्री चक्रेश्वरइ च्यारसया अनइ पनर राज
कुमर प्रतिबोध्या । पुन धनपाल पढिते श्रीरघम पचा-
शिका । १ । देशीनाम माला कीधी ।

३९ तत्पदे श्री यशोभद्र सूरि ।

लघु गुरुभाई श्रीनेमिचंद्र सूरि ।

एहवइ डाकरा आ० गुरु आ उद्योतन सूरि आशा
लही श्री अज्ञाहरी नगर थकी विहार करता श्री गुर्जरद
अणहल पाटाणि आवी श्रीवर्द्धमानसूरि स्वर्ग हूया ।
तेहना शीष्य श्रीजिनेश्वर सूरि । पाटाणि राजा श्री दुल्लभ
नी समाइ कूर्चपूरगच्छीय चय (५२२) वासी साथी
कास्यपात्रनी चरचा कीधी । सिंहा श्रीदशविकालिकनि
चरचा गाथा कहिन चत्य नासीन जीत्या । तिनारइ रा
जाश्री दुल्लभ कह ए आ० शाळाउसार सर बोल्या तह
थकी विक्र० स० १०८० वर्षे श्रीजानेश्वर सुरिइ सरतर
विरुदलादो । तहना सिष्य श्रीजीनचंद्र १ लघु गुरुभाइ
श्री अमयदव सूरि २ । तत्पदे श्रीजिनवल्लभ सुरि हूया ।
तिणि थिरकूट पवति आवी श्रीमहामैरनज्यो छठको
कन्याणक परक्या । पुन दादसा, छयासीया ग्रथ नीप
जाव्यो । एक शत अनि चात्रास बाउद करी सरतर ग
छनी समाचार थापी । जहना शिष्य श्री जिनन्त सूरि
हूया । तहनो सवध कहइ उद—

विक्रम० स० ११३२ वर्षि ग्रम । एहनि श्रीजय
सिंह द राजा जन्म हआ । वि० स० ११४१ वर्षि
दीक्षा । विक्र० स० ११७० वर्ष सुरिपद । श्रीसुरान्
तपसा जांणी चउपट्टी यागिणी, यथन धीर, पून

पार ए सदैव श्री गुरुनि भक्ति साचवई । एकदा श्रीगुरु
विहार करता श्रीगुरु (५३-१) देशी वडनगरं आल्या ।
तिहां संघ घणि मक्ति साचवई । श्रीसंप्रति निर्मापित
श्रीमहावीर प्रासादि घणा खात्रि, अष्ट प्रकारी पुजा,
अष्टोत्तरीइ पंच शब्दा सदैव ह्या । तिवारद मिथ्यात्वी
वाडवई जैन महिमा जांणि कोडक त्रिवाडी वाडवने चं
होकरा गो करेरीडी जर्णने मृत्यु पायी । डेघ थकी ते
वाडवे गो शव रात्रि एक द्वे मिली उपाडी लई गुप्तपणइ
जिनघरे मूळी । सुप्रभाति शिष्य जिनदत्त दर्शनि आल्या ।
प्रदक्षिणा करता गो शव दीटो । सुस्त आवी गुरुन
फळो । गुरे उपयोग देई जायु । मिथ्यात्वि ध्यनर पिण
नही । मिथ्यात्वि वाडव जाण्या । श्रीगुरुदेव वरनी
मोटी आसतना जाणी वाचन वीर माहिलो पूर्णभद्र वीर
तेचो । ते हाथ जोडी कडे कार्य कहे । गुरु कहइ शा-
सनोन्नति करी । आ प्रासाद थकी छ मासनी अवधद ए
शव सजीवन करी प्रगट पण काडो । किसइ जेह जीव...
ने अमयदान हुइ । ते गुरुनइ धचने देव गो कलेवरइ
पडो । एतले देववर थकी प्रगट पणि सकल वा (५३-२)
इय तथा अन्य मनुष्य देवता ते गा सिंग घुणावती जिहां
त्रिवाडी वाडवनइ घरट शिष्य देव शक्ति वस्तीनइ हेंते
करी मित्रि । स्तनि दूधपान ते वस्तीन कीचो । ते देवी
सकल वटनगर वाडव हर्षित ह्या । माहोमाहि कहइ—
अनामुका श्रीवाडी ! आ विस्यु ? ते श्रीवाडी बहइ—ए
महा कोईक देव शक्ति । नगरद वार्ता हुई । ए केना-
चार्य महाम्नायधारक । पुनः अत्र गो ? अनद वत्सी २
ए विहु जंयनं, अमयदानना दानार वृषावत दयावंत
जाणी सकल मिथ्यात्वि श्रीगुरुने नग्या । श्रीजिनसास-
ननी उन्नति हई । एतलइ नाम तो श्रीजिनदत्त मूढी
पिण गो ? वस्तीने न अमयदान देवे थकी उपगारी
ह्या, तेह थकी सकल मनुष्य वडनगरे मिली श्री जिन
दत्तने 'उपगारी सूरि' ए बीजो नाम कथो । पुनः अण-
हिल पत्तन पार्थ श्री वायड नगरे श्रीगुरुदेव वायड शांती-
या घणा गृहस्त प्रतिवेधी जिनधर्म वासित कीचा ।
पुनः श्री सूरिद वृद्ध सिधु देशी ल्हा (५४-१)

नगरे पंचनदीहं मध्य भागइ संयद मलेछनइ वाडं
जित्या । तिहां घणा जोडचा क्षत्रीय प्रतिवेधी आटा
गोत्र उपकेस शांती कीचा । ते परम जैन धर्म वासित
ह्या । श्री जिन शासनइ शांतिनीक ए सरी वहीवाणा ।
श्री गुरुना नाम स्मरणि दुखा र्ति विलय जाय ।
अनुकमि श्री कुमारपाल राज्ये विक्र० स० १२११ वर्षे
श्री सूरिद स्वर्ग होओ ।

इति जिनदत्त सूरि संवधः

पुनः एवइ श्रीमहंदेशी श्री फलवाडि पुरी तर्पिनी
उत्पत्ति, ते कहं छ । पुनः नांणाल गछ श्री मानदेव
सूरि विहार करता फलवाडिपुरी चुमासु रत्ना । तिहां
जो० गुरुद गोत्रि श्रे० पारस नामे गृहस्थ रहं छ । ते
भद्रक पत्निमि करी निरंतर श्री सूरि वादई । एकदा
ते पारस श्रेणी गांम बाहिर कार्यार्थि, लघु बेरडीनी जालि
वृक्ष मध्ये कोडक नीला अनि कोडक सूका म्लान फलई
करी पुगीत एहवओ पाषाणनो दीगलो देवी, गुरु श्री
मानदेवनइ आनी पुरुषु (५४-२) जे ए हवइ
सदैव पुजि देखु छुं । ते माटे अत्र स्थानिके कांटे
आश्रय दिसे छद । तिवारी श्री सूरि पारसनइ कहई—
ए दूषड पिहला करओ । तिणे पारसे गुरु आज्ञा थकी
ते दूषड वेगला भिन्न भिन्न कीचा । तेतलई श्री पार्थ
निव दीटओ । पासने अभिष्टायकि प्रगट मनुष्यने
शब्दि कहइ—जे प्रासाद करावी पुजा करजे । तिवारई
पारस कहइ द्रव्य नहीं । अभिष्टायक कहई श्री पासना
मुपासी समु प्रभाति स्वरणा अक्षतने डिगलो निरंतर ध्यय
प्रमाणे हुस्यई । ते द्रव्ये प्रासाद नीपजावजे । पिण
ए वार्ता कोई आगलई न कहेवी । ते पारस श्रेणी
अंगीकार करी घरे आवी श्री गुरुने त्रिव प्रगट ह्जानी
वार्ता कही । तिवारई ते अभिष्टायक आराध्या । तिवारई
ते देव आगि गुरुन कहइ—पहिला शणि पुरि शणि
ठिकाणे संप्रति नृपकारक पार्थनाथनो प्रासाद हंतो ।
ते कालना योगी जम्भर हई क्षय हुओ । ते त्रिव ए
श्री पासनो प्रगट हई । श्रे० पारसनइ दर्शन दीधो ।
बीजं दिने देवक (५५-१) थक प्रमाणे स्वर्ण अक्ष-

तनो दिगन्तो प्रत्यस्त साचओ देषी श्र० पासइ
मासाद नवा प्रारभ कीरा । मूळ मडप १ रगमडप २
मृत्यमडप ३ सन निपजाव्यु । डाग कां निपजाव्या ।
तहव एक दिन रगपुत्री पुत्र्यु-ए द्रव्य तुम्ह विहा
थका लाउआ उओ ? इम नार ३ पुठै । पारस श्रद्धि-
पुत्रीनद भद्रक पण- यथास्थित कछु । तिसाई अधि
प्रायकइ द्रव्यनी वातो प्रग- बरी जाणा स्वर्णाश्रुत
द्रव्य वध काथो । तिथारइ मासाद एतला रक्षा । तिसार
श्रीमानदेव सुरिद श्रे० पारसना आयइ यकी वि० स०
१११८ उषे श्री फलवर्द्धि नगरे महामहाउ- आ
पास विव थाप्या । यदुक्त—

श्रीमन् पाशगिनाधीश फलवर्द्धिपुरस्थित ।

प्रणम्य परया भक्त्या सर्गभाषार्थ साधक । १ ।

इनिपरं स महिम्न श्रीफलवर्द्धि तीथ प्रगट्ता ।

५० तस्यै श्री मुनिचन्द्र सूरी ।

श्री सूरीना उपदेश थका वि स १११५ वर्षि श्री
दधिपदइ रायद शातीय वे अवरारज श्री शातिनाथना
विष था (५५-२) प्यो । पुन श्री सूरीना उपदेश
थकी श्री सीराही नगर वि स १११७ वर्षि विज्जापान
सगात्रि (१) बह्मजाण श्री प्रध्वाराज हुआ । श्री सूरी पास्ती
सत्र ग्रथ नीपजाव्या । एहन नि स १११८ त्रिं श्री
अमयदसुरी प्रगट्ता हुआ ।

श्री अमयदसुरीना उत्पत्ति कहइ उइ ।

मदपान दशी पडसल ग्रामइ एअर सगो नामि राज
पुत्र रहै । तिहा कान्ठिक गउे खरतर इन्द्र धारक
श्री अनश्वर सूरी विहार करता तिहा आया । श्री सूरी
नद दधी सीवी (सगा ?) नय्यो । आ गुरुइ भव्यात्मा
जाणि उपदेश कया । सामला बूज्या । तत्काल दीक्षा
तीथा । जाग्य जांगा आ० पद दइ आ अमयदसुरी
नाम दीधु । अयुध न मिययनात्याग थकी पूर्व कम्मा
नुसारं दरी कप हुआ । श्री सूरी पूर्वोपाजित कम्म
अहियासता थका गुञ्जरात दसि भाणपुर गामि आया ।
बह्वृष हठलि रात्रि सुता सुप्रभा तप लक्षि थकी
अर्धनीसाइ सासन दवा बरइ—स्वर्धर । जाइ छा ?

ते देवीवाणी सामली सूरी बहे—रोगग्रस्तनइ निद्रा
विहं थ (५६-१) की ? एहरो आ० नी वाणी
सामली शासन दवीइ बालीका स्वरूप भरा आधीनइ
आचार्यनइ करइ जिमर्ण हाथै सूत्रना काकडा नन देइ ।
मुत्र दही समाधी हइ उवेलीस्यु । ते सामली श्री सर-
स्वती कहइ सेदी नदीनइ कटा पलास वृक्ष हठइ
श्रीवणी भूमिका उइ । त अहिनाणइ पहिला श्री नागा
भुजुन यागीइ विद्यास्तीर्षइ भूमिधारित विव आ थमण पास
नओ समहिम्न उर । तिहा तुम्ह जाग्या । श्री थमण
पासनी स्तुती करग्या । कीतना करता त विव सध
प्रगट्ता हुसइ । तहेना कान्ननइ जलि सकल रोग ए देह
थकी जास्य । पिण काकडा नव तुम्ह उवेल्ग्यो । इम
कही देव्या श्री शारदा स्वस्थानिकइ गया । तहना वध
नन अनुसारइ गौदुध श्रीकणी भूमीनइ अहिनाणा खालर
वृक्ष हठली जाइ श्री अभय दवाचार्य उमा रही श्री
थमण पासनी काति तद्रपि जयतिहुण वति । ' फणि
फण पार पुरत रयणकर ' १७७० ए काव्य सतरु कहि
ता श्री पास विव (५६-२) भूमिका थकी प्रगट्ता
तत्काल हुआ । श्री सवि छात्र ओउइ श्री पासना
अभिषेकनओ जल सुधिपानइ भरी गृहस्थ श्री आषा
र्यनी दर्शनइ प्रावि करि शुद्ध अग थकी सकल रोग उप
द्रव तप्या । दह तत्तुवर्णोपम हइ । महोअ मगल
अय शब्द हओ । तिणहीज ठिकाणइ सदी नदी
न- तदि थमणपुरनामे गाम थाप्यो । मासाद नीप
जावी नि स १११९ वर्षि श्री अमयदसुरी थम
णपुर प्रासादि आ पासनी थाप्या । तिहा थकी विहार
करता आ अणहिह पठाणि श्री पचाधर पासन इहादी
चामासे रक्षा । रहिता भका एकदा गुहन शासन दया
दत्त नव सूत्रना काकडानो उपपान आग्यो । तिसारइ
श्री सूरी नि स ११२० वर्षि भगवती प्रमथ नव अग
सूत्रना अ सिद्धात तहनी टीका नापजावी । एहवे श्री
थमण पास प्रगट्ता नार वि स ११४५ वर्षि श्री गाप
नगरे आ० आ अमयदसुरी स्वग हुआ । तह पउी
(५७-१) कत्तक वर्ष गुञ्जर दसी यदनराज हुआ ।

तिवारह श्री सकल संवि मिली सप्रभात्र विंवा जाणी वि.
सं० १३६२ वर्षे श्री संभायन नगर सुठिकणे पण
यतिन श्री धंभणापास थाप्या । नीडुपल समान नील
वर्ण देह धारक सकल क्षुत्रोपद्रववारक ते विंवा आज
लगाणे सप्रभाव छंद ।

उक्तं—जयस्योस्तंभनपार्थनाथः

प्रभावपूर्वः पूरितं सनाथः ।

विभ्रसधन्वतरणं येन

कुशोपतापोऽभयदेव सूरि ॥

स्फुटीचकाराभयदेवसूरि—

योमूमीमभ्यस्थितमूर्ति सिद्ध (?) ॥ १ ॥

इति परि आ० अभयदेव सूरि हूता हूआ ।

इति आ० अभय देव सूरि संवंध ।

पुनः पहवई वि. सं. ११५२ वर्षे श्री जयसिंह देवि
श्री सीद्धपुर नगर यसाव्यु । श्यार माळई फरी श्री
रुद्रालय थाप्या । पुनः श्री सुविधिनाथ नवमा तार्यकर-
नजो मासाद नीपजाव्या । स्व दर्शन १ अपर दर्शन २
पोपी वणु सुकृतई द्रव्य कीचो । वि. सं. ११५४ वर्षे
वृष तटाक १७ (५७-२) कराव्या । ४१ जलनी दीर्घ
वापीका निपजायी । ६१ कुंड वंधाव्या । ६७ छु
तटाक । दर्मावली, सहली, क्षुंखुवाडा प्रमुप नगर गढ
बंधाव्या । लघु वापिका १०२१, विश्राम थानीक
१०६८, देव देव्या यक्ष मासाद एक लक्ष निपजाव्या ।
पहवई गुजरे अणाहिल पत्तनाधीश सोलंकी श्री जय-
सिंह देव राज्ये श्री कौटिक गछे, चंद्र कुले, वज्री सापाई
आ० श्री देवचंद्र सूरि तेहना शिष्य आ० श्री हेमचंद्र
सूरि प्रगट हूआ ।

हवई श्री हेमचंद्राचार्यनी उत्पत्ति कहै छै ।

गुजरे देशि धंभुकि नगरई मोद शाती गांव्री साचओ रहै
छैई । तेहनी छी चंगी नामि । तेहनओ पुत्र चंगेदव
नामि छै । तिहा विहार करना आ० देवचंद्र सूरि
आव्या । श्री सूरिओ धर्मोपदेस सांभली तिणई चंगेदव
नामि वणिइपुत्रे गुरु संयोगे परम श्रावक हूओ ।
वि. सं. ११४५ वर्षे तेहनो जन्म । पांचमे वर्षे वि. सं.

११५० वर्षे दक्षिा छापी । सोमदेव रुपा नाम दीजुं ।
श्री गुरुनी कृपा (५८-१) थी अत्रकमि गुरु श्री देव-
चंद्र सूरि १ अनि शिष्य रुपा सोमदेव २ ए बिहू कलितर
नामि पर्वतई कोइक ओपधोनई सोपधिया जाइ छे ।
तिहां मारगमां श्री मलयगिरि सूरि भिन्वा । तिहां थकी कुमा-
रिया गामे जाना थका तटाक धोवी वध्र भातो दीटो । पन्ननी
चीर देपी पछीओ । तिवारी ते वध्रव्यालक गुरुन
कहई—आ गामनो श्रेष्ठी तेहनीं पहिरयानो छे । तिहां
चउमासि रद्या । केतलक दीने ते श्रीमाली गृहस्थने
पन्ननाना मुय आगिलई विद्या साधनजुं रहस्य कह्यो ।
श्री जीन शासननो भक्तिने हेंते तिणे श्रीमालिई आंग-
कार कीयो । शुभ दिनई श्री वध्र देव मासादे भूमीग्रहे
श्री देवचंद्रसूरि १ श्री मलयगिरि सूरि २ ६० सोम-
देव ३ ए बिहू साधु दिगंबर हूइ काउस्तगे रद्या ।
सन्मुखि वन्न पन्ननी स्त्री उभी रही । तेहनां स्वामी ग्राम
श्रे० ते नन्न लक्ष्म हाथई शाली लेई श्री गुरुने पासई आवी
साहस धैर्य धरी उभो २ (५८-२) ब्या । गुरुई गृहस्थ-
नई कहयुं—ध्यान थकी चुकै तेहना मस्तकई तत्काल लक्ष्म
दीजे, विलंब नहीं । इम विधि विद्या साधतां साहसीक
धैर्यपणो देपी ते देव ईग्यारमई दिने आवी कहई 'तूटा,
वर मांगि' । तिवारई गुरु श्री देवचंद्र सूरिई वीर ५२
वसिनओ वर माग्यो । श्री मलयगिरि सूरिई सिद्धांतनी
टीका करवानो वर माग्यो । अनि ६० सोमदेवि राजा
प्रतिबोधवानी शक्ति मागी । जिहू साधुने ते देव वर
देई अलोप हूओ । गृहस्थने कोटी द्रव्यनी प्राप्ति हूई ।
तिहां थकी देवदत्त वर लेई श्री मलयगिरि सूरिई
मालव देशे विहार कीचो अनि गुरु श्री देवचंद्र सूरि १
अनि शिष्य ६० सोमदेव २ ए बिहू गुरु शिष्य श्री गिरि-
नारि नेमीश्वरनी यात्राई दर्शन करवा गया । तिहां
मारगे कोइक गामि एक वाणिक दरीद्री रहई छे ।
पहिला तेहनई माता पिता महा-श्रीमंत हूता । तेहनीं
प्राति ताणे वाणिके घरनी पुनः.....थकी खणीने तिहा
थकी द्रव्य प्रग (५९-१) ट कीथो । व्यंतराभिष्टित
सेवतरा प्रगट हूआ । तेह थकी घरने मध्य भागई डि-

गन्तु कीयो छे । मत्स्याक्षी लीहालानआ समुह छे । तिणे समयइ वि पाहरइ मध्यान्ह श्रीगुरु अनि शिष्य तहनइ घरे आहारनइ अर्थि गया । तिणे सुस्मरव (?) दान दीधु । ते आहार देखी सामदेन शिष्य वार २ गुरु साहमी दृष्टि करी सज्ञाइ समझावई पिण गुरु सज्ञाइ न समझ्या । तेतलि वणिक समझ्यो जे ए रुपी महा मा य्नो स्वामी जाणी उतावलो आबी तत्काल सोमदेउ रुपी प्रति वि हाथि उपाडी सेरत्ताना ढगला उपरि बइसाव्या । एतले ते गृहस्थना पुष्यनइ योगइ ते से व्रताना समुहना ढगला थकी ६० सोमदेवनी दृष्टिना प्रमान थकी ते व्यतर नाठी । एतले वणिके साक्षात् प्रगन्पण सुवर्ण ढगलु दीठा । तिवारे ते गृहस्थे घणा आग्रह गुण निष्पत्ति श्री गुरुनइ वीनती करी वि० स० ११ ६६ वर्षि ६० सोमदेवनइ श्री गुरुइ आचार्य (७९-२) पद देई श्री हेमचन्द्र सूरी नाम दीधु । वि० स० ११६७ वर्षि गुरु श्री दानचन्द्र सूरी स्वर्ग हूओ । एहवइ अनेक ग्रथ कारक श्री मलयगीरीसूरी स्वर्ग हूओ ।

श्री मुनिचन्द्र सूरी आगजिउ ल्गइ छ विगायना नियम राक श्री सूरीइ सारठ दसि प्रासाद विव प्रतिष्ठया । सुमतादि चारिश्चर समर्थ यत —

सविग्रमौलिविकृतीश्वरसर्वा-

स्तस्याज देहेष्यमम सदा य ।

विद्वद्दिनेयाभिवृत्तप्रभार

प्रभागुणे य किल गीतमोऽय ॥ १ ॥

अप्रहयश (११६८) नितेऽन्दे

विक्रमकालाद्दिवगणे भगवात् ।

श्रीमुनिचन्द्र मुनाद्रा

ददातु भद्राणि सधाय ॥ २ ॥

४१ वृत्ते श्री अजितदेवसूरी ।

लघु गुरु माइ सकल वादी मुगन् विरूढ धारक श्री रादि दन सुरि २ । ए बिहू गुरु माई । त मध्य बडा गुरु माई त पट्टधर अनि लघु माइ ते मठनी मयाईना सार सभालिना करणहार । वि० स० ११६८ वर्षे निवृत्ति कुलि आ महेन्द्र सूरीना उपदेश गरी घाना वि (६० १)

दरे श्री माले शाति नाणवडी सा० हीरइ श्री नरबडा पार्थ नायनो विव मराव्यो । वि० स० ११७७ वर्षी श्री नागुरी शाधा कहिराणी । श्री अजित देव गुरु प्रति गुरु वाणि रजित थको अणहिल पत्तनाधीरा सो० श्री जय सिंह देव निरतर त्रिण प्रदिक्षणा देइ वादेई । श्री सूरी पार्थिव दीसी देवक पत्तनइ श्री जिन शासनइ शोमा कारक हुया १ अनि लघु गुरु भाई श्री वादिदेव सूरी तहना शिष्य श्री रामचन्द्र सूरी, तिणि स्नात विधि प्रगट कीगी ।

तहरइ श्री मरुदेशी जीराउली तीर्थनी उत्पत्ती हुई । आबूनी पासि जीराउली गामइ वीसिरगाति श्रे० श्री बाबल रही उइ । तेहनी गो तेहली नदीनइ काठइ बोरदीनी जात्र माही सीमाछे चरना जाइ छे । तिहा दूध सरइ । सध्यासमयइ ते गो वाणिक घरे दूध न दीइ । ति वारइ ते बाबल गृहस्थ जाणइ जे कोई सीमइ दोहीने दूध लीइ छे । तेहनी प्राप्ती तेणे सघाते पुनने मोक्त्यो । जिहा गो चरई तिहा पृथ्वीनइ ठिकाणि दूध करी गई । ते देवी पुत्र घरे आबी (६०-२) दूध शरण बात पिता प्रति कही । तिणइ बाबलइ आश्रय जीणी ते दूध शरण भूमीका पणी । एतलइ घणा कालनी श्री पास मूर्ति प्रगट हुई । एतलइ अधिष्ठायके स्वप्न दीबा, त मुक्षने जीराउली नगरइ थाप्या । तिरारइ बाबलइ प्रासाद नीपजारी मठास्वरे वि० स० ११९१ वर्षि श्री पार्थने प्रासाद थाप्या । श्री अजितदेव सूरीइ प्रतिष्ठया । घणा दिन ताइ श्री पार्थनामनी भक्ति साचवतो श्रे० बाघन सङ्गतीना मजजार हुओ । ते श्री पार्थ परमभर जे जीरापत्री नगरइ रखा । सकल भक्ति लोकनी बात्रा-पूरक मरि उपद्रव निवारक समभाव तीर्थ हुओ । यत — प्रबलीष कलिकाले

स्मृतमपि यत्राम हरति दुरितानि ।

नामितफलानि कुरुत

स जयति जीराउलीपार्थ ॥ १ ॥

हाणि परि श्री जरेउली पार्थ उत्पत्ति

पुन वि० स० ११९१ वर्षि दीहरी नगरे निहानी

पठाण आव्या । चहुआणनइ वाड्या, मल्लण हुआ ।
 हयइ श्री देव लोढण पास तिथनी उत्पत्ति कहे ३ ।
 गुज्जर देसि सेरिसा नगर नागिअ गळइ श्री दवत्र
 सूरि शिष्य सहित विहार करता आव्या । पिण गुप्त
 शिष्य थका (६१-१) बीराकषण विद्यानी पुस्तिक
 गुप्त पाणि राखइ । एकदा गुरु रात्रि निद्राई आव्या ।
 एतलइ एक शिष्य त पुस्तिका चढमानइ उद्याति राची ।
 बावन बीर आव्या । कहि, किस्तु काम छ ? । त शिष्य
 कहइ इणि पुर जिन मासाद नहीं उइ ले माटि पांतिम
 दिशि जेन काति नगरी यकी श्री जिन दर्शननो आ घणा
 पुण्य जाणी छहारी शक्ति इहा एक मासाद लाग्या ।
 निशारे ते शिष्यना वचने बीर कहे अस्वक प्राक्कम प्रभाति
 कुकंड शब्द न हूइ तिहां लगण, शब्द पंथी नहीं ।
 शिष्य आशा लही बावन बीर जैन काति नगरी यकी
 रात्रि मासाद लेई सेरिसा नगर आव्या । एहने उअ
 यकी गुरु जाग्या । तिवार आकासि कालाहल, बावन
 बीर नो आण्यो मासाद श्री पासनो देखी चिते चिनइ
 ए किस्तु ? पुस्तिकानो उपयोग आव्या । एतलि तिहा
 पुस्तिका नहीं । श्री गुरुइ शिष्यना काम जाणी श्री च
 केशरी स्मरीनइ कहइ ए शिष्यने मालिम नहीं । रात्रि
 घणी छइ ते माटि हुमो कारिमा कुकंड बोलावआ । गुरु
 आशा यकी ते देखीइ तिमज कीथो । एतलइ प्रभात हुइ
 जाणी बीर स्वस्यामिक (६१-२) मोहता । एतलइ
 मासाद तिहाज रखा । तह यकी वि० ११ वर्ष सरीसा
 नगरइ श्री लाडण पासनी थापना हुइ । आ० श्री देव
 सूरि तिहा यकी विहार करी अणहील पत्तनइ पचाश्वग
 प्रणम्या । इति सरीसा तीर्थ उत्पत्ति ।

४२ तत्पन् श्री विजयमिह मूरी ।

चारिअ चूढामणी विरद रक्खा निचरी । एहवर सा
 लकी श्री कुमारपाल प्रगइ हुओ । तेहनी उत्पत्ति कहइ
 छइ ।

गुज्जर देसि अणहिट वाडा पाण्ण पामे दडथनी नग
 रइ सो० श्री त्रिमुवनपल भार्या जगली कास्मीरी । पुअ
 पांच, ते माही कनिष्ठ कुमारपाल नामी तह्नो वि.स. ११७७

पंच जन्म हुआ । विजयम सो ११९७ तमि श्री घमायत
 श्री सूरि मुपे भूमोपदेश लखी । वि.स. ११९९ तमि कुमार-
 पाल दीनी हुआ । एतलइ गुहन पणइ आच्छाद आ-
 लाइ पषाग्या । सदर व्याख्यान सार काइक मुकून
 करे । निशारे सूरि नहीं-

दीवांयु पर रूपमारण्य स्थानीयता ।

अहिंसाया फत्र सर्व किमन्यद् कामदयमा ॥ १ ॥

एहना पचन श्री गुप्ता सामग्री चउमासउ जी
 (६२-१) वाकुर भूमिका जाणी गुरु मुष कुमारपालि
 नियम लीथो ज चउमासे सैन्य चढाइ युध न करवा ।
 त रात्रा कनलक दिने दिही नगर मलइ सामग्री ।
 तिहा थकी सैन्य आर्या अणहील वाडे उतय्यो । सहि
 पाषति गड काट नहीं तिवारि कुमारपालि गुरु विनय्या-
 सैन्य १ अनइ युद्ध २ ना हुल्ल मुषइ माहइ नीयम उइ ।
 सूरि कहइ भर्म्म यकी कुशल हुसइ । श्री गुरीइ कडथरी
 पादर दरी स्मरीने कहे जिन शासनइ ए राजा नियम
 धारक ते तह यकी परचकनो उपद्रव्य निवार । ते गुरु
 आशा लही दव्याद रात्रि निद्राइ सुतो मलउनइ उपाडी
 कुमारपालना महेलमा लारी मुक्यो । प्रभात जागी
 उठयो । एउ सैन्य अउचर नहीं । एतलइ चढति दिनइ
 राजविनइ अउचरे दतथावन निमिते पारन जलसपूर्ण
 पात्र अचला लावी दीथो । त दरी मुगज कहइ-ए कुण
 म्यान ? त कुण ? त अउचर कहइ ए राजा श्रीकुमार-
 पात्रनआ मदिर । हु तहना सेवक । त मुगल सरकना
 वचन सामग्री मनम्यु निचागइ-हु एहने राग लरा
 आग्या ठु, पिण साकइ ह आण्यो दण (६०-०) इ,
 अनइ एह महा भाग्यना स्वामी मुसल्यु भरी वाउइ
 उइ । एहना पीग पिग साचा २ । तआ ए राजान-
 आ हु मित्र । तिवारइ मुगल १ अनि कुमारपाल २
 बिहू मित्र हुई माहो माहि भउ आपि पीराण पत्तन नग
 रनो नाम देउ, कुमारपालनउ स्वधर्मइ दडतो पणु ? अनि
 उपपामि पणु २ दरी प्रससा करता दीरी गगइ मुग १
 एहने । श्री जिन सासनइ महिमा हुआ । गुरु कीति
 हइ । एतलइ वि० स० १२०७ तमि सो० श्री हुमा-

रपाले अडाग देगि अमारि पलावि । हवे ते अडार देशना नाम यथा—

काण्टे १ गुजरे २ लाटे ३ सांतापू ४ कच्छ ५ सौधवे ६ उच्चाया ७ जेव भेंभर्गी ८ मापे ९ मालवे १० तथा ॥ १ ॥ कौकणे ११ च तेंथा राष्ट्र १२ कांर १३ जाळभरे १४ पुनः । पंचाले १५ लक्षमेवाडे १६ दीपे १७ काशी १८ तडे पुनः ॥ २ ॥

मारि शब्द एहवओ मुषि कहिवंदं करी चउविहार उपवास एक करइं । सकल प्राणि ज्ञान्या पाणी पीईं । पुन वि० सं० १२०९ वर्षी हेमा व्याकरण श्री हेमाचार्ये प्रगट कीथो । वि० सं० १२११ वर्षी सप्त लक्ष मनुष्ये श्री सिधाच (६३-१) की संवपति हआं । वि० सं० १२११ वर्षी लेउआ गाथापतिनइं दया पात्र जाणी सडेरिया विरद दीथो । वि० सं० १२१३ वर्षी श्रीमाली मं० बाहब देई श्री सिध्दाचलइं चउदमो उद्धार नीपजाव्यो । वि० सं० १२१६ वर्षी वंदेरागढ पत्नी श्री सातिपूगणे नूतन वस्त्राणि शाल्यविना सात हजार घर पाटणी लावी वसाव्या । वि० सं० १२१८ वर्षी श्री हेमाचार्य अमावस्यानी पूर्णिमा देपाई । वि० सं० १२२१ वर्षी तारणभरीई श्री अजित जिन भिंज थाप्यो । तिणहीज वर्षी सातसें लेखवने द्रव्य आणी एकवीस ज्ञानकोश लिपाव्या । न्याय धंदा संदव धाजइं । श्री गुरु उपदेशी चउदशत अनि चुमालीस, ८४ मंडप सहित मासाद नीपजाव्या । पुनः एकवीस शत जीर्णोद्धार नीपजाव्या । एकदा मं० बाहबई श्री गुरुन नीननी कहं न नीन प्रसाद नीपजावई पुण्य किंवा जीर्णोद्धारनो लाभ । एहउं मंत्रीउं वचन सांमली श्री सूरि कहइं । यतः—

मूतने श्रीजिनागारविधाने यत्फलं भवेत् ।

तस्मादप्युणं पुण्यं जीर्णोद्धारि निवेकिनः ॥ १ ॥

एहवओ शुभवचन सांमली मंत्रीई पत्ररशत जीर्णोद्धार निपजा (६३-२) व्या । तेमाहि प्रथम जीर्णोद्धार वि. स. १२२० वर्षी श्री मयुकेळी श्री शकुनिका विहारनो कीथो । श्री गुरुना साहस्य वकी । पुनः इणहीज वर्षी

आगिम गछ हआं । पुनः एकदा कुमारपालने रात्रि मृतां थकां प्रथि वाज्जसत्ताई अभक्ष भक्षण साधजो छइ तो गुरु पासईं वारवन उधन्या, ते मांसनो स्वाद दाढामां उपनो जाणी चितवईं अभक्ष भक्षणदे सभरवई संडित हआं । प्रभात गुरु वादि पृष्ठिआं । निवारइ गुंर कहइं—एहनी आलोयणा सुहे वत्रीस लक्षणा पुरुष छओ तेह थकी वत्रीस वरां मासाद, धायनंदेव कुलिका सहित निपजावओ । ए व्रत भंग हआनी तुम्हं ए आलोयण दाखी । ते गुरुवाणी अंगीकार करी न्यपिता तिहुयण पालने नामि तिहुंयण वीहार, बहुत्तरी देव कुलिका सहित निपजाव्यो तेमाहि २४ विव रत्नमय, त्रिंज २४ स्पर्ण—पितलमय, त्रिंज २४ रुपमय, पुनः मुख्य मासादे णक सओ अनि पंचवीस अंगुल प्रमाणी अरिष्ठ रत्नमय भूल नायक श्री रुपभंदेव विव स्थापित, सकल देव कुलिका सुवर्ण कलेस युक्त जा (६४-१) गवी । निरंतर सत्तरभेदि, पुनः षट् वर्षी अष्टोत्तरी, जिनमक्ति हईं । विहई टंक प्रतिकमण, लि टंक देवचंदनक, सात वईं । सूर्योदये स्वपट्ट श्री ज्ञानिनाथनईं अनि वीतराग एकदा आदा नाम समरी पछी अडारसय कांटी ध्वज गृहस्थ युक्ति, तिहुयणपाल विहारई, श्री रुपभंदेव दर्शन करी, गुरु वादि, उपदेश सांमली, घरे आवी, सदैव सातसि सावर्त्मिक जीमाडी । पछी एक मक्त करई । मासे २ लक्ष साधर्मिक पोषि । प्रति वर्षी यात्रा सात सवा २ लक्ष मनुष्यईं करि ।

अथ द्रव्य संख्या, कोठार चार अपठित स्वर्ण भन्या । कोठार चार अवठित रुपि भन्या । कोठार १ मुक्ता फडि भन्यो । कोठार १ नानावर्ण रत्ने भन्यो । पार्थ पाषाणना सड चार । कोठार १ विद्रुमो पडे भन्यो । १५ लक्ष कोठार पवीत्र धानदंकी भन्या । अथ सैन्य द्विपद संख्या—७२ सामत । चारशत प्रधान । सातसें कोटवाल । १८ लक्ष पायक । एक लक्ष दूत । ११ हजार गज (?) । १२ हजार अंगमईक । १७ हजार सूरार । १५ दास अनि दासि । वि त्रि । अथ चउपद संख्या—११ लक्ष हज । ११ हजार (६४-२) पालवी । ५० हजार रथ ।

२४ हजार करम । १७ हजार घंटर । २२ हजार
महिषा । दांड ३५ वृत्र । एक लक्ष साष्ट । १५ मो
कोष्ठक चंडोड । शीघ्र परि पूर्वभारतये भोगं । पूर्व-
लक्ष भारद्वाजक व्याहारिणानं धरं कुमारपावनउ जीव
चाकर हतो । निहा निम्बल श्रद्धा यकी नव रूपदीकानां
अक्षर कूल आग्या । तं लेख सिद्ध गीरिंदं श्री परमेश्वर-
नंद चढाव्या । तिणे पुन्येकरी १८ देशनी ग्राहिनी भोग-
यनो, श्री गुरु धननं मुद्धन कालो, जिन सामन सोमा-
यनो, यको दिन नीगमई । एहवद वि. सं. १२०९ वर्षी
सार्ध त्रि कंठि प्रथ करता, कलिफा उ सर्वसत् विषद धारक,
अष्टादश देशाभिति योवरक, श्री तारणगिरि सीधं यापक
आ० श्री हेमचन्द्रसूरी स्वर्गं हूओ । उक्तचः—

सो जयह बुद्धचार्द १ सिद्धसेना जयउ सलु हरि-
मई । सिरी वपमट्टसूर ४ पालिको ५ अमयदेवो य ६ ।
सिरीमलयगिरिसूरी ७ सूरी सिरीयसोमई य ८ ।
सिरीहमसूरीअ ९ अमि पवरेया जयतु जुगपवरा ॥
पुनः भि. सं. १२३० वर्षी कलिकाल राजधिं विरुद्ध
धारक श्री जीनसासनुप्रतिकारक (६५-१) सो० श्री
कुमारपाल स्वर्गं हूओ । यनः उक्तम्

दया धर्म सुबेलछी रोपीरपम जिणंद ।

आवककुलमंडप चही सिन्धी कुनर नरिव ॥१॥.

श्री कुमारपाल सवध ॥

हवई श्री अंचल गछनी उत्पत्ती कहई

वडगछ विरुद्ध धाक श्री उद्योतन सूरी । तेहने
पाटी श्री सर्वदेव सूरी । तेहना लघु गुरु भाइ आ० श्री
पद्मदेव सूरी १ । तेहना शिष्य श्री उदयप्रभ सूरी २,
परमचंद सूरी ३, विजयचंद्र सूरी ४, गुणसागर सूरी ५,
विजयप्रभसूरी ६ तेहना नरचंद्र सूरी ७ तेहना श्री वीर-
चंद्रसूरी ८ तेहना शिष्य आ० श्री जयसिंह सूरी । ते
आमूनी तलहदीई दत्ताजिन नगरे शालाई रखा छे । एहवदं
तिहा ओ० वृद्ध डौण नाभि सेठ रहिछई । तेहनइ नाटी
नाभी स्त्री छई, तेहनइ मोदो नामई बेदो छे । तेहनो
वि० सं० ११३६ वर्षी जन्म हूओ । पुनः तिणे पुन्येन
योगे वि० सं० ११४२ वर्षी श्री जयसिंहसूरी हामि दीक्षा

दीधी । तिहां प्रथम साधुनओ आचार ओलपवानतं हेनि
श्री दशनेकालिक मृत्यु गुरु सहनं भणायिता हया । भण-
ता थरा अप्ययन सौतमानी गाथा छडी भणता मांडी ।
(६५-२) ते गाथा—

सौउदयं न संवेगजा जिलापुटं हिमागिय ।

उसिणोदयं तस्य फामुय पडिगाहिज संनइ ॥१॥

ए गाथानओ अर्थ गुरुई भगवत्थे । ते अर्थ गोदे
विचमाहि विचारयो । पोशाल माहि ताडा सचित पाणीना
भाडा भरया देधी गुरुनइ पृष्ठे, श्री गुरुजी अन्नहा पा-
होई अन्नहा किरिया करीई । ए वनन माम्मी गुरु स्टें,
सुशिष्य एह किरिया आ समपटं न चाहि । निगारि
तिणं सिध्दं कल्ल ए क्रिया करइ तेहनइ लाभ किंरा
प्रौढो ? गुरु कहं—लाभ, विण तेहनं प्रौढो नही । एहनी
गुरे योग्य क्रियावात्र तपस्वी जाणी उपाध्याय पद बेद
श्री विजयचंद्र नाम दिधुं । तिणइ तिहा थकी गुरु वादी
आज्ञा लही च्यार साधुसुं विहार कीओ । केनलेक दिवसे
पावइ परंति आभ्या । तिहां संमति नृप कारक मासादे
श्री संभव देशनई नमस्कार करी चउ बिहार माससमणे
उपाध्याय काउस्तमि रखा । मास सपुणि जितेद्विय
तपस्वी पणइ जाणी महाकाली देवमा वादी कहीई—हु
गुह उपरी प्रसन्न हुं । तुम्रो संवनइ कल्याणकारी हुं ।
मुनने सभारई उपद्रव वेगलो करीस । विण आज
(६-१) कृष्णाष्टमी छई ते माटि मुसनइ अष्टमाई
दीनई उपवासी तुम्हे सभारथी । ते देरी दनवर थकी
उपाध्याय श्री विजयचंद्र पावागिरि पीठ थकी उत्तरी भा-
लिज नगरई आबी माससमणने वारिणए यशोवन भणशा-
लीइ बेर आहार लीयो । एतलई देधीनइ गर थकी
मुन्य गृहस्थ यशोवन धनशाली हूओ । एतले पांचमा
आगनइ योगी केवलीने अभावे करी आपआपणी स्व-
ईछा थकी नव नवी क्रिया नर नरी समाचारी आदरी ।
एतलि पोताना गुरुनी मूल समाचारी लापनई,
वि० सं० ११६९ वर्षी, श्री जयसिंह देव राज्ये एकसओ
अनि सितार बोलनी परूपणाई श्री विधिपक्ष गछनाम
दीधु । निहा थकी केतलेक दीने श्रीगोत्रचंद्र उपा

ध्याय विहार करता बड़णप नगरि आव्या । तिहा श्री श्रीमाली कोडि नामे व्यवहारीओ प्रतिबोधी स्व गछि बंधो । तिहा थकी विहार करता घणा गृहस्थने प्रतिबोधी दीक्षा देता पुन प्राधि प्रमुखने दीक्षा देता थका पश्चिम देश मटाउर नगरइ आव्या । तिहा नि० स० १०० वर्षि उ० श्री विजयचंद्रने सूरी पद हुआ । श्री आर्यरक्षित सूरी ना (६६-२) म दीधु । केतलाक चामासा पश्चिम दिशि काया । तिहा थकी विहार करता श्री निधि पक्ष गठ विरुद्ध भारक श्री आर्यरक्षित सूरी गुजराति अणहिल पत्तनि पचाश्वरनइ नमवा आव्या । तिहा शालकी गृहस्थनइ तनुआ जीउनी उत्पत्ती देलाही स्व गठइ लीधा । तिहा चउमासे रक्षा । एहवइ बड़णप नगर थकी कोटी व्यवहारीओ काइक कार्याथे पाटणइ आव्यो । तिहा दन दर्शन करी जिहा सालाइ राजा कुमारपाल आ० श्री हेमचंद्रना मुख थकी उपदेश सांमलीइ छ, तिहा आर्वी सभा समक्ष श्रीहेमचंद्रने पक्षाचलइ वादइ । ते देला राजा कुमारपाल कहइ—ए कुण गृहस्थ जे वागर वादणइ इम वादइ ? ते सांमला श्री हेमचंद्र कहे—ए विधिपक्षीक । तिहारि कुमारपाल कहइ—ए बलाचलि गुरुनइ वादइ छइ तेह थकी एहनो नाम अचलिक कहाँ । एतउइ नि० स० १२२१ वर्षि बंशु नाम अचल गठ कहिवाणो । तिहा थकी श्री आर्य रक्षित सुरि विहार करता श्री बड़णप नगरा आव्या । एहवइ सओ वर्ष आठ सत्रुणी (६७१) नि० स० १०३६ वष आर्य रक्षित सरा स्वर्ग हुआ । एहवइ नि० स० १०३६ वर्षि साठ पूणिमा प्रग हुआ ।

करी स्व २ नइ घरे गया, पिण सा जगहूआ शालइ खुण एक ठिकाणे अचमारी सुतो छइ । एहवइ आकाश थमा एक तारानो पत्तन हुआ । एतलइ शिष्य म्हा, श्री गुरु एह किस्यु ? तिहारइ गुरु ऋषु—पाचवर्ष लागइ दमिअ हुसइ । तिहा घणा जीउनो सहारना मालम हुआ । ते सांमला शिष्य कहइ—तिणे समयइ बाह अमयदाननो दणहार हसि किग नहि ? तिहारि गुरु कहइ—इसि नगरइ सा० जगहू श्रीमाली रहि छइ । हिवणा ते दरिद्री छइ । पिण तेहना वृद्ध पिता श्रीवत हुता । ते पोताना पितानी घरभूमि घणइ द्रव्य काडी व्यापारइ धी द्रव्यने वषारी करी नद, घणा जी वन रक्षक पणइ, जिन प्रासाद पापजारी, श्री सिद्धाचल यात्रा करी, श्री गिाशासन आचत्रार्क विप्यात हसि । ते गुरु वचन सांमली तिण जगहू गुरु वादि तिमज कोछु । समुद्रनो व्यापार ते जेम-गुरीनी दुहरत-द्रव्य वषारी देश २ द्रव्य मोकली, जन्न-उदक-घृत-गुड—खड-साकर-तैल-प्रमुखनो समइ कराव्या । त वि स. १२११ वर्ष थकी वि स १०१५ ताइ एव वर्ष पाच सा० जगहू घणा जीवनइ अमयदाननो देणहार हुआ । श्री सिद्धाचल १ गिरिनारि २ श्री रेलाकालि ३ श्री नर्मदातटे ४ श्री अजयाम ५ इत्यादि महादान साला कीरी ।

स धम्मं मयं नरत्तं न रत्तान् ॥ १ ॥

देयं दयं सदा नम्रं अश्रुदायं निचक्षणं ।

अपराधगुणं नित्यं जगद्भरत्य यथास्तुत ॥ २ ॥

एति श्रामाणि सा गण्ड उत्पत्ति ।

४३ तन्ने श्रौमोमप्रभसूरी ।

लघु गम भाई श्री मणिरत्नसूरी ।

५५ गम भाई ज्ञानसा । श्री सूरी उत्तम प्राणिन

भम्मापदक्षान् कहिरत्न भरी । उपगार ज्ञाना विचार ।

एतल्ल प्र० मनी वस्तुपाल १ लघुभाई म० नजपा

२ प्रगट हया । तहना सजय कन्ह ३ ।

वस्तुपाल तेजपाल मयं ।

गुजरात दक्षिण धुन्ना नगर प्राग्गज जाति उव्वड

गानि सा० आसराज रह ६ । त पाणि पत्र यापार

आया । तिहा हात्माणी रक्षा । मात्मुद गामि व्या-

पारका । एकदा पचासरा पासमी यात्रा करी धर्मशास्त्राह

चित्राल गोटि ॥ १० श्री भुजनचन्द्रसूरी प्रतिवादि पण्डित ।

एहनि तिहा श्रीमा (६८२) ला ज्ञाती पणहर गौत्रे

सा० आवा, तहनी श्री लक्ष्मा, तस्य पुत्री बाल विधवा

कुमार नामी । त श्री गुरुनि वादि छर । एतलि गुरु

वादना थका श्री सूरीह वामकुशा तित्त वर्ण दधी मस्तक

घूणीआ । तिसरह पास वमी शिष्य कथयु श्री गुरु ए

वीम १ गुरु कह-एहनि इक्षि युग्म पुन वस्तुपाल १

नजपा २ नामि पुन वणा पुन्यना करणिना कारर हसि ।

तहना आचव्राजि नाम रहस्य । त गुरु कथक पचन

सा० आसराजी सामंयु । कतलेक विरसे पूं कर्मना

सचयना योग थकी त विहना सग हूओ । एतलि तिहा

थका त विह पलायन हूई माडलि नगरह जाइ रत्ता ।

अनुकामि नि० स० १२६० वषि वस्तुपालना जम

हूगा । पुन एनसआने पचास पन्नह अतरे तेजपाल

जम हूआ २ । तिणें आसराजि पहिला गुरि नम कइ

हूता तहीज नाम दिया । एहवि मालव दक्षि नलवर

नगरह शास्त्रिगुमार प्रगट हूओ । तेहनह मनुष्य टाग

नाम कह ६ । राजा श्री गीरवल्लभ राज्यह पुन वि०

स० १२४१ त्रिं लाया फुलाणी प्रगट हूआ । एतति

वस्तुपाल १ तेजपाल (६९-१) २ माहति नगरह वर्ष

पाचना हूया । तिसरि तिहां मनुष्ये ज्ञात पण्डि । एतति

तिहां थकी आसराज पश्चिम दिशि गड गकट पत्तन

रख्यो । तिहां मनुष्य बालक मोटा तत्रयन दधी गाम

ठिकाण पण्डि । तिहा थकी एतल पादिकात्र गामि

पातानें दक्षि आगे रत्ता । तिहा २५ आठना वि वात्स

हूया । तिसरह वृत्त कूपिकाना यापार कन्ह । एहनि तिहां

श्री भुजनचन्द्रसूरी विहार करता आ या । सा० आम

राजह धरर ज्ञान आलगाया । गुह वि वात्सके पुनवत

जाणी तिसरह श्री गुह वि० स० १०६० वषि वस्तुपा

ल्लह जिनज्ञासन निर्नि कारक उत्तम याग्य जाणी अवि

का १ अनि कन्ह यक्षनआ २ ३ दीये । गुह

विहार करता तारणगिरि श्री भजिनाथनी यात्राह गया ।

कटलेक दिन सा० आसराज तिहा थकी श्री कुअर पुन

वि पञ्च गड धरलकट नगर आगे रत्ता । इहां थकी गुहदत

वरनह महिमाद दिन २ यापार थकी उदयवत हूया ।

एहनि रिक् २ स० १०७४ वष वस्तुपालन ललतादस्यु

पाणी ग्रहण हूआ १ पुन भ्रातृ तेजप २ने अनापदस्यु

पाणिग्रहण हूआ (६९०) २ । एहवे माता कुअरदनी

स्वग हूआ । तिसर इग्यारनह आनरह पिता सा०

आसराजना स्वग हूओ । एव २५ १८ न्यापारे हूया ।

तिणहिय त्रिं अविका-कन्ह यथना हूया थकी राजा

श्री गीरधरली वस्तुपालने वणा आग्रहि मनि पद दीया ।

तेजपालने भवारी पद दीये । अणहिल वात्स आगार

निपजानी तिहा रत्ता । तन निहा भवारी पद तथा

मनी पदनह निलक अरसनि मनी वस्तुपात्रे ज्ञाति त्रिं

पाठण माहति पापतो हूओ । एहवे पाठण नगरश्रद्धीने

घरे भनीतय्यना याग थकी अजाणपणे नुहतरा वीसरया ।

त सठनो पुन वष १३ नो स सामान्यपणा थकी घी

तेठ हल्लर हीया वकी चिट्ट पुहरे २२ आ या । एतले

माताने रुदन करती दीठी । त दधी पुन कहे-ए किम १

तिगारे माता कहे-आपण घरे उत्तरा गही । अनि ए

राजमत्री भाग्यवत हूओ पिण ७ छिद्र सहित उड । यन

ययोवृद्धारतपावृद्धा ये च वृद्धा बहुमता ।

सयेपि धनवृद्धाना ढार विधिति किररा ॥१॥

इम विचारी तीणद वृद्धा वेदा आगलि कहे—आम राज प्रागान सा०, कु (७-१) ग वाल विधना श्री माली, मली तेहना पुर, मागे उठ प उ३ । ए नात पुलने सवली कही । न सामर्थ वेगने हर्ष हूओ । एतले जिहा समग्र साजनो भोजन करइ छ मुख्य ग्रहस्थ हर्ष मई बडा वार्ता करइ छे, तिहा तिणे आनी चोराधी राजनानी आज्ञा करी, विहाथ ओडी, माताद कही जे विपरीत वात, तहनी वीनती सरल साजानानद बीधी । विचारइ तेहना साजनो कहइ—रे मुग्ध ! तु कुण घर आ पत्तने मुख्य हुई ? ते ए कीसी वात कही ? लाजतु नथी । एतले ते कहे मत्रीनी उत्पत्ती सवली ते वृद्ध ग्रहस्थ आगलि प्रकासी । सामली सकल लम्पान हूआ । चितद सोदह पड्यो । सकल साजनइ तेहनी माता वृद्धा पड्यो । तिणे कल्प युग परइ नुहतर नही, अनि तहन घरे तुम्ह द्रव्ये गया । पिण तुम्हे सकल साजनो जाइ बरडी गामी ज एहनी उत्पत्तीना कारक श्री भुवनचक्र गुरु सत्य गौत्रीयाने पूजे । तिणे साजने वृद्ध गुरु पुठ्या । तिवरे श्री गुरुदयार्थ कर्षो । एतालि त पाणि आया । मत्रीनी वात माहा माही कहीवइ नगरमा तथा अन्य गामि वि (७-०) स्तरी । एतले तिहा थकी वि०स० १०७० वर्ष मली रस्तुपात्र १ तत्र पात्र २ थकी प्रागान लघुशाखा प्रग्न हद । एतले स्वशास्त्रीया परशानाया दुर्बल ग्रहस्थने भोजन नेडी कल ० स्वर्ण मुहर देह स्वशात वधारी नाम राघु । सकल जाती जीम्या । त लघुशाखा हुइ । एतालि श्री भूवनचक्र सूरि विहार करता पाणि आया । महामाहोत्सवि सागइ पवराज्या । चामासइ रक्षा । म० रस्तुपाल गुरु उचनद पचासपास प्रासादि रधि माहि प्यार पांड साधर्मिक सतायद । पुन बुभारपात्र विनिर्मित श्री तीहुणपात्र विहारि एकादसि, चतुर्दसिह, अष्टासरी पुजा स्वजाति साधर्मिक पायद । नित्य सनरभदि स्व नीमोषित श्री साधुपुत्र प्रासात हुई । एकत्रा श्री भुवनचक्र सूरि म० मति उपदेश कइ

जीय जलविदु सम्म सपत्तिआ तरगलालाजा ।

सुमिण च सम पिम्म ज जाधि० ज करीज गु ॥१॥

एहो उपदेश सुष्ठुय थकी सामर्थ मत्री रस्तुपात्रि वि०स० १०८० वर्षी श्री अ (७११) वृद्धापरि प्रासाद थम थाप्या । पुन वि०स० १०८० रधि प्रासादि कलस दड ध्वज चढाया । श्री नमिषर थाप्या । तिहा श्री भुवनचक्र सूरि स्व शीथ ७० श्री जगचक्रने तथा प० देवेदने सूरि पद बीषा । तिणहिज प्रासादि विदु भ्रातानी लायइ न न लक्ष द्रव्य वारने स्व र नामि विदु आलीया नीपजाडी नाम राघु । तिण हिज वधि श्री गिरनारी म० रस्तुपाले उद्धार बीषा । एतलइ श्री आडु, सिद्धाचल, गीरनार, ए तिहु तीर्थ अडार लक्ष मत्प्यद ७० श्री देवभद्र आ० श्री जगचक्र आ० श्री देवेद प्रमुष स्वेतावर इग्यार आचार्य, पुन दिगवर म० एकरस आचार्य युक्ति यात्रा करी । सकल सध सहित म० रस्तुपात्र पाटणि आया । कल्कि तिने गुरु श्री भुवनचक्र सूरि स्वर्ग हुआ । तिवारे मत्री वण आभही ७० श्री देवभद्र आ० श्री जगचक्र आ० श्री देवेद नर वीनती करी पाण्ये चोमासु राख्या । उतराइ चढमासइ म० नी आज्ञा लही विदु विहार कीषो । भीलडी नगरइ श्री पास दर्शनि आया । एह तिहा हिंदुआणि (७१०) दश थकी श्री सामप्रभ सूरि पिण विहार करता भीलडी नगरे सह हर्षि पास दर्शनि आया । तिहाइ ७० श्री देवभद्र, आ० जगचक्र, आ० देवेद, ए तिहुए श्री सामप्रभ सूरि रादणइ करी वया । तिनारी श्री सामप्रभ सूरि परतर, स्वपक्ष, आगिम, राकापक्ष, विश्वदधिक, उपकेश, जीरावली, गणागान, निवगिया, रत्यादि आचार्यनी ज्ञानि वि०स० १०८६ रधि श्री साम प्रभ सूरि १ मणिरत्न सूरि जगजीव आच तपना चारक १ पुन समना आदि गुण आगन जाणी स्व गज लद आ० श्री जगचक्र सूरि नर पानानी पाणि थाप्या । श्री बीजापुर नगरी ७० श्री रमभद्र, आ० श्री जगचक्र सूरि, आ० श्री दय, ए तिहु चोमासि रया, अनि श्री सोम प्रभ सूरि १ श्री मणिरत्न सूरि ० रादनी

नगरी चउमासह रखा । एतन्नि पुन म० परंतुपाल
 बीजी बार सपपनि हुआ । श्री सोमप्रभ सूरि, श्री मणि-
 रत्न सूरि, आ० श्री जगधर सूरि, आ० श्री देवेंद्र सूरि
 उ० श्री दामधर सहित श्री सिद्धाचल यात्रा जातां मार्गि
 श्री गढ़ाणि नगरे सय उ (७२-१) त थीं । तिहा
 श्री मां० शा० पु० सा रत्ने दक्षिणावर्त्त शस्त्रन महि-
 माह सत दिन ताद नाना गिणि मुखाशिरान्द भाजनि
 तथा सपन्न आभयणि पहिरामणी सय सपनद कींसी ।
 तिहा थरी मत्री माररी प्रमुप नगर म्य ज्ञाति साधर्मिक
 प्रति नगरे नगर गामि गामि पक्वान आमयण पद्ध
 सतावता हों । श्री सिद्धाचल, श्री गिरिनारनी यात्रा
 नरी देवनि पाटणी सय आख्या । तिहां मत्रीह नूतन
 प्रासाद निपजावि श्रीचंद्रप्रभ स्वामिना विव थाप्यो ।
 श्री सोमप्रभ सूरि १ श्री जगधर सूरि २ प्रतिष्ठ्यो ।
 तिहा मत्रीह स्वशात धनु सतोषी सर्मिकनि सतोप्या ।
 अणहिल पाणनि सययुक्त श्री सूरि अनि मत्री आया ।
 उ० श्री देवभद्र, श्री जगधर, श्री देवेंद्र, श्री सोमप्रभ
 सूरिनी आशा एही पाण्णपुर ह चोभासाह रखा । श्री
 सोमप्रभ सूरि अकालीह चोभासी रखा । श्री मणिरत्न
 सूरिह हिदुआणि दक्षि विहार रया । श्री सत्यगुरि
 चोभासी रखा । श्रीउत मत्रीह सय यात्राना मनुष्य
 मनुष्य प्रति पाणनि सुगर्ण सुहर दीधी । चउमासह
 उतरह पाण्णपुर (७२-२) यकी उ० श्री देवभद्र आ०
 श्री जगधर सूरि, श्री देवेंद्र सूरि विहार करता आबु,
 दाहिआणाक, नदिय, बाढण वाटक इयायादि तीर्थ
 परमी अजारी नगरह श्री गिर प्रासाद श्री सूरिह अठम
 तपि श्री शारदानो स्मरण कीधो । ब्रह्मणी प्रसन्न हई
 कहि तुझ किंति हुसि । ए सारदा दत्त गर लेई श्री
 सूरिह मवाह देसि विहार कीधो । एहवि श्री सोमप्रभ
 सूरि एक शत्रुना शत अर्थना कर्ता, पुन श्री सिंदर
 मकरण यथना कारक श्री श्रीपालि नगमि स्वर्ग हूओ । १ ।
 अनि न्यु गुह भाद श्री मणिरत्न सूरि नगरे प्रकण
 कर्ता ते बिमास अतरि श्री थिराद नगरह स्वर्ग हूया । २ ।

हनि मनि वस्तुपालन अणहिल पडनि १ आसा

पटीह = स्वभायाति = प्रमुप नगरे उपपन्न कोटि द्रव्य
 मूमध्य नद २ ज्ञाति त उपरि देवमनिनिर्जा भरी श द
 हुइ . न समय द्रव्य सुकृति कीना त कट्टह—अद्वार
 कोटि द्रव्य तीर्थ यात्राम उन्नमणि त्रय कीधा । आबु,
 पाटण, उन्नगर, सययन, द्यवि, पाटणि, भृगुवन्द,
 गुना, युडि गाल, सादरा, प्रमु (७३-१) न गगह पाच
 हजार प्रासाद नीपजा या । सय त्रय जिन विव निप
 जाव्या । त माहि पक्वान्ति हमार सुगर्ण पीन धाव
 मयि जाव्या । श्री ताणगिरी, श्री भीरडी नगरे, श्री
 ईंदरगिरी, श्री विज्ञानगिरी, श्री शारगिरी, श्री विज्ञापुरी
 चितामणि पास प्रासादि, पुरहानि पद्मप्रभ प्रासादि
 इयादि त्रयि शत जिणाद्वार निपजाया । नव शत
 अनि चउरासा भम्मशाला निपजावी । पाच शत सभा
 सरण निपजा या । पुन देवनि पाटणि ज्ञान कास ईश्वर
 लिखावी सा स्या । बीरस हजार श्वेत चदननी डबणी,
 उगाणीस हजार रहिल नीपजावी । ब्रह्मातीम
 हजार सापुडी रानी नीपजावी । पुन रमणी शत
 चदन, मोती, प्राला, गुर, प्रमुपनी नीपजावी, नगरी
 गामि २ देवदसातर पुण्यार्थ दीधी । पुन द्रव्य सख्या
 कट्ट उद—शठकाबी अनि नाणु लाल दवा यात्रा
 स्नान प्रासाद विव थापन, श्री पुडरिक गीरी, आरम
 हेतुना कारण माहि सुकृति ताव्या । पुन अद्वार
 कोटि अनि आसी लक्ष टका श्री रोनाचलि सुत्र (७३-२)
 तिह कीधो २ । पुन बारकोटि अनि प्रहियन लक्ष अ
 धिन श्री अर्जुदाचले सुकृति कीधा ३ । एतले ए
 आगणीस सयकाटी, अनि आसी कोटि, अइसी लक्ष,
 गीस हजार, नगसय अनि ताणु टका त नव चउकडीह
 उणा एतले द्रव्य मत्री श्री वस्तुपालन तिह तिर्थ सुकृति
 कीधो । पुन कविता —

पाच अरबनद अरन कीधा अणे जीमण दाह ।

सात अरबने सरव दीध टाक परिहार ।

द्रव्य पञ्चासीय कोडी दीध भाजक गड भड ।

सत्ताणु सय कोडी फूल तवेली हट ।

चंदन चीर कपूर मधि कोडी बहूत्तरी कपडे ।

पोरवाड वंश श्रवणे सुण्यो श्रीवस्तुपाल महिमंडले ॥

इत्यादि अनेक सूकृतीकारक श्री भुवनचंद्र सूरि उप-
देशात् श्री अंबिका करड्यक्ष सानिधकारक, प्रागवाट
लघुभाषा विरुदधारक एव नर्ष १८ सुकृत कीयु । सर्व
आयु वर्ष ३६ संपूर्ण तेहनो वि० सं० १२९८ वर्षी
अकेवालीया गामि सं. श्री वस्तुपाल स्वर्ग हुआ १
पुनः वि० सं० १३०२ वर्षी लघुभाई म. तेजपाल
(७४-१) चंद्राणा गामि स्वर्ग हुआ । २ ।

इति सं० वस्तुपाल तेजपाल संबंध ।

४४ तत्पट्ट श्री जगच्चंद्र सूरि ।

पछी सत्तर सय अनि पंचावन वर्ष गयइं हूँते, पुनः
वि० सं० १२८५ वर्षे वैशाख सित त्रीजने दीनी
राऊल श्री जयतसिंह दत्त तपा गछ विरुद श्री जगचंद्र
सूरिनि हुआ । एतलइं प्रथम पट्टपर श्री सुवर्मा स्वामी
थकी निग्रथ गछ एहवु नाम प्रथम कहिवाणु, ते आठ
पाट लगइं ए विरुद कहिवांणो १.

तिवार पछी नवमइं पाटिं श्री सुस्तिता स्वामी अनि
सुप्रतिबुद्ध स्वामी ए विहूँ गुरु भाइइं काकंदी नगरीइं
कोटी बार सूरि मंत्रनां स्मरण कीये, तेह थकी बीजुं नाम
कोटिक एहवु गछ कहिवाणु, ते गछ छ पाट लग-
(७५-१) ण विरुद जाणवो २.

उ० श्री देवभद्रना शिष्यने दीधा । ते शिष्य सीता नगरे शाखाधारक हुए रखा । श्री सूरि आहूट नगर थी विहार करता श्री नडलाद नगर देव दर्शन करी श्री सीताही नगरहं चौमासि रखा । तिहां उ० श्री देवकुशलनो स्वर्ग हुआ । तिहां थी श्री जगचंद्र सूरि १ श्री देविंद्रसूरि २ ए बिहं गुहभाई विहार करता गुजराति धवलकि नगरी चडमासि रखा । एहवि तिहां माणसा गांन वास्तव्य आ० वृ० आंन मौनि सा० विजयचंद्र, राजा श्री वीरधवलने गामनी उत्पत्ती खपनी लयनो कोदक मोटि अपराधि राजाई कारागार दीधा । ते किमही काडहं नहीं । तिवारे विजयचंद्रह श्री देविंद्र सूरिने कब्जा जे मुसने कारागार थी कडावओ सो ह गुहारा सिम्प थाउं । तिवारि श्री देविंद्र सूरिद मत्री वस्तुपालने कही सा० विज (७६-१) यचंदने बरीघांणायी कडाव्यो । तिणे श्री जगचंद्र सूरि हस्ते दिक्षा लीधी । ६० विजयचंद्रनाम दीधुं । पिण लिगारेक अभिमान धरहं । चउमासी सपूणि धवलकडं थी श्री जगतचंद्रहं विहार कीधो । भेयाडि धावल नगरी आठ्या । तिहां ६० विजयचंद्रने उत्तम पात्र जाणी श्री जगचंद्र वि० सं० १२८८ वर्षि आ० पद देह श्री विजयचंद्र सूरि नाम दीधो । श्री जगचंद्र सूरि १ श्री देवेंद्र सूरि २ आ० श्री विजयचंद्रसूरि ३ विहार करता कउआणा नगरे चौमासि रखा । तिहां थी मोसिल गामि आठ्या । तिहां सात दिगंबराचार्यसुं जैन वाद हुआ । श्री श्रुत-देवीनी कृपा थी तेहने जीत्या । एतले जैन शास्त्रने वादि हाय्या नहि, तिवारी हीरानी परे निर्मल अभेद्य देपी लोक ' हीरला श्री जगचंद्र सूरि ' एहवी कीर्ति कही । तिहां नाणावाल, कोरंटक, पिपलक, वडगड, राजगड, चंद्रगड इत्यादि केतलाक शाखाधारीहं श्री सूरि हस्ते किया उद्धरी तेहने स्वगछे लीधा । तिहां श्री सूरिहं वंदणक, विवंदणक, प्रतिकमणा (७६-२) दि प्रभुए रवगडनी सामाचारी थी । ते पाहेलां छ आव-स्यक लगानि किया करता, श्री सूरि आविल तगनो आराधन करता, निर्मल वपाचार धरता, योग्य जीव प्रते

गुउपदेश करी संसार थी उभगता, मयादंदसि विचरता, अनुष्ठमिं धीरशालि गामे आयु पर्यंत आविल व्रत कारक, तपागड सामाचारी धारक, पुनः श्री तपागड निष्ठ धारक, श्री जगचंद्र सूरिनां वि० सं० १२९७ वर्षि स्वर्ग हुआ । पुनः की दृश श्री गुरु ?

श्रीगुरु वद दर्शनकारा माति दात

दूरी कृत दुषण गुण निधान

युग पद धारक जयतीशः

भवि मानव कुयलय मामिनीशः ॥ १ ॥

४४ तरंगे श्री देवेंद्र सूरि ।

लवु गुरु भाई श्रीविजयचंद्र सूरि २। ए वहु मयाद देश थी विहार करता मालवहं उम्हेणी नगरहं श्री अवंती पासनी यावा कीधी । तिहां श्री देविंद्र सूरिहं श्री विजयचंद्र सूरिनी गुजराति विहार करवानी आज्ञा कीधी । तिवारी श्री विजयचंद्र सूरि गुजराति गया । श्री संभायति आवा रखा । अनी श्री देवेंद्र सूरि मासकांति उ(७७-१) उम्हेणी रखा । तिहां खंडेपाल जाति सा. जिनचंद्र तेहना पुत्र वीरधवल १ अनि भिमसिंह २ ए बिहु बंधव प्रति पाणिग्रहणनदं आत्मवि श्री गुहटं धम्मोपदेश देह वि० सं० १२९८ वर्षि नि भाडने दीक्षा देह वीपणि १ अनि भीमणि २ ए नाम दीधा । तिहां थी हीरायाणी नगरी चउमासे रही श्री पायकाचलि संभव देव वंदी श्री देविंद्र सूरि कर्पटवाणिज नगरी आठ्या । हवि श्री संभायत नगरे श्री विजयचंद्र सूरि रखा छे, तिणे श्री देवेंद्र सूरिनी आज्ञा निना कियाड भिथिल साधु प्रति ५० उ० दिक्षादिक दिहं स्व आशाद यत्ने किधा अनि रहस्थने आवर्जन निमित्ते प्रतिकम्पणादि किया करता हुआ । पुनः मालवहं थी आवी मोटी पोशाल ते श्रावकने उपाश्रयहं एकवाति रखा । किहां विहार न कीधो, नगरमां मास कम्पणि न न सानग्यो । एहवओ गडना साधु मुप थी सांभवी श्री देविंद्र सूरि कर्पटवाणीय नगर थी संभायति श्री गंधण यावाड आठ्या । तिवारी श्री विजयचंद्र सूरि तथा तेहनी (७७-२) पक्षना साधु मत्सरि

ધરી । શ્રી દેવેન્દ્ર આવી સાધવને ઉપાશ્રે નાહની શાલાહ આવી રહ્યા । તિવારી ગૃહસ્થ માહા માહી પૂછડ—જે હુમ્દે શુભ વાદવાનહ કુળ શાલાહ જાસ્યા ? તે સામલી અન્ય શ્રાદ્ધ વહદ વિદુષ્ણ એ સૂરી એક ગુલ્લા શિષ્ય હદ તદ થકી આપ આપણુ ચિત્ત પ્રશન્ન હુદ તિહા જાહ વદના કરા । એવલઈ શ્રી વિજયચંદ્ર સૂરી તો પહેલા થકીજ વૃદ્ધ શાલાહ રહ્યા, એતલઈ વિજયચંદ્ર સૂરીના સાધુ સમુદાયનહ મનુષ્યે વૃદ્ધશાલિ કહ્યા, અને શ્રી દેવેન્દ્ર સૂરીના સાધુ સમુદાયનહ, નાની શાલાહ રહ્યા તહ થકી શ્રાવકે લ્પુ-શાલિક કહ્યા । એતલે શ્રી વિજયચંદ્ર થકી વિન્સ૦ ૧૩૦૧ વર્ષિ શ્રી વૃદ્ધશાલા નામિ ગઠ હુદા હુઓ । હવી લ્પુશાલિક શ્રી દવેન્દ્ર સૂરી પાન્હણપુરે શ્રી પાન્હ વિહારી શ્રી પાસને નમરા આવ્યા । તિહા તિળહીજ પ્રાસાદી દિન પ્રતિદીન અક્ષત એક મુઠે અને સો મળ સોપારી આવ છે । એતલે જન ગૃહસ્થ ધણો હદ । શ્રી સૂરી ચડમાસિ રહ્યા । તિહા વિપ (૭૮૧) વિને શ્રી ગુરુદ સૂરિપદે, શ્રી વિદ્યાનદ સૂરી નામ દીધો । જની વીજા મીમઝીને પાઠકપદ શ્રી ધર્મકીર્તિ નામ દીધો । શ્રી ગુરુદ શ્રી વિદ્યાનદ સૂરીને હ્વરગાદિ શ્રી જ્ઞાતિ દર્શનનહ વિહારની આજ્ઞા કહી । શ્રી દવેન્દ્ર સૂરી જ્ઞાપાયતિ આવી ચૌમાસી રહ્યા । શ્રી ગુરુ સદૈવ ડપગારી પળિ ધર્મ કથા કહ હ । એકદા ગુરુ ઘાળી રજિત થકા શ્રી ગુરુ પ્રતિ શ્રી માલિ સા૦ સાની મીમઝી ધીનતી કહદ—શ્રી ગુરુ મુશને કુપા કરી કાઠક હિત શિક્ષા કહો । તિવારી ગુરુ કહદ—સત્ય વચન મુપ થકી બોલી મનુષ્ય જન્મ સફલ કરઆ । દે સામલી મીમઝી મનસુ વિચારદ જ સાનાર-નઆ વ્યાપાર તા મિપ્યા વચનનો જ હદ, પિળ મુસસુ ગુરુદ વચન વિમલાપાદ, એહુ મનિ ધારી ગુરુમુલિ સો. મીમઝીદ શ્વદુ નિયમ લીડુ જે મદ સદાકાલિ સત્ય બોલુ પિળ અસત્ય નહીં । તે ધણે યત્ને સત્યનીયમ જાલગીને રાપદ । એકદા સારી મીમઝીનહ મહિતદિ ચારે શ્રદ્ધા । મીમઝીનહ મીઝ પૂછડ હુમ્દે ધરી કેતલા દ્રવ્ય ડઝ ? નિ (૭૮-૨) ઝરે સાની મીમઝી મનસુ વિચારીને કહે હદ જે ચાર હજાર રકમનો ધર વાપરો હદ । મીલ્લ તનલોજ

દ્રવ્ય માગદ, તિવારદ સા મીમઝીનદ પુત્રદ સોટા નીકલચી દ્રવ્યે નીપજાઝી ડઝ મરનાની ચોરનો આપ્યા । કહી, પરબી લીઆ । મીલ્લ કહિ, હદા કુળ પારસુ । એહિજ સાનાર હદ । કારાગાર થકી કાઝી કહદ—આ દ્રવ્યની પરિક્ષા કરી । તિવારદ મીમઝી ચિત્ત સુધિ ચિતારદ જે—કૃત કર્મ ઉદય આપ્યા ડદ, અને વલી ઉદય આવદ, તઓ હુ મિપ્યા ન કહુ । એહુ જાળી, કહી એ દ્રામ સકલ જાટા ડ । તે મીમઝી ડ વચન ચાર સામલી મનસુ ચિતવદ જે એકતઓ આપણા પુત્રને સૂઝા કીધો, અને આપિ પળ વધીસાન રહ્યા । જ્ઞાપિ સાની મીમઝીદ કિસુ કીધુ ? તિવારદ મીમઝી કહદ—મિપ્યા કહ્યાનો માહરદ નીયમ છે । ચોરે પિળ તિમજ અન્ય મનુષ્ય મુલિ સામસુ । સત્ય-વાદી જાળી પહીપતિદ પાષ વક્ષ પહિરાવી ગામનો કામદાર થાપી ધણે આદરે ધરે મુક્યો । શ્રીગુરુકાર્તિ હુઈ । હિત સૂરી ઉપદેશાલ સત્યે સો૦ મીમઝી સવધ । (૧૧૧)

શ્રી દેવેન્દ્ર સૂરીદ શ્રીજ્ઞપાયત નયરિ ડ કર્મમથ—સૂત્ર અને તેહની ટીકા, સિદ્ધપચાસીકા—સૂત્ર અને તેહની ટીકા, શ્રાદ્ધવિનકૃત્ય—સૂત્ર અને તેહની ટીકા, પુન. માપ્ય ૨ તેહની ટીકા, હત્યાદિ પ્રથકારક શ્રી દેવેન્દ્ર સૂરી સત્યપુર નગર નિ સ ૧૩૨૪ વર્ષિ સ્વર્ગ હુઓ । એવે દેવના યોગ થકી શ્રી ગુજરાતર ધીજાપુર નગરદ શ્રીવિદ્યાનદ સૂરી પિળ દિન તરનહ આતરદ સ્વર્ગ હુઆ । તિવારે ડ માસ લગનહ ગઠ નિરાધાર હુઓ । પછી યદ-ગઠિક વૃદ્ધશાલિક શ્રી ક્ષેમકીર્તિ સૂરી પ્રમુપ મોઝીક આચાર્ય મીલી શ્રી પાન્હણપુર નગરિ ડ૦ શ્રી ધર્મ-કીર્તિનહ સૂરી પદ દેદ શ્રીધર્મધોષ સૂરી નામદ પાટ થાપના કીધી । તિળહીજ અવસરિ તે પ્રાસાદ મહપિ ગોમુલ થતિ હુકુમ વૃદ્ધિ કીધી । એવદ વૃદ્ધશાલા નિકદધારક શ્રી વિજયચંદ્ર સૂરી તત્પદે શ્રી ક્ષેમકીર્તિ સૂરીદ શ્રી ગુહત્કલ્પની ટીકા વિ૦ સ૦ ૧૩૨૪ વર્ષિ બહિતાલીસ હજાર નીપગાયી ।

४६ तत्पट्टे श्री धर्मघोष मुरी ।

विजयवत विहार करता तारणगिरे (७९-८०) श्री अजितनाथ गौरी श्री बीज्यापुर चामासि रया । तिहा सकल गृहस्थ सदेव श्रीगुरु मुनि धम्म व्याख्या सामलि । एतलि श्री माली वृद्ध शाखा सा पेय उददेश सामली शुभाशय थीकी बुर्या । श्री गुरुनद उदर-मुक्ष पूर तउ पुण्यनइ योगे करी महारद घरे सामानपणाह अस्प द्रव्य छद् तेह थीकी मुक्षन पाचमो परिग्रह परिमाण मत उचरावओ । आत्माभे माहर्ह रुम पचगत रायवा ते उपरात नायम । तिरारे श्री सरी बह-हे गृहस्थ । सुम्हार पूर कृत पुण्य करी सुम्हार भाग्यना उदय हुणहार उह, बह थीकी सुम्ह निमित्तइ पाच हजार रुक्मना जयणा रावा । अधिक हूद त सुकृति करव्यो । इम कही परिग्रह प्रमाण तत श्रीगुरु उच राव्यो । तिरार पटी सा० पेथड लाटाखी गामि वख, शुड, धी, साफर, सांड, छनण, तेल, हांग, हल्लद ममुष व्यापार थीकी केतलक दिने पुन्योदये राजा श्री-सागरदेवनो कामदार हूओ । माहा रुद्धि पाव्या । तिबार पोताना पुत्र झालणने वडाउली गामि पर (८०-१) पाव्यो । सा० झालण पोतानो स्वामी जाणी राजाश्री सागरदेवनइ जुहार करवा गयो । तिरारे सागरदेव ४ सा० झालणनी, बाल छौने ओत्साइ बईसारी पाताने देशि, नगर, गाम प्रति प्रतिभुपुण्यइ सुवर्ण गदी-याणो एक कधूकीने ठिकाणे दीधा । तिरारि सा० पेथड नद तरे घोडइ दिनइ उणा सुगर्ण हूओ । मनस्यु निचारइ जे माहर्ह तो श्रीगुरु उचनानुसारी पाच हजार रुकाने लप उह । पिण द्रव्य अधिक सुकृतइ देवओ । एहवइ श्री पर आव्यइ हुत परिग्रह परमाण वतना दायक उपगारि गुरु श्री धर्मघोष सूरिने चैत्य परवाडि श्री चितामणी पासना दर्शनना असरे ७२ हजार टका सयने पहिरामणी कीधी । सब वात्सल कीधो । श्री गुरु उपदेश थीकी वाचन देव कुलिजा युक्त कोशकोडी नामि प्रासाद प्रमुष ८४ प्रासाद निपजाव्या । शत जीर्णोद्धार निपजाव्या । पुन श्यार ज्ञान काश अण

पिछ पनने लियव्या । त्रि २३ प्रासादने शिपरद स्तर्ण कस निपजाव्या । श्री गुरुने उचने श्रीमि (८०-२) द्वाचिने १, तारणगिरे २, श्री बीजानगर ३, श्री पी-सीना गामि ४, इडरगडि ५, ७ पच तीर्थनो सय पति हूआ । उप्पन्न बहो सुवर्ण व्ययइ श्री सिद्धाचरइ श्री वर्तमान चांगीसिद् प्रथम त्रिनना मुषागण्ड सा० पथड इडमालख पिहरी । वर्ष उमीम समइ श्री गुरु मुनि उल तत लीम । पुन एउरीप बई सुगर्णना साल, आगुन जणनी प्रमाण जडा उपजाश ते खानी मुउ गमाएणो मडप कावा । इणि पति सा० पथड पुन सा० झालण अदार भार काचन वायरी स्वन्याया पार्जित लक्ष्मी नफली कीधी ।

एकदा एकादशी दिने वृद्ध मस (१) श्राद्धी व्याख्यान अससइ श्री गुरुने गौरी कहे-चनओ । तुम्हे ते पाड महलना किम विसरी गया । तिराछे गुरु कहि उम हाज बईसओ । तिरारे ते श्राद्धी व्यतरी कही अमारी नीति हूद त किम मिहइ । एतलि सतश्राद्धी रुप व्यतरीन चेले पाटला आवा लीधा ते वेठे एतले श्री गुरु पाटलद थीकी । धम्म कथा विसर्जन (८१-१) इ ते घरे जायस उठी, तिरारे पाटला आसनी बिलगा आध्या । लेखि हास्य हूओ । ते व्यतरी श्राद्धी वउ लजा पामी । अन्य दर्शनी तथा जैन गृहस्थ एउआ हुआ । ते व्यतरी रांक पणु मुसद उचरइ, आज पटी एइवा साधुना अनिनय नही कर । श्री गुरु दया आणी, पाटलाना बचन थीकी मुनी । ते गुरु गौरी ११ पुर्ती, पिण निते गुरु उपरि राव बहइ । एकदा ते छोए कामेण ५ वटका साधुने बरिपव्या । त वटका गोचरी आनेता श्री सुराई दीठा । तिरारइ ते व्यतरी सुदृष्टि नाडि, त बटक श्री सूरि साधुने आहारे निषेधा । एकाति भूमिमुकाव्या । बिजे दिनइ प्रभाति जोगा ते पापणना बटक दीठा । पुन केतलेक दिने ते व्यतरीइ श्री गुरुना सुराई जाणा, सरभग करवाने गुरुनी गलनालकटि कशने गुच्छ का था । एतले श्रीसूरिइ ते व्यतरी कांय जाणी गलनाल-कठि रजहरण केव्यो । श्रीसूरि नद समाव हूइ । उष्ण

कालि श्री वज्रापुर धकी विहार करता गोधिरा नगरई-
व्या। (८१-२) तिहां डाकिणिना उपद्रव थकी सांजनी
वेलाई साधु घंटाकर्णने मंत्री मंत्रीने कपाट देता, अनं जे
दीवसई श्रीसूरी आव्या तेहिज दिने उतावली रात्रिइ
कोइक अजाण साधुइ घंटाकर्णने मंत्र मण्या विगेर
शालाना कपाटनी जयणा कधी । गुरु पिण पोरसी कही
पाटि संथान्या छरं, नित्राई आव्या । एतली व्यंतरी
प्यारे मीली आवी गुरु संथान्यानी पाटि प्यारे पाइया उपाडी
आकसे लेई चाली । एतलई श्री गुरु जाग्या, डाकि-
णी जांणी, बिहुं दिसि रजहरण फेरव्यो । तेतलें डाकिणी
आकासे मल्लकिं पाट सहित अथर लटकई । याच दीधी
हुम्हारई गडदं उपद्रव नहीं करं । प्रभात कालि संघाग्रहि
मूकी । तिहां थकी सूरी विहार करता मालव देशि मांड-
वगदि आव्या । तिहां श्री सूरीना उपदेश थकी माग्याट
साति वृद्ध शाबां स० पृथवीधर बहिताओस हेम घडी
वेघो प्रासाद एकरीस स्वदेसे आने धार नगरइ प्रमुपई
पिणजांव्या । ते माहि मूल नायक सकल विष सत
धातुना थाप्या । श्री धर्मवेष (८२-१) सूरीई प्रतिष्ठ्या ।
श्री गुरु ब्रह्मबल नगरे आव्या, तिहा रात्रि अहिडंस
हुओ, संधेने व्यय चित्त जाणी श्री सूरी संघ प्रति कहई-
प्रभाति नगरनी पोल उघडासि, तिवारइ प्रथम सुका
काष्ठनी मारी आगस्यइ, ते माहि काम योणि सकल महा
विषपहारण नामि ओपघेनो मूल सप्याकारी हुसई,
तेहनी आदा संतगु घसी अहिडके देख्यो । एतलि
मुझनी समाधि पास्ये । श्री सवि तिमज कीधो । श्री गुरु
समाधि पणि हुआ । ते दिन थकी श्री सूरी नावजांन
लगी छ विगमनो नीम लीधो, अनि सदाकाल युगधरी-
नो आहार करवो, ए बिहु नीम लीइ, श्री सूरी अवती
पासना दर्शनइ उ-कंठीत थका उज्जैणी नगरइ आव्या ।
तिहां पाखंडाना उपद्रव थकी यती कौई चोमासु न
रहइ । ते संकल वार्ता श्री गुरु सधनी पूछे निर्णय
कीधो । एतलें मव्याने यी मोचरी जाता बाजरी देघो
पाखडी जडीने यतीने देवाली कहे-तुल अत्र चोमासइ
थिर हुई रहिग्यो । तिवार ते यति कहे-रहिवानइ

आव्यो छु, ते रहिस्यु ज । ते सांमली (८२-२) णि
पाखडीए यतीने कूर दांत देवाड्या । तिवार यतीई
तेहनी कूहणी देवाडी । ते सकल वार्ता साधुई आवी श्री
सूरीने कही । गुरु कहई मछ । एतलें संधानई समयई
प्रतिकमण कीधो पछो तिणे जटिल शालाई कोइक मंत्र-
नई योगई करी मूषक मेल्या । साधुई गुरुनि कछो,
एतलि श्री सूरीई नून घटनई मूषक कण्फक आछादी गुरु
दत्त आम्नाय स्मरण कीधो । तिवार ते जटिल बुंघाट
करतो आवी गुरुनई नमो कहइ-भाज पछो तुल गछि
उपद्रव नहीं करं । मई तुम्हने जाण्यो नहीं । इम कही
स्वयानिकेगयो । श्रीगुरु कांति हुइ । तिहां थकी वि-
हार करता नोलाई नगरे चोमासि रह्या । एहवई संघा-
चार १, कालसत्तरि २, कायस्थिति ३, प्रमुख ग्रथकारक
विक० सं० १३४७ वर्षि श्री धर्मवेष सूरी स्वर्ग हुओ ।
एहवई गुग्गुपति बीसलनगरा बाबब मंत्री माधव भाइ
केशव थकी राजा श्री कर्ण लडीनई तूरकाणी राग्य
हुओ ।

पुनः वि० सं० १३६३ वर्षि सिद्धपुरनगरि सि-
(८३-१) घराय कृत वदालयनो छेइ हुओ ॥

४७ तत्पट्टे श्रीसोमप्रभ सूरी ।

तेहनो वि० सं० १३१० वर्षे जन्म । वि० सं०
१३२१ वर्षि म्रत । वि० सं० १३३२ वर्षि सूरी पद ।
श्रीसूरीने ईश्याः अग सूत्राय तदभय जिह्वाग्रि नित्ये
स्वाध्याय करता । मूर्मंडलि झील, तप, सजम आरा-
घता मालव देशि विचरई । एहवि स्वर्गाश्रिया वृद्ध-
शालिक श्रीरत्नाकर सूरी प्रगट हुया, तेहनो संवव कहई
छइ ।

श्रीरत्नाकर सूरी ।

गूर्जर देशि रायलडी वडली नगरी वृद्धशालाई श्री
रत्नाकर सूरी सत बलसि मुक्ताफलना परिग्रह धारकं
रहेई छे । एहने धवलका नगरने वासी प्राग्याट वृद्ध
ज्ञा० सा० रत्ना व्यसनायार्थ तिहा आव्यो । श्री चिंता-
मणि पासने नमो शालाई श्री रत्नाकर सूरी वद्या, सपरि-
ग्रहि दीडा । तथापि श्री सूरीने महा उत्तम जांणी सा०

दनओ कहं—रामो तुम्हे मुझने पद्मासनो नियमनो
मासाद करे । तिसारी श्री रत्नाकर सूरि कहे—किस्यो
नियम ? सा० दनओ कहं तुम्ह वादि अन्न लेवो । जे
दिने न वांडु तओ अन्न न लीऊ । तेहनी श्री गुरु
तिमज नियम दिवो । एतले ते श्रावक छ (८३-२)
मासनो अभिग्रही हूओ । निरंतर सूर्योदये श्री पामनहं
नमी पढी रत्नाकर सूरिने त्रिण्य प्रदिक्षणाई बांटी मुला-
भि उमो रहि बिटु हाय जोडी मुयी महधि उपसमनी
गाथा कही विरदावहं छ । ते गाथा—

गोयम सोहम अंबू पभयो सिंजमवा य आयरिया ।
अत्रेयि जुगम्पहाणा ते दीठह तुगुरु ते दीठा ॥१॥
अज कयत्यो जम्मो अज कयत्यो जीवीय मुज ।
जेण तुह वदणामयरतेण सिद्धाई नैणाह ॥ २ ॥
धवरीया सुरबेणु संजाया मह गिहे कणयवुटि ।
दारिहं अज मयं दिठे तुह तुगुरु मुह कमले ॥३॥
पुनः—पंचिंदिय संवरणो० ॥ ४ ॥
पंचमहव्ययुतो० ॥ ५ ॥

पहवा बुद्ध आचार्यनी उपमा आपी हेठो वेसहं धिय-
पणहं श्री सूरि प्रति ललित नाकिय करी ए गाथानो अर्थ
पूछहं । ते गाथा—

दोसस्त मूलजालं पुष्करिणि विपञ्जिय जइ वत्थं ।
अयं वहसी अनयं किं च अन्नयं तयं चरसी ॥ १ ॥

इणि परि ते गाथानो अरथ पूछतां संपूर्ण छमास
हूओ । श्री सूरि पिण तेहनी निरंतर बुद्धिने प्राक्कमद
धकी ते गाथानो नवो नवो अर्थ कही समुझावहं । अ-
लुंक (८४-१) मि छमासने अंते सा० रनो गुरुने
बांटी कहहं भगवतारक निग्रय स्वांमी । मूल अजाणनहं
जेहवो अर्थ हुहं तेहवो ज कहओ । तिवारहं श्री सूरि
मनस्युं विचारि जे ए गृहस्थ घणे उद्यमि मुजनहं हितू
पणाई हं छहं । गुरु कहे छहं हे गृहस्थ ! तुम्हे प्रभाति
अवस्य आविने । किस्सा माटि जे हिवणां सत्य अर्थ
कथानो समय छहं नही । इम कही पिसर्जन्वो । तिवारि
संध्याह श्रीगुरु कलसी सात मुक्ताफलनो परिग्रह असार
जाणी धरदीहं पीसी छारी दीधो, एतले स्व क्षिण आ०

श्री रत्न प्रम सूरि कहे—श्री गुरु आ किरयु ? तिवारि
गुरु कहि—मुझ प्रातिबोधक गृहस्थनं ए गाथानो सत्यार्थ
कहियो छहं तेह धकी कटिणी अनि करणीमां फेर हुहं
बीजहं दीने प्रभाते ते सा० दनओ आबो पहिलानी परि
वादि मुप धकी कहहं तुम्हे कृपानियि मुझने प्रसन्न हुहं ।
सत्यार्थ कहो । ते गृहस्थ वचन सांमग्री श्रीगुरि रत्नहरण
मुपपन्न प्रमुख साधु धर्म्मना उपगरण संभाळी नारयण
धकी (८४-२) ' दोष समूल जाला० ॥ १ ॥ ' ए
गाथानो यथार्थ अर्थ कदा । एतलि ते श्रावकि सात कलसा
मुक्ताफलनो चूर्ण छारी दीधो देयी कहह आग मह दुद्ध
मुखि सत्यार्थ घणे दिहाइह सांमग्री तुम्हारी कृपा धकी
हु मय निसारयी । आज तुझारा दर्शन धकी मुझ जन्म
कृतार्थ हुओ । छेजे श्री वारना पट्टधर हूहं शासन शो-
भावओ । इम विरदावि सा० दनओ अनुमतिं स्व वरे
धवलकहं नगर पुंनो । एतलि श्री गुरुहं स्वशिष्य श्री
रत्नप्रम सूरिनि गठ मलावी श्री संवनी आसा लही
निष्ठह हुहं विहार कीधो । केतलेक दिने श्री सूरि
चित्रोद गदी आब्या । तिहां ओ० वृ० कुकट चुपडा
गोवि सा० समरा प्रति धर्म्मापदेश कहं छहं । यतः—
सहस्रं ? तुजुले जन्म २ सिद्धिक्षेत्र ३ समाधयः ।

संघश्चतुर्विधो लोके ५ सकारः पंच दुर्लभाः । १ ।

अष्टपथीषु तीर्थेषु यत्पुण्यं किल यात्रया ।

आदिनाथस्य देवस्य दर्शनेनापि तद् भवेत् । २ ।

मिने कत्वा मुनि भक्त्या, कृत्वा साधर्मिवात्सले ।

एन केन प्रकारेण पुण्यः प्रसिद्धो भवेत् । ३ ।

श्रीयु (८५-१) रनो उपदेश पहवो सा० समरो
पामी श्री सिद्धशैलि श्री सोमप्रम सूरि युक्त वि लक्ष
मनुष्यहं संघपति हुहं वि० सं० १३७१ वर्षे श्री ज्ञानु-
जय गिरि श्री रूपम विव थापि पंदरमो उद्धार
निपजाव्यो ।

तिहां सय साक्षि श्री रूपमना मुप आगलि श्री
रत्नाकर सूरिहं स्व चारित्र घडण आलोयाणि रुपि
'श्रेयः श्रियां मंगल०' इय रत्नवने पचवीसी निपजावी ।

वि० सं० १४ (८७१) ५७ यापि सूरिपद हुआ । श्रीगुरु मुजपत्तनर, अजारर, माहवा, प्रमुप नगरे विष्करता चउसारी नगराइ मत्तानियायत महिमामदिर गुरु प्रतिदया तिहा कोइक कठउ द्रयलो गोइ द्रयदेइ शस्त्रधारक पुरुषनइ गुरुतातिथि सग्ग कीधा । त दर्वुद्धि उम ताइ गुरु पाताथि गुसपणउ रखा । जतलइ अउचित काम करग उद्यम करइ एतलइ च्चद्रमाने आआलइ श्रीगुरु रजहरणि निद्रा माहि पुजा पासु पालट्यु । वधनागक पुरुषद चितपू जे निद्रामाहि पिण जेतनइ जीउ उपरइ एहवी कृपा छइ, एहग महापुरुषनो उष करी मुसनी कुण गति जावु । एहग विचारा परलोउ थका वाहता श्रीसूरीनइ नमा स्वर पाहता । तिहा थकी गुरु गिहार करता कतलेक दीन मालव देशि आमनरे नगरइ आव्या । एहवइ सो० सग्राम प्रगट थया, तहना सपथ रह उ ।

सो० सग्रामसिद्ध—

गुजरात दशि घडीयार खडे लोलाडा ग्रामि प्राग्गट वृ० पूस गोनी सानी अवकइ सग्राम नाम रहि उइ । ते कोइ समयानुयोगि मालव (८७-२) दशि पांडन गढि चिकथा श्रीग्यासदीनने राग्य, माता नाम दवा, स्त्री नाम तेजा, पूता नाम हाता, ए परिवार सहित जेतलइ मांडवगढि नगरनी पोले पदसइ देहवउ डावी दिशि महामणीधर पूण कीवा छइ अनि तह पूणि उपरि दुर्गा परईति सहपित शब्द करइ उइ । त अच रिज देवी सपरिवारि सग्राम उभा रह्यो । एहवइ तिहा एक अहेई उभो छइ । त सग्रामने देशातरी जाणी कहइ ए शत्रुनी ज नगरमा पदसइ तहने ते महाकदिना देणहार उ । तेह चिकथा श्री ग्यासदीन हग्गुर रहइ । ते शब्द अनि शकुन सामली चित घरी सहर्ष ओग्राइ सा० सग्रामइ नगरपालि प्रगट कीधो । राजदरवार पासइ आवी रखा । अल्प द्रव्य थकी थोडु = तेल, नाना प्रकारनो वी, गुड, हिंग, मिरची, साकर, श्वत, रक्त वस्त्र, पुन सौगंधिक मधुपना व्यागार करई । पून्य प्रमाणि सुधि तिहा काल नीगमा । एकदा उष्ण कालि चि० श्रीग्यासदाने असगरी कावी । एतलइ घणा तापयोगि

चिकथा रजदरवारनी (८८-१) वृक्षमदीसाइ, सुदराफार शापाइ, प्रतिज्ञापाइ, हरिकृपल पत्रइ, मनाहर गुगटाइ, शीतल गुगुआ दीपी उभा रही रीसमभा लेइ स्वप्न हुई । ते सहकाने दसी आरामिकनइ चिकथा कहइ 'सब आनहु फल हइ पिण हम आवहु फल क्यु नहीं' विचारि आरामिन कहइ 'पा० निलामिन इसु आवने दखनम सब गुग अठे, पिण एक अएव बुरी हइ, जे फल नहीं । वाणीण आव हइ ।' एहो उचन पुष्पपालननो सामनी श्रीग्यासदीन कहइ 'इन्नु बाझीए आवनी मृतदपी कृण नामका । इसी राईस काट डाला ।' एहइ पुन्याय थकी सो० सग्राम पिण त वाग्विमानउ जुउ उइ । निणि चिकथा कहिण सामली मनस्य विचारि ज ए उतन नवपट्टन वृक्ष ते तुरन काटसिद्ध, एहनइ हु अभयदान देउ । धर्म प्रमाणि महा मग लिउ हुसइ । निणहिज वेलाइ उइ चितइ सग्रामि सकण जन दपया चिकथा श्रीग्यासदीनने सिलाम करी अरजी करइ उइ—'त ए आव जन्मवष्य हइ पिण मुजे एक मुह (८८-२) माया दीओ । महा पसाय करो । आरतइ जेठ मासे इसु आवक फल श्रीपातसाहकु भेउ कइ ।' त अचिरज वात सामली चिकथा सग्राम नइ कहइ—'आरतइ जेठी इणि दिन ईस आवने फल न लाया तआ इसु आवना जैस हवाह सैस तत हवाह ।' ते वात सग्रामि अगिकार कीधी । चिकथा १, अनि सग्राम२ स्वधरि आव्या । पूर्वदियना थोग थकी सो० सग्रामनो अत्र थकी भाग्योदय हुआ । ते वात सगली मातानइ स्त्रीनइ कही । हउ सग्रामइ ते सहकारनइ पठगइ किनायत तया चदूआ बधारी क्षात्रादिनइ सुचि हइ पवित्र वस्त्र धरी निर्मल चिते धूप, दीप, चंदन, अक्षत, पुष्प त आवाहनइ अर्चइ एतले शील गुणइ साहसीक जाणीनइ, पूर्वभरी बणिन सा० आवने नामि द्रव्य धारक इणि स्थानिके रहितो, 'त वांशियो मरण पामा इणहीज स्वद्वय स्थानिके बीजे भवइ आवो वृक्ष हुआ । त आवाना जीव आनी सग्रामनइ कहइ ते मुसनि अयवान दीधो उई तह थकी हु गुज प्रति तठो । प

(८९-१) आंवाता मूल हेठि द्रव्य छई ते तू मूमि
 धणिं काढि लेजे । ए तूझ भाग्यनो छई ।' ते वचने सं-
 ग्रामि तिमज लघु लाधवी कलाना योग यकी माता स्त्री
 पूती प्रमुषी ते द्रव्य स्वयहे थाप्यो । आंवाता मूलि पाणी
 लण माटीई करी सिंच्यो । अनुक्रमि उष्णकालि ते सहकारी
 सुगंध मुहर आबी तिमज फल हूय । ते फल यत्ने जा-
 लवी सध्वालि आछादि गीत वार्जात्रई वि० श्री ग्यास-
 दीनने चरणे भेदी कीधा । संग्राम हाय जोडी कहई
 'पा० सिलामति ! ए फल सुगंधजो वांजीए आंबके' ।
 ते सामंती ग्यासदीन बूढो, पांच वख्र देई धरि कामदार
 कीधो । ते संपदावंत हूओ । एहवई तिहां विहरता श्री
 सोमसुंदर सूरि आव्या । सो० संग्राम संव समस्तना
 आग्रहई तिहां मांडवगढि श्री सूरि चउमासई रखा ।
 सदैव सुयोदयी श्री मगवती अंगनी व्याख्या कहई ।
 सो० संग्राम १ माता २ स्त्री ३ सहित निश्चल निर्मलई

पाहिलांना ब्रह्मसिंहि हज्जार सोनईया, पुनः अन्य द्रव्य
 स्वयं यकी लीवो तेहनी संख्या एक लाख अनि पिस्ता-
 लिस हजार सोन (९०-१) दया एकठा मेली वि.
 सं. १४५१ वर्षी श्री कल्पाव्ययन सूत्र १ अनि आ०
 श्री कालक सूरि कथा २ एवं सचित्रात स्वर्णाक्षर तथा
 रपाक्षरि लिखावी सकल साधु प्रति ज्ञानपुण्याई ते प्रति
 वांचवा मणया दीवी । केतलिक प्रति ज्ञान कोशि
 ज्ञानलामार्थि थापि । पुनः शुद्ध वाक्ये मालव मंडले श्री
 मांडवगढि श्री सुपासनजो प्रासाद, मुगसिपुरई श्री
 मुगसिपासनो विष प्रासाद वि. सं. १४७२ वर्षि थाप्यो ।
 भेइ, मंदसोर, ब्रह्मंडल, सामलोश, चार, नगर, खेडी,
 चंडाडलई प्रमुख नगरई सो. संग्रामि जनर प्रासाद
 निषजाव्या । इणिहिल सूरिई मनिहुन । एकावन जीर्णो-
 द्वार निषजाव्या । इय्याइह दुहुन श्री पुन वचनि सो.
 संग्रामई कीधो नि ।'

मा० ब्र० सा धुन्द् श्री ग्मभ १ श्री शान्ति ० श्री नमि
 ३ श्री पात ४ श्री वीर ५ एन पचतीर्थोना प्रासाद पाच
 जुदा जुदा निपगव्या । तिहा थकी श्री अर्जुदाचरनी
 यात्रा करी श्री भार्या नगरद् आ या । तिहा समस्त
 सघद् श्री गुरुने (११-१) उपदशी भार्या नगरद्
 प्रासाद कीथा । एन भद्रा प्रमुप नगरद् अर्जुदासनि श्री
 सूरीना उपदश थकी सत प्रासाद नीपगव्या । एक्कीस
 जीणोद्धार ह्वा । श्री सूरी नीनोहडा नगर आग्या ।
 तिहां सप्रति नृपकारक प्रासादि रि० स० १४८१ वर्षि
 दवका पत्तन थकी तडानीन बाबायशनी मूर्ति नीताड
 प्रासादमां थापि । तिहा थकी श्री सूरी जीवित रानी नदी
 पुरे, पुन वीरवाटके श्री वमणगादिनी यात्रा करी सरस्व
 तीने नमी अन्नकमि भयाददशी गाढगाड लड नाड गड
 नगरी श्री नमि प्रमुप सकर प्रासादना दन नमी तिहा
 वर्षां कालि रक्षा । कतलक थध श्री सुरि राणपूर नगरद्
 चौमासि रक्षा । पातसाह श्री पीराजना हूकमथी मा०
 वृ० स० धरणि श्री गुरुना उपदश लरी वि० स०
 १४६९ वर्षे श्री राणपुरे प्रासादारभ कीथो । पुन बी०
 स० १४९८ वर्षि चतुर्मुप प्रासाद सपूर्ण हुओ । तिहा
 श्री सूरिह कृष्ण सरस्वती भिद धारक श्री मुनिमुदर
 सूरी १ महाविद्याधिद्वनटीकाना कारक श्री (११-२)
 जिनकीर्ति सूरी ० कठगत एकादशाग सूत्रार्थ धारक
 श्री मुनमुदर सूरी ३ दीपालीकादि माहात्म्य कारक श्री
 जिनमुदर सूरी ४ ए प्यार शिष्य युति शुभसक, प
 सादि ११ पाठक युक्त, गडित, गणि, रुपी युष इत्यादि
 पाच शत साधुग परिचारी करी सरीत रि० स० १४९९
 वध सा० धरण निर्मापित त्रय्य दिविका नाभि चतु-
 र्मुप प्रासादे श्री रुपमादि अनेक विधनी प्रतिष्ठा सीधी ।
 प्रथम स० १४९५ वर्षि सा० १४९० श्री सिद्धान्ति
 सवधि ह्वा । सी थपे १८ मद् सा० धरणा र्व ०१
 मद् श्री सिद्धान्ति मुख्य तार्थकरने आगली श्री पात-
 साद मत्री त स० सघते इद्र मालनद् अवसरद् सजाड
 पोथु धन उघरी, गुग्गु मुली तिहा पाते स० धरणि
 इद्रमाल विहिरि । पुन स० धरणा मुख्य जिनानु र भेडे

विदु हाग जाडी शुभ निर्मगगयथी गिनती करी किमु
 मागद् ११ १ गाथा—

सुग्हा रिमाणगास

एगच्छता रि मग्निथ सुग्हा ।

दुग्हा पुण जीगाण

जिणद्वरसात्तण बोही ॥ १ ॥ (१०-१)

इणि परि सुशीग् वत आराधतो, निस्तर श्री जिन
 भक्ति साचवता अन्य वणा साधर्मिक पापता क्षमारेनि
 विशद रदि ग्द ।

श्री गुरुह स्व शिष्य श्री भुनमुदर सूरीह श्री
 सीरोही नगरद् चौमासानी आजा दीथी । पुन श्री जिन
 मुदर सूरीन श्री श्रीमाल नगरी चामासानी आशा वही ।
 तिंभे तिहा गुरु आशा लही निहार कीथो । श्री गुरु
 राणकपुर थकी विदु शिष्य युक्ति नाडआलनगरी चा-
 म सी आग्या । रणाकाल सपूर्ण स्वपद्मधर श्री मुनि
 मुदर सूरीह गउ भलावी श्री गुरुआम नृपति निर्मा
 पित श्रीवीर दर्शनद् उत्कठित मापनगरे चडमासी रक्षा ।
 एरवद् भाष्य त्रिणनी चूर्णि १, कल्याणकस्तन २,
 रत्नकोश ३, पुन याग साखना ४, उपदेश मालानो ५,
 पडावदयकना ६, नन सत्त्वनो ७, आराधना पताकानो
 ८, इत्यादि ग्रथना बालाववाधना कारक श्री सोममुदर
 सूरी वि० स० १५०१ वर्षे स्वर्ग हुया ।

५१ तत्पट्टे श्री मुनिमुदर सूरी ।

तहना रि स १४७६ वर्षि जन्म । (१२-२)
 स १४४३ वर्षे मृत । स १४६६ पाठक पद । स
 १४७८ वर्षि सूरी पद । वाटलीगा नादना एकसत अनि
 आठ शब्द तहना आलसणहार श्री कृष्णसरस्वती बिन्द
 धारक, श्री उपदश रत्नावर ग्रथगग्ग, श्री शान्तिकर
 स्ववन निमापितेन तम्परीतजलन योगिनिकृत मारि उप
 ननिगारक, सुलभयोगी प्राधिने उपदेश दायन, श्री मुनि
 मुदर सूरिस १५०३ वर्षि श्री कारणनगर स्वर्ग लह्यो ॥

५२ तत्पट्टे श्री रत्नशेखर सूरी ।

श्री जयचन्द्र सूरी ।

श्री रत्नशेखर सूरीनो स १४५७ वर्षि जन्म । स.

१४६३ वर्षे व्रत । सं. १४८३ वर्षे प. पद । स. १४९३ वर्षे वाचक पद । स. १५०२ वर्षे सूरि पद । श्री सूरि अजमेर नगर पार्श्वे वीठारपुरे श्री नेमि त्रिव प्रतिष्ठितौ । श्राद्धविधि सूत्र-वृत्ति १ श्राद्धप्रतिक्रमण सूत्र-वृत्ति २, आचारप्रदीप ३, प्रमुख ग्रंथकारक । श्री सूरिनंद बाण देव्या दत्त वर यकी हस्त सिद्धि जाणवी । स. १५११ वर्षे स्वर्ग हुआ ॥ १ ॥ लघु शुक्रमार्द श्री जयचंद्र सूरि (९३-१) प्रतिक्रमण गर्भहेतु १, वीसस्थानिकनी विचारामृत संग्रह २, इत्यादि ग्रन्थकारक कुमुदीह गामि स्वर्ग हुआ ॥ २ ॥

५३ तत्पट्टे श्री लक्ष्मीसागर सूरि ।

२ श्री सोमदेव सूरि ।

३ श्री सोमजय सूरि ।

श्री लक्ष्मीसागर सूरि तेहनो वि. सं. १४६४ वर्षे जन्म हुआ । सं. १४७० वर्षे व्रत । सं. १४७९ वर्षे प. पद । वि. सं. १५०१ वर्षे पाठक पद । सं. १५०८ वर्षे आ. पद । स. १५१५ वर्षे गृहनायक पद । श्री सूरिना उपदेश थीका बागडदेशि गिरिपुर नगरे सो. साहेब श्री गंभीरपासनो प्रासाद निपजाव्यो । पुनः मालव देशि बारनगरे श्री शुक्रा उपदेशी मा. वृ. सं. हर्षाभिहर्ष सप्त धडी सुवर्ण सुकृति प्रासाद ईश्वर निपजाव्या । एवहि गुजराति अणहिल पत्तनहि जिन त्रिबो-स्थापक सा. लुका प्रगट हुआ ।

सा० लुकानी उत्पत्ती कहि छई ।

यथा गुजरा अणहिल्लाख्य पत्तने नूतन पाठकि प्रा० ब्र० भवेबा गेत्रि सा. लुको एक सामान्य पणि रहि छई । त पुनिमगछ गुण एयोगई जैन लिपि शिख्यौ (९३-२) तिण वि. सं. १५२८ वर्षे ज्ञानकोशि जैन सिद्धान्त वार ७ लिख्या । ते सकल ज्ञानद्रव्य लेतां थीका साक्षात्तर दो-कडा रखा लिखवाना । सा० लुको यहस्थने कहे साक्षात्तर दोकडा...ज्ञान पिण वणो लिख्यो छै । ज्ञानद्रव्य माहि थीका कादी आय्यो । तिवार यहस्थ कहै—सा० लुका! तुम्हे जैन सुयस्मिं छै, एतलो तुम्हें ज्ञान लाभ हुआ । ज्ञानार्थ जारें भागुनई कहै तुम्हे श्रावकनई कहो—तुहा०

ई उपदेशि ज्ञानकोश ए लिखानई छै । माधु कह अछा पासि द्रव्य नहि अनि पुस्तक पिण ज्ञान कोश थीका यहस्थ पासद मार्गी वाची पाछा ते गृहस्थनद दीजइ छई । ज्ञान द्रव्य पिण यहस्थ जाणइ । मामली सा० लुको कोधी घर आय्यो । एतवत् स-ध्याने अवसरे उत्सवइ जिन भक्ति जिन भक्ति बाजारि थयो । तिहां वामभाषि कपालि देव मंदिरनां थांम भागो । प्रभाति कुणगिरि बाजारि कोइक हाटि बैठौ । एतलि तिहां गुमराति सेयद लेलक मित्र मिथ्यो । ते पिण म्लेच्छनी पारसीना हिरफई बरल लिखई । ते पिण कछु सा० लुका (९४-१) लेलक । ए दुम्हारई कपालि क्या लगा हई । लुका कहि—देवमंदिरका थंमा लगा । ते सामली म्लेच्छ कहई—तुहारो जे फकीर दुनीया छंडिके हुये सो साहिबकी बदगी करद कै, साहिब क हशर भुक्तिमई बैठौ, हे अछा अनंत ते जय अखंड हई, असत्या नापाकीसे दुर हई । ते म्लेच्छ वचन सामली सा लुकाने चितई म्लेच्छ बुद्धि प्रगट हुई । सा० लुकाने म्लेच्छ धर्म प्यारो जाणी तिणे सेयदह पीर हाजीनो आ-मनाय दीयो । अनि साक्षात्तर दोकडा पिण यहस्थे न दीयो । तेहना कोष थीका म्लेच्छनी बुद्धि चिते धरी । सा० लुको गृहस्थनई कहई—ए गुरु साधय उपदेश कहई छई । जेह वचन थीका हिसानो पोष हुई । निरवय वचननो उपदेश कही नहि छई । अनि साधु प्रति इम कहई—साधुनी जेम मे पिण आगिषना पुस्तक वार सात लिख्या छई तिहा आबनी कीयाई जिन—पडिमा नो पाठ किहाइ मट न दींछै । अनि छई पिण नही ते माटि पनेत्री जीव न एकेत्री जीवनई नमठ अनि ए एकेत्रीयना दल थीका (९४-२) छ कायना जीवनी विराधना हुई । तेह थीका जिन विव आराधक नरी । ए ग्रामाद विव मर मिथ्या छै । ते सामली साधु कहई—सा० लुका! तुम्ह मत्पक्ष पाणि किम जनन संसारी भाओ छओ । श्री सिद्धान्त द्रव्य थीका लिखावी साधु पानानई भगवत सिद्धान्तनी यत्न कछई । निगारि मे द्रव्य नेग्राई नदिगोणो । तेह थीका

ठण्ण नीक्षपइ गइ अनी नदी प्रमुष सिद्धात् पविं
 चोरासी आगिम वद्धा छट ते धीर नीर्वाण हुया पठी
 त्रिणवार वार दु काल पइया तिहा ८४ आगिमना
 विट्ठेद भयो । तिवारे सकल सुविहित गिताथे मिली
 साधु मुष थकी जिम साभस्यु तिम उद्धयु छइ ।
 पछी तो ते केरलीनइ गम्य, मनुष्य कुण मात्र । हा पिण
 नहि ना पिण नही । इम वणइ नयइ उपनयइ श्री
 भौतार्थि समझाव्यो । पण ते छुका वदाग्रह न मुकइ ।
 जिन विवनी निंदा करतो जाणी ज्ञाती पक्ति बाह्य
 कीया । तेह थकी चर्ण कावी मसार पणु तजी वि०
 स० १५१० जेवें समणापायक वष आदरी अणहीह
 याहा पाटण थकी (१५-१) सिद्धपुर नगर आया ।
 तिहा माघाष्टि तपा छुकाइ ज्ञाति भेद हुआ । तिहा
 थकी केतलेक दीने श्री सीतोही देशि अरटगडि गामर
 आयो तिहा उपकश वृद्ध शाखाइ सा० भाणो रहि
 छइ तिणि समणापासक सा० छुकानो उपदेश सामली
 स्वहस्ति सा० भाणे शिक्षा लीगी । वि० स० १५३२
 वर्षि प्रथम वषपर ६० भाणो हुआ । पुन वि० स०
 १५४० वर्षि श्री सीतोही नगर वास्तव्य आ० स० व्र०
 साधरीया गोत्रह सा० भीदे ६० भाणा हस्ति जीज्ञा
 लीगी । एतल वि० स० १५३५ वर्ष श्री सत्यपुरे
 सा० छुकानो आयु पूर्ण हुआ । तिहा थकी ६०
 भाणो शिष्य ६० भीदा गुजराति अहिमदाबाद नगर
 माहि शाहापुरी उषण कालि आगि रखा । तिहा ६०
 भीदानो उपदेश सामली श्रीमात्री लघु शाखाइ सा०
 नानचदि ६० भीदा हस्ते शिक्षा लीगी । नागा कवि
 नाम दीधु । तेहना शिष्य रूप कवि हुआ । इत्यदि
 कुमती छे तहना सग तजवो । सुमति भजना । उत्तम
 जीवे स्व आराम हित कारणि चितई (१५-२) श्रद्ध
 सहहणा धरी श्री जिन भक्ति तेहिज मुक्ति पथ गमन
 रूप जाणी आदरवी । यथोक्त —

वर गध १ धूप २ चोखण्दि ३ कुसुमेहि ४
 पत्रदीपही ५ नैवेद्य ६ फल ७ जलेहि ८ जिण पूआ
 अज्झा होई ॥ १ ॥

इयादि अष्ट विविना जिनगाज पूजा

ख्याता कृता सुरनरमणि मंदव

खडी कृता सुमतिभि कत्रिमात्र योगात् ॥

इति श्री जिन विं उपायक सा० उपा उत्पत्ति समाप्त

एहवि माहवी विदेरे तथा श्री सोमदेव सूरी १,

सरतर श्री जिनहम सूरी २, अचर्याक श्री जयकसर

सूरी ३, ए विहु गठना आचार्य तिहा आया । तिवारह

मारठ दक्षि छुखाना मतना रिहार जाणी ७ त्रिहु गी

ताथ मिलि वि० स० १५३९ जेविं आपआपणा गउ

थकी आज्ञा धम्म थाप्या । एतल ६६ थकी आदेश

निर्दशानो मर्यादा थपानी । पुन पात्रमाहि संकेतानी

ओली एक दानानी आलोचण अठमनी साधुनइ

कहावी । ते पाहिला स्व स्व सवाटन समुदाय मध्ये

ज गीतार्थ दीक्षाइ वृद्ध हुइ तहनर (१६१) मोटा

मोटा क्षेत्रनी श्री गृह्य चीष्टीका दत्ता । इम सकल

सवाइ ए नीती । पउइ त वृद्ध गीतार्थ साधु प्रमाणे

क्षेत्रि आज्ञा लही साधु वे तथा च्यार विहार करता ।

एहवे वि० स० १५४७ वर्षि गुजर देशि धानधार

खडई श्री यक्षनी उत्पत्ति हुइ । श्री सुरिह सुनगाम

बल्लुट्टर पान प्रासार प्रतिष्ठया । वि० स० १५३७

वर्षि हाडाती दक्षि गुमाहली गामे श्री सुरिदी स्वर्ग

हुआ । ० आचार्य श्री सोमदेव सुरिनो वागड देशि

वडियार नगरे स्वर्ग हुआ ।

५४ उत्पत्ति श्रीसुमतीसाधु सूरी ।

तेहनो जन्म अर्जुदासने धेलागरी नगर मा० वृ०

नारण गोत्रि सा० टिहु, श्री खडी कुसे वि० स० १४९४

जैवें जन्म । वि० स० १५११ जेवें दीक्षा । वि० स०

१५२८ जेवें गछनायक पद । श्रीसूरिये जसलमरे, कृष्ण

गढ, अर्जुदासनर, देवके पडणि, गढ नगरे, खमायते, गधार,

इंदर नगरइ ज्ञानकाश गितार्थ पासी सोधाया । ज्ञान

जल कीयो । श्रीगुरुना उपदेश थकी मालय देशी मांढ-

वगडि मा० व्र० सरहडीया मात्री पातसाहना द्रव्यना

भडारी रजजाना (१६-२) मलामणिया सा० स-

हसा भार्द सुलतान श्रीअर्जुनगि उपरि अचलगादि

इग्यार लोप द्रव्य सुकृति करी पांच लक्ष मनुष्यनो संघ लेई श्रीरुषभदेवनो चतुर्मुख प्रासाद नीपजावी ते माही सतधातु चउद शत मण प्रमाणे तेहना विष चार कराव्या। तेमाहि आठ विंघ काउसगीया अने च्यार विष चतुर्मुख प्रासादि मूलनायक श्रीरुषभदेवना जाणवा। वि० सं० १४५४ वयें श्रीसुमति साधु सुराज प्रतिष्ठवौ। श्रीसूरी अतिचार रहिय चारित्र धम्मने आराधता, सुख परपक्ष विरुद्ध धारक वि० सं० १५५१ वयें खमणुर गामें श्रीसूरीई स्वर्ग हूओ ॥

५५ तराट्टे श्रीहेमविलस सूरि।

(२) श्रीकमलकलस सूरि।

(३) श्रीईंद्र नदी सूरि।

ए विदुः गुरुभाई सेमाहि श्रीकमल कलस सूरि यकी वि० सं० १५५५ वयें कमलकलसा गछ हूओ।

पुनः श्रीईंद्रनदीसूरी अणहिल बाढा पाटण पावें कुतपुर ग्रामे स्वशिष्यने आ० पद देह गामने नामे श्री-कुतपुर सूरि नाम दीधु। तिहां यकी वि० सं० १५५८ वयें कुतपुरा गछ (१७-१) कहिवाणो। एतलें ए विदुः लघु गुरुभाइना भिन्न गछ हुंया। अनि श्रीहेमविलस सूरि जे क्रिया भ्रष्ट साधु समुदाय गछ मर्यादा शिथल जाणी देश आसा देता हुया। श्रीगुरु ब्रह्मचारी बुढामणि विरुद्ध धारक निलीं वतावणे सकल जन विष्यात कीर्ति संवेग रंगइ समतायन पक्षप्रादिक त्याग्यता, घणा जोष लुपाक मतनइ तजी श्रीसूरी हस्ति दीक्षा लेह तपानिश्राह चारित्रना भजनारा हवा। ६० गणपति ६० श्रीपति ६० वीपा ६० जगा प्रमुख नवदीक्षित साधु ६८ मुक्ति प्रतिबोधी तपा क्रीधा। त्यारे अन्य साधु क्रिया उदारवा तत्पर थया। सपरिव्रहि जे त्रावना पात्रा, त्रपणी, लोट प्रमुख अहने जाणता तेहने संव अने पंक्ति बाहिरनी आलोचना कहुता। एक मुक्त उपवास, पाणणे नीबी छट अठम, नीरी पारणे गंडीसही प्रमुख तपना कारी भूमंडले विचरइ। एहवये समयइ कटुक नामि गृहस्थनी परपणा हुइ। जे क्रिया शिथिल साधु समुदायमा रहि ते चारित्रियाने (१७-२)

चारित्र न संभवे। पिण तेहम न कहिहुं। इम हुंति पिण गछनायकने चारित्र सभवं—यदागमे—

साले नाम एगे आधरिए एरंडे नाम परिवारे।

एव चउमंगी जाणवी। हवई कटुक गृहस्थनी उत्पत्ती कहई छई—गुर्जरात देशि वडनगरें भागर शाति वृद्ध शापाई टोकर गौत्रि सा० बाणरसी, तेहनी स्त्री हरी, पुत्र कहुओ नामि छई। पिण ते देव गुरुनो...। पं० हर्ष कीर्तिगुरु मिल्या। तिणी भव्याता जाणी कहुओ बोलाव्यो। यती जाणी नमो। गुरु पांस रझौ। वृद्ध जाणी कहुओ विशेष भक्ति साचवे। एहवई गुरु आणा लही शिष्य अम्मदानाई चोमासे गया। गुरुनी सेवा करतां केतलेक दिने गुरु मुक्त थकी कहुओ श्री शिद्धांतनो समझ ययो। सचित्त त्यागी श्रावकनी करणीरे आगलो हूओ। निवारि गुरु कहइ सा० कहुया तुम घरे जावो संसारि थाओ। ते गुरु वचन सांभली कहुओ कहई, तुम जे हवा...। सा० कहुया ना वचन सांभली योग्य जाणी प्रसन्न पणई गुरु मुखि बीसई वयें सा० कहई चांधु व्रत आदयुं। (१८-१) श्री पंडितजीई कह्यो—जे तुम्हे गुरु लोपा न थातो। तिवारई कहुओ कहई—पिता माता जो वृद्ध नागर हइ अनि याणि कनो पुत्र छुं तओ उपगारी शुक्ने नहि लोपुं। तिवारे गुरे सा० कहुयानई क्षेत्रपालनो वर दीधो। गुरु कहे तुमारो उदय धिरापद्र नगरई श्रीमालि वृद्ध शापा धुअ-वटकि छई, अस्मिन् देखि नही छइ। ते मादि तुम्हे तिही जाओ। सा कहुओ गुरु बांदी आणा लही केतलेक दिने श्री शंखेश्वर पासनइ नदी भट्टकमि धिरापद्रइ आव्यो। जिम श्री पंडित श्रीहर्ष कीर्तिह कहयुं हुइ, ते तिमज सत्य हूओ। एकदा सा० कहुओ गृहस्थ प्रति उपदेश कहई—बिहज्जार अनि च्यार युग प्रधान कहइ छइ, पण ते बिहज्जार अनि वि जाणु, एक एह संदेह। १। पुनः पांचमा आरामा सुसाधु सुचारिणी नहो, ए संदेह छइ। २। संमति वर्तमान बालि चारित्रिया साधु भुज दष्टि आदता नही, एतले एहना रिण संदेह। ३। इम-गुरु लोपी मिया प्रकृणा वगता त्रिण मुई (१८-२)

समत थापतो हुआ । एतल्ल गुरु वेध तथा गुरु कथन लोप्यु । तह थकी कइयान सिष्यम उदय न हूर । ए तली वि० स० १५६२ वर्ष सासु वयोत्थापक कइक गृहस्थ थकी कटुक नाम मति प्रगट हुआ ।

इति कटुक मतोत्पत्ति ।

पुन पहचइ छुकीना गट थकी ६० विजयइ विग्जा मनि नामि मत प्रवर्ताव्या । एहवइ पासचंद मति प्रगट हुआ तहनी उत्पत्ती कहइ छइ ।

पासचंद मति ।

अबुर्दासनि हमिरपुरनगरइ लिब गोत्रिइ प्रा० वृ० स० पासवीर नामी अल्पद्रव्ये भारवाहकनी आजीविका करतो रहइ छइ । एकदा हाथि कुठार लइ पर्वत दिशि बढि पीपल वृक्ष चढतो ह्मण लेता भूमि पड्यो । दही गाढो लाग । पिपल वृक्ष हेडि उभो उइ । एहवइ तिहा गहुरी शाबाइ शाला धारक श्री चक्रकीर्ति सूरी, तेहना शिष्य ५० लक्ष्मीनारास, तेहना शिष्य एकान्तरि चोविहार उपवास कारक ५० श्री साधुरत्न, तेहनी श्री आबूनी यात्रा करी घाटी उत्तरी (९९१) हमीरपुरने मारगि आवता देखी पासवीर वदना कींधो । ५० साधुरत्ने याव्य जांणी धम्मापदेश कतौ । तेहना वनस्पति छेद्याना मोटा पाप कहाँ । ते सामली ल्यु कर्मि प्राणी सुरत बृहयो । काणन्न नगरे वि० स० १५६५ वर्ष पास वीरने दीक्षा देइ ६० पार्श्वचंद्र नाम दीधु । तिहां थकी गुरु १, शिष्य २, नागौर नगरे आवी शालाइ रह्या । एकदा आरबइ जीर्ण यत्रनी मुद्रा दींधी दधी ६० पासचंद्र गुरु श्री साधुरत्ननइ—इणि आरबइ किस्सु छइ । कहइ उधाइता नथी । तिवारइ शुरू कहइ आगि महा वारावपि दुर्मित हुआ, त समयइ साधु शिथलचारि जाणि तेहना पुस्तक ज्ञान अ सातना देखि, तिहा व्रद्ध गिवाथ मिली ए ओरडामा ज्ञानना डावा मरी यत्र कींधो छइ । ते थकी आपण कास्य कामि उधाइतु नही । व्रद्ध पचन कुण लेपाइ । एहवओ नाक्य गुरु श्री साधुरत्नत सामली शिष्य ८० पासचंद्र मौन हुइ रह्यो । एक दिन गुरु नगरमा कोइक (९९२) कार्याधि गया । एतले

पामचट्टी गुरु आज्ञा विगम ते ओरडो उपाडी ज्ञायका । पुस्तक अिम तिम मकयां दीठा । एहरे गुरु आया एतलि उतागलिमां आगेरे पन्था ते अडा पत्र लइ गजोहरणि घालि यत्न राख्या । पट्टी गुरुने किमाइ उपाख्या । गुरु कहइ एपटी दर म्यु हुई । शिष्य कहइ हमहिम । पट्टी ते अटो पत्र वाची क्षेत्रपालनां ब्राम्नाय ज्ञाणी एकांति ठिकाणे साधन विधि पंथो । एतलइ काला अनि गोरओ विट्ट क्षेत्रपाल आवी वर दीधा । अनुममि वि० स० १५७४ वर्षे ६० पासचंद्र गोरदत्त वर सह ग्य थकी पासचंद्र नामि मति उत्पन्न ।

ते माहि थकी श्री पासचंद्र शिष्य ६० ब्रह्म नामइ, सह थकी अणहिल पटनि वि० स० १५७८ वर्षी ब्रह्मा मति गछ प्रगट हुआ । एतलइ जे जिहां थकी फांदा हुआ, तिणइ तिहा थकी पोताना मूल गुरुनी सामाचारी कोपिने सूल विरुद्ध सामाचारी प्रवर्तावी । अने सुत्रोक्त जे पर्व ते पुन अन्यथा कींधा । पोतानि मति भेदी करी नवा नवा गठना साम थाप्या । (१००-१) तिवारि ए मति कहीइ ।

इति पासचंद्र मतोत्पत्ति ।

हवइ श्री हेम विमलनो वि० स० १५२२ वर्षे जन्म । स० १५३८ वर्षी दीक्षा, हेमचर्म नाम दीधु । स० १५५५ वर्षी गुग्गरोरति बढियार खडि पचांसरा नगरइ श्रीमाली व्र० स० पातइ सूरी पक्षोत्सव कींधो । स० १५५६ वर्षे क्रिया उद्धरी । स० १५६८ वर्षे स्वर्ग हुओ ।

५ दत्तपट्टे श्री आणंद विमल सूरी ।

(२) श्री सोभाग्य हर्ष सूरी ।

श्री आणंद विमलसूरीनो वि० स० १५४७ वर्षे जन्म । स० १५५२ वर्षे व्रत, अमृत मेरु नाम दीधा । स० १५७० वर्षे कर्पट बाणिज्य नगरइ आ० पद हुआ । स० १५८२ वर्षे देसुरी नगरइ गछ नायक पद हुओ । एकदा गुरु श्री सोभाग्य हर्ष सूरीनइ कहइ । आपणे विट्ट क्रिया उद्धरीइ । तिवारी श्री सोभाग्य हर्ष सूरी नरे आपणि शाला धारक विरुद्ध गुरुना गइ ।

तिवारि श्री आणद निमल सूरी कहे काम निहालि आव्यो । राडाइ कहई 'तसवी पढति हू।' कावन्न साधुसु मिया उद्धति सपरिग्रही जाणता ते शेरशाह कहइ 'विणय नामकी ।' काडाइ कहइ 'मेरे पीरके नामकी ।' त सामगी शेरशाह कहइ 'उनकी जमी अस्थल किहां इ ।' काडाइ कहइ 'सोरठ देशि (१०१-२) ह साजुजय पाहाडइ रहइ छइ ।' तिवारि स्त्रीनो प्रिया शेरशाह सोन्य लइ दश प्रव्य उपरग्या नकिन्थो । अनुक्रमि पालिताणि नगरी आव्या । सोन्य सरे तिहा उतन्या । तिणहिज राति शेरशाह १, काडाइ २ अनि चमरनो प्रिजनार रिहाति फरीर आगारसाह नामि ३, प त्रिहु ठस्कर थकी ज्ञाना पाहाडे चव्या । श्री रुक्म दर्शन कोडाइन हुआ । काडाइ कहइ 'प बेठे सा मेरे पीर ।' एनलइ चिन्थइ सुवर्ण मुहरनो दिग जिनने आगि कीथो । ४ देसी महामन्त्र अगारस्याह देवी हुआ,

तिवारि श्री आणद निमल सूरी कहे काम निहालि आव्यो । राडाइ कहई 'तसवी पढति हू।' कावन्न साधुसु मिया उद्धति सपरिग्रही जाणता ते शेरशाह कहइ 'विणय नामकी ।' काडाइ कहइ 'मेरे पीरके नामकी ।' त सामगी शेरशाह कहइ 'उनकी जमी अस्थल किहां इ ।' काडाइ कहइ 'सोरठ देशि (१०१-२) ह साजुजय पाहाडइ रहइ छइ ।' तिवारि स्त्रीनो प्रिया शेरशाह सोन्य लइ दश प्रव्य उपरग्या नकिन्थो । अनुक्रमि पालिताणि नगरी आव्या । सोन्य सरे तिहा उतन्या । तिणहिज राति शेरशाह १, काडाइ २ अनि चमरनो प्रिजनार रिहाति फरीर आगारसाह नामि ३, प त्रिहु ठस्कर थकी ज्ञाना पाहाडे चव्या । श्री रुक्म दर्शन कोडाइन हुआ । काडाइ कहइ 'प बेठे सा मेरे पीर ।' एनलइ चिन्थइ सुवर्ण मुहरनो दिग जिनने आगि कीथो । ४ देसी महामन्त्र अगारस्याह देवी हुआ,

श्रीमूर्ती प्रसन्न हुन । ५० माणचन्द्रे पटक पद देई
लहोरनी आज्ञा दीधी । एतलि श्री पाठकनर नपनउ
उद्योतकारक जाणि वाचक (१०४-०) प्रमुख एर
आभिवांश वचन कह छः । दुहाः—

सूर उदय दिनकर समः
चन्द्रउदय निशि होन ।

शेख याके नामपर
सा गुरु सदा उद्योग ॥ १ ॥

एहवद श्रीवड गण्डि चतुर्दशिक पक्षे पिप्पल्लिशाषाड श्री-
मालदेवद श्रीहारीज नगरे वि० स० १६३५ वर्षे श्री-
हीरविजय सूरिने वद्या । श्रीसूरिह विण पोताना गात्री
जाणि आदर देद पातसह राण्या । अनुक्रमह श्रीसूरिह
मालदव सहित दीहरी नगरह पोहता । श्रीसूरिह पाति-
साह कहें-बेटो । तव हीर कहें जीवत दिया विजात उ-
द्वाह देपइतो पा० मेवा भन्या हे तिणेंसु कीर्ति आद (?)
प्रथम दिन एता जीव हुओ । विजे दीन पातसारीनो
बहुमान देधी विजात नीचे षाडकर बकरी एक सगमां
माहि घाली दरीमाना कीयो । पातसाह कहइ-विजहीर
बेटो । तदा हीर कहें इस जमीमें जीव हइ । सा०
कहइ केता जीव । तदि गुरु कहें-तीन जीव हैं । पात-
साह खोलकर देयो तो १ बकरी २ बच्चा हुआ । सो दष
पातसाह कहें (१०५-१) ए दूसरा पदा हइ, सध्वे
पीर हें, तुम्ह जम्हारे गुरु होइयो । पातसाहनो सन्मान
देयो म्लेच्छ मुलाणीया द्वेव धरी कहइ अयस सध्वे फकीर
हइ तो अझाकी बदगीसें हजुर कटु करामत दषावह ।
ते सामली एक पातसाह मुलाणीया सहित श्रीमूर्तीने
सभाइ आदर दइ कहइ आप अपणी करामत देखाओ
तिनारि पिपीलिका १ अजा भुमीछे २ पिछात ठिकाण
कटे पली रजहरण १ टोपी २ बकरी अनेक बँद्या कर-
मत देसी पा० तठा थको कहि-तुम्ह बड दर्शनी हें ।
इम कही सखलात्मीय दक्षि पर्व भारीद आठ दिन जल-
नर थलचर तीर्थव जोन प्रमूषनी आभारी पलारी, प्र-
तांरी । पुन श्रीसिदाचल पातसाह मनुष्य मूडकादि
द्रव्य लना तेहनी माफी कीधी । अकनराग्रहि स०

१६३६ वर्षे श्रीविनामनी पास प्रनिष्ठा । पुन. श्री-
सखधनम सुदारी दिह्यो नगर चामासु रही स० १६३७
वर्षे अकनरा भूगल वदानी भागरे मेहने काशी ज्ञान-
धरादिक (१००-२) नगर, नामात्तो कीधो ।
श्रीसूरिनी कीर्ति सामनी याचक प्रमूष श्रीमूर्तीन ओपन
रुप (!) दीवदानह । दुहा—

हीर वज्रगुर नीपभर खामसराते तान ।

पातसाह प्रनिचोपिओ अकनर मानी आण ॥ १ ॥

श्रीमूर्ती अकनरदत्त जगद्गुरु विरुद भारता, भिनमा-
हड राखधनपुर नगरह आया । निहा ह्वादि थीविजय-
सेन मुरी नाम प्रनिष्ठा । आ० पद लही गुरु आण लही
श्रीविजयसेन सूरि पावणि सीरोहीद निहार कीधो । अने
श्रीगुरु अहिमदावादि बर्जरपूर नगरह आव्या । तिहा-
टका गण्डि ६० मेरशी सनारीता शिष्य श्री सूरि
प्रनिषया । सूरिह विण तेहनी हर शिष्य थापि कुशल,
वर्द्धन, आनद, सामान्य, ए च्यार शाषइ नम दीभा ।
श्री गुरु अटार शाताइ भित्तोर लही विनरता जगम
कल्पवृक्ष समान साभह । अथ अष्टादश शाषा नाम-
श्रीमद विजय १, विमल २, सागर ३, चद्र ४, हर्ष ५,
सोमान्य ६, सुदर ७, रत्न ८, सुभर्म ९, हरा १०,
आनद ११, वर्द्धन १२, सोम १३, रनि १४,
(१०६-१) सार, १५, राज १६, दुशक १७,
उदय १८, निरमल नाम । श्री सूरि सषायति हइ
गधार निदिरइ अभ्या । तिहा गुरु उपदेश भकी सा०
रामजीह वि० स० १६४० वर्षे श्री वीर नउभुल
पासाइ निपजाध्यो । नौमाणि उतथें पतनह आया ।
एतलइ श्री सूरिह तिहा चारबोल प्रगड कीधो । तिहा
थनी श्री सूरि श्री सिद्धाचालि आव्या । एतलइ तिहा
भेनाइ, वागइ, मरुधर, टुडाइ, दक्षिण, गुजराव, माल्य,
सोरठ, दवका पतन, प्रमुख सखइ लि लक्ष मनुष्य
बुद सहित वि० स० १६५० वर्षे महा
महोत्सवि आ मुरिह श्री प्रथम तीर्थकरता र्शन
कीधो । तिहा घणा याचकन दान हुआ ।
अष्टमेदी, सत्तरमेदी, अष्टोत्तर, साधर्मिक

वृत्ता जाणीया । निरुद्धा । श्री सूरि ७० सामविजय,
 ७० विमलहर्ष, ७० रघुनाथ विजय पानवसे विपुल युक्त
 पुन श्री सूरुत रात्र युन श्री रघुनाथवि श्री नेमी दशनं
 कीर्त्तय । तत्रिशासि सत्राग्रही जीर्णगदि चउमासि (१०६-७)
 रक्षा । अनुकमी श्री सूरि उन्ना नगरि जात्या । निहा
 द्विप वास्तव ओ० व० पासाटल (१) रक्षाटि विव
 श्री शान्ति नाथने प्रतिश्राया । निहा सत्राग्रही चउमासी
 रक्षा । एहव श्री गुरु तत्रस्त्री यक्षसी हुत ७० श्री
 सोमविजय ग०, ७० श्री विमल हर्ष ग० गछ भगमण
 कीर्त्त । श्री विजयसेन सूरिन सव भगमणि कहीरासी ।
 प० श्री गुणहर्ष, प० श्री कुशलराज ग० प्रमुप गीतार्थ
 श्री सूरिने उत्तराध्ययन, नदीगृत्र, चउसण सभगवद ।
 अपड निश्चल शुभ ध्यानद नमस्कार समस्ता, श्री मत्पा
 गवठासीश्वर, गार श्री अक्कर प्रनिवेशक, तम्रदस जगद्गुरु
 विदद चारक, अनक जन्, स्थित, तिथेच त्रु ज्ञानि अभय
 अमारी पटहाभिरादनोपेय दान प्रतुत्यनिगम ग्राहक
 निरनिचार अणक्षण भाग एक सरे आगु नव ६० अनि
 मास त्रिक सप्ती भगारक श्रीमद्री हीर विजय सूरि
 वि० स० १६०० वर्षि भा० सीतकादशी दिने सूर
 प्रतिक्षाषी स्वर्ग पट्टा । त माटे श्री सूरिनर नाम स्म-
 रणी कुशल श्रेणी हू ॥ थदुक्

श्री अकबरमुपाल कृपाल भूषिरामणिम् ।

विदेध येन तस्मै स्तात् श्री हीरगुर्वे नम ॥ १ ॥

५९ तत्पट्टे श्री विजयसेन सूरि ।

तेहना वि० स० १६०४ गे आ० व० हणवत
 गौत्रि सा कुशि जन्म । स० १६१६ वर्षे म्र । ग०
 १६०६ वर्षे प० पद । वि० स० १६४१ वर्षे गछ
 नायक पद हुआ । त श्रीसूरिद अहिम्मरावादी जिहा-
 गिरपुर नगरे पावीसाह श्री जिहामीरनी सभाद लाहेरना
 अपर मनि शास्त्रवादि जीत्या । तिरार जिहामीर साही
 वणद आदर धेकी श्रीगुरुन ' सत्राज जगतगुरु ' विन्द
 दीधे । एहव स० १६७१ वर्षे अहिम्मरावादी नगरद
 राजापागणि चउर रिधि ग० साक्षि उ० श्री रम्य सागरद
 पांच वोलो मिप्या हु कून दीधे । पुन श्री सूरिनी

आना लही समस्त गीतार्थ मिलि सर्वेज शनक १ धर्म
 तत्र विचार २, प्रचनन परीक्षा ३, दृष्टियावही कृत्र
 ४, प्रमुप श्रय . ज्ञानकाशी अहिम्मरावादि स्वभायनि,
 पाटणि, मधारी, भ्रमर नगर थाया । वि० स०
 १६६९ पत्तिनि उ० श्री सामविजयन सागर आश्री
 ज्ञान सर्वने सत्राज विरोध हुआ । वि० स० १६७१
 वर्ष श्री स्वभायनि पाति नाग गाभि श्री विजय सेन सूरि
 स्वर्ग ह्या ।

६० तत्पट्टे श्री विजयतिलक सूरि ।

तत् गुजगत दक्षि धीशाल नगर मा. व. हल्सर
 गात्रि मा. दरराज श्री जयसती गृहे स १६०१ वर्षे
 पुत्ररत्न जन्म्या । वि. स. १६६२ वर्षे पावद गदि व्रत,
 रामविजय नाम । स. १६६७ वर्षे प. पद, जिर्णगदि
 हुआ । स १६७० वर्षे स्वभायन गछ नायक हुआ ।
 तत्ना अमा प उ. श्री सामविजय ग. उ. सिधचक्र ग.
 प. श्री श्री हर्ष, प. रणानंद, प. राजविमल, प्रमुप
 गीतार्थ युक्त श्री मन्धर दक्षि विन । एहव वि. स.
 १६७३ वर्षे यानसूत्रि धकी वात पक्ष कहिवाणो । ने
 माहि धकी वि स. १६८६ वर्षे अहिम्मरावादी उ. श्री
 धम्मसागर तस्य शिष्य प. लक्ष्मिसागर तस्य शिष्य प.
 नमिसागर, उपाध्याय श्री मुक्तिसागर धकी सागर गछ
 कहिवाणो (१०८-९) । एहव लकागछ धकी वि. स.
 १६७० वर्षे हुदक मती हुआ । वि. स. १६७१ (१)
 वर्षे श्री मीरोही नगर श्री विजयनित्रक सूरि स्वर्ग हुआ ।

६१ तत्पट्टे श्री विजयानन्द सूरि ।

मन्धर दक्षि राहा नगर स० १६६२ ग० नागण मा
 चहजाण गात्रि मा० श्रीरत भाया सितगारद पुत्र ।
 तेहना जन्म ..। स० श्रीवतद श्री हारविजय मरीना
 मुख धकी उपदस सामली सत्तारनी स्वरूप असार जाणी
 दश मनुष्य सवाति व्रत लीधो । तेर देशना नाम-मुष्य
 पिता स० श्रीरत नूद तेहनु नाम व० श्रीरत दीधे ।
 हनी प्यार पुत्रना नाम, नूद पुत्र त धारा तेहनु नाव धम्म
 विजय, २ श्रीरा पुत्र अजे वात्रु नाम अमृतविजय २,
 नीरा पुत्र मेगधु नाम मरुनित्र ६, लघु पुत्र वर्षे ९

नो कल्लो नाम तेहनु नाम कमलविजय ५, ए पांच पिता सहित पुत्र ते । पुनः सा० श्रीवंतनो वनेयो सं० सादल वृद्ध छे, माटि ६० सादल नाम दीधो ६, त-स्य पुत्र स० भक्ति तेहने नाम भक्तिविजय १, सा० श्री वंतनी (१०८-२) बहिन रंगादे तेहनो नाम रंगश्री दीधो ८, सा० श्रीवंतनी पत्नी सिणगारेदे तेहनो नाम लामश्री दीधो ९, सा० श्रीवंतनो पृथो सहिजा तेहनो नाम सहिज श्री दीधो १० । एउ दज मंबंधी साथी च्यासै अनि सत्तावन मण घुति जाति, गोत्रि, मित्र, साधमिक प्रमुल समेतज पंच श्रीगोदाद इत्यादि मुकुति करीने श्रीहरे स्व नेश्राई श्री सिराही नगर श्री रुपम बिले सं० १६५१ वर्षे वनई, पहिला कथा ए नाम दीधो । ने मादि लघु कमलविजयने श्री गुरुए समतादिक गुणि योग्य जाणी उ० श्री सोमविजय ग० ने याचनाई भलाव्या । अनुकमि पुन्योदयि यद् शास्त्रना ज्ञाना हुया । नियागे श्री विजयसेन सूरिई अणहिल पत्तनइ श्री पंचासर पास प्रासादे कमलविजयने पं० पदि पोवा । वि० सं० १६७५ वर्षे श्रीमिराही नगरई गछ नायक पद हुआ । प्रा० वृ० पोलिआ गोत्रि सं० श्रीपाल गुत .सं० आवा भाद सं० मेहजलि पद महारसव कीधो । सकल माहिर पुनः साधमिक संताधी मनुष्यि मनुष्यि पीरं जी एक एउ दीधी । श्री सूरिने उपदेशि रजित यका श्री मिद्राचल १ (१०९-१) गिरानार २, नारणगीरी ३, अर्बुदगीरी ४, घोवा नर खड पाम ५, शलेश्वर पास ७, मंमणवाड ६, एव सत तीर्थना संवाधिपति हुआ । ते संवनी वर्णन ।

कवितः—

सत्तर सहस्र गुजपात सुमद्र मिल सोरठ सारी ।
होटा वद्ध हज्जाग नरके वडके व्यापारी ।
खमायत निजसेन सहिर घोवा सारीखा ।
होछा झाछा हल्लस पानि कीधा पारिखा ।
पूरव उत्तर दक्षिण पश्चिम कृपाण कोट न सकि कलि ।
ताहरि सच वीरपाल नणा मेहराज दुनीमा मली । १ ।

श्री सिराहीर, नादल्ला, भमराणी, चचरडी, आबु

प्रमुखि एकसठि प्रासादि जीर्णोद्धार कीधो । वि० सं० १६८२ वर्षे श्री सातीलपुर नगर श्री संवाग्रही विजय-देव सूरिने श्री विजयानंद सूरिने गछ नेल हुआ । पुनः सं० १६८५ वर्षे अणहिलपटनि श्री विजयानंद सूरि यका कपट करीने श्री विजयदेव सूरि गछ भेद करी सागरने गछ माहि लेइने देवसूरी शुरा हुया । २ गछ हुया अणहिल पत्तनि । श्री विजयानंद सूरि ये संसेह-ई नगरई श्री आसापुरि प्रासाद दत्त वर यकि (१०९-२) सं० १६९१ वर्षे पंचांगुलीनो उपद्रव देवसूरीई कीधो । ते श्री सूरिई आसपुरि देव्याई उपद्रव दाख्यो । जय हुआ । श्री गुरु गछि मंगल श्रेणि हुइ । केतलेक दिने मुगसी पासनी यात्रा कीधी । श्री गुरुने अंतरीक पाननी यात्रानो हर्ष हुआ । केतलेक वर्षे दक्षिण बुरहानपुर नगर चो-मासइ रखा । खानदेशी कुकणे विचरतां सूरति चोमासी रखा । अनुकमि कान्हुमि विचरता लभायति तद् शायी श्री अक्बरपुर नगरे श्री सूरि संवाग्रही चउमासि रखा । त्रिहा श्रीमालि वृ० शावाई परिव बजीयाना आग्रह यकी श्री विजयराज सूरिने भट्टारकपद दीधो । पा० बजीयागे पदोत्सव कीधो । श्री गुरुनी आज्ञा लही श्री विजयराज सूरिई दोसी मनीयाने आग्रही अहमि-दावाद नगरे विहार कीधो । एकदा श्री गुरु मुखि पा० बजीआ सभा समक्ष धम्मोपदेश समाधि पणि सांमलि छई । एहई वाणोतरई आबी यधामणी दीधी जे लोहना गजते अधिकरणे भयां गिहाज समुद्रे आख्या । वाणोतर कहे शैठनी लाम बहोत (११०-१) छे । एतले श्री गुरु सादा, कुशि, कुदाला, छरी, तेहना शाखे पाव देखाख्या । श्री गुरुनइ वचनई रजित यका घणा जीवनई असमाधिनाकारक इह लो-हना गंजनई समुद्रमाहि जल सरणि कीधा । गुरु मुखि एहनी आलोयणि लीधी । जे तेहनई समुद्र माहि.....जहा लगई चिरंजीवी रहु आयु पर्यंत जण जण दीठ प्रवालानी जपमालोका देश पूर्णार्थि । पुनः श्री सूरिने उपदेशि समुद्रे जलचर जीवनी घणी यन्ना कीधी । श्री गुरुनइ एहवा परोपकारी

प्रथम गृणवाणीया प्रमुख ए आशिर्वाचन कटे शङ्करा धातुपात्र कट नानाविधि अंघ्रा दान शायद
हृद । प्रायः इरा अभयदान आवागमन हृयो । यथोक्त

श्रीमज्जन प्रवचन रहस्य प्रकाशवचन गुण ।

श्री विजयानन्द सूरिजगत् निर सवहित्तर्ना । १ ।

एतद् आशापुरी दत्तार थरी स आशु मजीरु

जाणी कर्म रीत डालश हंति धर्मरूप ओषध धैर्य

भरी इत्या हृया । गङ्गी मलामर्षी उ० श्री हीग्वत्र

ग० उ० श्री बीजयराज ग० ने दीधी । सवनी हित

शिक्षा श्री आचार्यदे कहाशे । श्री गुरुदे उ० श्री

वृक्षालपर्यन, उ० श्री देवप्रिमल ग० प्रमुख गिताय

उत्तराच्यन (११००) चउमणि निशामणि

चउद पूरने सार नमस्कार कर्ता सवी आयु ६९ वर्ष

समर्पि दिन ३ अणसण आगश स० १७११ वर्षे

आसाइ कृष्ण प्रतोपदइ श्री अक्बरपुर नगरइ बालवाणि

प्रतधारक जल धत्र चर तिर्यक् जीउ रक्षाकाङ्क्ष

युग परर सम विद्वद ब्राह्म श्री गु० हीरवन्धनाराधक

सूरी श्री विजयानन्दनो स्वर्ग हुआ । यथाक्त.—

शुद्ध प्रागसाद् वंशाग्र प्रभासनिदिगाकरः ।

दद्यादानन्दमानन्द. सद्गुरुः सतगोदयः । १ ।

६२ तत्सद्वै श्री विजयराज सूरि ।

तेहना गुजर देशि रङ्गी नगरे श्रीमाली वृ० शायाड

गोत्रि मणिनार अउठके सा० खामचद तंद्वाहिनी

गमतादे पुन स० १६७९ वर्षि जन्म, ने नाम कु-

रजी । स० १६८९ वर्षि रजीर पुष्ट व्रत, नाम वृक्षाल-

विजय । स० १७०१ वर्षे चापानर नगरइ पंडित

पद हुआ । स० १७०४ वर्षे श्री सिंगोही नगरे आचार्य

पद हुआ । श्रीमाली वृद्धशाया पा० वज्रियइ पाट

महोत्सव कीथे । प्रा० सा० राउते पदोत्सव कीथे ।

स० १७०६ वर्षे श्री स्वमायंत (१११-१) भन्नारक

पद हुआ । श्री सूरिनंद उपेदीश श्री अहिम्मावादा नगरे

पाल्लि गोत्री चापानेरी अउठके श्रीमाली वृ० शास्त्रा

दा० मनीया मुग दार्मी शास्त्रिदाश दुर्भिक्षना योग यकी

गणा प्राणा मीदासा जाणी स० १७२० वर्षे दुर्बल

एक समारिने मास १९ पर्यंत रस अन्न वृत्त शुद्ध खाद

वाच्य —

व्योम युग मिलाइ वाह शङ्कर प्रोक्तुभमाणव

नामादेश दगद दीन जननाश्रदि प्रदानायुगे ।

सत्रागारगणिगण निहतगान दुर्भिक्ष विधादिय

हाजापाटनमदनः स जयति श्रीशानिदागा भद्रः । १ ।

अथ कथित —

गया महा निर्मला चैत्र धुनये दांठा . .

भादव न भोजन आमुसइ मुट मेहली आसा ।

चाख्या महिना च्यात मुट नर वटान हुआ निगसा ।

निषण कट सातगन प्राणिमात्र पोषण भरण

शानिदाग मनीया गुत तलु कर्ष आया तो शरण ॥ १ ॥

अर्जुन उपरि स० १७०० वर्षे स्वनामे श्री शानि

नाथना (१११-२) प्रासाद नापत्राग्यो । पुन श्री

हमाराचल, तारागिरि, आगसणि, नदीय, राणकपुर,

संस्थार, भीलकाक, पर सत तौमद जीणोद्धार कीथे ।

पुनः स्फाटिक श्री शानिनाथ प्रमुख विद्व ०१ थाप्या ।

स० १७४० वर्षि श्री विजयराज सूरि स्वर्ग हुआ ।

६३ तत्सद्वै श्री विजयमान सूरि ।

तेहना दक्षिण देशि बुहरानपुर नगरे मा० वृ० दे०

वानजी श्री श्री गीरा पुत्र स० १७०७ वर्षे जन्म ।

स० १७१७ वर्षे मालपुरे जन । स १७२६ वर्षे श्री सितो-

ही नगरद सा० नर्मती भन्नागि आचार्य पदमे उठत

कीथे । स० १७८२ वर्षे नाइलाइ नगरे गच्छ नायक

पद हुआ । एहउड अणहिल पाटण पासे संदर नगरइ

स० १७४९ वर्षे प० नयमिमल थरी सवीस मत हुआ ।

स० १७७१ वर्षे श्री साणद नगरे श्री विजयमान

सूरि स्वर्ग हुआ ।

६४ तत्सद्वै श्री विजयराज सूरि ।

उद्ध मछर देशि मेडाहल्वा नगर श्री० वृ० (११२-१)

लिब गेति सा० मसगत खी यसादा तेहना पुत्र स०

१७०७ वर्षे जन्म । स० १७४० वर्षे पिता सा

जसगन पुत्र सहित श्री रुक्पुरे दक्षि । स १७६६ वर्षे

श्री सीरोही नगरे आचार्य पद हुआ, सा० हरराजशाम
करणद पदात्सव कीया । स १७७१ वर्ष गठनायक
पद श्री साणद नगरे हुआ । महता दवचद महता मदन
विणे पाठ महाउव कीया । स १८० वर्ष श्री सूरान
वन्त स्वर्ग हुआ ।

अथ आसीर्वाद कही है —

नयसु गुरो जेनास्तीर्थ क्षेत्र शिष्यसतति ।

यथा नाम्नापि जायत रसना सफरा सता ॥ १ ॥

ससारनाश य तस्य भयसी

जग्राह दाक्षा ज्ञानभतिदा परा ।

ज्ञानामृतापूरीत मानस सन्

निय पुनातु प्रतिपास गुरु ॥ २ ॥

पञ्चवलीय रचिता सुयत्न

श्रणात या मनुल् भारभक्त्या ।

तस्याल्य चितित कामसिद्धि

श्री कल्पलया फलानि जयात् ॥ ३ ॥

इति श्री सुनिहित तपाग पट्टपर नाम्नी

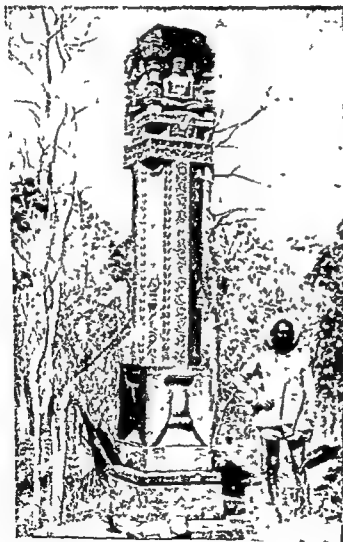
श्री बीर प्रयागली ममाम ॥

॥ सन् १९२५ वर्ष कार्तिक वदी ७ ॥

— — —



जैन साहित्य संशोधक



जैनमंदिर मानस्तंभ, देवगढ़ (शांसी)

॥ अहम् ॥

॥ नमोऽस्तु श्रमणाय भगवते महावीराय ॥

जै न सा हि त्य सं शो ध क

‘पुरिसा ! सच्चमेव समभिजाणाहि । सच्चस्साणाए उवट्ठिय मेहावी मारं तरइ ।’

‘जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ ; जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ ।’

‘दिट्ठं, सुयं, मयं, विष्णावं जं एत्थं परिकहिजइ ।’

—निग्रन्थप्रवचन—आचारागसूत्र ।

खंड १]

हिन्दी लेख विभाग

[अंक ४]

LOGIC FOR THE MASSES.

By C. R. JAINA, Bar-at-Law.

[This little article owes its existence to my growing conviction that the real cause of India's downfall has been the disappearance of what might be termed the scientific or logical turn of mind from her people. How to restore this logical tendency to the Indian mind speedily and in a simple manner naturally flowed from such a conviction. The solution of this troublesome problem has at last been found in the Jaina *nyaya* upon which this monogram is grounded. May it fulfil its great purpose, will, I doubt not, be the heartfelt wish of every true patriot.

C. R. JAINA.]

FOREWORD.

Reader,

Has it ever occurred to you to find out why a simple rustic who knows nothing of the three Rs and who is most certainly innocent of all pretensions to logic immediately infers the presence of fire at the sight of smoke? How do

you account for the unerring accuracy of his inference in this matter? Is it not that there is inherent in the human mind a natural capacity for valid deduction independently of a school or collegiate education?

Well, this is what may be termed natural logic which, as you see, is a very simple thing. Compared with this the modern system of logic which forms part of the higher education that is imparted only to advanced students, is but a bundle of artificial forms and formulae. It is cumbersome and too much loaded with technicalities, definitions and diagrams which only go to confuse the mind and confound the sense. Besides, it is meant only for a certain class of college students, is learnt with difficulty and is productive of no practical good outside. Natural logic, on the other hand, is a practical function of life, and, therefore, natural to every man, woman and child. It only requires the drawing of attention to a few principles which can be understood and mastered by any one in a short time. There is certainly nothing in the nature of an impossibility in its principles to place it beyond the reach of the moderately intelligent man in the street. How quickly one masters this branch of practical learning, depends on the way it is imparted to men. Certainly, their failure, if any, is to be laid at the door of their instructor.

It would be out of place to compare in detail the method advocated here with what is taught as logic in our colleges, but it is well-known that the highest achievement of artificial logic is the possession of a set of rigid diagrams and forms which it applies to each and every proposition to test its formal validity quite irrespective of the question whether the statement of fact or facts involved in its premises be, in reality, true or not. The least advantage to be derived from natural logic, on the contrary, is the acquisition of what may be termed the logical turn of mind that seeks to discover and establish actual relations among things and the true principles of causation of events in nature. The highest gain from this system of natural deduction must, consequently, imply a complete mastery over the empire of nature for our individual and racial good.

It only remains to be said that logic is the one science which is the crown of glory of Intellectualism. It is highly practical, useful in every department of learning and the sweetener of life. It was logic which was truly the source of undying fame to the ancient rishis and philosophers of our land; and it is logic whose neglect has reduced us to the lowest level of existence to day. It is, therefore, the duty of every true well-wisher of India and Indians, as well as of the entire human race, to spread the knowledge of this most important science amongst men; and most certainly it should be taught to our boys and girls in their child-hood to impart to them that logical attitude which is the source of all auspiciousness and good.

Hardoi,
22nd August 1920.

CHAMPAT RAI JAIN,
Bar-at-law.

LOGIC FOR THE MASSES.

LESSON I.

Logic is the method of valid deduction. A valid deduction is only possible where there is a *fixed rule* to lead the mind to a particular conclusion from a given mark or fact.

Illustration

1. There is fire in this room, because it is full of smoke.

[Here smoke is the mark of fire. The sight of smoke immediately leads one to the conclusion that there is fire in the room, because smoke is not produced except by fire]

2. It will be Monday to-morrow, because it is Sunday to-day.

Where there is no fixed rule there can be no valid deduction there, *e. g.*, you cannot tell the number of keys in my pocket, because there is no fixed rule that I should always have a particular number of keys into my pocket and never more or less.

LESSON II.

A fixed logical rule means something more than a mere long course of practice, or a series of disconnected events. Suppose a man has hitherto always carried 5 keys in his pocket and never any more or less: does it entitle any one to say that he will have only five keys in his pocket to-morrow also? No, because we have here only a long course of practice which might be discontinued any moment. Suppose further that I have a friend who is the father of one dozen boys and who has never had a girl born to him, and suppose that his wife expects to become a mother again: can any one say what will be the sex of the next child of my friend? No, because there is no fixed rule in nature that a

particular person should always get boys and never a girl.

It is thus evident that a long course of practice or even an uninterrupted series of natural events does not justify an inference which can only be drawn from certain fixed natural or quasi-natural rules.

LESSON III.

There is a fixed logical rule to guide the mind from :--

(1) Cause to effect.

Illustration.

Moist fuel if set burning produces smoke.

(2) Effect to cause.

Illustration.

Where there is smoke there is fire.

(3) Antecedent to consequent.

Illustration.

- i Monday following Sunday;
- ii Youth following childhood;
- iii Old age following youth.

(4) Consequent to Antecedent.

Illustration.

- i Saturday preceding Sunday.
- ii Youth preceding old age.
- iii Childhood preceding youth.

(5) Concomitance.

Illustration.

- i Age and experience.
- ii Childhood and inexperience.
- iii Marks of ripeness and deliciousness of taste in fruit.

(6) Container and contained, *i. e.*, the whole includes the part, or, what comes to the same thing, the attributes of the whole are to be found in the part.

Illustration.

There is no fruit tree in this garden;

Therefore there is no mango tree in this garden.

The instructor should illustrate

six kinds of fixed rules by many illustrations.

LESSON IV.

A conclusion may be drawn from an affirmative logical relationship, *e. g.*, wherever there is smoke there is fire. This is called the *anvaya* form. Hence when you see smoke you immediately say that there must be fire present at its source. But the sight of fire does not entitle you to conclude that smoke must be there too; for while smoke is always caused by fire, every kind of fire does not produce smoke, *e. g.*, red hot charcoal fire. But you may safely infer from the relationship of fire and smoke that where there is no fire there is no smoke. This is technically known as *vyatireka*.

Thus from the relationship between fire and smoke we can infer

1. the existence of fire wherever there is smoke, and
2. the non-existence of smoke where there is no fire.

But we cannot infer

1. the existence of smoke from fire, nor
2. the non-existence of fire where there is no smoke.

Anvaya and *vyatireka* taken together establish the validity of a logical relationship.

LESSON V.

The argument or reason is either of a contradictory type or of a non-contradictory one. The former of these implies the existence of a fact which is incompatible with the existence of the fact expressed in the conclusion. The other type is the non-contradictory one.

Illustration.

1. There is no fire in this pitcher, because it is full of water.

2. There is fire on this hill, because there is smoke on it.

The *hetu* (reason) in the first of these illustrations is called contradictory because it (water) is opposed to the nature of fire the presence of absence of which is the subject of inference; the pitcher being full of water which is hostile to and destructive of fire there can be no fire in it. The second illustration is a simple case of non-contradictory *hetu* (reason).

Further illustrations

Non-contradictory affirmative reason:

1. Sound is subject to modification, because it is a product.

(Explanation: All products are liable to modification; sound is a product; therefore, sound is subject to modification.)

This is an instance of the rule that part is included in the whole, *i. e.*, the attributes of a class are to be found in the individual.

2. There is fire on this hill because there is smoke on it.

(Effect to cause.)

3. It must be raining yonder, because potent rain-bearing clouds are gathered there.

[(Active) Cause to effect.]

4. It will be Sunday to-morrow because it is Saturday to-day.

[Antecedent to consequent.]

5. Yesterday was a Sunday, because it is Monday to-day.

[Consequent to antecedent]

6. This mango has a delicious taste, because it is ripe yellow in colour.

[Concomitance.]

Contradictory negative reason:

7. The atmosphere inside a steam boiler when fire is burning in it is not cold, because heated bodies are not cold.

[This is an instance of the whole and part type. Its amplified form would be :—

All heated bodies are not cold. A steam boiler is a heated body when a fire is burning in it.

Therefore, a steam boiler when a fire is burning in it is not cold.]

8 This woman is not barren, because she has a grandchild (which is the effect of the antithesis of female barrenness).

[Effect to cause, antithetical.]

9. This man is not happy, because he has present in him the causes of misery (the opposite of happiness).

[Cause to effect, antithetical].

10. Tomorrow will not be a Sunday, because it is Friday to-day.

[Antecedent to consequent, antithetical.]

11. Yesterday was not a Friday, because it is Tuesday to-day.

[Consequent to antecedent, antithetical]

12. This wall is not devoid of an outside, because it has an inside.

[Concomitance, antithetical.]

Non-contradictory negative :

13. There is no oak in this village, because there is no tree in it.

[Whole and part]

14 There are no potent rain-bearing clouds here, because it is not raining here.

[Effect to cause.]

15. There is no smoke in this place, because there is no fire here.

[Cause of effect.]

16 It will not be Sunday to-morrow, because it is not Saturday to-day.

[Antecedent to consequent.]

17. It was not Monday yesterday, because to-day is not Tuesday.

[Consequent to antecedent.]

18 The right hand pan of this pair of scales is not touching the beam, because the other one is on the same level with it.

[Concomitance.]

Contradictory affirmation :

19. This animal is suffering from some disease, because it has not got the appearance of health.

[Effect to cause.]

20 This woman is feeling unhappy, because she has been forcibly separated from her lover.

[Cause to effect, antithetical.]

बा ल न्या य



[लेखक:—श्रीयुत चपत रायजी जैन, बारिएर-पेंट-लॉ.]

(प्रथम वक्तव्य)

अध्यापकजी !

यह लेख जो आपके सम्मुख उपस्थित है, बालको अर्थात् छठी, सातवीं और आठवीं कक्षाके छात्रोंको न्यायमें प्रवेश करानेके लिये लिखा गया है । “युरुपीय-न्याय” ने कालिजर्हामें अध्ययन कराया जाता है; किन्तु यह प्रकट है कि जो मनुष्य प्राकृतिक न्यायको जानता है, वह बिना कालिजर्ह तक पढ़ भी उचित नतीजा निकाल सकता है । इससे यह सिद्ध होता है कि प्राकृतिक न्याय अत्यन्त सरल और सुवर्ण है । मेरा विचार है कि छठी, सातवीं और आठवीं कक्षाके बालकोंको भले प्रकार “न्याय” की शिक्षा दी जा सकती है ।

इसमें योग्यता केवल अध्यापकमें होनी चाहिये, जो कि प्रत्येक पाठ तथा दृष्टान्त मलामांति विद्यार्थीको समझा दे । इस शिक्षामें स्मरण शक्तिपर बलात् बल डालनेकी कोई आवश्यकता नहीं—यदि छात्रको समझा दिया जाय । और न इसमें कोई बात ऐसी ही है, कि उपरोक्त छात्र भलीभांति न समझ सकें । इससे स्वयं छात्रकी नैतिक शक्तियां न्यायका प्रतिबिम्ब हो जायगी, और उसका मन स्वयं न्यायमें प्रवृत्त होने लगेगा । आशय यह है, कि यदि बालकों की समझमें न्याय न आय तो अध्यापक महाशयकी त्रुटि है और किसीकी नहीं ।

“न्याय” के शृणोके बारेमें भी इतना कहना उचित प्रतीत होता है कि बिना इसके जाने हुये बुद्धि तीक्ष्ण नहीं होती, और जो इसको जानता है उसीका जीवन सफल समझना चाहिये । न्याय ही की बदौलत भारत वर्षके प्राचीन कालमें ऋषि, मुनि और विद्वान पंडितगण सारे संसारमें प्रख्यात हो गये । और न्यायके जाते रहने देश और जातिके शुभचिंतक हैं, उनका कर्तव्य है कि वे यथासंभव शेषकालहीमें अपनी सन्तान और छात्रोंके मनको “न्याय” में प्रवृत्त कराये ।

इसप्रकार “न्याय” में प्रवेश करनेके अर्थ उचित है कि छठी—सातवीं कक्षा तक तो येही पाठ—जो आप लोगो के सम्मुख उपस्थित हैं—पढ़ाये जायं । तत्पश्चात् आठवीं श्रेणीमें “न्याय दोषिका” “परीक्षा मुख” अथवा इसी प्रकारकी किसी अन्य पुस्तका अध्ययन कराया जाय । इस प्रकार छात्रोंमें न्यायकी योग्यता स्वयं बढ़ती जायगी ।

प्रथम पाठ

(क)

प्रश्न—बघो ! आज रविवार है। तुम घतला सकते हो कि कल कौन दिन होगा ?

उत्तर—सोमवार ।

प्र०—क्या तुम बता सकते हो कि कल मंगल, बुध, या वृहस्पति बार क्यों नहीं होगा ?

उ०—क्यों कि रविवारके बाद सदैव सोमवार ही होता है, कभी दूसरा दिन नहीं होता ।

प्र०—इस लिये यदि हम यह कहें, कि कल बुध होगा तो क्या हमारा कहना ठीक होगा ?

उ०—नहीं स्याद ! आपका ऐसा कहना नितान्त भ्रमात्मक होगा ।

(ख)

प्र०—बघो ! हमारी जेबमें चावियोंका एक गुच्छा है। क्या तुम यतला सकते हो कि उसमें कितनी कुंजियें हैं ?

उ०—नहीं साहब !

प्र०—क्यों ?

उ०—इस लिये कि कोई ऐसा नियम नियत नहीं है कि जिसमें किसी गुच्छेकी कुंजियोंकी संख्या निरधारित हो सके ।

उपरोक्त प्रश्नोत्तर—सीतसे यह प्रकट है कि न्याय-के अनुसार नतीजा वहीं निकाला जा सकता है कि,

१—जहां कोई निर्धारित नियम हो, और

२—वहां कोई न्यायका नतीजा नहीं निकल सकता जहां कोई निश्चित नियम नहीं है

दूसरा पाठ

बघो !

कल तुमको यह बताया गया था कि जहां कोई

नोट—अध्यापकका कर्तव्य है कि बालकों के मन पर नाग उदाहरणों द्वारा यह सिद्धान्त अंकित कर दे ।

नियम नहीं है वहां कोई ठीक नतीजा नहीं निकाला जा सकता । आज हम दो उदाहरणोंपर और विचार करेंगे, कि “नियम” से क्या प्रयोजन है ।

१—कल्पना करो कि एक म्वाला सूर्य निकलनेसे पूर्व शहरमें दूध बेचनेके लिये मेरे मकानके सामनेसे जाया करता है । और यह भी कल्पना कर लो कि यह मनुष्य ५० वर्षसे लगातार योंही मेरे मकानसे जाता है—और कोई नागा कभी इससे नहीं हुई । तो क्या तुम बता सकते हो, कि प्रातःकाल भी वह मेरे मकान के सामने से गुजरता, या नहीं ?

२—कल्पना करो मेरा एक मित्र रामदत्त है जो १२ लड़कोंका पिता है । और जिसके आज तक कभी लड़की पैदा नहीं हुई । इस रामदत्तकी पत्नी गर्भवती है । क्या तुम बता सकते हो कि उसका गर्भस्थ—बालक पुत्र होगा या पुत्री ?

इन दोनों प्रश्नोंके उत्तर “नहीं” में है । क्यों कि पहिले प्रश्नमें दूध बेचनेवालेका बीमार हो जाना अथवा किसी अन्य आवश्यककार्य या लाभकारी व्यापारमें लग जाना, या दूध हीका अभाव हो जाना संभव है । दूसरे उदाहरणमें प्रकृतिका कोई ऐसा नियम नहीं है, कि अमुक मनुष्यके घर सदैव लड़के ही हों—लड़की कभी न हो ।

यस हम देखते हैं कि “न्याय” के नियमका प्रयोजन ऐसी घटनाओंसे नहीं है, जो किसी मुख्य यातमें अब तक प्रचलित रही हो; किन्तु उस नियत नियममें है—जो अवतक सत्य पाया गया है—और भविष्यमें भी कभी असत्य नहीं हो सकता । जैसे बालक—पनका युवावस्थासे पहले होता ।

तृतीय पाठ

उपरोक्त निर्धारित नियम ६ प्रकारके हो सकते हैं, अधिक नहीं ।

१—कारणके शात होनेसे कार्यका अनुमान ।

जैसे सुलगते हुये गाले ईंधनसे धुंसाका शान ।

२—कार्यसे कारणका ज्ञान ।

उदाहरण—धुंसेसे अग्निका बोध ।

३—पूर्व पक्षसे उत्तर पक्षका बोध ।

उदाहरण:—१—एविवारके पश्चात् सोमवारका होना ।

२—शैशव कालके पश्चात् युवावस्था ।

३—युवावस्थाके पश्चात् वृद्धावस्था ।

४—उत्तरपक्षसे पूर्वपक्षका ज्ञान ।

उदाहरण—१—एविवारके पूर्व शनिवारका बोध ।

—२ बुढ़ापेसे पूर्व युवावस्था ।

५—एक साथ होनेवाली बातोंका ज्ञान ।

उदाहरण—१ जैसे वय और अनुमन ।

—२ बालकापन और अबाधता ।

—३ फलमें उसके परानेके चिन्ह और उसका स्वाद विशेष ।

६—व्याप्य-व्यापक अर्थात् कुलमें जुज (अश) शामिल है; या यों कहां कि जातिके गुण व्यक्तिमें पाये जाते हैं ।

उदाहरण—१ इस फुलवाहीमें कोई फलदार वृक्ष नहीं है; अतः इसमें आम भी नहीं है ।

अध्यापकका कर्तव्य होगा कि इन ६ प्रकारके नियमोंको भली भांति बालकोंको समझा दे और नाना प्रश्नों द्वारा इस बातका भी निश्चय करा दे कि केवल ६ ही प्रकार के नियम प्रकृति में हैं—न्यूनाधिक नहीं।

चतुर्थ पाठ

बच्चों !

न्यायका सिद्धान्त “ धनरूप ” नियमसे निकाला जा सकता है, जिसको “ अन्वय ” कहते हैं ।

उदाहरण—जहां कहीं धुंवां है; वहां अग्नि अवश्य है ।

नोट—उदाहरण दो सत्ताओंमें जब यह बात उदाहरण समझ जाये, तो फिर आगे बढ़ें ।

इस लिये जब कभी तुम धुंवां देखो तो मनमें तुरन्त नतीजा निकाल सकते हो कि वहां अग्नि अवश्य होगी; किन्तु अग्निको देख कर तुम यह नहीं कह सकते कि धुंवा भी वहां है । क्यों कि धुंवा तो बिना आगके हो नहीं सकता; किन्तु आग बिना धुंवाके भी हो सकती है । जैसे मुलगेते हुये अंगारों की आग । और आग तथा धुंवाके पारस्परिक संबंधमें हम यह भी नतीजा निकाल सकते हैं कि जहां जहां आग नहीं होती वहां वहां धुंवा भी नहीं होता । क्यों कि धुंवा बिना आगमें नहीं होता । यह ‘क्षणरूप’ है और इसको ‘व्यतिरेक’ कहते हैं ।

यस यह प्रकट है कि आग और धुंवाके संबंधसे ४ नतीजे निकलते हैं ।

१—अग्निका ज्ञान धुंवाके ज्ञानसे ।

२—धुंवाके अभावका ज्ञान अग्निके अभावके ज्ञानसे ।

३—धुंवाका ज्ञान अग्निके ज्ञानसे ।

४—अग्निके अभावका ज्ञान धुंवाके अभावके ज्ञानसे ।

इनमेंसे पहिले दो तो नियमानुसार हैं और इस कारणसे ठीक हैं । और पिछले दो नियमके प्रतिकूल हैं अतः ठीक नहीं । जहां अन्यत्र और व्यतिरेकीकी घटना होती है, वहां नियम सिद्ध समझा जाता है । यथा—

१—जहां जहां धुंवा होता है वहां वहां अग्नि होती है । (अन्वय)

२—जहां जहां अग्नि नहीं होती वहां वहां धुंवा भी नहीं होता । (व्यतिरेक)

पञ्चम पाठ

बच्चों !

इस उदाहरणमें कि “ इस पहाड़पर अग्नि है, क्यों कि इसपर धुंवा है ” अग्निको साध्य कहते हैं और धुंवाको हेतु ।

साध्य वह कहा जाता है जो सिद्ध किया जाय ।

हेतु वह है जिसके द्वारा साध्यकी सिद्धी हो ।

यह हेतु साध्यका चिन्ह या संबंधी हुआ करता है; जैसे अग्नि का चिन्ह धुंवा । क्यों कि धुंवा किसी और वस्तु का चिन्ह नहीं है । कारण यह कि धुंवा अग्नि हीसे पैदा होता है; और अग्निके अभावमें नहीं पैदा हो सकता । अतः वह अग्नि हीका चिन्ह है और इसी कारणसे तुरन्त अग्नि का बोध करा देता है ।

हेतु दो प्रकार का होता है, विरुद्ध व अविरुद्ध ।

विरुद्ध—वह है जो साध्यके विरोधी का चिन्ह हो और जिससे साध्यके प्रतिकूल नतीजा निकले । जैसे इस घड़ेमें आग नहीं है; क्यों कि यह पानीसे भरा हुआ है । यहां पानी अग्नि का विरोधी है । अतः अग्निके अस्तित्वका निषेध करता है ।

अविरुद्ध हेतु—वह है जो सरलता पूर्वक साध्यके अस्तित्वको सिद्ध करता है । जैसे इस पहाड़ की चोटीपर आग है, क्यों कि वहांसे धुंवा ऊठ रहा है ।

३—यहां छाया है; क्योंकि छत्र मौजूद है । यहां समर्थ कारणसे कार्यका बोध हुआ ।

४—कल इतवार होगा; क्यों कि आज शनिवार है । यहां पूर्व-पक्षसे उत्तर-पक्षका ज्ञान हुआ ।

५—कल इतवार था; क्यों कि आज सोमवार है । यहां उत्तर-पक्षसे पूर्व-पक्ष का ज्ञान हुआ ।

६—हस्त आममें रस है; क्यों कि यह पका हुआ पीके रंगका है । यह सहचरका उदाहरण है ।

(२) विरुद्ध-निषेध-साधक ।

७—यहां शीत स्पर्श नहीं है; क्यों कि अग्नि-ताप मौजूद है । यहां अग्नि, शीत से विरुद्ध है और ताप, अग्नि का व्याप्य है । अतः वह अग्नि का ज्ञान कराता है ।

८—यह मनुष्य अस्वस्थ है; क्यों कि शय्याप्रस्थ है । यह उदाहरण कार्यके कारणके निषेधका ज्ञान विरुद्ध रूप से कराता है । क्यों कि स्वास्थ्यके निषेधका बोध होता है—उसके विरोधी बीमारीके कार्य अपना साम्या-व्यस्त होने से ।

वृत्तका अभाव है । यह उदाहरण व्याप्य-व्यापकके संबंधमें है ।

१४—यहां बरसात का बदल नहीं है; क्यों कि यहां वर्षा नहीं हो रही । यह उदाहरण कार्य-कारणके संबंधका है ।

१५—यहां धृष्टा नहीं है; क्यों कि यहां अग्नि नहीं है । यहां कार्यसे कारणकी ओर ध्यान गया ।

१६—कल रविवार नहीं होगा; क्यों कि आज शनिवार नहीं है ।

१७—कल सोमवार नहीं था; क्यों कि आज मंगल नहीं है ।

१८—इस तराजूका दाहिना पलठा बंदीको नहीं खू रहा है; क्यों कि दूसरा पलठा उसके बराबर है । यह सहचरका उदाहरण है ।

(थ) विरुद्ध-विधि-साधक ।

१९—इस प्राणीमें रोग है; क्यों कि इसकी बेछा निरोग नहीं पाई जाती ।

२०—इस धीके हृदयमें पीडा है; क्यों कि यह अपने पतिसे हठात् पृथक् कर दी गई है ।

अध्यापक महाशय को उचित है कि नाना उदाहरणों द्वारा इन चारों किसमके अनुमानोंका ज्ञान बालकोंको करा दे ॥ इति ।

सम्पादकीय टिप्पणी—ऊपरके दोनों लेख (इंग्रेजी और हिन्दी) लेखक महाशयने, खास करके बालकोंको न्यायशास्त्रका सरल विधि बोध करा देनेके हेतुसे लिखे हैं । मनुष्यमें रही हुई बुद्धि-शक्तिको विकसित करने और सत्यासत्यके विचारकी जिज्ञासको वृत्त करने में एकमात्र साधन न्यायशास्त्र ही है । न्यायवेत्ताओंकी दृष्टिमें जिस मनुष्यने न्यायशास्त्रका अध्ययन नहीं किया वह, चाहे, फिर अन्य सभी विषयोंमें पारंगत क्यों न हो, परंतु “ बाल ” ही कहलाता है । “ अधीतन्याकरणाक्रान्तकोशोऽनधीतन्यायशास्त्रः ” बालः । ” (जिसमें व्याकरण, काव्य, कोश आदिका अध्ययन तो कर लिया है परंतु न्यायशास्त्रका अध्ययन नहीं किया वह “ बाल ” ही है) यह नैयायिकोंके “ बाल ” का लक्षण है । इस लक्षणमें सत्यता अपरय रही हुई है । १० क्यों

कि विना न्यायशास्त्रका अध्ययन किये मनुष्य सत्यासत्यका भी निर्णय नहीं कर सकता और पदार्थके कार्य-कारणका भी ज्ञान नहीं कर सकता । न्यायतत्त्वके ज्ञाने विना मनुष्यकी बुद्धिशक्ति कुठित हो रहती है और विचारशक्ति अन्धी बनी रहती है । अतः इस क्रममें कोई भी अज्ञान्युक्ति नहीं है कि न्याय शास्त्रके अध्ययन विनाका मनुष्य बिलकुल “ बाल ” ही है ।

भारतके प्राचीन विद्वानोंने न्यायशास्त्रका कितना सूक्ष्म और विस्तृत परिशीलन किया है इसकी साधारण जनोको तो कल्पना भी आनी कठिन है । उन्होंने एक एक विषयपर तो क्या परंतु एक एक मामूली विचारपर भी प्रेक्षकों ग्रंथ और हजारों श्लोक लिख बाले हैं । उनके इन गहन तर्कोंको देख कर आज क्रलके विद्वान् मनुष्यका मस्तिष्क भी चकराने लगता है तो फिर औरोंकी तो बात ही क्या । एक तो यों ही यह विषय कठिन है और फिर उसपर इनकी भाषा संस्कृत होकर उसकी शैली उससे भी कठिनतर है । इस लिधे विना संस्कृतका अच्छा भ्रम्यास किये न्यायतत्त्वका ज्ञान होना आस प्रायः हमारे देशवासियोंके लिये दुर्लभ्य हो रहा है । इस दुर्लभताको कुछ सुलभ बनानेके लिधे और सर्व साधारणको सहज ही में इस विषयका परिचय प्राप्त करा देनेके लिये श्रीयुत जैनीजीने यह प्रशंसनीय प्रयत्न किया है । आप इस बारेमें लिखते हैं कि—“ मेरा दृढ विश्वास है कि मनुष्य यदि प्राकृतिक नियमोंका विधिपूर्वक-अनुशीलन कर ले तो न्यायशास्त्रका दुर्लभ्य उसके लिये मलीमांति प्रशस्त हो सकता है । इसी विचारको मविष्यमें कार्यरूप प्रदान करनेके निमित्त यह लेख प्रकाशित कराया जाता है । तर्क इस शास्त्रके श्रेष्ठ विद्वानों द्वारा इसकी उचित समालोचना हो जाय । अगर इन नियमोंमें यदि किसी महाउपायको संशोधन करनेकी आवश्यकता प्रतीत हो तो पूरी छान-बीनके बाद कर दी जाय । इस लेख द्वारा इस शैलीकी उपयोगिता सिद्ध हो जाने पर इस विषयको पुस्तकाकार प्रकाशित करनेका उद्योग किया जायगा जिससे मातृ-भाषा, माषी छात्र न्यायमें प्रवेश करके सत्यासत्यका इशं निर्णय कर सकें । ”

आशा है कि विद्वान्मर्म जैनी महाशयके इस उच्च आशयको लक्ष्यमें लेकर इस बारेमें अपनी योग्य सम्मति प्रकाशित करेंगे ।

दक्षिण भारतमें ९ वीं-१० वीं शताब्दीका जैन धर्म ।

[लेखक:—स्वर्गस्य कुमार देवेन्द्र प्रसादजी जैन]

गंग वंश ।

भारतवर्षके प्राचीन राजवंशोंमें पश्चिमके गंगवंशीय राजा जैनधर्मके कट्टर अनुयायी थे। यह बात परम्परासे चली आई है कि नदीगण सम्प्रदायके सिंहेनन्दी नामक एक जैनधर्मक आचार्यने, गंगवंशके प्रथम राजा शिव मारके राज्यसिंहासन प्राप्त करनेमें सहायता दी थी। एक शिलालेखमें इस बातका बर्णन है कि शिवमार कोशुणी वमां सिंहनन्दीका शिष्य था, और दूसरेमें यह कि सिंहनन्दी मुनिके सहायता से गंगवंश वैभवस पन्न हुआ। एतदर्थ इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि जैन ग्रन्थोंमें इस भावके श्लोक पाए जाय कि गंगवंशीय राजा

सिंहनन्दीकी चरणवन्दना करते हैं। अथवा जिस राजवंशका जन्म एक जैन धर्माचार्यकी कृपासे हुआ हो उसके राजाओंका कट्टर जैनधर्मावलम्बी होना भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है। ऐसे लेख विद्यमान हैं जो इस बातको निस्संदेह सिद्ध कर देते हैं कि गंगवंशीय राजा जैनधर्मके उन्नायक आर रक्षक थे। इसकी चौथीसे बारहवीं शताब्दी तकके अनेक शिलालेखोंसे इस बातका प्रमाण मिलता है कि गंगवंशके शासकोंने जैन मन्दिरोंका निर्माण किया, जैन प्रतिमाओंकी स्थापना की, जैनतपस्वियोंके निमित्त चट्टानोंसे काट काटकर शुक्राण तैयार कराई और जैनाचार्योंको दान दिया।

मारसिंह द्वितीय ।

१ रेजे Repertoire d'epigraphie Jaina (A. A. Guerinot शिलालेख नं० ११३ और ११४, तथा चन्द्रगिरि पहाड़ी पर स्थित पार्श्वनाथस्तीके शिलालेखका निम्न लिखित पद्य—

“योऽसौ शक्तिमलाद्विषद्वलशिला—स्तम्भावली—सण्डन—
ध्यानासि पट्टरहतो भगवत सोऽस्य प्रसादीकृतः ।
छात्रस्यापि स सिंहनन्दिमुनिना नो चेत् कथं वा शिला-
स्तम्भो राज्यरमागमाध्वपरिचस्तेनासिखण्डो घन ॥”
(अथर्व वेदगोत्र शिलालेख, नं० ५४, पृष्ठ ४२)

१ सलेम जिला की Manual-Revd.T.F.Foulkes द्वितीय भाग, पृ० ३६८ का निम्न लिखित पद्य देखिए—

“यस्याभिवत् प्रवरकाश्यवशजोऽमे

कण्ठो महामुनिरनल्पतपः प्रभाव ।

य सिंहनन्दिमुनिपतिखण्डचक्रुदि—

गंगानद्या विजयता जयता वर स ॥”

हर्षत रार्हतेक पाठांशुसार ‘मक्षिप’ की जगह ‘द्वनिप’ पाठ दिया है, जा ठीक अगत माहूम दृष्ट है।

इस वंशके एक राजाका नाम मारसिंह द्वितीय था, जिसका शिलालेखोंमें धर्ममहाराजाधिराज ‘सत्यवाक्य’ कोशुणीवर्मा—परमानवी मारसिंह नाम मिलता है। इस राजाका शासन काल चेर, चोल, और पाण्ड्य वंशोंपर पूर्ण विजयप्राप्तिके लिये प्रसिद्ध है। मारसिंह द्वितीयने अपने शत्रु बज्जलेदेवके साथ सर्वोत्कृष्ट विजय प्राप्त किया और गोनूर और उच्छमीमें उसने बहुत धनघोर युद्ध लड़ा। जैन सिद्धान्तोंका सच्चा अनुयायी होनेके कारण इस महान् नृपन अत्यन्त ऐश्वर्यसे राज्य करके राजपद त्याग दिया और भारवार प्रातके बाकापुर नामके स्थानमें अपने प्रसिद्ध धर्म-गुरु अजितसेनके सम्मुख

३ “श्रीदेशीयगणाधिपपूर्णमृगमृच्छ्रीसिंहनन्दिमति—

श्रीपादाभ्युज्जुग्ममत्तमधुप सत्यस्त्वचूदामणि ॥

श्रीमञ्जैनमताधिपवर्द्धनसुधासुतिर्महीमण्डले

रेजे श्रीगुणमण्णो बुधनुत श्रीराजमल्लो नृप ॥”

(बह्वर्द्धन चरित्र, श्लोक ८)

तीन दिनोंके व्रतसे शरीर त्याग दिया । मारसिंह द्वितीयकी समाधिका लेख कुंजे ब्रह्मदेव खभ नामक स्तम्भके निम्न भागमें चारों ओरके शिलालेखोंमें विद्यमान है । वह स्तम्भ श्रवण बेलगोल (माइसूर) की चन्द्रगिरी पट्टादियों-पर स्थित मन्दिरोंके द्वारपर है । यद्यपि इस लेखमें कोई तिथि नहीं लिखी है,—तथापि मारसिंह द्वितीयके मृत्युकी तिथि एक दूसरे शिलालेखके आधारपर सन १७५ ई० निश्चय की गई है ।

चामुण्डराय ।

चामुण्डराय या चामुण्डराज इस महान् नृपतिक, सुयोग्य मनी था । इस मन्त्रीके शौर्यही के कारण मारसिंह द्वितीय ब्रह्मलेख तथा गोनूर और उच्छर्गाके रणक्षेत्रोंमें विजय प्राप्ति कर सका । श्रवणबेलगोलके एक शिलालेखमें चामुण्डराय की इस प्रकार प्रशंसा की हुई है—“ जो सूर्यकी भांति ब्रह्मक्षत्र कुलरूपी उदयाचलके शिरको मणिकी नाई भूषित करता है; जो अन्नभाषी भाति अपने यशस्वी किरणोंसे ब्रह्मक्षत्र कुलरूपी समुद्रकी वृद्धि करता है; जो ब्रह्मक्षत्र कुलरूपी खानियुक्त-पर्वतसे उत्पन्न मालाका मणि स्वरूप है और जो ब्रह्मक्षत्र कुलरूपी अश्विकों प्रचण्ड करनेके हेतु पबल पवनके समान है; ऐसा चामुण्डराय है ।

“ कल्याणतः क्षुभित समुद्रके रामान भीषणबलवाले और पातालमल्लके अतुल्य वज्रजलदेवकी जीतनेके हेतु इन्द्र नृपतिकी आज्ञानुसार, जब उसने मुखा उठाई; तब उसके स्वामी नृपति जगदेकवीरके विजयी हाथीके सन्मुख शत्रुकी सेना इस प्रकार भाग गई जैसे दीबते हुए हाथीके सन्मुख मृगोंका दल ।

“ जिसकी उसके स्वामीने नालम्बरानसे युद्धके समय, इस प्रकार प्रशंसा की थी “ जो वज्ररूप दांतोंसे शत्रुके हाथियोंके मस्तकको विदीर्ण करता है और जो शत्रुरूपी हिंस जीवोंके लिये अकुशक समान है । ऐसे हाथीवत् आप जव वीरसे वीर योद्धाओंके सन्मुख विरागमान हैं तो ऐसा कौन नृप है जो हमारे कृष्णबाणोंका आस न वने ।”

“ जो नृप रणसिंहासे लड़ते हुए इस प्रकार गर्ज कर बोला, “ हे नृपति जगदेकवीर ! तुम्हारे तेजसे मैं एक क्षणमें शत्रु को जीत सकता हूँ, चाहे वह रावण क्यों न हो, उसकी पुरी छका क्यों न हो, उसका गढ़ त्रिकूट क्यों न हो, और उसकी लाई क्षारसमुद्र क्यों न हो ।”

“ जिसको स्वयंमनाओंमें यह आशीर्वाद दिया था “ हम लोग इस वीरके बहुतसे युद्धोंमें उसको कण्टालि-गनसे उत्कटित हुई थीं, परन्तु अब उसकी लक्ष्मणी वारके पानीसे हमलोग तृप्त हुई हैं । हे रणरासिंहके विजेता ! तुम कल्पात तक चिरजीव रहो । जिसने बलदंकगग नृपतिकी अभिलाषाओंका व्यर्थ कर दिया, जो अपने मुखाविक्रमसे गंगाधिराज्यके वैभवको हरण करना चाहता था; और जिसने बीरोंके कपालरत्नोंके प्याले बना कर और उनको वीरशत्रुओंके शोणितसे मरकर खनके प्यासे पक्षियोंकी अभिलाषाको पूर्ण किया ।” उपरोक्त शिलालेख स्वयं चामुण्डराजका लिखा हुआ अपना वर्णन है । परन्तु ऐसा जान पड़ता है इस शिलालेखका अधिक भाग अपाय्य है । ऐसा माध्यम देता है कि हेगडे कन्नने, अपने लिए केवल अट्टाई पक्षितोंका लेख लिखनेके लिए, चामुण्डरायके मूल-लेखको तीन ओर अच्छी तरहसे घिसा दिया, और केवल एकही ओरके लेखको

४ देखो, हंसराईस रचित ‘श्रवणबेलगोलके शिलालेख’ न ३८ ।

५ देखो, मल्लानिका शिलालेख जिसकी हंस राईसने अपने ‘श्रवण बेलगोलके शिलालेखोंकी भूमिकाकी पाठ टीकामें उद्धृत किया है । पुन देखो, रचियाकिया इन्डिका, भाग ५, शिलालेख नं. १८ ।

६ इन्हें चन्द्र, तृतीय कृष्णका वीर-देता ‘रचियाकिया इन्डिका’ भाग ५, लेख नं० १८ ।

७-८ “ ब्रह्मक्षत्रकुलोदयाचलशितोमृषामणिभाजुमान् ब्रह्मक्षत्रकुलाम्बिवर्द्धनयशोरोचिः पुधादीधितिः ।

ब्रह्मक्षत्रकुलकपलमवर्षाहीरावर्जामणिः

ब्रह्मक्षत्रकुलश्रिचण्डपवनचामुण्डराजोऽजनि ॥

कल्याणतः क्षुभिताब्धिभीषणबल पातालमल्लाजन्म जेष्ठम् वज्रजलदेवमुखसमुत्पद्यत्येन्द्रशितान्द्राशया ।

रस छोडा, जिसका अनुवाद ऊपर दिया है । “ चामुण्डायने एक ग्रन्थकी रचना की जिसका नाम चामुण्डाय पुराण है और जिसमें २४ तीर्थंकरोंका संक्षिप्त इतिहास है और उसके अन्तमें ईश्वर नाम शिव स्वतन्त्र १०० (१७८ ईस्वी) उसकी तिथि दी हुई है ” । उपरोक्त शिलालेखके श्लोकोंमें दिया हुआ वर्णन चामुण्डायपुराणके वर्णनसे मिलता जुलता है । उस पुराणके प्रारम्भके अध्यायमें यह लिखा है कि उसका स्वामी गङ्गुल चूडामणि जगदेकवीर नोलम्बकुलान्तक-देव था, और वह ब्रह्मसत्रवशसे उत्पन्न हुआ था । अन्तक अध्यायमें यह लिखा है कि वह अजितसेनका शिष्य था ।

परन्तु श्रीजगदेकवीरनृपतेर्जैत्रदिपस्याग्रतो
धावहन्तिनि यत्र भग्नमहत्तानीक मृगानीकवत् ॥
अस्मिन् दन्तिनि दन्तवज्रदलितद्विदुःखमकुम्भोपले
धीरोत्तसपुरोनेषादिनि रिपुव्यालाकुशे च स्वयि ।
स्यात् को नाम न गौचर प्रतिनृपो मद्बाणकृष्णारग-
श्रासत्येति नोलम्बारजसमरे य श्लाघित स्वामिना ॥
खात क्षारपयोधिरस्तु परिधिस्वास्तु त्रिकूट पुरी—
लङ्कास्तु प्रतिनायकोस्तु च सुरारातिस्तथापि क्षमे ।
त जेतु जगदेकवीरनृपते त्वत्तज्जसीतिशान्
निर्व्यूढ रणसिंहपार्थिवरणे येनोर्जित गर्जितम् ॥
वीरस्यास्य रणेन मूरिषु वय कण्ठग्रहोत्कण्ठया
वृता सम्प्रति लब्धनिर्वृतिरसास्तत्-सङ्गधाराम्भसा ।
कल्पान्त रणरङ्गसिंहविजयि जीवेति नाकाङ्क्षना
शीर्वाणीकृतराजगन्धकरिणे यस्मै वितीर्णशिषि ॥
आकृष्ट मुजविक्रमादमिलषत् गङ्गाधिपराज्यश्रिय
येनादौ चलदकगङ्गनृपतिर्व्यर्थाभिलाषी कृत ।
कृत्वा वीरकपालरत्नचषके वीरदिष शोणितं
पाण्डु कौतुकिनक्ष कोणमगमा पूर्णमिभाषीकृता ॥
(त्यागद ब्रह्मचर्यसम्पत्ति शिखरे, ई स ९८२, देखो, लं
रा अवजेलगोट पृष्ठ ८५)

९. दुर्गस राईस “ भवनबेलगोलके शिलालेख ” श्लोका पृ २१;
तथा कर्नेल मैकज्जिका कठखान (एच. एच. विस्सनद्वारा संपा-
दित, भाग १, पृ १५६; जहां यह लिखा है कि चामुण्डाय पुरा-
णमें जैन धर्मके ६२ प्रसिद्ध पुरुषोंका वर्णन है ।

तथा कृतयुगमें वह षण्मुख था, वेतामें राम, दापरमें
गाण्डीवि और कलियुगमें वीर मार्तण्ड था । फिर उसकी
अनेक उपाधियोंके प्राप्त होनेके कारण लिखे हैं । सैवग
युद्धमें विज्जलदेवको परास्त करनेसे उसको समरधुरन्धर-
की उपाधि मिली । नोलम्बयुद्धमें गोनूर नदीकी तीर,
उसकी वीरतापर ‘ वीरमार्तण्ड ’ की उपाधि, उच्छगी
गढके युद्धके कारण ‘ रणरगसिंह ’ की उपाधि, बागवरेके किले-
में त्रिभुवन-वीर ’ और अन्य यादवाओंका वध करने
और गोविन्दको उस किलेमें प्रवेश कराने के उपलक्ष्यमें
‘ वैरीकुलकालदण्ड ’ की उपाधि, काम नामक
नृपति के गढमें राजा तथा अन्य लोगोंका हृष्टनेसे ‘ मुज-
विक्रम ’ की उपाधि, अपने वनिष्ठ भ्राता नागवर्मा को
उसके हृष्टके कारण मारबालन के निमित्त ‘ चलदकगण ’
की उपाधि, गगमट मुद्रा राक्षसके वधसे ‘ समर परशु
राम ’ और ‘ प्रतिपक्ष-राक्षस ’ की उपाधियां, सुमट-
वीर के गढका नाश करनेके कारण ‘ मटमारि ’ की
उपाधि, अपनी और दूसरोंके वीरगुणोंकी रक्षाके कारण
‘ गुणव काव ’ की उपाधि, उसकी उदारता एवं सद्गुण
आदिके कारण ‘ सम्यक्स्व रत्नाकर ’ की उपाधि, दूस्-
रोंके घन दार हरण की इच्छा न करनेसे ‘ शौचामरण ’
की उपाधि, हास्यमें भी कभी असत्य न बोलनेसे ‘ सत्य
युधिष्ठिर ’ की उपाधि, अत्यन्त वीर योद्धाओंके शि-
रोमणि होनेके कारण ‘ सुमटचूडामणि ’ की उपाधि
मिली । अन्तमें अपने ग्रन्थमें वह अपनेको ‘ वनिजन-
शेखर ’ भी कहता है ।

इन उपरोक्त उल्लेखोंमेंसे बहुतोका और कहीं वर्णन
नहीं है । परन्तु यह बात ध्यान देने योग्य है कि इतने
प्रसिद्ध और गौरवान्वित कार्योंके साथ उसके एक भी
धार्मिक कार्यका वर्णन नहीं है । प्रत्युत अगदसे अन्त-
तक युद्ध और रक्तपातकी ही कथा वर्णित है । ”

परन्तु इस बातको सिद्ध करने के लिए सन्देह रहित
प्रमाण उपस्थित है कि वृद्धावस्था प्राप्त होनेपर चामुण्ड-

राय अधिकतर अपने गुरु अजितसेनजी सेवामें, धार्मिक विचारोंमेंही, अपना समय व्यतीत करता था और श्रवण बेलगोल (माइसोर) के विन्ध्यगिरि और चन्द्रगिरि पर गोमटेश्वर और नेमिनाथकी विशाल मूर्तियोंकी स्थापना करने और अपनी सम्पत्तिके अधिक भागका इन मूर्तियोंकी पूजामें व्यय करने के कारण उसका नाम जैनमतके महान् उन्नायकों में अमर हो गया ।

राचमल्ल या राजमल्ल द्वितीय ।

गगवशीय मारिसंह द्वितीयके मरणोपरान्त पाञ्चालदेव, जिसका पूरा नाम धर्ममहाराजाधिराज सत्यवाक्य कोयुणी वमां पाञ्चलदेव था, सिंहासनावृद्ध हुआ । उसके अनन्तर राचमल्ल या राजमल्ल द्वितीय^{११} राजा हुआ जिसका पूर्ण नाम धर्म—महाराजाधिराज सत्यवाक्य कोयुणीवमां राचमल्ल था । चामुण्डराज राचमल्ल अथवा राजमल्ल द्वितीयका भी मन्त्री था । एक शिलालेखमें लिखा है, “ राय (अर्थात् चामुण्डराय) नृपति राचमल्ल का श्रेष्ठ मन्त्री^{१२} ”, और दूसरे में “ चामुण्डराय जो वैभवं नृपति राचमल्ल का द्वितीय है^{१३} ” बाहुबली—चरित्र नामक एक जैनग्रन्थमें यह लिखा है कि राजमल्ल नामक एक नृपति था, जो सिंहनन्दी मुनिका चरणोपासक था। चामुण्डमूप (अथवा राज) उसका मन्त्री था ।^{१४}

११ डॉ० एडींटेक मतमें राचमल्ल नाम छुट्ट है (देखो, एपि-ग्राफिया इण्डिका, भाग ५, लेख नं. १८) और कुछ शिलालेखोंमें भी यह नाम मिलता है, पर जिन जैनलेखोंमें हमने युक्तिके उद्धृत किया है वे राजमल्ल नाम हीका उपयोग करते हैं । और देखो, एपिग्राफिया इण्डिका, भाग ९, लेख नं. १०७.

१२ “ राचमल्ल भूवरक्षर मन्त्री—रायने । ”

(मांडारी वस्ती शिलालेख, छ. रा. श्रवण बेलगोल, लेख ५० १०३)

१३ “ राचमल्ल जगत्तत्त आमुमिपण द्वितीयविभव चामुण्डरायम् ” (द्वारपालक दशपथ के बाई ओरका शिलालेख, देखो, छ. रा. श्रवण ० ५० ६५)

१४ “ श्रीदशायमणाभिषिपूर्णमृगमृच्छ्रीसिंहनान्दिव्रति—

श्रीपादाभुजयुग्ममसमधुपः सम्यक्त्वचूडामणिः ।

श्रीमज्जैनमताभिषेधनसुधासुतिर्महामिण्डले

रेजे श्रीगुणभूषणो बुधवतुतः श्रीराजमल्लो नृपः ॥...

एक हस्तलिखित पुस्तकमें लिखा है कि “ चामुण्डराय जो ‘ रणरत्नमल्ल ’ ‘ असहाय—पराक्रम ’ ‘ गुणरत्नभूषण ’ ‘ सम्यक्त्व—रत्न—निलय ’ आदि उपाधिधारी है, जो सिंह नन्दी महामुनिद्वारा अभिनन्दित गगवशीय नृपति राज-मल्लदेवका महामात्य (प्रधानमन्त्री) है ”^{१५} ।

चामुण्डराय द्वारा स्थापित मूर्तियों और मन्दिरों का वर्णन करनेके पूर्व यह उक्तम होगा कि हम उन स्थानोंका संक्षेप वर्णन करें जिनमें उक्त धार्मिक रत्नारक स्थित हैं और जो आजकल जैनयात्रियोंके लिये अत्यन्त पवित्र तीर्थ हैं ।

श्रवण बेलगोल ।

श्रमण बेलगोल अर्थात् श्रमण या जैनियोंका बेलगोल माइसोरमें हसन जिलेके चन्नरयपत्त तालुकमें एक ग्राम है। हेल बेलगोल और फोडी बेलगोल नामक दो बेलगोलोंसे घृयक करनेके लिये यहाँ बेलगोलके पूर्व श्रवण शब्दका प्रयोग हुआ है । कानडी भाषामें बेलगोलका अर्थ है “ खेतसरोवर ” और बहुतसे शिलालेखोंमें “ धवल सरोवर ” “ धवल सरस ” और “ खेतमरोवर ” का उल्लेख है, और उस स्थान पर स्थित मनोहर सरोवर ही के कारण उसका यह नाम पड़ा होगा । वहाँ दो पहाडियों हैं । एक उसके उत्तरमें और एक दक्षिणमें । उनके

तस्यामात्यशिलामणिः सकलवित् सम्यक्त्वचूडामणि-
मैव्याम्भोजवियन्मणिः सुजनवन्निव्रातचूडामणिः ।
मल्लश्रियैर्दयशुक्तिमुमणिः कीर्त्योधमुक्तामणिः
पादयन्तमहीशमस्तकमणिश्चामुण्डमूपोऽग्रणीः ॥”

(बाहुबलीचरित्र, श्लोक ६—११)

१५ सिंहनान्दिमुनीन्द्राभिनान्दिगह्वच्छालाम.....

श्रीमद्राजमल्लदेव—महीवह्ममहामात्यपदविराज-

मान—रणरत्नमल्ल—सहायपराक्रम—गुणरत्नभूषण—

सम्यक्त्वरत्ननिलयादिविविधगुणग्रामनामंसमासा-

दितकीर्ति...श्रीमचामुण्डराय—मवत्पुण्डरीक—

द्रव्यानुयोगप्रभानुरूप.....”

(अमयचन्द्र त्रैविद्यचक्रवर्तीरचित गोमटसार टीका)
१६ श्रवण ० शिलालेख नम्बर १०८ तथा ५४.

नाम कमश. चन्द्रगिरि और विन्ध्यगिरि है, जिनपर जैनियोंके मन्दिर और प्रतिमाएँ हैं, और शिलालेख भी हैं जिनसे जिनमतके प्राचीन इतिहासपर बहुत प्रकाश पड़ता है । एक परम्परागत किम्बदन्तीके अनुसार चन्द्रगिरि नाम चन्द्रगुप्तके कारण पड़ा है, जो अपने गुरु मद्रबाहु और उसके १२००० शिष्योंके साथ एक भयंकर दुर्भिक्ष के निकट आनेपर पाटलिपुत्र छोड़कर दक्षिणकी ओर चला गया-या । चन्द्रगिरि ही पर मद्रबाहुने अपने नक्षत्र शरीरका त्याग किया और अन्तकालमें उसके निकट केवल एक ही शिष्य उपस्थित था और वह उपरोक्त चन्द्रगुप्त था । यदि हम जैन-किम्बदन्तीको स्वीकार करें तो परिणाम वही निकलता है कि उपरोक्त चन्द्रगुप्त जो मद्रबाहु मुनिका शिष्य था, प्रसिद्ध मौर्य-सम्राट् ही है ।^{१०}

चन्द्रगिरि ही पर चामुण्डरायन एक भव्य मंदिर निर्माण करा था जिसमें उसने २२ वें जैन तीर्थंकर मेमिनाथ की मूर्ति स्थापित करवाई । तदनन्तर चामुण्डरायनके पुत्रने उसका दूसरा खण्ड भी बनवा दिया और उसमें तेहस्रवें तीर्थंकर पार्श्वनाथकी मूर्ति स्थापित की गई । यह दोनों खण्ड ईसाकी दसवीं शताब्दी में निर्मित हुए और उनसे बस समयकी यह निर्माण कलाका उत्तम बोध होता है ।

गोम्मटेश्वर ।

विन्ध्यगिरिपर चामुण्डरायन बाहुबली अथवा मुजबलीकी, जिनका अधिक लोकप्रसिद्ध नाम गोम्मटेश्वामी अथवा गोम्मटेश्वर है, एक विशाल प्रतिमाका निर्माण किया । कालान्तरमें चामुण्डरायनका अनुकरण करके वीर-पाण्ड्यके मुख्याधिकारीने कर्कल (दक्षिणी कनारा) में सन् १४३२ ई० में गोम्मटेश्वर की दूसरी मूर्ति बनवाई । और कुछ काल उपरान्त प्रधान विष्णुराज ने येनूर (दक्षिणी कनारा) में सन् १६०४ ई०

१७ इह विषय पर विषय देखने के लिये देखो—एशियाटिक कर्नाटिका, भाग २, अमेरिका पृ० १-१४ और भी देना मित्र सिनक्लेर सिन्धुन रचित “दि हाई आवे जैनीजम” पृ० १० ।

में गोम्मटेश्वरकी उसी प्रकारकी एक और मूर्ति बनवाई ।^{११}

ये “विशाल एक ही पत्थरमें बनी हुई नग्न जैन-मूर्तियाँ सप्ताशके आधेयोंमें हैं”^{१२} ये “निस्तदेह जैन प्रतिमाओंमें सर्वोत्कृष्ट और समस्त एशियाकी पृथक्-स्थित प्रतिमाओंमें सबसे बड़ी हैं । ऊँचाई पर स्थित होनेके कारण, कोसोंतक दृष्टि गोचर होती हैं । और एक विशेष सम्प्रदायकी होने पर भी, उनका विशाल शुद्ध और दिव्य शान्ति-प्रकाशक स्वरूपके कारण हमें उन्हें प्रतिष्ठा युक्त ध्यानसे देखना पड़ता है । श्रवण बेलगोल वाली सबसे बड़ी मूर्तिकी ऊँचाई लगभग ५६ फीट है और कटिके निम्नभागमें उसकी चौड़ाई १३ फीट है । वह ‘नीस (Gneiss)’ पत्थरके एक बड़े टुकड़ेसे काटकर बनाई गई है, और ऐसा जान पड़ता है कि जिस जगह पर वह आज स्थित है वहीं पर वह बनी थी । कर्कलवाली मूर्ति जो उसी पत्थर की है, परन्तु जिसकी लम्बाई १५ फीट कम है, अनुमानसे ८० टन तौलमें होगी । इन भीमकायमूर्तियोंमें सबसे छोटी येनूरवाली मूर्ति है जो ३५ फीट लम्बी है । ये तीनों मूर्तियाँ लगभग एकसी हैं, परन्तु येनूरवाली मूर्तिके कपोलोंमें शङ्खे हैं, और उससे गभीर मुकुटप्राद-कासा भाव प्रकट होता है, जिसके कारण लोगोंका यह कहना है, कि उसके प्रभावोत्पादक-भावमें न्यूनता आ गई है । जैन कलाकी अति एकनियमबद्धताका यह उत्तम प्रमाण है कि यद्यपि येनूरवाली-मूर्तिकी मुक्तप्राद-टकी छोड़कर वस्तुतः तीनों विशाल मूर्तियाँ एक हीसी हैं, तथापि उनके निर्माण कालोंमें बड़ा अन्तर है”^{१३}

१० अवन बेलगोलकी मूर्तियोंके लिये देखो—इन्डियन एन्टीक्वेरी’ भाग २, पृ० १२८ । ‘एशियाटिक एन्डिका’, भा० ७, पृ० १०८, लुईस राईसका ‘माइसार और कुर्ग’ पृ० ४७ । कर्कलकी मूर्तियोंके लिये देखो—‘इन्डियन एन्टीक्वेरी’ भाग १, पृ० ३५३, ‘एशियाटिक एन्डिका’ भा० ७, पृ० १२९ । येनूरकी मूर्तियोंके विषयमें देखो—‘इन्डि. एन्टी’ भा० ५, पृ० ३५, एशियाटिक. भा० ५, पृ० १२९ ।

११ देखो—‘इम्पीरियल गेनेटिक् आफ इन्डिया’ पृ० १११-२० देखो—विन्सेण्ट स्मीथ रचित ‘ए हिस्ट्री ऑफ कार्वे ऑफ इन इन्डिया एन्ड सिडोन’ पृ० २९८ ।

चामुण्डराय—निर्मित मूर्ति “केवल तीनोंमें अधिक प्राचीन अथवा लम्बी ही नहीं है, किन्तु बड़ी ढालू पहाड़ीकी चोटीपर स्थित होने और एतदर्थ उसके निर्माणमें बड़ी कठिनाइयोंका सामना करनेके कारण उसका वृत्तान्त सबसे अधिक रोचक है । यह मूर्ति दिगम्बर है और उत्तरामिमुख सीधी खड़ी है.....जंघोंके ऊपर वह बिना सहारेके है । उदरस्थल तक यह बल्मीकसे आच्छादित बनी हुई है, जिसमेंसे सर्प निकल रहे हैं । उसके दोनों पदों और बाहुओंके चारों ओर एक वेलि लिपटी हुई है जो बाहुके ऊपरी भागमें फलोंके गुच्छोंमें समाप्त होती है । एक विकसित कमलपर उसके पैर स्थित हैं ।”

श्रवण बेलगोलकी गोमटेश्वरकी मूर्तिके निम्न भागका शिलालेख।

श्रवण बेलगोलकी गोमटेश्वरकी मूर्तिके दाहिने ओर बाएँ पैरोंके समीप छोटासा लेख है । दाहिने पैरका लेख यह है:—

श्रीचामुण्डराजं साहसिदं;

श्रीचामुण्डराजन [शे] य्य [च] इत्तां;

श्रीगंगराज सुत्तालयवं साहसिदं;

अर्थात्—

श्रीचामुण्डराजने निर्माण कराया,

श्रीचामुण्डराजने निर्माण कराया,

श्रीगंगराजने वैत्थालय निर्माण कराया ।

“प्रथम और तृतीय पक्तिकी लिपि और भाषा कानड़ी है । द्वितीय पक्ति प्रथम पक्तिका तामिल अज्ज-वाह है, और उसमें दो शब्द हैं जिनमें पहला ‘ग्रन्थ’ और दूसरा ‘बेट्टु’ लिपिमें है । पहिली दो पक्तियोंमें

इन मूर्तियोंकी शिल्पकलाका विशेष वर्णन जाननेके लिये—स्लरक (Slurrock) रचित ‘भैरुजल भाग सावध क-नारा, पृ. ८५, कर्तुवन सादेवकी ‘हिस्टरी ऑफ इन्डियन आर्थि-डेक्वर, पृ. १६५, ‘भैरव भैरवीन’ क मई १८७५ के अरुम प्रकाशित मि. गालहाउस का टैस, इत्यादि देखने चाहिए ।

११ देखो, एथियाकिया कर्नाटिका, भाग २, म्युशिका पृ. २८.

यह लिखा है कि चामुण्डराजने मूर्ति बनवाई, और तीसरी पक्तिमें लिखा है कि गंगराजने मूर्तिके आसपासका भवन बनवाया ।”^{११}

बाई औरके पत्थरमें यह लेख है—

श्रीचामुण्डराजे करविपले

श्रीगंगराजे सुत्ताले करविपले ।

अर्थात्—

श्रीचामुण्डराजने निर्माण कराया ।

श्रीगंगराजने वैत्थालय निर्माण कराया ।

“इसकी लिपि नागरी है और भाषा मराठी है... शायद महााराष्ट्र देशके जैनयात्रियोंके लामार्थ मराठी भाषाका प्रयोग किया गया है ।”^{१२}

चित्र ई ६ में हमने उपरोंक शिलालेखोंकी प्रति-लिपि दी है । पहिले बाई औरका लेख है । दोनों पक्तियोंमें एकही प्रकारके अक्षर होनेके कारण बाई और के लेखका गंगराजके समयमें खुदा जाना माना जाता है, जब उसने चामुण्डराज स्थापित गोमटेश्वर मूर्तिके चारों ओर भवन निर्माण कराया । यह देखते हुए भी यह बात सम्भव जान पड़ती है कि बाई औरका लेख दाहिनी ओर वालेका केवल दूसरी भाषामें रूपान्तर है ।

गंगराज ।

गंगाराज होयसाल—वर्तीय—नृपति विष्णुवर्धनका मन्त्री था, जिसने ईसाकी १२ वीं शताब्दीमें शासन किया । लगभग सन् ११६० ई० के एक शिलालेखमें गंगाराज, चामुण्डराय और हुल्लकी मशसा इस प्रकार पारं जाती हैं ।

■ यदि यह पूछा जाय कि मारम्भमें (श्रवण बेल-गोलमें) जैन—मठोंके कौन २ उच्चायक थे—तो कहना होगा कि (पे पे) राजमल्ल नृपति का मन्त्री राय, उसके

२२-२१ देखो, एथियाकिया इन्डिका, भाग ७, पृ. १०८-९ ।

† इस लेखके साथ लेखकने कई चित्र देने चाहे थे परन्तु उनका अराल स्वर्गवास होजानेके कारण वे चित्र हमें न मिल सके।

संपादक ।

अनन्तर, नृपति विष्णुका मन्त्री गग, और उसके पश्चात् नृसिंहदत्त नृपतिकी मन्त्री हुल्ल । यदि और भी इसके योग्य हैं, तो क्या उनके नाम न लिय जायेंगे ? ”^{१४}

मूर्तिके नीचेके शिलालेखक अतिरिक्त ११८० ई० क लगभग एक और शिलालेखमें इस प्रकार इसका वर्णन है—

“ जिसमें बुद्धिमत्ता, धर्मिष्ठता, वैभव उत्तमाचरण, और शौर्यका समावेश है, ऐसा राक्षसह गगवत्सका चन्द्र था, उसका यश मूमडल व्यापी था । नृपतिसे वैभवमें द्वितीय [उसका मन्त्री चासुण्डराय], मनुके समान, क्या उसीने अपने प्रयत्नसे यह गाम्मत नहीं बनवाया ? ”^{१५}

मुजवलीका वृत्तान्त, किम्बदन्तियोंके आधार पर । तीनों मूर्तियाँ बाहुवली, या मुजवलीका व्यक्त करती हैं, जिनका गोम्मेटेवर भी कहते हैं और जा जैनियोंके प्रथम तीर्थंकर आदिजिन ऋषभनाथके पुत्र थे । लोककथाके अनुसार ऋषभनाथ एक राजा थे और उनके दो ब्रिया थीं, जिनके नाम थे नदा (या कुछ लोगोंके मतमें सुमगला) और सुनन्दा । नदा या सुमगलाने दो पुत्रोंके उत्पन्न किए, जिनमें एक लड़का था और एक लड़की थी और जिनके नाम थे कमल भरत और ब्राह्मी । जब ऋषभदेवने अनन्त ज्ञानकी खोजमें वनवास स्वीकार किया, तब उन्होंने अपने राज्यका भार भरतको सौंपा । बाहुवली और उनकी बहिन सुदरी सुमदाकी सन्तान थ, आर जब उनके पिछान अपने पुत्रोंको राज बाँट दिया ता बाहुवली तक्षशिलाके सिंहासनपर सुशो भित हुए । भरतके पास एक अजुत चक्र था जिसका सामना कोई भी योद्धा रणमें न कर सकता था । इस चक्रकी सहायतासे पृथ्वी, विजय करक भरत अपनी

राजधानीको लौट आया । परन्तु चक्र राजधानीमें (अथवा दूसरोंके मतसे—अञ्जालयमें) प्रविष्ट नहीं होता था । भरतने इसका अर्थ यह समझा कि पृथ्वीमें कोई ऐसा राज्य शेष है जिसको उसने नहीं जीता है; और विचार करनेपर यह फल निकला कि केवल तक्षशिलाका राज्य शेष था, जहाँ उसका माई मुजवली राज्य करता था । तब भरतने अपने माई मुजवली पर युद्ध ठान दिया परन्तु उस घोर युद्धमें विजयलक्ष्मी मुजवलीको प्राप्त हुई । भरतके चक्रसे भी मुजवलीको कोई हानि नहीं पहुँची । परन्तु विजयी होनपर भी इस सप्तारको असार जानकर मुजवली क्षणभर में समाविष्ट हो गए । भरतने मुजवलीको वदना की और फिर अपने स्थानको लौट आए । फिर मुजवली कैलास पर्वतक शिखरोंमें चढ़ गए और वहा (अथवा दूसरे वर्णनके अनुसार—युद्धभूमिमें) वर्षभर मूर्तिकी भाँति खड़े रहे^{१६} तबसे वृक्षोंमें लपटी हुई लताएँ उनके गलेमें लिपट गईं । उन्होंने अपने पितानसे उनके शिरपर छत्र सा बना दिया और उनके पैरोंके बीचमें कुश उग आए और देखनमें वे मानो वल्मीक प्रतीत होने लगे^{१७} । जन्तोंमें मुजवलीको अनन्त ज्ञानकी प्राप्ति हुई और वे केवली हो गए ।

परन्तु एक शिलालेखमें यह लिखा है कि मुजवली या बाहुवली आर भरतके पिता पुत्र थे^{१८} । और उसके आगे यह लिखा है कि,—“पुत्रदेवके पुत्र भरतने, जिसक चारों आर उसके पराजित राजा बास करते हैं, प्रसन्न होते विजयी बाहुवली कवली की मूर्ति निर्माण कराई जो पौदनपुरके समीप है और ५२५ चाप लम्बी है । बहुत समयके अनन्तर जनक लोक भयकारी कुक्कुट-सर्प उस

१४ देखो, एपिग्राफिका करनाटिका भाग २, भूमिका पृ २५ हुल्ल शेषशाल्वशीय नृपति नरसिंह प्रथमका मन्त्री था । वह १२ वीं शताब्दीमें विद्यमान था ।

१५ देखो एपि कर्ना मा २, पृ १५४ मूर्तिके निर्माणके समयमें यह शक्ति है—“ चासुण्डराय मनुप्रतिम गोम्मेट अल्ल माहिसिद्ध श्वादी देवन वत्तदिष्य ”

१६ देखो, जिनसेन रचित हरिवंश पुराण, अध्याय ११ । कुछ भिन्न वर्णनके लिए देखो, कथाकोश (देवती द्वारा स्वर्गमें उड़ बाधित) पृ १९२-९५

१७ वृत्ता, कथाकोश पृ १९२-९५

१८ “पुत्रपुत्र-बाहुवलि-नोद” एपि कर्ना मा १ शिलालेख न ८५, पृ ६७

जैनकी मूर्ति के आसपास उत्पन्न होगए और इसी कारण मूर्तिका नाम कुङ्कुटेश्वर पड गया ” २९

इन लोकप्रसिद्ध कथाओंके द्वारा हम समझ सकते हैं कि उन वस्त्रीकमयी मूर्तियों का क्या भाव है जिनसे सर्प निकल रहे हैं, तथा श्रवण बेलगोल कर्कल और येनूर गोम्मेटेश्वरकी मूर्तियोंमें लिपटी हुई लताओंका क्या तात्पर्य है ? “ तीनों मूर्तियोंमें ये सब बातें एक समान हैं और उनसे यह भाव प्रकट होता है कि, वे तपस्या में ऐसे पूर्ण छीन होगए हैं कि उनके पैरों पर वस्त्रीक लग जाने, और शरीरमें लताओंके चिपड जाने पर भी सा-सारिक विषयोंपर उनका ध्यानभग नहीं होता । ” ३०

चामुण्डरायकी मूर्तिके स्थापनाका वृत्तान्त ।

बाहुबली चरित्र नामक एक संस्कृत काव्य में चामुण्डराय—द्वारा—स्थापित गोम्मेटेश्वरकी मूर्तिका स्थापनाकी कथा इस प्रकार वर्णित है ।

बाहुबली चरित्रकी कथा ।

द्रविड देशकी मधुरा नगरी (वर्तमान मदुरा) में राजमल्ल नामक एक राजा था। जिसने जैन सिद्धान्तों के प्रचारका उद्योग किया और जो देशीय—गण ” के सिंहनन्दिका उपासक था । उसके मन्त्रीका नाम चामु-

२९ “ धृत-जयबाहु—बाहुबलिकेवलि—रूपसमान—पञ्चविंशति—समुपेत—पञ्चशतचापसमुन्नतियुक्तम् अप्य तत्—प्रतिकृतिय मनोमुददे माहिसिद भरत जितासिल-क्षितिपतिचक्रि पौदनपुराणिकदोल् पुण्देय—नन्दनम् । चिरकाल सले तज्जिनातिक—चरित्रा—देशादोल् लोकभी-करण कुङ्कुटसर्पसङ्कुल असख्यं प्रति दल् कुङ्कुटेश्वरना-मन्.....” (देखो, एपि. कर्ना. भा. २, पृ. ६७.)

३० छ. रा. का, श्रवण बेलगोल, ग्रामिका पृ. ३३

३१ जब नन्दी सधके जैन आचार्य सारे देशमें फैल गये, तब उनके संधका नाम ‘देशीयसध’ हो गया ।

देखो बाहुबली चरित्रका निम्न श्लोक—

“ पूर्ण जैनमतागमाधिविपुञ्चीनान्दिसधेऽभवन्
सुज्ञानर्दितपोधना. कुबलयानन्दान् मयूषा इव ।
सत्सङ्गे सुवि देशदेशनिकरे श्रीसुप्रसिद्धे सति
श्रीदेशीयगणो द्वितीयविलसन्नान्ना भियः कथ्यते ॥”

गढराय था । एक दिन जब राजा अपनी सामामे मन्त्री-योंके सहित विराजमान था, एक माथिक व्यापारी आया और उनसे कहा कि उत्तरमें पौदनपुरी नामक एक नगर है जहां भरत द्वारा स्थापित बाहुबली अथवा गोम्मेटकी एक मूर्ति है । यह सुनकर भक्त चामुण्डरायने उस प्रति-ल मूर्तिके दर्शन करनेका विचार किया और घर जाकर अपनी माता कालिकादेवीसे यह वृत्तान्त कहा, जिसपर उसने भी वहां जानेकी इच्छा प्रकट की । चामुण्डराय तब अपने श्रुव अजितसेनके पास गया, जो सिंहनन्दिका उपासक था । उसने सिंहनन्दिके समुल्ल यह प्रतिज्ञा की कि जब तक मैं बाहुबली मूर्तिके दर्शन न कर लूंगा तब तक मैं दूध न ग्रहण करूंगा । नेमिचन्द्र अपनी माता और अनेक सैनिकों एवं सेवकोंके सहित चामुण्डराजने यात्रा प्रारम्भकी और विन्ध्यगिरि (श्रवण बेलगोल) में जा पहुँचा । रात्रिमें जैनदेवी कुष्माण्डी (बाईसवें तीर्थ-कर नेमिनायकी यक्षिणी दासी) ने चामुण्डराज नेमि-चन्द्र और कालिकाको स्वप्नमें दर्शन दिया और कहा कि पौदनपुरीको जाना अत्यन्त कठिन है, परन्तु इसी पहाड़ीपर पहिले पहिल रावण द्वारा स्थापित बाहु-बलीकी एक मूर्ति है । और उसके दर्शन तभी हो सकते हैं, यदि एक सुवर्ण—बाणसे इस पहाड़ीको फाट दिया जाय । स्वप्नके अनुसार, दूसरे दिन चामुण्डरायने दक्षिणामिमुख पहाड़ीपर खडे होकर अपने घनुवसे एक सुवर्ण—बाण छोडा । तत्क्षण पहाडके दो डुकडे होगए और बाहुबलीकी एक मूर्तिके दर्शन हुए । चामुण्डरायने तब उस मूर्तिका स्थापना और प्रतिष्ठा की तथा उसके पूजार्थ कुछ भूमि लगा दी । जब नृपति राजमल्लने यह वृत्तान्त सुना तो उसने चामुण्डराजको ‘राय’की उपाधि प्रदान की और उस मूर्तिकी नियमित पूजाके लिए और भी भूमि प्रदान की ।

राजावली कथेके अनुसार कथा ।

देवचन्द्र द्वारा-रचित कानडी भाषाकी एक नवीन पुस्तकमें भी यही कथा वर्णित है, परन्तु कहीं कहीं कुछ बातोंमें अन्तर है । उसमें लिखा है कि चामुण्डराय राजा

राजमहलका एक अर्धात शालक था । उसकी माताने पद्म पुराणका पाठ सुनते समय यह सुना कि पीदनपुरमें बाहुवलीकी एक मूर्ति है । इस लिए अपने पुत्रसमेत वह उस मूर्तिके दर्शनको चली, परन्तु मार्गमें एक पहाड़ीपर, जहा भद्रबाहु स्वामीका देहान्त हुआ था उसने स्वप्न देखा जिसमें पद्मावती देवीने उसे दर्शन देकर कहा कि उसी पहाड़ीपर बाहुवलीकी एक 'मूर्ति' है जो पत्थरसे आच्छादित है, और जिसकी पूर्ण समयमें राम, रावण, और मन्दोदरीने पूजा की थी । फिर दूसरे दिन एक बाण मारनेसे बाहुवलीकी मूर्ति टूट-गोचर हुई ।

इस प्रकार जैनियोंकी किम्बदन्तियोंके अनुसार यह पता लगता है कि बामुण्डरायने उस मूर्तिको नयी निर्माण नहीं कराया, किन्तु उस पहाड़ीपर एक मूर्ति विद्यमान थी जिसकी उसने सविधि स्थापना और प्रतिष्ठा कराई । इन लोक-कथाओंके अनुसार श्रवण बेलगोलके प्रधान पुरोहितने भी यह कहा था, कि प्राचीन कालमें इस स्थानपर एक मूर्ति थी, जो पुष्पीसे स्वतः निर्मित हुई थी, और जो गोम्मदेश्वर स्वामीके स्वरूपकी थी । उसकी राक्षसराज रावण सुषमासिके हेतु उपासना करता था । बामुण्डरायको यह विदित होनेपर उसने कारीगरों द्वारा उस मूर्तिके सब अंगोंको उचित रूपसे सुदृढ बनवाया । उसके सब अंग मोक्षकी इच्छासे ध्यानावस्थित गोम्मदेश्वर स्वामीके असली स्वरूपके समान थे । उसने उनके चारों ओर बहुतसे मन्दिर और भवन बनवाए । उनके बनजानेपर उसने बड़े उत्सव एवं मोक्ष-पूर्वक मूर्तिकी उपासनाका क्रम प्रारम्भ किया।^{३१} स्थल पुराणसे उद्धृत एक अवतरणमें यह लिखा है जो उपरोक्त कथासे मिलता-जुलता है ।

स्थल-पुराणमें वर्णित कथा ।

“ बामुण्डराजने सपरिवार, पदनपुरस्थित-देव गोम्म-देश्वर एवं उसके आसपास स्थित १२५४ अन्य देवता-

१२ डेली पागलका ऐतिहासिक और किम्बदन्तियोंके आधार पर वर्णन, (एशियाटिक रिसर्च, भाग ९, पृ २६६)

ओंके दर्शनार्थ यात्रा प्रारम्भ की । देव गोम्मदेश्वरके सम्बन्धमें बहुत कुछ सुनकर, वह मार्गमें श्रवण बेलगोल क्षेत्रमें जा पहुँचा । वहा उसने गिरे पड़े मन्दिरोंका निर्णोद्धार किया और अन्य विधानोंके साथ पंचामृत ज्ञान की भी प्रक्रिया कि । दैनिक, मासिक, वार्षिक एवं अन्य उत्सवोंके संचालनके, लिए उसने सिद्धान्ताचार्योंको मठका गुरु नियत किया । मठमें उसने एक 'सत्र' स्थापित किया जहाँ यात्रियोंके लिए भोजन औषध और शिक्षाका प्रबन्ध था । उसने अपनी जाति-यात्रोंके इस लिए नियत किया, कि वे तीनों वर्णोंके यात्रियोंकी, जो दिल्ली, कनकादि, स्वित्पुर, मुधापुर, पापापुरी, चम्पापुरी, समिदगिरि, उज्जयन्तगिरि, जय-नगर आदिस्थानोंसे आये, आवरपूर्वक सेवाएँ प्रस्था करें । इस कार्यके लिए मन्दिरमें कई भ्राम लगादिए गए । उसने चारों दिशाओंमें शिला शासन लगवा दिए । १०९ वर्षों तक उसके पुत्रपौत्रोंने इस दानको निष्पत्ति रक्खा ।^{३२}

अब हमें इस बातका निर्णय करना उचित है कि यह बात कहातक ठीक है कि बामुण्डराय श्रवण बेलगोलकी गोम्मदेश्वरकी मूर्तिका केवल अनुसन्धानकर्ता था । मुजबली चरित्र अथवा बाहुवली चरित्र नामक ग्रन्थ संस्कृत छन्दोंमें है, और उसमें केवल जनश्रुतियोंका समुच्चय है, और कई मुल्लोक्त पठुचनेके कारण उनमें विचित्रता आ गई है । इस ग्रन्थका रचनाकाल ठीक ठीक निर्णय नहीं किया जा सकता । परन्तु इसकी लेखनीसे यह अनुमान किया जा सकता है कि यह गोम्मदेश्वरकी मूर्तिके स्थापनाके बहुत काल पश्चात् बना होगा । राजबली कने जैन इतिहास, किम्बदन्ती, आदिका बृहत् सग्रह है जिसको वर्तमान शताब्दीके पूर्व-भागमें माईसोर राजवंशकी एक महिला देवी रम्मके निमित्त मल्लपुरकी जैनसंस्थाके देवचन्द्रने रचा था ।^{३३}

३३ “ स्थल पुराण ” से लिया हुआ कट्टेन आई एल. एफ. मेर्केजीका अवतरण (इण्डियन एन्टीक्वेरी, भाग ९, पृ १३०)

३४ देखो, ल. रा. का श्रवण बेलगोल, भूमिका पृ ९, (१८८९)

एतदर्थ यह ग्रन्थ भी प्रस्तुत ग्रन्थके निर्णयके हेतु प्रमाणकोटिमें नहीं परिगणित किया जा सकता । राजा-वली-कथे और स्थलपुराणमें, ग्रन्थकर्ताओंने ऐतिहासिक घटनाओंकी यथार्थताके लिए कोई प्रयत्न नहीं किया है, क्योंकि उनका विषय दन्तकथाओं एवं जनश्रुतियोंका संग्रह था । यह सत्य है कि इन कथाओंमें कहीं कहीं ऐतिहासिक सामग्री विद्यमान है, परन्तु उनको सवतक विना जांचे ऐतिहासिक घटनाएं न मान लेना चाहिए, जबतक अन्य अधिक विश्वस्तसूत्रोंके आधारपर उनकी यथार्थता सिद्ध न हो जाय । स्थलपुराणकी निर्मूल बातोंके उदाहरण स्वरूप यह पंक्ति लिखी जा सकती है—“चामुण्डराज, दक्षिण मद्राका राजा, और जैन-क्षत्रिय-पाण्डु-वंशोत्पन्न था ।”^{१५} इससे इस बातका पता लगेगा कि किस प्रकार किम्बदन्तियोंमें मन्त्री चामुण्डरायको मद्राका राजा वर्णन किया गया है ।

यदि यह सिद्ध करनेके लिए, कि, इस मूर्तिको किसने निर्माण कराया, कोई विश्वस्त अथवा समकालीन लेख न होता तो इन किम्बदन्तियोंके आधारपर यह बात संदिग्ध रहती कि चामुण्डरायने स्वयं इस मूर्तिको बनवाया । परन्तु हमारे लिए यह सौभाग्यकी बात है कि यह सिद्ध करनेके लिए लेख विद्यमान है कि, चामुण्डराय हीने न कि और किसीने, गोम्मतेश्वरकी मूर्ति बनवाई ।

सबसे प्रथम, उस मूर्तिके पैरोंवाला शिलालेख है—जिसका वर्णन पहिले हो चुका है—जिसमें यह साफ साफ लिखा है कि चामुण्डरायने इस मूर्तिको निर्मित किया । द्वितीय, एक अन्य शिलालेखमें, जिसकी तिथि ११८० ई० है, हम ऊपर देख चुके हैं कि चामुण्ड-

रायने निज उद्योगसे इस मूर्तिको बनवाया । इन लेखोंका समर्थन एक पुस्तकसे होता है, जिसका नाम है गोम्मतसार और जिसको आचार्य नेमिचन्दने, जो चामुण्डरायके समकालीन थे, रचा है । उसमें निम्न-लिखित वर्णन है ।

“गोम्मतसंग्रहसूत्रकी जय हो, जिसमें गोम्मतगिरि स्थित गोम्मतजिन और गोम्मटराज-निर्मित दक्षिण-कुक्कुट-जिनका वर्णन है ।”

“उस गोम्मतकी जय हो, जिसके द्वारा मूर्तिका मुक्त निर्मित हुआ, जिसको सब सिद्ध और देवताओंने देखा ।”^{१६}

गोम्मतेश्वरकी मूर्तिके कारण जिस गिरिपर यह स्थित थी उसका नाम गोम्मतगिरि होगया और इस बारेमें नेमिचन्द्र यह शब्द प्रयुक्त करते हैं । “चामुण्डराय द्वारा निर्मित (विणिम्मिय)” । हम कह चुके हैं कि पौदन-पुरमें मरब द्वारा स्थापित गोम्मतेश्वरकी मूर्तिका नाम कुक्कुटेश्वर हो गया, जब उसके चारों ओर सर्प निकल आए । चामुण्डराय द्वारा स्थापित मूर्तिका नाम दक्षिण कुक्कुट-जिन होगया, जिससे उत्तरीय मूर्तिसे वह भिन्न जानी जा सके । इस मूर्तिको बनवानेके कारण चामुण्डरायका नाम गोम्मतपय पड़गया ।

इन प्रमाणोंसे इस बातमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि चामुण्डराय ही ने इस मूर्तिको निर्माण कराया । इस महान् कार्यके कारण वह स्वयं गोम्मटराज कहलाने लगा । परन्तु यदि उसने केवल मूर्तिका अनुसन्धान ही किया होता तो कदापि यह बात न होती । चामुण्डरायके गुरु नेमिचन्द्र मूर्तिस्थापनके समय अवश्य विद्यमान होंगे (क्योंकि नाहुवली चरित्रतकने यह लिखा है कि उस अवसरपर नेमिचन्द्र भी उपस्थित थे) अतएव

१६ “गोम्मतसंग्रहसूत्रं गोम्मतसिंहवरि गोम्मतजिनो या गोम्मटरायविणिम्मियदक्षिणकुक्कुटजिनो जयउ ॥
जेण विणिम्मिय-पादिमा-वयणं सवहसिद्धिदेवेहिं ॥
सवपरमोहिजेगिहिं दिदं सो गोम्मतो जयउ ॥
(गोम्मतसार, कर्मकाण्ड, श्लोक ९६८-९९,)

१५ केप्टेन मैकज्जी द्वारा उद्धृत ‘स्थलपुराण’ का अवतारण (इन्डि. एन्टी. माग २, पृ. १३०) यह कहना भी उचित होगा कि सेनगणकी पट्टाबिलिमें भी ऐसा ही लिखा हुआ है—“दक्षिण मधुरागण निवासि—स्रविषवैश शिरोमणी—दक्षिण तेलंग कर्नाटक देशाधिपति चामुण्डराय प्रतिबोधक—बाहुबील प्रति किम्ब गोमट प्रतिष्ठापकाचार्य—भी अजितसेन भट्टारकाणाम् ।” (देखो, जैन सिद्धान्तसारक, भाग १, पृ. १, २-३८.)

नेमिचन्द्रके शब्दोंको, जिनका समर्थन शिलालेखसे होता है, इस प्रश्नके सम्बन्धमें प्रमाणित मानना चाहिए ।

तो फिर इसका क्या कारण है कि बाहुवली चरित्र राजावली कथे आदिग्रन्थोंमें चामुण्डरायको मूर्तिका केवल कन्वेयकही लिखा गया है ? शायद कारण यह हो कि इन ग्रन्थोंके लेखक मूर्तिको अधिक प्राचीन कहकर अधिक पूज्य और पवित्र बनाना चाहते थे ।

गोम्मटरायकी मूर्तिके सम्बन्धमें एक और किम्बदन्ती है जिसमें इस बातका वर्णन है कि ऐसि मूर्तिको स्थापन करनेके कारण चामुण्डरायके गर्वने किस प्रकार नीचा देखा । क्या इस प्रकार है:—

“ इस मूर्तिको स्थापित करनेके अनन्तर चामुण्डराय यह सोचकर मारे गर्वके फूला न समाया कि मैंने अपने ही सामर्थ्यसे, इतने धन और परिश्रमसे इस देवताकी स्थापना करा ली । तदनन्तर जब उसने देवताकी पञ्चामृत स्नान-विधि की, तो इस पदार्थसे भरे अनेक पात्र चुक गए, परन्तु देवताकी अलौकिक मायासे, पंचामृत तोदीसे नीचे न जा सका, जिससे उपासकके व्यर्थभिमानका नाश हो । कारण न जानकर चामुण्डरायको यह सोचकर अत्यन्त शोक हुआ कि पंचामृतसे समस्त मूर्तिको स्नान करानेकी मेरी इच्छा पूर्ण न हुई । जब वह इस अवस्थामें था, देवताकी आज्ञानुसार पद्मावती नाम्नी अन्तारा एक वृद्धा निर्धन स्त्रीका रूप धारणकर प्रकट हुई, जिसके हाथमें एक बेलियगोलमें (छोटी चादीकी कटोरी) मूर्तिके स्नानके हेतु पंचामृत था । उसने चामुण्डरायसे मूर्तिको स्नान करानेका प्रस्ताव प्रकट किया । परन्तु चामुण्डराय यह समझकर, उस असंभव प्रस्तावपर हस दिया, कि जिसको मैं नहीं कर सका उसे यह करने चली है । परन्तु विनोदार्थ उसने उसे यह करनेकी आज्ञा देदी । तब दर्शकोंको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उसने उस चान्दीके छोटे पात्रहीसे समस्त मूर्तिका स्नान करा दिया । तब चामुण्डरायने अपने अपराध पक्ष गर्वके लिए शोक प्रकाशित करके, बड़े आदरसे, द्वितीय बार स्नानकी

विधि की, जिसमें पहिले उसने इतनी सामग्री व्यर्थ खो दी थी, और पूर्ण रूपेण उसने मूर्तिके समस्त शरीरको स्नान कराया । उस समयसे इस स्नानका नाम, उस चान्दीके पात्रके कारण, जो पद्मावती हाथमें लिए थी, बेलियगोल पद गया । ”^{३३}

मूर्त्ति निर्माणकी तिथि ।

अब हम अनुमानसे उस तिथिका निश्चय करेंगे जिसमें चामुण्डरायने गोम्मटेश्वरकी मूर्त्ति निर्माण कराई । हम कह चुके हैं कि चामुण्डराय मारसिंह द्वितीय और राजमल्ल या राजमल्ल द्वितीयका मन्त्री था । किम्बदन्तीके अनुसार राजमल्लके समयमें मूर्त्ति स्थापित हुई । हम देख चुके हैं कि मारसिंह द्वितीयके शासनकालमें चामुण्डरायने अनुपम सौर्षकी स्थापित प्राप्त की थी और एक शिलालेखमें, जिसमें उसने अपना वृत्तान्त दिया है, वह केवल अपनी जीतोंका वर्णन करता है । उसके द्वारा किए हुए किसी धार्मिक कार्याका उल्लेख वर्णन नहीं है । यदि मारसिंह द्वितीयके समयमें उसने इस विशाल-मूर्त्तिका निर्माण कराया होता तो वह इस बातका अवश्य वर्णन करता । क्योंकि इससे उसका नाम अमर हो गया है । मारसिंह द्वितीयकी मृत्यु सन ९७५ ई० में हुई । चामुण्डराय अपने ग्रन्थ चामुण्डराय पुराणमें अपनी वीरताका सविस्तर वर्णन करता है और अपनी समस्त उपाधियोंका वर्णन करके उनके प्राप्तिके कारण भी बताता है, परन्तु गोम्मटेश्वरकी मूर्त्तिके निर्माणका तनिकभी उल्लेख नहीं किया है । इस ग्रन्थके अन्तमें, उसका रचना काल शक ९०० (९७८ ईस्वी) दिया है । अतएव ९७८ ईस्वीके अनन्तर और राजमल्ल या राजमल्ल द्वितीयके शासनके अन्तिम वर्षके पूर्व गोम्मटेश्वरकी इस मूर्त्तिका निर्माण हुआ होगा । राजमल्ल द्वितीयने ९८४ ईस्वीतक राज्य किया । इस लिए

^{३३} एशियाटिक रिसर्च, भाग ९, पृ. २९६ । उपरोक्त वर्णनमें अरण नेलगोलके नाम पडनेका भ्रिष्ठल्लू द्वारा कारण बताया गया है । अर्थात् कुछ दिन हुए जैनोंने गोम्मटेश्वरका पंचामृत स्नान कराया था ।

१७८ और १८४ ईस्वीके अन्तर्गत कालमें इस मूर्तिका निर्माण हुआ होगा ।

बाहुवली चरित्रमें एक श्लोक है जो मूर्तिस्थापनका ठीक ठीक समय बताता है । वह श्लोक इस प्रकार है—
कस्यय्ये षट्शताख्ये विद्वत्विमवसंवत्सरे मासि चैत्रे,
पञ्चम्यां शुक्लपक्षे दिनमणिदिवसे कुम्भलग्ने सुयोगे ।
सौमाय्ये मस्तनाम्नि प्रकटितमगणे सुप्रशस्तां चकार
श्रीमन्मृगशिराजो येल्लुलनगरे गोमदेश-प्रतिष्ठात् ॥ ”

अर्थात्—श्रीचामुण्डराजने बेल्लुलनगरमें कुम्भलग्ने, रविवार शुक्ल पक्ष चैत्र शुक्ल पंचमीके दिन विमवनाम कल्कि-संवत्सर ६०० के प्रशस्त मृगशिरा नक्षत्रमें, गोमदेशकी प्रतिष्ठा की ।

यदि हम उपरोक्त तिथिको यथार्थ मान लें, क्योंकि सम्भव है ऐसे उत्तम मुहूर्तमें ऐसा बड़ा कार्य किया गया हो, तो हमें यह निकालना पड़ेगा कि १७८ और १८४ ईस्वीके अन्तर्गत किस दिन यह सब योग पड़ते थे । हमने भलीभाँति तावधानीसे ज्योतिषकी रीतियोंके अनुसार सर्व सम्भाव्य तिथियोंको जाँचा है और उसका परिणाम यह निकलता है कि रविवार ता० २ अप्रैल सन् १८० ई० को मृगशिरा नक्षत्र था और पूर्व दिवसरो (चैत्रकी बीसवीं तिथि) शुक्ल पक्षकी पंचमी लगगई थी, और रविवारको कुम्भ लग्न भी था । अतएव जिस दिन चामुण्डराजने मूर्तिकी प्रतिष्ठा की उसकी हम यही तिथि मान सकते हैं परन्तु उपरोक्त श्लोकमें एक बात है जो प्रथम बार देखनेसे इतिहासके विरुद्ध जान पड़ती है । इस श्लोकमें यह कहा गया है कि कस्यय्य ६०० विमवनाम संवत्सरमें गोमदेशकी मूर्तिकी प्रतिष्ठा हुई । शक सम्बत् महावीरके निर्वाणके ६०५ वर्ष ५ मास पश्चात् आरम्भ होता है^{३८} और कल्कि संवत् शक संवत्के

३९४ वर्ष ७ मास अनन्तर आरम्भ होता है । अर्थात् वीरनिर्वाणके १००० वर्ष अनन्तर कल्कि संवत् आरम्भ होता है । अतएव, कल्कि संवत्का आरम्भ ४७२ ईस्वीसे होता है । इसलिए कल्कि संवत् ६०० (४७२+६००) १०७२ ईस्वी सन् होगा । परन्तु यह बात इतिहासके विरुद्ध है, क्योंकि राजमह द्वितीयका शासन सन् १८४ ईस्वीमें समाप्त होता है । इसके अतिरिक्त ज्योतिष गणनासे भी यह सात होता है कि कल्कि संवत् ६०० में चैत्र शुक्ल पक्षकी पंचमी तिथि, चैत्रके तेईसवें दिन शुक्रवारको पड़ती है, जो उपरोक्त श्लोकसे विरुद्ध है क्योंकि उसके अनुसार उस साल चैत्र शुक्ल पंचमीको रविवार था ।

अतएव कल्कि संवत् ६०० का अर्थ कल्कि संवत्की छठी शताब्दी लेना चाहिए । विमव संवत्को ८ वां मानना चाहिए जिससे इतिहासानुसार ठीक ठीक बैठे । इसलिए विमवनाम कल्कि संवत् ६०० के अर्थ लेना चाहिए कल्कि संवत्की छठी शताब्दीका ८ वां वर्ष—अर्थात् ५०८ कस्यय्य । यदि हम इस तिथिका स्वीकार कर लें तो ठीक १८० ईस्वीको यह सम्बत् पड़ता है और श्लोकमें वर्णित सर्व ज्योतिषके योग भी मिल जाते हैं ।

अतएव अब हमारे माननेके लिए दो मार्ग हैं । प्रथम कि हम बाहुवली चरित्रके श्लोकको इतिहास-विरुद्ध कहकर प्रमाणित न मानें, या जैसा हमने किया है वैसा उसका अर्थ लगावें, जिससे यह शिलालेखकी तिथिसे मिल जाय । और हमारी समझमें तो दूसरा मार्ग ग्रहण करनाही सर्वोत्तम है ।

नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ।

अब हम द्रव्यसंग्रहके लेखकके सम्बन्धमें समस्त प्राप्य सामग्री एकत्र करनेका प्रयत्न करेंगे । इस ग्रन्थके अन्तिम श्लोकसे यह पता लगता है कि इसके रचयिता मुनि नेमिचन्द्र थे ।^{३९} बाहुवली चरित्रमें यह लिखा है

३९ देखो, द्रव्यसंग्रह (श्लोक ५८)—

‘द्रव्यसंग्रहादिनां सुविण्णाहा बीससचयजुदा सुदुण्णा ।
सोपयत् तत्तुसुचरणे नेमिचन्द्रमुनिग्रा भगिय जं ॥’

३८ देखो, नेमिचन्द्र रचित त्रिलोक साक्षात् निम्न उद्धृत—

‘पण छ सयवस पण मासजुद्धे

मासिय बीरीणुद्धो सगराजा ॥’

अर्थात् वीरनिर्वाणके अनन्तर ६०५ वर्ष और ५ मास व्यतीत होने पर शकराजा हुआ । (इन्डियन एन्सिक्लोपीडिया, भाग १९, पृ. २१०)

कि देशीय गणके नेमिचन्द्र मुनि, चामुण्डराय और उसकी माताके साथ पौदनपुर गोम्मेटेश्वरके दर्शनार्थ गये थे । और नेमिचन्द्रने स्वप्न देखा कि विन्ध्यगिरिपर गोम्मेटेश्वरकी एक मूर्ति है, और चामुण्डरायने मूर्तिकी प्रतिष्ठा करानेके अनन्तर उसकी नित्य पूजा और त्यागहारोंके हेतु नेमिचन्द्रके चरणोंपर कुछ ग्राम प्रदान किए जिनकी आय ९९००० मुद्रा थी ।^{१०} /

माहसोरके शिमोगा जिलेके नगर तालुकेमें स्थित पद्मावतीके मन्दिरके हातेमें खुदे हुए लगभग सन् १५३० ईस्वीके एक शिलालेखके निम्नलिखित श्लोकसे यह पता लगता है कि चामुण्डराय नेमिचन्द्रके चरणकमलोंकी पूजा करता था । :—

“ त्रिलोकसार-प्रसुर.....

.....भुवि नेमिचन्द्र ।

विभाति सैद्धान्तिक-सार्वभौमः

चामुण्डराजार्चित-पादपद्मः ॥ ”

अर्थात् “त्रिलोकसार और अन्य (ग्रन्थों) के रचयिता.....नेमिचन्द्र सिद्धान्त सार्वभौम, सुशोभित हैं, उसके चरणकमल चामुण्डराज द्वारा अर्चित हैं”^{११} यद्यपि इस श्लोकका कुछ भाग मिट गया है, तथापि भाव सुस्पष्ट है । ‘सिद्धान्त-सार्वभौम’ सिद्धान्तचक्रवर्ती नामक उपाधिका पर्याय वाची है जो बहुधा नेमिचन्द्रके साथ प्रयुक्त होता है ।

स्वयं नेमिचन्द्रने अपने ग्रन्थ गोम्मेटसारमें गोम्मेटराय या केमल राय की प्रशंसा की है और ऐसा हम देख चुके हैं कि यह चामुण्डरायका उपनाम है । उन प्रशंसात्मक श्लोकोंमें नेमिचन्द्रने लिखा है कि अजितसेन उस चामुण्डराय के

गुरु थे जिसने गोम्मेटेश्वरकी मूर्ति निर्माण कराई ।^{१२}

अमयचन्द्र रचित गोम्मेटसारके माध्यमे लिखा है कि यह ग्रन्थ चामुण्डरायकी इच्छाानुसार रचा गया जिसको जैनियोंके पवित्र ग्रन्थोंमें वर्णित द्रव्योंकी व्याख्याका अध्ययन करनेकी अभिलाषा थी । नेमिचन्द्र-रचित त्रिलोकसारकी एक अति प्राचीन सचित्र हस्तलिखित पुस्तकमें एक चित्र है जिसमें चामुण्डराय अनेक समासदोंके साथ नेमिचन्द्रसे जैन-सिद्धांतोंकी व्याख्या सुन रहे हैं ।

नेमिचन्द्रके ग्रन्थ ।

नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तीने इन प्रयोगोंकी रचना की:—
(१) द्रव्यसंग्रह (२) गोम्मेटसार (३) लब्धिसार (४) क्षणसार, और (५) त्रिलोकसार । बाहुबली चरित्रमें लिखा है कि “नेमिचन्द्र, गोम्मेटसार, लब्धिसार, और त्रिलोकसारके रचयिता हैं”^{१३} द्रव्यसंग्रहके अन्तिम श्लोकमें नेमिचन्द्रने अपना नाम प्रकट किया है ।^{१४} इसी प्रकार गोम्मेटसारके एक श्लोकसे यह ज्ञात

४२ “गोम्मेट सगहसुंन गोम्मेटसिंहवरि गोम्मेटजिणे य ।

गोम्मेटरायविणिमियदाक्खिणकुक्कुडजिणो जयउ ॥

जेण विणिमियपडिमावयणं सव्वहसिद्धिर्वेहि ।

सव्वपरमोहिजोविहिं दिट्ठ सो गोम्मेटो जयउ ॥

यज्जयण जीणपवण ईसियसारं सुवण्णकलसं उ ।

तिहुवणपडिमाणिक्क जेण कयं जयउ सो रायो ॥

जेणुवृभियवमुवरिमज्जकूव—किरीटगाकिरणजलधोया ।

सिद्धाण सुदपाया सो राओ गोम्मेटो जयउ ॥

जम्हि शुणा विस्सता गणहरदेवादि—इह्द्विपराणं ॥

सो अजियसेणपादो जस्स शुव जयउ सो राओ ”

४३ सिद्धान्तामृतसागर स्वमक्षिमयद्मामृदालोष मध्ये

लेभेऽभीष्टफलप्रदानपि सदा देशीगणायेश्वरः ।

श्रीमद्गोमटलब्धिसारविन्दधन्वै श्लोकप्रसादामर-

ह्माजश्रीसुरचैनुचिन्तितमणिन् श्रीनेमिचन्द्रो मुनिः ॥

(बाहुबली चरित्र, श्लोक ६१)

४४ ‘ जेमिचन्द्र मुणिणा मणिय ज ’

(द्रव्यसंग्रह, श्लोक ५८)

४० “ मास्वेदेशीगणाग्रेश्वररुचिरसिद्धान्तनित्रेनेमिचन्द्र—

श्रीपादाग्रै सदा षण्णवतिदशत्रयव्यग्रामवय्यान् ।

दत्त्वा श्रीगोमटेशोत्सवसवननित्याचनार्चनव्यय

श्रीमद्यामुण्डराजो निजपुरमधुरा सज्जगाम क्षित्तीशः ।

(बाहुबली चरित्र, श्लोक ६१.)

होता है कि नेमिचन्द्रने इसकी रचना की है ।^{१५} हम समझते हैं, इस स्थानपर नेमिचन्द्रके ग्रन्थोंका संक्षिप्त वृत्तान्त दे देना उत्तम होगा ।

गोम्मटसार ।

इसका नाम गोम्मटसार पडनेका कारण यह है कि यह चामुण्डरायके पठनार्थ लिखा गया था, और हम बतला चुके हैं कि चामुण्डरायका दूसरा नाम गोम्मटराय था । इस ग्रन्थको पञ्चसंग्रह भी कहते हैं^{१६} क्योंकि इसमें इन पाँच बातोंका वर्णन दिया है (१) बन्ध (२) बध्मान (३) बन्धस्थामी (४) बन्धहेतु और (५) बन्ध-भेद ।

यह ग्रन्थ प्राकृतमें है और इसमें १७०५ श्लोक हैं । इसके दो भाग हैं जिनके नाम हैं जीवकाण्ड और कर्मकाण्ड । इनमें आठउत्तर ७३३ और ९७२ श्लोक हैं । जीवकाण्डमें मार्गणा, गुणस्थान, जीव, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, और उपयोगका वर्णन है । कर्मकाण्डमें ९ अध्याय हैं, जिनके नाम हैं—प्रकृतिसमुत्कीर्तन, बन्धोदयसत्त्व, सत्त्वस्थानमंग, त्रिचूलिका, स्थानसमुत्कीर्तन, प्रत्यय, भवचूलिका, त्रिकरणचूलिका, और कर्मस्थिति-रचना । आठ प्रकारके कर्म और कर्मबन्धका अपनी अपनी प्रकृति, स्थिति, अन्तर्भाग और प्रवेशके साथ सविस्तर वर्णन भी दिया हुआ है । कर्मके सम्बन्धके अन्य अनेक विषयोंका भी इसमें वर्णन है । संक्षेपसे गोम्मटसारके प्रथम भागमें जीवोंके स्वभाविक गुण, और उनकी उन्नतिके उपायों और उपकरणोंका वर्णन है; और दूसरे भागमें उन कर्मबन्ध उत्पन्न करनेवाली अडचणोंका वर्णन है, जिनके निवारण करनेसे जीवोंको मुक्ति प्राप्त होती है । ग्रन्थकर्ता सर्वदा जीवकी उत्तरो-

त्तर उन्नतिको ध्येय मानता है, और इसी लक्ष्यसे उसने गोम्मटसारमें जैन-आचार्योंके सिद्धान्तोंका सार दिया है । साधारण रूपसे इस ग्रन्थमें जैन-दर्शन शास्त्रके मुख्य मुख्य सिद्धान्तोंका समावेश है ।

गोम्मटसारके भाष्य ।

स्वयं चामुण्डरायने कानडी भाषामें गोम्मटसारकी एक टीका रची थी । गोम्मटसारके अन्तिम श्लोकमें इस बातका उल्लेख है कि चामुण्डरायने सर्व साधारणकी भाषामें वीर-मार्तण्डी नाम्नी एक टीका रची।^{१७} चामुण्डरायकी एक उपाधि-वीर-मार्तण्ड थी, इस लिए उसने अपनी टीकाका नाम रक्खा 'वीर-मार्तण्डी' अर्थात् वीर-मार्तण्डकी रची हुई । चामुण्डरायकी उक्त टीका अब अमाम्य है, अन्य एक दूसरी टीकामें अब केवल इसका उल्लेख मात्र है, जिसका नाम है केशववर्णीया वृत्ति, (अर्थात् केशववर्णी रचित) । उसके प्रथम श्लोकमें लिखा है " मैं कर्णाटक-वृत्तिके आधारपर गोम्मटसारकी वृत्ति लिख रहा हूँ । "^{१८} गोम्मटसारपर एक और टीका है जिसका नाम है मन्द-प्रबोधिका, और जिसके टीकाकार हैं अमयचन्द्र ।^{१९} इन्हीं टीकाओंके आधारपर दोहर-मछने हिन्दी भाषामें एक टीका लिखी है; जिसका वर्तमान समयके जैन-पंडितोंमें बहुत प्रचार है ।

नेमिचन्द्रके गुरु ।

गोम्मटसारमें अनेक मुनियोंके नाम दिये हैं जिनको नेमिचन्द्र आचार्य कहकर यन्दना करता है । वे नाम इस प्रकार हैंः—अमयनन्दि, इन्द्रनन्दि, वीरनन्दि;

४७ गोम्मटसुतसिंहने गोम्मटरायेण या क्या देती ।

सो राखो चिरं काल नामेण य वीरमत्तण्डी ॥

(गोम्मटसार कर्मकाण्ड, गाथा ९७२)

४८ नेमिचन्द्रं जिने नत्वा सिद्धं श्रीज्ञानमूषणम् ।

वृत्ति गोम्मटसारस्य कुर्वे कर्णाटवृत्तितः ॥

(केशववर्णीयावृत्ति)

४९ मुनिं सिद्धं प्रणम्याहं नेमिचन्द्र जिनेश्वरम् ।

टीका गोम्मटसारस्य कुर्वे मन्दप्रबोधिकाम् ॥

(अमयदेवकी वृत्ति)

४५ सिद्धं बुद्धमतद्वुगयाभिगमलवरणेभिचदकरकालिया ।

गुणरयणमूसर्णं बुद्धिमद्वेला भरउ मुषणयल ॥

(गोम्मटसार, कर्मकाण्ड, गाथा ९७७)

४६ ' श्रीमच्चामुण्डराय प्रश्नाश्रुत्वं गोम्मटसारनामधेय पञ्चसंग्रहशास्त्रं प्रारंभमानः । '

(अमयचन्द्ररचित गोम्मटसारवृत्ति)

और कनकनन्दि ।^{५०} वीरनन्दि रचित एक 'चन्द्रप्रम-
चरित' नामका ग्रन्थ है जिसके अन्तमें लिखा है कि
ये अभयनन्दिके शिष्य थे,^{५१} और अभयनन्दि गुण-

५० "णमिऊण अभयणदि सुदसापरपरगिदणदिगुरु ।

उरवीरणदिणाह पयडीण पयय वोञ्छ ॥ "

तथा—

"वरइदणदिगुरुणो पासे सोऊण सयलसिद्ध ।

सिरिकणयणदिगुरुणा सत्तट्ठाण समुद्धि ॥ "

(गोम्मटसार, कर्मकाण्ड ।)

५१ "बभूव भव्याम्बुजपद्मवन्धु पत्तुर्मुनीना गणमूर्त्तमानः ।

सदग्रणीर्देशिगणाग्रगण्यो गुणावरः श्रीशृणुनन्दनामा ॥

मुनिजननुत्तपादः प्रास्तमिष्याप्रवादः
सबलगुणसमृद्धस्तस्य शिष्यः प्रसिद्धः ।

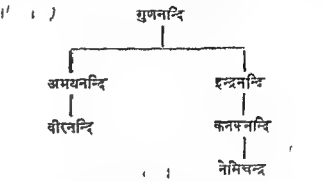
अभयदमयनन्दी जैनधर्माभिनन्दी—
स्वमहिमजितसिन्धुर्मव्यलोकैकवन्धुः ॥

भव्याम्बोजनिबोधनोद्यतमतेर्मास्त्वत् समानस्त्रियः
शिष्यस्तस्य गुणाकरस्य सुधियः श्रीवीरनन्दीत्यमृत ।

राधीनासिलराइमयस्य मुवनप्रख्यातकीर्तिः, सत्ता
ससत्तु व्यजयन्त यस्य जयिनो वाचः कुतर्काद्भुताः ॥ "

[चन्द्रप्रमचरितप्रशस्तिः । श्लोक. १, १, ४,]

नन्दिके शिष्य थे । गोम्मटसारके उल्लेखानुसार कनक-
नन्दि इन्द्रनन्दिके शिष्य थे ।^{५२} इसमें नेमिचन्द्रकी
गुरुपरंपराका टेबल इस प्रकार होता है ।



[यह लेख, आरासे जो द्रव्यसंग्रहकी दृष्टिसे आवृत्ति
प्रकाशित हुई है, उसकी प्रस्तावनाका अधिकतर अनुवाद
स्वरूप है, ऐसा पीछेसे उसके साथ मिलान करनेसे
भास्य हुआ है ।

—संपादक जै. सा. सं.]

५२ वरइदणदिगुरुणो पासे सोऊण सयलसिद्ध ।

सिरिकणयणदिगुरुणा सत्तट्ठाण समुद्धि ॥

(गोम्मटसार, कर्मसार, गा० ३८६)



जं बु दी व प णे त्ति ।

(ग्रंथ परिचय)

[ले. श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमी]

जैन साहित्यमें करणानुयोगके ग्रंथोंकी एक समय बहुत प्रधानता रही है। जिन ग्रंथोंमें ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, और मध्यलोकका, चारो गतियोंका, और द्यूगोके परिवर्तन आदिका वर्णन रहता है, वे सब ग्रन्थ करणानुयोगके अन्तर्गत समझे जाते हैं। आजकलकी भाषामें हम जैन धर्मके करणानुयोगको एक तरहसे भूगोल और स्वर्गोल शास्त्रकी समष्टि कह सकते हैं। दिग्ग्वर और श्वेताम्बर दोनोंही संप्रदायमें इस विषयके सैकड़ों ग्रन्थ हैं और उनमें अधिकांश बहुत प्राचीन हैं। इस विषयपर जैन लेखकोंने जितना अधिक लिखा है उतना शायदही संसारके किसी संप्रदायके लेखकोंने लिखा हो। परंपरासे यह विश्वास चला आता है कि इन सब परोक्ष और दूरवर्ती क्षेत्रों या पदार्थोंका वर्णन साक्षात् सर्वज्ञ भगवानने अपनी दिव्य-ध्वनीमें किया था। जान पड़ता है कि इसी अटल श्रद्धाके कारण इस प्रकारके साहित्यकी इतनी अधिक वृद्धि हुई और हजारों वर्ष तक यह जैन धर्मके सर्वज्ञ प्रणीत होनेका अकाट्य प्रमाण समझा जाता रहा।

हिंदुओंके पौराणिक मूर्धनको पढ़नेसे ऐसा भाव्य होता है कि दो ढाई हजार बरस पहले भारतके प्रायः सभी संप्रदायवालोंका पृथ्वीके आकार-प्रकार और द्वीप-समुद्र-पर्वतादिके सम्बन्धमें करीब करीब

इसी प्रकारकी धारणा थी, जिस प्रकार कि जैन धर्मके करणानुयोगमें पाई जाती है। पृथ्वी वालीके समान गोल और चपटी है, उसमें अनेक द्वीप और समुद्र हैं, द्वीपके बाद समुद्र और समुद्रके बाद द्वीप, इस प्रकार क्रम चला गया है; जम्बूद्वीपके बीचमें नामीके तुल्य सुमेरु पर्वत है, इत्यादि। परन्तु पीछेसे विद्वान् लोगोंके अन्वेषण और निरीक्षणसे इस विषयका ज्ञान बढ़ता गया, और आर्यभट्ट, मास्कराचार्य आदि महान् ज्योतिषियोंने तो पूर्णतः विचारोंको झिल्लुल्टी बदल डाला। इसका फल यह हुआ कि इस विषयका जो प्रारंभिक हिन्दु साहित्य था उसका बढना तो दूर रहा, मगर वह धीरे धीरे क्षीण होता गया और ह्रस्व चूँकि जैन विद्वानोंका विश्वास था कि यह साक्षात् सर्वज्ञ प्रणीत है; अतएव वे इसे बढ़ाते चले गये और नई खोजों तथा आविष्कारोंकी और ध्यान देनेकी उन्होंने आवश्यकताही नहीं समझी।

यह करणानुयोगका वर्णन केवल इस विषयके स्वतंत्र ग्रन्थोंमें ही नहीं है, प्रथमानुयोग या कथातुयोगादिके ग्रन्थोंमें भी इसने बहुत स्थान रोक रखा है। दिग्म्वर संप्रदायके महापुराण, हरिवंशपुराण, पद्मपुराणादि प्रधान २ पुराणोंमें तथा अन्य चारित्र ग्रन्थोंमेंभी यह खूब विस्तारके साथ लिखा गया है। श्वेताम्बर संप्रदायके कथा ग्रन्थोंका भी यही हाल है। वल्कि इस संप्रदायके तो आगम ग्रंथोंमें भी इसका दोहराया है। भगवती सूत्र (व्याख्याप्रज्ञप्ति) आदि अग और जम्बू

१ लोकालोकविमलेशुभपरिवृत्तेशुभगर्गतां च ।

आदर्शमिव यथामतिरवैति करणानुयोग च ॥

—रत्नकरण्ड श्रा०

द्वीप प्रशस्ति, सूर्यप्रशस्ति, चन्द्रप्रशस्ति, आदि उपांग ग्रन्थ करणाजुयोगिकेही वर्णनसे लवालव भरे हुए हैं ।

दिगम्बर संप्रदायमें इस विषयका सबसे प्राचीन और विशाल ग्रन्थ त्रिलोकप्रज्ञप्ति है । इसका और लोकाविभागा ग्रन्थका परिचय हम जैनहितैषी (भाग १३-अंक १२) में दे चुके हैं । त्रिलोक्यसार नामक ग्रन्थ मूल प्राकृत और संस्कृत टीका सहित भाणिकचन्द्र ग्रन्थमालामें प्रकाशित हो चुका है । आज इस छलमें हम जम्बुद्वीवपण्णासिका परिचय देना चाहते हैं । इसी नामका और एक ग्रन्थ मायूरसेयान्वयी अमृतगति आचार्यका भी है । अमृतगतिने चन्द्रप्रशस्ति और साद्विद्वयद्वीपप्रशस्ति नामक ग्रन्थ भी इसी विषयपर लिखे हैं । परन्तु ये अभीतक हमारे देखनेमें नहीं आये । जम्बुद्वीवपण्णासिका नामका एक ग्रन्थ श्वेताम्बर संप्रदायका भी है । इसका संकलन करनेवाले गणेशर सुषमांस्वामी कहे जाते हैं । यह छठ्ठा उपांग है और आगमग्रन्थोंकी शीलोंसे लिखा हुआ है । इसकी श्लोक संख्या ४१४६ है । मुसिदावादके राय धनपतिसिंह बहादुरके द्वारा यह वाचनाचार्य रामचन्द्र गणिकृत संस्कृत टीका और अरवि चन्द्रभाणजीकृत भाषा टीका सहित छप चुका है ।

इसमें १३ उद्देश या अध्याय, २४२७ नाथायें और भरत, ऐरावत, पूर्व विदेह, उत्तर विदेह, देवकुक्ष, उत्तरकुक्ष, लवणसमुद्र, व्यातिषपटल आदिकावर्णन है । वर्णन तिलोकप्रशस्तिका अपेक्षा कुछ सोझ है ।

इसके कर्ताका नाम सिरिपुत्रमण्णदि या श्रीपन्नान्दि है । वेह अपनी गुरुपरम्परा इस प्रकार बतलाते हैं— श्रीरान्दि, बलान्दि, और प्रदान्दि । अपने लिए उन्होंने गुणगणकलित, त्रिदण्डरहित, त्रिशल्पपरिशुद्ध, त्रिगारवरहित, सिद्धान्तपारगामी, तप-नियम-योग-युक्त, ज्ञानदर्शनचारित्र्योद्युक्त और आरम्भकरणरहित विशिष्टण दिये हैं । अपने गुरुओंकी भी उन्होंने ज्ञान और तप आदिके विषयमें प्रशंसा की है । उन्होंने ऋषिविषय गुरुके निकट जिनवचन-विनिर्गत सुपरिशुद्ध आगमको श्रवण करके, उनहींके कृपामाहात्म्यसे इस ग्रन्थका रचना की है । विषयगुरुका विशेष परिचय वे नहीं देते, इससे उनकी गुरुपरम्परापर कोई प्रकाश नहीं पड़ता । माघनन्दो नामके एक विख्यात आचार्य थे जो राग-वेध-मोहसे रहित, श्रुतसामयके पारगामी, प्रज्ञान मतिमान्, और तपःसंयम-संपन्न थे । उनके शिष्य सुकलचन्द्र गुरु हुये, जो नव नियमों और शीलका प्रालम्ब करते थे, गुणी थे और सिद्धान्त महोदधिमें जिन्होंने अपने पापोंका बोझाला था । इनके शिष्य नन्दिगुरुके लिए—ओ सम्मदार्शन-ज्ञान-चारित्र्यसम्पन्न थे—यह ग्रन्थ बनाया गया है ।

अन्तर्गत था। वाराणसगरके प्रमु या राजाका नाम शक्ति था शान्ति था। वह सम्यग्दर्शनशुद्ध, मर्ता, शीलसम्पन्न, दानी, जिनशासनवत्सल, धीर, गुणी, कलाकुशल और नरपतिसंपूजित था।

आचार्य हेमचन्द्रके कोषमें लिखा है—“उत्तरो विन्ध्यात्पारियात्रः”। अर्थात् विन्ध्याचलके उत्तरमें पारियात्र है। यह पारियात्र शब्द पर्वतवाची और प्रदेशवाची भी हैं। विन्ध्याचलकी पर्वतमालाका पश्चिम भाग जो नर्मदा तटसे शुरू होकर संभाततक जाता है और उत्तर भाग जो अंबलीकी पर्वतश्रेणीतक है पारियात्र कहलाता है। अतः पूर्वोक्त वाराणगर इसी भूभागके अन्तर्गत होता चाहिये। राजपूतानेके कोटा राज्यमें एक वारा नामक कसबा है, जान पड़ता है कि यही वाराणगर होगा। क्योंकि यह पारियात्र देशकी सीमाके भीतरही जाता है। नन्दिनयकी पट्टावलीके अनुसार वारामें एक मन्दारकोकी गद्दी रही है और उसमें वि. सं. (विक्रमराज्याभिषेक) ११४४ से १२०६ तकके १२ आचार्योंके नाम दिये हैं। इससे भी जान पड़ता है कि सम्भवतः वे सब आचार्य पद्मनन्दि या माधनन्दि की ही शिष्यपरम्परामें हुये होंगे और यही वारा—कोटा जम्बुद्वीप प्रसक्तिके निर्मित होनेका स्थान होगा।

शानप्रबोध नामक माध्याग्रन्थमें (पद्मवद) कुन्दकुन्दाचार्यकी कथा दी है। उसमें कुन्दकुन्दको इसी वारापुर या वाराके घनी कुन्दश्रेणी और कुन्दलताका पुत्र बतलाया है। पाठकोशें यह बात अज्ञात न होगी कि कुन्दकुन्दका एक नाम पद्मनन्दि भी है। जान पड़ता है कि जम्बुद्वीपप्रसक्तिके कर्ता पद्मनन्दिकोही श्रमवश कुन्दकुन्दाचार्य समझकर शानप्रबोधके कर्ता, कर्नाटकदेशके

कुन्दकुन्दका जन्म स्थान वारा बतलानेका प्रयत्न कर बैठे हैं। पर इससे यह बात बहुत कुछ निश्चित हो जाती है कि मालवेके या कोटा राज्यके इसी वारामें यह ग्रन्थ निर्मित हुआ है।

शान्ति या शक्तिराजा जान पड़ता है कि कोई मामूली ठाकूर होगा। यद्यपि उधे नरपतिसंपूजित लिखा है, परन्तु साथ ही ‘वाराणगरस्थ प्रमुः’ कहा है। यदि कोई बड़ा राजा या मांडलिक आदि होता, तो वह किसी प्रदेश या प्रान्तका राजा बतलाया जाता। राजाका वंश आदिभी नहीं बतलाया है, जिससे राजपूतानेके इतिहासोंमें उसका पता लगाना जा सके और उससे पद्मनन्दि आचार्यका निश्चित समय माध्यम किया जा सके।

पद्मनन्दि नामके अनेक आचार्य और महारक हो गये हैं। उनमें पद्मनन्दिपंचविंशतिकाके कर्ता बहुत प्रसिद्ध हैं। वे अपने गुरुका नाम ‘धीरनन्दि’ लिखते हैं और प्रसक्तिके कर्ताके गुरु बलनन्दि हैं। इस लिये ये दोनों एक नहीं हो सकते। इसके सिवाय ‘पंचविंशतिका’ अपेक्षाकृत अर्वाचीन ग्रन्थ है। हमारे अनुमानसे वह १३ वीं शताब्दीसे पहलेका नहीं हो सकता। उस समय दिगम्बर मुनि जिनमन्दिरोमें रहने लगे थे और यह उपदेश दिया जाने लगा था कि दिग्वाफलेके पथके भी बराबर मन्दिर और जोके भी बराबर जिनप्रातिमा बनवानेवालेके पुण्यका वर्णन नहीं किया जा सकता।

१. मुना है कि वारामें पद्मनन्दि की कोई निधिया भी है।

२. यत्तावत्पद्मजरोधिरपि प्रमाणलभ्येः शिरस्थमलनोषकलावतारः। गन्यात्मनां भवति तत्क्षणमेव मोक्षं स भीमुददिशद्भे मुनिवीरनन्दि ॥

३. यह ग्रन्थ काशीमें छप चुका है। इसमें अनेक विषयोंके १५ प्रकरण हैं।

४. सम्प्रत्यत्र कलौ काले जिनगेहे मुनिस्थितिः।

धर्मस्य दानमित्येषां श्रावका मूलकारणम् ॥

उपासकाचार प्रकरण।

५. विम्वादलोभति यवोप्रातिमेव भक्त्या—

१. धुनेकी प्रतीमें सन्ति (शान्ति) और बम्बईकी प्रतीमें सचि (शक्ति) पाठ है।

२. देशो जैनसिद्धान्तमास्कर किरण ३; और इन्डियन ऑन्टि-फोरी २० वीं जिल्वा।

३. कर्नाटक देशके कोण्डकुण्डनामक ग्रामके निवासी होनेके कारण इनका नाम कोण्डकुण्ड हुआ था। कुन्दकुन्द उसीका क्षुतिमपुर संस्कृत रूप है।

प्रसस्तीकर्ता पद्मनन्दि वचन हुए हैं, यह बतानक लिये अमीतन हमें कोई पुष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ है । परन्तु हमारा अनुमान है कि यह ग्रन्थ विक्रमकी दसवीं शताब्दीके बादका तो नहीं है, पहलेका भले ही हो । क्यों कि—

१) ग्रन्थकी रचनाशैली त्रिलोक त्रिलोक प्रसस्तिक सदृश है और भाषा भी अपेक्षाकृत प्राचीन माध्यम होती है ।

२) नववीं दसवीं शताब्दीके बादके ग्रन्थकर्ता अपनी शुरुपरम्परा बतलाते समय सघ और गण गच्छादिका परिचय अवश्य देते हैं । पर इस ग्रन्थमें किसी सघ या गण गच्छादिका नाम नहीं है । मगराजकविके शिलालेखके अनुसार अकलकमड़ेके बाद देव, नन्दि, सेन, और सिंह इन चार सघोंकी स्थापना हुई है । अतः हमारा समझमें यह ग्रन्थ अकलक देवसे पहलेका होना चाहिए । अकलक देवका समय विक्रमकी ८ वीं शताब्दी है ।

३) ऐसा माध्यम होता है कि इस ग्रन्थसे पहले इस विषयका कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं था । पद्मनन्दि मुनिने श्रीनिजयगुरुके निकट आचार्य परम्परासे चला आया हुआ यह विषय सुनकर लिखा है । किसी एक या अनेक ग्रंथोंके आधार आदीसे नहीं । इस विषयमें नीचे लिखी हुई गायोंमें अच्छी तरह विचारने योग्य है ।

ते वदिरुण सिरसा वोच्छामि जहाकमेण जिणदिष्ठ ।
आयरियपरम्परया पण्णत्तिं दविजलधीण ॥ ६ ॥

× × × × ×

आयरियपरम्परया सायरदीवाण तह य पण्णत्ती ।

सत्तेरण समत्य वोच्छामि जहाण पुब्बीए ॥ १८ ॥

× × × × ×

ये कारयन्ति जिनसन्न जिनाकृतिं वा ।

पुण्य तदीयमिह वागपि नैन शक्ता—

स्तोत्र परस्य किमु कारयिदुर्दयस्य ॥ २२ ॥

१. देखो श्रवण बेल्गोला इन्किप्पुशनका १०८ वा

शिलालेख और जैनसिद्धान्त मास्कर किरण ३ ।

..... रिसिविजयगुरुति विस्मलाओ ॥ १४४ ॥

सोरुण तस्स पासे जिणवयण विणिग्गय अमदमूत् ।

रद्द किंजुदेसे अत्यपद सहव लद्धूणम् ॥ १४५ ॥

यदि यह अनुमान ठीक हो कि दिगम्बर सम्प्रदायमें इस विषयका यह पहला ग्रन्थ है तो अरुणही यह पुण्य है । और आश्चर्य नहीं जो त्रिलोकप्रसस्तिके रचे जाने के समयमें अपना उससे कुछ पीछे लिखा गया हो । इस ग्रन्थमें 'उक्त च' कह कर अन्य गायों या श्लोकादि भी उद्धृत नहीं है । इससे भी इसे प्राचीन माननेकी इच्छा होती है ।

यह ग्रन्थ जिन नन्दिगुरुके लिये बनाया गया है, उनका दादागुरुका नाम माघानन्दि था, और वे बहुतही विख्यात, श्रुतसगरपात्रगामी, तप सयमसम्पन्न, तथा भगवन्नुद्दि थे । इन्द्रनन्दिने अपने श्रुतावतारमें लिखा है कि वीरनीर्वाणसे ६८३ वर्ष बाद तक अगशानकी प्रवृत्ति रही । उनके बाद अर्हद्गलि आचार्य हुए और उनके कुछ समय बाद (तत्कालही नहीं) माघनन्दि आचार्य हुए । आश्चर्य नहीं जो नन्दिगुरुके दादागुरु यही माघनन्दि हों । उन्हें जो विशेषण दिये गये हैं उससेभी मालूम होता है कि वे कोई सामान्य आचार्य न होंगे । इन्द्रनन्दिने कथनक्रमसे माघनन्दीका समय वीरनिर्वाणसवत् ८०० लगभग तक आसकता है । और इस हिसाबसे नन्दिगुरु और पद्मनन्दीका समय वीरनिर्वाणकी ९ वीं शताब्दि माना जा सकता है । पर इस विषयमें अधिक जोर नहीं दिया जा सकता कि इन्द्रनन्दिप्रकथित माघनन्दि आर यह माघनन्दि एकही होंगे ।

इस ग्रन्थमें भगवान् महावीरके बादकी आचार्य परम्पराके विषयमें जो कुछ लिखा है उसका आशय इस प्रकार है ।

विपुलचलके ऊँचे शिखरपर विराजमान वर्धमान

१ वीरनिर्वाण ६वत् १००० के लगभग ।

२ यह ग्रन्थ माणिकचन्द्र ग्रन्थमालाके 'तत्त्वावतारनादि-संग्रह' नामक १३ वें अकमें छप चुका है ।

जिनन्द्रने गौतममुनीको भमाणसयुक्त अर्थ कहा । उन्होंने लोहार्यको, लोहार्यने—जिनका नाम सुधर्मा भी ह—जम्बूस्वामीको कहा । ये तीनों गणधर, गुणसमग्र, और निर्मल चारज्ञानक धारी थे । ये केवल ज्ञानको प्राप्त करके मोक्षको प्राप्त हुए । इनको मैं नमस्कार करता हूँ । इनके बाद नन्दि, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और मद्रबाहु ये पांच मुख्यश्रेष्ठ बौद्ध पूर्व और बारह अगके धारक हुए । इनके बाद क्रमसे विशालाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नाग, सिद्धार्थ, भूतिषेण, विजय, बुद्धिल, गगदेव और धर्मसेन, ये दस पूज्यारी हुए । फिर नक्षत्र, यश पाल, शण्ड, ध्रुवसन, और कस य पाच ग्याह अगके धारक हुए । इनके बाद सुमद्र, यशोमद्र, यशोबाहु आर अन्तिम लोह (लोहाचार्य) ये आचारार गके धारक हुए ।

इस परम्परासे एक यह विशेष बात माधम हुई कि सुधर्मास्वामीका दूसरा नाम लोहार्य भी था । लोहार्य नामके एक और भी आचार्य हुए हैं जो आचारागधारी थे । उन्हें दूसरे लोहाचार्य समझना चाहिए । श्रवण वेम्बोलकी चन्द्रभुसवस्तीके 'शिलालेखके—' महावीरस-वितरि परिनिर्णते भगवत्परमार्पि—गौतमगणधरसाक्षा-च्छिष्य—लोहार्य—जम्बु—XX" आदि वाक्यमें जो लोहार्यको गौतमगणधारका साक्षात् शिष्य लिखा है, उसका भी इससे खुलासा हो जाता है । अर्थात्क इस बातका स्पष्ट उल्लेख कही भी नहीं मिला था कि सुधर्मा-स्वामीका दूसरा नाम लोहार्यभी था ।

इस परम्परामें और त्रिलोकमशतिवी परम्परामें कोई अन्तर नहीं है । आचार्य गुणभद्रकृत उत्तर पुरा-ण, ब्रह्म हेमचन्द्रकृत श्रुतसन्ध, और इन्द्रनन्दिकृत श्रुता-यतारम भी विलकुल यही परम्परा न्दी हुई है । परन्तु हरिपुत्रपुराण, नैन्दिसव—बलात्कार गण—सरस्वती-गच्छकी प्राकृत पट्टावली, "सनगणकी पट्टावली और काष्ठासवकी पट्टावलीमें नन्दिकी जगह विष्णु नाम मिलता है । इसके सिवाय नन्दिसवकी पूरात्त पट्टावलीमें और काष्ठासवकी पट्टावलीमें यशोबाहुके स्थानमें मद्र-बाहु नाम है । जान पड़ता है नन्दीका नामान्तर विष्णु और यशोबाहुका मद्रबाहु भी होगा ।

लोहाचार्य तककी यह शुरुपरम्परा दिगम्बर सम्प्रदायमें एकसी मानी जाती है । इसमें कोई मतभेद नहीं है । परन्तु यह बह आश्चर्यकी बात है कि धेताम्बर सम्प्रदायमें जम्बूस्वामीके बाद जो परम्परा मानी जाती है, वह इससे सर्वथा भिन्न है । यद्यपि ये दोनों सम्प्रदाय वि० स० १३६ के लगभग पृथक् हुए कहे जाते हैं । यदि यह समय सही है तो आचारागधारियों तककी परम्परा दोनों सम्प्रदायोंमें एकसी होनी चाहिए थी । या तो यह समय ही ठीक नहीं ह—जम्बूस्वामीके बादही यह सम्प्रदाय भेद हो गया होगा, या फिर दोनोंमेंसे किसी एकने अथवा दोनोंने ही पीछेसे मूलमाल जाने पर इन्हें गढ़ा होगा । इतिहासके विद्यार्थिओंके लिये यह विषय खास तौरसे विचार करने योग्य है ।

१ देखो, जैनसिद्धान्तभास्कर किरण १

१ यह शब्दभी तत्त्वज्ञानसाधि—संग्रहमें छपा है ।

२ ३४—द्वितीय जैनसिद्धान्तभास्कर, किरण ४ ।

परिशिष्ट-

जंघुदीवपण्णत्तिका आदि और अंतका कुछ भाग नमूनेके तौर पर यहां पर दिया जाता है ।

देवासुरिदमहिदे दसदरूण कम्मपरिहिण्णि । केवलणाणालोए सद्धम्मवयसदे अरहे ॥ १ ॥

अट्टविहकम्मरहिए अट्टगुणसमणिण्णदे महावीरे । लोयगा-तिलयमुदे सांसयसुसद्धिदे सिद्धे ॥ २ ॥

पञ्चावारसमयो पचेदियनिजिदे विगयमोहे । पचमह्वयानिलए पचमगइनायगायरिए ॥ ३ ॥

परसमयतिमिरदलणे परमागमदेसए उवण्णाय । परमगुणरयणणिण्णहे परमागममाविदे वीरे ॥ ४ ॥

णाणागुणतयणिए ससमदसम्भावगहियपरमत्थे । बट्टविहकोमगजुत्ते जे लोए सव्वसाहुगजे ॥ ५ ॥

ते वदिदूण सिरसा षोष्ठामि जट्टा कमेण जिणदिट्ठ । आश्रयियपरपरया पण्णत्तिं दीवजलधीण ॥ ६ ॥

विजलगिरितुगासिहरे जिण्णिदइदेण वड्डमाजेण । गोदम्मगुणित्ते कहिद पमाणयसजुव अत्थ ॥ ९ ॥

तेणवि लोहउजस्स य लोहउजेण य सुधम्ममाणेण । गणपरसुधम्मणा खलु जवूणामस्स णिदिट्ठ ॥ १० ॥

चट्टमलवुद्धिसिद्धिदे तिमिदे गणधरे गुणसमयो । केवलणाणवईवे सिद्धिपत्ते णमसामि ॥ ११ ॥

णदा ॥ णदीमित्तो अवराजिदगुणिवरो महातेजो । गोवट्ठणो महप्पा महागुणो भद्वाहु य ॥ १२ ॥

पचेदे पुरिसवरा चउदसपुंजो ह्यति णायव्वा । बारसअगधरा खलु वीरजिणिदस्स णायव्वा ॥ १३ ॥

तहय विसासायरिजो पोटिदट्ठो रत्तियओ य जयणामो । णामो सिद्धत्थो विय धिदिसेणो विजय णामोय ॥

वुद्धिअ-गगदेवो धम्मसेणो य होइ पच्छिमओ । पारपरेण एदे दसपुव्ववरा समक्खादा ॥ १५ ॥

णम्भुत्तो जसपालो पड्ड-धुवसेण-फस-आयरिओ । एयारस अंगधरा पचजणा होति णिदिट्ठा ॥ १६ ॥

णामेण सुभइमुणी जसभरो तहय होइ जसघाहु । आयरवरा गेया अपच्छिमो लोहणामो य ॥ १७ ॥

आयरियपरपरया सायरदावाण तहय पण्णत्तिं । ससेवेण समत्य षोष्ठमि जहाणुअवीए ॥ १८ ॥

परमेठ्ठिसिद्धत्थ उद्धाधोतिरियलोयसवधं । जड्ठदीवणिबद्ध पुज्जावरदोसपारिहिण्णि ॥ १४० ॥

गणवरदेयेण पुणो अत्य लद्धूण गधिद गय । अक्खरपदससेख अणतसत्थेहि सहुत्त ॥ १४१ ॥

आयरियपरपरेण य गयत्थ वेव आगय सम्म । उवसहरीय लिहिय समासरो इहय णावव ॥ १४२ ॥

णाणाणरवइमहिदो विगयममुंसगमग-उम्भुत्तो । सम्मइसणसुदो सजय-तव-सील-सपुण्णो ॥ १४३ ॥

जिणवर-रयण-विणिगयपरमागमदेसओ महासत्तो।सिरिणिजलो गुणसहिओ रिसिविजय गुण ति विरुत्ताओ।

सोऊण तस्स पासे जिणवयणविणिगय अमदमूद । इद किंउदेसे अत्यपद ब्रह्म व लद्धूण ॥ १४५ ॥

अहतिरिय-उद्धलोलसु तेसु जे होति बहुवियप्पा इ । सिरिविजयस्स महप्पा ते सव्वे वणिदा किंचि ॥ १५३ ॥

गयरायडोसमोहो सुदसायरफारओ मइ-पपच्छो।सवसजमसण्णो विक्खाओ माघनंदियुक् ॥ १५४ ॥

तस्सेव य वरसिस्सो सिद्धतमहोदहिम्मि धुयकलुत्तो । णवणियमसीलकलिदो गुणउत्तो सयलचंद युक् ॥ १५५ ॥

तस्सेव य वरसिस्तो णिम्मलवरणाणचरणसंजुतो । सम्मदंसणसुद्धो सिरिणंदिगुम ति विम्भाओ ॥ १५६ ॥
 तस्स णिमित्तं लिहियं जंबूदीवस्स तद्दय पण्णत्ती । जो पढ्द मुण्ह एदं सो गच्छ्द उत्तमं ठाणं ॥ १५७ ॥
 पंचमहव्ययसुद्धो दंसणसुद्धो य णाणसंजुतो । संजमतवगुणसहिदो रागादिविक्किदो धीरो ॥ १५८ ॥
 पंचाचारसमग्गो छग्गीवद्दयावरो विगदमोहो । हरिस-विसाय-विहूणो णामेण य कीरणंदित्ति ॥ १५९ ॥
 तस्सेव य वरसिस्तो सुत्तववियम्भणो महम्मगग्गो । परपरिवादणियत्तो णिस्संगो सव्वसंगु ॥ १६० ॥
 सम्मतअभिगदमणो णाणेण तद्द दंसणे चरिते योपरतंतिणियत्तमणो वल्लणंदि गुह ति विक्खाओ ॥ १६१ ॥
 तस्स य गुणगणकलिदो तिदंढरहियो तिसल्लपरिसुद्धो । तिण्णवि गारवरहियो सिस्सो सिद्धंतगयपारो ॥ १६२ ॥
 तवणियमजोगजुत्तो उज्जुत्तो णाणदंसणचरिते आरंभकरण रहियो णामेण य पउमणदीत्ति ॥ १६३ ॥
 सिरिगुरुविजयसयासे सोऊणं आगमं सुपरिसुद्धं । मुणि-पउमणंदिणा खल्ल लिहियं एयं समासेण ॥ १६४ ॥
 सम्मदंसणसुद्धो कदवदकम्मो सुत्तीलसंपण्णो ॥ अणवरयदाणसालो जिणसासणवच्छलो धीरो ॥ १६५ ॥
 णाणागुणगणकलिओ णरव्हसंपूजिओ कलाकुसलो ॥ वाराणयरस्स प्हू णरुत्तमो खत्तिभूपालो ॥ १६६ ॥
 पोक्खराणि-वावि-पउरे बहुमवणविहूसिए परमरम्भे । णाणाजणसंकिण्णे बनवन्नसमाउले दिव्वे ॥ १६७ ॥
 सम्मादिट्ठिजणोवे मुणिगणविबोहि मंकिए रम्भे । देसम्म पारियत्ते जिणमवणविहूसिए दिव्वे ॥ १६८ ॥
 जंबूदीवस्स तद्द पण्णत्ती बहुपयत्तसंजुत्त (ता) । लिहियं संखेवेणं वाराए अच्छमाणेण ॥ १६९ ॥
 छद्दत्थेण विरहय ज किपि ह्वेग्ग पवयणविरुद्धं । सोद्ध तु सुगीदरया तं पवयण वच्छलत्ताए ॥ १७० ॥

× × × × ×

विउच्च-वद्द-मउद्ध-मणिगण-कर-सलिलसुबोयचार पयकमलं । वरपउमणंदि णामियं धीर जिणंदं णमंतामि ॥ १७१ ॥

इय जंबूदीवपण्णत्तिसंगहे पमाणपरिच्छेदो णाम तेरमी उदेसो सम्मतो ॥ १३ ॥



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

गिरनारखेत -- पंचमी दोक.

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

અર્હમ્

॥ નમોઽસ્તુ શ્રમણાય મગવતે મહાવીરાય ॥

જૈ ન સા હિ ત્ય સં શો ધ ક

સંદ ૧]

ગુજરાતી લેખ વિભાગ

[અંક ૪

સ પ્ત મં ગી

અથવા

સત્-અસત્-તત્ત્વમૂલક પ્રમાણ પદ્ધતિ

[લે૦ અધ્યાપક રસિકલાલ છોટાલાલ પરીખ. વી. ઇ.]

જેન દર્શન અથવા આર્હત દર્શનના તત્ત્વજ્ઞાનનો મૂલ પાયો સત્તમગી ઉપર રવાણો છે. સત્તમગી ઇટલે વસ્તુ તત્ત્વના સ્વરૂપનો સપૂર્ણ વિચાર પ્રદર્શિત કરવા માટે યોજેલી સાત પ્રકારની વાક્યરચના. જે આ પ્રમાણે છે:—

- | | | | |
|-------|-----------|---------|-------------------------|
| (૧) | [વસ્તુ] | કથંચિત્ | છે. * |
| (૨) | " | " | નથી. |
| (૩) | " | " | છે અને નથી. |
| (૪) | " | " | અવાચ્ય છે. |
| (૫) | " | " | છે અને અવાચ્ય છે. |
| (૬) | " | " | નથી અને અવાચ્ય છે. |
| (૭) | " | " | છે, નથી, અને અવાચ્ય છે. |

* સંસ્કૃત વાક્યો આ પ્રમાણે —

- | | |
|-----------------------------------|-------------------------------|
| (૧) સ્થાવરિતિ | (૪) સ્થાવરકન્યમ્ |
| (૨) સ્થાનાસ્થિતિ | (૫) સ્થાવરિતિ અવકલ્પમ્ ચ |
| (૩) સ્થાવરિતિ નાસ્તિ | (૬) સ્થાનાસ્થિતિ અવકલ્પમ્ ચ |
| (૭) સ્થાવરિતિ નાસ્તિ અવકલ્પમ્ ચ | |

આ પ્રમાણે સત્તમગીની વાક્યરચના છે. સામાન્ય વાચકને વહુ વિચિત્ર, નિરુપયોગી અને હાસ્યજનક લાગે તેણે તેણે વાઙ્મય સ્વરૂપ દેખાય છે. પરંતુ ગંભીર વિચાર-પૂર્વક જો તે સત્તમગી ઝઘાણો કરનારા આવે તો તેમાં રહેલા તત્ત્વો સર્વસાધારણ અને સર્વવ્યાપી છે એમ સ્પષ્ટ જણાઈ આવશે. એ વિચાર પદ્ધતિમાં સત્-અસત્ અનેક ધર્મસ્વત્વ, અને એક વાક્ય એક સમયે એક ધર્મનો નિર્દેશ જ કરી શકે, એ તત્ત્વોનો અન્તર્માલ્ય થયેલો છે. એ તત્ત્વોએ આ વિશિષ્ટ સ્વરૂપ ક્યારે અને કઈ પરિસ્થિતિમાં ધારણ કર્યું તેનો નિર્ણય કરવો હજી મુશ્કેલી નથી. પરંતુ જૈન ન્યાયશાસ્ત્રના અધ્યયન ઉપરથી તેનો વિકાસ અને પ્રયોજન તો આપણે ચોક્કસ જાણી શકીએ તેમ છીએ.

જેનોના આ વિશિષ્ટ સિદ્ધાન્તના ઇતિહાસ વિષે હાલમાં દૂર આટલું જણાવી શકું છું—ઉત્તરાખ્યયન સૂત્રમાં એનો નિર્દેશ નથી. મદ્રાહુની આવશ્યક સૂત્રની નિર્ણયિતમાં

પણ એનો ઉછેલ ટુલ્લમ છે; તત્ત્વાર્થાધિગમ સૂત્રમાં પણ તે ઉપલબ્ધ નથી. પણ આના જેવી દેશ્વાતી ચર્ચા ભગવતી સૂત્રમાં મળી આવે છે. નયચક્રના કર્તા મહાવાદી “નય” ના સિદ્ધાન્ત માટે આગમ પ્રમાણ આપતી વચ્ચે ભગવતી સૂત્રના કેટલાંક વાક્યો ટાંકે છે. ગૌતમ ગણપર ભગવાન મહાવીરને પૂછે છે ‘મગવન્ ! આત્મા જ્ઞાન [મય] છે કે નહિ ?’ સ્વામી સમજાવે છે ‘ગૌતમ ! નિયમે કરીને જ્ઞાન [મય] છે. કારણ કે, જ્ઞાનની આત્મા વિના વૃત્તિ દેશ્વાતી નથી; પણ આત્મા જ્ઞાન પણ હોય અને અજ્ઞાન પણ હોય (આયા પુણ સિય પાણે સિય અન્નાણે) ’” અહિં આ ‘સિય’ શબ્દ એ ‘સ્વાત્’ જે પ્રાકૃત રૂપ છે, તે લક્ષમાં રાખી જેવું છે. આ ઉપરથી જણાય છે કે, આ સિદ્ધાન્તના વીજ જો કે જુના આગમોમાં મળી આવે એ શક્ય છે; છતાં આ વિશિષ્ટ સ્વરૂપ તો તેના કરતા અવાંધીન છે. આ સિદ્ધાન્ત એના આ સ્વરૂપમાં તો સૌથી પહેલો કુંદકુંદાચાર્યના પંચાસિકાયામાં અને પ્રવચનસારમાં મળી આવે છે. દિગ્વરો કુંદકુંદાચાર્યને ઘણા પ્રાચીન ગણે છે તેમની પરંપરા પ્રમાણે તેઓ વિક્રમની પહેલી શતાબ્દીમાં થઈ શકે છે. તે પછીના તો જૈન ન્યાયના—સેતાર અને દિગ્વર બંનેના—પ્રત્યેક ગ્રંથમાં એ સિદ્ધાન્તની સ્ફુટ ચર્ચા મળી આવે છે અને તેના પ્રિયમાં દરેકનો સમાન મત છે.

આ સિદ્ધાન્તની પ્રમાણની દ્રષ્ટિએ ચર્ચા કર્યા પછેલે તેમાં સ્તુત્સ્વરૂપના જે તરંગો રહેલા છે તેની ચર્ચા કર્યાથી પ્રિય સમજનામાં વધારા સરજતા થશે.

૧ સર્વનયાના ધિનપ્રવચનસ્વેષ મિથ્યનત્તાત્ । કિમસ્ય નિવચનમિતિ ચેત્—ઉચરતે—નિવચન ચારણ ‘આયા મન્ને નાગે અગમે’ પ્રતિ સ્વામી ગૌતમસ્વામિના પૂરો વ્યાસરોતિ ‘મોદમા પાથે નિયમા’ । અતો જ્ઞાન નિયમાશામનિ । જ્ઞાનસ્વાન્દવ્ય-તિરેકેણ વુચરશ્ચનાત્ ।

—‘આયા પુણ સિય પાણે સિય અન્નાણે ।’

—નયચક્ર, પ્રત્યાર્થચારણ પ્રકરણને અને આ ઉત્તરમાટે હું પૂનઃ મુનિશ્રીજિનશિજયજીન્દ્રે આભારી છું.

• ૧ પંચાસિકાપ, અધિકાર ૧, ગાથા ૮, ૧૪. પ્રવચનસાર, મંદળ ૨, ગાથા ૬૨—૬૩.

સૌ કોઈ સહેલાઈથી સમજી શકે છે કે વસ્તુ સત્સ્વરૂપ છે. પણ વસ્તુ અસત્સ્વરૂપ છે અને વળી એક સાથે તે સદસદ્રૂપ છે, એમ સાંમાલીને તો ઘણા ઢાઢ્યા માણસો આશ્ચર્ય પામ્યા વગર રહે નહિ. જ્યારે એલીયાના મુસાફરે થીએટેરસને કહ્યું કે “અમુક અર્થમાં” અસત્ છે, અને “સત્” નથી” ત્યારે તેના મનની સ્થિતિ એવીજ થઈ હશે. એને જો એમ કહેવામાં આવ્યું હોત કે “સદસદ્રૂપ વસ્ત્વદ્વીકર્તવ્યમ્” ત્યારે પણ તેના મનમાં એવોજ ભાવ યાત. પરંતુ અસત્ અથવા અમાય શબ્દનો અર્થ જરા વધારે ડંઢાળ સાથે સમજવામાં આવે તો આ બાબત સમજી સહેલી થઈ પડે. ક્લેટો ના સોફીસ્ટ નામના સવાદમાં એલીયાનો મુસાફર કહે છે કે—“જ્યારે આપણે અસત્ વિષે બોલીએ છીએ ત્યારે, હું ધારું છું કે, આપણે સત્થી વિરુદ્ધ એવી કોઈ વસ્તુ વિષે બોલતા નથી પણ આપણે ફક્ત અન્યના અર્થમાં વાપરીએ છીએ.”

ન્યાયદર્શનમાં ચાર પ્રકારના અભાવ માનેલા છે—૧) પ્રાગભાવ, ૨) પ્રધર્મસામાવ, ૩) અત્યન્તામાવ અને ૪) હરેતરપ્રમાવ. આમાં પહેલા ત્રણ વસ્તુના સ્વરૂપને લગતા છે જ્યારે હરેતરપ્રમાવ એ અન્ય વસ્તુની અપેક્ષાએ તેનો અભાવ છે. આ સત્ત્વ વસ્તુએને તેમના વિશિષ્ટ સ્વરૂપ અર્પે છે અને આ અર્થમાં જૈન આચાર્યો કહે છે કે વસ્તુ સદસદ્રૂપ છે; સત્-સ્વમાવની અપેક્ષાએ; અને અસત્-અન્યવસ્તુની અપેક્ષાએ. આ સિદ્ધિ કરવા જૈન આચાર્યો જેવી રીતે ચર્ચા કરે છે અને જે પ્રમાણે આપે છે તે જાણવા જોગ છે. તેથી તેડું સંક્ષિપ્ત સ્વરૂપ હું અર્પિયા આપું છું.

૧. “..... In certain sense not-being is, and that being, on the other hand, is not.” પા. ૩૭૦. વા. ૪ The Dialogues of Plato— (ત્રિજી આશ્રિત.)

૪ “When we speak of not-being, we speak, I suppose not of something opposed to being, but only different,” પા. ૩૬૧. વા. ૪. Dialogues of Plato.

અણસહ્યની કર્તા પ્રિધાનન્દી કહે છે કે “તેષા ‘સત્ત્વ’ વસ્તુ ધર્મ છે; તેનો અસ્વીકાર કરતા ગંધદાષા સીંગદાની માફક વસ્તુ વસ્તુત્વ વિનાની થઈ જાય છે; તે પ્રમાણે કયંચિત્ ‘અસત્ત્વ’ છે, કારણ કે સ્વરૂપાદિથી જેમ સત્ત્વ અનિષ્ટ નથી તેમ પરરૂપાદિથી પણ અનિષ્ટ ન હોય તો પ્રતિનિયત સ્વરૂપના અમાવર્થી વસ્તુ પ્રતિનિયત નો વિરોધ ધાય તેથી” (‘એમ માનવું જોઈએ કે સ્વરૂપનો અપેક્ષા જેમ સત્ત્વ ઇષ્ટ છે તેમ પરરૂપાદિની અપેક્ષા-ય નથી’)

અનેકાન્તજયપતાકાના કર્તા હરિમંત્ર સૂરિ કહે છે કે “તે (વસ્તુ) સ્વદ્રવ્ય ક્ષેત્ર-કાલ-માવ-રૂપે સત્ત્વ છે, અને-પરદ્રવ્ય-ક્ષેત્ર-કાલ-માવરૂપે ‘અસત્ત્વ’ છે. તેથી તે ‘સત્ત્વ-અને ‘અસત્ત્વ’ છે. નહિં તો તેના અમાવનો પ્રસંગ આવે (ઘટાદિક્ષે વસ્તુનો અમાવ થાય) ઇટલે કે-જો તે જેમ સ્વદ્રવ્ય ક્ષેત્ર કાલ માવ રૂપે ‘સત્ત્વ’ છે, તેમ પરદ્રવ્ય-વિક્ષે પણ હોય, તો તે ઘટ વસ્તુજ ન થાય. કારણકે તે પરદ્રવ્યવિક્ષે પણ, તેનાથી અન્ય પોતાના સ્વરૂપની માફક, હયાત છે. તે પ્રમાણે જો જેમ પરદ્રવ્ય ક્ષેત્ર કાલ માવરૂપે તે ‘અસત્ત્વ’ છે તેમ સ્વદ્રવ્યવિક્ષે પણ ‘અસત્ત્વ’ હોય, તો એમ પણ ગંધદાષા સીંગદાની માફક ઘટ વસ્તુજ ન થાય. આ પ્રમાણે તેનો (વસ્તુનો) અમાવ થાય તેથી તે સદસદ્રૂપ જ કબુલ કરવી જોઈએ.”

તે જ પ્રયત્નમાં અન્ય સ્થાને હરિમંત્રસૂરિ જણાવે છે કે ‘ન હિ સ્વપરસત્તામાદિમાત્રરૂપતા પ્રિહાય વસ્તુનો વિ-શિષ્ટતૈવ સમ્મવતિ ।’ સ્વસત્તાનો માવ અને પરસત્તાનો અમાવ ન હોય તો વસ્તુની વિશિષ્ટતાના જ સમ્મવ નથી” મમેયરત્નકોષમાં ચન્દ્રપ્રમસૂરિ આવું જ તત્ત્વ દર્શાવે છે.

૫ તત્ત્વ સત્ત્વ વસ્તુધર્મે, સત્ત્વગુણે વસ્તુનો વસ્તુત્વાવોગદ, સ્વ-રિવાદાદિવદ્ । તેષા કયંચિદ્ધત્ત્વ, સ્વરૂપાદિભિરિવ પરરૂપાદિભિ-રિવ વસ્તુનો સત્તાભિગે પ્રતિનિયતસ્વરૂપામાશ્વ વસ્તુમતિ નિમ્મ-વિતાપદ્ । અદસદર્શી ૨. ૧૬૬

૬ તત્ત્વસત્ત્વ સ્વદ્રવ્યક્ષેત્રકાલમાવરૂપે સત્ત્વ-યતે, પરદ્રવ્યજ-કાલમાવરૂપે અસત્ત્વ । તત્ત્વમ મહાસત્ત્વ મતિ । અન્યથા સત્ત્વના પ્રમાણ । (પરાસ્વરૂપ વસ્તુનો માવપ્રસંગ) હયાદિ । અને કાન્તજયપતાકા, ૬૦. ૬૦

તે કહે છે કે જો આ તત્ત્વ સ્વીકારવામાં ન આવે તો એક જ ઘટાદિ વસ્તુ સર્વથા વ્યાપિ અને તેથી એક વસ્તુ સર્વ પદાર્થ થવાનો દોષ નીપજે.”

જોસેફ ‘Introduction to Logic’ નામના પોતાના ગ્રંથમાં પણ આજ મુદ્દાની વાત કરે છે. તે કહે છે કે “નિયેષાત્મક વચનને આપણે વસ્તુઓના વાસ્તવિક વ્યવચ્છેદ દર્શાવનાર ગણવું જોઈએ. ...અમુક ધર્મોની અને અસ્તિત્વના અમુક પ્રકારોની પરસ્પર વ્યવચ્છેદકતા એ નિયેષધર્મો રહેલું વાસ્તવિક સત્ય છે. જો એમ ન હોય તો દરેક વસ્તુ દરેક અન્ય વસ્તુ થઈ જાય, ઇટલે કે અસ્તિત્વના આ વિરિધપ્રકારના જેટલી વિધ્યા-ત્મક થઈ જાય.”

હરિમંત્ર સૂરિ આ પ્રમાણે વસ્તુ તત્ત્વનો દૃષ્ટિ ઉઠા-પોટ કરી તેની સદસદામંકતા સિદ્ધ કરી જ્ઞાન તત્ત્વની દૃષ્ટિ પણ એજ વાવત સિદ્ધ કરે છે. ‘સ્વપરરૂપાદિવૃત્ત-બ્યાવૃત્તરૂપમેવ તદસ્સ્વતુભૂયેત ।’-સ્વરૂપે અનુવૃત્ત અને પરરૂપે વ્યાવૃત્ત જ અમુક વસ્તુ અનુમયાય છે. હુકામાં એમના કારણો આ પ્રમાણે છે. ‘પ્રથમ તા સંવેદન વસ્તુ છે. અને વસ્તુ ઉભયરૂપ છે, માટે તે પણ ઉભયરૂપ છે.’ આનો અર્થ આપણે એમ જા કરવો જોઈએ કે અમુક સંવેદન સ્વરૂપે સત્ત્વ છે અને અન્ય સંવેદન દૃષ્ટિએ અસત્ત્વ છે. ઇટલે આ પણ વસ્તુ તત્ત્વ વિચારમાં જ સમાઈ જાય છે. પણ

૭ તદ્વા યથા સ્વદ્રવ્યપરસત્તા સત્ત્વ તત્ત્વ પરદ્રવ્યપરસત્તાયિ સત્ત્વ, તથા સદેવ વસ્તુ ઇતિ મત્તે પ્રાપ્તેતિ । તત્ત્વમ તત્ત્વ-પરસત્તાપતિહક્ષણ દૂષ્ટમાપયત । મમેયરત્નકોષ, ૬૦. ૬૦

“Hence we must accept the negative Judgment as expressing the real limitation of thingsThe reciprocal exclusiveness of certain attributes and modes of being is the real truth underlying negation But for that every thing would be every thing else, that is as positive as these several modes of themselves.”

યાદ્ય વિષયની દૃષ્ટિએ પણ વસ્તુ-અનુરૂપ-સંબંધન પણ ઉભય રૂપ જ છે. “આગલ રહેલો મટ પોતાના ભાવ અને ફરતના અભાવના અધ્યવસાય દટલે કે નિર્ણય રૂપે જ ઓઢ્યતાય છે.....સદસદ્રૂપ વસ્તુનું કેવલ સદાત્મક જ્ઞાન સર્લ જ્ઞાન નથી. કારણ કે તે સમ્પૂર્ણ અર્થનું પ્રતિભાસન કરતુ નથી. જેમ નરસિહના રૂપનું જ્ઞાન કેવલ સિહના જ્ઞાનથી પૂર્લ થતુ નથી. અને આ પ્રમાણે ઉભયનો પ્રતિભાસ કરતું જ્ઞાન ન યાય દમ નથી, કારણ કે સવિતિ તદન્ય-વિવિક્તાથી વિશિષ્ટ છે (દટલે કે અન્ય પદાર્થથી જે મિલતા, તેનાથી વિશિષ્ટ છે) અને તદન્ય વિવિક્તા દટલે અમાવે. ”

૧.... .. સદસદ્રૂપત્વ વસ્તુનેા વ્યવસ્થાપિતત્વાત્ । સવેદનત્વા-
પિ જ વસ્તુત્વાત્ । તથા ઢકિસિદ્ધશ્ચ । તથાહિ સવેદન પુરોડય સ્થિત
ઘટાદી તદ્ભાવેતરામાવાપ્યવ સામ્યરૂપમેયોપજાયતે । ન
જ સદસદ્રૂપે વસ્તુનિ સમ્માત્રપ્રાત્મીસ્થવે તત્ત્વતત્ત્વપ્રતિભાસ્યેવ,
સદ્રૂપીયપ્રતિભાસનાત્, નરસિંહ-સિંહસંબંધનયત્ । ન ચેતિહુમયપ્રતિ
ભાસિ ન સંરયતે તદન્યવીચીવત્તાવિશિષ્ટસ્થિત સવિતે । તદન્યારે-
વિન્તાત્માનાત્ । અનેકાવજયપતાકા. ઘ. ૬૧.

આ સાથે બર્હોન કેહના નીચના વિચારો સરસાથા જેવા છે —

Nor, again, can you reach this unity merely by predication or affirmation, by asserting, that is, of each part or member that it is and what it is. On the contrary, in order to apprehend it, with your thought of what it is you must in seperably connect that also of what it is not. You cannot determine the particular number or organ save by reference to that which is its limit or negation. It does not exist in and by itself, but in and through what is other than itself.... It can exist only as it denies or gives up any seperate self-identical being and life—only as it finds its life in the larger life and being of the whole. You cannot apprehend its true nature under the category of ‘Being alone, for at every moment of its exist-

ઉપર જે અવતરણો આપ્યાં છે તે ઉપરથી ઊનાચાર્યો-નો વસ્તુસ્વરૂપવિષયક સ્થાલ સ્પષ્ટ થાય છે. પ્લેટોના શબ્દોમા તે નીચે પ્રમાણે મૂકી શકાય “ત્યારે અમાય ગતિ અને અન્ય પદાર્થ વર્ગમાં છે; કારણ કે સ્વત્વ તે સર્વ-માં વ્યાપી પ્રત્યેકને અસ્તિત્વથી અન્ય કરે છે. દટલે કે ‘અસત્’ કરે છે. અને તેથી આ રીતે આશને તે થયા વિષે અસ્તિત્વકાથી કહી શકીએ કે તે થયા ‘અસત્’ છે અને થલી લેબાં અસ્તિત્વ યાઢ્યા છે માટે દમ કહી શકાય કે તે સત્ છે.”

આ પ્રમાણે વસ્તુના સદસદાત્મક સ્વમાનની સમજળથી સતમજ્ઞાન એક તત્ત્વ સુગમ થાય છે. તેમાં થીજું જે તત્ત્વ રહેલું છે જે અનેકાન્તતાનું છે. મ્હારા સમજવા પ્રમાણે આ તત્ત્વ જૈન તત્ત્વજ્ઞાનના ઇતિહાસમાં ‘સદસત્’ ના કરતા વધારે પ્રાચીન હશે અને જૈન માર્ગનું તેના ઉત્પત્તિના સમયમા વિશિષ્ટ લક્ષણ હશે. વિક્રમ પૂર્વેથી પાંચમી અને છઠ્ઠી શતાદિમા આર્યાવર્તમાં અનેક મતો અને સમ્પ્રદાયો ઉત્પન્ન થયા હતા; તે સમય આ અનેક અને કેટલીક વાર વિરુદ્ધ તત્ત્વોને પ્રત્યેકની દૃષ્ટિએ

once it at once is and is not; it is in giving up or losing itself; its true being is in ceasing to be. Its notion includes negation as well as affirmation.” An Introduction to the Philosophy of Religion. P. 219.

૧૦. Then not-being necessarily exists in the case of motion and of every class; for the nature of the other entering into them all, makes each of them other than being and so non-existent; and therefore, of, all of them, in like manner, we may truly say that they are not; and again in as much as they partake of being, that they are and are existent પા. ૧૧૧. Dialogues of Plato. Vol. IV.

જોઈ તેનો સમન્વય જૈન દર્શન અનેકાત્તા દ્વારા કર્યો હોય એમ માનવાને વાધો લગતો નથી.†

આ તત્ત્વ સમજવું વહુજ સહેલું છે, અને જૈન તત્ત્વજ્ઞાન તે વડે વ્યાપ્ત થયેલું છે. પ્રમિતિની દૃષ્ટીએ કરીએ તો એક વસ્તુવિષે અનેક ધર્મોનો આરોપ કરવો શક્ય છે, વસ્તુની દૃષ્ટીએ કહાણ તો વસ્તુ અનેક ગુણમય છે અને અનેક પર્યાયો ધારણ કરે છે. વસ્તુ સ્વમાવના આ તત્ત્વના સ્વીકારથી કોઈ પણ પ્રકારના સદકાન્તિક કે અસદકાન્તિક મતથી આ સિદ્ધાન્ત સ્પષ્ટ રીતે જુદો પડી જાય છે.

આપણે જોઈ ગયા કે જેનાચાર્યો વસ્તુનો સ્વમાવ સદસદાત્મક સિદ્ધ કરે છે. આ સિદ્ધાન્તમાથી સામાન્ય અને વિશેષનો સિદ્ધાન્ત સહેલાઈ થી નિપજાવી શકાય છે. કારણ કે વસ્તુના સામાન્ય ગુણો ‘સન્મૂલક’ અને વિશેષ ગુણો ‘અસન્મૂલક’ છે. (અસત્ શબ્દનો અર્થ ઉપર જણાવ્યા પ્રમાણે લેવાનો) શાથી જ, વસ્તુ અમુક વિશિષ્ટ વસ્તુ બીજી વસ્તુઓ નથી તેના વડે છે. એટલે કે વિશિષ્ટતાનો આધાર ‘અસત્’ ઉપર છે, અને તેથી જેનાચાર્યો કહે છે કે વસ્તુ સામાન્ય વિશેષ મય છે ‘સત્કાર્ય’ અને ‘અસત્કાર્ય’ નો સિદ્ધાન્ત પણ આમાથી જ નિકલી શકે છે. અમુક વસ્તુ અથવા કાર્ય પોતાના કારણમા ઊર્ધ્વ સામાન્ય પૂરતું તો છે જ, અને પોતાના વિશેષ વડે પોતાના કારણમા નથી. તેથી કારણમા કાર્ય સત્ અને અસત્ વચ્ચે છે આવા અનેક દ્વંદ્વો જેનાચાર્યો ઘડાવે છે અને ચંદ્રમમ સૂરિના શબ્દોમા કહીએ તો “વય ચલુ જનેન્દ્રા એક વસ્તુ સપ્રતિ-પક્ષાન્કધર્મરૂપાધિકરણ’ ઇત્યાદિમહે ।” અમે જૈનદ્વંદ્વો એક વસ્તુ પ્રતિપક્ષ યુક્ત અનેક ધર્મોનું અધિકરણ છ એમ માનીએ છીએ ”

†ધારમના સમયમાં એમ હાથ કેન હોય તો પણ સિદ્ધિલેન વિચારના ન્યાયાચતાર ઉપર ટીકા કરનાર સિદ્ધિ આ રીતે અને કાન્તવાદ ને સમજાવે છે છેલ્લક

૧૧ સરણો—‘અનેકાત્મક વસ્તુ ગાચર સર્વસંનિગમ્ ।’ ન્યાયાચતાર—વઢી ‘તદેવમનેકધર્મપરિતાપશાદિકા ઉદિ પ્રમાણમ્ । ન્યા ટીકા

ગ્રીક ફીલસુફ પ્લેટોની, વસ્તુની સદસદાત્મકતા વિષેની માન્યતા આપણે પહેલા જોઈ ગયા. અનેકાન્તતા વિષે પણ તેની આને મલતીજ માન્યતા છે અને તે આ પ્રમાણે છે—

“એલીયાનો મુસાફર—અનેક વસ્તુ વિષે આપણે શી રીતે અનેક ધર્મોનો આરોપ કરીએ છીએ, તે વાત આપણે વિચાર કરીએ

ચીપ્ટેટસ—ઉદાહરણ આપો.

મુસાફર—ઉદાહરણ તરીકે હું એમ કહેવા માગુ છું કે એક માણસ વિષે આપણે અનેક નામો વડે વ્યવહાર કરીએ છીએ—એટલે કે તેને વિષે રાગ, રૂપ, પાર્મિણ, ગુણ અને દોષાદિનો આરોપ કરીએ છીએ આમા અને બીજા સેકન્ડો ઉદાહરણોમાં આપણે તેને માણસ કહીએ છીએ એટલુંજ નહીં પણ તેને ‘તે મલો છે’ અને એવા અનેક ગુણવાલો છે એમ કહીએ છીએ. અને એ જ રીતે હર કોઈ વસ્તુ જેને આપણે શરૂઆતમા એક ધારતા હોઈએ છીએ તેને આપણે અનેક કહીએ છીએ અને અનેક નામો વડે તેનો વ્યવહાર કરીએ છીએ

ચીપ્ટેટસ—વાતબર છે.”

૧૨ જુઓ.—Dialogues of Plato—Vol 17. પા. ૧૮૨ (આવૃત્તિ ત્રાજો)

St. Let us enquire, then, how we come to predicate many names of the same thing

Theart. Give an example.

Str. I mean that we speak of man, for example under many names—that we attribute to him colours and forms and magnitudes and virtues and vices, in all of which instances and in ten thousand others we not only speak of him as a man, but also as good, and having numberless other attributes, and in the same way anything else which we originally supposed to be one is called

કયાનો માટે કાચદો એ છે કે માનસ કદાચહી ન થઈ શકે.

સપ્તમંગીનું વધારે વ્યક્તકરણ કર્યો પહેલાં શંકરાચાર્ય તેનું જે સંહન કર્યું છે તેનો ટુકામાં ઉલ્લેખ કરી જાઉં. સાંધી પ્રથમ તો જણાવવાનું એ છે કે તેમણે પૂર્વ પક્ષ-કે કથન પૂરેપૂરું કર્યું નથી. સપ્તમંગીનું સ્યાદસ્તિ સ્યાન્નાસ્તિ-આદિથી વર્ણન કરતી વસ્તુ તેમણે 'સ્વરૂપેણ' અને 'પરરૂપેણ' એ અગત્યના શબ્દો છોડી દીધા છે. જો એ ધ્યાનમાં હોય તો તે છોડવામાં વાંધો નથી. પણ શંકરાચાર્ય એ વાત ઉપર લક્ષ્ય જ નથી આપ્યું. અને એમનું આશું સંહન આ મૂલ ઉપર રચાયેલું છે. એમનો પહેલો વાંધો એ છે કે "એક ધર્મમાં એક સાથે અસંસ્વાદિ વિરુદ્ધ ધર્મનો સમાવેશ સંભવે નહિ. શીતો-ષ્ણની માફક."

જો શંકરાચાર્યે સ્વરૂપેણ અને પરરૂપેણ એ શબ્દો ધ્યાનમાં લીધા હોત અને સત્ અને અસત્ શબ્દને પૂર્વ પક્ષના અર્થમાં સમજવા પ્રયાસ કર્યો હોત તો તેમને સમજાત કે 'સત્' અને 'અસત્' એટલા વચા વિરોધી નથી. વીજો વાંધો એ છે કે જેનું સ્વરૂપ અનિર્ધારિત છે તે જ્ઞાન સંશયની માફક પ્રમાણ ન થાય. આ અને વીજો વાંધો અનેકાન્તતાને અનિર્ધારણાત્મક ગણવાની અને સંશયમૂલક ગણવાની મૂલને પરિણામે છે. તેનો રાધિયો અકલહૃદવદના ઉપર આપેલા વાર્તિકમાં આવી જાય છે. શ્રીજો વાંધો ઉપર જણાવ્યું તે પ્રમાણે અનેકાન્તતાને જે અનિર્ધારણાત્મક ગણવામાં આવે છે તે છે. ચોથો એ છે કે જ્યારે વસ્તુને વક્તવ્ય કહો છો ત્યારે વક્ત્રી શી રીતે તે અવક્તવ્ય કહેવાય. આ કેવલ શબ્દસંલ છે.

શંકરાચાર્યના મત અને જૈનમત વચ્ચે વિરોધ બન્નેના વસ્તુસ્વમાવના ચ્યાલમાં છે. શંકરાચાર્ય જગતને એક માત્ર બ્રહ્મમય માનનાર છે જ્યારે જૈન અનેકાન્ત તત્ત્વનું પ્રતિપાદન કરે છે. તેથી શંકરાચાર્યે જો આ દૃષ્ટિએ સંહન

કરવા પ્રયાસ કર્યો હોત તો તે વધારે યોગ્ય. કહેવાત. તેમણે કરેલું સંહન તો મૂલ અને ઋમણા ઉપર રચાયેલું છે.

હવે સપ્તમંગીનો પ્રમાણ પદ્ધતિની દૃષ્ટિએ વિચાર કરીએ અને આ વિચારો આ વિશિષ્ટ રૂપમાં કયા પ્રયોજનથી, મુકાયા તે પણ જોઈએ.

પ્રથમ પ્રશ્ન એ છે કે પ્રમાણ પદ્ધતિની દૃષ્ટિએ સાતે મંગો આવશ્યક છે ? એટલે કે વસ્તુસ્વભાવ નક્કી કરવા માટે સાતેની આવશ્યકતા છે ? આ વાત તો સ્પષ્ટ છે કે એક વિધાન એક વસ્તુએ એક જ નિર્દેશ કરી શકે. વિધ્યાત્મક કે પ્રતિષેધાત્મક. સ્વધા વિધ્યાત્મક વાક્યોનો એક વર્ગ અને નિષેધાત્મકનો એક વર્ગ કરી આપે વિધ્યાત્મક વર્ગને વિધિ-વિધાન કહીએ અને નિષેધાત્મક વર્ગને નિષેધ-વિધાન કહીએ. હવે પ્રશ્ન એ છે કે વસ્તુ સમજવા માટે આવા કેટલા વિધાનોની જરૂર છે. સ્વામાધિક રીતે પ્રથમ વસ્તુ પોતે શું છે તેનો નિર્ણય કરીએ. એ દૃષ્ટિએ 'સ્યાદસ્તિ' વાક્ય ચતુર છે. પછી વસ્તુ શું નથી તે નક્કી કરીએ અને તે દૃષ્ટિએ 'સ્યાન્નાસ્તિ' મજૂ ચતુર છે. આ વસ્ત્રમાંથી નીપજતું વસ્તુસ્વરૂપ 'સ્યાદસ્તિ નાસ્તિ' તે દિવાક્યાત્મક મંગથી દર્શાવી સજાવ. આ રીતે પ્રથમ ત્રણ મંગોની જરૂર તો 'સ્યાદસ્તિ સ્વરૂપેણ ઘટઃ', 'સ્યાન્નાસ્તિ પરરૂપેણ ઘટઃ' અને 'સ્યાદસ્તિ નાસ્તિ ક્રમેણ'થી સમજી શકાય. ચોથો મજૂ 'સ્યાદવક્ત્રવ' છે. આ ભાષા તત્ત્વની દૃષ્ટિએ સમજી શકાય તેમ છે. એક વસ્તુ એક જ વાક્યમાં વિધિ અને પ્રતિષેધ થઈ શકે નહિ. તેથી તે અપેક્ષા સમયે વસ્તુ અવક્તવ્ય કહેવાય.

પણ સપ્તમંગીના નિરૂપણનું ચીનું પણ એક દૃષ્ટિવિન્દુ છે અને તે એ છે કે સપ્તમંગી અમુક પ્રકારની વાદ પદ્ધતિમાંથી ઉત્પન્ન થયેલી છે અને આથી સપ્તમંગીનું પ્રયોજન વિશેષ સમજાય છે. આ સાતે મંગો સાત પ્રકારના પ્રશ્નોના

૧૫ ન શેકતિમ્ન ધાર્મિણિ યુગપ્તસ્ત્વત્સાધિવિરુદ્ધધર્મસમાવેશઃ સંમતિક્તિશીતોષ્ણવદ્. શાંકરમાખ્ય, ૨-૨-૨૨, ૨૩.

૧૬ અનિર્ધારિતરૂપ જ્ઞાન સંશયજ્ઞાનવદ્ પ્રમાણમેવ ન સ્યાત્.

૧૭ અતસ્તદ્ભયાત્મકોડ્ધો ક્રમેણ તત્ત્વવદનાચ્ચતામવક્ત્રવદ્ સ્યાત્. ઘટશાપટચેત્સ્યતે. અદિ તદુપવાત્મક વસ્તુ ઘટ હરે-વાચ્યતે, ક્તરાત્માત્વવદત્તત્ત્વમેવ સ્યાત્. અથાપટ એન હલ્લુચ્યત ઘટત્વાત્પ્રાપ્તિનાદત્તત્ત્વમેવ સ્યાત્ વસ્તુ તાવદેવતિ. ન ચાન્ત્ય શત્ત્વ-સ્તદ્ભયાત્મકાવસ્તત્ત્વાભિપ્રાયી નિશ્ચેડોડ્ધો ઘટો વચન-ગોચરાતીતિત્વાદ્ 'સ્યાવક્ત્રવ' હતુચ્યતે. રાજવાતિક પૃ-૬.

ઉત્તર રૂપે છે. આ વાત અકલકદેવે આપેલા તેના લક્ષણ-થી સ્પષ્ટ થાય છે. “પ્રશ્નને લઈને એ વસ્તુમાં અવિરોધ થી વિધિ પ્રતિષેધની કલ્પના તે સત્તમંગી” (અવિરોધ-થી પદલે દૃષ્ટ અને દૃષ્ટ પ્રમાણ અવિરુદ્ધ). જે માણસે સત્તમંગીની પ્રથમ રચના કરી હશે તેનો ઉદ્દેશ એ શોધી કઢાવવાનો હશે કે પુનઃક્રિયા કર્યા વિના માણસ અમુક વસ્તુ સ્વમાત્ર વિધે કેટલા પ્રશ્નો પૂછી શકે. (અથવા તો આપણે એમ માનીએ કે સત્તમંગીનો વિકાસ ધીમે ધીમે થયો તો જે માણસે છેલ્લા ત્રણ વાક્યો ઝંઝારી હશે તેનો ઉદ્દેશ તો આવો જ કોઈ હોવો જોઈએ.) દાખલા તરીકે કોઈ એમ પૂછે કે ‘ સ્યાદવક્તવ્ય ’ ને આઠમા મગ તરીકે કેમ સ્વીકાર્યો નથી ? તો એનો એવો જવાબ અપાય કે જ્યારે વસ્તુ પ્રિય સ્યાદસ્તિ નાસ્તિ કહેવામા આવે છે ત્યારે તે વક્તવ્ય થાય છે. તેથી તેને આઠમા મગ તરીકે સ્વીકારવાની જરૂર નથી. આ રીતે એક વાતથી સત્તમંગી સત્ અને અસત્ વિષે ઉત્પન્ન થતા સર્વ પ્રશ્નોનો સ્તર આપી શકે છે અને વીજી વાણેજ કેવલ સત્ અસત્ માનનારું સંબંધ કરે છે. છતાં એમને એમ લાગે છે કે પ્રમાણ પદ્ધતિની દૃષ્ટિએ તો પ્રથમ ત્રણ જ મંગ આવશ્યક છે; ચોથાને માપા-દૃષ્ટિએ સ્થાન છે પણ છેલ્લા ત્રણનો તત્ત્વજ્ઞાનની દૃષ્ટિએ સ્થાન ઉપયોગ જણાતો નથી.”

હવે જૈન પ્રમાણ શાસ્ત્રમાં સત્તમંગીનું સ્થાન ક્યાં છે તે આપણે જાણવું જોઈએ. શ્રીવાદિદેવસૂત્ર પ્રમાણના બે

૧૮ ‘ સત્ત્વિય એવ તત્ત્વ પ્રશ્નઃ કુત્ત્વ ઇતિ ચેત્, સત્ત્વિયજિજ્ઞાસા-પટનાત્ । તાપિ સમથા કુત્ત્વ ઇતિ ચેત્, સમથા અશયોત્પત્તેઃ । સમ-ધિયક્ષણયઃ કલ્પમિતિ ચેત્, તદ્વિધવવસ્તુધર્મસત્ત્વિયત્વાત્ ।
અટસહસી, પૃ. ૧૨

માગ કરે છે પ્રત્યક્ષ અને પરોક્ષ. પરોક્ષના પાંચ વિમાગ કરે છે—સ્મરણ, પ્રત્યભિજ્ઞા, તર્ક, અનુમાન અને આગમ. આગમનું ચીજું નામ શબ્દ પ્રમાણ છે. આત્ર વચનમાંથી નિપજતું જ્ઞાન શબ્દ પ્રમાણ. તે વચન, વર્ણ, પદ અને વાક્યોનું ધનેનું હોય છે. શબ્દ સ્વજ્ઞાતિથી અને સમયથી જ્ઞાન પેદા કરે છે. આ પછી વચનનો સત્તમંગી સાથે સંબંધ દર્શાવે છે. “ દરેક જગ્યાએ આ શબ્દ વિધિપ્રતિષેધ વધે પોતાના અર્થને જણાવતો સત્તમંગી ને અનુસરે છે.” આ રીતે આપણે જોઈ શકીએ છીએ કે સત્તમંગીનો આગમ અથવા શબ્દપ્રમાણના સમાવેશ થાય છે.

આ નિવંધમાં જનુ વિવેચન કર્યું છે તેને પ્રમાણ સત્તમંગી કહે છે. આને મલતી જ વીજી એક સત્તમંગી છે તે નય સત્તમંગી કહેવાય છે. પ્રમાણ અને નયમાં એ તફાવત છે કે પ્રમાણ વસ્તુના સકલ સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે, જ્યારે નય વસ્તુના અશ માત્રનું કરે છે.” પણ એની વિશેષ વર્ણના આ નિવંધમાં થઈ શકે એમ નથી તેને માટે વીજી નિવંધ લક્ષ્યાની જરૂર રહે છે, હિયલમ્.

॥ ૩૦ શાંતિઃ ॥

૧૯ તત્ (પ્રમાણ) દ્વિવેદ પ્રત્યક્ષ પરોક્ષ ચ । સ્મરણ-પ્રત્યભિજ્ઞા તર્ક-અનુમાન-ગમ્યપદ્ધતિત્વે પ્રકારકમ્ ।

૨૦ આત્રવચનાદાવિર્ભૂતમર્થસંવેદનમાગમઃ । વર્ણપદનાકપાત્રકં વચ નમ્ । સ્વાભાવિકસામર્થ્યસંમયાન્યામર્થવૌધન શબ્દઃ । સર્વત્રાર્ય ધર્માધિધિપ્રતિષેધાત્મા સ્વાધર્મભિધ્વાનઃ સત્તમંગીમતુગચ્છતિ, જનુ ચોદાહતા નયસત્તમંગી, પ્રમાણસત્તમંગીતસ્તુ તસ્યાઃ કિંજ્ઞતો વિશેષ ઇતિ ચેત્ સકલવિકલદેશઃ સ્તુ ઇતિ સૂત્રમ્ । પિરુલદેશ-સ્વમાથા દિ નયસત્તમંગી વસ્ત્વંશમાનપ્રરૂપકત્વાત્ । સકલદેશ-સ્વમાથા ॥ પ્રમાણ-સત્તમંગી યથાવદ્વસ્તુ પ્રસ્તરકત્વાત્ ।

મેયકમલમાર્ગદ, પૃ. ૧૦૬.

वे नवा क्षेत्रादेश पट्टक

१

गया अंकमा जे क्षेत्रादेश पट्टकोनी नकलो आपी छे तेमां सौथी जूनो पट्टक वि. स. १७७४ नी सा-
लनो छे, परतु पाछुअथो एक तेनार्थो पण १०० वर्षे
जेठलो वयार जुनो पट्टक मळी आव्यो छे जे अहि
आपवामां आवे छे, ए पट्टक तपागच्छना सुप्रसिद्ध आ-
चार्य विजयसेन सूरि तरफथी सवत् १६६७ नी सालमा
लखाएलो छे, आ पट्टक फक्त मेवातदेश माटेनो छे, आ-
गरा अने तेनी आसपासना प्रदेशने ते वखते मेवात
देशना नामथी ओळखवामां आवतो हतो, संवत् १६६७
नी सालमा जे यतियो ए प्रदेशमां रहेता-विचरता हता
तेमना चाहुमांस स्थलो जाहेर करवा माटे आ पट्टक ल-
खायो हतो, गुजरात के राजपूताना आदि बीजा देशो
माटे नथी, तेथी आमां फक्त १७ यतियोनां नामोज,
आपवामा आव्यो छे, नही तो विजयसेन सूरिनो यति
समुदाय तो लभमग वे हजार जेठलो संख्या बाळो हतो,
आनी लग्वाई ५ इंच अने पहीछाई ३१ इंच छे, पंक्ति
कुल २० छे,

पट्टकनी नकल

ई०॥ श्रीहीरविजय - सूरिश्चर गुरुम्यो नमः । सवत्
१६६७ वर्षे श्रीविजयसेनसूरिभिर्ग्येष्ठस्थित्यादेशपट्टो लि-
ख्यते ॥ मेवात देशे ॥

उपाध्याय श्री विवेक हर्ष ग० आगर १ पार २

उपाध्याय श्री भातुचंद्र ग० आगरामध्य

पं. जयविजय ग. पं. निजयहंस सत्क सागानेर १

पं. हर्षविजयगणि नरायणुं १

प. भीर्माविजय ग. प. यस्तविजय गणि सत्क मा-
लपुर १

पं. महानंद गणि अलवर १

प. भक्तचंद्र गणि रयवाडी तथा दिही १

प. जयविजय ग. उ. श्री कल्याणविजय ग. सत्क
शमाणु १

प. कमलविजय गणि हसार १ महिम २

प. पद्मकुशल गणि अभिरामाबाद १

प. रत्नविमल गणि माडलि १

प. हर्षविमल गणि जणिआर १

प. लामकुशल परंतसर १

प. मुनि सौभाग्य ग. सेरपुर १

प. शिवविजय ग. दुंक १

प. कनकसागर मसुद १

प. रविसागर ग. डोडा १

प. भोजविमल सिरवाडी १

२

हालमां, पं. श्रीगुलाबविजयजाना शास्त्र-
संग्रहमांथी एक बीजो पट्टक मळी आव्यो छे
जे आ नीचे आपवामां आवे छे, आ पट्टक सं.
१८४५ नी सालनो छे, ते वखते आचार्यपद
उपर विजयजिनेन्द्र सूरि हता.

॥ श्री ॥

॥ ३५० ॥ श्रीविजयधर्म सूरिश्चर गुरुम्यो नमः

सं. १८४५ वर्षे म। श्रीविजयजिनेन्द्रसूरिश्चर गुर्जर
देशे ज्येष्ठस्थित्या देश पट्टको लिख्यते ॥

प. सौभाग्यविजय ग। श्रीजीसपरिकरा मूरति १ नर-
सारी २ वजरावी ३ चोराकठोर ४

उ. श्रीबुधालविजय ग। वृद्धश्रीजी स। पं. कल्याणचंद्र

पं. खाल स। निरमगाम १ भोजया २ गोरीआ ३

ठा ४ अरम पार्थे ।

पं. हितविजय ग। प. हंसविजय ग। पं. मुजाण स।

संभात १ चारापरो २ वजोदरा ३

- प. न्यानिजय । प. नेम स । पाटण १ पुणगर २
 प. जयविजय ग । प. दीप स । राजनगर १ शरधज ॥
 रायपर ३ प्रासाये ४ नयोवास ५
 प. भक्तिवि । प. वाति स । प. कुष्णि । प. राज स ।
 प फत्तेवि । प. कुसल स । राधनपुर १ कमालपुर २
 माला ३ सोनेभ ४ भधाणा ५
 प. कन्याणवि । प. प्रसिद्ध स । प. जीन वि । प. पक्ष
 स । बाणसमो १ कबोई सोलकीनी २
 प. मोहनवि । प. नय स । प. पुन्यवि । प. भक्ति स ।
 बीसनगर १ कडा २ जासका ३ मोटुया ४
 प. उत्तमविजय । प. सुमति स । रानेर ठा ४ अस्मत्
 पार्थे
 प. मुक्तिवि । वृद्धश्रीजी स । प. हुगरवि । प. मुनि स
 पादर १
 प. रत्नकुशल । प. निमित्त ॥ प. न्यान प. रत्न स ।
 वाराही १ धोलभू २ कोरडा ३ झसाम ४
 पं. मन्त्रपसागर । प. अनंत स । मालवदेश
 प. कनकविजय । प. शुभ स । प. राजेन्द्र । प. कनक स ।
 मियागाम १
 प. अमृतविजय ग । प. विवेक स । मद्यभ १ देज-
 बाह २
 प. पुशालविजय । प. जिन स । सोरठदेशे
 प. पुश लविजय प. नृद्धि ॥ । प्रागवह १ सायला २
 पालीयाद ३ मडडा ४
 प. राजनर्धन । प. सकल स । प. निवकवर्धन । प. मेघ
 स । वटवाण १ पाणसाणा २
 प. सुवृद्धिविजय प. रुप स । रेवदपुर १
 प. विनीतविजय । प. नेम स । पाटडी १
 प. हीराचद्र । प. शुलाभ ॥ । प. धीर्यचद्र । प. हीर स ।
 इंदर १ पेराध २ सीपर ३ भतिज ४
 प. पद्मविजय । प. उत्तम स । राधनपुर मध्य
 प. हस्तिविजय ग । प. कुशल ॥ । विजापुर
 प. अमीविजय ग । प. सुख स । थिराद १ नोटवावली २
 प. हस्तिविजय ग । प. गज स । मालण १
 प. लालविजय ग । प. रत्न स । लीवडी १ अनेवाली २
 प. माणिक्यविजय प. मोहन स । झाल १
 प. गुलालविजय ग । प. राम स । सावली १
 प. लद्मीविजय ग । प. राम स । जामला १
 प. हेमविजय ग । प. वपूर ॥ । पचासर १
 प. दुश्मलविजय । प. राज स । गडावली १ आकर २
 प. जिनविजय ग । प. जय स । दमण १ उडपाह २
 अगसा ३
 प. शानिविजय ग । प. रग स । मारड १ मोठडा १
 प. माण्यविजय ग । प. श्रीजी स । वेड १
 प. उमेदविजय ग । प. वृद्धि ॥ । आगलेड १
 प. पद्मविजय ग । प. उमेद स । मैसाणा १ सामे
 तरा २
 प. लालविजय ग । प. माणिक्य स । चीलोडा १ बद-
 रगु २
 प. हर्षविजय ग । प. मोहन ॥ । गहनगर १ उमता २
 प. हस्तिविजय ग । प. रग स । राणकपुर १
 प. शानविजय ग । प. लक्ष्मी स । साचोर १
 प. हस्तिविजय ग । प. चतुर स । मातर १ वटा-
 दर २
 प. सुवृद्धिविजय ग । प. जीव स । शमी १ दूधपा २ अ-
 णवरपुर ३ राकु ४
 प. वृद्धिविजय ग । प. देव ॥ । प. तेमविजय । प. रग स ।
 कबोई कालीनी १ आगणवाह २
 प. पुशालविजय ग । प. कपूर स । केसरडी १
 प. कस्तूरविजय ग । प. मान स । इटोह
 प. वृद्धिविजय प. सुजाण स । प. दपविजय प. पुध्याल स
 डमोह १ कारवण २
 प. रत्नविजय । प. न्यान स । लाधणेज १
 प. माणिक्यविजय । प. मोहन स । पाटण मध्य
 प. वृद्धिविजय ग । प. मोहन स । वारि १ माडकु २
 प. विवेकविजय । प. नृद्धि स । रानेर १ उवरी २
 प. रविजय । प. केसर स । साभेर १ तेरसाहु २
 प. मोहनविजय । प. रत्न स । वसु १ मेता २

- पं. गौतमविजय प. घन ॥ दसाडो १ कलाडो २
 पं. अमृतविजय प. प्रताप स । गणाद्रहिः
 पं. प्रतापचंद्र । पं. दान स । पं. मावचंद्र । पं. दोलत स ।
 कुकुआव १
 पं. जयविजय । पं. कांति स । कटोसण १ डांगरवुं २
 पं. गुलाबविजय पं. कुवर स । झीणोट १
 पं. दयाचंद्र पं. हर्ष स । लेह ब्रह्मानी १
 पं. नायक विजय पं. विनय स । दक्षण देशे
 पं. माणिक्यविजय पं. विनित स । कुंवर १ मुंजपर २
 पं. चंद्रविजय पं. उत्तमविजय स । राजनगरमध्यं.
 पं. हर्षविजय पं. जस स । धोलका १ मोरीयो २
 पं. म्हादि सागर पं. विमैत्र स । छठियाडा ।
 प. ज्योतिविजय प. रत्न स । व्यारा १ बुहार २
 पं. हीरविजय पं. भाण स । चद्र १ लोलाक २
 पं. कातिविजय पं. नायक स । पेटलाद १ वसोर २
 वासज ३
 पं. मेमविजय प भाण स । देवाडमू १
 पं. अमृतवि । पं. चद्र स । प. तेजवि । पं. भाण स ।
 छनायार १ देकावाह २
 पं. माणिक्यविजय पं. सुबुद्धि स । कोठ १
 पं. जीवणविजय प. लाल स । गाम १ सरदारपुर २
 पं. प्रेमवि । पं. दर्शन स । पं. रुपवि । पं. प्रेम स ।
 बागड देश
 प. कातिविजय पं. दर्शन स. । वसतापुर १ व-
 लासण २
 पं. भीमविजय पं. पुष्पाल स । लीच १ पीपलदलकर-
 वटीउं २
 पं. देवविजय प. दीप स । कडी १
 पं. विनयचंद्र पं. भक्ति स । वडगाम १ घोतासकलाणा २
 प. हेमविजय पं. भीम स । काकर १
 पं. कूरुरि. । पं. देवविजय १ पं. अमी ॥ पालनपुर १
 वगदा २ मयादर १ दस्तावसही ४
 पं. नायकविजय पं. गुलाल स । घावड १
 प. वसतविजय पं. माव स । डभोई १
 प. नित्यविजय पं. भाण स । गोधावी १
 पं. रत्नविजय पं. प्रेम स । नडियाद १
 पं. गोविंदविजय पं. हेम स । लेणप १ मोरवाह २
 प. मेघविजय । पं. माणिक्य स । गोत्रकुं १
 पं. जीवणचंद्र ग । प. उदय स । थिरा १ वडा २ झा-
 लिम ३
 पं. उत्तमचंद्र । पं. उदय स । खंणपूर १ छत्राला २
 पं. दोलसिधि । प. लक्ष्मीविजय पं. महिमा स । मुंढेठ
 १ नेवडा २
 पं. राजविजय प. सुंदर स । टपर १ वलण २
 पं. पृथ्यालविजय पं. प्रेम स । वडाली १
 पं. जसविजय ग प. प्रताप स । शलेश्वर १
 पं. सोमाग्रविजय पं. विमा स । मुजपर १ रवियाणुं २
 पं. गुणविजय पं. पृथ्याल स । प. रविजय पं. दोलत
 स । समु १ बाव २
 पं. भाणविजय पं. केशर स । बजाणुं १
 पं. वृद्धिविजय प. कानि स । पीछु १ मगरवाह २
 प. जसविजय पं. कनक स । सोजतरा १
 पं. नायकविजय पं. इद्र स । मणोद १ सेंडेर २
 पं. रविजय प. कनक स । नानोदर १
 पं. हंसविजय पं. जीवण स. । अहमदनगर १
 प. पुन्यसोम पं. केशर स । सोवनगढ १
 पं. पानाचद प. उदय स । शेरडा १ वरापाल २ क्षि-
 णाल ३
 पं. माणिक्यविजय प. दीप ॥ धेणोज १
 पं. इद्रविजय ग पं. अमृत स । गणाद्रही
 प. जिनविजय ग । पं. दर्शन स । हरसोर १ वगोल २
 पं. वृद्धिविजय ग । पं. विनय स । मागद १ फेदरा २
 पं. कृष्णविजय ग पं. पृथ्याल स । सीद्धूर १ लालपर २
 कलाणा ३
 पं. विनयविजय प. रावत स । घापा १ धनेरा २
 प. उग्रचंद्रगणी । प. मोहन स । डीसा १ राजपूर २
 वडाल ३
 पं. जीवनविजय पं. जीत स । आदोली १

प भवान्विजय प नायक स । कसरा १	प रत्नविजय ग । अद्द दव स । सापरा १
प रूपान्वजय प गौतम स । जामपुर १ वासावावल	प गुणविजय प प्रम स । घेमाण १
बाढाया	प धीमारुचि प गणश स । वणाद १
प भवान्विमल प ऋद्धि स । कुयारज १	प दविद्रविजय प हर्ष स । गाला १
प चसतविजय प दव स । चागा १	प भाग्यविजय प कुसल स । साढना १
प मान्विजय प रत्न स । गात्रा १	प माणिक्यविजय प राम स । अस्मत्पाथ
प हर्षविजय प धूयान्ठ स । नदासण १	प रामविजय प तज स । साहाणी १
प न्यामविजय प कपुर स । भलगाम १	प ज्ञानसागर प उदय स । मालक १
प भाग्यविजय प जस स । माडल १	प दयासाम प जान ह । सोमा सादडा १
प माहन साभाग्य प भाग्य स । पाङ्ग १	प रविजय प विनीत स । गणद्वही १
प मणिकविजय प मान स । रणाद १	



વૃહટ્ઠિપ્પનિકા નામક પ્રાચીન જૈન ગ્રંથ સૂચિ

ત્રીજા અંકમાં પરિશિષ્ટ રૂપે એ સૂચિ પ્રકટ કરવામાં આવી છે. એ સૂચિ કોણે અને ક્યારે બનાવી છે તેનો કોઈ પતો લાગ્યો નથી. પરંતુ એમાં આવેલા ગ્રંથોના નામો ઉપરથી ઇટલું અનુમાન કરી શકાય છે કે વિક્રમના પદરમાં સૈકાના મધ્ય ભાગમાં કોઈ વિદ્વાને આ સૂચિ તૈયાર કરી છે. કારણ કે સાલવારના જે ગ્રંથનામો આમાં આવેલાં છે તેમાં સૌથી છેવટનું નામ, સવર્ ૧૪૪૩ માં રચાણલા કુલમંદાસુરિના 'પ્રવચનપાક્ષિકાદિ આલાપક સગ્રહ'નું છે (ન. ૧૬૪). તેના પછીની સાલનો રચાણલો કોઈ ગ્રંથ એ સૂચિમાં દાખલ થયેલો જણાતો નથી. તેની પહેલા, સં. ૧૪૩૬ માં રચાણલા ઉપદેશ ચિંતામણિ, (નં. ૨૨૩) સ. ૧૪૨૯ માં રચાણલી પ્રશ્નોત્તર રત્ન-માલાવૃત્તિ (નં. ૨૨૨), ૧૪૨૬ માં બનેલી મક્કા-મસ્તવદીકા (ન. ૧૩૨); इत्यादि ગ્રંથોની નોંધ થયેલી એમાં અવશ્ય જોવાય છે. પરંતુ તે પછીનું એકે નામ જોવાતું નથી. લગભગ પંદરમા સૈકાના ત્રીજા જ પાદમાં થયેલા સોમસુંદર, મુનિસુંદર, મુણરત્ન, જ્ઞાનસાગર આદિ પ્રસિદ્ધ ગ્રંથકારોના ગ્રંથોની નોંધ એમાં બિલકુલ લેવાઈ નથી. તેથી હું એ સૂચિની તૈયાર થવાની તારીખ વિ. સં. ૧૪૪૦ થી ૬૦ ની વચ્ચે મૂકું છું. ઇટલે આજ થી લગભગ સદાપાચતો વર્ષ પહેલાં એ સૂચિ થયેલી છે.

સૂચિ કરનાર કોઈ સમર્થ વિદ્વાન અને ઉત્કૃષ્ટ સાહિત્ય પ્રિય યાત્રિજન જ હોવો જોઈએ. તેણે એ સૂચિ ઘણીજ શારીરીક થી પૂરેપૂરી જાંઘ સાથે કરેલી છે. ગ્રંથોને વિષયવાર તારવી કાઢ્યા છે અને દરેક ગ્રંથને તપાસી તપાસીને નોંધ્યા છે. સૂચિમાં ગ્રંથ, તેના કર્તા, તેની રચાયત્રી સાલ અને તેની એકંદર શ્લોકસંખ્યા; એમ ચાર વાવતો લીધી છે અને દરેક ગ્રંથના સર્વથમા શોધ કરી કરી છેવટે આ ૪ વાવતોમાંથી જેટલી મઝી તેટલી નોંધી છે.

સૂચિકર્તાએ મુખ્ય કરીને પાટણ (અનહિલપુર પત્તન), સંમત (સંમતીર્થ), મરુચ (મૃગુર) અને પ્રમાસ

પાટણ (દેવપત્તન) ના મુખ્ય પુસ્તક મંદારો જોડેને આ સૂચિ બનાવી છે. મારવાડના મુપસિદ્ધ જૈસલમેરના જ્ઞાન-મંદારનુ આમા નામ નથી તેથી તે જોવાયો હોય તેમ જણાતું નથી. એ ઉપરથી એમ પણ અનુમાન થઈ શકે છે કે સૂચિકર્તા કોઈ મુજપત્તનો અને લાસ કરીને તપામચ્છનો વિદ્વાન હોવો જોઈએ.

સૂચિકર્તા ની શોધકબુદ્ધિનો નમુનો આપણને ૧૫૫ નંબરવાલી નોંધ ઉપરથી સ્પષ્ટ જણાઈ આવે છે. એ નોંધમાં 'સમુ-જય મહાત્મ્ય' જેવા પ્રસિદ્ધ અને પ્રામાણિક કહેવાતા ગ્રંથને સ્પષ્ટરૂપે 'કલ્પિત' અને 'આધુનિક ઘનેશ્વરકૃત' વતાવ્યો છે! મૂલ ગ્રંથમાં તો ગ્રંથ કર્તાએ એ 'માહાત્મ્ય' ને ઘણું જ પ્રાચીન અને તેથી ઘણું જ પ્રામાણિક હોય તેવું વતાવવા માટે આકાશ-પાતાલ એક કર્યા છે. પરંતુ શોધક વિદ્વાનના હાથમાં જતાં તે વધી કર્ત્રિમતા એકદમ ઉપાડી પડી ગઈ અને હુરત જ તેના માટે તેણે 'કલ્પિતતા' નો ચોક્કો શેરો મારી દીધો. પ્રો. ધંવર અને ડૉ. બુલ્હરને જો આ શેરાની જ્વર પકી હોત તો એ મહાત્મ્યને કલ્પિત સિદ્ધ કરવા માટે જે મોટી મહેનત તેમને ઉઠાવવી પડી હતી તે જરાપ ન પડત અને માત્ર આ એક જ પ્રમાણથી તેમનો સિદ્ધાંત સત્ય સાચીત થઈ શકત. અસ્તુ.

આ સૂચિમાં જણાવેલા કેટલાક ગ્રંથોનો આજે ક્યાં એ પતો સંભળ્યો નથી. તો તે માટે વિદ્વાનોએ શોધ કરવાની લાસ આવશ્યકતા છે. દાખલા તરીકે 'સમ્મતિ-તર્ક' જેવા મુપસિદ્ધ અને જૈન સાહિત્યમૃગ ગ્રંથની આજે માત્ર એક બુદ્ધવૃત્તિ જ મળી આવે છે. પરંતુ એ સૂચિમાં તેની ત્રણ વૃત્તિઓ નોંધેલી છે. (જુઓ પ્રમાંક ૩૫૮) તેમાં પ્રથમ વૃત્તિ તો વહ જ મહત્વની છે, કારણ કે તેના કર્તા મહાવાદી જણાવ્યા છે. મહાવાદી સુરિય સમ્મતિ ઉપર કોઈક વિવરણ લખ્યું છે તેનો પ્રુણો તો આપણને હરિમદ્રસુરિના લેસમાથી પણ મળી આવે છે. પંતિહાસિક

દૃષ્ટિ મહાવાદીની એ ટીકાતું ઘણું જ મહત્ત્વ હોઈ શકે છે. કારણ કે તેના આધારે ન્યાય શાસ્ત્રના વિકાસ અને ઇતિહાસ સંબંધી અનેક પ્રશ્નોનો વિશિષ્ટ ઉદ્ધાપોદ કરી શકાય છે; અને તે ઉપરથી અનેક અજ્ઞાત વાસ્તવોનું શાપન અને સંદિગ્ધ વાતોનું નિરાકરણ કરી શકાય છે. તેથી સમ્મતિની એ ટીકાની શોધસોઝ કરવા માટે દરેક વિદ્વાનને આગ્રહપૂર્વક મહામણ કરવામાં આવે છે.

સમ્મતિની એક ગ્રીકી ટીકાની પણ ઇમાં નોંધ કરેલી છે. તેનો કર્તા કોણ છે તે ઇમાં જણાવ્યું નથી. ફક્ત 'અન્ય કર્તૃક' છે, એમ જણાયું છે. કદાચ એ ટીકા કોઈ દિગંબર વિદ્વાન કૃત હોય, જેના સવધમાં અમારા વિદ્વાન મિત્ર શ્રીયુત નાથુ રામજી પ્રેમીય જૈનહિતે-

પીના સન્ ૧૯૨૧ ના જાન્યુઆરી-ફેબ્રુઆરી માસના સંયુક્ત અંકમાં એક મહત્ત્વની ટિપ્પણી પ્રકાશિત કરી છે. તો શોધક જનોએ એ ટીકાની પણ ગંધેષણ કરવી આવશ્યક છે. આવી જ રીતે વીજા પણ અનેક ગ્રંથોનાં નામાં જોવામાં આવે છે કે જે એ સુચિમાં નોંધાયેલા છે પણ અત્યારે ઉપલબ્ધ થતા નથી.

આ સુચિ જે હસ્તલિખિત પ્રતો ઉપરથી મુદ્રિત કરવામાં આવી છે એમાંની એક પ્રત તો લગભગ ૩૦૦-૪૦૦ વર્ષ જેટલી જુની હતી અને એક નવી લક્ષાણલી હતી. બંને પ્રતો વચ્ચે ઘટના જૈન જ્ઞાનમંદિર વાઘા પ્ર. શ્રી કાતિખિજયજીના શાસ્ત્ર સંગ્રહમાંની હતી.

એક ઇતિહાસિક પત્ર



[નોટ:—આ નોટની નીચે આપેલો પત્ર મને એક જૂના મંદારમાં પહેલા ર્દી કાગળોના ઢગલામાંથી મળ્યો છે. કોઈ કોઈ વાર ર્દી કાગળોમાંથી બહુ મહત્ત્વની ચીજો મળી જાય છે કે જેને સાધારણ મનુષ્ય નકામી ગણીને કચરામાં ફેંકી દે છે. આ પત્ર વિક્રમ સંવત્ ૧૮૩૧ મા લખાયેલો છે. તે મેવાઢ રાજ્યના પ્રસિદ્ધ દેવસ્થાન 'નાથદુઆરા' થી તપાગચ્છના યતિ ઋષભવિજયજીએ પોતાના કોઈ વૃદ્ધ અને પૂજ્ય યતિના ઉપર લખેલો છે. તેમનું નામ પત્રની કિનારી ફાટી જવાથી જાણું રહ્યું છે. પત્રની માળા રાજપૂતાની—મુલ્થલ્લેકરી મેવાઢી છે. આ પત્રમાં એ સમયની રાજપૂતાનાની રાજકીય પરિસ્થિતીનો બહુ સારો અને મજેદાર ચિતાર આપેલો છે. એ જૂના વક્તમાં ઘ્યારે રંલેવે, ટપાલ, તેમજ સમાચારપત્ર વિગેરે સાવનો ન હોવાં ત્યારે લોકોને એક વીજા પ્રતમાં કિંવા રાજ્યમાં શી શી હીલપાલો ચર્ચે રહી છે એ બહુ જોડું જાણવામાં આવતું હતું. એ જમાનામાં સર્વસાધારણ લોકોના

કર્તા યતિ, સંન્યાસી, વનજારા અને ધાગીગર આદિ જે મનુષ્ય હમેશાં દેસાટળ અથવા પરિભ્રમણ કરતા રહેતા તેઓ જ રાષ્ટ્રીય તેમ જ સામાજિક પરિસ્થિતિથી વિશેષ વાકેફ રહેતા. એ વીજા આ કાગળ ઉપરથી સ્પષ્ટ થાય છે. રાજ્યકાન્તિના વક્તમાં લોકોને કેવા કેવા સંકટો મોગવશ પડે છે, એનો પણ ક્યાલ આ કાગળ ઉપરથી ચર્ચે શકે છે. સંસારનો સંસર્ગ તબીને યતિ—સંન્યાસી થયેલા મનુષ્યોને પણ દેશનો અસ્વસ્થતાને લીધે કેવું અસ્વસ્થ થઈ જવું પડે છે એ વાકે તરૂં પણ સ્પષ્ટ અને અત્યુમ્ત વર્ણન આ પત્રમાં છે. સંવત્ ૧૮૩૧ મા રાજપૂતાનાની—વિશેષતઃ મેઘાઢની—સામાજિક, આર્થિક અને રાજકીય પરિસ્થિતિ કેવી હતી એવું સંક્ષેપમાં પણ પૂર્ણ વિશ્લેષનીય વર્ણન આ પત્રમાં છે. ઋષભવિજયજી એક સારા વિદ્વાન યતિ હતા (જેના પ્રમાણ મને વીજા અનેક ઉદ્દેશોમાંથી મળ્યા છે પરંતુ એ વર્ણનો અને ઉદ્દેશ કરવાની આવશ્યકતા નથી.) એથી તેમની પાસે અનેક પ્રકારના મનુષ્યોનું આવાગમન રહેતું જ હતો.

શ્રીજી મેવાડ રાજ્યના ઘણા સ્ત્રા કર્મચારીઓ જૈની ઓસ માથી જો આવી જાતના સાહિત્યની શોધ શોધ કરામા આવે તો એમાંથી અનેક પ્રકારના આ ઐતિહાસિક સાધનો મળી શકે કે જે ધર્મ અને દેશ એમ ઉભય દૃષ્ટિથી બહુ મહત્ત્વના થઈ પડે તેમ છે — સપાટક]

॥ ૬૦ ॥ સ્વસ્તિ શ્રીપાર્થ પરમેશ્વર પ્રણમ્ય શ્રીમતિ તત્ર શ્રીજીદુઆરાતો સે । ક્ષત્રભાવેજયસ્સાનદેન લિપ્ત્યપર રદના ૧૦૮ વાર અવધારશ્વંજી. અત્ર સુષ ષ શ્રેય ઝડ તથા શ્રીપદિતજીના સુસ પત્ર દેઈ હર્ષ પોષ કરવાજી. અપર શ્રીપદિતજી પરમેષ્ઠ શ્રેષ્ઠ સકલ ગુણગરિષ્ઠ વિદ્વજન વરિષ્ઠ સત્ત્વ સત્ત્વનસિરોમણિ કૃપાનિધાન સર્વન રાજસમાયા લક્ષ્મસ્તમાન ગુણાલકૃત પરમ પ્રીતિપાત્ર ગુણગ્રાહક મોટા સત્પુરુષ દ્વા સેવકોપરિ સદા હિતપ્રીતિ સુદૃષ્ટિ રાષો છા તિમજ રાષશ્વંજી. જે દિવસે શ્રીપદિતજીસુ મિલસુ વાંતા કરસુ તે દિવસ ઘણુ સફલ કરી જાણસુ જી. અમ્મ ગત સર્વે પત્ર ૧ શ્રીપદિતજીનો મોઢવાઢનો, એક અનુચર હસ્તે શ્રીજીદુઆરામે આવ્યો હતો, વેશાષ દ્વિતીય મ તે હસ્ત પત્ર ૨ શ્રીપદિતજીના નામનો.. હસ્તે મૂક્યો હતો તે પોહતાના સમાચાર નાટ્યાજી વીજી ફક્તસાનો ચોમાસો શ્રીજી દુઆરે થયોજી ઉદેપુરમે ઠાણુ ૨ વૈઠા રાહ્યા છે વસ્તુમાવ કુશલ ધેમે રહ્યો છે ઓર સર્વસ્થાનક નદ્ર થયા વિળ આપનો આલય કુશલ ધેમે રહ્યો છે મગવાન રાખ્યો છે, માત્યાનો સાજવાજ મહાન્યા મધ્યે મૂકી બે માલિમ કરી ને હુ શ્રીજીદુઆરે આવ્યો. સર્વ વળિક દિતોદિસ નીકળે ગયા સકલ સાધાસુ દશલ થઈ. સાત દિવસ કતેવાન માધ- ધની ઓરીયે ઠાણુ ૧૫ સપાતે વૈઠા રહ્યા, સર્વ મહાજન ચોરાસીગજના મિલી રાધ સહજ તુક દીધા પદિત જમાન થયો ત્યારે સાતમે દિવસ ધઢી ૨ દિન રહતે અઠે આવ્યા સર્વ શ્રાવક સાથે પદિત સાથે આવી સાધાન પારનો કરાવ્યો પછે વળિક વિળ નીકળ્યા ને અમે વિળ નીકળી આઘાટ આવ્યા માસ બે તિહા રહ્યા, તિહા વિળ પદિત- જીનો કારણ સધીઈ લોખ્ખુ ત્યારે પદિત જાવતો કરી નાપદુઆરે પોહચતા કન્યા, હવે રાવત અર્જુનસિંધજી વૈઠતા લયમીચદ વિજેસિંધ નાનાવિટી દિવળીના પદિત રૂપનગર વાલાનો કામદાર દેવદાસ મુળોત મિલી ઉદેપુર આવ્યા, ચ્યાર લાઘ રુપ્યા જુના દેઈ ને સધી (સિંધી—કાઢુલી) સર્વ ને વારે કાઢ્યા છે દીવાળ હમીર પાસે રજપૂતનો સાથ મૂકી સધની ચોકી રાવલા માહિથી ઘણા કદથી કોંઢી છે હવે સતાની ઠઠ્યારવાને થઈ છ જી ત્વારાનો જોર ઘણો વધી ગયો. સહિર મધ્યે નોગ્યારો કોઢા પાને પલ્લો, સર્વ વોદ વળે ગ્યારો ગ્રાહ્ય કીધો, હજી હજાર ૫૦ જુના દેણા છે' તે દીધે સર્વ નીકળત્યે પચ મહાજન નાઢોલ હતા તે રાવત અર્જુનસિંધના પત્રથી આવ્યા છે વરાઢ ફેર હજાર ૨૮ નો નાખ્યો છે' રુપ્યા હમીરસાઈ ઉદેપુરમે નવા પડ છે ટકા ૨૦ ચાલે છે તે દીધે સધીનો કાઢોલો કટસ્યે સ્યાર લોક ઉદેપુર મે પાઝા આવસ્યે જી હજી દેશનો વિમ્મ મિટ્વી નહીં છે દોય રાણા છે હમીરજી તો અઢસીને પાટ ઉદેપુર મ છે રતનસિંધ કુમલમેર મે વૈઠા છે જોગી સાવત છે, મોઢવાઢ વિજેસિંધજી ને ડ ચીતોઢ, માઢલ- ગઢ, ઉદેપુર, રાજનગર, ય જાયગા રાણા દમીરજીના અમલ છે સરાનલો, કુમલમર, કેલવાઢો, દવગઢ રતનસિંધ- જીનો અમલ છે દેશ મે લટા ઘોસો પકઢળા મારણા આમા સામો લાગે રહ્યા છે, નાપદુઆર મહારાજની ફોજ હવાર વારેમે પઢ્યા છે તે તિમજ છે મહારાજ વિજેસિંધની ફોજ રાવોદાસ મિલી દેવસૂરી વાલા ઉપરે આયા હતા વાસ રાટ ધૂલખાળી મિલી વિળ દેવસૂરીવાલો મહારાજસુ નમ્યો નહી, સોલધીનો મજો રહ્યા ફોજ શષમાર પાઝી મઈ. ઢાળા મે વૈઠો છે નાલ દેવસૂરીની કોઈ છાઢી નહીં વીરમ મઢત્યા ચાળોદવાલા જોષપુર ચાકરી મે પઢ્યા રઢવઢ છે સોલધી ની ટેક ધળી રહી રાઢન પોગે લામો તથા વિજેસિંધને પગ લાગા ચાકર ચિતારો છુ આઝઆ વાજા અતસિંધને મહારાજ વિજેસિંધે ઠાર્યો. ચાપાવત તેહના વૈઠા ગુણાલ કઢુજે છાઢી આવ્યા છે રસ્યો રૂપ વળે રથો છે જૈપુર મે વિળ મેવાઢ સરીવો વિષો લાગ છે. રાવત જર્જનસિંધજી ને અપરમાહિથી પરા કાઢ્યા છે સોલોકરજી

આયા સુખ્યા છે રાવત અર્જુનસીંઘજી લેવા જાસી યક્ષીંગજી મેલા વેસી ફસી વાત છે પઠે તો વળે સો પરી ઉદે-
પુર નો... નહીં પિણ હવે રજપૂત રાણાવતારો સાથ હજાર દોય સદર મેં આવે..... . .યો હવે
સથી સર્વે બારે ઢેરા દીધા ડ...મારી છે વાકી રૂપ્યા દીધાસુ નિજર આવસી રાજ-દેશવિગ્રહ મારે
ઠેરયો મિટળો તો સાહિબરે હાથ છે વલે એક ટિલ્લ થયો ડે સજ્જરના ઘરમે પહાડસિંઘ રાવળ ઉજેળનો રાઠિ મેં
કામ આવ્યા પડે મીમસિંઘજીને તરવાર વધાવી રાણે અઢસીઝીડ સલૂચરનો ગાદી બેઠા. હવે પાંચ વરસ પડી પાઝા
પહાડસિંઘજી પ્રગટ થયા છ. એ વિગ્રહ નવો પ્રગટ્યો છે, દુગળા મહીના ૫ ડ થયા છે ડુગરપુરને ચૌધલે આવ્યા ડે
મીમસિંઘજી ચીતોઢ ઉપરે હતા તિહાનો જાણતો કરી થાંજો મેલીને સજ્જર દાણલ થયા છે. વિગ્રહે પાઝ નહીં છ. ઓર
સમાચાર છે જ્યુ ડે અન્નત્ય પ. નરાત્તમવિજયગણિ પ. પ્રતાપવિજયગણિ વિનયવિજયગણિ લખુમિષ્ય ગિરવરની વંદના જાણ-
વીજી પ ક્ષેમાનદ ગ નેમવિજયગણિ ઠાણુ ઉદેપુરમે મેળ્યા છે હેમવિજયજી ગ જ્ઞાહોલ છ. ઠાણુ જ્ઞાસમે ડે. રત્ના
નદ ગ માનવિજયગણિ, ઉદયપુરનો ઢગ મહીના એક દોયમેં સુદરસ્ય જી ત્યારે ઉદેપુર ના ઢગ સુદરસી જડી બુલાયા
આવ્યે ઉદેપુર જાવો થાસ્યે જી ત જાણવુજી નત્ર પાર્શ્વસ્ય સાધુસમુદાયન પ સૌમાયવિજય ગ૦ પ. જયવિજયગ૦
પ. મામ્યાવજયગ૦ પ પત્રસાગરગણિ પ્રમુષ સર્વે સાધુસમુદાયન વંદના કહીજી પ. હેમસંભાગ ગણિના વંદના
પણ જાણવી પ ગુલાવહસગણિ ઠાણુ ૨ ની વંદના જાણના X X X મેવપાત્રમે શ્રામ કોઈ કોઈ જાયગ
વસતી છે ફસ્યો ઢગ ઢાલ ઢગનો છે જી કેટલુ લ્ઘવામેં આવેજી કૃપાપત્ર વલમાન કૃપા કરવી જી દેવદર્શનમે
સમારવા મિતી સવત્ ૧૮૩૧ રા મિગસરપદિ અષ્ટમ્યા રાત્રો પત્ર—સુરાઈ લખ્યુ છે જી



અક શ્રીમાલી જૈન કુટુંબની જુની વંશાવલી

પોતાના જૈન સપ્રદાયને અનુસરનારી મુખ્ય ત્રણ વંશ
જાતો છે: ૧) ઓસવાલ, ૨) શ્રીમાલી, અને ૩) પોરવાડ. ઓસવાલ જાતિનું મૂલ ઉત્પત્તિ સ્થાન ઓસિયા નગરી મનાય છે જે મારવાડની જોધપુર રાજધાનીની પાસે આવેલી છે. એ જાતિની વધારે વસતી રાજપૂતાના અને માલવામાં રહેલી છે. શ્રીમાલી જાતિનું મૂલ સ્થાન શ્રી-માલ નગર કહેવાય છે. એને હાલમાં મિસ્રમાલ કહે છે અને એ પણ મારવાડના જોધપુર રાજ્યમાં, રાજ્યની ઉત્તરની સીમા તરફ આવેલ છે. એ જાતિની વધારે વસતી ગુજરાત અને કાઠિયાવાડમાં આવેલી છે. પોર-વાડ જાતિનું જન્મ સ્થાન ક્યા છે તે ચોક્કસ જણાતું નથી પણ કિમ્બદંતી પ્રમાણે અરવલીની પર્વતમાલામાં વસેલો યાગદેશ તેનું ઉત્પત્તિ સ્થાન હોય એમ જણાય છે. પોરવાડોની માટી સહ્યા મારવાડ રાજ્યના મોડવાડ—કે જેને નાની મારવાડ પણ કહેવામાં આવે છે—પ્રાંતમાં પ્રસરી છે. ગુજરાત અને માલવામાં પણ એ જાતિની સાધારણ વસતી છે. એ જાતોનું જન્મ ક્યારે અને કઈ રીતે થયું તેનો સવિસ્તર નિર્ણય કરવા જેટલા સાધનો હજી જાત થયા નથી. સાધારણ માન્યતા પ્રમાણે જૈનાચાર્યો એ, તે તે પ્રદેશમાં વસતા રાજપૂતો અને વીજા પેલા લોકોને ધર્મવંશ આપી જૈન વનાવ્યા અને તેમનું, પૂર્વના વીજા વંશના વ્યવસાયો છોડી દઈ વ્યાપારનો વ્યવસાય કરવા તરફ પ્રેરણા કરી. એ જાતોનું નિર્માણ કોઈ એક જ આચાર્ય દ્વારા અને એક જ વસ્તે થયું છે એમ નથી. પરંતુ પ્રથમ એક આચાર્ય કેટલાક કુટુંબોને જૈન વનાવી તેમની એક જાત વનાવી અને પછીથી વીજા વીજા આચાર્યોએ પ્રસંગે પ્રસંગે વીજા વીજા સ્થલોના લોકોને જૈન વનાવી વનાવી તે તે જાતિમાં દાખલ કરતા ગયા, અને તેમ કરી એ ત્રણ જાતિની સહ્યામાં ક્રમે ક્રમે વધારો કરતા ગયા. શ્રીમાલી અને પોરવાડ જાતિની આવી રીતે ક્યાં સુધી વૃદ્ધિ થતી રહી તેની તો માહિતી હજી સુધી મઝી

નથી પરંતુ ઓસવાલ જાતિની તો છેક વિક્રમના ૧૭ માં સૈકા સુધી વૃદ્ધિ ચાલુ રહી હોય એમ જણાઈ આવે છે. લોકમાન્યતા પ્રમાણે, ઉપર જણાવ્યું તેમ, મૂલ તો એ ત્રણે પ્રસિદ્ધ અને સમૃદ્ધ જૈન જાતો મારવાડની સીમામાં જ ઉત્પન્ન થઈ, પરંતુ પાછળથી જનસહ્યાની વૃદ્ધિને લઈને, વ્યાપારના નિમિત્તને લઈને, તેમ જ રાજ્યોની ડચલ પાથલના કારણને લઈને ભારતના જુદા જુદા પ્રદેશોમાં એ પ્રસરી ગઈ.

એ જાતોમાં અનેક ગોત્રો છે અને દશા-વીસા આદિ જેવા કેટલાક પેટા ભેદો છે. ગુજરાત અને કાઠિયાવાડમાં વસનારા લોકોને ફક્ત દશા-વીસાના ભેદનો તો માહિતી રહી છે પરંતુ ગોત્રનું જ્ઞાન તો લગભગ સર્વથા મુલાઈ જાયું છે. મારવાડમાં વસતા લોકોને—અને તેમાં જ્ઞાસ કરીને ઓસવાલોને—પોતાના ગોત્રોની માહિતી અવશ્ય હોય છે. એ માહિતી હોવાનું જ્ઞાસ કારણ એ છે કે ત્યાના લોકોના કુલચુક હજી હયાત છે જેઓ દરેક કુટુંબના વિવાહ આદિ શુભ પ્રસંગો ઉપર હાજર થઈ તે તે કુટુંબની વંશાવલી વિશે વારંવાર સમલાવતા રહે છે. એ વંશાવલીઓમાં ૧૦-૨૦, ૨૦-૨૦ પેઢી સુધીના પૂર્વ-જોના નામોની તેમજ કેટલાકના ઠામ અને મોટા કા-મોની પણ નોંધો કરતી હોય છે. જો કે એ નોંધોમાં કમોલકલ્પિત જેવું પણ વળેલું હોય છે તો પણ જેટલી નોંધ—નોંધની વધી—વધારે જુની હોય તેટલી તે વધારે વિશ્વસનીય હોઈ શકે છે. ગુજરાતમાં તેવા કુલચુકોનો સર્વથા અમાવ થઈ ગયો છે તેથી ત્યાના વતનિઓ પોતાના ગોત્રો પણ ભૂલી ગયા છે.^૧

અને હવે તો કેટલાક પોતાની જાતોને પણ મઝી જરાની કો-શીસ કરતા મજરે પડે છે! થોડા દિવસ ઉપર અમદાવાદના એક શ્રીમત જૈન શુદ્ધચના વાલકાન તેમની જાતિ શુદ્ધતા તેઓ તેની જરાબ આપતા અસમર્થ નિવંદ્યા હતા. (ત્યારે વીજી વાણુએ તે-ઓ જગદેશના ઇતિહાસની વાતો અને આયર્ગસ, ઇન્ડીસ, સ્કાચ વિગેરે જાતોના પરિચયો જણાવતા આવી દેતા હતા, જે વાલકો

ગુજરાતના યાસિઓને માથે જ પોતાના પૂર્વજોના સ-
વધમા કાર્ક માહિતી હોય છે. તઓ પોતાની ૨૪ પેઢી
ઉપરાતના વઢારાઓના નામો સુધા જાણી શકતા નથી તો
પછી તેઓ કયાથી આવ્યા અને કયા વસ્યા, તેમના
પૂર્વજો ૫ શા કામા કર્યાં હત્યાદિ તો જાણે જ કયાથી.
તેમન કુલગુરુઓ અને તેમની નોંધવાહિઓની પણ કલ્પના
આરી શકતી નથી.

આ નીચે એક શ્રીમાલી જેન કુટુમ્બી જુની વસાવણી
આપરામા આધે છે, જે એક કુલગુરુની જુની નોંધવહી-
માથી ઉતારી લેરામા આવી છે. એ નોંધવહી લગમગ
૪૦૦-૫૦૦ વર્ષ જેટલી જુની છે અને કપડા
ઉપર લેખેલી છે આ વહી પાટળના એક પ્રાચીન
પુસ્તક મઢારમા છે. આ વસાવણિમા શ્રીમાલિ-
જાતિના નોઢા નામના શેઠની વસારપરા આપેલી છે એ
શેઠ, આ નોંધમા જણાવ્યા પ્રમાણ, મિત્રમાલ (જે શ્રી-
માલજી વીજી નામ છે) નગરમા રહેતો હતો. એનુ રહેઠાણ,
નગરના પૂર્વના દરવાજા તરફ આપેલી મઢની પોલમા
હતુ. મૂલ જાતિએ એ મારદ્વાજ ગોત્રીય (મારદ્વાજ ?)
હતો. સવત્ ૭૧૫મા કોઈ આચાર્યના પ્રતિવોધથી એ
જેન થયો હતો. એ મોટો વ્યાપારી હતો અને પાંચ કો-
ઢની આસામી ગણાતો. એની ગોત્રજા અવાઈ માતા હતી.
તેનુ સ્થાન, નગરની પાસે આપેલા ગો...ળી નામના સરો-
વરના કાઠે, જે દેવેઓજી સ્થાન હતુ, તેમાની ફંશાન
કોનમા આવેલી ચપકપાઢીમા હતુ તેવાઢીમા, ચારે વાજી
આવાના જ્ઞાઢોથી ઢકાણુ એક મન્દિર હતુ જમો ચાર
સુજા ઢાઢી એ અવામાતાની રૂપાની ઢનેલી મૂર્તિ સ્થા-
પિત હતી. આસો અને ચૈત્ર માસની સુદી ૧ ના દિવસે
એ માતાને નૈવેદ્ય ચઢાવી પૂજા કરવામા આવતી. નૈવેદ્યમા
લાપસી, પુઢલા અને જવારનુ સીંચહુ મુકવામા આવતુ.

એ શેઠ નોઢાની ૧૭ મી પેઢિએ નાન્હા નામે પુરુષ
થયો. તેના વસતમા, સવત્ ૧૧૧૧ ની સાલમા, મિત્ર

આજ આવી રીતે પોતાની જાતિને મૂલી જવાની તથારામા છે તે-
આ કાલ પોતાના પર્મે અને પગ્મ દિવસે દેશને પણ કેમ ન મૂલી
જાય ?

માલ શહર માગ્યુ. તેમા સલ્યાવન્ધ માળસો માર્યા ગયા
તથા કેદમા પકઢાયા. તે અવસરે શેઠ નાન્હા ત્યાથી
નાસી છુટ્યો અને કોલિહારાના પાયચી નામે ગામમા
જડંને વસ્યો. ત્યા તેના પુત્ર પીત્ર વિમેરેનો પરિવાર વઘ્યો
અને તેના વસાજો પાઠચથી તથા સમયે પાટળ, નરેલી
(ગામૂ પારો), મોઢરા, વલ્લદ, સલસળપુર હત્યાદિ
અનેક ગામેમા જઈ જડંને વસ્યા. એમાના કેટલાએપ
સયો કાઢયા, માન્દિરો વન્વાવ્યા, મહોત્સવો કર્યા, જમણ
જમાઢ્યા અને કોઈક તો સસાર છોઢી યતિ પણ થયા.
આવી રીતે આ વહીની અદરથી કટલીએ જાળવા જોમ
હકીકતો મઢી આરે છે

ઉપર જણાવ્યુ છે તમ એ વહી ૪૦૦-૫૦૦ વર્ષ જે
ટલી જુની છે તેથી એમા છેવટે જણોવલા કુટુમ્બોના વસો
કયા સુધી પહોંચ્યા અને આજે તેમાનો કોઈ વસ
હયાત છે કે નહિ તે જાળવા-જળાવવાનુ કશુ સાધન નથી.

આ વસાવણિની માથા અસલ પ્રમાણે જ કાયમ
રાખી છે. તેમ જ એમા ફક્ત નામો સિવાય વીઢી કોઈ
વિશેષ હકીકત પણ જેથી વાચનારને કોઈ જાતની
કઠિનતા પઢે તેમ પણ નથી.

ગુજરાત પુરાતત્ત્વ મન્દિર
માદ્રપદ પૂર્ણિમા

—સપાઢક.

અથ મારદ્વાજ ગોત્રે સવત્ ૭૧૫ વર્ષે પ્રતિવોધિત
શ્રીશ્રીમાલીજાતીય શ્રીશાન્તિનાથ ગોષ્ઠિક ! શ્રીમિત્રમા-
લનગરે મારદ્વાજ ગોત્રે શ્રેષ્ઠ નોઢા. તહનો વાસ પૂર્વીલી
પોલી મટનઈ પાઢઈ. કોઢી પાંચનો વ્યવહારિયો. તેહની
ગોત્રજા અવાઈ. નગરીની પરિસરિ ગો.. એળી સરોવરી
દેવ્યાના ઠામ નેઠુ સહિસ વેહમાહિ ફંશાણકુણદિસિ
ચપકવાઢી તેહમાહિ નેચ. ચિત્રપાસદ આવાના વૃક્ષ તિળ
સ્થાનાકિ ચતુર્મુજા ગોત્રજ સ્વરૂપ કપ્યમઈ હાદરિ ન હુઈ
હુ ઝુકુની લીટી પાટલી ૩ કીજઈ નૈવેદ્ય લાપસી પુઢલા
સીંચહુ જવાવિ. ચૈત્રી આસો ૧, પુત્ર જન્મદ પારેણ
ત્રિ મુઢર્ણિ જમણીઝ કાપહુ. ફહનદ સહર્ષી ૧ પુત્ર જન્મદ
પુત્રીઈ અર્દકર કીજઈ !!

[सेठ नोडानी वंशावली—]

श्रेष्ठ नोडा, भार्या सूरमदे—

पुत्र गुणा, भार्या रणई—

पु. हरदास, भा० माहवी—

पु. भोला, भा० गणई—

पु. गोवाल, भा० सधा—

पु. असा, भा० पुहता—

पु. वजांग, भा० करमी—

पु. शीवा, भा० पती—

पु. महीराज, भा० कमाई—

पु. राजा भा पूरी—

पु. गुणपति, भा. रही—

पु. शासन, भा० कपू—

पु. मणोर, भा० हापी—

पु. जुयरपाल, भा० वाछी—

पु. पासा, भा० येनी—

पु. वस्ता, भा० वनादे—

पु. कान्हा, भा० सापू—

पु. नान्हा रुवत् ११११ वर्षे श्रीभिन्नमाल-
मग्न. मनुष्यनी कोडी मरण गई. वदि पड्या श्रेष्ठी
नान्हा नाठा. कोलीहारामाहि पायची ग्रामे वास्तव्य.

श्रेष्ठी नान्हा, भा० पूगी—

पु. अमरा, भा० आऊ—

पु —१ हरदे, २ वरदे, ३ नरदे, ४ नगा

हरदे भार्या हासलदे

पु.—१ गोपी, २ पदमा

गोपी भा० गुणदे

पु. जोगा, भा० हापू—

पु. नांदिल. भा. नादलद

पु. १ सारंग २ महिषा ३ सचाड ४ घपा—पतनि

वास्तव्य सासुरि सवत् १२२५ वर्षे फोफलीया वाडि—

सारंग भा. नारिंगद पु १ सीवर २ जीवा.

सीवर भा. सरीयादे, एउ चली. गाम्पासे नरेली
ग्रामे वास्तव्य सासरइ सवत् १२८५ वर्षे.

सीवर भा. सिरियादे—पु १ अना, २ वन्ना

अना भा. अनादे—पु. मूला.

—१ श्री आदिजिन बिंब चउवीस घडु मराव्यउ. सवत्
१३१६ वर्षे श्री अचलगच्छे श्री अजितसिंह सूरिणा-
मुपदेशेन प्रतिष्ठित एक कूप, गोत्रजा चैत्य, मूलाकेन
एव कृत ।

मूला भा. मालणदे पु. १ वर्धमान, २ जइता.

वर्धमान भा. वयजलदे—पु. १ करमण, २ लाला.

एउ चली मोढेरइ वास्तव्य तेणइ मोढेरइ दाधेलीऊ
मह कर्मा ते साह तेणि सगपणि सवत् १३९५ वर्षे
मह. ।

करमण भा. करमादे

पु. महुया, भा. सोहागदे. पु १ धना, २ हीरा
३ लीमा, ४ चुपा.

२ हीरा भा. हीरादे—पु. हेमा.

सवत् १४४५ वर्षे बिंब चुवीसवटो प्रतिष्ठा महोत्सव
श्री अचल गच्छे श्रीमस्तुग सूरि चोमासि कराया
प्रतिष्ठित महोत्सव करावी,

मोढरि हेमा भा. हेमादे—

पु. भावड, भा. पूनी पु—१ देवा, २ पर्वत, ३
नदा

देवा भा. सरियादे—पु १ सूर, २ लखमण

लखमण भा. लखमादे. पु १ हर्षा, २ जगा. हर्षा
भा. पूरी पु—१ नरपाल, २ वरजांग, ३ फतना,
४ रतना

१ नरपाल भा. लीलादे.

पु. नरवद भा. नामल दे, पु. वस्ता

२ वरजांग भा. ससी पु १ राणा, २ श्रीवन, ३

भाणा, ४ मदीराज

३ फतना भा. महणादे

पु. वेणा, भा. सरपादे पु. १ भीमा, २ अमा,
३ लट्टया.

जगा भा. जस्मादे पु. १ सीपा, २ रामज

पवंत भा. प्रेमलदे, पु. १ रागा, २ पदमा, ३ मादा.

१ राभा भा. दट्ट, पु. १ नाथा, २ नारद, ३ तोभा.

नाथा भा. नागल दे
पु. आनद नाकर भा. डाक, पु. १ सधारण, २ शिवदी, ३ गोपी.
घलाद्रमाये

नदा भा. लाव, पु. १ रूपा, २ आसा.
रूपा भा. कुजरी पु. १ भवा, २ अजु, ३ महिषा,
४ कान्हा ।

भवा भा. नाभा.
पु. राघव भा. रीजलेद, पु. १ घना, २ वर्द्धमान
३ पोचा, ४ पोपट.

आजु भा. अजादे पु. १ रुडा, २ राजा, ३ नायक
रुडा भा. २ वयजलेद,—माणिकदे. वयजलेद पु. १
मेवजी, २ जगमाल,—माणिकदे पु. अभयराज.

नायक भा. नारिगेदे पु. १ देवराज, २ सवराज.
वलत्रि म. नंदास्थेन महिनाथ विंव मराव्या. ए
आदे कुडुनि विंव ३ भराव्या. श्री अचलगच्छे श्री
विजयकेसरतुरीणामुपदेशेन प्रतिष्ठित.

म. नदा भार्या हीरू
पु. साहू भा. तुहामदे.
पु. रतीमा भा. देवलदे, पु. १ बीसा, २ देशल,
३ लाला.

बीसा भा. हूवी
पु. सहिसा भा. मरघाई, पु. सिधा
देशल भा. मक्.

पु. लासा भा. सीमाई पु. १ हरसा, २ मेधा, ३
जगा, ४ आणद, ५ कीमा, ६ पोमा—दीक्षा लीघी,
७ अजंग.

हरसा भा. गुर्गा पु. १ वर्द्धमान, २ ठाकुर.
अजंग भा. अहिउदे पु. मोहण.
पूर्वि करमण भाई लाला सा. लाहमदे.

पु. हृदास भा. हासणदे पु. रहिया, ३ महिया—
दीक्षा लीघी,

महिया भा. मानवाई पु. हीरा—
एउ बली गोलवादी बलहृदामि वास्तव्य. म. हीरा,
भा. सगु—तंनि बालि सिद्ध सीकोतरी भा. तेंह वा-
रणि पृथी बहीऊ माहरह गोत्रज शुहाण, तेंह कारणे पां-
जरी नाम लेंह गोत्रज शुहारह. नणदनद सर २ नी
मात. पारण त्रिमुहनि. माणा ८ ना लाइ कुटुबमाई
लाहि फईनद सहिं १.

म. हीरा भा. सगु—
पु. चावा भा. चापल दे पु, १ पोमा, २ मक्का.
पोमा भा. प्रेमलदे.
पु. श्रीरत भा. सरियादे
पु. मोला भा. मानलदे
१ रीडा भा. सोभी
पु. सिधा भा. जयवती पु. १ बीला, २ अरुन, ३
बघ्रा.

काला भा. मरबु पु. १ देवा, २ भीमा
देवा भा. नाउ
पु. द्वाद, भा. आनी पु. जसा
भीमा भा. मग्मादे
पु. जोषा भा. जसमादे
अरुन भा. माणिकदे
पु. नाकर भा. पुहती पु. १ सीहा, २ पेया, ३ नाई-
या ४ नगा, ५ पाचा.

सीहा भा. सरियादे पु. १ देवराज, २ शिवराज.
पत्तणिनगरे

पूर्वि महुया चतुर्थ पुत्र चुया भा. चाहणिदे पु.
सोमा संग्रहण वृत्त. नोरोते वास्तव्यः समति पत्तनि वास्त-
व्यः । सवत् १४४१ वर्षे लघुशास्त्री बभूव ।

सोमा भा. रगाई—
पु. माहव भा. देमी पु. १ रगा, २ जागा.
रगा भा. रेगादे

पु. वरसंग भा. जिस्मादे पु. १ सुंटा, २ राईया.
दीक्षा लीधी.

सुंटा भा. करमादे पु. १ राजपाल, २ विजपाल, ३
मलदास.

लहरी सलखणपुर पार्थे म. जया फडीयाना व्यापा-
रथा फडीया अढक. जगा भा. जिस्मादे पु. १ जोगा.
पूर्वि वद्धमान भाई जयता. एऊ चली चाहणसांभि
वास्तव्यः सासरा माहि तव श्री भट्टवा श्री पार्थनाथ
चैत्य कारापितं संयत् १३३५ वर्षे श्री अचलगच्छे श्री
अजितसिंह सूरीणामुपदेशेन प्रतिष्ठित ।

भं. जयता भा. जयवंती
पु. हपा भा. देमादे
पु. माडण भा. मालणदे
पु. रहिया भा. रहियादे
पु. वस्ता. एऊ चली गेगदीण वास्तव्यः
वस्ता भा. वलादे
पु. वागुरणसी भा. रमाद पु. १ मदा, २ वाछा,
३ रामा.

मदा भा. सलख पु. १ नगा, २ हापा, ३ तेजा.
नगा भा. धनी
हापा भा. माद
पु. करमसी भा. भोली पु. १ होईया, २ भीमा,

३ गळया
भीमा भा. करमी पु. १ नायक, २ माली, ३ हर-
खा, ४ गोर, ५ सामल, ६ डुरा.

नायक भा. नायकदे
माली भा. माद पु. १ सीहा, २ सरवण, ३ करमण
सीहा भा. टाकू पु. १ जागा, मेघा
जागा भा. जीवादे

सरवण भा. सहिजलदे पु. १ वीरम, २ खोखा, ३
जुठा. वीरम भा. वनादे
करमण भा. कामलदे पु. १ रीडा, २ लखा
रीडा भा. राजलदे
पु. रावसी भा. सुपमादे

पु. लप्ता भा. लप्तामादे पु. १ जगसी, २ हरखा
,, ,, मोणकदे पु. १ मेला, २ मांका, ३
जीवा, ४ नाया.

माका भा. मालणदे पु. १ श्रीवत, २ वीणा, ३
धना, ४ धरमसी, ५ अगा

श्रीवत भा. सरियादे पु. १ पूजा, २ देवा

पूजा भा. रत्नादे

पु. वीणा भा. वलादे पु. राका

उहिरवालिया

पूर्वि सांघर भाई जीना पत्तनि. म. जीवा भा. जी-
वादे पु. जिणदत्त भा. पकू. पु. १ वना, २ विजय-दीक्षा
लीधी. वना. एऊ चली सासरइ जाइधी डाहरवालियास्त-
व्य सं. १२९५ वर्षे

म. वना भा. सखू

पु. माधव भा. सापू पु. १ नयणा, २ नगा, ३ रगा

नयणा भा. नारिगदे पु. सारिग वयजलके वास्तव्य.

सारग भा. सारियाद

पु. जेसा भा. नाकू पु. १ रगा, २ मेला, ३ रामा

रगा भा. जोमी पु. वाछा श्रीपार्थनाथ चैत्य प्रतिष्ठित

श्री अचलगच्छे श्रीसुवनतुनसूरीणामुपदेशेन

मं. वाछा भा. माऊ पु. १ करमण, २ लखमण

चारित्र लीयुं.

करमण भा. करमादे

पु. मोका भा. पूगी पु. १ महीराज, २ माडण

महिराज भा. माणिकदे पु. १ देवा, २ नगा.

म. देवा भा. देवलदे

पु. माना भा. मात्र

पु. जागा भा. देगी

पु. धरणि भा. पूरी

पु. वासा भा. अजो पु. १ शीवा, २ पोचा

शीवा भा. वज्रदि पु. १ जाणा, २ भाणा, ३ मा-

वड, ४ नरसव, ५ करमसी

वडवाण पांशि वलदाणु

पूर्वि महिराज भाई माडण, भा. सोमी पु. १ वरधा

२ काला, ३ नोला, ४ लक्षा

वरवा भा. देगी

पु. चांगा-भा. सांगारदे

पु. कान्हडदे, एउ चली बहुद्रव वास पछी बलदाणा वास्तव्यः । तत्र वसही कारापिता भूल नायक श्रीपार्श्व-नाथ विंश ।

कान्हडदे भा. कपूरदे पु. १ चांपा, २ अमीया

चांपा भा. प्रेमलदे

पु. सहसा भा. सरियादे पु. १ जीवा, २ खीमा.

जीवा भा. दूवी पु. १ भीमा, २ शाणा, ३ मुजवल
४ जसा, ५ जाणा, ६ जोया.

भीमा भा. मावलदे पु. १ श्रीवंत, २ जबचंद,
३ रगा.

पूर्वि बलदांणे अधुना नागतेष्टांति—

शाणा भा. समाई

पु. शिवराज भा. अजादे पु. १ सामल, २ श्रीमल

३ भला, ४ भोजा

सामल भा. सुरमदे पु. १ बांघा, २ नागजी, ३ हेमराज.

बाघा भा...पु. १ अंका, २ सिद्धराज.

नागजी भा. देवकी पु. १ सुरजी, २ हेमराज

„ „ भेला पु. सहजपाल, २ खेता.

—श्रीमल भा. शणगारदे पु. १ भेवा, २ भेला

भेवा भा. सथीरा, पु. १ खिचण, २ श्रीपाल.

श्रीमल द्वितीय भा. वीरनदे, पु. भेला.

दंभायत पासि तारापुरि—

पूर्वि माधवपुत्र नगा मां. नागदे पु. १ गोगन,
२ गणपति । संवत् १४४५ वर्षे श्रीशत्रुंजय तीर्थेनी यात्रा
कृता । श्रीरंगरत्नसूरिणि आचार्यपद स्थापना श्रीअंचल-
गच्छे गुजराती सोट्टी चोरांसी गच्छना यतिनिं वेस
बुद्धराव्या । बाणोर मेलीनी एणि कारणिं दहुरवालीया
मासिद्ध विवद ।

—गोगन भा. गुरादे पु. १ मंगल, २ जणदत्त.

मंगल भा. मयगलदे पु. १ खोजा, २ कान्हा.

खोजा भा. सहजलदे पु. १ गहगा, २ गणपति

गहगा भा. मनाई पु. १ कुंसा, २ कुंरा.

कुंसा भा. कुंमलदे पु. १ पोपट, ३ लाला, ३ वाल

पोपट भा. मार्द

पु. विद्याधर भा. ह्यांदि पु. १ वाछा, २ सहसा—

दीक्षा खीया. वाछा भा. दगढिमदे पु. १ भोजा, २ भीमा,
३ संतेधी.

भोजा भा. धनी पु. शिवसी अधुना.

—पूर्वि सारिग भाई महिमा भा. छला, पु. भाटा,
ते सिद्धराज जेसिगदेव राव्य व्यापारी सहस्रिग उपरि-
रायतु आदेश बितकरी तिहां पाषाण अणावि ते पांच
गज लाडलां हीट रसाई. वरतण भाटे राये गोमलेज
गाम आप्यउ छई. बिबोत्तर मांहि मातर पासि. तिणि
गामि पाषाण मोकलई तिणि गामि तलाव १ रूप १२
कराव्या । श्रीशत्रुंजये प्रासादाविंश प्रतिष्ठित अंचल गच्छे ।
पछि कालांतरे राजा रुठो देखी य पाषाणनी राव (१)
कीधी ।

मं. भाटा मंडपदुर्गे वास्तव्यः । भाटा भा. देमी—

पु. छमा भा. मानी पु. १ माधव, २ केदाव

माधव भा. मालणदे पु. १ गांगा, २ गोरा.

गांगा भा. रूपी.

पु. जयवंत भा. जीस्मादे पु. १ भूमच, २ भस्मा.

भूमच भा. रजाई पु. १ नाका, २ माका.

नाका भा. नयणदि पु. सोमा. एउ चली

बडोदरे वास खेतसीमई बागदि.

मं. सोमा भा. सरियादे पु. १ करमा, २ घरमा.

करमा भा. करमादे पु. भिमच, २ माधव.

भिमच भा. भीमादे.

पु. देवच भा. देमाई पु. १ राजड, २ चांपा.

राजड भा. पदमाई पु. १ मावड, २ मरमा.

मावड भा. रुपाई पु. ठाकरसी. एउ चली खंभा-

यति पार्थे तारापुरि वास्तव्यः । पछी सीगी वाडई.

ठाकरसी भा. मलाई पु. १ जेसंग, २ बडा.

जेसंग भा. जिस्मादे. पु. सोमा भा. रुठो.

(समप्त)

ડૉં હર્મન જેકોબીની જૈન સૂત્રોપરની પ્રસ્તાવના

(ભાગ વીજો)



[અનુવાદક:—શ્રીયુત અંબાલાલ ચતુરમાઈ ગ્રાહ વી. એ. જૈન સાહિત્ય સંશોધક કાર્યાલય]

[પ્રથમ અકમાં ડૉં. હર્મન જેકોબીની કલ્પસૂત્ર (મૂલ આકૃતિ) ની પ્રસ્તાવના આપવામાં આવી હતી અને વીજા અને ત્રીજા અકમાં, ' સેકેન્ડ બુક્ ઓફ ધી ઈસ્ટ ' નામની પ્રખ્યાત ગ્રંથમાલ્યાના ૨૨ મા પુસ્તકમા પ્રસિદ્ધ ય-
દલા જૈનસૂત્રોના પ્રથમ ભાગની પ્રસ્તાવના પ્રસિદ્ધ કરવામા આવી છે. આ અંકમાં ૯ જ જૈન સૂત્રોના વીજા ભાગની (જે ઉક્ત ગ્રંથમાલ્યાના ૪૫ મા પુસ્તકરૂપે બહાર પડેલ છે) પ્રસ્તાવના આપીય છીય. આ ભાગમા, સૂત્રકૃતાગ અને ઉત્તરાધ્યયન એમ બે સૂત્રોત્ર હિયેજી માધાન્તર આપે-
લ છે. ડૉં. જેકોબીની આ ગ્રંથે પ્રસ્તાવનાઓએ યુરોપીય વિદ્વાનોના જૈનધર્મવિષયક જુના વિષારોમાં ઘણું સંશોધન કર્યું છે અને સર્વ સાધારણમા જૈન સંબધી વ્યાખેલા અજ્ઞાનને ઘણે અંશે દૂર કર્યું છે. હિયેજી કેલ્લવળી પામેલી આલમને જૈનધર્મડ જે કાઈ થોડુ ઘણું સ્વ જ્ઞાન મળ્યુ હોય તો તેનો વધો યશ ડૉં. જેકોબીની આ મહત્વની પ્રસ્તાવના-
ઓને ઘટે છે. વૌદ્ધ ધર્મથી જૈનધર્મ તદ્દન સ્વતંત્ર અને તેના કરતાં જુનો છે એ સિદ્ધાન્ત ડૉં. જેકોબીએ જ સોધી પ્રથમ અને સચોટ રીતે સ્થાપિત કર્યો છે. જૈનધર્મના સા-
માન્ય સ્વરૂપને સમજવા માટે આ ગ્રંથે પ્રસ્તાવનાઓ વિદ્વા-
નોમા જ્ઞાસ પ્રમાણમૂત મનાય છે.

આ સાથે એક આટલી સૂચના કરી લેવાડ હુ ઉચિત સમજુ છુ કે આ પ્રસ્તાવનાઓમાના વધા વિષારો મને સમ્મત છે એમ કોઈએ સમજી લેવાની મૂલ ન કરવી જો-
ઈય. આમાંના કેટલાય વિષારો સાથે મારો મતભેદ છે કે જે હુ મવિધ્યમા સવિસ્તર પ્રકટ કરવા ઇચ્છું છું, અને એ જ

વિષારથી મેં આ પ્રસ્તાવનાઓ સાથે કોઈ પણ પ્રકારની ટીકા-ટિપ્પણી લખી નથી કે જેમ કરવામાટે મને ઘણાક સજનો તરફથી સૂચનાઓ સુધા મળી હતી.

આ અનુવાદો મેં મારી જાતીય દેલ્વેસ નીચે કરાવ્યા છે અને પાછલથી ઘણી કાઢજી અને મહેનત પૂર્વક મૂલ સાથે સપૂર્ણ સરલાવ્યા છે. છતાં જો કોઈ સજનને આમાં ક્યાય સ્વલન વિગેરે જણાય તો તે જ્ઞાસ લખી જણાવવા સૂચના છે જેથી તેડુ સંશોધન કરી દેવામા આવે.—સંપાદક.]

જૈનસૂત્રોના મારા માધાન્તરના પ્રથમ ભાગને પ્રકટ થયે દશ વર્ષ થયા. તે દરમ્યાન કેટલાક ઉત્તમ વિદ્વાનોદ્વારા જૈનધર્મ અને તેના ઇતિહાસવિષયક આપણા જ્ઞાનમાં ઘણો અને મહત્વનો વધારો થયો છે. હિંદુસ્તાનના વિદ્વા-
નોએ સસ્કૃત અને ગુજરાતીમા લખેલી સારી ટીકાઓ સાથે સૂત્ર ગ્રંથોની સાધારણ આકૃતિઓ બહાર પાડી છે. પ્રો. હ્યુમન^૧ અને પ્રો. હોર્નલે^૨ આ સૂત્ર ગ્રંથોમાના બે સુ-
ત્રોની ગુણ-રોપના વિવેચનશાલી આકૃતિઓ વળ પ્રકટ કરી છે; અને તેમાય પ્રો. હોર્નલે તો પોતાની આકૃતિ સાથે મૂલ્યું કાઢજીપૂર્વક કરેલ માધાન્તર અને પુરતો ઉદાહરણો પણ

૧ દષ, ઔપચાલિક સ્વ, Abhandlungen für die Kunde des Morgenlandes નામની ગ્રંથમાલ્યા, પુ-
સ્તક ૮, વર્સેઝાલિક સ્વ અને નિડુરે, જર્મલ ઓફ ધી ઓ-
રિએન્ટલ સોસાયટી, પુ ૪૫

૨ ડનાસગ દસાઓ (વિલિંગબોધિકા ઇન્ડિકા) ભાગ ૧ મૂલ
અને ટીકા, કલકત્તા ૧૮૯૦, ભાગ ૨, હિયેજી માધાન્તર, ૧૮૮૮.

आप्या उ प्रा वक्रे पोते तयार करला वलिंनना हस्य उखाना
विस्तृत सुविपत्रेमा सपूर्ण जन साहित्यनु साधारण अजल वन
कर्युं छे तेम ज तेमण जैन सूत्रा उपर एक् अति विद्वत्ता
पूर्ण माटा निबध पण प्रश्न कर्यो छ^१ प्रो ह्युमने
वळी जैन वाङ्मय अन शास्त्रना विचारानु ताह अध्ययन
कर्युं छे, तथा वडलीक जन कथाओ अन तना
शास्त्रन अन वीर कथाओ सायना स्वधनी तपासणी
पण करी छे^२. श्वताम्बर सम्प्रदायना जुना इतिहासनी मा
हिती आपनारो एक मत्-राना ग्रंथ मे पण संपादित
कर्यो छे^३, तथा तमना केरलाक गन्धर्वो इतिहास हार्नल
अन क्लॉट द्वारा जाहिरमा आब्यो उ आमाना उठा
विद्वान (क्लॉट) जे अत्यारो आपणा रश्म माशुद रथी,
तेण स्वळा जन ललका अन एतिहासिक पुरुषानो एक
जीवन चरित्रात्मक महान् नामकोष (Onomasticon)
तयार कर्यो छे अन जेना कटलाक नमुना प्रकट पण यया
छ होमेट बुहरे तपविद्याविशारद एरा प्रसिद्ध वि
द्वाद् हेमचन्द्र विस्तृत जीवन चरित्र लख्युं उ^४ वळी
तेमण घणाक जुना शिलालेखाना अथा पण प्रसिद्ध कर्यो
छे डॉ फ्र रे मयुरामाथी खोदी काढला वातर कामोज
विषयन कर्युं छे^५, अने भि रे वीर राइस श्रवण वस्तोळ

माना घणाक महत्त्वना शिलालेखाना उतर पाह्या उ
एम् ए वार्थ जेनरम विषयक आपणा ज्ञाननी समाला
चना करी उ^६ बुहरे पण एक् माना निबध लखी तव
आलाचना प्रकट करी उ^७ अन उरट भाडारकरे सपूर्ण
जेन रमनी एक् महत्त्वनी अने घणी उपयोगी रपरता
आलखी प्रसिद्धिमा मुकी छे^८ आ रित, आपणा जन
धर्म विषयक ज्ञानमा थएला वधाराआए (जमाना
मात्र खास नोंधरा लायक ग्रंथाना ज मे अहि उल्लेख कया
छ) आ जासा विषय उपर एन्ड ययु अत्रशब्द पाह्यु
उक जथी हव मात्र कल्पनान आ विषयमा घणा ज थोडा
अवकाश रहश अन एतिहासिक तेम ज भाषाविज्ञानात्मक
साची पद्धति, त साहित्यना स्वळा भागान लायु पाडी
शकाशे तम र्णा, हजी केन्गक मुख्य प्रश्नाना खुलासा
करवा बाकी रखा उ, तथा ज निराकरणो आ अगाड थई
गया उ ज हजी वया विद्वानोन माय थया नथी, तथी
आ सुजवसरना लाम र्ई आउर पूर्वक हु अहि के
लाक विवादग्रस्त मुद्दाओउ स्पष्टीकरण करवा इच्छु छे,
आ मुद्दाओना खुलासाओ माटे आज पुस्तकमा मापात
रित थएला सूशोमाया घणी किमती सहायता मळी शक
तेम छे

ए बावत ता हवे सर्व सम्मत थई चुकी उ के नातपुत
(शातपुत्र) जे साधारण रीते महावीर अथवा वर्धमानना
नामे ओळख्ताथे छे ते बुद्धना रमकालीन हवा निगण्ठी
(निर्गन्थो)^{१ २} ज हालमा जन अथवा आर्हतमा नाम

१. डेगलेर १८८९

१०. The Religions of India Bulletin
des Religions de l'Inde, 1889 ५४

११. Über die Indische Secte der
Jaina, Wien 1881

१२. रिपोर्ट सन १८८२ ८४

१३. निगण्ठ ए स्पष्टरूपे शब्द रूप ज होय एम् जणाय छे
कारण क अशकना शिवाग्लोमा, पार्ले मा, अने क्लॉटक वलंत
जेन ग्रन्थामा पण ए ल रूप मळी आय छ पण आ जणे बोली
ओना स्वरशासना नियमो प्रमाणे तो तेनु वधारे वास्तविक रूप
'निगन्थ' एव थयु जाईए अने आयु रूप जैन ग्रंथोमा स्वीका
रेल पण मळी जाये छ

१. वॉलिन १८८८ अने १८९२

४. Indische Studien ३ १९, ५ २१९ आदि ६
ए मां अजुवाद तथा उरा पुस्तक २५, सुवई १८९३

५. Actes du VI Congrès International
des Orientalistes, section Asiatique ३ २५९
तथा Wienerzeitschrift für die Kunde des
Morgenlandes ३ ७ अने ६ वळी, जर्नल आफ दी जर्मेन
ओरिएण्टल सोसायटी, ५ ४८

६. हेमचन्द्राचार्य रचित परिशिष्ट पूर्व, कलकत्ता

७. Denkschriften der philos-histor
Classe der „Kaiserl Akademie der
Wissenschaften, Vol XXXVII, p 171ff

८. Wiener Zeitschrift für die Kunde
des Morgenlandes, Vols II and III.
Epigraphia Indica, Vols. I and II

થી વધારે પ્રસિદ્ધ છે, તેઆ, જ્યારે બોદ્ધ ધર્મ સ્થપાઈ રહ્યો હતો ત્યારે એક મહત્વશાલી સપ્તદાય તરીકે ક્યારનાં પ્રસિદ્ધ થઈ ચુક્યા હતા. પરંતુ હજી એ પ્રશ્નનું નિરાકરણ થતું બાકી રહ્યું છે કે—એ પ્રાચીન નિર્ધન્યાનો ધર્મ, તે સ્થાપ કરીને વર્તમાન જૈનોના આગમા અને વીજા ગ્રંથોમા જે વર્ણવેલો છે તે જ હતો, કે સિદ્ધાન્તો પુસ્તકાલ્પ થયા ત્યાં સુધીના સમયમા ઘણો રૂપાન્તરિત થઈ ગયો હતો

આ પ્રશ્નનું નિરાકરણ કરવા માટે, અત્યાર સુધીમા પ્રકટ થયેલા ઘણાં બાદ્ધ ગ્રંથોમા, જેમને આપણે સાચી ઝુના સમજીએ ડીએ તેમાથી જૈન નિગંઠો, તેમના સિદ્ધાન્તો અને તેમના ધાર્મિક આચારાના વિષયમા જેમ્લા પ્રમાણો જાદાં આવે તે વધાનો ઊદાહરણ કરવો જાઈએ

અગુત્તરનિકાય ૩, ૭૪ મા, વેણાલીના લિચ્છવિઓ માંનો અમય^{૧૫} નામે વિદ્વાન રાજકુમાર નિગંઠોના કેન્દ્ર લાક સિદ્ધાન્તોનું નીચે પ્રમાણે વર્ણન કરે છે — “મદ્દન્તા નિગંઠ નાતપુત્ત જે સર્વજ્ઞ અને સર્વદર્શી છે, જે સપૂર્ણ જ્ઞાન અને દર્શનથી સપન્ન હોવાનો (આ આગલ્લ જનાવેલા શબ્દોમાં) દાવો કરે છે કે “ચાલતા, ડગલતા, ઊંચતા અને જાગતા હું સર્વજ્ઞ અને સર્વદર્શી છું ” તે ઝુના કર્મોનો તપસ્યા વડે નાશ થવાનું પ્રરૂપે છે અને સચરદ્વારા નવા કર્મોને રોકવાનો ઉપદેશ આપે છે જ્યારે કર્મોનો ક્ષય થાય છે ત્યારે હું ક્ષનો ક્ષય થાય છે જ્યારે હું ક્ષનો ક્ષય થાય છે ત્યારે વેદનાનો અતઃ આવ છે જ્યારે વેદના મટશે ત્યારે સર્વ હું સ્તનો ક્ષય થશે આ રીતે જ્યારે પાપનો પૂરો ઘ્વસ થશે ત્યારે મનુષ્ય વાસ્તવિક યુક્તિ મેલવશે. ”

૧૬ આ નામના, સ્પષ્ટરીત, કે ઘુરુષા મઠી આવે છે. શીજો અમય શેળિકનો ઘુરુ હતો અને જિનોના સદાચરુ હતો તનાં જિનોના ઘુરુ તેમ જ કથાઓમા વલ્લભ થયેલો છે. મહિજ્ઞમ નિકાયના ૫ માં (અમય હુમાર) સુત્તમાં એક વર્ણન છે કે નિગંઠ નાતપુત્ત તન ક્ષ દ્વની સાથે વાદ કરવા મોકલ્યા હતા. પ્રશ્ન એવો ચાલાકી થયેલો તૈયાર કરવામા આવ્યા હતા કે બુદ્ધ તનો ગમે તવા હકાર અગર નકારમાં જવાબ આપે પણ તે સ્વવિરોધ વાળા વ્યાખ્યાણ પ્રસિદ્ધ શેષમા સપડાયાં બીના રહ જ નહીં. પરંતુ આ યુક્તિ સફળ થઈ નહીં અને પરિણામ તથા ઝલટું એ આવ્યું કે અમય બુદ્ધાસુધારી થઈ ગયાં આ વર્ણનમા નાતપુત્તના સિદ્ધાન્ત ઉપર પ્રકાશ વાદ એક કોઈ તત્ત્વ નથી

આ વિચારોનું જૈન પ્રતિબિંબ ઉત્તરાવ્યયનના ૨૧ મા અધ્યયનમા મઠી શરૂ છે — “તપથી મનુષ્ય કર્મનું હેરી શકે છે ૨૭ ” “યાગના ત્યાગથી અયોગપણુ પ્રાપ્ત થાય છે, કર્મ રોકવાથી તે નગીન કર્મને ગ્રહણ કરી શકનો નથી અને પૂર્વે ગ્રહણ કરેલા કર્મોનો ક્ષય કરે છે ૩૭ ” આ પ્રકારના પ્રવૃત્તિની જે અન્તિમ દશાઆ (સૂત્ર ૭૧ અને ૭૨ મા) વર્ણવામા આવેલી છે અને ઘડી અધ્યયન ૩૨, ગાથા ૫, ૭ મા આવતી નીચેની હકીકત વાંચીએ છીએ — “જન્મ અને મરણનું કારણ કર્મ છે અને જન્મ અને મરણ એ જ હું ક્ષ કહવાય છે ” આ ઉપરાંત વીજી પળ ઉપરના અર્થનું મઠતી ૩૪, ૪૭, ૬૦, ૭૧, ૮૬ અને ૧૧ મી ગાથાનો સક્ષિત અર્થ નીચે પ્રમાણે છે — “પરંતુ જે મનુષ્ય હૃદયોના વિષયોથી અને માનસિક લાગણીઓથી [આનો અર્થ બોદ્ધ તત્ત્વજ્ઞાનની ‘વેદના’ ના અથ સાથે ઘણાં જ મળ્લો આવે છે] ઉદાસીન રહે છે તેને જ્ઞાક સ્પર્શ કરી શકતો નથી જો કે તે તસારમા મોહુદ છે તો પણ તે હું ક્ષ પરપરાથી, જેમ કમલનું પાન પાળીથી અલિપ્ત રહે છે તેમ, તે મનુષ્ય પણ અલિપ્ત રહે છે ”

આ સિવાય વૈદ્ધ ગ્રંથમા, નાતપુત્ત સર્વજ્ઞાન અને સર્વ દર્શન પ્રાપ્ત કરવાનો દાવા કરે છે—એ પ્રકારનું જે કથન છે તેને સ્પષ્ટ કરવા માટે પ્રમાણ આપવાની જરૂર નથી. કારણ કે આ તો બન ધર્મનું સ્થાપ એક મૈલિક તત્ત્વ જ છે

નિગંઠોના સિદ્ધાન્ત વિષયક વીઝી વધારે માહિતી મહાવગ્ગ ૬, ૧૧ (S B E, પુ. ૧૭, પૃ. ૧૦૮) આદિમાથી મઠી આવે છે. એ સ્પષ્ટ સીદ્ધિ^{૧૬}નું એક વૃત્તાન્ત આપેલું છે. તે સીદ્ધિ લિચ્છવિઓનો સેનાપતિ હતો અને નાતપુત્તનો ઉપાસક હતો. તે બુદ્ધને મળ્યા હૃડનો હતો પરંતુ નાતપુત્ત જિયાવાદી હાઈ બુદ્ધ અધિવાદી હતો તેથી તેની પાસે જવાની તેને ના કહેવામા આવતી

૧૫ “સીદ્ધિ”નું નામ અગતી [કલકતા આદિતિ, પુ. ૧૦૭] આ હાર્નિંગના વગસગદનાઆ, પરિવિષ્ટ, પ્ર. ૧૦] મા મઠતી રમા એક સિષ્ય તરીકે પણ આવડું છે, ૧૧૦ ત સાધુ શ્રાવર્થી મહાવગ્ગમા આવતા આ નામ સાથે તર્જાં દરતાં થતાં શકાય તમ નથી

હતી. પરંતુ તે તેમની આજ્ઞાને અહંથી પોતાની મેઝ બુદ્ધ પાસે ગયો અને બુદ્ધની મુલાકાતના પરિણામે તે તેનો અનુયાયી બન્યો. આ વૃત્તાન્તમાં નિગળ્ટોને જે ક્રિયા-વાદી જણાવવામાં આવ્યું છે, તે માત્ર આ પુસ્તકમાં અનુવાદિત સૂત્રોના ઉદ્દેશથી સુસિદ્ધ થાય છે:—સૂત્ર-ક્રુત્તાઙ્ક ૧, ૧૨, ૨૧, (પૃ. ૨૧૯) માં જણાવે છે કે 'તીર્થંકર-અર્થને ક્રિયાવાદ પ્રસ્પવાનો—અપદેશવાનો અધિકાર છે.' આચારાંગસૂત્ર ૧, ૧, ૧, ૪ (ભાગ I પૃ. ૨) માં પણ આ વિચાર, આ પ્રમાણે દર્શાવવામાં આવ્યો છે:— 'ત આત્માને માને છે, જગત્ને માને છે, ફળને માને છે, કર્મને માને છે, (એટલે કે તે આ પળા જ કરેલા છે અને જે આ પ્રમાણેના વિચારોથી સ્પષ્ટ જણાય છે) તે કર્મ મેં કર્યું છે; તે વીજા પાસે કરાવીશ; ત હું ધીજાને કરવા દર્શા.' इत्यादि.

મહાવીરના જે ધીજા શિષ્યન બુદ્ધે પોતાનો અનુયાયી બનાવી લીધો હતો તેટલું નામ અપાલિ હરું. મહિષ્મતિ-કાયાના ૫૬ મા પ્રકરણમાં જણાવ્યા પ્રમાણે તેણે બુદ્ધની સાથે, એ માત્રનો વાદ કર્યો હતો કે—'નિગળ્ટ નાતપુત્ર કહે છે તેમ કાથિક પાપ મોટું છે, કે બુદ્ધ માને છે તેમ માનસિક પાપ મોટું છે? એ સંવાદના પ્રારંભમાં અપાલિ કહે છે કે, મારા ગુરુ સાચારણરીતે કર્મ અથવા કૃત્ય માટે દણ્ડ (શિક્ષા) શબ્દનો ઉપયોગ કરે છે.' જો કે આ ઉદ્દેશ સાચો છે પરંતુ સંપૂર્ણરૂપે નહિ. કારણ કે જૈનસૂત્રો-મા કર્મ અર્થમાં પણ 'કર્મ' શબ્દનો તેટલો જ ઉપયોગ થયેલો છે. અને દણ્ડ શબ્દનો પણ તેટલો જ થયેલો છે. સૂત્રક્રુત્તાઙ્ક ૨, ૨ (પૃ. ૨૫૭) માં ૧૧ પ્રકારના પાપકર્મનું વર્ણન કરેલું છે જેમાં પાંચ સ્થલમાં 'દણ્ડસમાદાન' શબ્દ આવેલો છે અને વાકીના સ્થલમાં 'કિરિયાયાન' શબ્દ આવેલો છે.

નિગળ્ટ અપાલિ વિશેષમાં જણાવે છે કે કાથિક, વા-થિક અને માનસિક એમ ત્રણ પ્રકારનો દણ્ડ છે. અપા-લિનું આ કથન, સ્થાનાંગ સૂત્રના ત્રીજા પ્રકરણમાં (શુઓ ઇન્દિ. ઇન્દિ. પ્ર. ૧, પૃ. ૨૫૧) જણાવેલા જૈન સિદ્ધાન્તની સાથે પૂર્ણ મળતું આવે છે.

અપાલિનું ધીજું કથન કે, જેમાં તે નિગળ્ટોને માનસિક પાપો કરતાં કાથિક પાપોને વધારે મહત્ત્વ આપનારા જણા-વે છે, તે કથન જૈન સિદ્ધાન્ત સાથે ઘણાં જ મળતું આવે છે. સૂત્રક્રુત્તાંગ ૨, ૪ (પૃ. ૨૧૮) માં એવા એક પ્રશ્નની ચર્ચા કરવામાં આવી છે કે જનજાળપણે કરાવે-લા કૃત્યનું પાપ લાગે કે નહિ. ત્યાં આગળ સ્પષ્ટ રીતે જણાવેલું છે કે નિશ્ચિત રીતે તેનું પાપ લાગે છે. (સરલા-થો પૃ. ૨૧૯ ટિપ્પણ ૬) વળી તે જ સૂત્રના ૬ ઠા અધ્યયનમાં (પૃ. ૪૧૪) ધીજોના એ મંતવ્યનું કે— 'અમુક કર્મ પાપયુક્ત છે કે પાપરહિત છે તેનો નિર્ણય તે કર્મ આચરનાર મનુષ્યના આશય ઉપર આધાર રાખે છે,' જીવ જીવન અને ઉપહાસ કરવામાં આવ્યો છે.

અંશુત્તર નિકાય ૩, ૭૦, ૩ માં નિગળ્ટ શ્રાવકોના આચારોનું વર્ણન આવેલું છે. તે માગતું નીચે પ્રમાણે માપાન્તર આવું છે. 'હે વિશાસ્ત્રા, નિગળ્ટનામે ઓઢલા-તો શ્રમણોનો એક સંપ્રદાય છે. તેઓ શ્રાવકોને આ પ્ર-માણે ઉપદેશ આપે છે. "હે મત્ર, અહીંથી પૂર્વદિશા તરફ એક યોજન પ્રમાણ મૂમિથી બહાર રહેતાં જીવતાં પ્રાણિ-ઓની હિંસાથી તમારે વિરમવું, તેવી જ રીતે દક્ષિણ, પશ્ચિમ અને ઉત્તર દિશા તરફની યોજન-પ્રમાણ મૂમિથી બહાર રહેતા પ્રાણિઓની હિંસાથી વિરમવું" આ રીતે તેઓ કેટલાંક જીવતાં પ્રાણિઓને વચાવવાનો ઉપદેશ આપી દયાનાં ઉપદેશ કરે છે; અને એજ રીતે વળી તેઓ કેટલાંક જીવતાં પ્રાણિઓને જ વચાવવાનો બોધ કરી કૂરતાં શિક્ષકાવે છે. 'એ સમજાવવું કેઠિન નથી કે આ શબ્દો જોના દિગ્વિરતિ ઘટને ઉદ્દેશીને કહેલા છે કે, જે ઘટમાં શ્રાવકને અમુક હદ બહાર મુસાફરી કે વ્યાપાર વિ-ગેરે નહિ કરવા સંબંધીનો નિયમ ઉપદેશવામાં આવ્યો છે. આ વતનું પાલન કરનાર મનુષ્ય, અલગત, પોતે છૂટી રાહેલી મૂમિ બહારના પ્રાણીની હિંસા તો ન જ કરી શકે 'એ તો સ્પષ્ટ જ છે. પરંતુ; આવા એક બિદોય નિયમને વિ-રોધી સમ્પ્રદાયે કેવા વિકૃત રૂપમાં અભિવ્યક્ત છે,? પણ એમાં એ આશ્ચર્યજેનું કંઈ નથી. કારણ કે કોઈ પણ ધાર્મિક સમ્પ્રદાય પાસેથી, તેના વિરોધી મતના સિદ્ધાન્તોનું યથા-

ર્થ અને પ્રામાણિક આલેક્ષન મેલ્લવાની આપને આશા ન જ રાખવી જોઈએ. તેઆ સ્વામાયિક રીતે, તે સિદ્ધાન્તોનું આલેક્ષન એવા જ રૂપમાં કરશે કે જેથી તેમાં દે-સાઈ આવતા દોષો વધારે મોટા પ્રમાણમાં બતાવી શકાય. જેનો પણ આ વાવતમાં બોદો કરતા લેશમાત્ર ઉતરે તેમ નથી. તેમણે પણ બોદોના સિદ્ધાન્તોને આ જ પ્રમાણે વિકૃત રૂપમાં આલેખ્યા છે. બોદોના એ મતવ્યય કે—પાપ એ તેના આચારનારને ઓશ્ય ઉપર આધાર રાખે છે, તેનું જૈનોએ, આ પુસ્તકના પૃ. ૪૧૪ ઉપર, કેનું અસત્ય નિરૂપણ કર્યું છે તે જોવા ઝેનું છે. એ ઠેકાણે જૈનોએ બો-દાના એક મહાન સિદ્ધાન્તને મિથ્યા કલ્પિત અને મૂર્છતા-પૂર્ણ ઉદાહરણ સાથે મેલ્લો ઉપહાસ પાત્ર બનાવી દીધો છે.

અગુત્તર નિકાયનો એક ઉલ્લેખ જેની યોદ્ધીક વર્ણના આ ઉપર કરવામાં આવી છે તેમાં વઢી આગલ ચલા-વતા જળાવવામાં આવ્યું છે કે—‘ઉપોસપના દિવ-સોમા તેઓ (નિગંઠો) શ્રાવકોને આ પ્રમાણે ઉપદેશ આપે છે કે “ મત્ર, તમોર સઘઢાં વઢો કાઢી નાલવાં જોઈએ અને કહેવું જોઈએ કે—હું કોઈનો નથી અને માલ કોઈ નથી. ” અહીં વિચારવાનું છે કે, તેના માતા-પિતા તેને પોતાનો પુત્ર તરીકે માને છે અને તે પણ તેમને પોતાના માતા-પિતા માને છે તેનો પુત્ર અગર તેની પત્ની, તેને પિતા અગર પતિરૂપે માને છે. અને તે પણ તેમને પોતાના પુત્ર અગર પત્ની તરીકે માને છે. તેના શુભામો અને નોકરી તને પોતાનો માલિક યા શેઠ માને છે અને તે પણ તેમને તેઆ પોતાના શુભામો અગર નોકરી છે, તેમ માને છે. આ કારણથી (નિગંઠો) તેમને (શ્રાવકોને) ઉચ્ચ રીતે બાલવાનું કહી તેમની પાસેથી અસત્ય માણ કરાવે છે વઢી એ રાત્રી વ્યતીત થયા બાદ, તેઓ, તે તે વસ્તુઓનો ઉપભોગ કરે છે જે સર્વ (તેમના, મોટે) અદત્તાદાનરૂપ ડ. આથી હું તેમને અદત્તાદાન લેવાના પણ દોષી તરીકે માનું છું ’

આ વર્ણન ઉપરથી સમજાય છે કે નિર્ધન્ય—ઉપાસકના ઉપોસપના દિવસોવાળા નિયમો સાધુજીવનના નિયમો

જેવા જ હોવા જોઈએ. મૂઠ્ઠ્ય અને સાધુજીવનના નિયમોનું મિત્રત્વ વીજા દિવસોમાં રહેલું હતું. પરંતુ આ વર્ણન જૈનોના પોસહવતના નિયમો સાથે પૂરેપૂરું મળતું આવતું નથી. પ્રા. માઠારકર, તત્ત્વાર્થસાર દીપિકાના આધારે પોસહવતનું સ્વરૂપ નીચે પ્રમાણે આપે છે; અને આ વર્ણન વીજા તેવા વર્ણનો સાથે બરાબર સગત થાય છે માઠારકર લખે છે:—‘પોસહ એટલે દરેક પક્ષની અટ્ટમી અને ચતુર્દશીના પવિત્ર દિવસે ઉપાસ કરવો. અથવા એકાશન કરવું અથવા એક જ ગ્રાસ સ્વર્ગ. તે દિવસોમાં યતિની માફક વૈરાગ્ય ધારણ કરી સ્નાન, લેપન, આમરણ, સ્ત્રી સગમન, સુગન્ધી ધૂપ-દીપ દ્યાદિના ત્યાગ કરવો’ જો કે વર્તમાન જનાનું એ પોસહવત—પાલન બોદો કરતાં થયું સસત છે, એ વાત સરી છે, તો પણ તે, નિગંઠ—નિયમો કે જેમનું વર્ણન ડાર આપવામાં આવ્યું છે, તના કરતાં થયું શિથિલ હોય તેમ જણાય છે મારા જાણવા પ્રમાણે જૈન મૂઠ્ઠ્ય, પોસહમાં કપઢાંનો ત્યાગ કરતો નથી. પણ વાતની આમૂષણો અને વીજા વિલાસોનો ત્યાગ કરે છે તેમ જ દીક્ષા ગ્રહણ કરતી વસતે જેમ સાધુને ત્યાગના સૂત્રો બોલવા પડે છે તેમ તેને બોલવા પડતાં નથી. આ ઉપરથી એમ જણાય છે કે—કા તો બોદોનું આ વર્ણન મૂલ મેરેલું અગર અસત્યમૂલક હોય અને કા તો જૈનોએ પોતાના નિયમોમાં કાઈક શિથિલતા દાલવા કરી હોય.

દીઘનિકાય ૧, ૨, ૩૮ (બ્રહ્મજાલ સૂત્ર) માં આવતા નિગંઠ વિષયક ઉલ્લેખ ઉપરની પોતાની વીકામાં એક ઠેકાણે બુદ્ધધોષ લખે છે કે—‘નિગંઠો આત્મા વર્ણ-રહિત છે એમ માને છે, અને આજીવિકો આત્માના વર્ણની અનુસાર સમસ્ત માનવ જાતિના ૬ વિભાગો પાંચે છે પરંતુ મૃત્યુ પત્તી પણ આત્માનું અસ્તિત્વ ધરાવે છે અને તે વધારોથી મુક્ત (અરોગી) હોય ડ, એ વાવતમાં નિગંઠો અને અજીવિકો બંને સમાનમત વાઢાં છે ’ ડેરટના શબ્દોનો અર્થ એમ તેમ હો, પરંતુ તેની ઉપરનું વર્ણન તો, આ પુસ્તકના પૃ. ૧૭૨૩૫ર આપેલા જૈનોના આત્મ સ્વરૂપના વર્ણન સાથે વરાવર મળતું આવે છે એક વીજા

पद्मरामा (10 p 169) बुद्धचाप जणां ३ के निगण्ठ नातपुत्त थदा पाणीन सचत्तन मान ३ (सा किर सीतो दक सत्तसज्जा होति) अन तथा त तनो उपयोग करता नथा जनेनो आ मतव्य अत्यंत प्रसिद्ध होवाधी तेनी सार्वार्थी आपग माटे सूत्रोमांथी अवतरणो आप धानी आवश्यकतान हु निरर्थक मानु छु

पाली ग्रन्थामाथी प्राचान निगण्ठोना मतव्यो सबधी जे काई माहीता हु एकन करी शक्या छ, लगभग त बधी उपर आपी दीधी छ जा क आपण इच्छीए तना करता त घर्णी अल्प प्रमाणमा छ, ता पण तथा तनी किंमत बिहङ्गुल आऱी तगाय तम नथा प्राचीन निगण्ठाना मतव्यो अन आचाराना सबधमा ज उल्लेख आपण एकन कर्या छ त सचळा, एक अपवादान बाद करता, वर्तमान जन मतव्यो अने आचारा साथ मळता आवे ३ अन तमांना कटगतक तो जैनेना सास माळिक विचारो छ आ उपरथी अपणन एम सदह करवानु जराए कारण नथा जइतु क आ बौद्ध ग्रंथोमाना गोथो अने जैन सिद्धान्ताना रचना बधना—अतर्वर्ती काळमां जन सिद्धा तोमा झाजा फेरकार ध्यो होय

मे जाणी जाइन ज निगण्ठ नातपुत्तना मत विषयक एक प्रधान फकरानु विवचन करु आ स्थळ मुत्तवी राखु छ कारण के ए फकरामा आपेलो दावत उपरथी आपणन एक नवी ज पद्धतिए तपास करवानी जरूरत रहे छ आ फकरा दीधनिकायनो सामञ्जस्यसुत्तमा आपलो छ हु तनु अहिं सुमङ्गलविलासनी नाम बुद्धचाप धाली टीकाना अनुसार भाषा तर आउ छु—^१ महाराज, अहिया एक निगण्ठ चारे दिशाना नियमनथी सुरक्षित छ (—चातुष्याम सवरसवुता) हे महाराज, कबी रीते नि गण्ठ चार दिशाना सवरथी रक्षित ३ महाराज, आ निगण्ठ राषट्टु [पङ्क] पाणी वापरता नथी सर्व दुष्ट कर्म करता नथा अन सचळा दुष्कमाना विरमणवद ते सर्व पापोथा मुक्त ३ अने सर्व प्रकारना दुष्कमांथी, सचळा पापकर्मथी निवृत्ति अनभव ३ आ प्रमाण

ह महाराज, निगण्ठ चार दिशाना सवरथी सवृत्त छ अन महाराज, आ प्रमाण सवृत्त होवाधी त निगण्ठ नातपुत्तना आत्मा मोटी याग्यतागळो, सयन अन सुस्थित ३^२ अलवत्त, आ जैनधर्मनु यथार्थ तेम ज सपूर्ण वर्णन नथी परतु तमां जैनधर्मनु प्रिरोधी तत्त पण नबी. आना शब्दा जैनसूत्रोना श दो जवा ज छ मे वाज^३ स्थळ जणाव्यु छ तम 'चातुष्याम सवर सवुतो' ए वाञ्छ मात्र टीकाकार ज नहीं परतु मूळ ग्रंथकारे पण खोटी रीति समजतु छ कारण क पाली शब्द 'चातुष्याम' त प्राकृत शब्द 'चातुष्णाम' ना बराबर थाय छ अन आ प्राकृत शब्द नो एक प्रसिद्ध जैन पारिभाषिक शब्द छ जे महावीरना (पंच महावय) पाच महाव्रतोधी भिन्न एवा पाधनायना चार व्रतोना वाचक छे आधी आ स्थळे बौद्धांए, न सिद्धा-न वास्तविकमा महावीरना पुरोगामी पार्श्वनाथन लागू पड छ तन, महावीर उपर आरोपिन करवामा मूल कोरल छ, एम हु धार छु आ उपरथी एम सूचित थाय छ क बौद्धोए आ शब्दन निगण्ठोना धर्मवर्णनमां लीधलो हावाधी तमणे ते पार्श्वनाथना अनु याग्येथोना मुखेथी सामञ्ज्यो हस, अने बीजी ए पण क स्पना थई शक क महावीरना सहाधित मता जो बुद्धना समयमा सर्व सामान्यरीते स्वीकाराया होत तो पार्श्वना थना अनुयायिया पण त बखने ते शब्दो उपयोग नहीं करता होत बौद्धानी आ भूल द्वारा हु जैनेनी ए बरपराने सत्य स्थापित करी शकु छ क महावीरना समयमा पण पार्श्वनाथना शिष्या विद्यमान हता

आ पद्धतिए तपास करवानी शकआत करता पहला हु बौद्धानी एक बीजी पण अर्धपूर्ण मूल तरफ

१ ग्रामभाट्ट, Pāṇi sept suttas मा, पेगर्बी (Gogeri) अन बर्नक (Burnouf) नांज नायान्तरा आपेला छे त तेमण टीकाना सहायता लीपा यिना कोरल हावाधी दुर्लक्ष करवा जवा छ उद्धरणनु वर्णन पालगत ह। क क रित हतु ते संदेश छ

२ बुजी इन्डि एन्स मा ९ शृ १०० मां प्रश्न यएने मारो On Mahāvīra and his Predecessors मा मनो निबन्ध

વાચકરૂઢ ધ્યાન લેવવા માંડુ રૂ બૌદ્ધા નાતપુત્તને અમ્મિ વેસન અર્થાત અગ્નિવૈશ્યાયન કહે છે, પરંતુ જૈનોના મતાનુસાર તે કાશ્યપ હતા, અને પોતાના તીર્થંકરો સઘલી આવી વાતતામા જૈનોનુ જ વહેતુ વિશ્વાસપાત્ર મનાવુ જોઈએ વઢી મહાવીરનો એક મુલ્ય શિષ્ય, જે સુધર્મા નામ હતો અને જેને સૂત્રોમા મહાવીરના ધર્મના મુલ્ય ઉપદેશક ઢરીકે ક્રતાવેલો છે તે પોતે અગ્નિવૈશ્યાયન હતો, અને તેણે જૈન ધર્મનો પ્રસાર કરવામા મુલ્ય ભાગ મજવેલો હોવાથી બ્રહ્મના લીજા માળસા શિષ્યને શુદ્ધ સમજી લેવાની મૂલ કરી હોય અને તેથી કરીન શિષ્યનુ મોત્ર મુલને લગાડી દેવામા આવ્યુ હોય, તે વણુ સમીવિત છે આ રીતની બોદ્ધાએ કરેલી વેવડી મૂલ મહાવીરની પૂર્વે પાર્શ્વનામના તીર્થંકરની તથા મહાવીરના મુલ્ય શિષ્ય સુધર્માની હયાતીની સાક્ષી આપ છે

પાર્શ્વ એ એક પેતિહાસિક પુરુષ હતા તે વાત તો વધી રીત સમાવિત લાગે છે કેશી^૧ કે જે મહાવીરના સમયમા પાર્શ્વના સમ્પ્રદાયના એક નેતા હોય તેમ દેશાય છે તેનો તથા અન્ય પણ તેવા અનુયાયીઓના જન સૂત્રોમા પણ ઢેકાણે ઉલ્લેખો થયેલા છે, અને તે ઉલ્લેખો એવી સરલ રીતે થયેલા છે કે જેથી કરીને તેની સત્યાસત્યતાના સઘવર્મા શકા ઉઠાનવાને કારણ મઢ્યુ નથી ઉત્તરાધ્યયનના ૨૩ મા અધ્યયનમા જુના અને નવા સમ્પ્રદાયનો પરસ્પર મેલ કેશી રીત થઈ ગયો હતો વ ક્રતાવનારી, એક કપા આ વિષયમા ઘણી જ અગત્યની છે કેશી અને મૌતમ કે અઙા વને જેન ધર્મના વે સમ્પ્રદાયોના પ્રતિનિધિ તથા નેતા હતા, તેઓ પોતાના શિષ્યપરિવાર સહિત એક વસતે શ્રાવસ્તી પાસેના ઉચાનમા મેળા મળે છે, અને મહામતોની સલ્યા વિષયક તથા સચેલકાચેલક અવસ્થા વિષયક તેમના ધાર્મિક મતભેદો વધાર વિવેચન કર્યા સિવાય માત્ર સહજ સમજાવીને દૂર કરવામા આવે છે. અને ત્વરાથી મૌલિક નીતિવિષયક વિચારાના સઘવર્મા પ્રત્યેક પક્ષ દૃષ્ટાન્તો દ્વારા એક લીજાના વિચારો સમજી

સમજાવી નિ શક વની સપૂર્ણ એકમત થાય છે. વને સમ્પ્રદાયો વધ કાર્ક મતભેદ જેનુ જોવામા આવે છે, પરંતુ પરસ્પર દ્રષ યા વર વિલકુલ જોવાતુ નથી. આ વે પ્રાચાન સમ્પ્રદાયના અનુયાયીઓને ‘પચ મહાવત પ્રતિપ્રાદનાર’ મહાવીરના ધર્મનો સ્વીકાર કરવો પડ્યો હતો, એ વાત સ્પષ્ટ છે, તો પણ તેઓ પોતાની કટલીક જૂની રૂઢિઓને પણ વઢગી રહ્યા હતા સાસ કરીન વધ વાપરવાના વિષયમાં કે જે રૂઢિઓ મહાવીરે ત્યાગ કર્યો હતો, તેમ આપણે માનવુ જોઈએ આ કલ્પનાનુસાર આપણે શ્વેતામ્બર અને દિગમ્બર સમ્પ્રદાયલ્લી વે ફિરકાની ઉત્પત્તિનુ મૂલ કારણ પણ ક્રતાવી શકીએ ડીએ, કે જેના સઘવર્મા શ્વેતામ્બર અને દિગમ્બર વને સમ્પ્રદાયમા મિત્ર મિત્ર અને પરસ્પરવિરોધી વતકયાઓ પ્રચલિત ડ’ આ ભેદ દલીલી રીતે જ કાર્ક આકાસ્મિક થયા ન હતા, પરંતુ અસલના એક મતભેદ [ઉદાહરણ તરીકે જેનો કે શ્વેતામ્બર મતના કેટલાક ગઢઝાનો વધે અત્યારે એ હયાતી ધરાવે છે] કાઢે કરીને વિભાગના રૂપમા પરિણત થયો અને આસરે તેણે એક મહાત્મ ધર્મભેદનુ રૂપ લીધુ.

બૌદ્ધ ગ્રન્થોમા મઢી આવતા ઉલ્લેખો, નાતપુત્તની પૂર્વે પણ નિર્ગન્થાની હયાતી હતી, એ પ્રકારના આપણા વિચારને ઢડ કરે છે જ્યારે બૌદ્ધ ધર્મનો પ્રાદુર્ભાવ થયો ત્યારે નિર્ગન્થોનો સમ્પ્રદાય એક મોટા સમ્પ્રદાયરૂપે ગણાતો હોવો જોઈએ. એ નિર્ગન્થોમાના કેટલાકને બૌદ્ધ મિટકોમા, બુદ્ધના અને તેના શિષ્યોના વિરોધી તરીકે અને વઢી કેટલાકને તેના અનુયાયી થયેલા તરીકે વર્ણવેલા છે કે જે ઉપરથી આપણે ઉપર પ્રમાણે અનુમાન કરી શકીએ છીએ ઘથી ડલદૂ એ પ્રથોમા કોઈ પણ સ્થલે ઘેનો ઉલ્લેખ કે સૂચન સરસુ પણ થયેલ જોવામા નથી આવતુ કે નિર્ગન્થોના સમ્પ્રદાય એ એક નરીન સમ્પ્રદાય છે આ ઉપરથી આપણે અનુમાન કરી શકીએ ડીએ કે નિર્ગન્થા બુદ્ધના જન્મ પહેલાં ધણા લાવા કાઢથી અસ્તિત્વ ધરા-

૧ જ્ઞાનમ્બર અને દિગ્વેદર સમ્પ્રદાયોના ઉત્પત્તિના સઘવર્મા અર્થને આરિષ્ટલક સાસાવગેના અર્થને ૨ મા મગમા પ્રદ્ય ધરને મારો નિવધ રૂઢી.

૧ રાજપ્રશ્નોમા પાર્શ્વને (!) રાજા પદથી સાથ સગાદ થયા હતા અને ત્યાર બાદ રાજાનું તેને પોતાના ધર્માનુયાયી બનાવવા હતો

વતા હશે. આ અનુમાનને વીજી એક વાક્ય દ્વારા પણ ટેકો મળે છે. બુદ્ધ અને મહાવીરના સમકા-
લાન એવા મન્સલિલે ગોસલે મનુષ્ય જાતિની છ ૨-
ગોંમા વહેંચણી કરી હતી. 'બુદ્ધધોષના કહેના મુજબ
આ છ વર્ગમાંના ઝીલાવર્ગમા નિર્ગ્રન્થોના સમાવેશ કરવામા
આવ્યો હતા. હવે વિચારીએ કે નિર્ગ્રન્થો જો તે જ અર-
સામા હયાતીમા આવ્યા હોત તો તેમની ગણના એક
શાસ-એટલે કે મનુષ્ય જાતિના એક સ્વતંત્ર-પેટાડિમાગ
તરીકે કદાપિ ન કરવામા આવી હોત જરૂર તો નિર્ગ્ર-
ન્થોને એક મહત્વના અને સાથે મારા માનના પ્રમાણ પ્રા-
ચીન બૌદ્ધો માનતા હતા તેમ એક પ્રાચીન સપ્રદાયરૂપે
લખ્યા હતા. મારા ઉપરોક્ત છઠ્ઠા મતની પ્રુટિમા નીચે
મુજબની દલીલ પણ છે મરિહમનિકાય, ૩૫ મા બુદ્ધ અને
સચ્ચક નામના એક નિર્ગ્રન્થપુત્ર વધે થયેલા શાવદન વર્ણન
અપેક્ષ છે. સચ્ચક શાવદમા નાતપુત્રને હરાબ્યાની વઢાઈ
મારતા હોવાથી તે નિર્ગ્રન્થ હોય તેમ લાગતો નથી. અન
બીજુ એ કે જે સિદ્ધાન્તોહ તે સમર્થન કરવા મધે છે તે
સિદ્ધાન્તો જોનોના નથી આ ઉપરથી એ વિચારવા એક છે
કે એક પ્રસિદ્ધ શાવદી કે જોનો પિતા નિર્ગ્રન્થ હતો અને જે
પોતે બુદ્ધનો સમકાલીન હતો, તેના પુરાવા ઉપરથી નિર્ગ્ર-
ન્થોનો સપ્રદાય બુદ્ધના સમયમા સ્થાપિત થયો હતો તેમ
માર્ગે જ માની શકાય.

હવે આપણે જે જે જૈનેતર પાલટી મતાવલવિઓ
સામે જૈનોએ પોતાનો તાર્કિક વિરોધ ચતાવ્યો છે, અને તે
સત્યને જે ઉદ્ધાસા તેઓએ કર્યો છે, તે તપાસીએ, અને તેની
સાથે બૌદ્ધોના ઉદ્દેશો સરલાવીએ સૂત્રકૃતાગ ૨, ૧, ૫૫
(પૃઠ ૩૮૮) અને ૨૧ (પૃઠ ૩૪૩) મા ઘણે અંશે
પરસ્પર મલતા આવતા એવા જ જડવાદી સિદ્ધાન્તોનો

ઉદ્દેશ છે પરંતુ સૂત્રમાં જ લાગે આત્માને એક અને
અભિન્ન માને છે તેમના એક અભિપ્રાયનું રર્ણન છે, અને
વીજા સૂત્રમા પચમૂતને નિત્ય અને વધુ તેનું જ વનેનું છે
તેમ માનનાર એક સિદ્ધાન્તનું વર્ણન અપેક્ષ છે. વત્રે મત-
ના અનુયાયીઓ જીવતા પ્રાણીની હિંસા કરવામા પાપ
માનતા નથી આવા જ પ્રકારનો મત સામન્ન્યકામુતમાં
પૂરણ કસ્સપ અને અજિત કેસકચરિત્રો હોવાનું થતાનું
છે. પૂરણ કસ્સપ પુણ્ય અગર પાપ જેવી કોઈ વસ્તુને
માનતો નથી અને અજિત કેસકચરિત્રોનો એવો સિદ્ધાન્ત
છે કે અનુમતવાર્તાત મતચ્ચ કે જે લોકોમા પ્રચલિત છે
તેન મલ્લુ કોઈ તત્ત્વ જ નથી આ ઉપરાન્ત તે એમ માને
છે કે 'માણસ (પુરિસો) ચાર મૂતોનો વનેલો છે, જ્યારે
તે મરી જાય છે ત્યારે પૃથ્વી પૃથ્વીમાં, પાણી પાણીમાં,
અગ્નિ અગ્નિમા, વાયુ વાયુમાં, અને જ્ઞાનેન્દ્રિયો દ્વારા'
(અથવા આકાશમા) વિલીન થઈ જાય છે ઠાઠકી-
ને ઉપાદનાર, ચાર પ્રકારો મુદ્ધાને સ્મદાનમૂર્તિમાં લઈ
જાય છે ત્યારે કસ્પાત કરે છે, કપોત રગના હાલકા
વાકી રહે છે અને વીજા સચ્ચકા (પદાર્થો) વલ્લોને
મસ્મીમૂત થઈ જાય છે. આ છેલ્લું સૂત્ર થોડા ફેરફાર
સાથે સૂત્રકૃતાગ ના પૃઠ ૩૪૦ ઉપર આવે છે — 'અન્ય
જનો મુદ્ધાને વાલ્લવા માટે લઈ જાય છે. જ્યારે અગ્નિ
તેને વાલ્લી નાંશે છે ત્યારે માત્ર કપોતરગના હાલકા વાકી
રહે છે અને ચાર ઉપાદનાર ઠાઠકીને લઈ ગામ તરફ
પાછા વળે છે'

જડવાદના વીજા સિદ્ધાન્ત (પૃ. ૩૪૩, ૨૨, અને
પૃ. ૨૩૭) ના સવધમા એક વીજી શાસ્ત્રોના પણ ઉદ્દેશ

૧ માકાશન બીજા અધ્યાયમા પંચમા તત્ત્વ તરીકે માન્યુ નથી,
પરંતુ જૈન ધર્મોમા તે માન્યુ છે તુલો આગલ પૃઠ ૩૪૩ અને પૃઠ
૨૩૭ ગાથા ૧૫ આ માત્ર એક શાસ્ત્રિય ભેદ છે નહીં કે તાર્કિક

૨ હ આ સ્વચ્છ કેન મુચ્છ ધર્મોને સામસામ મુકુ છુ અર્થો કરાને
તેમની વચ્ચનુ સામ્ય વધારે સ્પષ્ટીતે સમજી શકાય —

આશન્દિ પચમા પુરિસા મતમા | અદ્ધગાદ, પરદિ ગિન્નદ,
વાય ગચ્છન્તિ યાવ બલ્લાદના | અગ્નિજ્ઞાનોમત સરીરે કવા
વદાનિ પચ્છાપન્તિ, કાપાતકાનિ | તવગ્ગાદ અટ્ટાનિ અ સન્દિ
જટ્ટાનિ મગ્ગિન મસન્નત દુત્થો | પચમા પુરિસા ગામ પચા
ગચ્છન્તિ

૨ ત્રીપનિકાય, સામન્ન્યકામુત ૨૦

૦ સુમંગલવિજ્ઞાસીના પૃ ૧૬૨મા બુદ્ધવાચ સ્વદ જગાવ છે કે ગો
સાહ પોતાના શિષ્યો જ ચતુર્થ વર્ગના હતા તેના કસા નિર્ગ્રન્થો
ને ફલકી પ્રતિના ગળ્યા છે ગાથાએ તો મિત્તસુઓને તથીજ ફલકા
પ્રકારના ગળ્યા છે કે જ વાક્ય ઉપર બુદ્ધવાચ લખ્ય આવ્યું નથી
તે ઉપરથી જાણાવ છે કે આ મિત્તસુપાન બૌદ્ધ સાધુઓ કરતાં
યે મિત્ત માનતો હતા

થયેલો છે. તે મતમા પાંચ મૂત ઉપરાંત છટુ તત્ત્વ નિત્યત્વામા મનાય છે. આ મત તે અત્યારે વૈશેષિક માનના દર્શનથી જે પ્રસિદ્ધિમા આવેલું છે તેનું પ્રાચીન અથવા લોકપ્રસિદ્ધ રૂપ છે. બૌદ્ધધર્મામા આ દર્શનના સત્યાપક તરીકે પશુપ કચ્ચાયન નિર્દિષ્ટ થયેલો છે. તેનો મન એવો હતો કે આશુ વિશ્વ સાત વસ્તુનું (પદાર્થોનું) વનેછું છે અને તે સર્વે પદાર્થો નિત્ય^૧ નિર્વિકાર અને પરસ્પર સ્વતંત્ર છે. તે પદાર્થો^૨ ચાર મૂત, સુખ, દુઃખ અને આત્મા એ પ્રમાણે છે. આ સર્વેની એક બીજા ઉપર કાર્ક અસર થતી નહીં હોવાથી કોઈ પણ પદાર્થનો વાસ્તવિક નાશ થતો નથી. મારે કહેવું જોઈએ કે સુખ અને દુઃખને નિત્ય માનવા છતાં પણ તે વસ્ત્રેની આત્મા ઉપર કાર્ક અસર થતી ન માનવી તે મારા અભિપ્રાય પ્રમાણે તો અજ્ઞાનતા મેળેલું છે. પરંતુ બૌદ્ધોએ કદાચ અસલ સિદ્ધાન્તોનું અસત્ય જાહેરન કર્યું હોય તો તે પણ સમ્ભવિત છે. પશુપ કચ્ચાયનના વિચારો અવશ્ય કરીને અક્રિયાવાદમા અતર્મત થાય છે. અને જ્ઞા વાસ્તવતા તે વૈશેષિક દર્શન કે જે ક્રિયાવાદી છે તેનાથી ભિન્ન પડે છે. આ વસ્ત્રે વાદો બૌદ્ધ તેમ જ જૈન સાહિત્યમા આવતા હોવાથી તેમની વિશેષ વ્યાખ્યા કરવી અહીં અત્યારે નહીં મળાય. જે સિદ્ધાન્ત આત્માને ક્રિયાશીલ અને ક્રિયાલિપ્ત (ક્રિયાથી બેના ઉપર અસર થાય તેવો) માને છે તે ક્રિયાવાદી કહેવાય છે. આ ધર્મના જૈનધર્મ, માર્ક્ષણધર્મો વૈકી વૈશેષિક અને ન્યાયધર્મો (આ બે દર્શનોના સ્પષ્ટ ઉદ્દેશો બૌદ્ધ અને જૈન ધર્મ જાણીએમા થયેલા નથી) તથા બીજા પણ એવા કેટલાંક દર્શનો—કે જેના નામ અત્યારે ઉપલબ્ધ થઈ શકતા નથી પરંતુ જેની હયાતીની માહિતી આપણે આપણા આ મધોમાંથી મેલથી શકીએ છીએ, તે સર્વેનો—સમાવેશ થાય છે. અક્રિયાવાદ તે સિદ્ધાન્ત કહેવાય છે જેમાં આત્માનું નાસ્તિત્વ અગર નિષ્ક્રિયત્વ અથવા કર્મલિપ્તત્વ પ્રતિપાદન કરવામા આવે છે. આ ધર્મમા સમગ્ર જઘવાદી મતો, માર્ક્ષણધર્મો વૈકી વેદાન્ત, સાંખ્ય અને યોગદર્શનો, તથા બૌદ્ધ ધર્મનો અતર્મક થાય છે. બૌદ્ધ ધર્મના ક્ષણિકવાદ તથા શૂન્યવાદનો ઉદ્દેશ સૂત્રક્રમાં ૧, ૧૪, ૪ થી અને

૭ મી ગાથામાં થયેલો છે. સાથે એ પણ જણાવવું જોઈએ કે વેદાન્તિઓ અથવા તેમના મતવ્યોનો પણ સિદ્ધાન્તમા ઘણે સ્થલે ઉલ્લેખ આવે છે. સૂત્રક્રમાં ગના બીજા પુસ્તકના પહેલા અધ્યયનમાં, પૃ ૩૪૪ ઉપર, ત્રીજા પાસક મત તરીકે વેદાન્તનું વર્ણન થયેલું છે. છટ્ટા અધ્યયનમાં, પૃ. ૪૧૭ ઉપર, તેનું ફરીથી વર્ણન મેળેલું છે. પરંતુ બૌદ્ધોએ ગણાવેલા છ તીર્થાંકોમા આ મતનો કોઈ પણ આચાર્ય નહીં હોવાથી આપણે તે ઉપર આ સ્પષ્ટે ધ્યાન દેતા નથી. ^૧

સૂત્રક્રમાં ગના બીજા ભાગના પ્રથમ અધ્યયનમાં, ચોથા પાસક મત તરીકે દૈવવાદ (Fatalism) નું વર્ણન આવેલું છે. સામન્જસ ફલપુત્રમાં આ મતનું મક્કલી ગોસાલ બીંચે પ્રમાણે પ્રતિપાદન કરે છે — ‘ મહારાજ, જીવાત્માઓની અપવિત્રતામા કોઈ હેતુ અગર પહેલા હયાતી ધરાવણુ એવું કાર્ક કારણ નથી તે અનન્યકૃત છે. તેમ જ તે પહેલા હયાતી ધરાવતી કોઈ બીજી વસ્તુથી ઉત્પન્ન થયેલી નથી. (તેવી જ રીતે) જીવાત્માઓની પવિત્રતામા પણ કોઈ કારણ અગર પૂર્વે હયાતી ધરાવતો કાર્ક હેતુ નથી. તે અનન્યકૃત છે. તેમ જ તેનું કોઈ ઉપાદાન કારણ નથી. આની ઉત્પત્તિ વ્યક્તિઓના કોઈ આચારનું પરિણામ નથી. તેમ જ પાપકાના કાર્યોની પણ તેના ઉપર અસર નથી. તેમ મનુષ્યપત્તનનું પણ તે ફલ નથી. જેને ઉત્પન્ન કરવામાં, પુરુષની શક્તિ, પ્રયત્ન, બલ, ધૈર્ય, અગર સામર્થ્ય યમાડ કોઈ કારણમૂત થતું નથી. સર્વે સત્ય, સર્વે પ્રાણિઓ, સર્વે મૂતો, અને સર્વે જીવો, પૃષ્ઠી તે પશુ, અગર વનસ્પતિ

૧ એક વાત વાદ રાસવા બેવી છે કે વેદાન્તિઓ પણ શુદ્ધના પ્રતિસ્પર્ધી તરીકે કામ વજાવતા અને તમો વૈદિક ધર્મના તત્ત્વજ્ઞ મા આગળ પદ્ધતિ હોવાથી આપણે એમ અનુમાન કરવું જોઈએ કે વૈદિક ધર્મની અસરવાળા લોકોથી વિદ્યાર માર્ક્ષણો દૂર જ રહેતા
* મત્તમ “ સત્ત્વે સત્તા, સન્ન વાચ , સન્ન મૂતા, સન્ને જીવા, એનો પાઠ છે જૈન મૂલોમાં પણ આ જ તત્ત્વથી અનન્ન ટેકાળે પાઠ આવે છે અને એ પાઠનું હેતુસર્મા all classes of living beings

સત્ત્વન વાચકોના મધા કર્કે ” એ મામાન્નર કરેલું છે. શુદ્ધ વૈદિક ટીકાનું મધાન્નર, ફોર્મ, ઉપામાગ્રહાઅન્નર પરિશિષ્ટ ન જાના પાન ૧૬ ઉપર બીંચે પ્રમાણ માનુ છે “ સત્ત્વે

ગમે ત હા પળ તમનામાના, કોઈમા આતર વલ, શક્તિ
તથા સામર્થ્ય નથી, પરંતુ આ દરક જીવ પોતાની સ્વમા
વનિયતિા વશ થઈ, છ પ્રકારમાની કાર્દ પળ જાતિમા
રરી છુલુ છુલ મોગવ ડ દર્યાદિ ' આ સિદ્ધાંતાનુ સૂત્ર
ક્રુતાગમા (૧૦) આપડ વળન જા ક થોઢા શ દામાં
ઢે, છના પળ સરસા ભાવાર્થગાલુ ઢે, અલવત, ત રચલ
આ સિદ્ધાંતા મક્કલિપુત્ર ગાસાલના ' ૩ એમ સ્પષ્ટ
વહવામા આવ્યુ નથા ' એનો પ્રધાનતયા ચાર દર્શનોના
ઉલ્લેખ કરે ઢે—નિયાવાદ, અક્રિયાવાદ, અજ્ઞા
નવાદ અને વૈનયિકવાદ આમાથી અજ્ઞાનિકા
ના મતોડ મૂલમા સ્પષ્ટ કથન કરડુ દલાલુ નથી
આ સવલ્લા દર્શનોના વિષયમા ટીકાકાર જ સમજુતા
આપેલી છ, અને જે મેં પ્ર. ૮૩ ની ૨ નવરની ટાપમા
નોંધલી છ, ત ઘણી જ અસ્પષ્ટ અને ગરસમજુતી ઉત્પન્ન
કરે તેની છે પરંતુ એ અંજેયવાદનો યથાર્થ જ્યાલ આપ
ળને વાદ્ ગ્રથાર્થી આવી શક તેમ ડ સામગ્ગજકલ-
સુત્રમા જણાવ્યા પ્રમાણ તે મત સજ્ઞય વેલદ્વિપુત્તના હતા,
અને ત્યા નીચે પ્રમાણે તેડુ વર્ણન કરેલુ છે —'મહારાજ,
જો મને તમે પુછશો કે જીવની કાર્દ માવી અવસ્થા છે ?
તો હુ જવાબ આપીશ કે જો હુ માવી અવસ્થા અડ
મવી શકુ, તો પછી હુ ત અવસ્થાડુ સ્વરૂપ સમજાવી
શકુ જો મને પુછશો કે શુ તે અવસ્થા આ પ્રકારની
છે ? તો (હુ કહીશ કે) ત મારો વિષય નથા શુ તે
તે પ્રકારની છે ? તે મારો વિષય નથી શુ તે આ વજેથી

અસ્તિત્વ અને નાસ્તિત્વના સવધમા સડ પ્રકારની નિક
પળ પદ્ધતિઆ તપાસતા હતા અને જા તે વસ્તુ અનુભવા
તીત માણમ પડતી તા તેઆ સવ કથનની રીતિઆન
દનકાર કરતા હતા

બુદ્ધ અને મહાવીરના સમયમાં પ્રચલિત એના અન્ય
તાત્વિક પ્રિચારાના ત્રિપયમા જૈન તથા વૌદ્ધ ગ્રથામા મઠ્ઠી
આવતી નોંધા ગમ તગ્લી જુઝ હાય, તો પળ ત નામાં
કિત કાઠના હતિહાસકારન અતિ મહત્વની ડ કારણ
ક આ નોંધા દ્વારા ત કાઠના ધાર્મિક સુધારકન કવા
પ્રકારના પાયા ઉપર તથા કયા સાધનાની મદદથી પા
તાના મત ઉમા કરવા પજ્જો હતા તે જણાઈ આવ ડ
એક વાણુએ આ વધા પાણ્ઠી મતોમા મઠ્ઠી આવતી પર-
સ્પરની કટલીક સામ્યતા અને વીજી વાણુએ જૈન અગર
વૌદ્ધાની જણાતી ત્રિશિષ્ટતા ઉપરથી સ્પષ્ટ રીત અનુમાન
કરી શકાય ડ કે બુદ્ધ અને મહાવીરે કેટલાક વિચારા
તા આ પાણ્ઠીઓના મતોમાથી લીધા હતા અને કદ
લાક તઓની સાથે ચાલતા તેમના સતત વાદવિવાદની
અસરથી ઉપજાવી કટાયા હતા માર એમ ધારુ ડ કે
સજ્ઞયના અંજેયવાદની વિરુદ્ધ મહાવીરે પોતાનો સ્વાદ્વાદના
મત સ્થાપ્યો હતાં અજ્ઞાનવાદ જણાવે છ કે જે વસ્તુ આ
પળા અનુભવની પન્ડ તના સવધમા અસ્તિત્વ અગર
નાસ્તિત્વ અથવા યુગપદ્ અસ્તિત્વ અને નાસ્તિત્વડુ વિ-
ધાન, અગર નિષેધ કરી શકાય નહીં તે રીત પળ તથી

નાસ્તિ અવસ્તવ્યઃ); કેટલાક પ્રસંગે નાસ્તિત્વ (સ્યાદ નાસ્તિ અવસ્તવ્યઃ); અને કેટલીક વસ્તુને વસ્ત્રેત્તું વિધાન કરતું અશક્ય હોય છે (સ્યાદાસ્તિ નાસ્તિ અવસ્તવ્યઃ).^૧

આ વાદ તે જૈનોના પ્રસિદ્ધ સત્તમંગી નય છે. શુ કોઈ પણ તત્ત્વવસ્તુ પોતાના મયકર પ્રતિસ્પર્ધિન ચૂપ કરવાના પ્રયોજન સિવાય, જેને પ્રમાણની જરૂર નથી, એવી ડઘાઈ બાબતોની વ્યાખ્યા કરવાની ઇચ્છા કરે શ્રવે ? એમ લાગે છે કે અંશેયવાદિઓના સૂક્ષ્મ વિચારોદય પ્રાય તેમના ઘણા જ સમકાલીન મનુષ્યોને યુગ્મચળનના નાંખ્યા હશે અથવા મમાબ્યા હશે, અને તેથી કરીને તે સર્વેને અજ્ઞાનવાદની મૂલ-મૂલામળીમાંથી બહાર નિકળ્યા માટે સ્યાદવાદનો સિદ્ધાન્ત એક ક્ષેપમાર્ગ તરીકે દેખાયો હશે. આ શાસ્ત્રની મદદથી વિરોધિઓ ઉપર આક્રમણ કરનાર અજ્ઞાનવાદિઓ પોતાના જ સામે યઈ જતા હતા. આપણે નથી કહી શકતા કે અંશેયવાદના કેટલા અનુયાયિઓ, આ સત્તમંગી નયના સત્ત્વની પ્રતિષ્ઠિ પામી મહાવીરના ધર્મમાં આવી ગયા હશે.

અંશેયવાદની બુદ્ધના ઉપર પણ કેટલી ઘણી અસર યઈ હતી તે આપણે પાલી ગ્રંથોમાં નિરૂપિત બુદ્ધના નિર્વાણ વિષયક સિદ્ધાન્તમાં જોઈ શકીએ છીએ. આ પ્રકારના નિશ્ચયાત્મક વાક્યો તરફ પ્રથમ ધ્યાન પ્રો. એલ્ડનવર્ગે રાખ્યું હતું. આ વાક્યો નિઃશંક પણે જણાવે છે કે મુત્યુ વાદ તથાગત (અર્થાત્ મુક્તાત્મા અથવા જેને શાસ્ત્રવમા વ્યક્તિત્વને હેતુ કહી શકાય તે) હયાતી ધરાવે છે કે નહીં; એવા પ્રશ્નો ઉત્તર આપવા બુદ્ધ ચોક્કસ ના પાડતા હતા. જો તેમના સમયના લોકોના સામઝલામાં આવા વિચારો ચિલ્કુલ ન આવ્યા હોત અને આવી કેટલીક બાબતો કે જે મનુષ્યના મનથી અતીત હોઈ તે ઘણી મહત્ત્વની ગણાય છે તેના સવધમાં, તેવા પ્રકારના ઉત્તરોથી તે લોકોને સતોષ ન વળતો હોત તો તેઓ, તેવા કોઈ ધાર્મિક સુચારક કે જે બ્રાહ્મણધર્મમાં તર્કસિદ્ધ નિરૂપિત સગલી બાબતોના સવધમાં પોતાનો સ્પષ્ટ અભિપ્રાય ના આપે, તેના ઉપદેશોને આદરપૂર્વક સામઝે એ અસંભવિત છે પરંતુ વસ્તુસ્થિતિ જોતા એમ લાગે છે કે અંશેયવાદે વૈદ્યોના

નિર્વાણના સિદ્ધાન્તને ફાંલવા માટે મૂર્ખ તૈયાર કરી રાહી હતી^૨. એક વાસ્તવ સાસ નોંધ લેવા જેવી છે:—સંયુત-નિકાય જેનું માર્ગાંતર પ્રો. એલ્ડનવર્ગે કરેલું છે, તેમા એક ટેકાણે ધસેનદિ રાજા અને સેમા નામની આર્યા વધે થયેલો સપાદ આવે છે. તેમા રાજાએ મુચુશદ તથાગત હયાતી ધરાવે છે કે નહીં એ સવધમાં પ્રશ્નો પૂછેલા છે. જે સૂત્રોમાં આ પ્રશ્નો પૂછેલા છે, તેમા સામન્સજનુત્ત—કે જેનું ભાષાતર ઉપર આપેલું છે,—મા જેવા શબ્દો સમય વાપરે છે સેમા જ શબ્દો વાપરેલા છે.

બુદ્ધના સમયના અંશેયવાદની અસર બુદ્ધ ઉપર યઈ હતી તેવા પ્રકારના મારા અનુમાનની પ્રુટિમા હું મહાવગ ૧, ૨૨ અને ૨૪ માં આપેલી એક પરપરાગત કથા અંતે રજુ કરુ છું. તે કથામા એમ જણાવેલું છે કે બુદ્ધના સાંથી ઘણે પ્રસ્થાત એવા સારિપુત અને મોગલાન નામના બે શિષ્યો, તેમના અનુયાયી થયા પહેલા સમ્મયના શિષ્યો હતા અને પછીથી તેઓએ પોતાના જુના શ્રવના મતના ૨૫૦ શિષ્યોને પણ બોદમાર્ગી બનાવ્યા હતા. આ હકિકત બુદ્ધે બોધિ પ્રાપ્ત કર્યું ત્યાર પછી તરત જ બની હતી. આ થી એ સંભવિત છે કે પોતાના નશ મતના મારંમ કાલમાં બુદ્ધે શિષ્યો મેળવવા માટે તે વસતે પ્રચલિત એવા વીમા મતો તરફ સર્વપ્રકારની યોગ્ય વર્તણૂક રાખવાની કોશિશ કરી હશે.

મહાવીરના સિદ્ધાન્તોના વિકાસ ઉપર, મારી માન્ય-

૧ નિર્વાણના સ્વરૂપ-કથન સવન્ધમા બુદ્ધે એ મોન ધારણ કર્યું હતું તે દેમના વણતમા મંડે હાશપક મણુ ગણાડ્યું હોય, પરંતુ તે સપ્રધાનના વિકાસને માટે તો તેમા ધવા પરિભામો સમાવડા હતા. કારણ કે બેન્દ્ર મતના અનુસાયીઓને, બ્રાહ્મણ વાંકશિક્ષિકો એવા દુષ્પર્માંથી શેરા કાંદનારા હર્કશાસ્ત્રાઓની ચિદ્રુદ પોતાના મતને ટકાવી રાખવાને હોવાનો, આ મહાદ્વ પ્રશ્ન કે જેના વિષયમાં તેમના ધર્મસત્તાયકે કોઈ પણ નિશ્ચયાત્મક કથન કર્યું નહોતું, તે ઉપર ઘણે સ્પષ્ટ વિચારો જણાવવાની ફરજ પડી હતી. આ રીતે પોતાના ગુરુદ અમુત રાજેડા મહેન્ને પૂર્વ કરવા માટે સામગ્રી મેળી કરવાના વેદેન્ધી બુદ્ધભિર્વાણ પડી તરત જ બેન્દ્રવર્ધે ઉદ્ધક સંપ્રધાનોના સૂત્રમા વિમુક્ત યઈ મયો હતો. આશર્વે પામવાની જરૂર નથી કે સિદ્ધોએ આ શાસ્ત્રાધિવારવિષયક કેન્દ્રીય પણ દૂર બાંધેલું છે ત્યાં વૈદ્યોના આ નિર્ણયનો સિદ્ધાન્ત અમંડે સૂત્રમા અગ્રાહત રહી લખ્યો છે

તાનુસાર, મસ્તકિષ્ણત ગોસાલની મોતી અસર થયેલી છે. મગવસી ૧૫, ૧, માં અપેલો તેના જીવનનો દિનિહાસ, હૈનેલે પોતાના ઉવાસગ દસાઓના માયાન્તરને અને, એક પરિણામમાં સંશેષનાં માયાન્તરિત કરેલો છે. તેમાં ૫ પ્રમાણે નેષેષ છે કે, ગોસાલ મહાશીરની સાથે તેમના કિષ્ણ હરિને શ્રમયધર્મ પાછોનો યજ્ઞો છ વર્ષ સુધી રહ્યાં હતાં. પરંતુ પછી તે તેમનાથી શુદ્ધ થઈ ગયો અને પોતાનો નવો ધર્મ સ્વાર્થ મિત તરીકે આજીવિકોનો નાગર કરેલકાયામાં લાગ્યો. પરંતુ બૌદ્ધ ગ્રંથોમાં તેના સંબંધમાં એવી નોંધ મળી આવે છે કે તે નન્દ વચ્ચે અને કિસ સંકિષ્ણનો ઉત્તરાધિકારી હતો અને તેનો સંપ્રદાય સાધુગીર્મા નિરુપ્યાપિત (લાલા વલ્લભ પૂર્વે સ્થાપિત થયેલો એવો) મનાનો હોઈ અંબલક પરિવારના નામે મહિદ્દ હતો. જૈનાની ૫ દહિકનન કે મહાશીર અને ગોસાલ ૫ વધેષ કેટલાક વલ્લભ સુધી સાથે તપશ્ચર્યા કરી હતી, તેમાં શંકા કરવાનું કોઈ કારણ નથી. પરંતુ તેઓ વધે વધે એ સંબંધ વતાવવામાં આવે છે તે વારત-ધર્મમાં તેનાથી શુદ્ધ પ્રકરણો હોય તેમ લાગે છે. માર્ક યલુ માનું છે—અને મારા આ અભિપ્રાયના પક્ષમાં હું હમણા જ કેટલીક દલીલો આપીશ—કે મહાશીર અને ગોસાલ ૫ વધે પોતાના સંપ્રદાયોને એક કરવાના અને એકને શીખાના મેલની દેવાના દ્વાદાશી વરસ્તર સહ-ચારી ધ્યયા હતા, અને લાલા વલ્લભ સુધી આ વધે આવ થઈ સાથે રહ્યા હતા. ૫ વધે ઉપરથી ચોક્કસ અનુમાન થાય છે કે ને વરેના મનોની વધે કેટલુંક સામ્ય હોવા જ ગોઈવે. આગળ પૃ. ૨૬ ઉપરની ટીપ્પના મે અજાણું છે કે ‘તલો સત્તા, સલ્વે પાળા, સલ્વે મુત્ત, સલ્વે જીવા’ ના સ્વરૂપનું વર્ણન ગોસાલ તેમ જ જૈનોની વધે સમાન છે. અને ટીકામાં અજાણેલ એકોદિય દિવિન્દ્રિયાદિ વર્ગરૂપે પ્રાપ્તિઓના વિમાનો કે જે જૈન ગ્રંથોમાં ઘણા જ સાધારણ છ, તેવા વિમાનોનો ગોસાલે પણ ઉપયોગ કર્યો છે. ચમ-દારી અને લગભગ અસત્યામાસરૂપ છ લેશ્યાનો જૈનાધિ-દ્વાનન,—એને પદેલી જ વલ્લભ ઇષ્ટિગોચર કરાવું માન પ્રો. સ્પુમનને પડે છે—ગોસાલે કોલા સ્વચ્છી મનુષ્ય-બાળ માટેના છ વર્ગોના વિમાન સાથે સંપૂર્ણ રીતે મળ્યો

આવે છે. પરંતુ આ વાતના સંપ્રદાયમાં માર્ક યલુ માનું છે કે જૈનોએ મૂલ આ વિચાર આજીવિકા પાસથી લીધો હતો, અને પાછલથી પોતાના શ્રીજા વધા સિદ્ધાન્તોની સાથે તે સંગત વને તેવી રીતે તેમાં ફેરફાર કર્યો હતો. આચાર વિષયક સવચ્છ નિયમોના સંવનમાં, કેટલા પ્રમાણો ઉપચર્ય થાય છે તે ઉપરથી, લગભગ સિદ્ધ થાય છે કે મહાશીર અતિ કઠોર નિયમો ગોસાલના લીધા હતા. કારણ કે ઉત્તરાધ્યયન ૨૨, ૧૩ (પૃ. ૧૨૧) માં અજાણ્યા પ્રમાણે પાર્થના ધર્મમાં નિર્મયેતિ નોંધ અને ઉપરનાં ભાગમાં એક વધ પેહરવાની છટ હતી. પરંતુ વર્ગ-માનના ધર્મમાં રૂપરૂપો સ્વચ્છ નિયેષ કરવામાં આવ્યો હતો. નર સાધુ માટે જૈન દુશ્મોના અનેક સ્વચ્છ મઝી આવ્યાં શબ્દ ‘અચેત્ક’ છે જેના શબ્દાર્થ ‘વચ્છ રહિત’ એવા થાય છે. બૌદ્ધો અચેલકો અને નિર્મયેતિ મિત્ર મિત્ર માને છે. ઉદા-હરણ તરીકે ધર્મપર ઉપરનાં બુદ્ધોંધકૂટ ટીકામાં કેટલાક મિત્રોના સંબંધમાં અજાણેલું છે કે, તેઓ અચેલકો કરતાં નિર્મયોને વધારે પસંદ કરતા હતા. કારણ કે અચેલકો તદ્દન નર રહે છે (સવસો અપટિચ્છન્ના) પરંતુ નિર્મયો કોઈ જાનતુ હૂંકું આવર્યો રાલે છે, એને તે મિ-શુઓ સોટી રીતે ‘લજ્જાનો છાત’ મ નતા હતા. અચેલક શબ્દદ્વારા બૌદ્ધો મસ્તલિ ગોસાલ અને તેની પૂર્વે થઈ ગયેલા કિસ સંકિષ્ણ અને નન્દ વચ્ચેના અનુચાલિયોને સૂચવે છે, અને તેઓના ધાર્મિક આચારોનું વર્ણન મશિ-મનિકાયમાં સંગૃહીત રાખ્યું છે. તેમાં તે સ્વલે નિગળપુત સચક—જેની ઓલસાળ આવળને ઉપર થઈ ગરલી છે

૧ જીજા એક શબ્દ ‘જિનકલિક’ છે જેનો અર્થ ‘જિન જેવો આચાર પાલનાર’ થઈ શકે. શ્વેતોવરો કહા કે કે જિનકલને વરદ પ્રાપ્તિના કાલમાં જ સ્થિરિત્વ રિતર કરામાં અચેલકો જેની અંદર વસ રાખવાની છટ આવવામાં આવી હતી.

૧ જીજા કુલ્લાટની આવૃત્તિ, પૃ. ૨૧૮

૨ મૂલમાં અગ્રેષ્ઠ ‘સિલ્લ’ કુરિયમમલેતા વ પટિચ્છદેન્તિ’ એ શબ્દો વચાવર સ્વચ્છ થતા નથી. પરંતુ તેમાં એવામાં આશ્ચર્યોપ નિસકરીત એ જ શબ્દો સૂચવે છે. પાલી શબ્દ ‘સલ્વ’ તે મારા શરણા પ્રમાણે સરજન ‘સિલ્લ’ જે સ્વ છે આ જો છલ્લે હોય તો ઉપરના શબ્દોનું માત્રાન્વર નીચે પ્રમાણે થઈ શકે ‘તેનો (સરીરના) આગળા માગ ઉપર (રૂપડ) વેચી યુગ્મોને ઢાંકે છે

તે—કાચમાવના ઇલે શારીરિક પવિત્રતાનો અવેર-
કોના આચારને ઉદ્દેશને અર્થ સમજાવે છે. સચકના
વર્ણનમાંની કેટલીક વિગતો ટોકાના અમાવે નહી
સમજી શકાય તેજો દુર્વેધ છે. પરંતુ કટલીક તો તદ્દન
સ્પષ્ટ છે, અને તે, કેટલાક પ્રસિદ્ધ જૈન આચારો સાથે
સર્પૂર્ણ સમૃદ્ધ્ય ધરાવે છે. દાસત્વ તરીકે અવેલકો પણ
જૈન સાધુઓની મફત મોકળનનુ આમન્ત્રણ સ્વીકારતા
નથી. તેઓને માટે અમિહત અથવા ડાઉસ્ટકન અગ્ર
લેવાનો નિવેધ છે. આ વશે શબ્દો જૈનોના ગ્રમ્યાહન અને
ઔદેશિક શબ્દો (જુઓ પૃ૦ ૧૩૨ ટિપ્પણ) સમાન
હોય તેમ દરેક રીતે સંભાવન છે. વઝી તેઓને માંસ અને
મદિરા લેવાની છૂટ નથી. ' કેટલાક માત્ર એક જ વશે
મિત્તા લેવા જાય છ અને માત્ર એક જ ગ્રાસ જોગક લે
છે, કેટલાક વધારેમાં વધારે સાત ધેર મિત્તા માટે જાય
છે; કેટલાક એક જ વાર આપેછ અગ્ર લઈને રહે છ,
કટલાક વધારેમાં વધારે સાત વાર સુધી આપેછ લઈને
રહે છ ' આ પ્રકારના જ જૈન સાધુઓના કેટલાક આચારો
કલ્પસૂત્રની સામાચારીમાં વર્ણવેલા છે (૨૬, માન ૧,
૫૦ ૧૦૦, અને આગ્રયના પૃ૦ ૧૭૬; ગાથાઓ ૧૫ અને
૧૯). નીચે વર્ણવેલા અંચલકોનો આચાર અને જૈનોનો
આચાર વચ્ચે એક જ છે એમ સ્પષ્ટ જણાય છે, ' કેટલાક
દમેશ એક જ વસ્ત્ર મોજન કરે છે અને કેટલાક બે
દિવસમાં એક જ વસ્ત્ર મોજન કરે છે, ' इत्यादि; અને
એ રીતે વધતા નમે કેટલાક ઠેઠ એક પલવાકીએ
એક વાર મોજન લે છે. ' અવેલકોના બાવા વધા નિય-
મો અને જૈનોના નિયમો યા તો લગભગ એક જ છે અગર
તો અતિશય મલ્લતા છે. અને આ પ્રકારે સમ્ય જોવા-
માં આવતું હોવા છતાં, તથા સચક એક નિગળ્ડપુત મળા-
તો હોવાના લીધે તેમના ધાર્મિક આચારોથી તે પરિચિત
હોવા છતાં, કાચમારનાના આદર્શ તરીકે નિર્દેશનો

ઉલ્લેખ કરવો નથી તે સ્વેચ્છા ગ્રાચરના કાલો છે પરંતુ
આ આશ્ચર્યવનક વાચાને નીચેની કથના દ્વારા જાણે
સહેજાઈથી સમજાવી શકાય છે, અને તે એવી રીતે કે
બૌદ્ધ ગ્રંથોમાં વહુવા જે અસલના પ્રાચીન નિર્દેશનો વચવા
ઉલ્લેખો મઝી આવ છે, તે (નિર્દેશો) જન સમાજના જે એક
વર્ગે મઝીશીરના ઉગ્ર ધર્મોનો સ્વીકાર કર્યો હતો તેના
નહીં, પરંતુ મઝીશીરના મના રિરેશી ન વનથી જેઓ તે
સયુક સપ્રદાયમાં રહીને પણ તે પાતા પ્રાચીન સંપ્રદાયના
કેટલાક સાસ આચારોને વઝી રહ્યા હતા તે પ્રકારના
પાશ્વના અનુયાયિઓ હતા. આ પ્રકારના કેટલાક તરાર
નિયમો કે જે પ્રાચીન ધર્મના અખૂન મનાવા ન હતા
અને જેમને મહાધરે જ દાસલ કરેલા હતા, તે સમીપ
રીતે તેમણે મોસાલના અંબલક અથવા આજીવિત નામે
પ્રસિદ્ધ અનુયાયિઓના સ્વીકાર હતા. અને આનુ કર્મ
તે તેઓએ (મહાધરે) જ છ વર્ષ મુધી મોસાત્તની
સાથે અત્યંત નિકટ સદ્ગત તરીકે રહી તાશ્વર્ય રૂપે હતા,
તે છે. આ પ્રમણે આજીવિકોના કેટલાક ધાર્મિક વિષયો
અને આચારોનો સ્વીકાર કરવામાં મઝીશીરનો આશર
મોસાલ અને તેના અનુયાયિઓને મોતાના પશ્ચમાં મેવાનો
હોય એમ લાગે છે; અને કેટલક સમય સુધી તા આ ઉદગ
સફર પણ ધર્યો હોય. પરંતુ આસરે થત નનામાંની વશે
મતભેદ થયો હતો, કે જેનું કારણ થયુ કરાન એ પ્રશ્ન
હતો કે આ સયુક મવદારનો નેતા કેન વને. મોસાત્તને
સાથે થયેલા આ ટુંક સમયના સંબંધથી સ્પષ્ટરીત મઝી-
શીરની પદવી વગી સુસ્થિત વની હતી; પરંતુ મોપાત્ર,
જૈન હકિકતો અનુસાર, મોવાની પ્રમિટ્ટા સુમાવી હતી
અને આસરે તેના સોઠરૂપ અસત્યની તેના સપ્રદાયના
માનિને સક્ત ફટકો લાગ્યો.

આપણે જો કે તે ખું સાચી ન કીર સારોળ, પરંતુ
મહાધરે અન્ય સપ્રદાયોમાંથી થયુ લોણ છે એ વાન નિ-
સંશય છે. જૈન ધર્મ યથામાં એક મસ્થિતે સ્વ દાન
નહીં હોવાથી તેના નરા મવા તથા સિદ્ધાન્તોના ઉત્પા
વના સહેજાઈથી થઈ શકે તેમ હતું. જે જે સપ્રદાય અગર

૧ આ પદાર્થના ઉપવાસોને જૈનો નચકમત છઠમત इत्यादि
નામો આપે છે (જુઓ ઉત્તર નુમનસપાર્દા બોધ સિન્ધુ દ્વ
૧૦ I A), અને આ ઉપવાસ કાતારા સાધુઓ અગ્રમે પચલ્લમ-
નિય, છઠમ તિય, મ્યાદિ નામોથી ઓલસાય છે. (જુઓ દા. ત.
કલ્પસૂત્ર સામાચારી ૨૧.)

તો તેના માગો મહાવીરની સફળ કાર્યદક્ષતાને લઈને જૈનધર્મમાં આવતા ગયા તે સવચ્છા સપ્રદાયોના કેટલાક પ્રતિષ્ઠાપત્ર વિચારો તેમ જ તેમના પ્રિય ગુરુઓ, જેઓને તેઓ ચક્રવર્તી અથવા ઈર્ષ્યકરના નામે ઓળખતા હતા, તે સવચ્છા દાસલ થઈ ગયા હોય તો તેમાં નવાઈ નથી. અલથડ્ આ એક માત્ર માત્ર અનુમાન છે. પરંતુ આ અનુમાનની મદદથી આપણે જૈનોની આચાર્યો સાધુઓ વિષયક વિલક્ષણ પરપરાનું ઉત્પત્તિ કારણ સમજી શકીએ છીએ. પ્રત્યક્ષ પ્રમાણનો ગ્યા સર્વથા અભાવ હોય ત્યાં આપણને અનુમાનો ઉપર જ આધાર રાખવો પડે છે, અને એ અનુમાનોમાં પણ જ અનુમાન વિશેષ સત્ય— સામ્યતા શુદ્ધ લાગે યજુ—હોય તે સ્વીકારવા યોગ્ય વન છે. ફક્ત આ વાતને ને છાદીન કાકીની જે જ માયતો થા પ્રસ્તાવનાના પ્રારંભના ધાનાઓમાં મેં મારી કલ્પનાનું રૂપે રજુ કરેલી છે તે સવચ્છા આના કરતા વધારે પ્રમાણ-મૂત છે, એ હુ અને જ્ઞાસ જનાવા દલ્લ છે એ થવા વિ-ચારોમાં મારા કોઈ પણ કથનથી જન પરપરાગન કથન કે—જે લેણી પુરાવાઓના અમાથમાં આપણને એક માત્ર તે જ માર્ગદર્શક થને છે—તન આવાત પહોંચતો નથી. અને વીજી, મારી એકે કલ્પના પણ એવી નથી કે જ તે સમયની પરિસ્થિતિ અનુસાર અસંભવિત લાગે જેન વર્મના પ્રાચીન ઇતિહાસની રચનામાં મુખ્ય સ્થાન રોકનાર જે, એ રક દર્શીકત છે કે, મહા-વીરના સમયમાં પાર્શ્વનાથના શિષ્યો હયાતી ધરાવતા હતા અને જેનો નિર્દેશ જતાવતી પરપરા પણ વિદ્યમાન હોઈ તેની સત્યતા પણ અત્યંત સવચ્છા વિદ્યાના એકે અવાજ સ્વીકારે છે, તેનો જ મેં અહિં ઉપયોગ કર્યો છે.

હવે આ રીતે જો જૈનધર્મ એ એક પ્રાચીન કાલથી ચાલતો આવતો ધર્મ હોય અને મહાવીર તેમજ સુદ્ધ કરતા

વધારે જુનો હોય તો તેના તત્ત્વજ્ઞાનના સ્વરૂપમાં પણ કાઈક પ્રાચીનતાનાં ચિહ્નો દેખાવાં જોઈએ. આવું એક ચિહ્ન એ ધર્મમાં જ્ઞાસ મટી આવે છે, અને તે તેનો, સવચ્છા વસ્તુ ચિંતન્ય યુક્ત છે, એમ જતાવતો સંચેતનવાદ છે. તે વાદ જણાવે છે કે માત્ર વનસ્પતિમાં જ નહીં પરંતુ પૃથ્વી, પાણી, અગ્નિ, અને વાયુના કળોમાં પણ આત્મનત્ત્વ રહેલું છે. માનવજાતિશાસ્ત્ર (*Ethnology*) આપણને એમ શીખવે છે કે જગતી લોકોની તત્ત્વજ્ઞાન વિષયક સવચ્છા માન્યતાઓ સંચેતનવાદમૂલક હોય છે. આ સંચેતનવાદ જેમ જમ જનસંસ્કૃતિ વધતી જાય છે, તેમ તેમ સુદ્ધ મનુષ્યસ્વરૂપમાં જ માત્ર પરિણત થતો જાય છે. આથી કરીને જો જૈન ધર્મનું નીતિશાસ્ત્ર મોંઢે ભાગ આ પ્રાચીન સંચેતનવાદ—મૂલક હોય તો જૈનધર્મની પહેલ વહેલી ઉત્પત્તિના સમયે તે સંચેતનવાદનો સિદ્ધાંત હિન્દુસ્તાનની પ્રજાના મોટા ભાગમાં વિસ્તૃતરૂપે વિદ્યમાન રાવો જોઈએ. આ પરિસ્થિતિ તે અતિ પ્રાચીન સમયની હોઈ શકે કે જે વસતે હિન્દુસ્તાનના મનુષ્યોના મન ઉપર ઊંચા પ્રકારની ધાર્મિક માન્યતાઓ અને પૂજાની પદ્ધતિ-ઓ એ અસર કરી ન હતી.

જૈન ધર્મની પ્રાચીનતાનું વીજી ચિન્હ તે તેની વેદાન્ત અને સાલ્ય જેવાં બે સાંથી પ્રાચીન બ્રાહ્મણ દર્શનોની સાથે રહેલી સિદ્ધાંતવિષયક સમાનતા છે. તે પ્રાચીન કા-લમાં તત્ત્વજ્ઞાનના (*Metaphysics*) વિકાસ ક્રમમાં શુણ નામના પદાર્થનો જેવો જોઈએ તેવો સુલ્લો અને સ્પષ્ટ જ્યાલ થઈ ચૂક્યો હ ન હતો, પરંતુ, તે પદાર્થ દ્રવ્યપ-દાર્યમાંથી ઉત્ત્રાત થઈ રહ્યો હતો એમ લાગે છે. જે જે વસ્તુને આપણે શુણ તરીકે ઓળખીએ છીએ તે, તે વસ્તે મૂળથી ધારવાર દ્રવ્ય તરીકે મનાઈ જતી અને કેટલોક વસ્તે દ્રવ્ય સાથે તેનું મિશ્રણ પણ થઈ જતું. વેદાન્તમાં પરબ્રહ્મને શુદ્ધ સત્તા, જ્ઞાન, અને આનન્દરૂપ વ્યાભાવિક શુણથી સમ્પન્ન નહીં, પરંતુ સત્, ચિત્, અને આનન્દસ્વરૂપ જ માન-વામાં આવ્યું છે. સાંલ્યમાં પુદ્ગ અથવા આત્માના સ્વમા-વજી વર્ણન કરતી વસ્તે તેને જ્ઞાન અથવા તેજોરૂપ જતાવ-વામાં આવ્યા છે. અને જો કે સત્, રજસ્, અને તમસ્,

૧. પરપરા મહાવીર તેમના પોતાના માર્ગમાં એક મહાત્મ્ય વ્યક્તિ હશે, તેમ જ તેમના કમકર્તાનું પુરોગામી ત એક ઉત્તમ પ્રકારના નતા પણ હશે, તમા શક નથી તમને તાર્કિક વદ—પ્રાતિમાં જે ટલે રહે, તમે પોતાના મતનો પ્રચાર કરવામાં સપાક્તિ કરલો સમના થય કે રનજીવ થયા છે તેટલે થથે અમે તેમનું પવિત્ર જીવન કારણ થા ન હાત યજી

દ્વં ત્રણ પદાર્થોને ગુણરૂપે ગણાવ્યા છે સ્વરા, પરંતુ ગુણનુ
જે લક્ષણ આપણે સ્વીકારીએ છીએ તે અનુસાર તે ગુણો
યદ્દ શકતા નથી. યોગ્ય ગાથેના જણાવ્યા પ્રમાણે વાસ્ત
વમાં તે મૂળ પ્રકૃતિના અવયવો જ છે. આ જ પ્રકારના
સિદ્ધાંતને લઈને સામાન્ય રીતે જૈનોના પ્રાચીન સૂત્રોમા
દ્રવ્ય અને તેના પર્યાયોના જ માત્ર ઉલ્લેખ કરેલો હોય
છે. સૂત્રોમા ગુણ પદાર્થોને જ્યારે કોઈક જ ઠેકાણે ઉલ્લેખ
થયેલો મઝી આવે છે ત્યારે પાછળના બીજા વધા યથોર્થાં તે
નિયમિત રીતે વર્ણવેલો હોય છે. આ ઉપરથી એમ સ્પષ્ટ જણાય
છે કે તે પાછળના કાલમા સ્વીકારવામાં આવ્યા હોયો
જોઈએ. અને તેનું કારણ ન્યાય વૈશેષિક દર્શનોના તત્ત્વ-
જ્ઞાન અને સાહિત્યની જે અસર થીમે થીમે મારતવર્ધના
વૈજ્ઞાનિક વિચારો ઉપર થતી હતી તે જ હોય જોઈએ. પર્યાય
પદ્ધતિ વિકાસ અગર અવસ્થાન્તરની માન્યતામા ગુણ જેવા
સ્વતંત્ર પદાર્થને સ્થાન જ મળી શકે તેમ નથી. કારણ કે
દ્રવ્ય દરેક કાલમા તેના પર્યાયના રૂપમા જ રહે છે, અને
તેથી કરીને પર્યાય ગુણાત્મક જ હોય છે; અર્થાત્ પર્યાયો-
ની અંદર ગુણોનો સમાવેશ થઈ જ જાય છે. અને આ જ
વિચાર પ્રાચીન સૂત્રોમા લીધેલો હોય તેમ જણાય છે.
અન્ય એક ઉદાહરણ, જૈનોએ જે અદ્રવ્યસ્વયુક્ત પદાર્થ
ઉપર દ્રવ્યરત્નો આરોપ કરી, વાસ્તવિક રીતે જે વસ્તુ
ગુણના વર્ગમા આવી જાય છે તેવી 'ધર્મ' અને 'અધર્મ'
એ બે વસ્તુઓ, વિષયક છે. આ બે વસ્તુઓને જૈનોએ દ્રવ્ય
તરીકે વર્ણવી છે કે જેની સાથે જીવનો સંબંધ રહેલો
હોય છે. આ દ્રવ્યોને આકાશની સાથે જ સંપૂર્ણ લોક
વ્યાપી માનેલા છે. વૈશેષિકો પૂર્ણ આકાશને દ્રવ્ય માને
છે. જો તે સમયમાં દ્રવ્ય અને ગુણ એ બંને પદાર્થોનું
મિશ્ર મિશ્ર વર્ગીકરણ થયું હોત અને વસ્તુ અન્યોન્યાશ્રિત
મનાતા હોત, કે જેમ વૈશેષિકો માને છે, (ગુણાશ્રય
દ્રવ્યમ્ અને દ્રવ્યાન્તર્વર્તી ગુણઃ) તો ઉપર જણાવેલ ગો-
ટાલા મરેલા વિચારો જૈનોએ કદાપિ સ્વીકાર્યા નહીં
હોત.

૧ આ વસ્તુના મૂળ વૈદિક હિન્દુઓની હતી, તેમ આંદ્રહનવર્ગ
પાતાના Die Religion des vedas નામના ગ્રન્થમાં
પૃષ્ઠ ૨૧૭ ઉપર જણાવ્યું છે

ઉપરોક્ત વિવેચન ઉપરથી સ્પષ્ટ થોઈ શકાય છે કે
વૈશેષિક દર્શન સાથે જૈનોના કેટલાક વિચારો મળતા
આવતા હોવાથી જૈનધર્મની ઉત્પત્તિ તેના પછી થઈ છે,
એવો જે મન ડૉ. માન્હારકરે ઉપરિચિત કરેલો છે તેની
માથે હું સમત થઈ શકું તેમ નથી. વૈશેષિક દર્શનના
સ્વરૂપનું સક્ષિત વર્ણન નીચે પ્રમાણે આપી શકાય કે-
સંસ્કૃત ભાષા બોલનાર તથા સમજનાર વધા માણસોએ મનન
કરેલા સર્વસાધારણ વિચારોની જે પદ્ધતિસર વ્યવસ્થા અને
તેનું જે તાત્વિક પ્રતિપાદન — નિરૂપણ, એ જ વૈશેષિક
દર્શન છે. આ પ્રકારનું પદાર્થવિજ્ઞાનશાસ્ત્ર પ્રાપ્ત કરવાનું
કામ તો યજ્ઞ પ્રાચીન કાલથી શુરુ થયું હશે અને કળા-
દના સૂત્રોમા જેવું એ શાસ્ત્ર સંપૂર્ણ રૂપે પ્રતિપાદિત
થયું છે તેનું તૈયાર થવા પહેલાં મનુષ્યોને ધર્મના સદીઓ
સુધી ધીરજથી માનસિક પરિશ્રમ ઉઠાવવો પડ્યો હશે.
તેમ જ તત્ત્વજ્ઞાનવિષયક સતત ચર્ચાઓ ચલાવવી પડી
હશે. આથી વૈશેષિક દર્શનની આદિ અને અંતિમ સ્વરૂપ-
નાની વચ્ચેના કાલમા જો વૈશેષિક વિચારો લઈ લેવાનો
સંદેહ થાય તો આરોપ જૈનો ઉપર મૂકવામા આવે તો,
તે કદાચ તેમ સંભવી શકે શક. આ સ્પષ્ટે બીજી એક
વાસ્તવો ઉલ્લેખ કરવો અસ્થાને નહીં ગણાય, અને તે એ
છે કે જે મુદ્દાઓ હું અત્ર ચર્ચવા ઇચ્છું છું તે મુદ્દાઓને
લઈને ડૉ. માન્હારકરનો એવો મત થયેલો છે કે જૈનોના
વિચારો તે એક વાણુ સાથે અને વેદાન્તદર્શન અને બીજી
વાણુ વૈશેષિક દર્શન એમ બે પક્ષની વચ્ચેના સમન્વયના
આકારના છે. પરંતુ પ્રસ્તુત ચર્ચાને માટે તો તે વસ્તુ
પ્રકારના વિચારો સરખા છે:—પદ્ધતિ કે સાક્ષાત્ લેખ
અગર બે પ્રકારના વિરુદ્ધ વિચારોનું તટજોડ કરવું, એ
એક જ છે. ઉપરોક્ત મુદ્દાઓ નીચે પ્રમાણે છે:—
(૧) જૈન દર્શન અને વૈશેષિક દર્શન એ બંને ક્રિયા-
વાદી છે. અર્થાત્ તે બંનેનું માનવું છે કે આત્મા ઉપર કર્મ,
કર્મોયો તથા વાસનાદિની સાક્ષાત્ અસર થાય છે. (૨)
બંને દર્શનો અસર્કાર્યના સિદ્ધાન્તને માને છે; પદ્ધતિ કે તે-
મના મતે કાર્ય તેના ઉપાદાન કારણથી મિશ્ર છે. પરંતુ

વેદાન્ત અને સાંખ્ય વચ્ચે સત્ત્વર્ય વાદને માને છે; અર્થાત્ કાર્ય કારણને ભિન્ન માને છે. (૩) એ બન્ને દર્શનોમા ગુણ અને દ્રવ્યનો પૃથક્ વિમાળ થયેલો છે. એ છેલ્લો વા-
વત તો આપણે ઉપર ચર્ચા ગયા છીએ; તેથી હવે આપણે પ્રથમ બે મુદ્દાઓના સંબંધમાં વિચાર કરવાનો રહ્યો છે.
(૧) અને (૨) માં જે મન્તવ્યોત્તર નિરૂપણ કરેલું છે. તે વ્યાવહારિક જ્ઞાન—સાધારણ બુદ્ધિના વિચારો છે. (અર્થાત્ સહુ કોઈ સમજી શકે તેવા છે) કારણ કે આપણા ઉપર વાસનાઓની સાક્ષાત્ અસર થાય છે જ, તેમ જ કારણ-
થી કાર્ય ભિન્ન છે તે પણ આપણા અનુભવની વ્યવસ્થા વાત નથી. ઉત્ત. ધોજ અને વૃક્ષ એ બંને પરસ્પર ભિન્ન છે, એમ દરેક વિવેકી માણસ જાણે છે; અને તે માત્ર સામાન્ય અ-
નુભવનો વિષય છે તેમ પણ લાખ્યા વિના નહીં રહે. આવા વિચારોને અમુક દર્શનમા સાસ લક્ષણ કહેવા માની શકાય જ નહીં; અને એક ધોજા મતોમાં આવા વિચારો સમાન-
રૂપે જોવામા આવે તે ઉપરથી તે, એકે ધોજાના મતમાથી લીધેલા છે તેમ પણ કહી શકાય નહીં. પરંતુ જો બે ભિન્ન દર્શનોમાં પરસ્પર વિપરીત વિચારદર્શો એક જ સિદ્ધાન્ત આવ્યો હોય તો તે વાસ્તવ અવશ્ય વિચારણીય હોય છે. આથી સિદ્ધાન્ત મૂલ્ય તો તે એક જ દર્શનમાથી ઉત્પન્ન થયેલો હોય છે અને તે તેમા સુમતિષ્ઠિત થયા પછા જ અ-
ન્યદ્વારા સ્વીકૃત થાય છે. દિક્ અને આકાશ એ બન્ને ભિન્ન દ્રવ્યો છે એ જાતનો વૈશેષિકોનો જ્ઞાસ રચતન તર્કસિદ્ધ સિદ્ધાન્ત છે. તે જૈન દર્શનમા બિલકુલ દેશાતો નથી. વેદાન્ત અને સાંખ્ય જેમા અધિક પ્રાચીન દર્શનોમા તથા જૈન દર્શનમાં આકાશ અને દિક્ વચ્ચે બિલકુલ ભેદ કરવામા આવ્યો નથી. એ દર્શનોમા એકલુ આકાશ જ બન્નેલુ પ્રયોજન સારે છે.

વૈશેષિક અને જૈન દર્શનની વચ્ચે મૂલ સિદ્ધાન્તોમાં ભેદસૂચક એવા કેટલાક ઉદાહરણો નીચે પ્રમાણે છે. પહેલાના મને આત્માઓ અનન્ત અને સર્વગ્રામી (વિમુ) છે; પરંતુ ધોજાના (જૈનોના) મતે તેઓ મર્યાદિત પરિ-
માણવાળા છે. વૈશેષિકો ધર્મ અને અધર્મને આત્માના ગુણો માને છે, પરંતુ ઉપર જણાવ્યું તેમ જૈનો તે બન્નેને

એક જાતના દ્રવ્યો માને છે. એક વાસ્તવમાં, એક વિરુદ્ધ વૈશેષિક વિચાર અને તદ્વિરુદ્ધ જૈન સિદ્ધાન્ત વચ્ચે કેટલુંક સાદૃશ્ય જાણમાં આવે છે. વૈશેષિક મતમા ચાર પ્રકારના શરીરો માનેલા છે—પાર્થિવ શરીર જોડે કે મનુષ્ય પશુ આદીનુ, જલાત્મક શરીર જેમ વરુણની પૃથ્વીના છે, આ-
ગ્નેય શરીર જેમ અગ્નિની સૃષ્ટિમા છે, અને વાયુરૂપ શરીર જેમ વાયુની સૃષ્ટિમા મળે આવે છે. આ વિચિત્ર વિચાર સાથે સદૃશતા વરાવનારો જૈનદર્શનમા પણ એક વિચાર છે. જેનો પૃથ્વીકાય, અપ્રાય, તેજસ્કાય, અને વાયુકાય, એમ ૪ કાય માને છે આ ૪ મૌલિક પદાર્થો કે જે મૂળ તત્ત્વો છે અથવા નાં તેના પણ સૂક્ષ્મભાગો છે, તેની અદર એક એક વિશિષ્ટ આત્મા રહેલો છે, એમ તેઓ માને છે. આ જઠ વૈતન્યવાદનો સિદ્ધાન્ત ઉપર જગત્કા પ્રમાણે અસલ સચેતનસાદૃશ પરિણામ છે. વૈશેષિકોનો એનદ્વિધય-
ક વિચાર જો કે મૂળ એક જ વિચાર પ્રજાહમાથી ઉત્પન્ન થયેલો છે છતાં, પરંતુ તેમણે તે વિચાર ભૌતિક પુરાણો-
ના અનુરૂપે ગોઠવેલો છે. આ બંનેમાં જૈનમત વધારે પ્રા-
ચીન છે અને તે વૈશેષિક દર્શનના ચાર પ્રકારના શરીર ઘાલા મતના કરતા પણ તત્ત્વજ્ઞાનના વધારે પુરાતન વિકાસ-
ક્રમના સમયનો છે. મારા અભિપ્રાય મુજબ વૈશેષિક અને જૈન દર્શનની વચ્ચે એક કોઈ પણ સંબંધ જ ન હતો કે જેથી એક દર્શને ધોજામાથી વિચારો લીધા છે, એમ સ્થાપિત કરી શકાય. છતાં પણ હું એમ કહી શકું છું કે એ બે દર્શનો વચ્ચે કેટલુંક વિચારસાદૃશ્ય અવશ્ય રહેલું છે. વેદાન્ત અને સાંખ્યના મૂળ તત્ત્વમૂળ વિચારો જૈન વિચારોથી તદ્દન વિરુદ્ધ છે, અને તેથી કળિને જૈનો પોતાના સિદ્ધાન્તને કાઈ પણ આંબ આવ્યા ધોજા સિવાય તેમના વિચારો સ્વીકારી શકે જ નહીં. પરંતુ વૈશેષિક એ એવા પ્રકારનુ દર્શન છે કે જેથી જૈન સિદ્ધાન્ત પોતાના મતને આપાત્ત પહોંચાડ્યા સિ-
વાય કેટલીક હદ સુધી તેની સાથે સમત થઈ શકે છે. અને આથી જ ન્યાય-વૈશેષિક દર્શન ઉપરના અધિકારીમાં જૈનોના પણ નામો જોવામા આવે તો તેમાં નવાઈ પામવા જેવું નથી. જૈનો તો આનાથી પણ આગળ વધીને ત્યાં

સુધી જનારે છે કે વૈશેષિક દર્શન સ્થાપનાર તેમના મત નો જ એક કૌશિક મોક્ષીય દ્વલ્ય રોહ્યુત નામનો નિન્દ્ય હતાં જેને વિ. સ. ૫૪૪ (ઇ. સ. ૧૮) મા ત્રૈપાશિક મત નામનો દ્રઢો નેન્દ્યિક સમ્રદાય સ્થાપ્યો હતો. આ દર્શનનું જે વર્ણન આવડ્યક સૂત્ર VV 77-૮૩ મા આપેલ છે તે ચાચવાથી જણાય છે કે તે સવલું વર્ણન કળાદના વૈશેષિક દર્શનમાર્થી લીધેલું છે કારણ કતેમા (સાત નાહીં પળ) છ પદાર્થો અને તેના પેટા મેદોડ વર્ણન આપેલું છે, અને આ ઉપરાન્ત યુગના વર્ગમાં (૨૪ નહીં પરન્તુ) ૧૭ વસ્તુઓ વર્ણન કરવામાં આવેલું છે, જે વૈશેષિક દર્શન ૧, ૧, માં આપેલી હકિકત સાથે સરાર મલી રહે છે.

માર માનવું છે કે, જાનો અનેક વીજી વાવતોની મા ફક, હિંદુસ્તાનના પ્રત્યેક પ્રસિદ્ધ પુરુષને પોતાના ધર્મેના ઇતિહાસ સાથે જોડી દેવાની વાવતમા પોતાને પટે તેના કરતા અધિક માનનાં હક્ક કરે છે ઉપરાંત જન દત કયાને અસર્ય માનવામા મારા કારણો નીચ મુજબ છે— વૈશેષિક દર્શન વાસ્તવમા એક આસ્તિક બ્રાહ્મણ દર્શન મનાય છે અને તે મુલ્યત્વે કરીને સ્વધર્મુત્તર હિન્દુઓ દ્વારા વિકસિત થયું છે. આમ હોવાથી તેમને સૂત્રકાર યુ જે નામ તથા કાસ્યપ એવું જે મોત્ર વતાવ્યું છે તે સવધમા તેઓ અસત્યાલાપ કરે છે, એવી શકા કરવાનું જરાય કારણ જણાતું નથી. અને વીજી એ કે સમગ્ર બ્રાહ્મણ સાહિત્યમા એવો ક્યાંય ઉલ્લેખ મલી આવતો નથી કે વૈશેષિક દર્શનના કર્તાનું સ્ત્રુ નામ રોહ્યુત હુ હુ નથા તેનું મોત્ર કૌશિક હુ તેમ જ રોહ્યુત અને કળાદ એ વજે નામો એક જ વ્યક્તિના હોય તેમ પણ માની શકાવ નહીં, કારણ ક તઓના મોત્ર સ્પષ્ટ મિત્ર મિત્ર જોવામાં આવે છે, ‘કળાદનો અભ્યાયી તે કળાદ’ એ શબ્દ, વ્યુત્પત્તિસાક્ષના અધુસારે કાક મત્તક એટલે મુવડ વાચક છે; અને એથી તે દર્શનનું ઉપદાસાત્મક નામ વ્યુત્પત્ત્ય દર્શન પડેલું છે. રોહ્યુતનું વીજી નામ હુહુય છે,

જેનું સસ્કૃતરૂપ ઘટ્ટકું થાય છે. તેમા ઘુવડ અને ઘણું કરીને કળાદોડ સૂચન થાય છે એ સર છે, પરન્તુ ઉત્ક શબ્દ જૈનોએ રોહ્યુતના મોત્રને અર્થાત્ કૌશિકને^૧ ઉદેશીને લેલેલો હોય તેમ જણાય છે. કૌશિક શબ્દનો અર્થ પણ ઘુવડ જ થાય છે. પરન્તુ આ વાવતમા જૈનોની વતકથા કરતા સર્વમાધ્યસમત પરપરા વધારે પસદ કરવા લાયક હોવાથી, આજન જૈનોના પરપરાગત વથ નન એવી રીતે સમગ્રાષી શક્તિય ક રોહ્યુતે આ વૈશેષિક દર્શનને નવું પ્રભુત્વ ન હોવું પરંતુ પોતાના નેન્દ્યિક વિચારોને સમર્થિત કરવા વૈશેષિક મતનો માત્ર અગોવાર કર્યો હતો

આ માગમા માપાતરિત કરેલા ઉત્તરાધ્યયન અને સૂત્ર-કળાગ સૂત્રના વિષયમા ડૉ. વેવર Indische Studien, Vol XVI p 255ff અને Vol. XVII, p 13ff. માં જે લખ્યું છે તે ઉપરાન્ત મારે કાઈ વિશેષ ઉમેરવાનું નથી. આ વજેમા, સૂત્રકળાગ એ વીજી અગ ગણાય છે અને જૈન આગમોમા અગોન પ્રથમ—પ્રધાન—સ્થાન આપવામાં આવે છે; તેથી તે ઉત્તરાધ્યયન સૂત્ર, કે જે પ્રથમ મૂલ સૂત્ર ગણાવું હાઈં સિદ્ધાન્તમા તેને છેલ્લું સ્થાન મલેલું છે, તેના કરતા વધારે પ્રાચીન છે. ચોથા અગમાં અપિલા સિદ્ધાન્તોના સાર ઉપરથી જણાય છે કે સૂત્રકળાગનો મુલ્ય ઉદેશ નવીન સાધુઓને વિરોધી આચાર્યાના પાસઢી મતોથી સરક્ષિત રાલવાનો અને તે રીતે સમ્યજ દર્શનમાં સિયર વનાવી તેમને પરમશ્રેય માત કરાવવાનો છે. આ હકિકત એકદર સાચી છે, પરન્તુ સર્વાંગપૂર્ણ નથી; એ આપણે આ પુસ્તકની શુરઆતમા આપલી વિષય સુચિ ઉપરથી જોઈ શકીએ છીએ મન્યની શુરઆતમાં વિરોધી મતોનું નિરાકરણ આપવામાં આવેલું છે અને તેની તે જ વિષય ફરીથી અધિક વિસ્તાર સાથે વીજી શ્રુતસ્કચના પ્રથમ અધ્યયનમા ચર્ચવામાં આવેલો છે. પ્રથમ શ્રુતસ્ક-

^૧ અસરા — છ પુવડ આ સપ્તનો પઢત્રા ‘૧૨’ ગરર રેશ વિક દર્શનના છ પદાર્થોના સૂચક છે

^૨ માગ ૧, ૪૦ ૨૨૦, પરન્તુ ને રુમને l c. p. 121. ઉપર અજાનર કરલી. એક દત્તવામાં સેતુ માત્ર ‘ઠઠઠ’ તરિકે લખ્યું છે

ધર્મા આની પછી પવિત્ર જીવન ગાઝગા સંબંધી, સાધુના પરિવહો સંબંધી, જેમાં લાસ કરીને તેમના માર્ગમાં ચતાવવામાં આવતો પ્રલોભનો તથા અસાધુજનો તરફથી મળતા શારીરિક કષ્ટો સંબંધી, તથા ધર્મના આદર્શમૂત મહાવીરની સ્તુતિ વિષયક અધ્યયનો આવેલાં છે. તેની પછી ઋજા પળ તેવા જ વિષયોપર અધ્યયનો છે. ઋજો શ્રુતસ્કંધ જે લગભગ સંપૂર્ણ ગદ્યમાં જ લખાઈએલો છે તેમાં પળ આવા જ પ્રકારના વિષયોનું નિરૂપણ કરેલું છે પરંતુ તેના વિવિધ ભાગો વધે કોઈ પળ દેસોતો સનધ જોવામાં આવતો નથી. આ ઉપરથી તે સ્કન્ધ અનુપૂર્તિરૂપે ગણી શકાય અને તેથી તે પાછળના કાલમાં પ્રથમ સ્કન્ધમાં થયેલો એક ઉમેરો છે. પ્રથમ સ્કન્ધનો ઉદ્દેશ સ્પષ્ટ રીતે જીવાન સાધુઓને માર્ગ ચતાવવાનો છે.^૧ તેની રચના શૈલી પળ આ જ પ્રયોજનને ઉપકારક થાય તેવી રાસવામાં આવી છે. તેમાં ઘણા છંદોના પળ ઉપયોગ કરવામાં આવ્યો છે, જેથી તેમાં કવિરચનો પળ સમાવેશ થયેલો છે એમ માનવું જોઈએ. આમાંથી કેટલીક ગાથાઓનું રૂપ કૃત્રિમ લાગે છે અને તે ઉપરથી એ ગ્રંથ એક જ કર્તાનો રચેલો હોય તેમ આપણે માની શકીએ છીએ. ઋજો સ્કન્ધ પ્રથમ સ્કન્ધમાં ચર્ચેલા વિષયો ઉપર લક્ષણ નિવંધનોનાં એક સમૂહ હોય એમ જણાય છે.

ઉત્તરાધ્યયન અને સૂત્રકૃતાંગ બંને સૂત્રોનો ઉદ્દેશ તથા તેમાં ચર્ચાદલા કેટલાક વિષયો પરસ્પર સમાન છે, પરંતુ સૂત્રકૃતાંગના મૂળ ભાગ કરતા ઉત્તરાધ્યયન વધારે લાંબું છે તેમ જ તે સૂત્રની યોજના પળ વધારે કુશલતા-પૂર્વક કરવામાં આવી છે. તેનો મુખ્ય આશય નવિન સાધુને તેની મુખ્ય ફલોનો બોધ આપવાનો, તથા વિધિ અને હાદ્યારણો દ્વારા મતિ જીવનની પ્રશંસા કરવાનો, તેના દર્શના-કાલ દરમ્યાન આવતાં વિધ્નો સામે નેતવળી આપવાનો, તથા કેટલુંક તાર્ત્વિક જ્ઞાન આપવાનો પળ છે. પાષંદમિતોનું ઘણાક ઠેકાણે સૂચન માત્ર કરવામાં આવ્યું છે પરંતુ તેમને વિસ્તૃત રીતે ચર્ચવામાં આવ્યા નથી. તે દર્શનામાંથી આવતા વિધ્નો જેમ જેમ વક્ષત જગા માંડેલો તેમ તેમ સ્પષ્ટ રીતે બોધા

યતા ગયા અને જૈનધર્મની સંસ્થામાં સુદૃઢ રીતે સ્થિર થતી ગઈ. નવિન સાધુને જીવાજીવનું વ્રાતર જ્ઞાન વધારે ઉપયોગી મનાવું હોય તેમ લાગે છે. કારણ કે આ વિષય ઉપર એક મોટું અધ્યયન આ ગ્રંથના અંતે આપવામાં આવ્યું છે. જો કે આ આજના ગ્રંથમાં આવેલા જુદા જુદા વધા અધ્યયનોની પ્રસંદગી તથા ગોઠવણીમાં કોઈક યોજના જોવી દેશાય છે છતાં પરંતુ તે સવળાં અધ્યયનો એક જ કર્તાના રચેલા છે કે લેખી અગર મૌલિક પરંપરાગત સાહિત્યમાંથી ચૂટી કાઢેલાં છે, એ એક વિચારણીય વાત છે. કારણ કે આવા પ્રકારનું સાહિત્ય જૈન સંપ્રદાયમાં, તેમ જ અન્ય સંપ્રદાયોમાં પળ, ધર્મશાસ્ત્ર ગ્રંથોની રચનાની પૂર્વે વર્તમાન હોવું જ જોઈએ. માર્ગ એમ માનવું છે કે આ અધ્યયનો પ્રાચીન પરંપરાગત સાહિત્યમાંથી જ હાથે કરી લીધેલા છે. કારણ કે તેની વર્ણનશૈલી તથા માધ્યમશૈલી પરસ્પર મિશ્ર હોય તેમ સ્પષ્ટ જણાઈ આવે છે. અને તે વાત એક જ કર્તાની કલ્પના સાથે સંગત થઈ શકતી નથી; અને આમ માનવાનું થીતું કારણ એ છે કે વર્તમાન સિદ્ધાંતોમાં ઘણા ગ્રંથો આ જ પ્રકારે ઉત્પન્ન થયા છે; એમ માન્યા વિના છુટકો નથી. કયા સમયમાં આ પ્રસ્તુત ગ્રંથો રચવામાં આવ્યા અથવા તો વર્તમાન સ્વરૂપમાં મુકવામાં આવ્યા તે પ્રશ્નનો સંતોષદાયક નિર્ણય કરી શકાય તેમ નથી. પરંતુ આ ગ્રંથનો વાચનાર સ્વાભાવિક રીતે જ આ વાતમાં માધાંતરકારનો અભિપ્રાય જાળવાની આશા રાસતો હોવાથી, હું અત્યંત સંકોચપૂર્વક મારો મત જાહેર કરું છું કે, સિદ્ધાન્ત ગ્રંથોના ઘણા ભાગો, પ્રકરણો તથા આલપકો સ્વેચ્છર જીનાં છે. બંગોડે અલિખન પ્રાચીન કાલમાં (પરંપરાનુસાર મહાવાહુના સમયમાં) થયું હશે. સિદ્ધાન્તના અન્ય ગ્રંથો કાલક્રમે ઘડ્યું કરેલું છે. સ. પૂર્વેની પહેલી શતાદિમાં સંપ્રદિત થયા હતા. પરંતુ દેવર્ષી ગણિત સિદ્ધાન્તોની આ છેઝી આવૃત્તિ તૈયાર કરી (વિ. સં. ૧૮૦ ફ. સ. ૪૧૪) ત્યાં સુધી તેમાં ઉમેરાઓ તથા ફેરફારો થતા ગયા હતા.

ઉત્તરાધ્યયન અને સૂત્રકૃતાંગનું ભાષાન્તર, મે, મને મળેલી સૌથી પ્રાચીન ટીકાઓમાં સ્વીકારેલા મૂળના આધારે કરેલ છે. આ મૂળ, હસ્તાલિખિત અન્ય પ્રતિઓ તથા

^૧ પુરાણી પરંપરા અનુસાર દર્શના કીધા પછી ચાર વર્ષનીવાય વાળુ ઉપજ્ઞતાંગુ અધ્યયન કરાવવામાં આવતું હતું.



गिरनारपर्वत—नेमिनाथकी टॉक

મુદ્રિત પ્રતિઓના મૂઠથી થોડેક અંશે જ મિત્ર છે. મેં
 એકત્રિત કરેલી કેટલીક હસ્તાલિખિત પ્રતિઓ ઉપરથી
 એક સ્વતંત્ર મૂઠ તૈયાર કરી લીધું હતું કે જે મને
 મુદ્રિત મૂઠ સાથે મળવી જોવામા ઘણું ઉપયોગી થઈ
 પડ્યું છે.

ઉત્તરાખ્યન સૂત્રની કલકત્તા વાઢી આવૃત્તિ (સવત્
 ૧૯૩૬ ई. ૧૮૭૯) માં ગુજરાતી વિનરણ ઉપરાત સ્વતંત્ર
 જ્ઞીયલ્કમીકીર્તિ ગણિના શિષ્ય લક્ષ્મીવલ્લભની રચેલી સૂત્ર
 દીપિકા આવેલી છે. આ ટીકાથી પછારે પ્રાચીન દેવે
 ત્રની ટીકા છે અને તે જ ટીકા ઉપર મેં મુખ્ય આધાર
 રાખ્યો છે એ ટીકા સવત્ ૧૯૭૯ ઇટલે ई. સ.
 ૧૯૨૩ માં રચાઈ છે અને તે પ્રકટરિતે જ્ઞાત્યાચાર્યની
 શુદ્ધવૃત્તિના સારાશ રૂપે છે. જ્ઞાત્યાચાર્ય વાઢી વૃત્તિ મેં
 વાપરી નથી મારી પાસે સ્ટ્રેસ્ટવર્ગ યુનિવર્સિટી લાઈબ્રેરીનાં
 માલિકીની અવચૂરિની પણ એક સુદર પ્રાચીન હસ્તાલિખિત
 પ્રતિ છે. આ પ્રથમ પણ સ્વદેશીતે જ્ઞાત્યાચાર્યની વૃત્તિનો
 સંક્ષેપ માત્ર છે. કારણ કે લગભગ એ ત્રેને અક્ષરશઃ
 મળતો આવતો જણાય છે.

સૂત્રકૃતાંગની મુદ્દવાઢી આવૃત્તિ (સવત્ ૧૯૩૬—
 ई. સ. ૧૮૮૦) માં ત્રણ ટીકાઓ આવેલી છે (૧)
 શીલાકની ટીકા: જેમાં મત્રવાહુની નિર્ધુક્તિ પણ આવેલી
 છે આ ટીકા સર્વે વિદ્યમાન ટીકાઓમાં સૌથી પ્રાચી-
 ન છે, પરંતુ આના પહેલા પણ કીર્તી ટીકાઓ ચપ્પલી

હતી. કારણ કે શીલાક કેટલેક સ્થલે પ્રાચીન ટીકાકા-
 રોનો ઉલ્લેખ કરે છે. શીલાક નરમી શતાબ્દિના પશ્ચાર્ધમાં
 થઈ ગયા હોય એમ જણાય છે, કારણ કે તેમણે આચારાગ
 સૂત્રની ટીકા શક વર્ષ ૭૯૮ ઇટલે ई. સ. ૮૭૬ માં
 સમાપ્ત કરી હતી, એમ કહેવાય છે (૨) એ ટીકા-
 માથી હર્ષકુલે કરેલો સંક્ષેપ જેવું નામ દીપિકા છે, તે
 સવત્ ૧૫૮૩ અવધા ई. સ. ૧૫૧૭ માં રચેલો છે
 મારી પાસે દીપિકાની એક પ્રતિ છે જેનાં મેં ઉપયોગ
 કર્યો છે. (૩) પાસચન્દ્રનો બાલાવબોધ—ઇટલે ગુજ-
 રાતી ટીકા. માહિતીના મુખ્ય પ્રથ તરીક મેં સાધા-
 રણ રિતે શીલાકની જ ટીકા વાપરી છે. જ્યારે શી-
 લાક અને હર્ષકુલે રચે મલતા આવે છે ત્યારે દીપ્ત્યનમાં
 મેં તેમને વતાવવા ' ટીકાકારા ' એમ લખ્યું છે. જ્યારે
 શીલાકનો અમુક ટીકાશ હર્ષકુલે પદતો મુકેલો હોય
 છે ત્યારે હું માત્ર શીલાકનું જ નામ આપું છું, અને જ્યારે
 કોઈ ઉપયોગની અસલ હકિકત હર્ષકુલે જ આપે છે ત્યારે
 ત્યાં આગળ મેં તેનું જ નામ આપેલું છે મારે આ સ્થલે
 સાસ જણાવી રેડું જોઈએ કે મારી એક હસ્તાલિખિત
 પ્રતિમાં હાસિયામાં તથા કે કે લીડિઓની થ્રે કેટલીક
 સસ્કૃત નોટી આવેલી છે કે જેની મદદથી હું કેટલીક
 વલતે મૂલનો સાસ અર્થ નિશ્ચિત કરી શક્યો છું

બોન

નવેમ્બર, ૧૮૯૪.

એચ્. ઝેફોબી



અહિંસા અને વનસ્પતિ આહાર-લાસ કરીને વૌદ્ધ ધર્મમાં

[બુદ્ધિસ્ટ રિવ્યુના, પુસ્તક ૬, અંક ૧ મા પ્રકટ થયેલા—

ડૉ F. OTTO SCHRADER, PH. D ના લેખનો અનુવાદ.]

અહિંસા—પટલે બીજી પ્રાણિઓને કાંઈ પણ પ્રકારની હિંસા કરવામાંથી અલગ રહેવાનું—વ્રત હિંદુસ્તાનના આર્ય-મા જન્મ પામ્યું હતું યાદુદો-ગિસ્તી સસ્કારોથી એ વ્રત કેટલું વધુ વિદેશીય છે, એ વાત નીચના વિરાધ-દર્શન દર્શાવતી જણાઈ આવે છે 'ચ્યાર કાઈસ્' પિટરન મઝ્યા ત્યારે પિટરે પોતાનું માછલીઓ પકડવાનું કામ શરૂ કર્યું હતું પિટરે જલમાં નાચતી જાછોને કાઈસ્' પટલા વધા આશીનાંદો આપ્યા કે બધી પકડાવેલી માછલીઓના મોંઢા સમૂહને લીધે હાડીઓ ડુધી જવાના મયમાં આવી પડી એકી ઊલટું, પાણીમાં નાચતી પોતાની જાછોને વહાર લેવી કાઢવાની તયારી કરતા કેટલાક માછીમારો ચ્યારે પાપવાગોરછની કૃષ્ટિ પકડ્યા ત્યારે તેણે તે માછીમારો પાસેથી જાલગ્રસ્ત વધી માઠ-લીઆ વેચતી લઈ લીધી અને પટી તે વધા માઠગીઆ તેમ જ તે જાલમા પકડાવેલ બીજા પ્રાણિઓને પણ તેજ મુક્ત કર્યાં જો કે અત્યારે આર્થ ઓલાદનો દરેક પશ્ચિમવાસી પોતાના પોર્વાલ્ય વન્ધુ બટલા જ અહિંસાવ્રતનો પક્ષપાતી હોય છે ડહા હુણુ પશ્ચિમમા સામાન્યરિતે વન્ધનકારક નિયમ તરીકે સૌ અહિંસાવ્રતનો સ્વીકાર વળો જ અસ્પટે

અહિંસાને ધાર્મિક તત્વનું સ્થાન ચ્યાર મઝ્યુ એ વહેતું મુરેકલ છે, પરન્તુ અત્યારે અસ્તિત્વ ધરાવતા ધર્મોમાં જૈનધર્મ એક એવો ધર્મ છે કે જેમાં અહિંસાનો વ્રમ સમ્પૂર્ણ છે અને જે શક્ય તેટલી દૃઢતાથી સદા તેને વઝગી રહ્યો છે

ઉત્પાદ્યન સૂત્ર નામક બોનાના એક આગમ પ્રથમા

અહિંસાને ઉદ્દશીન બોનેતુ દૃષ્ટિવિન્દુ આ પ્રમાણે વનામ્યુ ડું—

“ કાઈસ્ પણ જીવતા પ્રાણિઓની હિંસામાં અનુમતિ આપતી નહીં, તેમ કરવાથી મનુષ્ય સગ દુસ્-માથી મુક્ત થઈ, જ આચાર્યોએ યતિર્મ વધો ડું તે ઓએ એ પ્રમાણ આશા કરી છે.

‘ જ જ્ઞાની પુરુષ જીવતા પ્રાણિઓને હિંસા કરતો નથી તે સમિત (ચારે શાણુએ જોનારો) કહવાય ડું જેમ જલ ઉચ્ચ પ્રદેશનો ત્યાગ કર ડું તેમ પાપકર્મ તે પુરુષને સ્વર્ગી દેશ

“ જગમ અથવા સ્યારર જે પ્રાણિઓ જગત્મા રહેલા છે તેમને હાની થાય તેવું કાઈ પણ કર્મ મનથી, વચન-થી કે કાયાથી મનુષ્ય કરતું નહીં ”

“ (મનુષ્યો સહિત) પ્રાણિઓ, અગ્નિ અને પવન એ ત્રસ—ચાલી શકે તથા પ્રાણિઓ છે, પૃથ્વી, પાણી, અને વનસ્પતિ એ સ્થાવર—ન ચાલી શકે એવા પ્રાણી છે ”

આચારાગમસૂત્ર નામના એક બીજા પ્રાચીન અને આગમ પ્રથમા આ વધાનો યથાક્રમ સક્ષપમા નીચે પ્રમાણે સમાવેશ કરવામાં આવ્યા છે ”

“ તે પાપ કર્મને જાળીને જ્ઞાની પુરુષ પૃથ્વી (જલ તેજ વિગેરે) પ્રત્ય હિંસક રિતે વર્તતું નહીં, બીજાન ત પ્રમાણે વર્તવા પ્રયત્ન નહીં, તેમ જ જગતો ત પ્રમાણ વર્તતા હોય તેમને પ્રશસવા નહીં ”

જેન ધર્મમાં અહિંસાના નિષ્કાર સર્વથી જ ઉત્કટતા છે તેનો આખી જ્યાલ આવ છે જો કે આ નિયમો માત્ર યતિઓ માટે છે છતાં હાલી ચાલી શરૂના પ્રાણિઓના વધ ન કરવાનું અહિંસાણુવ્રત—અહિંસ સત્ત્વો નાના નિયમ—નો યતિ ન હોય તને પણ દૃઢતાથી પાલવા પડે છે —

“ લોક ટાઈપ અમે મુક્યા છે —સપાદક જે સા સ

“ त्रस एटले च'ली शके एवां प्राणिओने अमय दान आपवामां तत्पर रहेनार सत्पुरुषोए प्रमादक पान, मांस, मद्य अने रसवाला वृक्षोना फलोओ हमेसां त्याग करवो जईए.

“ जेमां सूक्ष्म जंतुओना नाश थाय छे अने अमद्य वस्तुओ खवाय छे तेनु रात्री भोजन, दयाळु सजना कदी करता मथी.

“ जेओ स्थानर प्राणिओना नाश करीने अन्नाहारी तरीके रहे छे अने जेओ त्रस प्राणिओना नाश करीने मांसाहारी तरीके शीये छे, ते बनेना पापतुं अन्तर, सत्पुरुष, जगति छे के, परमाणुं अने मेरुना जेटलुं होय छे.

“ अन्नाहारमा जे परमाणु जेटलुं पाप छे तेनो नाश मायश्चित्त मात्रयी करी सकाय छे, परन्तु मांसाहरमां पाप पर्वतराज जंतु मोडु छे अने तेथी तेनो नाश करी सकासो नथी.”

मध, रेशम अने ऊन विभेरेनी उत्पत्तिमां बने छे तेम प्राणिओनी संपत्ति खूबसी लेखानी यनि अने उपासक बनेने मना करवामा आवी छे. मध खावामां चोरी अने हिंसा बन्ने रह्या छे. हिंसा एटला मार्ट के “ मधतुं दरेक बिन्दु असह्य मक्षिकाओना बघथी ज प्राप्त थाय छे.” “ जेटलुं पाप सात गामोने बाळी नाखवाथी थाय छे तेदलु पाप मधतुं एक टीगु खावाथी थाय छे.” “ ग्या ह्जारो होरो मूले मेरे छे एवा हिन्दू देशमां उपरना बिहार साथे आश्चर्यजनक विरोध घरबनार वात तो ए छ के प्राणिओनु दूध पीवामां पाप बिलकुल गणवामां आवुं ज नथी !

अहिंसानो आवो उत्कट मार्ग अनुक्रम वगर एकदम उत्पन्न थाय ए भाग्ये न मानी सकाय तेबुं छे, तेथी; तेम ज महावीर अने पार्श्वनाथ पण आमना घणा नियमो उपर भार मूकता हुता तेथी; आपणे एही कल्पना तरफ दोराईए छीए के बुद्धनी पूर्वे बे शतक के तेथी पण पहेलां (एटले क्रिस्टीनी पूर्वे ८०० वर्ष पहेलां) हाल जेने अहिंसातुं ‘ अशुवत ’ कहेवामां आवे छे तेना जेवा एक

मन्तव्यनी प्रथम स्थापना जैना अथवा कोई अन्य धर्मातुं-यायीओ तरफथी करवामा आवी हंस. आ कल्पनाथी आपणे वैदिक युगनी समाप्ति सुधी पाछ्छ जईए छीए, अने अहि छान्दोग्य उपनिषद्ना अन्तिम भागमां आपणे इच्छेछ अहिंसा व्रततुं प्रथम पगथियुं आपणेने मळी आवे छे.—जो के देखीतां राते ते मूळनो शरआतनु तो नथी ज. छान्दोग्य उपनिषद्ना ते भाग नीचे प्रमाणे छे—

“ आचार्यना घरे यथानिहित समयमां, यथा विधि, वेदना अभ्यास करीने जे गुरुना घेरथी पाछो आवे छे, तेणे पोतानी मेळे पोताने घरे पवित्र स्थानमां, ते पवित्र ग्रंथोना अभ्यास करवो; सत्यशील शिष्योने भग्नाववा; पोतानी सकल शक्तिओतुं स्थान आत्माने बनाववो; पवित्र तीर्थां सिवाय अन्यत्र कोई पण प्राणीनी हिंसा करवी नहीं; ते खरेखर आ प्रमाणे यावज्जीवन रही ब्रह्म-लोक मेळवे छे; अने पुनः आवतो नथी.—पुनः आवतो नथी.”

एना अर्थ ए के—जे मोक्षनी आकांक्षा राखे छे ते यज्ञ सिवाय अन्यत्र पशुवध करा शके नहीं. ए ब्यानमां राखतु जोईए के अहि गृहस्पते उद्देशीने आ अहिंसानो नियमतुं वर्णन थाय छे. केम कं घणु करीने ते समये, वैदिक युगना अन्तमां पण, ‘ सन्नपास ’ ना प्रारंभ पयो न हतो.

परन्तु त्यार पछीना उपनिषदोमा चतुर्थांशम पूर्ण विकास पासेलो जोवामा आवे छे, अने तेने माटे आपेला नियमो जैन यतिना नियमोने केदलेक अक्षे मळता आवे छे. जैन यतिनी जेम, ब्राम्हण सन्यासीने पण धर्मांरुतुमां फरवानुं बध राखतुं पडे छे, अने पाणी पीवा पहेलां बाळवुं पडे छे. अने एग पण ज—जो के चांक्स नथी छता—ते मांसाहार करी सकतो नहीं. ‘ गमे ’ तेम हो परन्तु आटलुं तो चोक्स छे के ब्राम्हण धर्ममां पण घणा लांवा समय पछी सन्नपासिओ मांटे आ तुक्ष्मतर अहिंसा बिहिन यई; अने आखरे वनस्पति आहारना रूपमा ब्राह्मण ज्ञातिमां पण ते दावज यई हतो. कारण ए छे के जैनांनो धर्मनन्त्रोए जे लोकमन जीव्यो

હતો તેની અસર સજ્જદરિત વધતી જતી હતી. બુદ્ધના સમયે અને ત્યાર પછી પણ કેટલાક વસ્તુ ગુપ્તી બ્રાહ્મ-જોષ વનસ્પતિ અહારનો સ્વીકાર પૂરે પૂરા કર્યો ન હતો એ વાત મુમુક્ષુદ પત્ર પત્રનલ વ્રતથી સાબીત થાય છે મહામારત (૧૦, ૧૪૧, ૭૦) મા આ નિયમ નીચેના રૂપમાં આપેલ છે—

“ બ્રાહ્મણ, ક્ષત્રિય અને વૈશ્યે માત્ર પાંચ પાંચ નલ યાજ્ઞ પ્રાણીનુ મક્ષણ કરી આ ધર્મ પ્રમાણે ચાલવુ અને જ અ-મશ્ય છે તે પ્રત્યે મન દોરવુ નહીં. ”

એ ધ્યાનમાં રાખતાં જુએ છે કે ત જ નિયમ એક જુના બૌદ્ધ જાતકમાં અને લગભગ વધા જુના ગ્રાહણ ધર્મપ્રથો—સ્મૃતિઓમાં મળી આવે છે કુર્મપુરાણમાં તેન મનુષ્ય કહેલો વતાવ્યા છે, પરંતુ મનુ (તેમ જ ગોતમ) છ પ્રાણીઓની અનુમતિ આપે છે, અને આપસ્તલ સાતમી પળ રજા આપે છે. મહામારતમાં બીજે સ્થલ (૧૨, ૩૭, ૨૧-૨૪) “ બ્રાહ્મણન અમદય એવા પ્રાણીઓનુ એક લાડુ બીજ વ્યાસ મુનિએ આપ્યુ છે એ મશ્ય પ્રાણીઓની સભ્યા વધુ યોગી હોત તો વ્યાસ આટલી મ-હેનત લેત નહીં પરંતુ સમય જતાં જ્યારે જેન અને બૌદ્ધ ધર્મે દેશમાં પ્રવલ્લ થયા ત્યારે પ્રાણી-હિંસા અને માંસ-મક્ષણ માન યજ્ઞમાં જ કરતાં એવા નિયમ કર્યા વગર બ્રાહ્મજોષી જલાલો લેવાનુ નહીં ” અને તેમાં પણ પશુહિંસા વધાર ન થયારે ઓછી કરવામાં આવી અને અન્તે માંસની હચ્છા રાતનારા (આમિષકાક્ષિણ) પિતૃઓને [જઓનો માંસમક્ષણનો હક્ક મહામારતના છલો માગોમાં સહેજ નામરજી સાથે સ્વીકારવામાં આવ્યા છે ”] પણ વનસ્પતિ મક્ષક થયાની ફરજ પાડવામાં આવી અને આસર દક્ષિણ હિંદમાં ફ. સ. ના તરફ સેવા-માં ઉત્પન્ન થયેલા માધવ સપ્રદાયના કેટલાક પ્રતિનિ-ધિઓએ અન્તિમ પગલુ લીધુ તેમણે ગમે ત પ્રકારની પ્રાણીહિંસાને પાપવાલી ગણીને બિઠ્ઠારી અને યજ્ઞમાં પ્રાણી વલિદાનને સ્થાને કહેવાતો પિષ્ટ-પશુ પડેલે અઘની વના-વેલી પ્રાણીનાં આકૃતિ વાપરવાનો રિવાજ દાલલ કર્યો. ”

પરંતુ આ સર્વ બ્રાહ્મણોને જ ઉદ્દર્શિત છે, અથવા

વધુ તો દિગ્ગેને ઉદ્દર્શિત છે. વૈદિક સપ્રદાયના અવશિષ્ટ વર્ગોને માંસાહારમાંથી મુક્ત રાલવામાં અલ્યા ન હતા. તેથી આધુનિક સ્થિતિ વધુશ નીચે દર્શાવા મુજબ છે દક્ષિણ હિન્દમાં સર્વે બ્રાહ્મણો વનસ્પતિ આહાર કરનારા છે. ઉત્તરમાં ઘણા બ્રાહ્મણો મલ્ય-મશક છે અને કાશ્મીરમાં તો અન્ય માંસ પણ લાય છે. ક્ષત્રિયો સદા મોટે માંગે માંસ લાતા જ હતા અને હજુપ લાય છે. વૈશ્યા (વ્યાપારી વર્ગ, જેને દક્ષિણમાં ઘડી-આર અને ઉત્તરમાં વાળીઆ ધિંગેરે કહે છે તેઓ) સાધારણ રીત બ્રાહ્મણના માંસનુ અનુકરણ કરતા દલાય છે શૂદ્રા માંસ-મક્ષક તમ જ વનસ્પતિ-મોજી પણ હાય છે. ઘણા માંગે તઆ વનસ્પતિ આહાર ઉપર રહ છે, કેમ કે માંસ ઘણુ મોણ હોવાથી તમના મોટે દુર્લભ જુ છે.

સન્યાસીઓના વિષયમાં તો મે પ્રથમ જ કહ્યુ છે કે જે નિયમોને તેઓ અનુસરે છે તે ઘણે અશે જેન મતને મળના આવે છે તેઓ શાસ્ત્રે માંગે તપસ્યા કરે છે અને તેથી તઓમાંના ઘણા તો માંસનો દર્શન ઘણ કરતા નથી; કેમ કે ક્ષત્રિયોના વિષયોની વ્રતિઓને તેથી પાંપળ મળે છે. પરંતુ અન્મથી બ્રાહ્મણ એવા એક આદર્શ રૂપ અને વિદ્વાન્ સન્યાસી કે જેના પરિચયમાં હુ આવ્યા છુ, તેણ મને કહ્યુ કે શ્રદ્ધાપૂર્વક અર્પણ કરવામાં આવેલી માંસવાલી વસ્તુને પણ અનાદર કરવા એ જરા મિથુ માટે અયોગ્ય અને દાર્વલ્યસૂચક છે તેનો વિચાર આવે હોય એમ જણાય છે, કે જે યતિ તેને આપનામાં આવેલી સાવાયોગ્ય ગમે તે વસ્તુ સાગાને શક્તિમાન ન હોય, તે તૈત્તીર્ય ઉપનિષદમાં (૨, ૭) કહેલ, તેની અને સસારની વધે રહેલા સાબાની (‘ ઉદર અન્તર ’ ની) પેલી-પાર જવાન ફતેહ થયો ગણાય નહીં; તેમ જ હન્દ-મોહ અને જુગુપ્સાને જીત્યા ગણાય નહીં, કે જે આરમ સાક્ષા ત્કારમાં મુલ્ય સાધન મનાય છે આ ઉપરથી ‘ મિલિન્દપણ ’ (૨, ૬) નો એક જાળવા અર્થો ઉલ્લેખ સ્મરણ-માં આવે છે, જેમાં બૌદ્ધ સાધુ કહે છે કે “ હે મહારાજ ! તે હજુ રાગથી મુક્ત થયો નથી, જે મોજન કરતી વસ્તુ

સ્વાદ અને સ્વાદજન્ય સુખનો પણ અનુભવ કરે છે જ્યારે શ્વેતર રાગ રહિત પુરુષ તો મોઝન કરતી વસ્ત્રે માત્ર સ્વાદનો જ અનુભવ કરે છે પરંતુ સ્વાદજન્ય સુખનો અનુભવ કરતો નથી. ”

હવે આપણે બૌદ્ધધર્મ તરફ વળીએ. અહિં અર્હિસા અને યનસ્પતિ આહારના સ્વભાવમા એક વિવાદાસ્પદ પ્રશ્ન ઉત્પન્ન થાય છે, કે જે પ્રશ્નનો નિર્ણય મારા જાણવા પ્રમાણે હજી કોઈ લાવી શક્ય નથી. ડૉ. ન્યૂમેન આદિનો પક્ષ કહે છે, કે બુદ્ધ યનસ્પતિ આહાર જ કરતા, જ્યારે બીજો પક્ષ કે જેમાં યજ્ઞા વિદ્વાનો છે, તેઓ ‘અમુક સ્વાદ પ્રસન્ન સિવાય અન્યન બુદ્ધ માંસાહારની મના કરતા હતા,’ એ વાતનો ઈન્કાર કરે છે. પૂર્વપક્ષ જ્યારે, અર્હિસા એ ત્રત મિશ્રુ તેમ જ ગૃહસ્થે પાલ્લવાના નિયમોમા પ્રથમ સ્થાન ધરાવે છે, એ વાત ઉપર માર મુકે છે, ત્યારે ઉત્તર પક્ષ, ધર્મ ધર્મોના કેટલાક ફકરાઓનો, તથા મહાયાન તેમ જ હીનયાન એક-ભવ જ્ઞાણોના અનુયાયીઓનો મોટો ભાગ જે આજે માસ મક્ષણ કરવા છતાં પોતે અર્હિસાનું પાલન કરે છે એમ માને છે, તે વાતનો આશ્રય લે છે.

મારા મત મુજબ સત્ય વચ્ચે પડ્યા રહે છે અને તેના કારણે હવે હું વિસ્તારથી આગુ છું.

એક આશ્ચર્યજનક વાત એ છે, કે દક્ષિણ હિન્દના જેનો મા બુદ્ધસમ્બન્ધી અદ્યાપિ જાણીતો એવી એક હાકિકત છે કે તે ‘બુદ્ધ એક ધર્મો સ્વાદ માણસ હતો અને માંસાહારને ઉત્તેજન આપતો હતો,’ માક્ષણધર્મનું ઉપહાસ આલેસુ અને જળદનમગ્ધન કરતું ધર્મપરીક્ષા નામે પુસ્તક” જે

“(દુષ્કાલના વસ્ત્રમા) એક ગૃહસ્થ પોતાના પુત્રને મારીને સ્નાઈ શકે, અને એક જ્ઞાની મિશ્રુ જો તેમાંથી માંસ લે તો તેને પાપ લાગે નહીં.

“જો કોઈ માણસ મૂલર્થા ધાનનો ઢગલો માનીને” માણસ અથવા ચાલકના વધ કરે, તેને અગ્નિ ઉપર મૂકે, પકાવે તો તે બુદ્ધોનો માટે યોગ્ય એવું મોજન હોઈ શકે ”

અર્હિસા આ પ્રમાણે ઘણા વિલક્ષણ રૂપમા બુદ્ધના એક મતને આલેખ્યુ છે કે જે અસલમા આપણે જોઈ એ તો, આ પ્રમાણે જાડી આવે છે, કે વધ કરાવના માર્ગોના વધનું કારણ પોતે કોઈ પણ રીતે ન હોય તેવા માંસ સિવાય બૌદ્ધ મિશ્રુએ અન્ય કોઈ જાત નો માંસાહાર કરવો નહીં

સુલ્લગ્ગમા (૭, ૧-૧૫) અને અન્ય પિટકોમાં ઘણી સારી રીત એક સુલાસો આપવામા આવ્યો છે, કે જ્યારે મતભેદ ઉત્પન્ન કરવાની જરૂરથી (અર્થાત્ પોતાની માગણી સ્વીકારવામા નહીં આવે અને સારી રીતે જાણનો હોયો છતાં) દેવદત્ત મત્સ્ય અને માંસ આહારની મિશ્રુઓને માટે મના કરવાની વિનિયતિ કરવા બુદ્ધ પાસે જાય છે ત્યારે બુદ્ધ તેની વિનિયતિ અસ્વીકાર કરે છે” અને કહ્યું છે કે ‘... હે દેવદત્ત ! આઠ માસ મુર્ધા વૃક્ષો નીચે તથા કરવાની ને રજા આપી છે ” નેમ જ અવૃદ્ધ, અશ્રુત અને અજાકિત એ પ્રશ્નોને ત્રણે વાતનોમા જ નદન શુદ્ધ હોય તેવા મત્સ્ય અને માંસ [જાવાની પણ ને રજા આપી છે] ’

वली सरसावा — 'हे भिक्षुआ ! मांस खागना ठवुशी हणापला प्राणीउ मांस जाणी जाईन वाईण खातु नहीं ज काई ए प्रमाणे करेता ते "बुद्धन" अपराध करेता हे भिक्षुओ ! अदृष्ट, अश्रुत, अन अशक्ति एम त्रण प्रकार ज मांस बुद्ध हाथ ते खावानी हे राजा आपु छु " (महावग्ग ६, ३१ ना अतमा) वली. " हे मूर्ख ! (मांस क्याथी आवु छे ते) तपास्या विना तु शी रीत ते मांस खाई शक ? हे भिक्षुआ ! तपास क्या उगर काईए पण मांस खातु नहीं " (तज ग्रंथ ६, ००)

बीजा नियम ए ठ क—मांस काच न हातु माईए (ब्रह्मजाल सुत्त १०, अगुत्तरनिकाय १९३-१९९; मज्झिमनिकाय, ३८ धिगेर) सधमा दासण यता नना पुरुषा माटे वारवार कहवामा आ तु छे के "तथा वाचु (अत्र) स्वीकारता नहीं [तथा काचु मांस स्वाकारता नही]'

डेवट महावग्ग (५, २०) मां एक विचित्र आज्ञा करवामा आवी छ—अने हे जाणु उ त्या सुधी अ यत्र ते जोवामा आवती नहीं त स्थल माणसउ, हाथउ पाबाउ, कुतराउ, सर्पउ, सिंहउ, वाचनु चित्ताउ, दीप-काउ, रीउउ अने तरपुउ मांस त्यजगा निष कहवामा आवु छे आन आपणे व्यासनी यादीना (जुओ उपर) अवशिष्ट भाग तरीक गणी शकाए

अहिंसापदशक धर्मेना एक महान् प्रवर्तक मांसना उ पमोगेन भिङ्गारे नही; मांसाहारनो सर्वदा त्याग कया सिधाय पाताना मनाविकारोने जीतवानी एक भिक्षु इच्छा राखे; आ बहु, जेम अत्योरे पण बौद्धधर्मेना परिचयमा, ज विचार शील पुरुषो आवे छ तेमन, एक न समजी शकय एवी सुचवण लग छे, तेम त समये पण घणा माणसोने आ विचार आश्चर्यजनक अने अतर्क्य लागतो हतो परतु ए एक सारी वात छ, क आ विचार ना बुद्ध पोत शी रीत निराकरण करता हता तेना एक पुरानो आपणन मळी आवे छ

सुत्त निपातना आभगण सुत्तमा काइ एव पुरुष बुद्ध-न सवोपे छ; "जन पणी पोताना वनस्पतिभोजीपणानु

पणन जन प्रशस्ता करीत रह छ क "स्वच्छता (आम गंध छत्र खरागंधन) मारा माय काई सवन नही आम तम कहा उ (अन गग) ह मद्रवतु । ' सारी रीत तयार गग पक्षीना मांस साथ मट्टग मात तम खाता उ, तथा हे काउप । हु तमन पूण उ क तम गुदता ना शा अथ कहा उ ? " आना बुद्ध उत्तर आप उ क ' आजतां प्राणिआन दुमवगा, मांसा, कापसा, शकसा, चारी करवा, कसय मापण करतु, छत्र अने कपण करवु, सार उगरनु वाचनु तउ नाम अशुद्धता उ; पण मांसभक्षण नहीं ' आनी पण आ प्रचरना बाजा उ शका आव त दरजना अत, आ त अशुद्धता उ; पण मांस भक्षण नहीं " आ शब्दा होय उ अने तेमा कह उ क मत्स्याहार क मासाहारना त्याग, नम्रघ्नमण, मत्तक मुद्धन, न धारण घूल-निर्माह्य-मत्तधारण, अग्निहाम, आ सत्र, माशमाथा ज पुरुष मुक्त नथा तेन पवित्र करी शकता नही वदाध्ययन, गुरुदान, दवयजन, धम अध्या शीत सहनेद्वारा आमदमन, अन एसा बीजा, अमृतचरनी इच्छाथी करवामा आवेल तपा, मायाथी बद्ध पुरुषने पवित्र करी शकता नही " "

अत्रवत्, ए बात तो स्पष्ट छ के ऊपर ज प्रकारे वर्णवला उ तेमा मांसन भिक्षुना भोजनना एक आवश्यक क भाग तरीक ता स्थान आपवामा आवु नही ज, पण सहलाईथी अनो सर्वदा त्याग करी शकाय एवा अपवाद रूप त मांसने स्थान आपवु उ तथापि बुद्ध तेनो सयथा निवध करवा इच्छा न हता अने तम करवामा तमन मुख्य कारण, पाताना उपदेशउ ए एक स्पष्ट अने शास्त्र उदाहरण बताववाना तमना इच्छा हतीक " आहारना प्रश्न धार्मिक शुद्धि-विशुद्धि साधे बिहडु सवध छ नहीं "

मांसना आ नियत उपयोग सिवाय, आपणा प्रस्तुत विषयमा बाद अन जन स बुद्धोमा विशेष भेद नही हतो जेन साधुनी जम बाद साधुन पण कालजीपूर्वक काइ पण प्राणीनी हिंसाया दूर ज रहवात हतु सुत्तनि पावामा (धम्मक सुत्त १९) पण कह्य उ क —

“ચર તેમ જ અચર (તસ અને ચાવર) ઉમય પ્રકારના પ્રાણીની હિંસાથી દૂર રહેવું, તેણે (મિશ્રુષ) જીવને હાનિ કરવી નહીં, કરાવવી નહીં, બીજાને તેમ કરવામાં સમ્મતિ આપવી નહીં. ”

તેજ પ્રમાણે ધમ્મપદ (૨૬, ૨૩) માં:—

“ જે ચરાચર પ્રાણીની હિંસાથી દૂર રહે છે તેને હુ દ્રાક્ષણ કહુ છું; જે પોતે હિંસા કરતો નથી, અને અન્યને હિંસા કરવા પ્રેરતો નથી (તેને હુ બ્રામ્હણ ગણુ છું.) ”

“ સાહ્યમત્તનો—આત્માનુ સાહ્ય—અર્થાત્ જ્યાં જ્યાં જીવ છે ત્યાં ત્યાં તેના આત્માના જેવું જ કાંઈ છે ”
‘ ય ઘાત મિશ્રુષ મૂલ્લી જોઈએ નહીં. ’^{૨૪}

“ હીલા રોપાઓને પગનીચે ચગદી નાલવાથી દૂર રહેવાને, વનસ્પતિ જીવની હિંસાથી વચવાને, ઘણા નાના જીવોની નિદ્રાગીને ક્ષય થતો અટકાવવાને ”^{૨૫} માટે ઘણાં વસ્તુમાં પર્યટન કરવાની ના કરી હતી. જે ફલોને અગ્નિથી, છત્રીથી, નલ્થી અચેતન કરવામાં આવ્યા હોય અથવા જેમાં એક પળ બીજ રહ્યું ન હોય અથવા જેમાં બીજનો (અર્થાત્ બીજમાં રહેલી બીજાં ફલો ઉત્પન્ન કરવાની શક્તિને), ક્ષય થઈ ગયો હોય, તેવા જ ફલો સાગાની રજા આપવામાં આવી હતી.^{૨૬} આ સાથે—દટલે વનસ્પતિ જીવની અહિંસા સાથે “ ઘાસ વગરની ” જગામાં અન્નના અવિશિષ્ટ ભાગને ફેંકી દેવાનો આદેશ પણ ઘણે સ્થળે કરવામાં આવ્યો છે.

આ ષદ્ધુ તો બૌદ્ધ મિશ્રુને ઉદ્દેશીને વિવેચન થયું. હવે આપણે એ નિર્ણય કરવાનો છે કે બૌદ્ધ ગૃહસ્થ માટે આ નિયમો છે કે નહીં ? અને જો હોય તો તે કેટલી મર્યાદા સુધી.

જેનાની સ્થૂલ અહિંસાના જેવું ઇમાં પણ કાંઈ હોવું જોઈએ એ વિચાર, દૃષ્ટાંત તરીકે, સંયુત નિકાય ૭, ૧, ૫ ના ઉલ્લેખથી દૃઢ થાય છે. તે સ્પષ્ટ જ્યારે અહિંસક નામનો દ્રાક્ષણ બુદ્ધપાસે આવીને કહે છે કે “ અયુષ્માન્ ગોતમ, હું અહિંસક છું ” ત્યારે તેનો ઉત્તર બુદ્ધ શ્લોકોમાં આ પ્રમાણે આપે છે:

“ તું જેમ કહે છે તેમ મને તારા નામ અહિંસક હો:

પરંતુ જે કાયાથી, વચનથી, અને મનથી કોઈની હિંસા કરતો નથી તેવો અહિંસક તૂંથા. કેમ કે તે જ સ્વરો અહિંસક છે જે બીજાની હિંસા કરતો નથી. ”

પુનઃ અયુત્તરનિકાય (૩, ૧૫૩ comp, ૧૦, ૨૧૨ માં આપણે વાંચીએ છીએ કે:—

“ હે મિશ્રુઓ ! ત્વળ કાર્યવાટો માણસ નરકગામી થાય છે. કયા તે ત્વળ કાર્યો ? જે પોતે જીવની હિંસા કરતો હોય, બીજાને હિંસા કરવા પ્રેરવો હોય, અને બીજાને હિંસા કરવામાં સમ્મતિ આપતો હોય. ”

“ હિંસા, હં મિશ્રુઓ ! હુ ત્રણ પ્રકારની ગણુ છું. લો-મથી કરાણી, દોષ-થિક્કારથી કરાણી, અને અજ્ઞાન-મોહથી કરાણી. ”

આ વચનો અયુત્તર નિકાય (૧૦—૧૭૪) માંનાં નિયમની એમ માત્ર મિશ્રુઓ માટે જ કહેવામાં નથી આવ્યાં.

આ વિષયમાં સાંધી વધારે વિચારવા લાયક સુત્ત-નિપાતર ધમ્મિક સુત્ત છે. મિશ્રુના નિયમરૂઢ વર્ણન કર્યા પછી, તેમાં (શ્લોક ૧૮ વિશે) કહ્યું છે કે “ હવે હું તમને ગૃહસ્થના ધર્મો કહીશ, જેવું પાલન કરવાથી મનુષ્ય (બીજા જન્મમાં) શ્રમણ અને અર્હંત થાય છે. કારણ કે એક મિશ્રુ પાસેથી જે નિયમોના પાલનની આજ્ઞા રાહી શકાય, તેવા નિયામો પાલવા ગૃહસ્થ, કદાચ સમર્થ થાય નહીં. ” અને ત્યાર પછી ‘ ચર તેમ જ અચર—તસ થ વર—ઉમય પ્રકારના ’ વિશેરે ઉપર ઉત્તારેશ શ્લોકો થકે ઉપાસક ગૃહસ્થના ધર્મોની તે ગણના ગણાવે છે.

આથી એ વિચાર સૂચવાય છે કે, જો કે “ અચર-જોશો ” એ પદનો બૌદ્ધ મતમાં અર્થ માત્ર “ વનસ્પતિ-યોની ” દટલો જ થાય છે. છતાં ચર અને અચર વચ્ચે પ્રકારનો અર્થ સમાવેશ કરવામાં આવેલો હોવાથી બૌદ્ધ ધર્મી ગૃહસ્થ, જેનું ઉપાસક કરતાં વધારે વ્યાપક અર્થમાં અહિંસાનું પાલન કરે છે. પરંતુ કદાચ એ વિચાર વરા-વર પણ નહીં હોય. કારણ કે પિટકોમાં એક જ શબ્દ ઘણી વાર બુદ્ધ બુદ્ધા અર્થમાં પ્રયોગાવેલો નગરે પડે છે; અને તેથી તસ અને ચાવરનો જે અર્થ અહિં એ શ્લોકો કરતા

તે ઘણે માંગ ફુગ્ગેલે પોતાના માંસાંતરમાં કર્યો છે તેવો જ હતો: એટલે તસ “ જે ધ્રુજ છે ને ” અને યાવર “ જે વલધાનું છે તે. ”

ગમે તેમ હો, પણ એ તો સ્પષ્ટ છે કે વૌદ્ધ ગૃહસ્થને માત્ર જાતે હિંસા કરવામાંથી જ નહીં, પરંતુ મત્સ્ય અથવા માસ વેચાતું લેવામાંથી, તેમ જ અન્ય રીતે પણ પ્રાણી ઘણેને ઉત્તેજન આપવામાંથી પણ અલગ રહેવાનું કહેવામાં આવતું હતું. કેમ કે જે માણસ મત્સ્ય અથવા માંસ જીરવે છે તે માછીમાર અથવા કસાઈના કાર્યને અનુમતિ આપે છે જ, જ્યારે જોતાં તો તે વધારે (પાપ) કરે છે. તે “ વીજા પાસે હિંસા કરાવે છે ” “ હિંસાને ઉત્તેજન આપે છે ” અથવા (મહામારત ૧૨, ૧૧૩, ૪૦) મીષ્મના શબ્દોમાં કહીએ તો ને “ પોતાના પસા વડે હિંસા કરે છે. ”

હુ માત્ર હુ કે મહાવગ્ગ (૬, ૨૧) ના ઉલ્લેખમાં રહેલો અર્થ જાણું છું. એ સ્પષ્ટે રાજા પયતમસ—એટલે ‘કોઈએ તૈયાર કરેલું માંસ મંગાવે છે, જેનું પરિણામ એ આવે છે કે વલદના એક પાતક તરીકે તેની નિંદા કરવામાં આવે છે. વઢી સમુત્ત નિકાય (૧૪, ૨૫.૨) છુઓ. ત્યાં હિંસા કરનારાઓ સાથેના સંસર્ગને પણ નિંદવામાં આવ્યો છે. મહામારત (૧૩, ૧૧૩, ૪૭) માં કહ્યું છે કે સાત માણસો જીવ—મક્ષક છે, એટલે હિંસાનું પાપ કરે છે. જેમ કે—જે માણસ તે પ્રાણી ને લાવે છે, જે અનુમતિ આપે છે, જે હણે છે, જે વેચે છે, અથવા જીરવે છે, જે માંસ તૈયાર કરે છે, અને જે તેને જાણે છે. છેલ્લા બેને અપવાદરૂપ ગણીએ તો બુદ્ધે કહેલા નિયમોને જનુસરતો જ મહામારતનો—આ ઉલ્લેખ છે. જો કે બુદ્ધના અનુયાયીઓના વર્તન સાથે તો તે અસંગત છે.

પરંતુ કોઈ શંકા કરે કે, જો ગૃહસ્થ માંસ વેચાતું પણ લઈ શકે નહીં તો મિશ્રુઓને જે વ્રણ પ્રકારે શુદ્ધ એવા માંસને લેવાની રજા આપવામાં આવી છે, તે માંસ ક્યાંથી આવે ? આનો તો ઉત્તર સ્પષ્ટ છે કે વૌદ્ધ સાધુઓ ગમે ત્યાંથી મિશ્રુ ગ્રહણ કરતા હતા; માત્ર બુદ્ધાનુયાયી પાસેથી જ નહીં.^૧

આપણા આ ઉદાહરણ ઉપરથી આપણે એ નિષ્કર્ષ ઉપર આવીશું કે પુરાણા વૌદ્ધ ધર્મમાં મિશ્રુ માસાહાર કષ્ટિત્વ જ કરતો, અને ગૃહસ્થ તો તેના કરતાં પણ ઓછો ચલત માંસ જાતો. કેમ કે ગૃહસ્થ કોઈ મિશ્રુ માંગતા નહીં. પરંતુ તેને પ્રવાસ વિગેરેના પ્રસંગ દર્મિયાન વૌદ્ધિત્વ વર્ગ પાસેથી તેવો સ્વેચ્છાક લેવાની રજા આપવામાં આવી હતી.

સંપૂર્ણ અહિંસાનું પાલન તો મોટામાં મોટા જ્ઞાની પુરુષને માટે પણ અશક્ય છે. અને જેમ ઘણા માણસો પારે છે તેમ આ કોઈ નવી પણ શોધ નથી. આ વિષયમાં મહામારતનાં વનપર્વમાંની ધર્મવ્યાઘ—મક્કિમ’ન જૌનિકની મનોરક્ષક વાર્તા વાંચવા જોવી છે. તેના અંતે કહેલું છે કે ‘ ચાલવામાં, બેસવામાં, સુવામાં, જાવામાં, વિગેરે દરેક ક્રિયામાં અને દરેક ક્ષણમાં અસંલ્પ્ય પ્રાણીઓની હિંસા યાચ છે. તેથી જનતમા કોઈ અહિંસક નથી. (નાસ્તિ કશ્ચિદાહિંસકઃ)’ આ નિર્બિવાદ સત્ય છે. આપણને જીવવા માટે જીવની હિંસા કરવી પડે છે, આ જીવનની એક અત્યંત દુઃસ્વદાયક ક્ષાંતિ છે; “ આ વર્ણુ જીવતા પ્રાણીઓથી ધ્યાત છે ” અને “ આ સર્વ જીવતા પ્રાણીઓથી વ્રત છે. ” (જીવિર્મરત્તંમિદં સર્વં) એ ઉલ્લેખ સત્ય છે. તેમ છતાં પણ સર્વ અનાવરણક હિંસાથી વચ્ચારી આપણી ફાજ છે. જ્યાં જ્યાં આપણાથી બની શકે ત્યાં ત્યાં દુઃસ્વ ઉત્પન્ન થતું અટકાવવાની અને ઉત્પન્ન થયેલ દુઃસ્વને ઘટાડવાની આપણી ફાજ છે. વૃદ્ધ મીષ્મના શબ્દો (મહામારત—૧૧૩, ૧૧૬, ૨૪) ધ્યાનમાં રાખવા જોઈએ કે. “ જીવનદાનથી અન્ય મહત્તર દાન હતું નહીં અને થયું નહીં. ”

પ્રાણદાનાત્પરં દાનં ન મૃત્તો ન ભવિષ્યતિ

[આ આજ્ઞા બંધમાં આવેલી ટીપો આ નીચે એક સાથે જ આપી દેવામાં આવે છે.—સંપાદક.]

૧ સાંપનહાર, ગ્રન્થલેજ ડર મૉરલ, રેક્રમ, પૃ. ૨, પાન ૬૨૨

૨. એકોની, જૈનધર્મ, પૃ. ૨, પા. ૨૨, ૨૪.

૩. એકોની, જૈનધર્મ, પૃ. ૨, પા. ૫

૪. ચાતુર્માસિક દેહવાલો અસંલ્પ્ય આત્માઓ છે. એવા ઘમા વધે એકરુધાને મેળા જવાથી જ તેઓ દૃષ્ટિનો અર વાળ છે. એકાંકી.

૫. બીજાવિચાર તથા અન્ય ગ્રંથોને આધારે તેનો અર્થ 'વનસ્પતિ અને ચારમૂલો સિવાય અન્ય સર્વ' એમ થાય છે
- ૬ અમિતગતિહુ સુમાપિતસદોહ, ૩૧, ૮, ૫, તથા ૨૧, ૮, ૧,
 ૭ અમિતગતિહુ સુમાપિતસદોહ, ૨૨, ૨,
 ૮ " " " " ૨૨, ૩
 ૯ સરસ્વતી, હર્ડસનનું Geschich teder Philosoph
 hie I, ૨, પા. ૩૪૦ 'મિશ્ર' ના અર્થ ઉપર તેનો આધાર છે
 ૧૦ સ્ટુડર્સ, Eineindische Speiseregel એમને
 આરિયન્ટલ સાસાઇટીનું જર્નલ ૧૯૦૭ પા. ૬૮૧
 ૧૧ વાશ્. ૧, ૧૭૭, ધર્મિ. ૧૪, ૨૯, ગો. ૧૭, ૨૧, મન. ૦૫,
 ૧૮, આપ. ૧, ૫, ૧૭, ૩૭, વિદ્યુ. ૫૧, ૬
 ૧૨ Schrader, Die Fragen des Koenigs
 Memndros પરિશિષ્ટ, પા. ૨૭
 ૧૩ પદેશ ધર્મી વક્ત આ પ્રમાણે કરવામા આવ્યું હતું તેમ,
 જુઓ ઉપર
 ૧૪ અત્પદોષમિહ શ્વમ્ (૧૨, ૧૧૫ ૪૫)
 ૧૫. આ રિવાજની તાત્કાળતા તમ જ વિરુદ્ધમા થયું હતાં હુ,
 જુઓ મહાનિદાપાણય હરપ્રસાદસાસ્ત્રીનું Notices on Sin
 Mas, 1907, p ધર્મે ભાગે આ વાતમા મધ્ય સુધારક હતા
 મહામારત ૧૩, ૧૧૫, ૫૬ માં જણાવ્યું છે કે " દુર્ગત્યમાં ચાપવત્ત
 પૌષાના હોટના (ક્રીડિમય) વનાનતા, અને તે યદે શુભ લોકના
 રૂચ્યાવાદા ડુરોહિતા વક્ત કરાવતા એમ કહેનાય છે ' તે જ સ્વલ્ક
 ૬૩ માં શ્લોકમા જનવર્ધની અન્નર જણાય છે જ્યાં મીઘ્ય મધુ મા
 સનો વપયોગ કરવાના નિર્ણય કરે છે
 ૧૬ ' Die Dharmapariksha des Amitag
 ati, Leipzic' 1905 મા એમ. મીરોનોર તેનું દ્રષ્ટકરણ
 કર્યું છે પા. ૦૮

- ૧૭ પ્રો. જર્કોનાર તના અનુસાર કય છે સેકડ. ૭૦ ૬૦, ૫૦
 ૪૫ પા. ૧૮૩ તથા ૪૧૫
 ૧૮ દૂર્ગમીર અકા ઝઠારી છે તે પ્રમાણે શક્ય નથી વિરુદ્ધ
 પક્ષમાં વંધવેસતા દુષ્ટાન્તનું વિચિત્ર સ્પાતર કરવાને વધારે હસકે
 પટલજ કલહુ જાઈતું હતું કે શૂલકી હગેલા પ્રાણને લાવામા નાંદી
 થાય નથી
 ૧૯ "મત્સ્યમાસ" આલ્હનવગ, પાટુ સરનાનો અઢગુતર નિ
 કાય ૩, ૧૫૧, 'ન મચ્છ ન મધ'
 ૨૦ Dની અન્ય સૂચના વિવ જણાવ છે
 ૨૧ આલ્હનવત્તુ વિનયપેટકમ્ ૫૦ ૨, પા ૮૧ મી
 ૨૨ આ સ્થળ શૂઠમા કસ્ટપ છે પણ તે કોઈ લામ નોંવા જોઈ
 વાત નથી, કારણ કે સગલાં હુદાનો લગમગ સરતા જ "પદેશ છે
 ૨૩ ટુઝાના
 ૨૪ Rhys Davids Buddhism, 8 th ed.
 પા. ૧૨૧, તથા સેકડ ૭૦ ૬૦, ૭૦, ૧૦ પા ૮૦, ૮૧
 ૨૫ સુતનિપાત ૧૩, ૧૦ તથા અન્ય સ્થલે
 ૨૬ મહાવગ્ગ, ૨, ૧
 ૨૭ પુત્તનગ, ૫, ૫, ૦ (સરલાનો ઓઈહનમર્ગ, પા ૫૧)
 ૨૮ આ ઉપરથી એક અનુમાન કરવું ન જોઈએ કે જીવનની
 પાંચેથી સમને છેપટના મિશ્ર મઝી હતી તે બોદ્ધેતર તથા માતાહા
 રી હતા કેવી જાતના ઔરકાક રવાજો એ નિશ્ચય નહીં કરા શક
 થાય (તે એક વાદાશીન મોકલ્યા હતો અહીં જાસ જાગ્ગુ નુ
 એ છે કે આ કલકામા (૮ ૧૩-૨૦) જન્મ સદ્ ન ગણાશ્યા
 છે, તથા તેને 'લુકાગ્ના પુન' તરીકે આલ્હલામ્યા છે, "તુ ન
 ગલ્ક ઉપર તેને 'આશુસા' (૪૨) તથા 'મિક્કુ' (૮૧) પણ
 કહેલા છે



ડૉ. હોર્નલના જૈનધર્મ વિષેના વિચારો.

[અનુવાદક—શ્રીયુત નાનાલાલ નાયામાઈ ગ્રાહ. શ્રી. ૫]

[સ્વર્ગસ્થ ડૉ. ૫. ૫૫. આર. હોર્નલનું નામ પુરાતત્ત્વવેત્તાઓમાં સુપ્રસિદ્ધ છે. તેમણે સ્વદેશ પ્રાકૃત લક્ષણ અને ઉપાસનાદસાઓ સૂત્ર એ વે એ જૈન ગ્રંથો સંશોધિત—અનુવાદિત કરીને પ્રકટ કર્યા હતા તે સિવાય કપ્પલીક જન પટ્ટાવલિઓ પણ તેમણે પ્રસિદ્ધિમા મુકી હતી તેઓ સન્ ૧૮૯૭ માં બંગાળની એસિયાટિક સોસાયટીના પ્રમુખ નેમાના હતા સન્ ૧૮૯૮ માં ચ્યાર એ સોસાયટીના વાર્ષિક સભા મંચી હતા ત્યાર તેમણે પાતાના પ્રમુખ તરીકેના માધ્યમમાં જ્ઞાત કરીને ‘ જનીનમ્ એન્ડ બુદ્ધિજમ્ ’ તથા ‘ ઇન્ડિયન આર્કિઆલોજી એન્ડ એપિગ્રાફી ’ એ વિષયો વર્ણ્યા હતા. આ નીચે આપેલા વિચારો તેમના એ જ માધ્યમમાંથી લીધેલા છે આ મૂલ માધ્યમ પ્રાસીદ્ધિગ્રાસ્ત્ર ઑફ ધી એસિયાટિક સોસાયટી ઑફ બેંગાલના ૧૮૯૮ ના ફેબ્રુઆરીના અંકમાં (પૃ. ૩૧ થી ૫૧) પ્રસિદ્ધ થયેલ છે]

સમગ્રાન્ક]

‘ જનધર્મવિષેના આપણા જ્ઞાનમાં ગયા વધારા વળા જ વધારો થયો છે હિંદુસ્તાનમાં જૈન અને બૌદ્ધ એ બન્ને પ્રતિસ્પર્ધી ધર્મો હોઈ સરસી રાતે જ પુરાણો છ, તે. પણ મધ્યકાલીન યુગમાં જૈનધર્મનું અસ્તિત્વ જ નહીં હતું એમ આજપર્યંત વળા વિદ્વાનોનું મત હતું, અને હજી પણ તેના વિશ્વવિદ્યમાત્ર પ્રતિસ્પર્ધી—બૌદ્ધધર્મ—સાથે સરસાવતા માત્ર નામ સિવાય તેની વિશેષ માહિતી જનસમુદાયને નથી. પરંતુ હવે પ્રો. બેકોવીએ કરેલી નવેધણાઓ, કે જેમાં પ્રો. હુલ્હર, મે અને અન્ય વિદ્વાનોએ પણ મદદ કરી છે, તેને લઈને હિંદુસ્તાનના અતિ પ્રાચીન અને સુસ્થિત સમ્રાટોમાંનો એ પણ એક છે એવી જાતનું પોતાનું અસ્તિત્વ જ્ઞાન એ ધર્મે પુનઃ પ્રાપ્ત કર્યું છે એ જ ગર્વેધણાઓનો સારાંશ સંક્ષેપમાં હું આજે અહીં આપવા ઇચ્છું છું]

જૈન આગમો વિગેરેમાં મહાશીરના નામથી આલેખાતા મહાયુગ્ધર્મને સાધારણ રીતે જૈન ધર્મના પ્રવર્તક તરીકે મા

‘ આ માધ્યમની વિશિષ્ટ દલીલનું માટે પ્રો. જકાવીના ‘ આ ચારીંગ અને ‘ કલ્પમુદ્ર ’ તથા ‘ ઉમરાધ્યન ’ અને ‘ ધનકૃતાંગ મુદ્ર ’ ના અનુવાદો, તથા પ્રો. હુલ્હર ‘ ઇન્ડિયન સેક્ર ‘ નામ ‘ જનમ્ ’ અને મા. ‘ વગલક દરા’ નું માધ્યમ તરફ વળી, ૧૮૭૧ માં પ્રસિદ્ધ થયેલું પ્રો. બેકોવીનું ‘ કલ્પમુદ્ર ’ તથા ‘ ઓ રીજિન ઓફ ધી શ્રતાન્ધર એન્ડ ટ્રિગ્ગર ’ નામના જર્મન ભાષા એન્ડ સોસાયટીના Vol. XXXVII જર્નલમાં પ્રસિદ્ધ થયેલું તેમના હેતુ માટે]

નવામાં આવે છે. સમગ્ર મૂલ નામ વર્ધમાન હતું બૌદ્ધ ગ્રંથોમાં તેમને ‘ નાતપુત ’ એટલે કે નાત ક્ષત્રિયોના રાજ પુત્ર તરીકે ઓલખાવ્યા છે બુદ્ધની માત્ર મહાવીર પણ રાજકુલોત્પન્ન હતા તેમના પિતા સિદ્ધાર્થ ને નાત અગર નાય નામની ક્ષત્રિય જાતના ઠાકોર હતા, જે વ-શાલી નામના આવાદી મર્ધા શહેરના કોણાગ નામના પરામા રહેતા હતા. આ કારણથી મહાવીરને વસાલીય પણ કહેવામાં આવે છે વેસાલિન આધુનિક નામ લેતા હ, જે પટનાથી ઉત્તર ૨૭ મૈલ દૂર આવેલું છે જુના વસતમાં તે શહેરના ત્રણ ભાગ હતા, વેસાલી, કુલનામ અને વાણિયગામ; જેમાં અનુક્રમે શાસન, ક્ષત્રિય અને વાણીયા રહેતા હતા. હાલમાં આ સર્વ નાશ પામ્યું છે. પરંતુ તેની નિશાનીઓ આધુનિક વેસાલ, વતુકુદ અને વાનિયા નામના ગામોના રૂપમાં હજીએ હયાતી ધરાવે છે તે વસતે તેમાં ગણસ્વામિક નામની વિચિત્ર પ્રજાસત્તાક શાસ્ય વ્યવસ્થા ચાલતી હતી એટલે કે ત્યાંના રૅવાસી ક્ષત્રિય જાતના ઉમરાવાની બનેલી એક સમિતિના હાથમાં રાજ્ય સત્તા રહેતી હતી. એ સમિતિમાં એક સમાપતિ રહેતો જેને રાજા કહેવામાં આવતો, અને તેની મદદમાં એક ઉપ સમાપતિ અને બીજો સેનાપતિ રહેતો. એ પ્રજાસત્તાક રાજ્યના તે સમયના પ્રમુખ રાજા ‘ ચેટકની ત્રિસલા નામે કન્યા સાથે સિદ્ધાર્થના લગ્ન થયા હતા, અને તેના

જ પેટે ૬૦ સં પૂર્વે ૫૧૯ મા અગર તે અસામા મહા-
વીરનો જન્મ થયો હતો. આ ઉપરથી તેઓ એક ઉચ્ચ
કુલમાં જન્મ્યા હતા, એ સ્વત સિદ્ધ થાય છે. અને તેને
લંબે જ બુદ્ધની માફક મહાવીર પણ શરૂઆતમાં પો
તાની જાનના કાશિયો અને ઉચ્ચ કુલના લોકોના સસર્ગ
માં જ વધારે આવ્યા હતા. મહાવીરનાં લગ્ન યશોદા
નામે સ્ત્રી સાથે થયા હતા તે યશોદાને અનોખા નામની
પુત્રી થઈ જેના લગ્ન પણ એક દશા જ ઉચ્ચ કુલના જમા-
લી નામના પુરુષ સાથે કરવામાં આવ્યા. આ જમાલી પા-
ઉચ્ચથી મહાવીરના શિષ્ય થયો હતો. પોતાના પિતાના
મરણ સુધી મહાવીર જુલ્મવાસમાં જ રહ્યા. પિતાની
સપત્તિનો ગણતા તેમના મોગ માઈ નદીરથને લીધા
પડી, ત્રીસ વરસની ઉંમરે, પોતાના કુટુંબના વૃદ્ધ પુરુષો
ની આજ્ઞા લઈને તેમણે યતિજીવનમાં પ્રવેશ કર્યો, કે જે
બીજાને યુરોપની માફક ભારતવર્ષમાં પણ કુલના જેઠા પુત્ર
શિયાળમાં અન્ય યુગનો માટે મહત્ત્વાકાંક્ષાઓ પૂરી કર-
વાના કાલ તરીકે માનવામાં આવે છે. કોલાગમાં નાય
વશના કાશિયોન એક શાસ્ત્રિક સંસ્થા સ્થાપી હતી, કે
જેવી સંસ્થાઓ હજીપ આ દશમાં દૃષ્ટિગોચર થાય છે.
અહીં કલકત્તામાં આપણી નજીક આવેલા માણિકતો-
લામાં જ આવી એક સંસ્થા વિદ્યમાન છે જેને આપણે
વધા જાણીએ છીએ આવી સંસ્થાઓમાં મંદિર અને
મુનિઓને રહેના સ્વાદ ઉપાશ્રય હોય છે અને તેની ફરજ
ઉદ્ધાન હોય છે, કન્ટ્રીકે રહેને તેમાં સ્તૂપ પણ હોય
છે. આ દશમાં સાધારણ રીતે ચેત્યના નામથી ઓળખ-
વામાં આવે છે, જો કે મરી રીતે ચેત્ય નામ ફક્ત અદર-
ના મંદિર માટે જ વાપરી શકાય નાય વશના આ ચે
ત્યને દુર્ગપલાસ કહેતા, અગ તેમાં તે વશમાં પૂજ્ય મનાતા
પાર્શ્વનાથના સમ્રાટના સાધુઓ આવેને વસતા હતા.

પાતાના યતિજીવનના આરમ્ભકાલમાં મહાવીર સ્વા-
ભાવિક રીતે જ હૃદયપલાસ ચેત્યમાં રસના પાર્શ્વનાથના
સમ્રાટ તરફ રહેતા લાગ્યા; પરંતુ ત્યાંથી ચિયેના તેમના
ચિંતારો, જેમાં દિગ્મરત્ય મુખ્ય હતું, તન લીધે, એ સમ્ર-
ાટના નિયમો તમામ રોકક ન લાગ્યા હોય એમ જણાય

છે તેથી એકાદ વર્ષ પડી તેઓ ત્યાંથી નીકળી ગયા,
અને નિર્વહ (દિગ્મર) થઈને વિહારના દક્ષિણ તથા
ઉત્તર પ્રાંતમાં, તેમ જ કદાચિત્ હાલના રાજમહાલ સુધી
તેઓ સ્વયં કર્યા હતા નમ્રવૃત્તિમાંથી શીક્ષા લેતા તૈયાર
થાય દશા અનુયાયીઓ મેળવતા તેમને વાર વરસ લાગ્યા
હોય તેમ જણાય છે. એ પછી તેમને 'મહાવાર'નું ઉપનામ
મળ્યું અને 'જિન' તરીકે તેઓ ઓળખાવા લાગ્યા.
આ 'જિન' પદ ઉપરથી જ જૈન અને જૈન ઈસ
દશા નામો ઘડાયા છે. મહાવીર પ્રથમ પાર્શ્વનાથના પદ-
માં દાક્ષિત થયા હતા, તેથી તેમનો ઉલ્લેખ જૈન તૈય-
કરાની પરપરામાં પાર્શ્વનાથની પટ્ટીમાં તૈયકર તરીકે કર-
વામાં આવે છે જૈન મંદિરોમાં પાર્શ્વનાથની પ્રતિમા સ-
પાત્ર પણ આ જ કારણ છે. જૈન મંદિરોમાં પવિત્ર
પર્વતનું પાર્શ્વનાથ પહાડ (પારસનાથ હિલ) એટલે નામ
પણ આ ઉપરથી જ પડેલું છે પોતાની જીંદગીના ઉ-
ચ્ચના ત્રીસ વરસોમાં મહાવીરે ધાર્મિક ઉપદેશ આપ્યા
છે, તથા પાતાના સમ્રાટની વ્યવસ્થા કરી છે. એ કામ-
માં તેમનું, તેમના માનુષ્યને લઈને સમગ્રપણાં સદાચારમાં
જોડાયા ઉત્તર અને દક્ષિણ વિહાર પ્રદેશમાંના વિદેહ, મગધ
અને અગ્ર દેશના રાજાઓની પળી સહાયતા મળી હતી
આ દશમાં આવેલા શહેરો અને ગામડાંમાં, જ વળ
માથે તેમણે પોતાનું ધાર્મિક જીવન માલ્યુ હલ્લું. પરંતુ
નેપાળની હદ મળી અદેની શ્રારસ્ત્રી નગરી તેમ જ પારસ
નાથની ટેકરી સુધી પણ તેમણે પાતાનું પ્રમણ લગાવેલું
લલ્લું. આ ઉપરની જમ કહી શકાય કે તમની ધાર્મિક
મુસાફરી તમના સમગ્રજીવન બુદ્ધના જેટલી જ લગમગ
હતી સાધારણ રીતે તેમના નીચનામાં દશા કાઈ લાસ
વનારા અને નથી. બુદ્ધ તમના જમ મયરર પ્રતિસ્પર્ધી
હતા; લો પણ તમની સાથે કોઈ જાળયા જેમ યદ-વિ
વાદ થયો હોય એમ લાગતું નથી જેનોના પ્રયામાં બુદ્ધ-
નો માગ્ય ન હોઈ આવે છે, મનુષ્યને પ્રયોમાં તપસગી-
ન એક શીક્ષા જમોગ ધર્મગુપ સાથે મહાવીરને મળના
મયકર વેરના ઉદ્દેશ કરેને ૩. આ ધર્મગુપ ન માત્ર
છે એ એક મળગી (મિત્ર) નો પુત્ર હોઈ આવીવિવ

પહેલાં જૈન ધર્મના અસ્તિત્વમાં ધનાઝોને અશ્રદ્ધા રહેલી હતી. પરંતુ ઉપર આપેલી મહાવીરના જીવનની રૂપરેખા ઉપરથી જગાશે કે તેમનું જીવન બુદ્ધના જીવન કરતાં ઓછાસ મિત્ર જ છે.

સિદ્ધાન્તો અને વ્રત-નિયમોના સામ્યની વાતવિષે બોલતાં પહેલાં મારે જગાવવું જોઈએ કે બૌદ્ધ અગર જૈન એ સ્ત્રી રીતે ધર્મો નથી, પરંતુ એક જાતની સાધુ-સંસ્થાઓ છે. યુરોપમાં જેમ કૉમિનિક્સ અને પ્રાન્સીસ્કન્સ જેવા સાધુસંપ્રદાયો છે તેવા આ પણ મિશ્રસંપ્રદાયો છે. વને હૈં. સ. પૂર્વે પાંચમાં સૈકાના આરમ્ભમાં અને છઠ્ઠા સૈકાના અંતમાં સ્થપાયેલા છે. એ વસ્તે ઉત્તર હિન્દમાં ધાર્મિક ચલવલ્લ પૂર્ણોદ્ધમા ચાલતી હતી. એવા ધના સંપ્રદાયો એ વસ્તે ઉદ્ભવ્યા હતા. પરંતુ તેમાં આ બે જ પ્રચલિત રહી શક્યા. ત્રીજો સંપ્રદાય 'આર્ચીવિકો' નો હતો, જેના વિષે મેં ઉપર કહેલું જ છે. આ ઉપરથી એમ નહીં માનવાનું કે આવા મિશ્ર સંપ્રદાયો તે વસ્તની પરિસ્થિતિમાં જાસુ સુધારારૂપ અગર નવા જ હતા. આવી સંસ્થાઓ મૂલ ચાલતા આવેલાં બ્રાહ્મણ ધર્મમાં પણ હતી. બ્રાહ્મણ ધર્મમાં ચાર આશ્રમો વિહિત છે; જેમ કે વિદ્યાભ્યાસને માટે બ્રહ્મચર્યાશ્રમ, પછી ગૃહસ્થ, પછી વૈશ્યાસ માટે વાનપ્રસ્થ, અને ત્યાર બાદ છેલ્લાં વર્ષો માટે સન્યસ્ત. આ સંન્યાસીઓની ટ્રેયે જ જૈન અને બૌદ્ધના સંપ્રદાયો હૈં. સ. પૂર્વે છઠ્ઠા સૈકામાં અસ્તિત્વમાં આવ્યા હતા. ફેર માત્ર એટલો જ કે જૈનો તથા બૌદ્ધોની માફક બ્રાહ્મણોએ મોટી મિશ્રસંસ્થાઓ રચી ન હતી. એ ધર્મોએ બ્રાહ્મણ સંન્યાસીઓના વિધિ-નિયમોનું જ અનુકરણ કર્યું હણ. અને તેથી જ બૌદ્ધ અને જૈનોમાં સામ્ય હોવાનું કારણ મળે છે. અહિંસાનો સિદ્ધાન્ત જે બૌદ્ધો અને જૈનોમાં જાસુ અગત્યનો ગણાય છે તે મૂલ બ્રાહ્મણ ધર્મના સંન્યાસીઓમાંએ પડ્યો હતો. કાલક્રમે બ્રાહ્મણધર્મમાં એવી એક વૃત્તિ ઉદ્ભવી કે સન્યસ્ત આશ્રમમાં બ્રાહ્મણ શિવાય વીજા લોકો દાસલ થઈ શકે નહીં; અને પ્રાયઃ એ કારણને લીધે જ, બ્રાહ્મણેતર જાતિઓ માટે આ જૈન અને બૌદ્ધ સંન્યાસી આશ્રમો સ્થપાયા હતા. એમાં પણ પ્રથમ તો ક્ષત્રિઓને જ અવકાશ હતો. પરંતુ પાછ-

લથી, વીજા લોકોને પણ દાસલ કરવામાં આવ્યા. બ્રાહ્મણ સંન્યાસીઓ આવા બ્રાહ્મણેતર સંન્યાસી વર્ગો તરફ ધૂણાની નજરથી જુવે, એ સ્વાભાવિક છે, અને તેથી તેમનામાં પરસ્પર ભેદભાવ અને વિરોધ ઉત્પન્ન થાય એ પણ તેટલું જ સ્વાભાવિક છે. આ કારણથી બ્રાહ્મણ સંન્યાસીઓની જેમ જૈન અને બૌદ્ધ શ્રમણોએ એકલા કર્મકાંડને જ તિલાંજલી આપી અટકી નહીં રહ્યા, પણ તેમણે એક પગલું આગલ જઈ વેદાધ્યયન પણ બંધ કર્યું, કે જેને લીધે તેઓ સ્ત્રી રીતે બ્રાહ્મણધર્મથી વિરુદ્ધ છૂટા પડ્યા. જૈનધર્મ અને બૌદ્ધધર્મ એ સુધારક પક્ષની ચલવલ્લો હોઈ જાસુ કરીને તેઓ વર્ણાશ્રમ સામે ઘડ ઉઠાવનાર છે, એવું એ મત અદ્યપિ પ્રચલિત જણાય છે તે તદ્દન જોડું છે. તેઓ તો ફક્ત બ્રાહ્મણ સંન્યાસીઓના સ્વાતંત્ર્ય સામે જ વિરોધ ઊઠાવે છે. વર્ણાશ્રમ ધર્મ ઉપર તેઓનો વસારો નથી. તેમના સંપ્રદાયોમાં પણ, જો કે ઉઘાડી રીતે જવાને અવકાશ છે એમ જણાવવામાં આવે છે, છતાં ધના ભાગ માત્ર ઉચ્ચ વર્ણોને જ દાસલ કરવામાં આવે છે. એક વાન જાસુ જાણવા જોઈ છે, કે આ પત્રોને માનનારા ગૃહસ્થ લોકો સંધારણ રીતે ધાર્મિક વાતોમાં પોતાના ધના વ્રતનિયમોને જ અનુસરનાર હતા, તેમ છતાં, ગર્ભધાન, લગ્નવિધિ, ઉત્તરક્રિયા વિગેરે સંસ્કારોમાં તેઓ બ્રાહ્મણ-ધર્મના ઉપાધ્યાયોને નિમંત્રતા હતા. બૌદ્ધ અગર જૈન મિશ્રો તે લોકોના ધર્માચાર્ય તરીકેનું કામ કરતા, પરંતુ તેમનું ગૌરવનું તો વલ્લો જ કરના રહેતા હતા.

આ ઉપરથી જગાશે કે બૌદ્ધ અને જૈનધર્મમાં ધનું સામ્ય હોવાનું કારણ તેમના વસ્તની પરિસ્થિતિ જ હતી, વાકી સિદ્ધાંત અને પ્રક્રિયા વિષયક તેઓમાં ધના મિત્ર-તાઓ છે, અને તે એટલી ધના તથા એટલી સીધવટવાળી અને પારિભાષિક છે કે અવા નાના લેલમાં દુ મામ્યે જ તેનું વિવેચન કરી શકું. તેમ જ તેનું વિવેચન ધનાને નીરસ પણ લાગે. જેમને તેમાં એમ પડે એમ હોય તેમને પ્રો. જેકોવીના જૈન સુત્રોના માધ્યમોની પ્રસ્તાવનાઓ જોયા મારી મલ્યમળ છે. એ વાતનો કે જેના વિષેને ઉલ્લેખ વીજે કોઈ ટેનાણે થયો નથી તે, મારા મત પ્રમાણે,

आ वे धर्मोपासितां अने प्रक्रियामानो खास तफावत जणावी शके छे. 'प्रित्तन' नामनो प्रख्यात शब्द बौद्धो अने जैनोने सामान्य छे, जेनो अर्थ बौद्धो बुद्ध, धर्म अने संघ करे छे। अने जैन लोको सम्यक्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, अने सम्यक्आचार करे छे. वेऊ धर्मना आ मुद्रालेखो खास विचारसूचक छे. बौद्ध लोकोनो मुद्रालेख आध्यात्मिक अर्थवालो छे अने जैनोना आध्यात्मिक अर्थमां छे. पहिला अर्थ उपरथी जणाय छे के बुद्ध धर्ममां व्यावहारिक अने जीवंत उत्साह भरलो छे, अने बीजा अर्थ उपरथी जणाय छे के जैन धर्म विचारमां बहुरंग अने जसाहसिक छे आ अनुमानने वेऊ धर्मना इतिहासस्यो समर्थन मळे छे. पोताना चपल अने प्रवर्तक उत्साहधर्मी बौद्धधर्म, हिंदुस्थानमां बहुरंग प्रसर्ग, अने फक्त एक भिक्षु संप्रदायमाथी विकसित धर्मने सिलोन, बर्मा, तिबेट, तथा अन्य भागोमा यधीने एक महाद्वर्धम तरीके परिणत भयो, पण जैनधर्म शान्तवृत्तिमां मात्र हिन्दुमां ज चालू रह्यो. बीजो शब्द जैनो जैनो अने बौद्धो बने उपयोग करे छे ते 'संव' शब्द छे. जैनोना संप्रदाय चार प्रकारना मानतो नो समावेश थाय छे—जेम के भिक्षु, भिक्षुणी, श्रावक अने श्राविका. बौद्ध लोकाना संघमा फक्त भिक्षुओ अने भिक्षुणीओनो ज समावेश थाय छे. ते पंचमा इतर लोकाने कोई खास नामथी संप्रदायमा जोडवामा आव्या नथी. पोताना पंचमा लोको साथ कोई प्रकारना व्यवस्थित संबंध बिना कोई पण भिक्षुसंघ नभी शके नहीं, ए स्पष्ट ज छे. कारण के पोताना संप्रदायमा अस्तित्वनी खासत पोताना पंचमा लोको पामेथी द्रव्य विभेदो मेळववानी दरेक संघने खास करीने जरूर रहे छे ज. पण ए वेऊ पंचोत्तु वर्तन पोताना उपासको तरफ तदन भिन्न भिन्न प्रकारनुं हट्टे. बौद्धमां भिक्षुओनी वास्तवमा कोई बहेवा—करवानो बीजाओने कोई अधिकार न हतो. लोकाने संघमां कोई निधिरुस्तर दाखल करवामा आवता न हता. तेमने कोई जातनी प्रतिज्ञाओ लेखनी न हती. तेमना आचारोने माटे कोई विधि—निषेधनो खास ग्रंथ न हतो. तेमने माटे कोई विशिष्ट धर्मकिता करवामा आवती नहीं,

तथा कोई दुष्टने बहिष्कृत पण करवामा आवतो नहीं, दुस्सणमां ए ज के तेमना पंचमा साधारण लोकानो स्थिति एथी शिथिल तथा असबद्ध हनी के बौद्ध पंचमा अत्युपासी साने साथ बीजा पंचमा पण हई शके; कारण के ते माटे कोई जातना खास नियमो न हता. हुं बुद्धना महान् संघमांनो एक छुं तथा तेना धार्मिक फामदाओ हुं उठाउं छुं; आर्या मगदहीनी लागनी राखगानो अधिकार बौद्ध उपासकोने न हतो. जैनोना श्रावकदिनी स्थिति आथी जुदी म छे. बौद्ध उपासक करता तदन जुदी ज रीते तेमां पोताना सगना खास आवश्यक ऋण तरीके गणता; अने पोताना गाढ संबंध भिक्षुओ साथ जोडा—पलो छे एम तेमां मानता. आ वास्तवमा बौद्धधर्म हिमालय जेउही मोटी भूल करी छे, अने मा भूचने लीधे ज ते हिंदुस्थान के ज्यां तेनो खास प्रादुर्भाव थयो हतो त्याथी, जइमूळथी जतो रह्यो छे आगळ बधता ई. स. ना सातमा सैकाथी असरकारक बनता जना लोकाना धार्मिक यत्नमां फेरफार यतो होवाने लीधे प्रख्यात चीनी भुसाफर हुएन्त्संगना समयमा बौद्ध धर्ममा ओढ यतो गयो; अने तेना पण काळकने नयमा सैकामा संकराचार्य प्रकटावेली ब्राह्मण धर्मनी संस्थाओना सचेष्ट विरोधने लीधे पछ्या पर पाटु मारवा जेउ घयुं. आखेर थारो वारमा अने तेरमा सैकामा भारतवर्ष उपर, उच्छेदक मुसलमानोनी स्वारीओ थया लागी थारो, सारनाथ अने मिन्हाजुद्दीननी तबारीखोमा जणाव्या प्रमाणे थोडा घणा बाकी रहेला बौद्ध विहारो तथा चैत्योने सज्जत आवात पहोच्यो, जेथी बौद्धधर्म केवल छिन्नभिन्न दशमां आवी ओत नाश पाम्यो. तेने मूळथी ज पोताना उपासकोने भिक्षुसंघसाथे गाढ संबंधमां राख्या नहीं, तेम ज पाछळ्या पण ते संबंध योजाई सकयो नहीं, तेथी करीने साधारण उपासको पाछा ब्राह्मण धर्ममां जोडाई गया अने तेथी ब्राह्मणो केवल गोरपटुं करवाने बदले, पुनः बौद्ध धर्मना पहेलाना समय प्रमाणे गोरपटुं तेम ज आचार्यपटुं बने करवा लाग्या. फक्त थोडाक लोकाने, अने खास करीने बंगालना केटलाक लोकाने, ब्राह्मणधर्ममां न मळता बुद्ध

તથા મિશ્રસથ વિના પણ બોદ ધર્મની પતિત અને વિશેષ અવસ્થામાં પડ્યા રહ્યા કે જેમને જોતા સાધારણ રીતે પહેલાના જાહોજલાલીવાળા બોદધર્મનું માથે જ કોઈને માન થાય. બાદધર્મના આ અવશેષ રહેલા ઉપાસકોનો શોધ કરવાનું માન આપણા જોઈન્ટ ફિલોસોફિકલ સેક્રેટરી પાંડિત હરપ્રસાદ શાસ્ત્રીને ઘટે છે. તેમણે જ પ્રત્યક્ષ બોદ ત્રયીમાના 'ધર્મ' ના અનુયાયી બરીકે તે લોકોને શોધી કહાડ્યા છે, અને ૧૮૯૫ ના આપણી સંસ્થાના જર્નલમાં તેમની દૃષ્ટિકત પ્રસિદ્ધ કરી છે. આ લોકો ઉપરથી જ ધર્મતોલા સ્ટ્રીટ આલુ નામ ઘડાયું છે, તથા હજી પણ જાડે બાજાર સ્ટ્રાટમાં તેમનું ધર્મચત્વ મોંઘુ છે.

બોદ ધર્મના આ પ્રકારના વિનાશકાળ દરમ્યાન જૈન ધર્મની સ્થિતિ તદ્દન જુદી જ હતી. અને તેથી તે હજી પણ વિવિધપણે ચાલ્યા કરે છે, તથા તેના સાધુસથો અને શ્રાવકસથો હજી પણ પશ્ચિમ તથા દક્ષિણ હિન્દમાં અને બંગાળમાં દૃષ્ટિગાચર થાય છે. તેમની એવી એક સંસ્થા આપેળી નજીકમાં અવેલા માનિકતોલા પરામા જ મોંઘુ છે. જુના વસતની વર્મિક મિશ્રસંસ્થાઓમાર્થા હાલ જીવતી જાગતી એવી ફક્ત એક જૈનધર્મની જ સંસ્થા છે. અલગ્ત આર્થી દેશાતિક સંસ્થાનાં હિતિહાસમાર્થી જનસમાજને રત્ત પડે એવો સોરાક તો માથે જ મઠી શકે; તો પણ જે એક વાત આપણા ધ્યાન ઉપર સાત ચસારો કરી શકે છે તે એ ડ, કે આ ધર્મ પણ શ્વેતામ્બર અને દિગંબર દ્વારા બે પદમાં વિભક્ત થઈ ગયેલો છે. આ વિભાગ થવાનું કારણ એ શ્વેતોપરથી જ સૂચિત થાય છે. દરેકે કે ન્યૂનાધિક બધો પદ્ધતિવાદ ઉપરથી આ ભાગો પડેલા છે. આ ઉપરાંત પાછળથી સિદ્ધાંત અને પ્રતિયામાં પણ બેઠું સપ્રદાયોને કેટલોક ભેદ થયેલો છે, પણ તે જનસમાજ માટે વિશેષ રસોત્પાદક નથી. જૈનધર્મના આ બંને સપ્રદાયો વિભક્ત તેમ જ વિપાથી અવસ્થામાં રહ્યા કરે છે. બેઠું સાહિત્ય પણ મિત્ર છે; પરંતુ 'અંગો' અને 'પૂર્વો' ના નામે જે જુદું ધાર્મિક સાહિત્ય છે તે માત્ર શ્વેતામ્બરોનું જ ગણાય છે. વસત જગત આ બે વિપાતોમાર્થી સપ્રદાયો અને સાધુઓના અનેક ફાળા નિ

કળ્યા છે. બોદોના તથા જેનોનો ઇતિહાસિક શોષ એક સરસી રીતે વૃદ્ધિગત થયેલો છે. તઓદ નિયમિત રીતે પોતના ધર્માચાર્યો તથા ગુરુઓની પદાવલીઓ જાલવી રાસેલી છે, જમાની ધર્મી સરી પ્રો. બુહરે, ડૉ. કલાટે, તથા મે. ફ્રિચન ઇન્ટિફેરીમાં અને એપિસ્કોપાલ ફ્રેન્ચિસમાં પ્રસિદ્ધ કરી છે. વિશેષમાં તેમના ધાર્મિક તથા અન્ય પુસ્તકોમાં પણ ઇતિહાસિક વાતોની નોંધો તારતારા જોવામાં આવે છે. આર્થી વાચકોનું ઉપયુક્ત વિદ્યાના ઉપરાંત પ્રો. વેબર તથા પ્રો. માન્ડારકર પણ જુદી જુદી કાર્ટીને સરૂંત કરી છે. એ સાહિત્યમાર્થી હજી પણ એવી ધર્મી વાતો તારવી કઢાય તમ છે, જેની દૂક રૂપ રેખા હું અહિં મીંચે વર્ણવું છું.

મહાશ્વરુ નિર્ગોળ થયા પછી બીજા સેકામાં-ઈ.સ. ૧૧૦૦ લગભગ ૧૧૦ મા-મગધ દેશમાં દરેકે હાલના ત્રિહાર પ્રાંતમાં દ્વાદશ વાર્ષિક દુકાલ પડ્યો. તે વસતે જૈનધર્મ વિહારપ્રાંત ઝોલગી બહાર નીકળ્યો હતો એમ જ ખ્યાલ છે. તે સમયે ત્યાનો રાજા મોર્ધવશીય ચત્રગુપ્ત હતો. તથા અઘાપિ અવિભક્ત જૈનધર્મના આચાર્યપદ પર મદ્રવાદુ પ્રતિષ્ઠિત હતા. દુકાલની આફતમાં કેન્ડાક સાધુઓ સાથે મદ્રવાદુ દક્ષિણ તરફ કળાટકુમાર નીકળી ગયા અને મગધમાં તેમની અથા સ્થૂલમદ્ર ભાગવવા લાગ્યા. લગભગ દુકાલના અંતમાં, પણ મદ્રવાદુની બેર હાજરીમાં, પાટલીપુત્ર (પટના) માં એક સમાયે જેને અગ્યાર અંગો તથા વૌદ પૂર્વો કે જેનો સમવેષ્ટ વારમા અગમા થાય છે તે ભેગાં કર્યાં. દુર્મિશ્નના આપણે સમયમાં જે હાલકો પેદા થઈ તેની અસર જૈન ધર્મની પ્રતિક્રિયા ઉપર પણ થઈ. સાધુઓને માટે સાધારણ એવો નિયમ હતો કે તેમણે નમ્ર જ રહેવું જોઈએ, જો કે અપવાદરૂપ કેન્ડાક નવઢા સાધુઓનું અમુક વજ્ર પહેરવાની રજા પણ આપવામાં આવેલી હતી. મગધમાં રહેતા તે કેન્ડાક સાધુઓનું વસતની જરૂરીયાત

૧. જુઓ ત્રા. વજ્રાલુ 'કેન્ડાક ઓફ ઝેન મનુસ્ક્રિપ્ચ' ૧૮૮૮ ને ૧૯૧, તથા પ્રો. માન્ડારકરનો રાપાટે ઓફ ધી સર્વે કોર્સ મનુસ્ક્રિપ્ચ ૧૮૮૨-૨ વિશેષ ફિક્શન માટે વર્કી જુઓ પ્રો. ફ્રેન્ચિસની જૈનધર્મની પ્રતિભાવના (માગ ૨).

પ્રમાણે એમ લામ્બુ કે નગ્ર દશા છોઢી આપણે હવે શ્વેત વસ્ત્ર પહેરાં જોઈએ. ધર્મી ઉલ્ટુ કેટલાક સાધુઓ પ્રમોદ-સાથી એ વિચારને વશ ન થતા પોતાના વર્ગના સાધુઓને માટે નિર્દેશ રહેવાનો પરજોયાત વિધિ રનાવ્યો, અને તેમનાથી અલગ થઈ દૂર જતા રહ્યા. દુર્મિત્ર પડી ગ્યારે કર્મીનાં દેશ આશાદ થયા ત્યારે તે પેલા સાધુઓ પાછા આવ્યા પરંતુ તેમની ગેરહાજરીમા શ્વેતવસ્ત્ર પહેરવાનો નિયમ રુઢ થઈ ગયેલો હોવાથી તેઓ ત્યાના સાધુઓ સાથે ભેગા મળી શક્યા નહીં. આ રીતે દિગમ્બરા અને શ્વેતાવરોની ભિન્નતાના પાયો નલાયો આના પરિણામ પાટલીપુત્રમા સમૂહીત થયેલા ચાર્મિક ગ્રથોને દિગમ્બરો એ માન્ય રાખ્યા નહીં અને તેથી તઓ કહેવા લાગ્યા કે અમારા ‘પૂર્વો’ અને ‘અગ્રો’ નટ થઈ ગયા છે. સદ્ગતિમા આ વિમાગ વહુ મદદરતો ન હતો પરંતુ કેટલાક સેકા પડી પડેલે લગમગઈ. સ. ૭૧અગર૮૨માં આ વિમાગોએ ચુસ્ત રૂપ ધારણ કર્યું. વિમત્ત યજ્ઞ વિધે ઝેઠ પશતુ એકમન્ય છે, પરંતુ વિમત્ત યજ્ઞના વર્ષ માટે ૩ વર્ષની ભિન્નતા જાવામા આવે છે આ સમયે વિહાર પ્રાતમાથી નીકળીને જૈનધર્મે ઘળી દૂર સુધી પોતાના મતાર કર્યો ર્નો તથા પોતાની કેટલીક સત્વાઓ અને પક્ષો વધાર્યા હતા, અને આપણે આગળ જોઈશુ કે આ વસ્તે તેમણે મધુરામા પણ એક સારી સત્વા સ્થાપી હતી. તવારીજ ઉપરથી એમ જણાય છે કે, આ પ્રમાણે વિસ્તૃત ધ્યાની પ્રવૃત્તિ સાસ કરીને, ઈ. સ. પહેલાના ત્રીજા સેકામાં શ્વેતામ્બરાચાર્ય સુહસ્તિન્ ના સમયમા વધી હતી. કારણ કે તે વસ્તતની પદ્મવલીમા ત્રિમાગો અને ઉપવિમાગોની અસાધારણ ભરતી જોવામા આવે છે. અને એટલું તો નિશ્ચિન જ છે કે ઈ. સ. પહેલાના ત્રીજા સેકાની મધ્યમાં જૈનધર્મ ઓરીસાના દક્ષિણ માગ સુધી પહોંચી ગયો હતો કેમ કે કટક આગળના સહશિરિ પર્વતના સારોલના લેસમા જૈનાનો સાસ ઉદ્દેશ થયેલો છે.

કાલક્રમે પાટલીપુત્રમા સમૂહીત થયેલા જૈન સિદ્ધાન્તો ફરી કેટલીક અવ્યવસ્થામાં પહચા, અને હસ્તાલિપિત પ્રતોના અમાયને ઈધે તેમના નાશની પણ તૈયારી થવા

લાગી. તેથી તેમને વ્યવસ્થિત કરવાની જૈન સમાજને અત્યંત આવશ્યકતા લાગી અને રેટલામાટે આસરે સમ-દાયના એક મુલ્ય આચાર્ય દેવધિની દેસરેલ તટે ગુજરાતમાં આવેલા વહુમી નગરમાં એક સમા મરવામાં આવી.

આ દત્તકથા ઉપરથી એમ જણાય છે કે શ્વેતામ્બરીય સુરક્ષિત રાહેલા જૈન સિદ્ધાન્તગ્રથો ઈ. સ. પહેલાના લગભગ ચોથા સેકાના અન અથવા ત્રીજા સેકાના પ્રારમ જેટલા યુના ડ, કારણ કે પાટલી પુત્રની સમા લગમગઈ સ. પૂર્વ ૩૦૦ મા થયેલી, અને તે વસ્તે જ આ આગમો સમૂહીત થયા હતા આ હકીકત ઉપરથી સુચિત થાય છે કે એ ગ્રથો તે વસ્ત પહેલાં પણ વિદ્યમાન હોવા જોઈએ અને જૈન દત્તકથા પણ એમ કહે છે કે મહાવીરે પોતાના મુલ્ય શિષ્ય ગણવરને પ્રથમ ‘પૂર્વો’ શીલિયાં હતા અને તે પૂર્વો ઉપરથી ગણવરોએ નવા ‘અગ્રો’ ધનાવ્યા હતા. ‘પૂર્વો’ પડલ ‘પહેલાં’ના ગ્રથો અર્થાત્ ‘અગ્રો’ ની પેરેલા થયેલા ગ્રથો. પાટલીપુત્રની સમા વસ્તે, જૈનાના કહેવા પ્રમાણે તે ગ્રથોમાનો કેટલોક માગ નાશ પામ્યા હતા, અને તેથી બાકી રહેલા માગને વારમા ‘અન’ સરીકે સમૂહીત કરવામા આવ્યા. એક જૈન દત્તકથા એમ જણાવે છે કે મૂલમા જે સિદ્ધાન્ત ગ્રથો હતા, તેમાંથી બાકી રહેલા ગ્રથોને પાટલીપુત્રની સમામાં યુન. સંશોધિત કરી તે સમયને અનુકૂલ આવે તેવા નવા રૂરમા ગોટવવામાં આવ્યા.

જૈન ધર્મ અને તેના ઇતિહાસ વિધે આ પ્રમાણે દત્તકથાઓ છે ત્રીસેક વર્ષ પહેલાં આ દત્તકથાઓને વિલકુલ વેવશ્દ ગણવામા આવતી હતી, પરંતુ હરે તેથી વૃત્તિને, જૈન સાહિત્યમાં દેસાઈ આવતી ઇતિહાસિક ચાક્ક સાઈ અને સ્ત્રીગવટને લીધે સત્તત પડકો લાગ્યો છે. ગત વર્ષોમાં પ્રો. જેકોવી, પ્રો. લ્યુમન અને મે પ્રસિદ્ધ કરેલાં જૈન પુસ્તકો ઉપરથી આ દત્તકથાઓની સત્યતા ત્રિશેષ માહુમ પડતી જાય છે. પ્રો. જેકોવીએ જન સિદ્ધાન્ત ગ્રથોની માષા અને સૈલીની વારીક તપાસ કરીને તેમના પુરાણપણા વિષે પોતાનુ પ્રામાણિક મન પ્રસિદ્ધ કર્યું છે, તો પણ વ્યાં સુધી આ દત્તકથાઓ વિધે અનુક અને

સ્વયં પુરાવા મઠી થક નહીં ત્યા મુખી નમના ઉપર સર્પૂર્ણ વિશ્વાસ મળી શકાય નહીં, એ સ્વાભાવિક જ છે. પરંતુ હવે આજ સ્વતંત્ર પુરાવાની શોધો પણ થા વર્ષોમાં થઈ છે, અને તેમ માન લેવાનાં પ્રા. બુદ્ધત્વની તીવ્ર કુદ્ધિને ઘટે ડાઈ સ. ૧૮૭૧ માં મેજર અનરલ સર ઇ. કનીંગહામ મથુરાના કાનાની ટીલાના સહેરોમાંથી શાધી કાઢેલા લેલાલુ પ્રતિનિધિશ્વર કરીન પ્રો. બુદ્ધે તેમાંના કેટલાક લેલોમાં જૈનોના કેટલાક આચાર્યો અને વિમાળોના સ્વાસ્ત્ય નામો શોધી કાઢ્યા, અને તેથી તે સ્વતંત્રના આર્કાઈવો લૅન્ડોન સર્વે જાતાન વડા ડૉ. જે. જોન્સ દ્વારા તે ટેકાનાં વચ્ચે સોદાગરાની વ્યવસ્થા કરવામાં આવી, જે મુજબ ડૉ. ફુહરરના અધ્યક્ષપણા નીચે ૧૮૮૧ થી ૧૮૯૧ સુધી અને પુનઃ ૧૮૯૬ માં તેનું સોદાગ કામ કરવામાં આવ્યું. આથી ત્રીજા ઘણા નવા લેલો હાથ લાગ્યા અને તેની નકલો ડૉ. બુદ્ધર તરફ રવાના કરવામાં આવી. તેમણે તે લેલોનું પરિશ્લેષ કરી તેમાંથી કેટલાક પાસ સ્વાસ્ત્ય લેલો ચૂટી કાઢ્યા અને લેખના ઓરિએન્ટલ ઝર્નલમાં તથા ઈપીગ્રાફીમાં ફર્ડીના પ્રથમ બે પુસ્તકોમાં પ્રસિદ્ધ કર્યાં. આમાંના કેટલાક લેલો ઘણા ઉપયોગી છે કારણ કે તેમાં ફરો સિંધીયન સ્વયં પદ્યો કે ફરો-સિંધીયન રાજા કનિષ્ઠ, હરિષ્ક અને યમુદેવ ઉપયોગ કરેલા સવત્તની મિતિઓ આપેલી છે આ રાજાઓ ૬૦૦ સં ના પ્રથમ બે સૈકાઓમાં થયેલા છે અને તેમનું રાજ્ય હિંદના ઉત્તર-પશ્ચિમ વિના રાષ્ટ્રી ટેક મથુરાસુધી મસૂરું હય આ લેખોની મિતિ, તે સવત્તના ૫ થા ૧૮ માં વર્ષ લુગીની છે, જે ૬૦૦ સં ના ૮૩ થી ૧૭૬ વર્ષની વચ્ચે થાય છે. આમાંના ઘણા લેખો તે જૈન પ્રતિમાઓની વસતી ઉપર લેવાયા છે. તેમાં તે મૂર્તિ બન તમાર શ્રાવક અગર શ્રાવિકાઓના, જે મદિરમાં તે મૂર્તિ સ્થાપિત કરવામાં આવી તેના, જે સાધુ

૫ આ વિષયની કાંઈ સાહ્યમાં તેમાં લેલો લેખના ઓરિએન્ટલ ઝર્નલ, ૧૮૭૭ થા ૧૧, અને ૧૮૯૬ માં પ્રસિદ્ધ થયા છે, તેમ જ ૧૮૯૭ ના ઈમ્પીરિયલ રિવિયુ ઓફ સાયન્સના ઝર્નલમાં પણ તેમણે તે પ્રકટ કરાવ્યા છે

૬ જુઓ તેમના સર્વ રિપોર્ટ્સ, પ્રાગ ૨

અથવા સાધ્વિઓના ઉપદેશથી એ કાર્ય કરવામાં આવ્યું તેના અને જે ગય અગર સંધના તેમાં અનુયાયી હતા તેના નામાં આપેલા છે. આ સમર્પણના લેલોમાંથી ઘણી ઉપયોગી વાતોના વિષયનોય પુરાવાઓ મળી આવે છે.

પ્રથમ તો આ લેલોમાં ઉપદેશક તરીકે ઉલ્લિખિત સાધુ અગર સાધ્વિઓના જે જે ગણ-સવ આદિના નામો આપ્યા છે તે ગણાદિ ૬૦. સ. ના પટેલ અને વીજા સક્કામાં વિદ્યમાન હતા એ વાતનો પુરાવો કમ્પ્યુટ અને ત્રીજા જૈન ઘરોમાંથી આપણને મળી આવે છે. જે કોટિક નામના ગણનો આ વારવાર ઉલ્લેખ થયેલો છે તે ગણ સુસ્થિતાવાચ્યે સ્થાપેલો હતો, આ સુસ્થિત ૬૦. પૂર્વેના વીજા સક્કાના પૂર્વાર્ધમાં સંધના આચાર્ય તરીકે વિદ્યમાન હતા સ્વદેશીત આ ગણ જૈનોની શ્વેતવર શાસ્ત્રોના હતા. આ રીતે આપણને આ લેલો ઉપરથી ૬૦. પૂર્વેના ત્રીજા સેકાના મધ્યમાં જૈન શ્વેતવર સમ્રાટનાં વિદ્યમાનતાનો પરાંલ પુરાવો મળે છે એટલું જ નહીં પણ ૬૦. સ. ના પ્રારમ્ભના બે સૈકા માં એ સમ્રાટના ના કોટિક નામે ગણ મથુરાસુધી ફેલાયેલો હતા તેનો પ્રત્યક્ષ પુરાવો પણ મળે છે. તથા એ લેલોમાં તેનો જે વારવાર ઉલ્લેખ આવે છે તેથી તે મથુરામાં સારી પેઠે જામેલો હશે એમ પણ સ્પષ્ટ જણાય છે તે સમય બુલન્દ શહેરમાં પણ એક દશી સત્યા હતી જેનો પુરાવો એ લેલોમાં આવેલા ઉચ્ચનગર અથવા વારણ નામના સમુદાયના સાધ્વિઓના નામાં ઉપરથી મળે છે એ વાતનો ઉક્ત શહેરના ઘુનો નામો હતાં.

ત્રીજી વાત એ છે કે, સંધના એક અમ તરીકે સાધ્વિ વર્ગને જે ગણવામાં આવે છે તેનો હયાતીનો પુરાવો પણ આ લેલો પૂરો પાડે છે અને તે ઉપરથી વિશેષ એ પણ હકીકત મળી આવે છે કે પોતાના ધર્મને વિકાસ કરવામાં આ સાધ્વિઓ પણ ઘણાં માગ લેતી હતી, અને સ્વાસ્ત્ય કરાવે શ્રાવિકાઓમાં. કારણ કે એક અપરાધ સિવાય વધી જ શ્રાવિકાઓએ સાધ્વિઓના ઉપદેશથી પ્રતિમા સમર્પણ કરવાનું જણાવ્યું છે. આ વાતને જૈન સિદ્ધાન્ત ગ્રંથોના સ્પષ્ટાણથી સમર્થન પણ મળે છે, જેન

ધર્મમાં વિગંધર જન શેતામ્બર એ એ વિભાગો ઘણા જુના વસ્તુઓ પહેલા છે તેનો પણ જન અધિક પૂરાનો આમાંથી મળી આવે છે. શિવમ્બરો પોતાના સવમાં ધોળોને સામેલ કરવા નથી. ફક્ત શેતામ્બરો જ તેમ કરે છે. તેથી આ લે-સો ઉપરથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે મધુરામાંની આ સભ્યા શેતામ્બરોની જ હતી તથા દે. સ. ના પ્રથમ સદામાં આ વિભક્ત પ્રવસા કરાઈ નિશ્ચિત થયેલી હતી.

આ ઢેલો ઉપરથી જન ધીજી હકીકત એ મળે છે કે જૈન ટાંચમાં શ્રાવક-શ્રાવિકાઓની વ્યવસ્થિત રચના કરેલી છે. જે ઉપર સુચના કરેલી જ છે કે જૈન સવમાં આ પણ એક અગત્યનો વિભાગ ગણાય છે, જે ધર્મમાં ઉદ્ધ-તિમાં ઘણી મહત્ત્વની વાત છે. એ લેસોમાં શ્રાવક અને શ્રાવિકા એવા શબ્દો ઘણાં છે અને હાલ સરાવની પણ કહેવામાં આવે છે. બૌદ્ધોમાં પણ શ્રાવક શબ્દ ઘણાં છે પણ ત્યાં તેનો અર્થ અર્હત (અમુક કક્ષાનાં સાધુ) રહ્યો રહેવામાં આવે છે. આ હકીકત શ્રાવકોની ધોક્ષ સ્થિતિવિષે ઉલ્લેખ કરે છે એટલું જ નહીં, પણ જૈન અને બૌદ્ધ એ બે મહાન ધર્મોની વિશિષ્ટતા પણ સ્પષ્ટ પ્રતિપાદન કરે છે.

એક ધીજી ઉપયોગી વાત એ છે, કે તે લેસોમાં શ્રાવ-કોની જાતિવિષે પણ વારંવાર ઉલ્લેખ આવેલો છે. જૈન અગર બૌદ્ધધર્મ ધર્માશ્રમ દૂર કરવા માંગે છે, એથી જ માન્યતા છે તે તદ્દન સોડી છે એમ મેં પહેલાં જણાવેલ છે. એક માણસ શ્રાવક થવાથી વર્ણપ્રત ઘટો નથી. તે પોતાની જાતિનો ધંધો-રોજગાર છોડી શકે છે, પરંતુ કન્યાની આપલે માટે તથા અન્ય વ્યવહાર માટે તો તેને પોતાની જુની જાતિનો જ આશ્રિત રહવું પડે છે. એક લેસમાં એક હુદોર દાન આપ્યાનું વર્ણવ્યું છે. જૈન થયા પછી તે હુદોર વન્યો હશે એમ માનવું મૂલ મરેલું છે, કારણ કે શ્રાવકોને માટે તો હુદોરના ધંધાનો નિવેધ કરેલો છે. તેથી આ ઉલ્લેખ તેના વાપદાદાની તથા તેની જાતિ માટે જ હશે. તો પણ એમ જણાય છે કે હાલની માફક તે વસ્તે ઘણ ઘણા સરા શ્રાવકો યેપારી વર્ગના જ હતા.

જૈન ગ્રંથોમાં આંપેલી ધર્મી વાતોનું સમર્થન આ

લેસોમાંથી થઈ શકે એમ છે, એ સિદ્ધ કરવા માટે ઘણા વિસ્તૃત પૂરાના હુ આપી શકું તેમ છે; પરંતુ તેમ કરવા વંચતાં આ વિષયમાં સ્વ લેનાર સજ્જનોને મો. ગુરૂના લેસો જ સ્વયં વાંચી લેવાની જે મર્યાદા મળે છે. યોગ્ય ખર્ચ છુ. હજી જે એક વાત મારે સ્વાસ્થ જણાવવી જોઈએ. તે એ છે કે, ગુપ્તસિદ્ધ ચક્ર અને સ્તૂપ તથા તેના અન્ય અંગો એ બૌદ્ધ ધર્મના જ સ્વાસ્થ વાદ્ય ચિન્હો મનાય છે; પણ ૧૮૮૧ માં લીડન મુકામે મરાળી છટ્ટી ' ઇન્ડર-નેશનલ કોન્ફેરન્સ ઓફ ઓરીએન્ટાલીસ્ટ્સ ' આગળ ચાંચેલા લેસમાં મર્ટન પંડિત મગવાનલાલ દુરજીએ વતાથી આપ્યું હતું કે જૈન લોકો પણ સ્તૂપોને પૂજે છે. અને હવે મો. ગુરૂને ઝંઝી શોધ સોઢ કર્યા પછી સમમાન સિદ્ધ કર્યું છે કે ચક્ર અને સ્તૂપ વિષેની અચાપિ ચાલતી આવતી વિદ્વાનોની માન્યતા કેવલ મૂલ મરેલી છે. મધુરામાંથી એક જૈન સ્તૂપનાં અવશેષ સુધા પ્રકટ રીતે મળી આવ્યા છે. પહેલાંથી પતી આવતી મૂર્તિને છીધે શરૂઆતમાં એમ લાગ્યું હતું કે આ સ્તૂપ પણ બૌદ્ધોનાં હશે; પરંતુ તેની ઘણી જગ્યાએ જે જૈન મંદિરોના અવ-શેષો મળી આવ્યા તથા જૈન લેસો અને પ્રતિમાઓ નિગેરે પણ ત્યાં મળી આવ્યાં ત્યારે આ સ્તૂપ પણ જૈનોનો જ હોયો જોઈએ, તે વિષયમાં પછી કોઈ જાતની શંકા રહી નહીં. ત્યારવાદ કેટલાક કોતરેલા પત્રો પણ મળ્યા છે, જેના ઉપર તેના ધીજા અવશેષો સાથે જૈન સ્તૂપોનો આકાર કોતરેલો છે. આપણે હાલ સુધી જૈને બૌદ્ધ સ્તૂપો માનતા આવ્યા છીએ તેના જેવા જ આ સ્તૂપો છે. મો. ગુરૂને તો પોતાનું અનુમાન આગળ દોઢાકીને એમ પણ કહ્યું છે કે સ્તૂપ-પૂજા એ જુના વસ્તુમાં ફક્ત જૈન અને બૌદ્ધ જ કરતા એમ નહીં, પરંતુ ગુરૂ સંન્યાસોઓ (વાલ્લભ ધર્મના) પણ કરતા હતા. એક જૈન પ્રતિમાની બેસળી જેના ઉપર કોતરેલા તથા લેલ છે તેની શોધ સ્વાસ્થ જાણવા જેવી છે. તેમાં બૌદ્ધ પ્રતિમાઓની માફક જ એક ત્રિમૂલ ઉપર ચક્ર કાઢેલ છે. આ ઉપરથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે ચક્રનું ચિન્હ એ કેવલ બૌદ્ધોનું જ નથી. તે લેસમાં જળાંકના પ્રમાણે, તે પ્રતિમા, એક સાધુના

ઉપદેશથી એક શ્રાવિકાદ્ય પ્રતિષ્ઠિત કરી હતી. એ ઘેઝૂની આકૃષ્ટિઓ પણ, આ પવિત્ર ચિન્હની તેઓ સ્તુતિ કરતા હોય તેમ, કોતરવામાં આવી છે. વચ્ચી લેક્ષમાં ધમ પણ ઉદ્દેશ્ય છે કે, ई. સ. ૧૫૭ ને મઝઠી સાલમાં, આ દેવાનિર્મિત સ્તૂપમાં પ્રતિમા વેસાડવામાં આવી. 'દેવનિર્મિત' એ શબ્દથી સૂચિત થાય છે કે એ સ્તૂપ વહુ જ ગુનો હોવો જોઈએ. કારણ કે ई. સ. ના વીજા સંક્રામાં તેનો મૂળ ઇતિહાસ મૂલી જવાયો હતો અને તેનું સ્થાન એક દંતકથાદ લીધું હતું. તેથી આપણે તો એ જ મિશ્વર્ય ઉપર આર્ષા શક્તિ કે ઘળા સંકા પહેલાં એ સ્તૂપ નિર્મિત થયો હશે. પ્રો. બુન્દેરે સૌધિલી એ વાવતને એક જૈન ગ્રંથ-માયી ટેકો પણ મળે છે.^૧ તે દંતકથા પ્રમાણે ૬૦ સં. ના ૧ મા સંક્રામાં તે સ્તૂપ હયાતો ધરાવતો

હતો અને તે વખતે તેની મરામત મિશે કરવામાં આવી હતી; તથા તેમાં પત્થરો વેસાડવામાં આવ્યા હતા. મૂળ તે સ્તૂપ ઈંટોનાં ઘનેલો હતાં અને પાર્શ્વનાથને સમર્પિત કરેલી મુગર્ણશાલ તેમાં મુકેલી હતી. એમ કહેવામાં આવે છે કે એ સુવર્ણ થાઠ મથુરામાં દેવાદે આગી હતી અને ઘળા વખતે મુઘી જૈનોને પૂજા કરવા માટે તે ત્રહાર રાસવામાં આવી હતી. પરંતુ પાછલથી ગ્યારે મથુરાના એક ગુના રાજાની તે થાઠી પઢાવી લેવાની ફરજ થઈ ત્યારે તેના ઉપર ઈંટોનો આ સ્તૂપ બનાવવામાં આવ્યો આ સમય તે, વળા મામે ई. સ. પહેલાના વીજા સંક્રાનાં હશે, ગ્યારે પ્રથમ જ જૈનો મથુરામાં વાસ કરવા લાગ્યા હતા. એ થાઠ તેઓ કદાચ વિહારમાર્થે લાવ્યા હશે, અને એ રાજાએ થાઠ પઢાવી લેવાની ફરજ કી, તે કદાચ ई. સ. ની શરૂઆતમાં અમલ ચલાવતો ઈંદો—સીધિયન કાનિષ્ક રાજા હશે.

૧. એ પ્રકારે તે જિતપ્રમદના તીર્થંકરના છ એ વિગવના વિશેષ વર્ણન માટે 'વિદ્યાદેવ' એકેદેશી એક સાવન્સીગ્ના, કાર્ય વિવરણ માં ગુણ.



મહાવીર નિર્વાણનો સમય-વિચાર

[* જેમની ઇતિહાસિક વિષય તરફ ફરી છે અને જેઓ એ વિષયના લેખોનું મનનપૂર્વક અધ્યયન-શ્રવણ કરે છે તેઓ સારી પેઠે જાણે છે કે, જૈન ઇતિહાસ અને જૈન કાલગણનાના ઓ નમઃ સ્તુતે જે શ્રમણ મગવાન શ્રી મહાવીર દેવનો નિર્વાણ-સમય છે તેના વિષયમાં પુરાતત્ત્વજ્ઞતાઓમાં આજ ઘણા વર્ષોથી પરસ્પર મતભેદ અને વાદ-વિવાદ ચાલી રહ્યો છે. જૈન ધર્મના પ્રાચીન સાહિત્યમાં પણ સુદ એ વાતના પ્રમાણ જ નથી. મહાવીરદેવનો નિર્વાણ સમય, એ જૈન ઇતિહાસમાં તો સોથી અથવા મળે છે; પરંતુ અસ્થિત માર્કોય ઇતિહાસમાં પણ તેની ટેકલી જ મહત્તા છે અને એ કારણે લઈને પુરાતત્ત્વજ્ઞોના માટે તે એક વળાંક જ અગત્યનો સત્તા થઈ રહ્યો છે.

સામાન્ય રીતે જૈન ગ્રંથોની વલ્લભ ઉપરથી એમ માનવામાં આવે છે કે, હિન્દુસ્તાનમાં વર્તમાનમાં જે વિક્રમ સંવત્સરા નામે સર્વત્ર પ્રચલિત છે તેના પ્રારંભ પહેલાં ૪૭૦ વર્ષ, એટલે ૬૦ સં ૫૨૭ પૂર્વે, શ્રમણ મગવાન શ્રી મહાવીરનું નિર્વાણ થયું હતું. જૈન ધર્મના વિગત અને શ્વેતાશ્વર નામના બંને પ્રાચીન સંપ્રદાયોના ઘણા ગ્રંથો ઉપરથી એ નિર્ણય નિકળે છે. પરંતુ પ્રસિદ્ધ જૈન સાહિત્યજ્ઞ જર્મન વિદ્વાન ડૉ. હર્મન જેકોબી, આચાર્ય શ્રી હેમચન્દ્રના એક ઉલ્લેખથી પ્રેરાઈ એ નિર્ણયમાં શંકા ઉપસ્થિત કરી અને તેને મજબૂતી બીજા કુટુંબના પ્રમાણોનો આશ્રય લઈ, એ યુગી માન્યતાને અસવદ્ધ જણાવી. ત્યાર પછી બીજા ઘણાક વિદ્વાનો એ સમયમાં, પરસ્પર સંઘર્ષ-મહન ચાલુ કર્યું અને એક બીજાને પોતા પોતાના કથનને સત્ય મિદ્ધ કરવા અનેક જાતનો ઝઘાળો કર્યો. જાણે ચાર પેટિયર નામના એક વિદ્વાને ' ઇન્ડિયન એન્ટીક્વરી ' નામના મુખ્યપત્ર માસિક પત્રના સપ્ ૧૯૧૪ ના જૂન, જુલાઈ અને ઓગસ્ટ માસના અંકોમાં, એ વિષયનો એક વળાંક જ વિસ્તૃત લેખ લખ્યો અને તેમાં મહાવીર નિર્વાણ વિક્રમ સંવત્સ પૂર્વે ૪૭૦ વર્ષ નહીં પરંતુ ૪૧૦ વર્ષ (૬૦ સં ૪૬૭ પૂર્વે) થયું હતું, અને પરંપરા પ્રમાણે જે ગણના ગણવામાં આવે છે તેમાં ૬૦ વર્ષ વધારે છે તે કર્યા કરવા જોઈએ, એમ સિદ્ધ કરવા વિશેષ પ્રયાસ કર્યો હતો.

પોતાના એ વિસ્તૃત લેખમાં પ્રથમ તો એ વિદ્વાને એમ સિદ્ધ કર્યું કે, મેઘદુર્ગાચાર્ય વિગેરેના વિચારશ્રેણી આદિ ગ્રંથોમાં જૈન કાલગણના સંબંધી જે પ્રાચીન ગાથાઓ આપેલી છે, તેમાં જણાવેલા રાજાઓનો કોઈ પણ પ્રકારનો પરસ્પર ઇતિહાસિક સંબંધ છે જ નહીં. તેમ જ મહાવીર નિર્વાણ પછી ૪૭૦ વર્ષે જે વિક્રમ રાજા થવાનો ઉલ્લેખ છે તેનો ઇતિહાસમાં ક્યાંય અસ્તિત્વ નથી. માટે એ પુરાણી ગાથાઓમાં જે પ્રકારે કાલગણના કરવામાં આવી છે અને જે રાજાઓના રાજ્યકાલ આપ્યા છે તે નિર્મૂલ છે. લેખના બીજા ભાગમાં એ વિદ્વાને એમ વતાવ્યું કે સામળળફલમુષ્ વિગેરે કેટલાક બૌદ્ધ ગ્રંથો ઉપરથી જણાય છે કે, મહાવીરદેવ અને બુદ્ધદેવ બંને સમકાલીન હતા; અને બૌદ્ધ ગ્રંથો પ્રમાણે બુદ્ધદેવનો નિર્વાણ ૬૦ સં ૪૭૭ વર્ષે થયું હતું. જનરલ કર્નિંગહામ અને મોક્ષમુર્તિ પણ એ તારીખ માન્ય રાખી છે. બુદ્ધદેવની મૃત્યુસમયે ૮૦ વર્ષની અવસ્થા હતી. તો હવે જોવાનું કે, ગાથાઓમાં જણાવ્યા પ્રમાણે જો મહાવીર દેવનો અંતકાલ ૬૦ સં ૫૨૭ વર્ષે થયો હોય તો તે વખતે બુદ્ધદેવની ઉંમર ફક્ત ૩૦ વર્ષની હશે. પરંતુ એ સૌ કોઈ માને છે કે છત્રીસ વર્ષની ઉંમર પહેલાં તો ગૌતમ બુદ્ધને બોધિજ્ઞાન પણ થયું ન હોય, તો પછી તેમના

* આ હેતુ ચારેક વર્ષ ઉપર લગાવ્યો હતો. અને એ ૧૩મી તે વખત પ્રકટ કરાવ્યો હતો. હવે આપણે વિષયના વધારે લેખો. આ પત્રમાં ત્રમથી પ્રકટ કરવાનો વિચાર રાખ્યો છે તેથી આ હેતુ અહીં પ્રકટ કરવો આવશ્યક માન્ય છે.—શ્રીદાસ.

* એ કે જે બુદ્ધદેવ હતા તેઓના અંકોમાં આવામાં આવશે.—સપાદન.

અવધાનિઓ તેા પાત્ર ન રહ્યાં થી, તેથી હવે સિદ્ધ છે કે મહાવીર દેવગુ નિર્વાણ માં ઉત્તર સ્થાને પ્રમાણે થયું હોય, તે પછી નેમની, નુદ્દેવની સાથે મનકાલીનતા સી રીતે મળી શકે છે ? (૨) એમ પણ કહેવામાં આવે છે કે મહાવીર અને નુદ્દેવ એ અગાધગુ (શ્રેણિકા પુત્ર) ના સામ્યભાવના મોહક હતા. ઇતિહાસિક ઉદ્દેશો પ્રમાણે અગાધગુ નુદ્દેવના મૃત્યુ પૂર્વે ૮ વર્ષે રાજમાહીષ થેટો હતો અને તેણે એકદર ૩૨ વર્ષ સુધી રાજ્ય કર્યું. આ રીતે ઉત્તર જૈન ગાથાઓ પ્રમાણે તેા મહાવીર નિર્વાણ માનવામાં આવે તેા આ હકોક્ત પણ સંધ્યે સ્પષ્ટી ગણે તેમ નથી. તેથી યા તેા મહાવીર નિર્વાણનો સમય ઉત્તર સમયથી આ તથા આગળ જોઈએ અને યા તેા નુદ્દેવનો નિર્વાણસમય પાછળ હટાવવો જોઈએ. પાશ્વ નુદ્દેવનો નિર્વાણસમય તેા ઘોઘન ગણતરીએ ગણેલો છે અને મહાવીરનો સમય માત્ર અવમાનથી જાણી શકે તેા છે, માટે તેને ૬૦ વર્ષ આ તથા ઇતિહાસના અદ્યતન છે. આની પુષ્ટિમાં હેમચન્દ્રાચાર્યના પશ્ચિમી પર્વે તેા કથન પણ ઉદ્ભવ્યું છે આ રીતે, આથી રીતે, એ લેખમાં ને વિદ્વાને ઘણા જ લંગાળથી જર્જરી કરી છે.

ઉપર આ અગાધગુ છે કે, જૈન ઇતિહાસના માટે આ એક વળો જ અગત્યનો સગલ છે અને એના નિરાકરણ ઉપર જ જૈનધર્મના સાહિત્ય અને ઇતિહાસની વાસ્તવિક અને નમિક રચના સ્પષ્ટ થાય છે. અને તેટલા માટે, જૈન વિદ્વાનો, આ વાસ્તવિક પ્રયત્ન કરવાની શ્રદ્ધા રહ્યાં. પરંતુ જોઈએ રીતે આ સમય સંધ્યે જૈન આચાર્યમાંથી કોઈ-એ પણ, જમની શાંતિના ધોને ધારણ થતા જાય છે નેમની, જરી સારીય પોતી વાક્યા મટે જરાય પ્રયત્ન કર્યો નથી. પ્રયત્ન કરવાની યાત્રા તેા રૂઝ રહી, પરંતુ ધુનિયાના કોણ વિદ્વાનો આ રીતે યાત્રા સી ૧૩-મયજ કરી રહ્યા છે તેની સ્વરૂપ સુધી મેજવાની શ્રદ્ધા કરતા નથી !

પ્રશ્ન. શ્રીગુણ વાણીપ્રસાદજી ગાયમગામ જમ. જ. (આજકાલે યુનિવર્સિટી) વારિસ્ટર-એડ-લો કરીને પટનામાં એક વિદ્વાન રહ્યા છે. દિવ્યભાનના નામી ઇતિહાસિમાંના નેમનો એક છે. તેને મારતના પ્રાચીન ઇતિહાસમધ્યથી થતાં કાણોડ કર્યો છે અને કેટલાક વાક્યાઓના માત્ર વિષયોનો ઘણી જ ઉત્તમતાપૂર્વક સંસ્કાર કર્યો છે. અને અનેક ઇતિહાસિક ઘટનાઓનાં ઉદ્દેશ્ય છે. પ્રમોગવાળી મહાવીરના નિર્વાણ સમયનો પણ તેમણે કેટલેક ઠેકાણે ઉલ્લેખ કરેલો છે, અને ઉપર અગાધગા પ્રમાણે આ ઘટનાઓનાં કોઈકાને પણ લેખમાં પ્રસન્નથી પ્રયત્ન કરેલો છે. વિદ્યાર અને બોરિયા રીતે સોસાયટીના સને ૧૯૧૫ ના સપ્ટેમ્બર માસના અંકમાં ઈશુનાક અને મૌર્ય ફાલ ગણના (Sushnaka and Maurya Chronology) રીતે તેમણે એક વળો જ મહત્વનો વિષય લખ્યો છે. તેમાં જોતે બુદ્ધ દેવ અને મહાવીર દેવના નિર્વાણ-સમયનો પણ વળો જ વિદ્યારપૂર્વક વિવેચન કર્યું છે, અને જૈનોની પ્રાચીન ગાથાઓની ગણતરીને જ મધ્યમાન સિદ્ધ કરી, એ વિદ્વાનો ઉપર અગાધગા પ્રમાણે ૬૦ વર્ષની ન્યૂનતા આગતા હતા તેમની રહેલો સોઝા વાક્યાત્વે પ્રયત્ન કર્યું છે. તથા જૈન, બૌદ્ધ અને હિંદુઓનાં પ્રયોગના મામાણિક આધારોને લઈને તેમણે પોતાના કથનને ગુણ થતાવ્યું છે.

હાલમાં આ વિદ્વાને એક અગત્ય મહત્વના ઇતિહાસિક લેખનો સંશોધન કરી ઉત્તર અંકમાં તેણે એકમાં પ્રકટ કર્યો છે. આ લેખ તે સુપ્રસિદ્ધ મગધ વાસ્તવેલોનાં ઉદ્યમિરિની હાથોગુરવાળો લેખ છે, જ મે. ડૉ. મગવાનલાલજીની સંશોધન કરેલી આત્મી પ્રમાણે થયે વર્ષે યુજગતીમાં તારા પાલ્યો છે. ડૉ. મગવાનલાલજીની સંશોધનમાં થોડા વર્ષે ઉપર ડૉ. ફર્નલ વિંગે પુરાતત્ત્વજોષ સકા કરી હતી, અને કોઈ અધિકારી વિદ્વાનના હાથે આ લેખનો પુનઃ અવલોકન થવાની જરૂર અગાધગા હતી. ને કાર્ય શ્રીગુણ ગાયમગામ મહાસયે પૂર્ણ કર્યું છે અને આ લેખની ઘણી જ સૂક્ષ્મ બુદ્ધિ છાનવીન કરી તેની ઉત્તમ આત્મી પ્રસિદ્ધિમાં મૂકી ઘણા નવા તથા ઉદ્ભાવન કર્યું છે. આ લેખના એક ને મામા સંબંધમાં મારી સાથે પણ તેમણે કેટલેક રસમયો વચ્ચેવચ્ચાર લખાવ્યો હતો. તેમના આ લેખ-સંશોધનથી જૈનધર્મના તત્કાલીન ઇતિહાસ ઉપર ડૉ. મગવાનલાલ કરતાં પણ વધારે પ્રકાશ પડ્યો છે અને સમુદ્ય ભારતીય

ઇતિહાસની મહાત્મામાં પણ એક વિશેષ ઉમેરો થયો છે. ૮ નિર્વંશમા પણ તેમણે મહાવીર-નિર્વાણ સંબંધી તૂતન કહ્યું છે અને પોતાના ઉપર્યુક કાલ્પનિર્ણયવાળા લેક્ષમા કરેલા કથનને વચોરે પુષ્ટ વનાવ્યું છે. તેમની આ વધી દલીલો પુરાતત્ત્વજ્ઞો માન્ય કરતા જાય છે અને અર્લિ હિસ્ટરી ઓફ ઇન્ડિયાના લેક્ચરર સિદ્ધ ઇતિહાસક મિ. થીન્સેટ સ્મીથે પણ હવે તેમના કથનને સારર સ્વીકાર્યું છે, એમ શ્રીયુત જાયસવાલ મને પોતાના તારીખ ૧/૭/૧૯ ના પત્રમાં, જાસ રીતે મીંચે પ્રમાણે ગણાવે છે.

“ આપ કો યહ સુન કર પ્રસન્નતા હોમી કિ V. Smith ને યહ કવ માન લિયા કિ તુદ્દેવ તથા મહાવીર-સ્વામી કા નિર્વાણ-કાલ જેસા હમ કહતે હૈ વહી ઠીક હૈ । અર્થાત્ જેસા કિ ડન કે અતુચાપી માનંત હૈ । યહ જારવેલ કે લેલ સે સિદ્ધ હો ગયા । મિ. થિન્સેટ સ્મીથને પત્રદ્વારા યહ મુક્તે લિખા હૈ । ”

આવી રીતે ભારતીય ઇતિહાસના એક ઘણા જ મહત્વના પ્રશ્નોના ઘણા યુગોની વલમધલ પછી એક ભારતીય વિજ્ઞાનના હાથે જ નિર્ણય થતો જોઈ દરેક ભારતીયન પ્રસન્ન થયા એવું છે, અને જાસ કરીને જૈન સમાજે તો પોતાની કૃતજ્ઞતા પ્રકટ કરવા માટે શ્રીયુત જાયસવાલને હાર્દિક અભિનંદન આપવું જાર્દન.

કાલગણના વિષયમા હમેશા કૃપણના વનાવનારા પાશ્ચાત્ય પુરાતન-વજોએ મહાવીર-નિર્વાણને ૬૦૦ વર્ષ આ તરફ લેંચીને પુરાણા જૈન ગ્રંથોમા આપેલી પ્રાચીન ગાથાઓન અસત્ય રેવા હતો, પરંતુ શ્રીયુત જાયસવાલ એ ગ્રંથકારોના પક્ષમાં ચગર કીળ વેરિસ્ટરી કાઢ્યા તૈયાર થયા અને અનાય અને મુક એવા એ જીર્ણ ગ્રંથોના કથનને પોતાના મતિ-માવેલે સત્ય ઠપારી વિચારક જગત્ આગલ તેમની પ્રતિષ્ઠાને પૂર્વવત્ સ્થિર કરી આપી છે.

શ્રીયુત જાયસવાલના મત પ્રમાણે મહાવીર સ્વામીહું નિર્વાણ વિ. સ. પૂર્વે ૪૭૦ વર્ષે નહીં પરંતુ ૪૮૮ વર્ષે થયુ હતુ. કારણ કે પટ્ટાવલિઓ ગિરોમાં જે ૪૭૦ વર્ષ લખ્યા છે તે વિક્રમના રામ્યારોહણ મુઘીનાં નંથી; પરંતુ જન્મ મુઘીનાં છે. વિક્રમ પોત ના જન્મથી ૧૮ મે વર્ષે ગાદિએ બેઠો હતો, અને ત્યારથી તેનાં સંવત્ ચાલ્યો છે, તેથી વિક્રમ સ. ની શરૂઆત પહેલા ૪૮૮ વર્ષે ઉપર મહાવીર-નિર્વાણ થયુ હતું એ સિદ્ધ થાય છે. આ ગણતરી પ્રમાણે જાજે જે આપણે મહાવીર-નિર્વાણ સવત્ ૨૪૪૮ માનોએ છીએ તેના બદલે ૨૪૬૬ (૨૪૪૮+૧૮) માનવું જોઈએ. કેટલીક જૂની પટ્ટાવલિઓમાંથી પણ આ કથનને પુરાવો મળે છે

શ્રીયુત જાયસવાલે આ સઘથમા કૃટા છાયાવા ઘણા ઉછેલો કર્યો છે, પરંતુ સઘજા પુરાણાઓનો સંક્ષેપમાં એકત્ર સંગ્રહ અને તેના ઉપરથી નિકળેલો સાર; તેમણે ઉપર ગણાવ્યા પ્રમાણે બીહાર અને ઓરિસા રીસર્વ સોસાયટીના જર્નલના પ્રથમ માગના પ્રથમ અંકમાં. (The Journal of the Bihar and Orissa Research Society. Vol, 1 Part 1.) શૈશુનાક અને મૌર્યકાલગણના તથા બુદ્ધનિર્વાણની તારીખ (Saisunaka and Maurya Chronology and the Date of the Buddha's Nirvana) નામના લેક્ચરી બેંકે, જાસ મહાવીરનિર્વાણ થને જૈન કાલગણના સંબંધી એક સ્વતંત્ર પ્રકરણ ઉમેરીને તેમા આપ્યો છે. જૈન ધર્મોનાં વારંવાર મઠી આવતા શ્રેણિકાદિ શિશુનાકવંશીય અને ચન્દ્રગુપ્તાદિ મૌર્યવંશીય રાજાઓના વાસ્તવિક રાજ્યકાલ આગળની ગિણાસા-વાલા દરેક જૈન વિદ્વાને એ સમગ્ર નિવેધ જાસ મનનપૂર્વક વાંચવો જોઈએ. ગિણાસુ વાંચકોની જાતર તેમ જ વિદ્વાન મનાતા જૈન મુનિવરોના જ્ઞાનની જાતર, એ લેક્ચરોનો અંતિમ માગ જે મહાવીર-નિર્વાણ સઘથી લખાણેલો છે તેનો અનુવાદ અર આગામા આવે છે. જૈન વિદ્વાનો તરફથી આ વિષયમા ઘણો ઉદ્ઘાષોહ થવાની આશા તો રાસી ધકાય તેમ છે જ નહીં પરંતુ જો તેઓ એકજાર મનનપૂર્વક આ નવું સમગ્ર વાંચી જવા જેટલી પણ પ્રવૃત્તિ કરશે તો આ પ્રયત્ન માટે લેખાયલો શ્રમ આજ્ઞા આપનાર નિવંદશે. તથાસ્તુ.]

ગાદિય વઠો હતો નહીં. ઇટલે ક. ૧૭ માં થયે તેનાં અભિષેક થયો, અને એનો તાત્પર્યાર્થ જવા નીકળે છે કે તે સત્તરમા વર્ષના અતમા અથવા તો ૪૮૭ A. M. J ના અંતે ગાદિય વઠો. આટલું પરિણામ જ આવ્યું કે જેનોજ વિક્રમ સંવત્ના પ્રથમ વર્ષે (૬૦ સ. ૦ પૂર્વે ૫૮-૫૭) ના અંતે અને ૪૭૦ A. M. J. પુરા થયાની વચ્ચે ૧૯ વર્ષનું અંતર મુસ્યુ.

“ માલ્લ નામન્ય ” નામના મ્હારા લેખમા, મ્હે સાબીત કર્યું છે કે જેનાં વિક્રમ નામથી સાતકર્ણે ઘીજાને બોલ્યો છે (જે નહુપાનને તાને કરનાર હતો અને જેના વિષે નીચે જુઓ-) કે જે લગભગ ૬ માં પૂર્વે ૫૭ વર્ષ મુસ્યુ પામ્યો; અથવા તો તેનાં પુત્ર પુટુમાયિ ક. જ તેના પછી તે જ વર્ષે ગાદિયે વઠો. અને મ્હારા પોતાના મત પ્રમાણે તો ૬૫૫ પુટુમાયિ ૫ જ. જેનોનો સરા વિક્રમ છે. (કારણ કે-લોકમા તરુ ઘીસુ અને ઘણુ ક રીને થયો પ્રચલિત નામ ‘ વિલયય ’ હજી (કુરુ=રાજા) [સરસાવો, શિકાટ નામ વિબિલક (A-) પિલવ, (I-) પુરાણોનો વિલક, W. and H, 19૦, V. P. 16૪ n] આજ તિલવ (પિટવ) અથવા પિલવ ને, ક નો છ (ડ) થઈ ગયેલો સમગ્રી જેનોજ તેનો વિક્રમ જરી ન્હાણ્યો છે. ” માલ્લાના કાર્તિકાદિ (કુતેપુ) સમયના પહેલાં વર્ષનો અને વિલયના રાજ્યારોહણના સમય એક હોવાથી, અથવા ઘણુ કરીને તેઓના પરસ્પર સમાન કાલ હોવાથી, તે વચ્ચે થક જ હોય, એમ માની લેવામા આવ્યું છે.

૭ I. A. 241, Page 147, સમ્બતી મચ્છની વટા- વહી, હોં ૦ હોર્નલની ૧૬૦ માં પુટુ ઝરરની ટાકા મહાચોરના નિ- ર્વાણથી તે શક મુર્ષી ૪૦૦ વર્ષ : સરસાવ, I A. ૨. 163) અને પછી વિક્રમ સંવત્ની શરૂઆત જુધી ૧૮ વર્ષ “ ઘીસાલ ૪૫૬ વિક્રમ જન્માન્ત વર્ષ ૦૦—રાજ્યાર વર્ષ ૪ ” ઇટલે ૫ ૪૦૨ A. M. J. = વિક્રમ સંવત્ (પુરા થયાં)

૮ સરસાવો, ચોહના (હિન્દી) વેન્દ્યમણ (સસ્ત્રુત)
સટ (હિં.) સટ્ટ (૫)
બટ (હિં.) બટ (૫)
બટાવ (હિં.) બટમ (૬)
વિલમ (હિં.) વીધિ જાલમું = વિક્રમ

પ્રધાનોના સમયથી લઈ શરૂઆત અને વિક્રમ સં- વત્ સુ િની જેન વાલગળના નીચ પ્રમાણે છે

(અ) પાલક (જેનુ પ્રચોત પછી ગાદિય શ્રાવવાટુ વર્ષનં પુરાણામાથી પણ મળી જાવે છે.) ૪ રાત્રિય મ- હારીર નિર્વાણ પામ્યા તે રાત્રિય (અર્થાત્ નિરતે) અ- વર્તની ગાદિયે વેટો.

(બ) તેનાં ૬૦ વર્ષો પછી મન્દાના રાજ્યન એક અગત્યનો સમય ગણામા શ્રાધ્ધી છે અને તેઓના રા- જ્યના એકદર ૧૫૫ વર્ષ ગળના છ પુરાણોના હિસાબે, નદરખેનથી ત છેલ્લા નન્દ મુર્ષી ૧૨૩ વર્ષ થાય છે અને નન્દના કાલ મુર્ષી ૫ લાકાનુ રાજ્ય ચાન્ન. ૩૨ વર્ષનો મે રથારા ૩ માં આપણને ઉદાયોના રાજ્યના પ્રથમ અથવા ઘીજા વર્ષે આગલ લાવી મુક છે. ઇટલે કે પાટકરસાનો લ્લય સ્વચ્ચા લ્લયક ઘીજો એક અગત્યનો સમય, ઉદા- યોના રાજ્યારોહણથી શરૂ થાય છે. પગ પુરાણો પ્રમાણે અશ્વત્થામના છઠ્ઠા વર્ષની (પાલકના રાજ્યારોહણ) અને ઉદાયોના અભિષેકની વચ્ચે આપણે ૬૪ વર્ષ મૂકી ઇ- ટ્રીય, જ્યારે જેન કાલગળના પ્રમાણે પાલક (ઇટલે પા- લકવશ) ના ૬૦ જ વર્ષ છે ” આ રીતે સ્વરૂપના સ- મયમા પુન. ૪ વર્ષનો ફરક આવે છે, અને તેથી ત મ- હારીર પછી ૨૧૫. અથવા ૨૧૯ વર્ષે ગાદિયે વેટો એમ જુદી જુદી તારીખો આપનામા આવે છે આપણે આગલ બોઈશું તેમ, આ તપાસત શુભ સમયની શરૂઆત મુર્ષી વરાવ કરનામા આવ્યો ન હતો અને તેથી તે પાટકરથી કરવામા આવ્યો હશે

(ક) મોર્થોના રાજ્યકાલના વર્ષસમૂહના કે વિભાગો કરનામા આવ્યા ૩ ૧૦૮ અને ૩૦ (એકદર ૧૩૮ વર્ષ અને પુરાણે પ્રમાણે ૧૩૭) તેમાં ૧૦૮ વર્ષ મોર્થ- વશના છે અને ૩૦ વર્ષ પુષ્પમિત્રના ૩ ઘીજા શરૂઆત વોલીય તો પુષ્પમિત્રનું પહેલું વર્ષ તે જ તેના છેલ્લા વર્ષ

૯ I. A. II 361; XX, 341

૧૦ અજાતસત્ર ૧૯

દરસક ૧૫

તરીકે બળાય છે. અને બલમિત્ર-માત્રુમિત્ર (બલમિત્ર વશનો માત્રુમિત્ર ?) ના ૬૦ ગણી સમય બરાબર કર્યો છે. આ ગણના આપણને મહાવીર પછી ૪૧૧ વર્ષ સુધી લઈ આવે છે ૪૦ વર્ષનો વીજો આક્રોહ નહાપાળના રાજ્યકાલ માટે આવ્યો છે." કેટલા અકોમી ૧૧ વર્ષ ગર્દમિહના રાજ્યના છે અને ૪ શકરાજ્યના છે. આવી રીતે પદ્મદર સપ્તમા ૪૭૦ થાય છે. અહિં આ ગણાઓની ગણના થઈ થાય છે તે પ્રથમ શકોના પરાજયથી સમાપ્તિ પામે છે." વિક્રમસત્વત્ અને આ ગણનાનો (૪૭૦ મહાવીર પછી) પરસ્પર સંબંધ મેળવવા, જૈનો ઉપર બળાવ્યા પ્રમાણે વચ્ચે ૧૮ વર્ષનો આતરો મુકે છે. "

ગાથા, મહાવીરના નિર્વાણનું વર્ષ (૧૭+૫૮+ ૪૭૦ =) ૬૦ સં. પૂર્વે ૫૪૫ મુ. આપે છે, કે જેને જૈનો, મહાવીર પછી ૪૭૦ વર્ષે, વિક્રમ જન્મ અને તેના ૧૮ મા વર્ષે વિક્રમરાજ્ય પ્રારંભ, એમ બતાવે છે. મહાવીર કાર્તિક વર્ષી ૧૫ ના દિવસે નિર્વાણ પામ્યા અને વિક્રમના કાર્તિકાદી સવત્તની શુભઆત થઈ તે વર્ષે ૪૭૦ અને ૧૮ વર્ષ પૂરેપૂરાં પસાર થઈ ગયા હતાં. હવે આ પ્રમાણે ચત્રગુપ્તના રાજ્યારોહણનું પ્રથમ વર્ષ, કે જે મહાવીર પછી ૨૧૧ વર્ષે આવે છે, તે ૬૦ સં. પૂર્વે ૩૨૬ ના નવેમ્બરના કોર્ફક દિવસની અને ૬૦ સં. પૂર્વે ૩૨૫ ના આક્ટોમ્બર-નવેમ્બરના અત્તની વચ્ચે આવે. જૈનોના અહેવાલ પ્રમાણેની આ તારીખ, અસોકના શિલાલિખો પ્રમાણેની તવારીખ અને તેની ગ્રીષ્મના રાજાઓની સમકાલીનતા સાથે બરાબર મળતી આવે છે. "

૧૧ ' માણસ સામ્રાજ્ય ' નામના મે. સ્કારા લેક્ષમાં નહાપાળની તારીખની ચર્ચા કરી છે. [અને તે સમય ૧૩૬-૧૩ B. C છે]

૧૨ આ શકોનો પરાજય સાતકર્ણી વીજાપ કર્યા હતા . . . જ્યોતિષિઓનો વિક્રમાદિત્ય તે વીજો સાતકર્ણી છે અને જૈનોનો વિક્રમ તે પુત્રમારી છે

૧૩ જેમ તવારીખને ડઝેનની તવારીખ કહી શકાય તે પાલક ના રાજ્યથી શરૂ થઈ નહાપાળ સુધી આવે છે અને પછી માલવ સવત્તી પ્રારંભ થાય છે

૧૪ ગુપ્તે, અસોકના અધિકૃત ઉપર સ્કારો લેખ. J.A.S.B બાગલ્ડ-જુએન ૧૯૧૩

હેમચંદ્રાચાર્યની મૂલ.

હેમચંદ્રાચાર્યે પ્રયોતીના જે ૬૦ વર્ષ મુકી દીધા છે, તે તેમની એક મ્હોટી મુશ છે અને તે સ્પષ્ટ જ છે. કારણ કે જો આપણે શુભઆતના તે ૬૦ વર્ષ મુકી દઈએ તો, ચત્રગુપ્ત, સુલમદ્ર, સુમદ્ર અને મદ્રવાહુની સમકાલીનતામાં વિરોધ આવે છે પ્રો. જેકોબીએ મધ્યકાલીન હેમચંદ્રના આ માગ્યાદુષ્ટા અહેવાલને પોતાની ગણનામાં પાયા તરીકે લીધા છે. અને આમ કરવામાં, પાલી-લેક્ષોમાં આપેલા અસોકના અભિષેકના મૂલમરેલા સમયની અને તેના ઉપર બાંધેલી નિર્વાણકાલ-ગણનાની તેમના ઉપર થયેલ અસર થઈ છે.

પાલી લેક્ષોમાં આપેલા સમય ઉપર બાંધેલી ગણતરી, ૨ જ લેક્ષોમાં લક્ષ્યાયલી અસોકના અભિષેકની તારીખ અને પૂર્વપરપરાથી ચાલતી આવેલી તવારીખ વચ્ચે લગભગ ૬૦ વર્ષનો તફાવત મુક્યો છે. હેમચંદ્રાચાર્યની મૂલથી જૈન તવારીખમાં પણ ૬૦ વર્ષ છોટી દેવામાં આવેલા હોવાથી, આ ગણના-એકતાપ, કાલગણના વિષે સંકુચિત દ્રષ્ટિ રાણનારા આધુનિક અભિપ્રાયને મજબુત બનાવ્યો છે. પરંતુ પ્રયોતીનો પુત્ર પાલક, કે જે અજાત-સશ્ત્રુનો સમકાલીન હતો, તે મહાવીર નિર્વાણ પછીના દિવસે અથવા વર્ષે ગાદિયે બેઠો, એ માનવુ સ્વામાવિક અને સ-પ્રમાણ છે. હેમચંદ્રાચાર્યના કયન પ્રમાણે, મહાવીર-નિર્વાણ પછી ઘુરત જ નદવેશનું રાજ્ય શરૂ થયું એ માનવુ તદ્દન મૂલમરેલ અને અપ્રમાણિક છે.

ઉપસંહાર.

ઉપર જે ઉદાહરણ કરવામાં આવ્યા છે તેનો સારાર્થ એ નિકળે છે કે-પુરાણોની ગણના પ્રમાણે બુદ્ધના નિર્વાણનું સત્વરસ ૬૦ સં. પૂર્વે ૫૪૫ મુ. વર્ષ આવે છે આ તારીખને જૈન કાલગણના પણ પુષ્ટિ આપે છે, અને વૈદ્ધમ્મય દીપ-વશની અદરથી પણ એવી હકીકત મળી આવે છે કે જે આ નિર્ણયને મજબુત કરે છે અને આ વાત ઉપરથી એ સિદ્ધ થાય છે કે વૈદ્ધમ્મિઓનો, તેમના ધર્મસંસ્થાપકના નિર્વાણ-સમય માટે વર્તમાનમાં જે અભિપ્રાય છે, તે યથાર્થ હશે. વીજો સારાર્થ એ નિકળે છે, કે મહાવીરના નિર્વાણ

સમય વિષે જૈનપ્રધાના આપેલા અંદેશજને પુતાળામાંથી ટેકો મળે છે.^{૧૮}

વાસ્તવિક રીતે સંલોનના પાત્રી—હેલોને પુરાણની ગણના સાથે ત્રિભન્ધ. તે તેને પૂર્ણ કરે છે અને પ્રુષ્ઠિ આપે છે તથા પોને તેનાથી પૂર્ણ થાય છે અને પ્રુષ્ઠિ મેલે છે. નંદોના વિષયનો ઘોટાલો, કે જેના પરિણામે, સેકાઓ સુધી વીજા ઘોટાલો ઉદ્ભવ્યા હતા તે દ્રશ્યથી જૈન કાલગણનાની દરી કિંમત જણાઈ આવે છે.^{૧૯}

૧૫ ડી, હોર્મલે જૈનકાલગણનામાંનો ઘણો ઘોટાલો દૂર કર્યો છે. [જુઓ, ૧૬૪૫-૧૬૪૬, પુ. ૨૦, પૃષ્ઠ ૧૬૦]

૧૬ સમ્રાટ અને મુદ્દતી વિષે જે તારીખ આપેલી છે તે ખૂબ મોટી છે. વરી પ્રોનો સમ્રાટની તારીખ વિષે ૧૬ મત નથી, [૬.૫ ડ ૧૧ પૃ. ૧૪૬] તેઓ ૨૦૧ A.M.J અને ૨૧૫ A.M.J ની વચ્ચે હતા. [તેજ ટેકાને જુઓ.] ૧૭૧૨ ચત્રગુર્વતી તારીખ ૨૦૧ થી ૨૪૩ A.M.J. ના વર્ષો ગણી લીધા છે. પુરાણના આશરે કરલી ગણના પ્રમાણે ૨૧૫ A.M.J ના વર્ષે તેની સરી તારીખ [૬. સ. પૂર્વે ૨૨૦, ૫૫૫+૨૨૦ =] ૨૬૫ A.M.J છે. [જુએ, ઈ.સી.કલ, ()] ગેમર ઝેનો, મુદ્દતી કે, જે સમ્રાટના સમકાલીન હતા, તેમની ચિત્રમતના વર્ષ ૧૨૬૫ A.M.J. વર્ષને મળે છે. પણ અત્યારે ઝેનો પાલકના શરૂઆતના ૫૦ અથવા વધારે—સરી રીતે ૫૪—વર્ષો [જુઓ, વિભાગ ૩૪, ૬.] ઘડાવે છે. તેથી મુદ્દતીની સરી તારીખ ૨૬૫+૫૦+૪ = ૨૧૯ A.M.J છે. આ તેમના સ્વર્ગવાસની તારીખ છે આ પ્રમાણે મુદ્દતી, સમ્રાટના માધીનશીન થયા પછી ચાર વર્ષે દેવલોક-પાયા.

ચત્રગુર્વ અને મુદ્દતીના નિર્વાણની વચ્ચે ક્ષેતાવર ઝેનો ૧૦૯ અથવા ૧૧૦ વર્ષ મુક છે. [ડૉ. એકીનીની પરી ગ્રેટરની પ્રસ્તાવના પૃ. ૫.] આ ફકીગત દુરાળોક કથન સાથે મળતી આવે છે. [જુઓ ૧૯૧૯૯ સી પ્રકરણ ૨૪—૨૫] ૨૪ વર્ષ ચત્રગુર્વ, ૨૫ વર્ષ ચિંદુસાર, ૪૦ વર્ષ અશોક, ૮ વર્ષ કુનાલ, ૮ વર્ષ રાવ, ૪ સમ્રાટના રાજ્યના = ૧૬૯ વર્ષ ૧૦૯ સરહામે ૧૯૬ વર્ષ સી. ૧. હેમ-વદ અને વીજાઓના હેલો પ્રમાણે જૈન રાજવરપરા નીચે પ્રમાણે છે.

- A. મૈનિક [ચિંદીસાર]
- B. કુનાલ [અજાનશ્ચુ] [અતીમાં પાલક]
- C. વડાપી.
- D. નંદ [નંદ. વર્ષન] અને, વીજા નંદા.
- E. ચત્રગુર્વ.
- F. ચિંદુસાર. H. [કુનાલ]
- G. અશોકની. I. સમ્રાટ.

આ ત્રણ સંપ્રદાયોના કથનોમાં જો કે કેટલોક પરસ્પર વિરોધાભાસ દેખાય છે પરંતુ માધાર્ય એક જ છે. આ ત્રણે આદિક—નાદિક પંથો સરેલરા ઇતિહાસને અનુસર્યા છે, અને તેનું રક્ષણ કર્યું છે. બે હજાર વર્ષ જેટલા લાંબા સમયમાં જે કોઈ મૂલ્ય પેસી ગઈ છે તે આવી રીતે થોડી મેટનને અને થોડું ધ્યાન આપે દૂર કરી શકાય પવી છે.

• •

[આ હેલના સૂઝ અલોકનથી સમજાશે કે શ્રીયુત જાયસવાલે જૈન દત્તકયા અને તેની પુતાળી માયાઓની શૌદ્ધ અને હિંદુપુરાણ ગ્રંથોની સાથે કેવી ઉત્તમ રીતે સંબંધ ઠરાવી છે, અને આજ લગમગ બે હજાર વર્ષ જેટલા દીર્ઘકાલ સુધી, ભારતના ઇતિહાસ યુગના આદિ-મૂળ હેલોમાં, જે પરસ્પર વિરોધ અને અસંગતતા પુરાતત્ત્વજ્ઞોને જળાતી હતી તેનો કેવી ઉત્તમ પદ્ધતિ નિકાલ આપ્યો છે. અલગત શ્રીયુત જાયસવાલના વિચારોનો ઘરસિ સ્વીકાર હજી સુધી વિદ્વાનો તરફથી થયો ન હોય, કે તેમાં કોઈ કોઈ અંશે મતભેદ હોય તો તે સ્વાભાવિક છે, પરંતુ તેમણે ભારતના પ્રાચીન ઇતિહાસના નિરીક્ષણનું એક શુદ્ધ જ દૃષ્ટિવિન્દુ વિચારક જગત્ આગલું ઉપરિચિત કરી, ઇતિહાસના ગુચાપેલા કોકઠાનું નવી જ પદ્ધતિ પ્રયત્ન કરવાનું એક અત્યુત્તમ સાધન દેસાઈ આપ્યું છે, તેમાં કોઈને સંશય નથી. અને જૈન-કાલગણના તથા મહાવીર—નિર્વાણ સમયના વિષયના તેમના વિચારો મૂળે તે ઘણે અંશે મદદ જણાય છે. તે વળ જો કોઈ વિદ્વાનના મનમાં આ સંબંધી મતમિત્રતા જળાતી હોય, તો તેણે અવશ્ય આવી રીતે જાહેર રૂઢાપોહ કરીને, આપણા શ્રમણ મગધાન શ્રીમહાવીરદેવના નિર્વાણ સમયનો સદાને માટે નિર્ણય કરી માનવો જોઈએ. બ્યાસુધી આ રીતે, કોઈ પ્રમાણિકપણે શ્રીયુત જાયસવાલના નિર્ણયમાં શંકા ઉપરિચિત ન કરી શકે અને આ વિચારમાં સપ્રમાણ મતભેદ ન જણાવી શકે ત્યાં સુધી હવે

आपणे ए ज निर्णयने कबूल करवो जोईए अने वह पत्नी वीर-निर्वाण सवत् ए ज गणतरीए लखवानो व्य-हार अने प्रचार कावो जोईए. आवता नश वर्षना छ पाटा जैन पचागोमा वीर सवत् २४४५ ना बदले २४६३ लखवां जोईए आशा छे के जैन पचाग प्रकाशको अने जैन पत्र सपादक आ बाबत उपर लक्ष्य आपशे

परिशिष्ट

[उपर जे लखवामा आव्यु छ, ते श्रवणात्मा जणाव्या प्रमाणे श्रीयुत जायसवालना एक ह्येजी विस्तृत निबधना धोडाक भागना भाषांतररूपे छे. ए निबधनां तेमणे जन काळगणना सबधी विस्तृत विवेचन करेछ छ, अने ते आ लख ध्यानपूर्वक वाची जवायी. तेनो काईक ख्याल आवी जश. आ ह्येजी निबध लख्या पहिला ४-५ वर्ष अगाड ध्यारे श्रीयुत जायसवाल पाटलीपुत्र नामना हिन्दी पत्रना सपादक ह्ता त्यारे ते पत्रमां पण तेमणे एक न्हानो सरसो लख जैन निर्वाण सवत् उपर हिन्दी मां लख्यो ह्ता. ए लेख पण आ विषयने ज लगतो छे अने सक्षिप्तमा लखायेलो होई सहज समजवा भेवो छ तेथी ते पण, तेमनी ज भाषामां जन आषी इत्मा आव छे]

जैन निर्वाण-संवत्

जैनो के यहा काई २५०० वर्षकी सवत्-गणना का हिसाब हिन्दुओभर में सबसे अगुआ है। उस से विदित होता है कि पुराने समयमें ऐतिहासिक परिपाटी की वर्षगणना यहां थी। और जगह छुट और नष्ट हो गई, केवल जैनोम बच रही। जैनो की गणना के आधार पर हमने पौराणिक और ऐतिहासिक बहुत सी घटनाओं को जो बुद्ध और महावीर के समय से इधर की है सम यवद्ध किया और देखा कि उन का ठीक मिलान जानी हुई गणना से मिल जाता है। कई एक ऐतिहासिक बातों का पता जैनो क ऐतिहासिक लेख पत्रावलियों में ही मिलता है। जैसे नहुषान का गुजरात में राज्य करना उस क सिक्को और शिला लेखों से सिद्ध है। इस का जिक्र पुराणों में नहीं है। पर एक पट्टावली की गायो . छोड़ देने से उत्पन्न हुआ माध्यम दता है। बौद्ध लोग

में जिसमें महावीरस्वामी और विक्रमसवत् के बीच का अन्तर दिया हुआ है नहुषान का नाम हमने पाया। वह नहुषान ' के रूप में है। जैनो की पुरानी गणना में जो असम्बद्धता योरपीय विद्वानों द्वारा समझी जाती थी वह हमने देखा कि वस्तुतः नहीं है।

महावीर क निर्वाण और गर्दभिल्ल तक ४३० वर्षका अन्तर पुरानी गाथा में कहा हुआ है जिस दिग्बर आर खेतावर दोनों दलजाले मानते हैं। यह याद रखने की बात है कि बुद्ध और महावीर दोनों एक ही समय में हुए। बौद्धों के सूत्रों में तथागत का निर्णय नातपुत्र क पास जाना लिखा है। और यह भी लिखा है कि जब वे शाक्यभूमि की ओर जा रहे थे तब देखा कि पावा में नातपुत्र का शरीर-रान्त हो गया ह। जैनो के 'सरस्वती गच्छ' की पट्टावली में विक्रमसवत् और विक्रमजन्म में १८ वर्ष का अन्तर माना है। यथा—“वीरात् ४९२ विक्रम जन्मान्तर वर्ष २२, राग्यान्त वर्ष ४” विक्रम विषय की गाथा की भी यही ध्वनि है कि वह १७ वें या १८ वें वर्ष में सिंहासन पर बैठे। इस से सिद्ध है कि ४७० वर्ष जो जैन-निर्वाण और गर्दभिल्ल राजा के राग्यान्त तक माने जाते हैं, वे विक्रम के अन्त तक हुए—(४९२=२२+४७०) - अत विक्रमजन्म (४७० म० नि०) में १८ और जोड़ने से निर्वाण का वर्ष विक्रमीय सवत् की गणना में निकलेगा अर्थात् (४७०+१८) ४८८ वर्ष विक्रम सवत् से पूर्व अर्हन्त महावीर का निर्वाण हुआ। और विक्रम सवत् के अब तक १९७१ वर्ष बीत गए हैं, अत ४८८ नि० ५० १९७१=२४५९ वर्ष आजसे पहले जैन-निर्वाण हुआ। पर “दिग्बर जैन” तथा अन्य जैन पत्रों पर नि० स० २४४१ देस पढ़ता है। इस का समाधान यदि कोई जन सज्जन करे तो अनुग्रह होगा। १८ वर्ष का फर्क गर्दभिल्ल और विक्रम सवत् के बीच गणना का फर्क गर्दभिल्ल और विक्रम सवत् के बीच गणना में छोड़ देने से उत्पन्न हुआ माध्यम दता है। बौद्ध लोग

ધ્યાયના બે શિષ્યો બાદશાહી નોકરોને સાથે લઈ આમર શહેરમાં જાતે તે વાતનો દહેરો પીટતા પાંચે છે; હત્યા-દિ દર્યો વહુ સુન્દરીતે ચિત્રેલાં છે. ચિત્રના એક માગમાં વિજયસેનસૂરિની વ્યાખ્યાનસભા પણ ચિત્રેલી છે અને તેમાં વિવેકહર્ષ ગણી જાતે એ પરમાન પત્ર લઈ આચાર્યની સેવામાં સમર્પિત કરી રહ્યાનો દેખાવ પણ કાઢેલો છે.

આ ચિત્રમાં આલેસેલી આકૃતિયો વહુ સ્પષ્ટ અને સ્પષ્ટ છે. દરેક પ્રધાન આકૃતિ ઉપર તેણું નામ પણ કાઢી શાહીથી લખેલું છે. ચિત્રની મહત્તા ઘટલા ઉપરથી જ સમજી શકાશે કે તે સુદ બાદશાહી ચિત્રકારની પીછીથી આલેસાયું છે. એ શાવત એ પત્રમાં નીચે પ્રમાણે સાસ

ઉલ્લેખ કરવામાં આવ્યો છે કે—‘ઉસ્તાદ સાલીવાહન બાદશાહી ચિત્રકાર છે. તેણે તે સમયે જોયો તેવો જ આમાં માવ ‘રાખ્યો છે.’ આથી આ સચિત્ર-પત્રની પૈતિ-હાસિક મહત્તા કેટલી વિશેષ છે તે દરેક વિદ્વાન્ સમજી શકે તેમ છે.

પત્રની માધા હિન્દી-મિશ્રિત ગુજરાતી છે અને તે કાના-માત્રના હિસાબ વગર જેમ વ્યાપારી લોકો લખે છે તેવી રીતે લખાણી છે. આ નીચે પ્રથમ પત્રની મૂલ નકલ-અસલની માધામાં જ—આપી છે અને તેની નીચે લાઈનવાર હાલની માધા પ્રમાણે શુદ્ધ-સંસ્કારી રૂપાંતર આપ્યું છે.

(મૂલ નકલ)

- (૧) સ્વાસ્તાશ્રીચંતામેળાપારસ્વજળામણામો શ્રીદેવકાપાટળામાહાનગરસૂમયાને પૂજારાંદા માહાભોતમો—
- (૨) અર્તમચારીતપાત્રસૂરામણા કૂમરંબ્રદકારનમોમળા કલકાલગઠતમોઅવતાર સરસ્વતી કંઠઆમરંગા—
- (૩) ચંદ્રવદનદાંન એકવદ્ અસંમના ટાળણાહાર દુર્બદ્ દુર્મ પરુપક ત્રગા તતવના જાણા ચાર કસાઅના.
- (૪) જીપક પંચમાહાશરતના પાલણાહાર છકાઅના પીહર સાતમઅના ટાળણાહાર આઠ મદ્દ સર્ધાનકના જીપક.
- (૫) નવવાઙ્મસદ્ગરમચરજાનાપાલણાહાર દસવદ્દસરમણાદુરમપત્રપાલક અગરઅંગવાર રૂપાંગના જાણા.
- (૬) તેર કાઠીઅના જીપક ચઠ્ઠદમેદ જીવના પ્રોપક પનર પરમાધાર્મના બેદના જાણ સાલકલાસં—
- (૭) પુરણ ચંદ્રવદન સતરમેદ સમ્યમના પ્રાપિપાલક અઢાર સહસ સિલંગ રથના
- (૮) ધારકઃ ડગણિસ ન્યતધરમના પરુપક વિસ અસમાધીયાને રહિતઃ એકવિસ સબલ—
- (૯) ના ધારકઃ વાર્ષીસ પરીસ્ટાના જીપકઃ તેવીસ સુગઢાઅગ અબેનના જાણ ચૈવિ—
- (૧૦) સ તિપંકરની આગમ્યના પ્રાપિપાલકઃ પંચવિસ માવનાના માવકઃ છવિસ—
- (૧૧) દસાકલપવિષહારના જાણ સતાવિસ સાધગુણના ઉપદેસક અઠાવિસ આયા—
- (૧૨) રકલપના જાણ ડગણતિસ પપસુત પ્રસંગના ટાળણહારઃ તિસ મોહની સ્વાતીક—
- (૧૩) ના જીપક ફકતિસ સિધગુણના જાણઃ ચત્તિસજોગ સમ્રહના પ્રાપિપાલક તે—
- (૧૪) તિસ ગુરની આસ્યતનાના વારણહારઃ ચત્તિસ અતીસેના જાણઃ પતિસ શ્રીવિત—
- (૧૫) રાગવળીના ગુણના કયકઃ છત્તિસ છતિસી સુરગુણે ચોરઅમાનઃ વાદોગુર—
- (૧૬) ઢ ગોવીદ વાદીગોષુમધરટ મરિદતવાદી મરટ સરસિલિલવધપ્રસાદઃ દલી—
- (૧૭) ત અનેક દુરવાદવાદ સમુદ્રની પરિ ગંમીરઃ મેરપરવતિ પરી ધિરઃ પ્રાપત સં—
- (૧૮) સાર સમુદ્ર તિરઃ માયમહી વિહારણતિરઃ શ્રીજિનસાસન સહકારકીર
- (૧૯) કરમસત્ત વિહારણવારઃ વાણિ મીઠિ હંમ્રતલીરઃ ધરમકરતે ન કર ધોરઃ નીર—
- (૨૦) મલચિત જીમ ગગાનીરઃ ડગલ અસસાગર હંડીરઃ મજળ મવમિરઃ સોમા—
- (૨૧) મગુણે અમિનવૈ ગુરહીર જીણ પ્રતીબોધ્ય અન્નર સાહ વઢવીર દી—
- (૨૨) ન કરણીપર અધીક પ્રતાપ તેજ સુવિહત જણસુ ધરે દેજ વઢ વૈરાગી અતી—

- (૨૩) સોમાગી કરણનિ પરી ત્યાગી મુગતિના રામી શ્રીપતિસાહ પ્રબોધક અવેહ જી—
(૨૪) ય પ્રતિવેહ કાલિકાલ ગોતીઆ અવતાર તપગછ સાગાર હાર તપતેજ દીવા—
(૨૫) કર ગદ્યપ્રાપ્તિ ગદ્યાધીરાજ સરવડપમાઓઃ મટારિક પુરિદર શ્રી શ્રી શ્રી શ્રી શ્રી—
(૨૬) શ્રી શ્રી શ્રી શ્રી શ્રી શ્રી શ્રી શ્રી શ્રી શ્રી શ્રી શ્રી શ્રી વિજયસેન સુસ્તુરિશ્વર સ—
(૨૭) પરિવાર ચરણ કમલાન શ્રી આગારકોટાડુ સદા આદેસકારી ચરણસેવક દાસન—
(૨૮) દાસ પાદરણ સમાન સદાસેવકા સાઃ વિમલદાસ સાઃ બંદીદાસ સાઃ લાલચંદ દુરગદા—
(૨૯) સઃ સંઃ ચંદુખેવતી સાઃ નનજીઃ સાઃ ચંદ્રસેનઃ સંઃ પ્રતાપસીઃ સાંઃ નાથુ મીયાદીદાસ સાઃ પુનૂમના
(૩૦) સાઃ સમીદાસ દરગહમલઃ સાઃ પેમન સાઃ ટોઢરઃ સઃ વીરદાસ સાઃ કચ્હુ નટ્ટ સંઃ ધરમદાસ મટકાઃ
સંઃ નેતઠીઃ સાઃ લઢાઃ સાઃ મોજુ સાઃ સા—
(૩૧) ગર સંઃ કચરજી વરચમાનઃ સાઃ થેરા રાઈ સીય સાઃ કચરા ધરમસી સાઃ મોકલ સાઃ મેયા
(૩૨) સાઃ કટાક પિરધીમલ સાઃ બોહીષ સાઃ ગોરા સાઃ વષા ફુહાઢ સઃ દેવકરણ સાઃ પદમસીઃ સાઃ મા—
(૩૩) નીકચંદ સા તીલોકસી જૈતસીઃ સઃ ધરમદાસઃ સાઃ તારાચંદ સાઃ પનાવીયાકા સાઃ રાસાઃ સાઃ પેઢ—
(૩૪) સી સાઃ નેતસી સા મુલાઃ સાઃ હંગરઃ સંઃ રીષમદાસ સા ષાડ સા પેમન સાઃ લીયમીદાસ સાઃ મીર-
પાલ સાઃ મીમા સાઃ મોજુરાહ
(૩૫) સાઃ ભાક્તારણઃ સાઃ પતાપસારિઃ સાઃ તારૂપસારી સાઃ દેવજીઃ સંનીઃ રીષમદાસ સોની વિમલદાસઃ
(૩૬) સાઃ અમીચંદ સાઃ દેવકરણ સાઃ દેવજી મીમજી સાઃ જીયા સંઃ ડડા કમાઃ સંઃ સીધુ સ સયલ
(૩૭) સંઃ સમીદાસ સંઃ લીલાપતી સંઃ કહઃ સઃ ચીરજીઃ સઃ કપુરા સાદુલ સાઃ કળ્યાણ સુગંધીઃ
દરગહ સુગંધીઃ
(૩૮) સાઃ કચરા મુઠ્ઠેત સાઃ પદા મુઠ્ઠેત સાઃ જેસીય મુઠ્ઠેત સાઃ ખાદૂ સાઃ ર્ફસર સાઃ માઢ સાઃ ગોવલ
(૩૯) સાઃ સોમસીઃ સાઃ પોમઠી સાઃ વરચમાન સાઃ રાઢ સાઃ ઘનરાજ સંઃ નીહાહુ સાઃ રૂઢાઃ સાઃ મો-
વાલ સોની
(૪૦) સક્તન સાઃ રતના સાઃ સંસાક સાઃ વાધુ સાઃ જાંવઢ સાઃ બગર વૈદ સાઃ ગમ્મ સાઃ મૂ હગર સાઃ છુ—
(૪૧) રતાળાઃ સાઃ એકરણ આદેસકારી દવસ ચંદળાઃ સીકાહ સા કાઘઃ રાઘવની અવધાર જોઃ સમસ—
(૪૨) ા સંધની દાદસ વદળા અવધારજોઃ ર્ફ શ્રી પુઝીજીને પ્રસાદ ફુલલ પેમ છે પુઝીજીના—
(૪૩) કુલલ વેમના સદા સમાચાર લીયવાજી ત સેવકને પરમ સંતોષ ઉપજેઃ અપર ર્ફ શ્રી—
(૪૪) પઞ્ચસળ પ્રથ નીભાવાદ પળે હુઆ છે અમારી દીન ૧૨ પઞ્ચસળની વિશેષ સાવદેસઃ પુરવદેસઃ
(૪૫) તથા ડીલમંઢલઃ મેવાતમંઢલ રાણધર્મેશ્વર દેસાઃ બીજા હી ઘળે દેસી અમારી વરતી છે તેઃ સંતોષ
માનજો
(૪૬) શ્રી સતરખેદ પુજા ૧૫ શ્રી અહીર પાતીસાહ તથત નેઢ પુઠે યે અપુરવ કરણી હુરે છે મ—
(૪૭) ગવનજીને પ્રસાદ શ્રીતપાગચ્છની ડનિત વીસેષ હુરે છે શ્રીઃ પાતિસાહજી ફુરમાન ૨ કરો દ—
(૪૮) નાઃ તે શ્રી પઞ્ચસળ આવ શ્રીજીવઃ રમદાસજી આગે હુરે શુદરણ હુકમ દીઆ ઢંઢોરા દીવાય—
(૪૯) પારીઢર વાર સારે દીના ૧૨ અમારી વરતાઈઃ બીજા વેલ શ્રીજી હુકમ દીના તીળવેલા દરીયન—
(૫૦) જુઢ્યા શ્રીજી ફરોષે બેઠા થા રાજા રમદાસજી આગે થા તીળ પાછે ફુરમાન લીયઃ પંઃ વિવેકર્ફ [હર્ષ]
(૫૧) તિળ પાછેઃ પંઃ ડઉરે (હર્ષ) થાઃ પછે અમારી આસરી વિનલી કી શ્રીપાતિસાહજી હુકમ દીના
(૫૨) સતકાલીઃ તીળવેલાઃ બીસા દરીયના જુઢુ તીળ સમના યે લેય માહ સરખ લીય છે

- (૫૧) ડસતા સાલીવહણ પાતિસાહી ચિત્રકાર છે તેજ તોજ સમે દેવ છે-ઈંસાહી ઈંજ વિ-
- (૫૪) ત્ર માહે માવ રાવ છે સુ લેવ દેવ મીછજોઃ ડસતા સાલીવહણ વંદના વિનવી છે પ્રછ જો
- (૫૫) ફેંદ શ્રીઃ પડસણ શ્રીસતર મેદ પુજા ૧૫ સનાયદીન ૬૧ તપ માસવમણ ૧૧ માસવમ-
- (૫૬) જ ૧! પાષવમણ તથા અઠાઈ તથા વડવસમ દસમ અઠમ બીજાહી તપ ઘળા હુઆ છે
- (૫૭) હમઠરી પોસહ વ ૧૦૧ સહમી વછજ સાઃ વદીદ્રાસકેઃ ચૈમાસા પાધી અવઠમી સદી સહ-
- (૫૮) મીવઠજ ચાલ છે પુજીજીકા પ્રસાદયો અપર ફેંદ શ્રી જિન પ્રાસાદ નવા સઃ ચડુ કારય છે
- (૫૯) પ્રતીમા પીળ માહાસુદર હુરે છે ઘણિડ પીળા પ્રતીસ્ટના ઘળાઈ છે શ્રીપુજીજી આવે ત્વા
- (૬૦) શ્રીઆચારિજી પધારતે જીણસસળીના ઘળા ડછાઈ હોઈ સાર સયના મનોરય પૈહૈ
- (૬૧) પુજીજી કિપાકર પધારજોઃ મહોં ડપાધ્યાય શ્રીસોમવિજે પીળ નેઢા છે પુજી જલદથી લધી છે વિ-
- (૬૨) ચારી મલા જાળ તમ લીવજો જીમ પુજી લીવ તિમ પરમાણ લેવ પ્રસાદ વૈગા મકુલજો
- (૬૩) ફમરમાવાદ. વઃ શ્રીઃ માહાનવ ઠળ ૩ છે દોલઃ રી જેઠઠળ ૨ છે ધારોઃગળસરતનઈ ઠળ ૨ વહ્લી ચૈ-
- (૬૪) માસઃ પેરોજાવાદ ગળો ધીમાનવ રહયા વિજા મતકા આચારિજ રહમાટઃ હીવક તૈ તે ઘાલી
- (૬૫) પઢઃ હીવૈ ચૈમાસ પેરોજાવાદકો ઘેતની ચીસા કરજોઃ પહલે કેનહી સાત પરહયા તૈ સરવ મઢરાથ
- (૬૬) હીવૈ મીપુ ઘેત ઘાલી ન રહ હીમ કરજોઃ સાવીકાની વદના વિનવિ છે તે મીછજો સહી ઘાળજો.
- (૬૭) સઃ વિમલાદે ઘાઃ સાહીજદે ઘાઃ મીરય ઘાઃ જાદય [પારમાસહમની વંદના અવધારજો
- (૬૮) ઘાઈ કડુર દે ઘાઃ લાછ ઘાઃ મોસારા પયાદી ઘાઃ જીવઢ દે ૧સાઃ તારાચદ સાઃ વેતાવેદ સાઃ મોહીલ
- (૬૯) મળીક દે ઘાઃ કવર ઘાઃ સીરદે ઘાઃ મગત ૧ સાઃ હીડુ સાઃ કાસી સાઃ વેળીશસ
- (૭૦) ઘાલાદે ઘહુઃ મનોરયદે ઘાઃ ગારવેદ ઘાઃ રાજ ૧ સાઃ સાગર સાઃ મૈક સાઃ મળકચદ
- (૭૧) ઘહુ કેસરદે ઘાઃ હોહી -ઘાઃ ગરદે ૧ સાઃ મોવાલ સાઃ ઢોહા સાઃ ઢગર
- (૭૨) પુજીજી પ્રતિસ્ટા ડપરી વૈમ પધારજો ફેંદના સંઘના ડતકઢા, ઘળી છે દેકવાર હુમાર ચરળ
- (૭૩) દેવ સમસત સઘ સ્તોથ પામઃ મહીતર મહોંડપાધ્યઢ આદેષ દેવો જીળ સાસળની સો-
- (૭૪) મા હોઈ સીમ કરજો ઘળ સ્ય લીધીઅ પુજીજી ફેંદની પરચીતા હુમન છે તે મીછજો
- (૭૫) સવડ ૧૬૬૭ મીતી કાર્તીસુદી ૨ સુમદીને સોમવારે સુમ મવડઃ લીઃ સીકહસા સુત.

[' ડપરના લલાળાનું હાલની ખાપામાં શુદ્ધ સંસ્કારી રૂપાંતર]

- (૧) સ્વસ્તિ શ્રીચિન્તામણિપાર્શ્વજિને પ્રણમ્ય શ્રી દેવપાટળ મહાનગરે નુમસ્થાને, પૂચ્ય આરામ્ય મહારામા,
- (૨) ડત્તમ ચારિત્ર પાત્રશિરોમાણિ, -કુમતાન્વકાર મમોમાણિ, કલિકાલ ગીતમાવતાર, સરસ્વતીકંઢામરળ,
- (૩) ચડવિધ્યાનિધાન, દક વિષ અસમમના ઢાલળહાર, દિવિષ ધર્મમલ્લક, જળ તત્ત્વના જ્ઞાણ, ચાર કષાયના-
- (૪) જીપક, પચમહાવતના પાલળહાર, છકાયના પિતા, સાત મયના ઢાલળહાર, આઠ મદસ્થાનકના જીપક,
- (૫) નવવાડ નિશુદ્ધ વ્રજચર્યના પાલળહાર, દસવિષ શ્રમળધર્મ પ્રતિપાલક, અપ્યાર અગ ચાર ડપાંગના જાળ,
- (૬) ઠેર કાઠિયાના જીપક, ચઢદ મદ જીવના પ્રલ્પક, પરર પરમાધાર્મિકના ઘેદના જાળ, સોલકલા-

- (૩) સંપૂર્ણ ચન્દ્રવદન, સત્તરભેદ સયમના પ્રતિપાલક અઢાર સહસ્ત્ર સીંગીઅરયના—
 (૮) ધારક, ઓગળીસ જ્ઞાતાધર્મ (કયા) ના પ્રભુપક, ધીસ અસમાધિ સ્થાનક રહિત, એકવીસ સવલ—
 (૯) [દોષ] નિવારક, વાગીસ પરીષદના ઝીપક, તેવીસ સુયગદાંગના અધ્યયનના જાળ, ચીંટી—
 (૧૦) ૩૩ તીર્થંકરની આજ્ઞાના પ્રતિપાલક, પંચગીસ માવનાના માલુક, છઠ્ઠીસ—
 (૧૧) દશાકલ્પ—અધ્યવહાર [અધ્યયન] ના જાળ, સનારીસ સાધુગુણના ઉપદેશક, અઠાવીસ આવા—
 (૧૨) પ્રકલ્પના જાળ, ઓગળીસ પાપસુત્રપ્રસંગના ટાલગદાર, તીસ મોહનીયસ્થાનક—
 (૧૩) મા ઝીપક, એકત્રીસ સિદ્ધગુણના જાળ, વગીસ યોગસંયદના પ્રતિપાલક, તે—
 (૧૪) ત્રીસ શુભની આજ્ઞાતનાના ધારણહાર, ચઠ્ઠીસ અતિશયના જાળ, પાત્રીસ શ્રીધીત—
 (૧૫) રાગનાગીના ગુણના કથક, છત્રીસ છત્રીસો સૂરિગુણે વિરાજમાન, વાદાંગક—
 (૧૬) હનોચિન્દ, શાદીમોખુમવરદ, મુદિતશાદીમવરદ, સરસ્વતી લઘ્વ પ્રસાદ, દલિ—
 (૧૭) તે અનેક દુષ્વાદી વાદ, સમુદ્રની પેરે ગમીર, મંદ પર્વતની પેરે ધીર, પ્રાસસ—
 (૧૮) સાર સમુદ્રતીર, માયામહી વિદારણસોર શ્રીજિનશાસન સહકારકોર,
 (૧૯) કર્મસત્તુવિદારણધીર, ધાળી મોટી અમૃતશીર, ધર્મકરતા ન કરે ધીર, ત્રિ—
 (૨૦) મંદ ચિત્ત જિમ મંગાનીર, ઉચ્ચલ યજ્ઞ સાગર હઠોર, મંજગ મવધીર, શીમા—
 (૨૧) ગ્ય ગુણે અમિનગુહીર, જેને પ્રતિષેધ્યો અકલર શાહ બલધીર, દિ—
 (૨૨) નકરની પેરે અવિક પ્રનાપ તેજ, સુચિહિન જનથી ધરે હેચ, વહ વેરામી, અસિ—
 (૨૩) સૌમામી, કર્ણની પેરે ત્યામી, મુક્તિના રામી, શ્રીવાદશાહ પ્રવોષક, અવોષજી—
 (૨૪) વ પ્રતિષેધક, કલિકાલ ગૌતમાવનાર, તપાગચ્છ શ્રુગારહાર, તપતેજ દિવા—
 (૨૫) કર, ગચ્છાધિપતિ, ગચ્છાધિરાજ, સર્વોપમાયોગ્ય, મટારક પુરંદર (પાંચ શ્રી)
 (૨૬) [૧૬ શ્રી] વિજયસેનસૂરિ સૂરિધર સ—
 (૨૭) પરિવાર ચરણકમલાન્ શ્રી આગરાકોટના સદા આદેશકારી, ચરણસેવક, દાસાતુ—
 (૨૮) દાસ, પાયરજસમાન, સદા સેવક, સા. વિમલદાસ, સા. બંદીદાસ, સા. લાલચંદ દુગઢ,
 (૨૯ થી ૪૨ મી લાર્દન સૂચીમા આગરાના આગચોન શ્રાવકોનો નામે માત્ર આપેલો છે.)
 (૪૩)—સમત્ત સંવત્રી દ્વાદશવદના અવધારસો. અહિંયા શ્રીપૂયજીના પ્રસાદે કુશલ—સેમ છે. પૂયજીના
 (૪૪) કુશલ—સેમના સદા સમાચાર લલવા, જેથી સેવકોને પરમસતોષે ઉપજે. અપરે અહિંયા શ્રી—
 (૪૫) પશુસળ પધે નિરાવાધવળે થયા છે. અમારી દિન ૧૨ પશુસળની,—વિશેષ સાવદેશ, પુરંદેશ,
 (૪૬) તપા દિલીમંદલ, મેશતમંદલ, રણથમોર મદદેશ, રીજાણ ધળા દેશે અમારી વરતી છે, તે સંતોષ માનજો.
 (૪૭) શ્રીસત્તરભેદી પૂજા ૧૫, શ્રીગદાંગીર દ્વાદશાહ તલત્ત બેઠા પડે આ અપૂર્વ કર્ણો થઈ છે.
 (૪૮) મગવન્તજીના પ્રસાદે શ્રીતપાગચ્છની ઉજવિ વિશેષ થઈ છે. શ્રીવાદશાહજીણે કરમાન ૨ કરી દી—
 (૪૯) ધા, તે શ્રીપશુસળ આવ્યે શ્રીજીના જમદાસજી આગલ થઈ શુદરણ (?) હુકમ દીધો. ઢંટેરો દેવાયો.
 (૫૦) પારીડધારસારે (?) દિન ૧૨ અમારી વરતાવી. જે વેળા શ્રીજીણે હુકુમ દીધો તે વેળા દરીલાનો
 (૫૧) મરાળો હતો. શ્રીજી છત્રોકે બેઠા હતા. રાજા રામદાસજી આગલ હતા. સેમની પાછઠ કરમાન લઈ
 ૫૦ વિવેક હર્ષ,

- (૫૨) તેની પાઠક પ. ડચ્ચર્હ દના પઝી અમારી બાવત વિનતી કીધી. શ્રીવાદશાહીય હુકમ દીધો
- (૫૩) તત્કાલ, તે વેળાએ જેવો દરીયાનો ભરાણો હતો, તે સમયનો [ચિતાર] આ લેખમા સર્વ લખ્યો છે
- (૫૪) ડસ્તાદ સાલીવહન વાદશાહી ચિત્રકાર છે તેણે છે સમય જોયો છે એવો જ આ વિ-
- (૫૫) ભમા માવ રાખ્યો છે. તે લેખ જોઈ જાણશો. ડસ્તાદ સાલીવહને ડદના વિનતી છે. જાણશો.
- (૫૬) અહિયા પઝુસનમા શ્રી સત્તરમેરી પૂજા ૧૫, જાત્ર દિવસ ૬૧, તપ માસજમન, દોઢ માસજમન,
- (૫૭) પાશ્વિક જમન, તથા અઠાઈ, તથા દ્વાદશમ, દશમ, અઠમ વંજાણ તપ ઘના થયા છે .
- (૫૮) સાવતરિક પૌષ ૧૦૧, સાવર્મિકવત્સલ્ય સા. વદીવાસડ, ચોમાસી, પસી, અટ્ટમી સુદી સાહ-
- (૫૯) મીવચ્છત્ર ચાલે છે, પૂજ્યજીના પ્રધાદયી. અવર અહિયા શ્રીજિનમાસાદ નવો સા વડુણ કરાવ્યો છે.
- (૬૦) પ્રતિમા પળ મહાસુર થઈ છે. ઘળીને પળ પ્રતિષ્ઠાનો ઘળો હવે છે શ્રીપૂજ્યજી આગ્યાથી તથા
- (૬૧) શ્રીઆચાર્યજી પમારનાં જિનશાસનનો ઘળો ડસ્તાદ થશે સારા સવના મનોરથ પહોંવશે.
- (૬૨) પૂજ્યજી ! કુપાકરીને પધારજો મહોપાધ્યાય શ્રીસોમવિજય પળ નજીક છે. પૂજ્યજી ! [વિનતી]
જલ્દીથી લખી છે.
- (૬૩) વિચારીને મળ જણાય તેમ લખશો. જેમ પૂજ્યજી લલશે તેમ પમાણ થશે લેખ-પ્રસાદ જલ્દી મોકલાશેવશો.
- (૬૪) દ્વાદશીમાવાદેમાં પ. શ્રીમહાનદ ડાળા ૩ છે. દિલ્હીમાં નદ જેઠા ડાળા ૨ છે. પારીમા (૧) ગળી શ્રીર
તનહર્ષ ડાળા ૨. પહેલુ ચૌ—
- (૬૫) માસુ પેરોજાવાદ ગળી સીમાનદ રહ્યા હતા. બીજા સવના આચાર્ય રહ્યા માટે. હમણા તે લાલી
- (૬૬) પડયુ. હવે જોમાસા વાવત પેરોજાવાદની ચિંતા કરશો પહેલા કેટલાય સાતપ (૧) રહેતા હતા તે
સર્વ મઢરાલી (૧)
- (૬૭) હવે મીડુ (૧) ક્ષેત્ર લાલી ન રહે તેમ કરશો. શ્રાવિકાઓએ ડદના વિનતી છે, જે જ પાશો. સહી જાણશો
(૬૮ થી ૭૨ મી લાઈન સુધીમાં શ્રાવિકાઓનાં નામો છે.)
- (૭૩) પૂજ્યજી ! પ્રતિષ્ઠા ઉપર જલ્દી પધારશો અહિના સવની ડત્કઠા ઘળી છે. ઇક્કવાર તમારા વરણ
- (૭૪) જોઈ સમસ્ત સઘ સતોષ પામશે. નહીં તર મહોપાધ્યાયને આદેશ આપશો. જિનશાસનની શો—
- (૭૫) મા થાય તેમ કરશો. ઘણુ શુ લખીય. પૂજ્યજી ! અહિની પળ ચિંતા સમને જ છે ત જાણશો
- (૭૬) સવત ૧૬૬૭ મિતી કાર્તિક સુદી ૨ શુભ દિને સોમવારે શુભ મવડુ લી સંક્રહસા સુત ॥



મહાવીર તીર્થંકરની જન્મભૂમિ.

(બ્રાહ્મણકુળ, ક્ષત્રિયકુળ અને વૈશાલી; એ ત્રણે એક જ શહેરના વિભાગો છે)

૯

[જેન સમાજનો માન્યતા પ્રમાણે ભગવાન મહાવીરનો જન્મભૂમિ જે ક્ષત્રિયકુળ કે કુલ્લકામ નામ પ્રસિદ્ધ છે તે એક મોટું શહેર હોઈ સ્વતંત્ર રાજવાની હતી અને તના અધિપતિ સિદ્ધાર્થ તે એક મોટા રાજા હતા. અને એ સ્થળ હાલમાં ગયા જિલ્લામાં લઝશદ નામે જે એક નાનું સરલુ ગામ છે ત્યાં આવેલું હતું. પરંતુ પશ્ચિમના શોધક વિદ્વાનો ના મતે મહાવીરની જન્મભૂમી તરીકે ઓલ્લાલુ કુલ્લકામ તે વૈશાલીનામે લિચ્છવિઓની રાજવાની પાસે આવેલું એક સાધારણ પદ હતું અને સિદ્ધાર્થ તે ત્યાના એક ઠાકોર હતા. મો. જેકોબી એ જન સૂત્રોવરની પ્રસ્તાવના (પ્રથમ ભાગ, જુઓ જે સા સ અક ૨, પૃષ્ઠ ૭૦) માં જ વાત કેન્દ્રીક ચર્ચા કરી છે, અને ડૉ. હોર્નેલ પણ પોતાના જનવર્મ વિષના નિષ્કારોમાં (જુઓ આ જ અકના પ ૧૧૪ ઉપર) એ વાતનું સૂચન કર્યું છે. ઘણા જિજ્ઞાસુઓ આ વિષાઈ જાણી વિચારમાં પડે છે અને શા આધારે આ વિદ્વાનો વૈશાલીને મહાવીરનું જન્મસ્થાન માને છે તે જાણના ઉત્સુક રહે છે. તેથી આ નીચે ડૉ. હોર્નેલની લેખેલી આ સવધી એક નાનું આપસમાં આવે છે. જેથી એ વાતનો ઘણાંક શુભાસે જિજ્ઞાસુઓને મઠી આવશે. એ નોંટ, ઉક્ત વિદ્વાને પોતાના ' ઇલાસગદસાઓ ' ના ઇંગ્રેજી ભાષાંતરના પૃષ્ઠ ૩ ઉપર આવેલા ' વાળિયગામ ' શબ્દ ઉપર લેખેલી છે. એ વાળિય ગામનો ઉલ્લેખ કરતી સૂત્રમાં પણ આવે છે. જેન વિદ્વાનો એ આ નોંટનું મનન કરી આ સવધમાં વિશેષ ઊંઘાપોહ કરવાની આવશ્યકતા છે. સપાદક]

વાળિયગામ (સ વાળિયગામ) એ વૈશાલી નામના પ્રસિદ્ધ શહેરનું બીજું નામ છે, જે લિચ્છવિઓની રાજવાની મનાય છે. જુઓ કર્નિગહામકૃત હિન્દુસ્થાનની પ્રાચીન મુગાલ, પૃ. ૪૪૨. કલ્પસૂત્ર ૧૨૨ માં તેને એક હુદા શહેર તરીકે, પણ સાથે વૈશાલી જોડે નિકટ સવધ ધરાવતું, લખ્યું છે. સરી રત્ત તો એ છે કે જે નગરીને આપણે વૈશાલીના નામે ઓલ્લાવી દીધે તે વહુ જ વિસ્તાર વાળી નગરી હતી (હુદાસાંગના વસ્તુમાં તે ૧૨ માઈલ જેટલી વિસ્તૃત હતી, જુઓ કર્નિગહામનો આર્કિઓલોજિકલ રિપોર્ટ ભાગ ૧, પૃ. ૫૬) અને તેની સીમામાં વૈશાલી કે જેને હાલમાં વેસાર કહેવામાં આવે છે, તે સિવાય ધીજા પણ કેટલાક સ્થળોનો સમાવેશ કરી હતો. એ સ્થળોમાં એક વાળિયગામ અને બીજું કુલ્લકામ કે કુલ્લકામ મુખ્ય હતા. એ સ્થળોના અવશેષ રૂપે હજી પણ વાળિયા અને ઘણાકુળ નામે ગામડાઓ અસ્તિત્વ ધરાવે છે (જુઓ, આર્કિઓલોજિકલ રિપોર્ટ ભાગ ૧ માંની ૨૧ મી પ્લેટ, તથા ભાગ ૧૬ માંની બીજી પ્લેટ) આથી એ સ્પષ્ટ શહેરને એના ગમે તે પ્રધાન અક્ષરો સ્થળના અ-

ધિધાનથી ઉલ્લેખી શકાય એ સ્પષ્ટ છે. વાળિયગામ સાથે લગાડેલા નયર એ વિશેષણથી તે મોટું શહેર હોય એમ જણાય છે, કારણ કે, ચમ્પા જે ઘણું જ મોટું શહેર હોવાનું પ્રસિદ્ધ છે તે પણ ' નયરી ' ના વિશેષણથી ઉલ્લેખિત છે (જુઓ, રોસેલિયુ બુદ્ધ ચરિત્ર પૃ. ૧૩૬) કુલ્લકામ નામ પણ વૈશાલીનું જ હતું અને તેથી વૈશાલી એ જ મહાવીરની જન્મભૂમિ હતી. આ જ કારણથી મહાવીરને વૈશાલીય પણ કહેવામાં આવે છે. (જુઓ, આચાર્ય સૂત્રના માધાંતરની જેકોબીની પ્રસ્તાવના, પૃ. ૧૧, અને વેવરની Indian Studies પૃ. ૧૬, પૃ. ૨૫૨) બુદ્ધ ચરિત્રના પૃ. ૬૨ માં આપેલી એક વીદ્યા આલ્યા-યિકામાં વૈશાલીના ત્રણ ભાગ હતા એમ જણાવેલું છે, અને તે કદાચિત્ વૈશાલી સાસ, કુલ્લકામ અને વાળિયગામ જ હશે કે જેણે અત્યુકમે સમગ્ર શહેરના આગ્રેય, પેશાન્ય અને પાશ્ચિમાત્ય ભાગો વ્યાપ્ત કરેલા હતા.

ઈશાન કોનના કુલ્લકામથી આગળ કાલ્યાણ નામનું (જુઓ સૂત્ર ૭) ઇન્દ્રિયેશ અથવા પદ આવેલું હતું જેમાં ' શાધુ ' અથવા ' નાય ' વાળાના કાનિયો વસતા હોય

એમ લાગે છે, કે જે જાતમા મહાવીર જન્મ્યા હતા. સૂત્ર ૬૬ માં તે પરાનો નાયકુલના નામે ઉલ્લેખ થયેલો છે. આ કોહ્લાગ સન્નિવેશ સાથે સ્વયં ધરાવણ, પણ તેની ચહાર, દૂધપલાસ નામે એક ખેત્ર હજી (જુઓ સૂત્ર ૩). સાધારણ ચૈત્યની માફક તેમા એક મંદિર અને તેની આસપાસ ઉદ્યાન હતું. આ કારણથી વિપાકસૂત્ર (૧, ૨) માં તેને ' દૂધપલાસ ઉજ્જાણ ' તરીકે લખેલું છે, અને તે નાયકુલનું જ હજી એ તના ' નાયસરઘ્ઘણે ઉજ્જાણે ' અગર ' નાયસરઘ્ઘે ઉજ્જાણે ' इत्यादि (કલ્પસૂત્ર ૧૧૫ અને આચાર્યસૂત્ર ૨, ૧૫ સુ ૨૨ મના) વર્ણન ઉપરથી સિદ્ધ થાય છે.

આ ઉપરથી, જે ઠેકાણે કુણ્ડપુરને નથર તરીકે ઉલ્લેખેલું છે તે જૈન કથન પણ સત્ય સમગ્રી શકાય છે. કારણ કે કુણ્ડપુર એ જ વૈશાલી એમ આપણે માનવું જોઈએ. કલ્પસૂત્ર ૧૦૦ માં કુણ્ડપુર સાથે ' નયર—સમિતર વાહિરિય ' એવું વિશેષણ લેવાયેલું છે અને તે વૈશાલીનું જ વર્ણન છે એમ સ્પષ્ટ જણાય છે. જે સૂત્રના આધાર (જુઓ સૂત્ર ૨.૪, ૨૨) કુણ્ડપુર કે કુણ્ડગામને સન્નિવેશ માનવામાં આવે છે (જેકોબીની આચાર્યગની પ્રસ્તાવના પૃ. ૧૦ જણાવ્યા પ્રમાણે) તે ચરાવર નથી કારણ કે એ ઠેકાણે વપરાયેલા ' ઉત્તર-સતિય કુણ્ડપુર સન્નિવેશ ' અથવા ' વાહિન-માહનકુણ્ડપુર-સન્નિવેશ ' વિશેષણનો ' કુણ્ડપુરનો ઉત્તરનો ક્ષત્રિયોનો ભાગ ' એમ અર્થ પતો નથી પરંતુ ' કુણ્ડપુરનું ઉત્તર બાજુનું ક્ષત્રિયકુલનું પર્વ ' અર્થાત્ ' જેમાં (નાયકુલના) ક્ષત્રિયો વસતા હતા એવું કુણ્ડપુરનું ઉત્તર બાજુનું પર્વ ' એમ અર્થ થાય છે. આથી તેનો, તે શહેરના દક્ષિણના પરાયી કે જ્યાં આગળ બ્રાહ્મણો રહેતા હતા, ભેદ જતાવ્યો છે. આ અર્થને કલ્પસૂત્ર ૨૨ માં વપરાયેલા ' સતિયકુણ્ડગામે નયરે ' અને ' માહનકુણ્ડગામે નયરે ' જેવા વિરોધભાષી પ્રકટ પ્રુષ્ટિ મળે છે. આ વધી બાવતોના વિચાર ઉપરથી જણાય છે કે મહાવીરના પિતા સિદ્ધાર્થે કુણ્ડગામ કે વૈશાલી નગરના કોહ્લાગ નામે ધરામા વસતા નાય જાતિના ક્ષત્રિયોના મુખ્ય સરદાર હતા. જો કે આપણે જ-

વૈશાલીય તે પ્રમાણે જૈનોના ધર્મપ્રયોમાં તેનું વધાર પડતું વર્ણન કરેલું છે, તો પણ સિદ્ધાર્થને ' કુણ્ડપુર કે કુણ્ડગામના રાજા ' તરીકે સર્વત્ર વર્ણવેલો નથી. વલ્કે એથી ઉલટું સામાન્ય રીતે તેને એક સાધારણ ક્ષત્રિય (સિદ્ધિચૈત્યિય) રૂપે જ વર્ણવ્યો છે. જે એક જે ઠેકાણે તેને રાજા (સિદ્ધિચૈત્યિય રાયા) તરીકે લખ્યો છે, તે કથનને અપનાવરૂપ જ માનવું જોઈએ. અગર કોહ્લાગના ક્ષત્રિયોના અધિપતિ તરીકે એ વિશ્લેષણ પણ સગત હોઈ શકે તમ છે. આ ઉપરથી સ્પષ્ટ થાય છે, કે મહાવીરની જન્મભૂમિ એ કોહ્લાગ જ હતી અને તે જ કારણથી તેઓ જ્યારે સત્સારવામાં યયા ત્યારે, સ્વામાવિક રીતે જ પોતાની જન્મભૂમિ પાસે આવેલા દૂધપલાસ નામના પોતાના જ કુલના ચૈત્યમાં પ્રથમ જઈને રહ્યા. (જુઓ કલ્પ. ૧૧૫-૧૧૬) મહાવીરના માતા-પિતા અને તેમની સાથે તેમની જાતિના વીજા પણ વધા નાયવંશી ક્ષત્રિયો પાર્થનાયના સિદ્ધાન્તો અને આદેશોને અનુસરતા હતા (જુઓ આચાર્ય. ૧, ૧૫-૧૬) અને તેથી જ્યારે પાર્થનાયનું પોતાના શિષ્યો સાથે કુણ્ડપુરમાં અમુક વર્ષતે આગમન થયું તે વર્ષતે તેમની સગવડ માટે તેમણે એક ચૈદ્યની સ્થાપના કરી હોય એ ઘણું સમ્ભવિત છે. મહાવીર દીક્ષા લઈને પ્રથમ પાર્થના સપ્રદાયમાં જોડાયા હોવા જોઈએ, કે જ્યાં તેઓ થોડા જ સમયમાં મુખ્ય અધિષ્ઠાતા થઈ તેના તેઓ સુધારક બન્યા હતા. અહિં વધારામાં પડતું એ પણ કહી શકાય કે, સૂત્ર ૭૭ અને ૭૮ માં વાળિયગામને આપેલા ' ઉચ્ચનીચમગ્નિમકુંડલાઈ—' ઊંચ, નીચ અને મધ્યમ વર્ગવાળું ' એ વિશેષણ સાથે દુસ્વ (રોહિલનું તુદ્ધ ચરિત્ર, પૃ. ૬૨) માં આપેલું નીચેનું વર્ણન મળ્યું આવે છે; જેમ કે " વૈશાલીમાં ત્રણ વિમાયો હતા. જેમાં પહેલા વિમાયમા સુરંગે કલસવાળા ૭૦૦૦ ઘરો હતા, વચલા વિમાયમા રતતકલસવાળા ૧૪૦૦૦ ઘરો હતા અને છેલ્લા વિમાયમા તોત્રકલસવાળા ૨૧૦૦૦ ઘરો હતા એ વિમાયોમા અનુક્રમે ઊંચ, મધ્યમ અને નીચ વર્ગના લોકો વસતા હતા. "

